

भीहरि:

अग्निपुराणकी विषयसूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१—भगवान् को प्रसन्न करनेवाले पुण्य	...	२	२५—वासुदेव, सर्कर्षण आदिके मन्त्रोंका निर्देश		
२—यमराजका दूतोंके प्रति आदेश (कविता)	३		तथा एक व्यूहमे लेकर द्वादश व्यूहतकके		
३—अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय (लेख)	४		व्यूहोंका एवं पञ्चविंश और पद्मविंश		
४—मङ्गलाचरण तथा अग्नि और वसिष्ठके संवादस्थान अग्निपुराणका आरम्भ	५		व्यूहका वर्णन	...	४३
५—मत्स्यावतारकी कथा	...	६	२६—मुद्राओंके लक्षण	...	४५
६—तमुद्र-मन्थन, कूर्म तथा गोहिनी अवतार	७	७	२७—जिष्ठोंको दीक्षा देनेकी विधिका वर्णन	...	४६
७—वराह, नृमिह, वामन और परशुराम-अवतारकी कथा	८	८	२८—आचार्यके अभिर्गका विधान	...	४९
८—श्रीरामावतार वर्णनके प्रभङ्गमे रामायण-बालकाण्डकी संक्षिप्त कथा	९	९	२९—मन्त्र-साधन विधि, सर्वतोभद्रादि मण्डलोंके लक्षण	...	५०
९—अयोध्याकाण्डकी संक्षिप्त कथा	...	१०	३०—भद्रमण्डल आदिकी पूजन-विधिका वर्णन	...	५३
१०—अरण्यकाण्डकी संक्षिप्त कथा	...	११	३१—‘अपामार्जन-विधान’ एवं ‘कुद्रापामार्जन’ नामक स्तोत्रका वर्णन	...	५४
११—किंडिकन्धकाण्ड सी संक्षिप्त कथा	...	१२	३२—निर्वाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यमे सम्मादनीय संस्कारोंका वर्णन	...	५७
१२—मुन्द्रकाण्डकी संक्षिप्त कथा	...	१३	३३—पवित्रारोपण, भृत्याङ्गि, योगपीठस्य देवताओं तथा प्रधान देवताके पार्षद—आवरणदेवोंकी पूजा	...	५८
१३—युद्धकाण्डकी संक्षिप्त कथा	...	१४	३४—पवित्रारोपणके लिये पूजा-होमादिकी विधि	...	६४
१४—उत्तरकाण्डकी संक्षिप्त कथा	...	१५	३५—पवित्रारोपण-विधि	...	६७
१५—इरिवंशका वर्णन एवं श्रीकृष्णावतारकी कथा	...	१६	३६—भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणकी विधि	...	६८
१६—महाभागतकी संक्षिप्त कथा	...	१७	३७—संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये साधारण पवित्रारोपणकी विधि	...	६९
१७—कौरव और पाण्डवोंका युद्ध तथा उसका परिणाम	...	१८	३८—देवाल्य-निर्माणमे प्राम होनेवाले फल आदिका वर्णन	...	६९
१८—यदुकुलका संहार और पाण्डवोंका स्वर्गगमन	...	१९	३९—विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये भूपरिग्रहण विधान	...	७२
१९—सुदूर और कठिक अवतारोंकी कथा	...	२०	४०—वासुमण्डलवतीं देवताओंके स्थापन, पूजन, अर्थदान तथा बलिदान आदिकी विधि	...	७२
२०—जगन्मी सूर्योदय का वर्णन	...	२१	४१—शिलान्यासकी विधि	...	७४
२१—स्वायम्भूत मनुके वंशका वर्णन	...	२२	४२—प्रासाद-लक्षण वर्णन	...	७६
२२—पूजाके अधिकारकी सिद्धिके लिये सामान्यतः स्नान-विधि	...	२३	४३—मन्दिरके देवताकी स्थापना और भूतशान्ति आदिका कथन	...	७८
२३—देवताओं तथा भगवान् विष्णुकी सामान्य पूजा-विधि	...	२४	४४—वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण	...	७९
२४—कुण्ड निर्माण एवं अग्नि-स्थापन सम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन	...	२५	४५—पिण्डिका आदिके लक्षण	...	८१



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

४६—शालमाम मूर्तियोंके लक्षण	...	८२	७१—गणपतिपूजनकी विधि	...	१२०
४७—शालमाम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन	...	८४	७२—स्नान, संध्या और तर्पणकी विधिका वर्णन	...	१२०
४८—चतुर्विंशति-मूर्तिस्तोत्र एवं द्वादशाक्षर स्तोत्र	...	८४	७३—सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन	...	१२३
४९—मत्स्यादि दशावतारोंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन	...	८६	७४—शिवपूजाकी विधि	...	१२५
५०—चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण	...	८७	७५—शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधि	...	१३१
५१—सूर्यादि ग्रहों तथा दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण	...	९०	७६—चण्डकी पूजाका वर्णन	...	१३४
५२—चौसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण	...	९१	७७—धरकी कपिल गाय, चूल्हा, चक्षी, ओखली, मुसल, शाहू और स्वंभू आदिका पूजन एवं प्राणगिनहोत्रकी विधि	...	१३५
५३—लिङ्ग आदिका लक्षण	...	९२	७८—पवित्राधिवाभनकी विधि	...	१३७
५४—लिङ्ग-मान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन	...	९३	७९—पवित्रोपणकी विधि	...	१४०
५५—पिण्डिकाका लक्षण	...	९७	८०—दमनकारोपणकी विधि	...	१४२
५६—प्रतिष्ठाके अङ्गभूत मण्डपनिर्माण, होरण-स्थाप्त, कलश एवं घ्वजके स्थापन तथा दस दिक्पाल-यागका वर्णन	...	९७	८१—समयाचार दोक्षाकी विधि	...	१४३
५७—कलशाधिवासकी विधिका वर्णन	...	९९	८२—समय दोक्षाके अन्तर्गत नंसार दोक्षाकी विधिका वर्णन	...	१५०
५८—भगवद्गीताको स्नान और शयन करनेकी विधि	...	१००	८३—निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवाभनकी विधि	...	१५२
५९—अधिवास-विधिका वर्णन	...	१०३	८४—निर्वाण दोक्षाके अन्तर्गत निवृत्तिकला शोधन विधि	...	१५५
६०—वासुदेव आदि देवताओंके स्थापनकी साधारण विधि	...	१०६	८५—निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकल्पके दोधनकी विधिका वर्णन	...	१५८
६१—अवभृथस्नान, द्वारप्रतिष्ठा और घ्वजारोपण आदिकी विधिका वर्णन	...	१०८	८६—निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विद्याकलाका शोधन	...	१५९
६२—लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि	...	११०	८७—निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकल्पका शोधन	...	१६०
६३—विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि तथा पुस्तक लेखन विधि	...	११२	८८—निर्वाण-दीक्षाकी अवतिष्ठ विधिका वर्णन	...	१६१
६४—कुओं, वावड़ा और पोन्हर आदि का प्रतिष्ठा की विधि	...	११३	८९—एतत्व दीक्षाकी विधि	...	१६४
६५—सभा स्थापन और एक्षात्कादि भवनके निर्माण आदिकी विधि, गृहपत्नेश्वर क्रम तथा गोमाताम अभ्युदयके लिये प्रार्थना	...	११५	९०—अभियेक आदिकी विधिका वर्णन	...	१६४
६६—देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा	...	११६	९१—देवाचर्चनका महामा तथा विविध मन्त्र एवं मण्डलका कथन	...	१६५
६७—जीणोदार विधि	...	११८	९२—प्रान्तप्राके अङ्गभूत शान्तियाँ।।। विधिका वर्णन	...	१६६
६८—उत्तव-विधिका कथन	...	११८	९३—वातुपूजा-विधि	...	१६९
६९—स्नापनोत्सवके विस्तारका वर्णन	...	११९	९४—शिलान्यासकी विधि	...	१७१
७०—बृक्षोंकी प्रतिष्ठाकी विधि	...	१२०	९५—प्रतिष्ठा-यात्रा सामग्री, विधि आदिका कथन	...	१७१

१०१—प्रासाद-प्रतिष्ठा	१८५	१३८—तन्त्रविषयक छः कर्मोंका वर्णन	...	२४९
१०२—ध्वजारोपण	१८६	१३९—साठ संवत्सरोंमें मुख्य-मुख्यके नाम एवं	...	
१०३—शिवलिङ्ग आदिके जीर्णोद्धारकी विधि	१८७	उनके फल-भेदका कथन	...	२५०
१०४—प्रासादके लक्षण	१८९	१४०—यश्य आदि योगोंका वर्णन	...	२५१
१०५—नगर, यह आदिरी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधि	१९०	१४१—छत्तीस औष्ठोंमें नैर्देश ओषधियोंके	...	
१०६—नगर आदिके वास्तुका वर्णन	१९४	वशानिक प्रभावका वर्णन	...	२५२
१०७—सुवनकोष (पुरुषोंद्वाप आदि) का तथा स्वायम्भुव गणका वर्णन	१९४	१४२—चौर और जातकका निर्णय, शनि इष्टि, दिन राहु, फणि राहु, तिथि-राहु तथा विष्टि- राहुके फल और अपराजिता-मन्त्र एवं	...	
१०८—सुवनकोष-वर्णनके प्रमंगमे भूमांडलके द्वीप आदिका परिचय	१९५	ओषधिका वर्णन	...	२५३
१०९—तीर्थ-माहात्म्य	१९७	१४३—कुञ्जिका-सम्बन्धी न्याम एवं पूजनकी विधि	...	२५६
११०—गङ्गाजीकी भूमि	१९८	१४४—कुञ्जिकाकी पूजा-विधिका वर्णन	...	२५७
१११—प्रयाग-माहात्म्य	१९८	१४५—मालिनी आदि नैना प्रकारके मन्त्र और उनके पोदा-न्याम	...	२५९
११२—वाराणसीका माहात्म्य	१९९	१४६—त्रिवर्णा-मन्त्रका वर्णन; पीठस्थानपर पूजनार्थ शक्तियों तथा आठ अष्टक देवियोंका	...	
११३—नमंदा माहात्म्य	२०१	कथन	...	२६१
११४—गया माहात्म्य	२०५	१४७—गुह्यकुञ्जिका, नौ त्वरिता तथा दूतियोंके	...	
११५—गया यात्राका विधि	२०६	मन्त्र एवं न्याम-पूजन आदिका वर्णन	...	२६२
११६—गयाम श्राद्धका विधि	२११	१४८—संग्राम-विजयदायक सूर्य पूजनका वर्णन	...	२६३
११७—श्राद्ध-कल्प	२११	१४९—होमके प्रकार मेद एवं विविध फलोंका	...	
११८—भारतवर्ष का वर्णन	२११	कथन	...	२६३
११९—जम्बू आदि महादीपों तथा समस्त भूमिके विस्तारका वर्णन	२१२	१५०—मन्वन्तरंका वर्णन	...	२६४
१२०—सुवनों-वर्णन	२१३	१५१—वर्ण और आश्रमके सामान्य धर्म, वर्णों तथा विलोमज जातियोंके विशेष धर्म	...	२६५
१२१—ज्योतिः-नाम्नों कथन	२१५	१५२—गृहस्थका जीवन्का	...	२६६
१२२—काल्याणना पञ्चाङ्गमान-भाधन	२१९	१५३—संस्कारोंका वर्णन और ब्रह्मचारीके धर्म	...	२६७
१२३—युद्धजयार्थ-सम्बन्धी विविध योगोंका वर्णन	२२१	१५४—विवाहविषयक वाते	...	२६८
१२४—युद्धजयार्थी उपायोंका सार	२२७	१५५—आचारका वर्णन	...	२६९
१२५—युद्धजयार्थ-सम्बन्धी अनेक प्राप्तारके चक्रोंका वर्णन	२२८	१५६—द्रव्य-शुद्धि	...	२७०
१२६—न-पुनर्भूम्यन्वा पाण्डितोंका वर्णन	२३१	१५७—मरणाशान्त तथा पिण्डदान एवं दाह-संस्कार-	...	
१२७—विभिन्न घटोंका वर्णन	२३३	कालिक कर्तव्योंका कथन	...	२७१
१२८—काट्टचक्रोंका वर्णन	२३४	१५८—गर्भस्थाव आदि सम्बन्धी अशोच	...	२७२
१२९—अर्थकाण्डोंका प्रतिपादन	२३६	१५९—असंस्कृत आदिका शुद्धि	...	२७३
१३०—विविध मण्डलोंका वर्णन	२३६	१६०—वानप्रस्थ-आश्रम	...	२७४
१३१—धातचक्र आदिका वर्णन	२३७	१६१—संन्यासीके धर्म	...	२७५
१३२—सेवा-चक्र आदिका निरूपण	२३९	१६२—धर्मगाल्पका उपदेश	...	२८१
१३३—नाना प्रकारके वलोंका विचार	२४१	१६३—आद्वकल्पका वर्णन	...	२८२
१३४—त्रैलोक्यविजया विद्या	२४४	१६४—नवप्राह-सम्बन्धी हवनका वर्णन	...	२८४
१३५—संग्रामविजय विद्या	२४५	१६५—विभिन्न धर्मोंका वर्णन	...	२८५
१३६—नक्षत्रोंके त्रिनाडी-चक्र या फणीश्वर- चक्रका वर्णन	२४७	१६६—वर्णाश्रम-धर्म आदिका वर्णन	...	२८६
१३७—महामारी-विद्याका वर्णन	२४७	१६७—ग्रहोंके अयुत-लक्ष्मी-टिटि हवनोंका वर्णन	...	२८७
			२४७	१६८—महापातकोंका वर्णन	...	२८९

१६९—ब्रह्महत्या आदि विविध पार्णोंके प्रायश्चित्त	२९०	१८६—दग्धमी तिथिके व्रत	...	३५०
१७०—विभिन्न प्रायश्चित्तोंका वर्णन	२९२	१८७—एकादशी तिथिके व्रत	...	३१०
१७१—गुप्त पार्णोंके प्रायश्चित्तका वर्णन	२९४	१८८—द्वादशी तिथिके व्रत	...	३१०
१७२—समस्तपापनाशकलोत्र	२९५	१८९—अवणद्वादशी व्रतका वर्णन	...	३११
१७३—अनेकविविध प्रायश्चित्तोंका वर्णन	२९६	१९०—अखण्ड-द्वादशी व्रतका वर्णन	...	३१२
१७४—प्रायश्चित्तोंका वर्णन	२९८	१९१—त्रयोदशी तिथिके व्रत	...	३१३
१७५—व्रतके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें	२९९	१९२—चतुर्दशी सम्बन्धी व्रत	...	३१३
१७६—प्रातिपदा तिथिके व्रत	३०२	१९३—शिवरात्रि व्रत	...	३१४
१७७—द्वितीया तिथिके व्रत	३०२	१९४—अशोकपूर्णिमा आदि व्रतोंका वर्णन	...	३१४
१७८—तृतीया तिथिके व्रत	३०३	१९५—वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन	...	३१५
१७९—चतुर्थी तिथिके व्रत	३०५	१९६—नक्षत्र नम्बन्धी व्रत	...	३१५
१८०—पञ्चमी तिथिके व्रत	३०६	१९७—दिन सम्बन्धी व्रत	...	३१६
१८१—षष्ठी तिथिके व्रत	३०६	१९८—मास-सम्बन्धी व्रत	...	३१७
१८२—सप्तमी तिथिके व्रत	३०६	१९९—मृतु, वर्ष, मास, संकान्ति आदि विभिन्न	...	३१८
१८३—अष्टमी तिथिके व्रत	३०७	व्रतोंका वर्णन	...	३१८
१८४—अष्टमी-सम्बन्धी विविध व्रत	३०८	२००—दीप-दान-व्रतकी महिमा एव विद्यर्भगज	...	
१८५—नवमी तिथिके व्रत	३०९	कुमारी, ललिताका उपाख्यान	...	३१९

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

- १—भगवान् अग्निदेव
- २—भगवान् श्रीकृष्ण
- ३—भगवान्—मत्स्यावतार
- ४—भगवान्—कृमीवतार
- ५—भगवान्—वराहावतार
- ६—भगवान्—नृसिंहावतार
- ७—भगवान्—वामन अवतार
- ८—भगवान्—परशुराम-अवतार
- ९—श्रीराम अवतार
- १०—श्रीराम विवाह
- ११—श्रीराम-वनगमन
- १२—श्रीराम-राज्याभियेक
- १३—श्रीकृष्ण-अवतार
- १४—ब्रजलीलामें श्रीकृष्ण
- १५—कंस-वध
- १६—नीतोपदेश
- १७—भगवान् बुद्ध
- १८—भगवान् कल्प
- १९—अग्निदेव तथा श्रीराधामाधन (दुरंगा चित्र) ... मुख्यपृष्ठ
- २०—वका व्यास, श्रोता सूक्त

रेखाचित्र

- २१—वका वसिष्ठ, श्रोता व्यास शुक्रदेव
- २२—वका अग्निदेव, श्रोता नरशिंह
- २३—वका नारद, श्रोता वात्सल्यमि
- २४—हरिहर भगवान्
- २५—स्कन्दस्वामी
- २६—चण्डी—शीतमुजा
- २७—दुर्गा—अटारह मुजा
- २८—सध्यादेवी—प्रातःकाल
- २९—सध्यादेवी—मध्याह्न
- ३०—सध्यादेवी सायंकाल
- ३१—भगवान् ब्रह्मा
- ३२—अष्टमुज विष्णु
- ३३—त्रैलोक्यमोहन श्रीहारे
- ३४—विश्वरूप विष्णु
- ३५—श्रीलक्ष्मीजी
- ३६—श्रीमरस्तीजी
- ३७—श्रीगङ्गाजी
- ३८—श्रीयमुनाजी
- इनके अतिरिक्त पञ्चलानन्देश, राहुनंक,
सर्पाकार राहु, नरचक, रक्षायन्त्र—सेवानित्र
तथा कई चक्र-सम्बन्धी कोष्ठक लेखोंके बान-
बीचमें दिये गये हैं।

ॐ श्रीपरमा-मने नमः ३

श्रीमद्भैषायनसुनि वेदव्यामप्रणीत

अभिपुराण

(मूल संस्कृतका हिंदी-अनुवाद)



मूल पाठके संशोधक और अनुवादक-

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, पाण्डेय 'राम'

भगवान्‌को प्रमन्न करनेवाले आठ भान्-पुष्ट

अहिंसा प्रथमं पुष्टं पुष्टमिन्द्रियनिग्रहः ।
मर्वपुष्टं दया भूते पुष्टं शान्तिर्विशिष्यते ॥
शमः पुष्टं तपः पुष्टं ध्यानं पुष्टं च समम् ।
सन्यं चैवाष्टमं पुष्टमेतस्तुष्यति केशवः ॥
एतैरेवाष्टभिः पुष्टस्तुष्यत्येवार्चतो हरिः ।
पुष्टान्तराणि सन्त्यत्र बाहानि मनुजोत्तम ॥

(अग्निपुराण २०२ । १३-१९)

‘अहिंसा’ (किसी भी प्राणीका तन-मन-वचनसे न दुरा चाहना, न करना, न समर्थन करना) प्रथम पुष्ट है । ‘इन्द्रिय निग्रह’ (इन्द्रियोंको मनमाने कियोमे न जाने देना) दूसरा पुष्ट है । ‘प्राणिमात्रपर दया’ (दूसरेके दृग्खको अपना दृग्ख समझकर उसे दूर करनेके लिये जेमा) तीसरा सत्रोंपरी पुष्ट है । ‘शान्ति’ (किसी भी अवस्थामे चिनका क्षुब्ध न होना) चतुर्थ पुष्ट सबसे बड़कर है । ‘अम’ (मनका वशम रहना) पाँचवाँ पुष्ट है । ‘तप’ (व्यर्थके पालनार्थ कष्ट रहना) छठा पुष्ट है । ‘ध्यान’ (इश्वरके स्वरूपमें चिनका तदाकार-वृत्ति) सातवा पुष्ट है और आठवाँ पुष्ट ‘सत्य’ है । इन पुष्टोंसे भगवान् केशव मनुष्ट होते है । इन्हीं आठ पुष्टोंके द्वारा पूजन होनपर ही भगवान् हरि प्रसन्न होते है । हे मनुष्यों श्रेष्ठ ! इनके अनिरक्त वाय पुण्य भी इस भूमण्डलपर हैं ।

ॐ पूर्णमद् पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यने ॥



ये च भागवता लोके तच्चित्तास्तपरायणाः । पूजयन्ति सदा विष्णुं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः ॥
यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन् स्वलिते स्थिते । संकीर्तयन्ति गोविन्दं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः ॥
(अग्निपुराण)

वर्ष ४४	}	गोरखपुर, मार माघ २०२६, जनवरी १९७०	{	संख्या १
---------	---	-----------------------------------	---	----------

पूर्ण संख्या ५१८	}
------------------	---

यमराजका दूतोंके प्रति आदेश

जिनका विच्छ लगा श्रीहरिमे, हरिके शरणागत एकान्त ।
सदा पूजने रहते हैं जो हरिको यहाँ भागवत शान्त ॥
अथवा उठते और बैठते, सोते, चलते जो शुभधाम ।
गिरते-पड़ते और खड़े होते जो लेते हरिका नाम ॥
करते संकीर्तन जिस स्थलमें पेसे जो मानव यह्वभाग ।
मत जाना उनके समीप तुम, उन्हें दूरसे देना त्याग ॥
(अग्निपुराण ३८ । ३८-४०)

अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय

भारतीय जीवन-संस्कृतिके मूलाधार 'वेद' है। वेद भगवान्‌के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं, अतः वे भगवत्स्वरूप ही हैं। श्रुत ब्रह्मवाणीका सरक्षण परम्परासे ऋषियोंद्वारा होता रहा, इसीलिये इसे 'श्रुति' कहते हैं। भगवदीय वाणी वेदोंके सत्यको समझनेके लिये पठद्व, अर्थात् शिक्षा, कल्य, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिषका अध्ययन आवश्यक था। परंतु जन-साधारणके लिये यह भी सहज सम्भव न होनेसे पुराणोंका कथोपकथन आरम्भ हुआ, जिससे वैदिक सत्य रोचक ऐतिहासिक आख्यायिकाओं-द्वारा जन-जनतक पहुँच सके। इसीलिये कहा जाता है कि पुराणोंका कथोपकथन उतना ही प्राचीन है, जितना वैदिक ऋचाओंका संकलन और वंशानुवंश संरक्षण। अध्ययनकी पाश्चात्य विश्लेषण विवेचन-पद्धतिको सर्वोपरि मानकर पुराणोंको इसा-जन्मके आस-पास अथवा उसके बादका द्वहराना सर्वथा भान्त तथा अनुचित है। भारतके आदिकालमें ग्राम-जनका प्रनिभासम्पन्न समुदाय जिस प्रकार वेदोंके अध्ययन-अध्यापन-निर्वचनमें निमान रहा, उसी प्रकार उसी कालमें समाजके साधारण समुदायको वर्षमें लगाये रखनेके लिये पुग गोका कथन-श्रवण-प्रवचन होता रहा। शतपथब्राह्मण (१४। २। ४। १०) में आया है कि 'चारों वेद, इतिहास, पुराण—ये सब महान् परमात्माके ही निःश्वास हैं।' अथवेद (११। ७। २४)में आया है—'यज्ञसे यजुर्वेदके साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।'

जो पुरानन आख्यान ऋषियोंकी स्मृतियोंमें सुरक्षित थे और जो वंशानुवंश ऋषि-कण्ठोंसे कीर्तित थे, उन्हींका संकलन और विभागीकरण भगवान् वेदव्यासद्वारा हुआ। उन आख्यायिकाओंको व्यवस्थित करके प्रकाशमें लानेका श्रेय भगवान् वेदव्यासको है, इसी कारण वे

पुराणोंके प्रणता कहलायें; अन्यथा पुराण भी वेदोंका मौनि ही अनादि, अपौरुषेय एवं प्रामाणिक हैं।

भगवान् वेदव्यासद्वारा प्रगीत अठारह महापुराणोंमें अग्निपुराणका एक विशेष स्थान है। विष्णुस्वरूप भगवान् अग्निदेवद्वारा महर्षि वसिष्ठजीके प्रति उपदिष्ट यह अग्निपुराण ब्रह्मस्वरूप है, सर्वोक्तुष्ट है तथा वेद-तुल्य है। देवताओंके लिये सुखद और विद्याओंका सार है। इस दिव्य पुराणके पठन-श्रवणसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होनी है।

पुराणोंके पाँच लक्षण वरायं गयं हैं—१. सृष्टि-उत्पत्ति वर्णन, २. सृष्टि-विलय-वर्णन, ३. वंश-परम्परा-वर्णन, ४. मन्त्रन्तर-वर्णन और ५. विशिष्ट व्यक्ति-चरित्र वर्णन। पुगणके पाँचों लक्षण तो अग्निपुराणमें ब्रह्मित होते ही हैं, इनके अनिरिक्त वर्ण्य-विषय इनने विस्तृत है कि अग्निपुराणको 'निश्चकोष' कहा जाता है। मानवके लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक हितके लगभग सभी विषयोंका वर्णन अग्निपुराणमें मिलता है। प्राचीनकालमें न तो मुद्रणकी प्रश्ना थी और न ग्रन्थ ही सहज मुलभ होने थे। ऐसी परिस्थितिने विविध विषयोंके महत्वपूर्ण विवेचनका एक ही स्थानपर एक साथ मिल जाना, यह एक बहुत बड़ा बात थी। इसी कारण अग्निपुराण बहुत जनप्रिय और विद्वद्वर्ग-समाजन रहा।

सम्पूर्ण सृष्टिके कारण भगवान् विष्णु हैं, अनः अग्निपुराणमें भगवान्‌के विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु ही मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण और बुद्ध-के रूपमें अवतरित हुए तथा कल्पके रूपमें अवतरित होते। भगवान्‌के अवतारोंकी संख्या निश्चित नहीं है; परंतु सभी अवतारोंका हेतु यही है कि सभी वर्ण और आश्रमके लोग अपने-अपने धर्ममें दृढ़तापूर्वक लगे रहें।

* अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय *

जगत्की सृष्टिके आदिकारण श्रीहरि अवतार लेकर धर्मकी व्यवस्था और अधर्मका निराकरण ही करते हैं।

भगवान् विष्णुसे ही जगत्की सुष्ठि हुई। प्रकृतिमें भगवान् विष्णुने प्रवेश किया। क्षुब्ध प्रकृतिसे महत्त्व, फिर अहंकार उत्पन्न हुआ। फिर अनेक लोकोंका प्रादुर्भाव हुआ, जहाँ स्वायम्भुव मनुके बंशज एवं कशयप आदिके बंशज परिव्याप्त हो गये। भगवान् विष्णु आदिदेव हैं और सर्वपूज्य हैं। प्रत्येक साधकको आत्म-कल्याणके लिये विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। भगवान्की पूजाका विधान क्या है, पूजाके अधिकारकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, यज्ञके लिये कुण्डका निर्माण एवं अग्निकी स्थापना किस तरह की जाय, शिष्यद्वारा आचार्यके अभिषेकका विधान क्या है तथा भगवान्का पूजन एवं हवन किस प्रकार सम्पन्न किया जाय, इमका विस्तृत वर्णन अग्निपुराणमें है। मन्त्र एवं विधिमहित पूजन-हवन करनेवाला अपने पितरोंका उद्धारक एवं मोक्षका अधिकारी होता है।

देव-पूजनके समान महत्त्व ही देवाल्य-निर्माणका है। देवाल्य-निर्माण अनेक जन्मकं पापोंको नष्ट कर देता है। निर्माण-कार्यके अनुमोदनमात्रसे ही विष्णुधामकी प्राप्ति का अधिकार मिल जाता है। कनिष्ठ, मध्य और श्रेष्ठ इन तीन श्रेणीके देवाल्योंके पाँच भेद अग्निपुराणमें वर्ताये गये हैं—१. एकायनन तथा २. द्व्यायन, ३. पञ्चायन, ४. अष्टायन, ५. षोडशायतन। मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करनेवालेको देवाल्य-निर्माणसे दूना फल मिलता है। अग्निपुराणमें विस्तारसे वराया गया है कि श्रेष्ठ देव-प्रासादके लक्षण क्या हैं।

देवाल्यमें किस प्रकारकी देव-प्रतिमा स्थापित की जाय, इसका बड़ा मूळम, एवं अत्यन्त विस्तृत वर्णन इसमें है। शालग्रामशिला अनेक प्रकारकी होती है। द्वि-चक्र एवं श्वेतवर्ण शिला 'वासुदेव' कहलाती है, कण्ठकान्ति एवं दीर्घ-छिद्रयुक्त 'नारायण' कहलाती है। इसी प्रकार

इसमें संकरपूण, प्रशुभ्न, अनिरुद्ध, परमेश्वा, विष्णु, नृसिंह, वाराह, कृष्ण, श्रीधर आदि अनेक प्रकारकी शालग्राम-शिलाओंका विशद वर्णन है। देवाल्यमें प्रतिष्ठित करनेके लिये भगवान् वासुदेवकी, दशावतारोंकी, चण्डी, दुर्गा, गणेश, स्कन्द आदि देवी-देवताओंकी, सूर्यकी, ग्रहोंकी, दिक्षापाल, योगिनी एवं शिवलिङ्ग आदिकी प्रतिमाओंके श्रेष्ठ लक्षणोंका वर्णन है। देवाल्यमें श्रेष्ठ लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीविष्णुहोंकी स्थापना सभी प्रकारके मङ्गलोंका विधान करती है। अग्निपुराणोक्त विधिके 'अनुसार देवाल्यमें देव-प्रतिमाकी स्थापना और प्राण-प्रतिमा करनेसे परम पुण्य होता है। श्रेष्ठ साधकके लिये यही उचित है कि अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्नोंसे रहित) देव-प्रतिमाका उत्सवसहित विसर्जन करे और देवाल्यमें नवीन मूर्तिका न्यास करे। जो देवाल्यके साथ अथवा उसमें अलग कूप, वापी, नडागका निर्माण करताता या वृक्षारोपण करता है, वह भी वहाँ पुण्यका लाभ करता है।

भारतर्थमें पञ्चदेवोपासना अति प्राचीन है। गणेश, शिव, गत्कि, विष्णु और मर्य ये पाँचों देव आदिदेव भगवान्की ही पाँच अभिव्यक्तियाँ हैं; परंतु सब तत्त्वतः एक ही हैं। गणपति-पूजन, मर्य-पूजन, शिव-पूजन, देवी-पूजन और विष्णु-पूजनके महत्त्वका भी अग्निपुराणमें स्थान-स्थानपर प्रतिपादन हुआ है।

साधनाके श्रेवरमें श्रेष्ठ ग्रुह, श्रेष्ठ मन्त्र, श्रेष्ठ शिष्य और सम्पूर्ण दाक्षाका बड़ा महत्त्व है। जिससे शिष्यमें ज्ञानकी अभिव्यक्ति करायी जाय, उसीका नाम 'दीक्षा' है। पाश-मुक्त होनेके लिये जीवको आचार्यसे मन्त्राभ्यनकी दीक्षा लेनी चाहिये। मविधि दीक्षित शिष्यको शिवलक्षी प्राप्ति शीघ्र होती है।

जहाँ भक्त-मन-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान्के सिद्ध श्री-निग्रहोंके देवाल्य हैं, अथवा जहाँ सर्वलोकवन्दनर्त्य श्रीहरिके प्रीत्यर्थ अृपि-मनियोंने कठिन माध्यना की है।

वही भूमि 'तीर्थ' कहलाती है, जिसके सेवनसे भोग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। तीर्थ-सेवनका फल सबको समान नहीं होता। जिसके हाथ-पैर और मन संयमित हैं नथा जो जितेन्द्रिय, लघ्वाहारी, अप्रतिप्रही, निष्पाप हैं, उसी तीर्थयात्रीको तीर्थ-सेवनका यथार्थ फल मिलता है। ऐसे तीर्थयात्रीको पुष्कर, कुरुक्षेत्र, काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। गयातीर्थमें शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्ध करनेपर नरकस्थ पितर स्वर्गके अधिकारी और स्वर्गस्थ पितर परमपदके अधिकारी होते हैं।

काम-कोधप्रस्त मानवद्वारा नहीं चाहते हुए भी अज्ञानवश बलात् पापाचरण हो जाता है। पातक तो अनेक प्रकारके हैं; पर कभी-कभी ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुत्लपगमन-जैसे महापातक भी घटित हो जाते हैं। इन पातकोंसे विमुक्तिका उपाय 'प्रायश्चित्त' है। पातक, उपपातक, महापातकके परिशमनार्थ अनेक प्रकारके प्रायश्चित्तका निर्देश किया गया है। यदि कुछ भी न हो सके तो भगवान् विष्णुकी स्तुति करे। भगवान् विष्णुके समस्तपापनाशक स्तोत्रके आश्रयसे समस्त पातक विनष्ट हो जाते हैं।

आत्मशुद्धि तथा शरीर-शुद्धिका एक महान् साधन 'ब्रत' भी है। शास्त्रोक्त नियमको ही 'ब्रत' कहते हैं। इन्द्रियसंयम और मनोनिप्रह आदि विशेष नियम ब्रतके ही अङ्ग हैं। ब्रत करनेवालेको किंचित् कष्ट सहन करना पड़ता है, अतः इसे 'तप' भी कहते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण ब्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष, संक्रान्ति आदिके अवसराएँ होनेवाले ली-पुरुष-सम्बन्धी ब्रत ब्रताये हैं, जिनसे आत्मनितक कल्याणका सम्पादन होता है।

प्रहों और नक्षत्रोंकी स्थिति भी मानवकी सफलना-असफलनाको प्रभावित करती तथा शुभ-अशुभका

विधान करती है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्रका संखेपमें भगवान् अग्निदेवने सुन्दर उपदेश दिया, जिससे शुभ-अशुभका निर्णय करनेवाले विवेककी प्राप्ति हो सके। वर-वधूके गुण, विवाहादि संस्कारोंके मुद्दनका निर्णय, 'काल'को समझनेके लिये गणित, युद्धमें विजय प्राप्तिके लिये विविध योग, शत्रुके वशीकरणके लिये शान्ति, वशीकरण आदि षट् तात्त्विक कर्म, ग्रहण-दान और प्रहोंकी महादशा आदिका सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया गया है। इस विवेचनमें ज्योतिषशास्त्रकी प्रायः उपयोगी बातें समाविष्ट हो गयी हैं।

व्याधि और समष्टिके हितके लिये अपने-अपने व्रत और आश्रमके अनुसार व्यक्तिमात्रके लिये स्वर्गम-पालन आवश्यक है। स्वर्गम-पालन ही सुख शान्ति तथा मोक्षकी सीढ़ी है। यह करनाकरना, वेद पढ़ना-पढ़ना और स्वाध्याय ब्राह्मणके कर्म है। दान देना, वेदाध्ययन करना, यज्ञानुष्ठान करना क्षत्रिय-वैश्यके सामान्य धर्म हैं। प्रजा-पालन और दृष्टदर्शन क्षत्रियके तथा कृषि-मोरक्षा-व्यापार वैश्यके धर्म हैं। सेवा एवं शिल्परचना शूद्रका धर्म है। त्रिवर्याश्रम मानवके पवित्र जीवन प्रासादके लिये 'नींवका पथर' है। अन्तेश्वासीको आजके विद्यार्थियों-जैसा विलास-प्रमादपूर्ण जीवन नहीं, कठोर संयमित-नियमित-अनुशासित जीवन व्यर्तान करनेवी आवश्यकता है, जिससे वह वैयक्तिक और सामाजिक धर्मोंके पालनकी क्षमता प्राप्त कर सके। विवाहके उपरान्त गृहस्थाश्रमकी सम्पूर्ण दिनचर्याका उल्लेख करने हुए यह बताया गया है कि गृही नित्य देवाराधन, द्रव्य शुद्धि, शौचाशौच-विचार एवं शुद्ध आचरणद्वारा किम प्रकार आत्मकल्याण और समाजकल्याणका सम्पादन करे। सद्गृहस्थके लिये तो यहाँतक कहा गया है कि 'श्री और समृद्धिके लिये गाय, चूल्हा, चायी, ओखली, मुसल, झाड़ू ५-खंभेका भी पूजन करे।' पौत्रके जन्मके बाद गृहस्थ-को बानप्रस्थ धारण करके पत्नीसहित तपःपूर्ण जीवन अतीत करना चाहिये। सन्यासीका जीवन तो त्यागका भूतिमान् स्वरूप है। सन्यासी शरीरके प्रति उपेक्षाभाव

* अग्निपुराणका संक्षिप्त परिचय *

रखता हुआ एकाकी विचरता है और मननशील रहता है। कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—इन चार प्रकारके संन्यासियोंमें अन्तिम सर्वश्रेष्ठ है, जो नित्य ब्रह्ममें स्थित है।

वास्तु-विदाका भी अग्निपुराणमें यत्र-न-त्र प्रभूत वर्णन है। भूमिके विस्तारका द्विदर्शन कराते हुए विभिन्न द्वीप तथा देशोंका वर्णन किया गया है। रहनेके लिये गृह-निर्माण कैसे हो, फिर नगर-निर्माणकी योजना कैसी हो—इसे भी युक्तिपूर्वक समझाया गया है। गृह-निर्माण और नगर-निर्माणके साथ देव-प्रतिमा और देवालय-निर्माणका भी विस्तृत वर्णन है। नगर, ग्राम तथा दुर्गमें गृहों तथा प्रासादोंकी वृद्धि हो, इसकी सिद्धिके लिये ८१ पदोंका वास्तुगण्डल बनाकर वास्तु-देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पूजामें पुण्योंका विशेष स्थान है। देव-पूजनमें मालती, नमाल, पाटल, पश्च आदि विभिन्न पुण्योंके विभिन्न फल होते हैं; परंतु देवपूजनके लिये श्रेष्ठ पुण्य हैं—अहिंसा, इन्द्रियनिप्रह, दया, शम, तप, सत्य आदि। इन भाव-पुण्योंमें अर्चिन श्रीहरि शीघ्र संतुष्ट होते हैं। भाव-पुण्योंसे अर्चना करनेवालेको नरक-यातना नहीं सहनी गइती; अन्यथा पापाचारिको अवीचि, नाप्र, रौप्य, नामिस्त्र आदि नरकोंके कष्ट भोगने पड़ते हैं। पुण्यात्मको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विशेष पर्वपर, विशेष तीर्थमें, विशेष तिथिमें दानका अलग-अलग फल होता है। दानसे मोक्षकर्त्ती प्राप्ति हो सकती है; परंतु फलकी कामनासे दिया गया दान मोक्षकी प्राप्ति न करवाकर व्यर्थ चला जाता है। गायत्री-मन्त्रकी व्याख्या करते हुए भगवान् अग्निदेवने बताया है कि ‘जो लोग भगवती गायत्रीका एवं गायत्री-मन्त्रका आश्रय लेने हैं, उनके शरीर और प्राण दोनोंकी रक्षा होनी है।’

राज्यमें सुख-शान्ति बनाये रखनेके लिये राजाको अपने धर्मका भलीभाँति पालन करना चाहिये। शत्रुसुदून, प्रजापालक, सुदर्ढवारी, संयमी, रण-कलाविद्, व्यायाप्रिय, दुर्ग-रक्षित, नीतिकुशल राजा ही अपने

धर्मका पालन कर सकता है। जो राजा धनुर्वेदके शिक्षण-प्रशिक्षणकी पूर्ण व्यवस्था रखता है और जो लोक-व्यवहारमें परम कुशल है, उसका परामर्श नहीं होता।

स्वप्न और शकुनका भी जीवनपर शुभ और अशुभ प्रभाव पड़ता है। सभी स्वप्न या शकुन प्रभावशाली नहीं होते; पर जिनसे अशुभ होता है, उनके निवारणका उपाय भी बताया गया है। शुभ-लक्षणसम्पन्न खी या पुरुषकी संगति सदा कल्याणकारी होती है; अतः इनके लक्षणोंका भी विस्तृत वर्णन है। जीवन श्रीयुक्त रहे, अतः हीरा, मोती, प्रवाल, शङ्ख आदि रसोंको परीक्षाके उपरान्त ही धारण करना चाहिये, जिससे शुभका विधान हो।

भगवान् अग्निदेवने चारों वेदोंकी सभी शाखाओंका विस्तृत वर्णन करके चारों वेदोंकी विभिन्न ऋचाओं या सूक्तोंके सहित पाठ, जप-हृवन करनेका विधान बताया, जिससे भुक्ति-मुक्तिकामी पुरुषको अभीष्टकी प्राप्ति तथा सभी उत्पातोंकी शान्ति होती है। जैसे ऋग्वेदके ‘अग्निमीठे पुरोहितम्’—इस सूक्तका सवित्रि जप करनेसे इष्टकामनाओंकी पूर्णि होती है। भगवान् अग्निदेव-ने सूर्य, चन्द्र, यदु, पूरु आदि अनेक वंशोंका वर्णन किया, जिनका चरित्र सुननेसे पापोंका क्षय होता है। यदुवंशमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार धर्मसंरक्षण, अर्थमनाश, सुर-पालन और दैत्य-मर्दनके लिये ही हुआ था—
 देवक्यां वसुदेवातु शृणोऽभूतपसान्वितः ॥
 धर्मसंरक्षणार्थाय शाधर्महरणाय च ।
 सुरादेः पालनार्थं च दैत्यादैर्मर्थनाय च ॥

(अग्निपुराण २७६। १-२)

स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी ज्ञान भी मनुष्यके लिये आवश्यक है। अतः स्वास्थ्यके सिद्धान्त, रोगके भेद एवं कारण, औषधिका विवेचन, वैद्यका वर्तव्य, उपचारके उपाय, शरीरके अवयव, गज और अश्वकी चिकित्सा आदिका वर्णन करते हुए आयुर्वेदका ज्ञान कराया गया है, जो मृतको भी प्राण-प्रदाता है। अनिष्ट-निवारण मन्त्रोंके प्रयोगोद्धारा भी होता है, अतः मन्त्र-तन्त्रकी परिभाषा और भेद-प्रमेद बताकर शिव, सूर्य, गणपति, लक्ष्मी, गौरी

* पुराणं परमाद्येषं ब्रह्मविद्याक्षरं परम् *

आदि देवी-देवताओं के अनेक मन्त्र और मण्डल बताये गये हैं, जिनको सिद्ध करके प्रयोग करने से विष-शमन, बालप्राह आदिका निवारण होता है।

समाजमें उसका बड़ा आदर होता है, जिसकी वाणीमें रस है, जिसमें अभिव्यक्तिकी कुशलता है और जिसमें प्रस्तुतीकरणकी क्षमता है। अतः अनिपुराणमें काव्य-भासांसाका अनिविस्तृत वर्णन है। काव्याङ्ग, नाटक-निरूपण, रस-भेद, शब्दान्कार, अर्थालंकार, शब्द-गुण आदि शाखाय विषयोंकी सूक्ष्म विवेचना है। यह इसीलिंग कि 'अथारे काव्यसंसारे कविरेष्व प्रजायनिः।'

(अधिन० ३२१ । १०)

लोक-परलोक और परमार्थके सर्वोपयोगी स्थूल-सूक्ष्म विषयोंके वर्णनका यही उद्देश्य है कि मानव सुखी, शान्त, समृद्ध एवं स्वस्थ-जीवन अनीत करने हुए परम तत्त्वको प्राप्त करे। जीवनमें अर्थ और काम दोनों हों, पर वे हों धर्मके द्वारा नियन्त्रित। जीवन धर्मनिष्ठ हो और अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति हो। धर्मशास्त्रका उपदेश देते हुए बताया गया है कि "र्यम वही है, जिससे भोग और मोक्ष, दोनों प्राप्त हो सके। नैदिक कर्म दो प्रकारका है—एक 'प्रवृत्त' और दूसरा 'निवृत्त'। कामनायुक्त कर्मको 'प्रवृत्तकर्म' कहने है। ज्ञानपूर्वक निष्ठाम-भावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस (मोक्षम् गत्याण) के साधक हैं। इन सबमें भी सबसे उत्तम आत्मज्ञान है।"

'भुक्ति'से भी महत्त्वपूर्ण 'मुक्ति' है, जिससे जीवात्मा सभी प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होकर परमात्मसम्प्रप्त हो जाता है। 'ज्ञान' वही है, जो ब्रह्मको प्रकाशित करे और 'योग' वही है, जिससे चित्र ब्रह्मसे संयुक्त हो जाय। 'ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्त्वं कवित्यता।' (अधिन० २७२ । ?)। अतः भगवान् अनिनेवने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, अर्थात् अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया, जिससे आत्मा

परमात्मचैतन्यरूप हो जाय। परमात्म-चैतन्यकी प्राप्ति ही परम प्राप्तव्य है। इसीकी प्राप्तिके दो प्रधान मार्ग—ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठाका प्रतिपादन करनेवाली श्रीमद्भगवद्गीताका संक्षेपमें कथन करनेके उपरान्त यमगीताका भी वर्णन किया गया है।

वस्तुतः शरीरसे आत्मा पुथक् है। नेत्र, मन, बुद्धि आदि आत्मा नहीं है। आत्मा इनका नहीं, ये आत्माके हैं। जीवात्मा परमात्माका सनातन अंश है। ब्रह्मत्वकी प्राप्तिमें ही जीवनकी परम सफलता है। इसके लिये ज्ञानयोग श्रेष्ठ साधन है। साधनाके द्वारा जीव नगतके स्थूल-भूर्म बन्धनोंसे मुक्त होकर ब्रह्मत्वकी प्राप्ति कर लेता है। साधकको 'शारीर-भाव'से अतीत होना आवश्यक है। अपवादकी बात दूसरी है। अन्यथा सभीको अभ्यास करना ही पड़ता है। इसीलिये पूजा, व्रत, तप, वैराग्य और देवराधनका विधान है। आमोत्कर्षके लिये सभीको अपने-अपने, स्तरके अनुकूल साधन-पथ चुनना चाहिये। सभीका स्तर पक नहीं, अतः सभीका अधिकार भी समान नहीं। देवोपासनासे भी परमतत्त्वकी प्राप्ति हो सकती है। देवोपासकोंका जो 'विष्णु' है, वही याज्ञिकोंका 'यज्ञपुरुष' है और वही ज्ञानियोंका 'मूर्तिमान् ज्ञान' है। जीवात्मा किसी पथका आश्रय नहीं, अनिम उद्देश्य यही है कि आत्मा और परमात्माका एकत्र्य प्रकाशित हो जाय। सच्चा श्रेय तो सदा परमार्थमें ही निहित रहता है। परमार्थकी दृष्टिसे नो आत्मा और परमात्माका नित्य अभिन्नत्व है। अग्नि पुराणमें श्रीसूतजीने कहा है—“भगवान् विष्णु ही सारसे भी भार तत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं। 'वह विष्णुस्त्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ'—इस प्रकार उन्हें जान लेनेपर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है।”

ऐसे वेदमस्मत्, सर्वविद्यायुक्त और ब्रह्मत्वरूप अग्नि-पुराणका जाँ पठन, श्रवण, अध्ययन और मनन करता है, उसे भोग और मोक्ष—दोनोंकी ही प्राप्ति होती है—
सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्वादिकृद्धिभुः।
ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥
(अधिन० १ । ४)

॥ श्रीहरिः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अग्निपुराण

पहला अध्याय

मङ्गलाचरण तथा अग्नि और वसिष्ठके संवाद-स्वरूपसे अग्निपुराणका आरम्भ

श्रीयं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीधरम् ।

श्रीष्टाणं वह्निमिश्रदादीन् वासुदेवं नमाम्यहम् ॥

लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, महादेव-
जी, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंतथा भगवान् वासुदेव-
को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

नैमित्रारण्यकी बात है । शैनक आदि शृणि यशोदारा
भगवान् विष्णुका यजन कर रहे थे । उस समय वहाँ तीर्थ-
यात्राके प्रसङ्गसे सूतजी पश्चारे । महर्षियोंने उनका स्वागत-
सल्कार करके कहा—॥ २ ॥

शृणि बोले—सूतजी ! आप हमारी पूजा स्वीकार करके
हमें वह सारसे भी सारभूत तत्त्व बतलानेकी कृपा करें, जिसके
बान लेनेमात्रसे सर्वशता प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

सूतजीने कहा—शृणियो ! भगवान् विष्णु ही सारसे
भी सारतत्त्व हैं । वे सृष्टि और पालन आदिके कर्ता और
सर्वत्र व्यापक हैं । ‘वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ’—इस
प्रकार उन्हें ज्ञान लेनेपर सर्वशता प्राप्त हो जाती है । ब्रह्मके
दो स्वरूप ज्ञानके योग्य हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म । दो
विद्याएँ भी ज्ञानके योग्य हैं—अपरा विद्या और परा विद्या ।
यह अर्थवेदकी श्रुतिका कथन है । एक समयकी बात है,
मैं, शुकदेवजी तथा पैल आदि शृणि वदस्तिकाश्रमको गये और
वहाँ व्यासजीको नमस्कार करके इसने प्रश्न किया । तब
उन्होंने हमें सारतत्त्वका उपदेश देना आरम्भ किया ॥ ४-५ ॥

व्यासजी बोले—सूत ! तुम तुक आदिके साथ मुझो ।
एक समय मुनियोंके साथ मैंने महर्षि वसिष्ठजीसे सारभूत
परात्पर ब्रह्मके विषयमें पूछा था । उस समय उन्होंने मुझे
जैसा उपदेश दिया था, वही तुम्हें बतला रहा हूँ ॥ ६ ॥

शृणिष्ठुजीने कहा—व्यास ! सर्वान्तर्यामी ब्रह्मके दो
स्वरूप हैं । मैं उन्हें बताता हूँ, मुझो ! पूर्वकालमें शृणि मुनि

तथा देवताओंसहित मुझसे अग्निदेवने इस विषयमें जैरा, जो
कुछ भी कहा था, वहीर्मैं (तुम्हें बतां रहा हूँ) । अग्निपुराण
सर्वोत्कृष्ट है । इसका एक-एक अशर ब्रह्मविद्या है, अतएव
यह ‘परब्रह्मस्वरूप’ है । शृग्वेद आदि सापूर्ण वेद-शास्त्र ‘अपरब्रह्म’
हैं । परब्रह्मस्वरूप अग्निपुराण समूर्ण देवताओंके लिये परम
सुन्दर है । अग्निदेवद्वारा जिसका कथन हुआ है, वह आग्रेय-
पुराण वेदोंके तुल्य सर्वमान्य है । यह पवित्र पुराण अपने
षाठकों और श्रोताजनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला
है । भगवान् विष्णु ही कालाग्रिस्तसे विराजमान हैं । वे ही
ज्यौतिर्मय परात्पर परब्रह्म हैं । ज्ञानयोग तथा कर्मयोगद्वारा
उन्होंका पूजन होता है । एक दिन उन विष्णुस्वरूप अग्निदेव-
से मुनियोंसहित मैंने इस प्रकार प्रश्न किया ॥ ८—११ ॥

वसिष्ठजीने पूछा—अग्निदेव ! संसारमागरसे पार
लगानेके लिये नौकारूप परमेश्वर ब्रह्मके स्वरूपका वर्णन
कीजियं और समूर्ण विद्याओंके सारभूत उस विद्याका उपदेश
दीजिये, जिसे जानकर मनुष्य सर्वश छोड़ जाता है ॥ १२ ॥

अग्निदेव बोले—वसिष्ठ ! मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही
कालाग्रिस्त कहलाता हूँ । मैं तुम्हें समूर्ण विद्याओंकी
सारभूता विद्याका उपदेश देता हूँ, जिसे अग्निपुराण कहते
हैं । वही सब विद्याओंका यार है, वह ब्रह्मस्वरूप है । सर्वमय
एवं सर्वकारणभूत ब्रह्म उससे भिन्न नहीं है । उसमें सर्व,
प्रतिसर्व, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित आदिका तथा मत्य-
कूर्म आदि रूप धारण करनेवाले भगवान्का वर्णन है ।
ब्रह्म ! भगवान् विष्णुकी स्वरूपभूता दो विद्याएँ हैं—एक
परा और दूसरी अपरा । शृक्, यजुः, साम और अर्थव-
नामक वेद, वेदके छहों अङ्ग—शिशा, कल्प, व्याकरण,
निश्च, ज्यौतिष और छन्दःशास्त्र तथा मीमांसा, खर्मशास्त्र,
पुराण, न्याय, वैद्यक (आखुवेद), गान्धर्व वेद (संगीत),

घनुवेद और अर्थशास्त्र—यह सब अपरा विद्या है तथा परा विद्या वह है, जिससे उस अदृश्य, अग्राह्य, गोचराहित, चरणराहित, नित्य, अविनाशी ब्रह्मका बोध हो। इस अग्निपुराणको परा विद्या समझो। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने

मुखसे तथा ब्रह्मजीने देवताओंसे जिस प्रकार वर्णन किया था, उसी प्रकार मैं भी तुमसे मत्स्य आदि अवतार धारण करनेवाले जगत्कारणभूत परमेश्वरका प्रतिपादन करूँगा ॥ १३—१९ ॥

इस प्रकार व्यासद्वारा सूतकं प्रति कहे गये आदि आनेय महापुराणमें पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

मत्स्यावतारकी कथा

वसिष्ठजीने कहा—अग्निदेव ! आप सृष्टि आदिके कारणभूत भगवान् विष्णुके मत्स्य आदि अवतारोंका वर्णन कीजिये। साथ ही ब्रह्मस्वरूप अग्निपुराणको भी सुनाइये, जिसे पूर्वकालमें आपने श्रीविष्णुभगवान्के मुखसे सुना था ॥ १ ॥

अग्निदेव बोले—वसिष्ठ ! मुझो, मैं श्रीहरिके मत्स्यावतारका वर्णन करता हूँ। अवतार-धारणका कार्य दुष्टोंके विनाश और साधु-पुरुषोंकी रक्षाके लिये होता है। वीते हुए कल्यके अन्तमें 'ब्राह्म'नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। मुने ! उस समय 'भू' आदि लोक समुद्रके जलमें हूँव गये थे। प्रलयके पहलेकी बात है। वैवस्तमनु भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये तपस्या कर रहे थे। एक दिन जब वे कृतमाला नदीमें बालसे पितरोंका तर्पण कर रहे थे, उनकी अङ्गालिके जलमें एक बहुत छोटा-सा मत्स्य आ गया। राजाने उसे जलमें फेंक देनेका विचार किया। तब मत्स्यने कहा—'महाराज ! मुझे जलमें न फेंको। यहाँ ग्राह आदि जल जन्म ओंसे मुझे भय है।' यह सुनकर मनुने उसे अपने कलशके जलमें डाल दिया। मत्स्य उसमें पड़ते ही बड़ा हो गया और पुनः मनुसे बोला—'राजन ! मुझे इससे बड़ा स्थान दो।' उसकी यह बात सुनकर राजाने उसे एक बड़े जलपात्र (नाद या कूँड़ा आदि) में डाल दिया। उसमें भी बड़ा होकर मत्स्य राजाने बोला—'मनो ! मुझे कोई विस्तृत स्थान दो।' तब उन्होंने पुनः उसे सरोवरके जलमें डाला; किंतु वहाँ भी बढ़कर वह सरोवरके बराबर हो गया और बोल—'मुझे इससे बड़ा स्थान दो।' तब मनुने उसे फिर समुद्रमें ही ले जाकर डाल दिया। वहाँ वह मत्स्य क्षणभरमें एक लाख योजन बड़ा हो गया। उस अद्भुत मत्स्यको देखकर मनुको बड़ा विस्मय हुआ। वे

बोले—'आप कौन हैं ? निश्चय ही आप भगवान् श्रीविष्णु जान पड़ते हैं। नारायण ! आपको नमस्कार है। जनादन ! आप किसलिये अपनी मायामें मुझे मोहित कर रहे हैं ?' ॥ २—१० ॥

मनुके ऐसा कहनेपर सबके पालनमें सलग्ग रहनेवाले मत्स्यलगधारी भगवान् उनमें बोले—'राजन ! मैं दुष्टोंका नाश और जगत्की रक्षा करनेके लिये अवर्णीण हुआ हूँ। आजसे सातवें दिन समुद्र समूर्ण जगत्को हुया देश। उस समय तुम्हारे पास एक नौका उपस्थित होगी। तुम उगपर सब प्रकारके बीज आदि रम्भकर बैठ जाना। सप्तर्षि भी तुम्हारे साथ रहेंगे। जबतक ब्रह्माकी रात रहेगी, तबतक तुम उसी नावपर विचरते रहेंगे। नाव आनेक बाद मैं भी इसी रूपमें उपस्थित होऊँगा। उस समय तुम मेरे सांगमें महासर्प-मयी रसीसे उस नावको बांध देना।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य अन्तर्धान हो गये और वैवस्तम भनु उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए वर्ही रहने लगे। जब नियत समयपर समुद्र अपनी सीमा लौधकर बढ़ने लगा, तब वे पूर्वोंक नौकापर बैठ गये। उसी समय एक सांग धारण करनेवाले सुवर्णमय मत्स्यभगवान्का प्रादुर्भाव हुआ। उनका विशाल शरीर दस लाख योजन लंबा था। उनके सींगमें नाव बांधकर राजाने उनसे 'मत्स्य'नामक पुराणका अवण किया, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। मनु भगवान् मत्स्यकी नाना प्रकारके स्त्रीओंद्वारा सुनिभी करते थे। प्रलयके अन्तमें ब्रह्मजीसे वेदको हर लेनेवाले 'हययीव' नामक दानवका बध करके भगवान्ने वेद-मन्त्र आदिकी रक्षा की। तत्प्रात् वाराहकल्प आनेपर श्रीहरिने कच्छपरूप धारण किया ॥ ११—१७ ॥

इस प्रकार अग्निदेवद्वारा कहे गये विद्यासार-स्वरूप आदि आनेय महापुराणमें 'मत्स्यावतार-वर्णन'

नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

समुद्र-मन्थन, कूर्म तथा मोहिनी अवतारकी कथा

अनिदेश कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं कूर्मवितारका वर्णन करूँगा । यह सुननेपर सब पापोंका नाश हो जाता है । पूर्वकालकी बात है, देवासुर-संग्राममें दैत्योंने देवताओंको परात्त कर दिया । वे दुर्वासाके शापमें भी लक्ष्मीसे रहित हो गये थे । तब मम्पूर्ण देवता क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके पास जाकर बोले—‘भगवन् ! आप देवताओंकी रक्षा कीजिये ।’ वह सुनकर श्रीहरिने ब्रह्मा आदि देवताओंसे कहा—‘देवगण ! तुमलोग क्षीरसमुद्रको मथने, अमृत प्राप्त करने और लक्ष्मीको पानेके लिये असुरोंसे संघि कर लो । कोई बड़ा काम या भारी प्रयोजन आ पड़नेपर शत्रुओंसे भी संघि कर लेनी चाहिये । मैं तुम लोगोंको अमृतका भागी बनाऊँगा और दैत्योंको उससे वञ्चित रखूँगा । मन्दरान्तल्को मधानी और बासुकि नागको नेती बनाकर आल्यगरहित हो मेरी महायतामें तुमलोग क्षीरसागरका मन्थन करो ।’ भगवान् विष्णुके पेमा कहनेपर देवता दैत्योंके साथ संघि करके क्षीरसमुद्रपर आये । किस तो उन्होंने एक साथ मिलकर गमुद्र मन्थन आरम्भ किया । जिस ओर बासुकि नागकी पूँछ थी, उसी ओर देवता लड़े थे । दानव बासुकि नागके निःश्वाससे क्षीण हो रहे थे और देवताओंको भगवान् अपनी कृपादृष्टिमें परिपूर्ण कर रहे थे । समुद्र-मन्थन आरम्भ होनेपर कोई आधार न मिलनेसे मन्दरान्तल पर्वत समुद्रमें झुक गया ॥ १-७ ॥

तब भगवान् विष्णुने कर्म (कष्टुएः) का रूप धारण करके मन्दरान्तल्को अपनी पीठपर रख लिया । किस तरफ समुद्र मध्या जाने लगा, तो उसके भीतरसे इलाहल विष प्रकट हुआ । उसे भगवान् शंकरने अपने कण्ठमें धारण कर लिया । इससे कण्ठमें काला दाग पड़ जानेके कारण वे ‘नीलकण्ठ’ नाममें प्रभिद्व हुए । तत्पश्चात् गमुद्रसे वारुणी-देवी, पारिजात वृक्ष, कौस्तुभमणि, गौरें तथा दिव्य अप्सराएँ प्रकट हुईं । किस लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ । वे भगवान् विष्णुको प्राप्त हुईं । सम्पूर्ण देवताओंने उनका दर्शन और स्त्रावन किया । इससे वे लक्ष्मीवान् हो गये । तदनन्तर भगवान् विष्णुके अंशाभूत अन्वन्तरि, जो अश्रुवेदके

प्रवर्तक हैं, हाथमें अमृतसे भरा हुआ कलश लिये प्रकट हुए । दैत्योंने उनके हाथमें अमृत छीन लिया और उसमें से आधा देवताओंको देकर वे सब चलते बने । उनमें जम्बुआदि दैत्य प्रधान थे । उन्हें जाने देव भगवान् विष्णुने खीका रूप धारण किया । उस रूपवती खीको देखकर दैत्य मोहित हो गये और जोले—‘सुमुखि ! तुम हमारी भाष्य हो जाओ और यह अमृत लेकर हमें पिलाओ ।’ ‘बहुत अच्छा’ कहकर भगवान्नने उनके हाथमें अमृत ले लिया और उसे देवताओंको पिला दिया । उस समय राहु चन्द्रमाका रूप धारण करके अमृत पीने लगा । तब सूर्य और चन्द्रमाने उसके कपट-वैपको प्रकट कर दिया ॥ ८—१४ ॥

यह देव भगवान् श्रीहरिने चक्रमें उसका मम्तक काट डाला । उसका सिर अलग हो गया और भुजाओंमहित घड़ अलग रह गया । फिर भगवान्को दया आयी और उन्होंने राहुको अमर बना दिया । तब ग्रहस्वरूप राहुने भगवान् श्रीहरिसे कहा—‘इन सूर्य और चन्द्रमाको मेरेद्वारा अनेकों बार ग्रहण लगेगा । उस समय मंसारके लोग जो कुछ दान करें, वह सब अश्रु हो ।’ भगवान् विष्णुने ‘तथास्तु’ कहकर सम्पूर्ण देवताओंके साथ राहुकी बातका अनुमोदन किया । इसके बाद भगवान्नने खीरूप त्याग दिया; किंतु महादेवजीको भगवान्के उस रूपका पुनर्दर्शन करनेकी इच्छा हुई । अतः उन्होंने अनुरोध किया—‘भगवन् ! आप अपने खीरूपका मुझे दर्शन करावें ।’ महादेवजीकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीहरिने उन्हें अपने खीरूपका दर्शन कराया । वे भगवान्की माशमें ऐसे मोहित हो गये कि पावर्तीजीको त्यागकर उस खीके पीछे लग गये । उन्होंने नग्न और उन्मत्त होकर मोहिनीके केग पकड़ लिये । मोहिनी अपने केशोंको छुड़ाकर वहाँसे चल दी । उसे जाती देव भगवान्जी भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे । उस समय पृथ्वीपर जहाँ जहाँ भगवान् शंकरका वीर्य गिरा, वहाँ-वहाँ शिवलिङ्गोंका लोत एवं सुवर्णकी खाने हो गयीं । तत्पश्चात् ‘यह माया है’—ऐसा जानकर भगवान् शंकर अपने व्यक्तप्रमेये लियत द्वापर । तब भगवान् श्रीहरिने प्रकट

होकर शिवजीने कहा—‘हह ! तुमने मेरी माथाको जीत लिया । पृथ्वीपर छुट्टारे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो मेरी इस माथाको जीत सके ।’ भगवान्‌के प्रबलते दैत्योंको अमृत नहीं मिलने पाया; अतः देवताओंने उन्हें

युद्धमें मार गिराया । फिर देवता स्वर्गमें विराजमान हुए और देवताओंग पातालमें रहने लगे । जो मनुष्य देवताओंको इस विजयगाथाका पाठ करता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है ॥ १५-२३ ॥

इस प्रकार विद्याओंके सामूह आदि आन्नेम महापुराणमें ‘कूर्मवतास्वर्णन’ नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम अवतारकी कथा

अस्तित्वे कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं वराहावतारकी पापनाशिनी कथाका वर्णन करता हूँ । पूर्वकालमें ‘हिरण्यका’ नामक दैत्य असुरोंका राजा था । वह देवताओंको जीतकर स्वर्गमें रहने लगा । देवताओंने भगवान् विष्णुके पास आकर उनकी स्तुति की । तब उन्होंने विष्णवारहरूप चारण किया और देवताओंके लिये कष्टकरूप उस दानवको दैत्योंसहित मारकर धर्म एवं देवताओं आदिकी रक्षा की । इसके बाद वे भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये । हिरण्यका के एक भाई था, जो ‘हिरण्यकश्चित्’के नामसे प्रसिद्ध था । उसने देवताओंके वशभाग अपने अधीन कर लिये और उन बदके अधिकार छीनकर वह स्वयं ही उनका उपभोग करने लगा । भगवान् ने नृसिंहरूप चारण करके उसके सहायक असुरोंसहित उस दैत्यका धर्म किया । तत्पश्चात् सम्भूर्ण देवताओंको अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित कर दिया । उस समय देवताओंने उन नृसिंहका स्वाक्षण किया ।

पूर्वकालमें देवता और असुरोंमें युद्ध हुआ । उस युद्धमें बड़ि आदि दैत्योंने देवताओंको परात करके उन्हें स्वर्गसे निकाल दिया । तब वे श्रीहरिकी शरणमें गये । भगवान् ने उन्हें अभ्यन्दान दिया और कथ्यपत्य अदितिकी स्तुतिसे प्रमङ्ग हो, वे अदितिके गर्भसे वामन-कृष्णमें प्रकट हुए । उस समय दैत्यराज बड़ि गङ्गाद्वारमें यज्ञ कर रहे थे । भगवान् उनके यज्ञमें गये और वहाँ यज्ञमानकी स्तुतिका गान करने लगे ॥ १-७ ॥

वामनके सुखसे बेदोंका पाठ सुनकर राजा बड़ि उन्हें वर देनेको उद्यत हो गये और शुक्रचार्यके मना करनेपर भी थोके—‘बहन् ! आपकी जो इच्छा है, मुझसे मौंगो । मैं आपको वह बस्तु अवश्य दूँगा ।’ वामनने बहिर्भूते बहन्—पुढ़े आपने युद्धके क्षिते नीन पूँछ धूमिकी

आवश्यकता है; वही दीजिये ।’ बलिने कहा—‘अवश्य दूँगा ।’ तब संकल्पका जल हाथमें पहुँचे ही भगवान् वामन ‘वामन’ हो गये । उन्होंने विराट् रूप धारण कर लिया और भूलोक, भुवलोक एवं स्वर्गलोकको अपने तीन पगोंसे नाप लिया । श्रीहरिने बलिको सुतललोकमें भेज दिया और त्रिलोकीका राज्य इन्द्रको दे डाला । इन्होंने देवताओंके साथ श्रीहरिका स्वत्वन किया । वे तीनों लोकोंके स्वामी होकर सुखमें रहने लगे ।

बहन् ! अब मैं परशुरामावतारका वर्णन करूँगा, सुनो । देवता और ब्राह्मण आदिका गत्तन करनेवाले श्रीहरिने जब देखा कि भूमण्डलके क्षत्रिय उद्धत स्वभावके हो गये हैं, तो वे उन्हें मारकर पृथ्वीका भार उताने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके लिये जमदग्निके अंशद्वारा रेणुकाके गर्भसे अवतीर्ण हुए । भूगुनन्दन परशुराम शश विद्याके पारंगत विद्वान् थे । उन दिनों कृतवीर्यका पुत्र राजा अर्जुन भगवान् दत्तात्रेयजीकी कृपासे हजार बौहि पाकर समस्त भूमण्डलपर राज्य करता था । एक दिन वह वनमें शिकार स्वेलनेके लिये गया ॥ ८-१४ ॥

वहाँ वह बहुत यक गया । उस समय जमदग्नि मुनिने उसे नेमासहित अपने आश्रमपर निमन्त्रित किया और कामधेनुके प्रभावसे सबको भोजन कराया । राजाने मुनिसे कामधेनुको अपने लिये माँगा; किंतु उन्होंने देनेसे इनकार कर दिया । तब उसने बलपूर्वक उस धेनुको छीन लिया । यह समाचार पाकर परशुरामजीने हैश्यपुरीमें जा उसके साथ युद्ध किया और अपने फसेसे उसका मस्तक काटकर रणधूमियें उसे मार गिराया । फिर वे कामधेनुको साथ लेकर अपने आश्रमपर लैट आये । एक दिन परशुरामजी जब वनमें गये हुए थे, कृतवीर्यके पुत्रोंने आकर कपाते गिराके बैरका बदका लेकर किये जापद्मिनि मूर्तिकी

मार डाला । जब परशुरामजी छौटकर आये तो पिताजो शिकर्देह तर्पण किया और सारी पृथ्वी कस्तप-मुनिसे भारा गया देख उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने इक्षीस बार समस्त भूमध्यले क्षत्रियोंका संहार किया । फिर कुछक्षेत्रमें पाँच कुण्ड बनाकर वहीं उन्होंने अपने दान देकर वे महेन्द्र पर्वतपर रहने लगे । इस प्रकार कूले बराह, दुर्गिह, बामन तथा परशुराम अवतारकी कथा सुनकर मनुष्य स्वर्गवेष्टकमें जाता है ॥ १५—२३ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द भाष्यपुराणमें 'बराह, दुर्गिह, बामन तथा परशुरामावतारकी कथाका वर्णन' नामक शैया अवश्य पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीरामावतार-वर्णनके प्रसङ्गमें रामायण-बालकाण्डकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं ठीक उसी प्रकार रामायणका वर्णन करूँगा, जैसे पूर्वकालमें नारदजीने महर्षि वाल्मीकिजीको सुनाया था । इसका पाठ भोग और गोक्ष—दोनोंको देनेवाला है ॥ १ ॥

देवर्षि नारद कहते हैं—वाल्मीकिजी ! भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्माजीके पुत्र हैं मरीचि । मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य और सूर्यसे वैवर्मत-मनुका जन्म हुआ । उसके बाद वैवर्मत मनुसे इश्वराकुकी उत्पत्ति हुई । इश्वराकुके वंशमें ककुत्स्य नामक राजा हुए । ककुत्स्यके रुदु, रुदुके अज और अजके पुत्र दशरथ हुए । उन राजा दशरथसे रावण आदि राक्षसोंका वध करनेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णु चार रुदोंमें प्रकट हुए । उनकी बड़ी रानी काँसत्याके गर्भसे श्रीरामचन्द्रजीका प्रादुर्भाव हुआ । कैकेयीसे भरत और सुभित्रासे लक्ष्मण एवं शत्रुघ्नका जन्म हुआ । महर्षि ऋष्यशृङ्गने उन तीनों रानियोंको यज्ञसिद्ध चर्चा दिये थे, जिन्हें खानेसे इन चारों कुमारोंका आविर्भाव हुआ । श्रीराम आदि सभी भाई अपने पिताके ही समान पराक्रमी थे । एक समय मुनिवर विश्वामित्रने अपने यज्ञमें विघ्न ढालेवाले निशान्तरोंका नाश करनेके लिये राजा दशरथसे प्रार्थना की (कि आप अपने पुत्र श्रीरामको मेरे साथ मेज दें) । तब राजाने मुनिके साथ श्रीराम और लक्ष्मणको मेज दिया । श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जाकर मुनिसे अख-दाखोंकी शिक्षा पायी और ताङ्का नामबाली निशान्तरीका वध किया । फिर उब बल्लाल श्रीरामे मारीच नामक राक्षस-

इस प्रकार आदि आनन्द भाष्यपुराणमें 'श्रीरामायण-कथाके अन्तर्गत बालकाण्डमें आगे हुए विष्वका वर्णन' सम्बन्धी पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

* वहो मृत्युं प्रभावतः । यह 'प्रभावः'के अर्थमें है । वहीं प्रतिष्ठा प्राप्तय यज्ञशक्तिका वीपक नहीं है । सार्वविष्वकिं तत्सिद्धे विष्वमातृकांशर प्रवत्त्वात् परते वहो 'तत्सिद्धे' नामन् हुआ है, मेवा नामका शहिते ।

छठा अध्याय

अयोध्याकाण्डकी संवित कथा

लालदारी कहते हैं—भरतके ननिहाल चले आनेपर [कल्मणनहित] श्रीरामचन्द्रजी ही पिता-माता आदिके सेवा-सत्कारमें रहने लगे । एक दिन राजा दशरथने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘तुमन्दन ! मेरी बात सुनो । तुम्हारे गुणोंपर अनुरक्त हो प्रजाजनोंने मन-ही मन तुम्हें राज-सिंहसनपर अभिषिक्त कर दिया है—प्रजाकी यह हार्दिक इच्छा है कि तुम युवराज बनो; अतः कल प्रातःकाल मैं तुम्हें युवराजपद प्रदान कर देंगा । आज रातमें तुम सीता-सहित उत्तम ब्रतका पालन करते हुए संयमपूर्वक रहो ।’ राजाके आठ मन्त्रियों तथा वसिष्ठजीने भी उनकी इस बातका अनुमोदन किया । उन आठ मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार हैं—हष्टि, जग्नन्त, विजय, मिद्यार्थ, राज्यनर्धन, अद्योक, भर्मपाल तथा सुमन्त्र॥५॥ इनके अतिरिक्त वसिष्ठजी भी [मन्त्रणा देते थे ।] पिता और मन्त्रियोंकी बातें सुनकर श्रीरघुनाथजीने ‘तथास्तु’ कहकर उनकी आशा द्विरोधार्थ की और माता कीमत्याको यह शुभ समाचार बताकर देवताओंकी पूजा करके वे संयममें स्थित हो गये । उधर महाराज दशरथ वसिष्ठ आदि मन्त्रियोंको यह कहकर कि ‘आपलोग श्रीरामचन्द्रके राज्याभिषेककी सामग्री जुटायें, कैकेयीके भवनमें चले गये । कैकेयीके मन्थरा नामक एक दासी थी, जो बड़ी दुष्टा थी । उसने अयोध्याकी सजावट होती देख, श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी बात आनंदर रानी कैकेयीसे सारा हाल कह सुनाया । एक बार किसी अपराधके कारण श्रीरामचन्द्रजीने मन्थराको उसके दैर पकड़कर घसीटा था । उसी बैरके कारण वह सदा यही चाहती थी कि रामका बनवास हो जाय ॥१-८॥

मन्थरा बोली—कैकेयी ! तुम उठो, रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है । यह तुम्हारे पुत्रके लिये, मेरे लिये और तुम्हारे लिये भी मृत्युके समान भर्यकर इच्छान्त है—इसमें कोई सदैह नहीं है ॥९॥

* बास्तीकीय रामायण, बालकाण्ड ७ । ३ में इन मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार आये हैं—भृष्टि, जग्नन्त, विजय, शुराहू, राज्यनर्धन, अद्योक, भर्मपाल तथा सुमन्त्र ।

मन्थरा कुबड़ी थी । उसकी बात सुनकर रानी कैकेयीको प्रसन्नता हुई । उन्होंने कुब्जाको एक आभूषण उतारकर दिया और कहा—‘मेरे लिये तो जैसे राम है, वैसे ही मेरे पुत्र भरत भी हैं । मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिलायी देता, जिससे भरतको राज्य मिल सके ।’ मन्थराने उस हारको फेंक दिया और कुपित होकर कैकेयीसे कहा ॥ १०-११ ॥

मन्थरा बोली—ओ नादान ! तू भरतको, अपनेको और मुझे भी रामसे बचा । कल राम राजा होंगे । फिर रामके पुत्रोंको राज्य मिलेगा । कैकेयी ! अब राजवंश भरतसे दूर हो जायगा । [मै भगतको राज्य दिलनेका एक उपाय बताती हूँ ।] पहलेकी बात है । देवासुर मग्राममें शम्बुरासुरने देवताओंको मार भगाया था । तेरे स्वामी भी उस युद्धमें गये थे । उस समय तूने अपनी विद्यामें गतियें स्वामीकी रक्षा की थी । इसके लिये महाराजने तुम्हे दो वर देनेकी प्रतिक्षा की थी । इस समय उन्हीं दोनों वरोंको उनसे माँग । एक वरके द्वारा रामका चौदह वर्षोंके लिये बनवास और दूसरेके द्वारा भरतका युवराज-पदपर अभिषेक माँग ले । राजा इस समय वे दोनों वर दे देंगे ॥ १२-१५ ॥

इस प्रकार मन्थराके प्रोत्साहन देनेपर कैकेयी अनर्थमें ही अर्थकी सिद्धि देखने लगी और बोली—‘कुब्जे ! तूने बड़ा अच्छा उपाय बताया है । राजा मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे ।’ ऐसा कहकर वह कोपभवनमें चली गयी और पृथ्वीपर अचेत-सी होकर पढ़ रही । उधर महाराज दशरथ आशाण आदिका पूजन करके जब कैकेयीके भवनमें आये तो उसे रोषमें भरी हुई देखा । तब राजाने पूछा—‘सुन्दरी ! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है ? तुम्हें कोई रोग तो नहीं सता रहा है ? अथवा किसी भयसे व्याकुल तो नहीं हो ? बताओ, क्या चाहती हो ? मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करता हूँ । जिन श्रीरामके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता, उन्हींकी शपथ खाकर कहता हूँ, तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगा । सच-नसच बताओ, क्या चाहती हो ?’ कैकेयी बोली—‘शाक्त ! यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हों, तो आपने सत्यकी इष्टाके लिये पहलेके दिये

हुए दो वरदान देनेकी हुया करे । मैं चाहती हूँ, राम औदृष्ट वशोतक संघमसूर्यक बनमें निवास करे और इन सामग्रियोंके द्वारा आज ही भरतका युवराज-पदपर अभिषेक हो जाय । महाराज ! यदि ये दोनों वरदान आप मुझे नहीं देंगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी ।' यह सुनकर राजा दशरथ बहाते आहत हुएकी भाँति मूर्छित होकर भूमिर गिर पडे । फिर थोकी देरमें चेत होनेपर उन्होंने कैकेयी कहा ॥ १६-२३ ॥

दशरथ बोले—पापपूर्ण विचार रखनेवाली कैकेयी ! तू समस्त संसारका अप्रिय करनेवाली है । अरी ! मैंने या रामने तेरा क्या विगड़ा है, जो तू मुझसे ऐसी बात कहती है ? केवल तुझे प्रिय लगानेवाला यह कार्य करके मैं संसारमें भलीभाँति निनिद्वित हो जाऊँगा । तू मेरी लौ नहीं, काल्पनिक है । मेरा पुत्र भरत ऐसा नहीं है । पारिनी ! मेरे पुत्रके चले जानेपर जब मैं मर जाऊँगा तो तू विधवा होकर राज्य करना ॥ २४-२५३ ॥

राजा दशरथ सत्यके बन्धनमें बैधे थे । उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको बुलाकर कहा—‘बेटा ! कैकेयीने मुझे ठग लिया । तुम मुझे कैद करके राज्यको अपने अधिकारमें कर लो । अन्यथा तुम्हें बनमें निवास करना होगा और कैकेयीका पुत्र भरत राजा बनेगा ।’ श्रीरामचन्द्रजीने पिता और कैकेयीको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और कौसल्याके चरणोंमें मस्तक छुकाकर उन्हे सान्त्वना दी । फिर लक्षण और पली सीनाको साथ ले, ब्राह्मणों, दीनों और अनायोंको दान देकर, सुमन्त्रसहित रथपर बैठकर वे नगरसे बाहर निकले । उस समय माता-पिता आदि शोकसे आतुर हो रहे थे । उस रातमें श्रीरामचन्द्रजीने तमसा नदीके तटपर निवास किया । उनके साथ बहुतसे पुरावासी भी गये थे । उन सबको सांते छोड़कर वे आगे बढ़ गये । ग्रातःकाल होनेपर जब श्रीरामचन्द्रजी नहाँ दिखायी दिये तो नगरनिवासी निराश होकर पुँजः अयोध्या लैट आये । श्रीरामचन्द्रजीके चले जानेए राजा दशरथ बहुत हुखी हुए । वे रोते-रोते कैकेयीका महङ्ग छोड़कर कौसल्याके भवनमें चले आये । उस समय नगरके समस्त छी-पुरुष और रनिवासकी लियाँ फूट-फूटकर रो रही थीं । श्रीरामचन्द्रजीने चीरबल धारण कर रखता था । वे रथपर बैठे-बैठे शृङ्खलेपुर जा पहुँचे । वहाँ निषादराज गुहने उनका पूजन, स्वागत-कर्त्तव्य किया । श्रीखुनायजीने इहुदी-वृक्षकी अहके निकट विश्राम किया ।

लक्षण और गुह दोनों रातभर जागकर पहरा लेते रहे ॥ २६-३३ ॥

ग्रातःकाल श्रीरामने रथलहित सुमन्त्रको विदा कर दिया तथा स्वयं लक्षण और सीताके साथ नाथवे गङ्गा-पार हो वे प्रयागमें गये । वहाँ उन्होंने महर्षि भरदाजको प्रणाम किया और उनकी आशा ले वहाँते विश्रूट पर्वतको प्रस्थान किया । विश्रूट पहुँचकर उन्होंने बास्तुपूजा करनेके अनन्तर (पण्डुटी बनाकर) बन्दाकिनीके तटपर निवास किया । खुनायजीने सीताको विश्रूट पर्वतका रमणीय दृश्य दिखलाया । इसी समय एक कौएने सीताजीकी कोमल श्रीअङ्गमें नखोंसे प्राहर किया । यह देल श्रीरामने उसके ऊपर सीकके अखका प्रयोग किया । जब वह कौआ देवताओंका आश्रय छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया, तब उन्होंने उसकी केवल एक आँख नष्ट करके उसे जीवित छोड़ दिया । श्रीरामचन्द्रजी-के बनगमनके पश्चात् छठे दिनकी रातमें राजा दशरथने कौसल्यासे पहलेकी एक घटना सुनायी, जिसमें उसके द्वारा कुमारवस्थामें सरयूके तटपर अनजानमें वशदत्त-पुत्र श्रवणकुमारके मारे जानेका बृत्तान्त था । “श्रवणकुमार पानी लेनेके लिये आया था । उस समय उसके बड़ेके भरनेसे जो शब्द हो रहा था, उसकी आहट पाकर मैंने उसे कोई जंगली जनु समझा और शब्दवेदी याणसे उसका बध कर डाला । यह समाचार पाकर उसके पिता और माताको बड़ा शोक हुआ । वे बारंबार विलाप करने लगे । उस समय श्रवणकुमारके पिताने मुझे शाप देते हुए कहा—‘राजन् ! हम दोनों पति-पली पुत्रके विना शोकातुर होकर प्राण-त्याग कर रहे हैं; तुम भी हमारी ही तरह पुत्रविवियोगके शोकसे मरोगो; [तुम्हारे पुत्र मरेंगे तो नहीं, किंतु] उस समय तुम्हारे पास कोई पुत्र मौजूद न होगा ।’ कौसल्ये ! आज उस शापका मुझे सरण हो रहा है । जान पड़ता है, अब इसी शोकसे मेरी मृत्यु होगी ।” इतनी कथा कहनेके पश्चात् राजने ‘हा राम !’ कहकर स्वर्गलोकको प्रयाण किया । कौसल्याने समझा, महाराज शोकसे आतुर हैं; इस समय नीद आ गयी होगी । ऐसा विचार करके वे चों गयीं । ग्रातःकाल झागेनेवाले सूत, मागच और बन्दीजन सोते हुए महाराजको जगाने लगे; किंतु वे न जागे ॥ ३४-४२ ॥

तब उन्हें मरा हुआ जान रानी कौसल्या हाय ! मैं

मारी गयीं कहकर वृष्टीपर गिर पड़ीं। फिर तो समस्त नर-नारी फूट-फूटकर रोने लगे। तत्पश्चात् महर्षि वसिष्ठने राजा के शवको तैलभरी नौकामें रखवाकर भरतको उनके ननिहालते तस्काल हुलवाया। भरत और शत्रुघ्न अपने मामाके राजमहलते निकलकर सुमन्त्र आदिके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरीमें आये। यहाँका समाचार जानकर भरतको बहा हुःख हुआ। कैमीको शोक करती देख उसकी कठोर शब्दोंमें निन्दा करते हुए बोले—‘अरी! तूने मेरे माथे कलश्का टीका लगा दिया—मेरे सिरपर अपयशका भारी बोझ लाद दिया।’ फिर उन्होंने कौसल्याकी प्रशंसा करके तैलशूर्ण नौकामें रखे हुए पिताके शवका सरयूतटपर अन्त्येष्टि-संस्कार किया। तदनन्तर बसिष्ठ आदि गुबच्छनोंने कहा—‘भरत! अब राज्य ग्रहण करो।’ भरत बोले—‘मैं तो श्रीरामचन्द्रजीको ही राजा मानता हूँ। अब उन्हें यहाँ लानेके लिये बनमें जाता हूँ।’ ऐसा कहकर वे बहाँसे

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें ‘रामावण-कथाके अन्तर्गत अयोध्याकाण्डकी कथाका वर्णन’ नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

अरण्यकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—मुनं! श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि वसिष्ठ तथा माताओंको प्रणाम करके उन सबको भरतके साथ विदा कर दिया। तत्पश्चात् महर्षि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसूयाको, शरभङ्गमुनिको, सुतीक्ष्णको तथा अगस्त्यजोके भ्राता अग्निजिह्वा मुनिको प्रणाम करते हुए श्रीरामचन्द्रजीने अगस्त्यमुनिके आश्रमपर जा उनके चरणोंमें समस्त शुक्राया और मुनिकी कृपापते दिव्य घनुष एवं दिव्य खड्ड प्राप्त करके वे दण्डकारण्यमें आये। यहाँ जनस्थानके भीतर पञ्चवटी नामक स्थानमें गोदावरीके टटपर रहने लगे। एक दिन शूर्पणखा नामवाली भयंकर राक्षसी राम, लक्ष्मण और सीताको खा जानेके लिये पञ्चवटीमें आयी; किंतु श्रीरामचन्द्रजीका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर वह कामके अचीन हो गयी और बोली ॥ १—४ ॥

शूर्पणखाने कहा—तुम कौन हो! कहाँसे आये हो? मेरी प्रार्थनासे अब तुम मेरे पति हो जाओ। यदि मेरे साथ दुम्हाश सम्बन्ध होनेमें [ये दोनों सीता और लक्ष्मण बाखक हैं तो] मैं इन दोनोंको अभी खाये छेती हूँ ॥ ५ ॥

दण्ड-बलसहित चल दिये और शत्रुघ्नेपुर होते हुए प्रथम पहुँचे। वहाँ महर्षि भरद्वाजने उन सबको भोजन कराया। फिर भरद्वाजको नमस्कार करके वे प्रथमसे चले और चित्रकूटमें श्रीराम एवं लक्ष्मणके समीप आ पहुँचे। वहाँ भरतने श्रीरामसे कहा—‘रघुनाथजी! हमारे पिता महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये। अब आप अयोध्यामें चलकर राज्य ग्रहण करें। मैं आपकी आशाका पालन करते हुए बनमें जाऊँगा।’ यह सुनकर श्रीरामने पिताका तर्पण किया और भरतसे कहा—‘तुम मेरी चरणपादुकालेकर अयोध्या लौट जाओ। मैं राज्य करनेके लिये नहीं चलूँगा। पिताके सत्यकी वक्षाके लिये चीर एवं जटा धारण करके बनमें ही रहूँगा।’ श्रीरामके ऐसा कहनेपर सदल-बल भरत लौट गये और अयोध्या छोड़कर नन्दिग्राममें रहने लगे। वहाँ भगवान्की चरणपादुकाओंकी पूजा करते हुए वे राज्यका भलीभौति पालन करने लगे ॥ ४३—५१ ॥

ऐसा कहकर वह उन्हें खा जानेको तैयार हो गयी। तब श्रीरामचन्द्रजीके कहनेसे लक्ष्मणने शूर्पणखाकी नाक और दोनों कान भी काट लिये। कटे हुए अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाती हुई शूर्पणखा अपने भाई खरके पास गयी और इस प्रकार बोली—‘खर! मेरी नाक कट गयी। इस अग्रमानके बाद मैं जीवित नहीं रह सकती। अब तो मेरा जीवन तभी रह सकता है, जब कि तुम मुझे रामका, उनकी पत्नी सीताका तथा उनके छोटे भाई लक्ष्मणका गरम-गरम रक्त पिलाओ।’ खरने उसको ‘बहुत अच्छा’ कहकर शान्त किया और दूषण तथा त्रिशिराके साथ चौदंह हजार राक्षसोंकी सेना ले श्रीरामचन्द्रजीपर चढ़ाई की। श्रीरामने भी उन सबका सामना किया और अपने बाणोंसे राक्षसोंको बीधना आरम्भ किया। शत्रुओंकी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसहित समस्त चतुरङ्गिणी सेनाको उन्होंने बमलोक पहुँचा दिया तथा अपने साथ युद्ध करनेवाले भयंकर राक्षस खर, दूषण एवं त्रिशिराको भी मौतके बाट उतार दिया। अब शूर्पणखा लङ्घामें गयी और रावणके सामने जा पृथ्वीपर गिर पड़ी।

उसने कोषमें भरकर रावणसे कहा—‘अरे ! तू राजा और राजक कहलानेयोग्य नहीं है । खर आदि समस्त राक्षसोंका बंहार करनेवाले रामकी पक्की सीताको हर के । मैं राम और रावणका रक्त पीकर ही जीवित रहूँगी; अन्यथा नहीं’ ॥ ६—१२ ॥

शृंगरामाकी बात सुनकर रावणने कहा—‘अच्छा, ऐसा ही होगा ।’ फिर उसने मारीचसे कहा—‘तुम स्वर्णमय लिचिन्द्र मृगका रूप धारण करके सीताके सामने जाओ और राम तथा लक्ष्मणको अपने पीछे आश्रमसे दूर हटा ले जाओ । मैं सीताको हरण करूँगा । यदि मेरी बात न मानोगे, तो दुम्हारी मृत्यु निश्चित है ।’ मारीचने रावणसे कहा—‘रावण ! उन्तुर्वर राम राक्षात् मृत्यु है ।’ फिर उसने मन ही मन मोचा—‘यदि नहीं जाऊँगा, तो रावणके हाथसे मरना होगा और जाऊँगा तो श्रीरामके हाथसे । इस प्रकार यदि मरना अनिवार्य है तो इसके लिये श्रीराम ही ब्रेष्ट हैं रावण नहीं; [क्योंकि श्रीरामके हाथसे मृत्यु होनेपर मेरी मुक्ति हो जायगी ।] ऐसा विचारकर वह मृगरूप धारण करके सीताके सामने बांधार आने जाने लगा । तब सीताजीकी प्रेरणासे श्रीरामने [दूरतक उत्तरा पीछा करके] उसे अपने बाणसे मार डाला । मरते समय उस मृगने ‘हा सीते ! हा लक्ष्मण !’ कहकर पुकार ल्यायी । उस समय सीताके कहनेसे लक्ष्मण अपनी हङ्गाके विशद श्रीरामचन्द्रजीके पास गये । इसी बीचमें

इस प्रकार आदि आगेथ महापुराणमें ‘सामायण-कथाके अन्तर्गत अरण्यकाण्डकी कथा’
‘वर्णन’ विषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय किञ्जिन्धाकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजी पर्या-परोवरपर जाकर सीताके लिये शोक करने लगे । वहाँ वे शब्दोंसे शब्दोंसे शब्दोंके पास ले गये और सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता करायी । श्रीरामचन्द्रजीने सबके देखते देखते ताङ्के सात दृश्योंको एक ही बाणते बींध डाला और दुन्तुमि नामक दानवके विशाल शरीरको पैरकी ठोकरसे दस योजन दूर केंक दिया । इसके बाद सुग्रीवके शत्रु वासीको, जो भाई होते हुए भी उनके साथ वैर रखता था, मार डाला और किञ्जिन्धा-

रावणने भी सौका पाकर सीताको हर लिया । मार्गमें जाते समय उसने गृध्राज जटायुका बध किया । जटायुने भी उसके रथको नष्ट कर डाला था । इस न रहनेपर रावणने सीताको कंधेपर बिठा लिया और उन्हें लक्ष्मणके जाकर अशोकबाटिकामें रखदा । वहाँ सीतासे बोला—‘तुम मेरी पटरानी बन जाओ ।’ फिर राक्षसियोंकी ओर देखकर कहा—‘निशाचरियो ! इसकी रखबाली करो’ ॥ १३—१९ ॥

उधर श्रीरामचन्द्रजी जब मारीचको मारकर लैटे, तो लक्ष्मणको आते देख लोले—‘सुमित्रानन्दन ! वह मृग तो मायामय था—बास्तवमें वह एक राक्षस था; किंतु तुम जो इस समय वहाँ आ गये, इससे जान पड़ता है; निश्चय ही कोई सीताको हर के गया ।’ श्रीरामचन्द्रजी आश्रमपर गये; किंतु वहाँ सीता नहीं दिखायी दी । उस समय वे आरं होकर शोक और बिलाप करने लगे—‘हा प्रिये जानकी ! तू मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी ?’ लक्ष्मणने श्रीरामको सान्त्वना दी । तब वे बनमें घृमघृम सीताकी खोज करने लगे । इसी समय इनकी जटायुसे भेंट हुई । जटायुने वह कहकर कि ‘सीताको रावण हर के गया है’ प्राण ल्याग दिया । तब श्रीरघुनाथजीने अपने हाथसे जटायुका दाह-संस्कार किया । इसके बाद इन्होंने कथनका बध किया । कबन्धने शापमुक्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘आप सुग्रीवसे मिलिये’ ॥ २०—२४ ॥

पुरी, बानरोंका साम्राज्य, रुमा एवं तारा—इन सबको शृंखलामूक पर्वतपर बानरराज सुग्रीवके अधीन कर दिया । तदनन्तर किञ्जिन्धापुरीके स्वामी सुग्रीवने कहा—‘श्रीराम ! आपको सीताजीकी प्राप्ति जिस प्रकार भी हो सके, ऐसा उपाय मैं कर रहा हूँ ।’ यह सुननेके बाद श्रीराम-चन्द्रजीने माल्यवान् पर्वतके शिखरपर बर्षीके चार महीने व्यतीत किये और सुग्रीव किञ्जिन्धामें रहने लगे । चौमासेके बाद भी जब सुग्रीव दिखायी नहीं दिये, तब श्रीरामचन्द्रजीकी आशासे लक्ष्मणने किञ्जिन्धामें जाकर कहा—‘सुग्रीव !

द्वय श्रीरामचन्द्रजीके पास चलो । अपनी प्रतिक्षापर अटल रहो, नहीं तो बाली भरकर जिस मार्गसे गया है, वह मार्ग अभी बंद नहीं हुआ है । अतएव बालीके पथका अनुसरण न करो । सुग्रीवने कहा—‘भूमित्रानन्दन ! विश्वमोगमें आसक्त हो जानेके कारण मुझे बीते हुए समयका भान न रहा । [अतः मेरे अपराधको क्षमा कीजिये]’ ॥ १-७ ॥

ऐसा कहकर बानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके पास गये और उन्हें नमस्कार करके बोले—‘भगवन् । मैंने सब बानरोंको खुला लिया है । अब आपकी इच्छाके अनुसार सीताजीकी खोज करनेके लिये उन्हें मैज़ंगा । वे पूर्वादि दिशाओंमें जाकर एक महीनेतक सीताजीकी खोज करें । जो एक महीनेके बाद लौटेगा, उसे मैं मार डालूँगा ।’ यह सुनकर बहुत से बानर पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओंके मार्गपर चल पड़े तथा वहों जनककुमारी सीताको न पाकर नियत समयके भीतर श्रीराम और सुग्रीवके पास लौट आये । हनुमानजी श्रीरामचन्द्रजीकी दी हुई अङ्गूठी लेकर अन्य बानरोंके साथ दक्षिण दिशामें जानकीजीकी खोज कर रहे थे । वे लोग सुप्रभाकी गुफाके निकट विन्ध्यपर्वतपर ही

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें श्रामाण-कथाके अन्तर्गत किञ्चिन्धकाण्डकी कथाका वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

सुन्दरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—सम्पातिकी बात सुनकर हनुमान् और अङ्गूढ आदि बानरोंने भमुद्रकी ओर देखा । किर वे कहने लगे—‘कौन भमुद्रको लोधकर समस्त बानरोंको जीवन-दान देगा ?’ बानरोंकी जीवन-रक्षा और श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी प्रकृष्ट सिद्धिके लिये पवनकुमार हनुमानजी सौ योजन विस्तृत समुद्रको लॉप गये । लॉपते समय अवलम्बन देनेके लिये समुद्रसे भैनाक पर्वत उठा । हनुमानजीने दृष्टिमात्रसे उसका सकार किया । किर [छाया-ग्राहिणी] सिद्धिकाने सिर उठाया । [वह उन्हें अपना ग्रास बनाना चाहती थी, इसलिये] हनुमानजीने उसे मार गिराया । समुद्रके पार जाकर उन्होंने लङ्घापुरी देखी । राक्षसोंके घरोंमें खोज की; रावणके अन्तःपुरमें तथा कुम्भ, कुम्भकर्ण, विभीषण, हन्द्रजित् तथा अन्य राक्षसोंके घृहोंमें जा-जाकर

एक माससे अविक कालतक ढूँढ़ते लिए; किंतु उन्हें सीताजीका दर्शन नहीं हुआ । अन्तमें निराश होकर आपसमें कहने लगे—‘हमलगोंको व्यर्थ ही प्राण देने पड़ेगे । अन्य है वह जटायु, जिसने सीताके लिये रावणके द्वारा मारा जाकर युद्धमें प्राण त्याग दिया था’ ॥ ८-१३ ॥

उनकी ये बातें सम्पाति नामक ग्रन्थके कानोंमें पढ़ी । वह बानरोंके (प्राणत्यागकी चर्चासे उनके) खानेकी ताफमें लगा था । किंतु जटायुकी चर्चा सुनकर एक गया और बोल—‘बानरो ! जटायु मेरा भाई था । वह मेरे ही साथ सर्वमङ्गलकी ओर उड़ा चला जा रहा था । मैंने अपनी पाँखोंकी ओटमें रखकर सूर्यकी प्रखर किरणोंके तापसे उसे बचाया । अतः वह तो सकुचाल बच गया; किंतु मेरी पोतें जल गयीं, इसलिये मैं यहीं गिर पड़ा । आज श्रीरामचन्द्रजीकी बार्ता सुननेसे फिर मेरे पंख निकल आये । अब मैं जानकीको देखता हूँ; वे लङ्घामें अशोक-वाटिकाके भीतर हैं । लङ्घासमुद्रके द्वीपमें त्रिकूट पर्वतपर लङ्घा बसी हुई है । यहाँसे वहाँतक का उमुद सौ योजन विस्तृत है । यह जानकर सब बानर श्रीराम और सुग्रीवके पास जायें और उन्हें सब समाचार बता दें ॥ १४-१७ ॥

पली अनकुमारी सीता तुम्ही हो । रावण तुम्हें बल्गुर्वक हर के आया है । श्रीरामचन्द्रजी इस समय बानरराज सुग्रीवके मित्र हो गये हैं । उन्होंने तुम्हारी स्वोज करनेके लिये ही मुझे मेजा है । पहचानके लिये गृह संदेशके साथ श्रीरामचन्द्रजीने अँगूठी दी है । उनकी दी हुई यह अँगूठी ले लो॥ १-९ ॥

सीताजीने अँगूठी ले ली । उन्होंने वृक्षपर बैठे हुए हनुमानजीको देखा । फिर हनुमानजी वृक्षसे उतरकर उनके सामने आ बैठे, तब सीताने उनसे कहा—‘यदि श्रीरघुनाथजी जीवित हैं तो वे मुझे यहांसे ले क्यों नहीं जाते?’ इस प्रकार शङ्ख करती हुई सीताजीसे हनुमानजीने इस प्रकार कहा—‘देखि सीते! तुम यहां हो, यह बात श्रीरामचन्द्रजीने नहीं जानते । मुझसे यह समाचार जान लेनेके पश्चात् सेनासहित राक्षस रावणको मारकर वे तुम्हें अवश्य ले जायेंगे । तुम चिन्ता न करो । मुझे कोई अपनी पहचान दो।’ तब सीताजीने हनुमानजीको अपनी चूड़ामणि उतारकर दे दी और कहा—‘भैया! अब ऐसा उपाय करो, जिससे श्रीरघुनाथजी शीघ्र आकर मुझे यहांसे ले चलें । उन्हें कौएकी आँख नष्ट कर देनेवाली घटनाका स्मरण दिलाना; [आज यहां रहो] कल सबेरे चले जाना; तुम मेरा शोक दूर करनेवाले हो । तुम्हारे आनेसे मेरा दुःख बहुत कम हो गया है।’ चूड़ामणि और काकवाली कथाको पहचानके रूपमें लेकर हनुमानजीने कहा—‘कल्याणि! तुम्हारे पतिदेव अब तुम्हें शीघ्र ही ले जायेंगे । अथवा यदि तुम्हें चलनेकी जलदी हो, तो मेरी पीठपर बैठ जाओ । मैं आज ही तुम्हें श्रीराम और सुग्रीवके दर्शन कराऊँगा।’ सीता बोली—‘नहीं, श्रीरघुनाथजी ही आकर मुझे ले जायें।’ ॥१०-१५॥

तदनन्तर हनुमानजीने रावणसे मिलनेकी युक्ति सोच निकाली । उन्होंने रक्षकोंको मारकर उस वाटिकाको उजाड़ डाला । फिर दाँत और नख आदि आयुर्ध्वंसे वहां आये हुए रावणके समस्त सेवकोंको मारकर सात मन्त्र-कुमारों तथा रावणपुत्र अक्षयकुमारको भी यमलेक पहुँचा दिया । तत्पश्चात् इन्द्रजितने आकर उन्हें नागपाशसे बाँध लिया और उन बानरबीरको रावणके पास के जाकर उससे मिलाया । उस समय रावणने पूछा—‘तू कौन है?’ तब हनुमानजीने रावणको उत्तर दिया—‘मैं श्रीरामचन्द्रजीका दूत हूँ । तुम श्रीसीताजीको श्रीरघुनाथजीकी सेवामें लौटा हो; अन्यथा लङ्घानियासी समस्त राक्षसोंके साथ हुम्हें

श्रीरामके बाणोंसे बायल होकर निश्चय ही मरना पड़ेगा।’ यह सुनकर रावण हनुमानजीको मारनेके लिये उद्यत हो गया; किंतु विभीषणने उसे रोक दिया । तब रावणने उनकी पूँछमें आग ल्या दी । पूँछ जल उठी । यह देख पवनपुत्र हनुमानजीने राक्षसोंकी पुरी लङ्घाको जला डाला और सीताजीका पुनः दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया । फिर समुद्रके पार आकर अङ्गद आदिसे कहा—‘मैंने सीताजीका दर्शन कर लिया है।’ तत्पश्चात् अङ्गद आदिके साथ सुग्रीवके मधुबन्धमें आकर दधिमुख आदि रक्षकोंको परात् करके, मधुपान करनेके अनन्तर वे सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और बोले—‘सीताजीका दर्शन हो गया।’ श्रीरामचन्द्रजीने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमानजीसे पूछा—॥ १६-२४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—कपिवर! तुम्हें सीताका दर्शन कैसे हुआ? उसने मेरे लिये क्या संदेश दिया है? मैं विरहकी आगमें जल रहा हूँ । तुम सीताकी अमृतमयी कथा सुनाकर मेरा संताप शान्त करो ॥ २५ ॥

नारदजी कहते हैं—यह सुनकर हनुमानजीने रघुनाथजीसे कहा—‘भगवन्! मैं समुद्र लौंकर लङ्घामें गया था । वहां सीताजीका दर्शन करके, लङ्घापुरीको जलाकर यहां आ रहा हूँ । यह सीताजीकी दी हुई चूड़ामणि लीजिये । आप शोक न करें; रावणका वध करनेके पश्चात् निश्चय ही आपको सीताजीकी प्राप्ति होगी।’ श्रीरामचन्द्रजी उस मणिको हाथमें ले, विरहसे व्याकुल होकर रोने लगे और बोले—‘इस मणिको देखकर ऐसा जान पढ़ता है मानो मैंने सीताको ही देख लिया । अब मुझे सीताके पास ले चलो; मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता।’ उस समय सुग्रीव आदिने श्रीरामचन्द्रजीको समझा-बुझाकर शान्त किया । तदनन्तर श्रीरघुनाथजी समुद्रके तटपर गये । वहां उनसे विभीषण आकर गिले । विभीषणके भाई दुराल्मा रावणने उनका तिरस्कार किया था । विभीषणने इतना ही कहा था कि ‘भैया! आप सीताको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें समर्पित कर दीजिये।’ इसी अपराधके कारण उसने इन्हें दुकरा दिया था । अब वे असहाय थे । श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अपना मित्र कराया और लङ्घाके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया । इसके बाद श्रीरामने समुद्रसे लङ्घा जानेके लिये राक्षा माँगा । अब उसने मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने बाणोंसे उसे बीच डाला ।

अब समुद्र अवसीत होकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आकर बोल—‘भगवन् ! नलके द्वारा मेरे ऊपर पुल बँधाकर आप लक्ष्मणमें जाइये । पूर्वकालमें आपहीने मुझे गहरा बनाया था ।’ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने नलके

द्वारा दृश्य और शिलालिप्तोंसे एक पुल बँधवाया और उसीसे वे बानरोंसहित समुद्रके पार गये । वहाँ त्रिवेण पर्वतपर पकड़ डालकर वहाँसे उन्होंने लक्ष्मणका निरीक्षण किया ॥ २६—३३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें धारायण-कथाके अन्तर्गत सुन्दरकाण्डकी कथाका वर्णन नामक नर्दी अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

युद्धकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे अङ्गद रावणके पास गये और बोले—‘रावण ! तुम जनककुमारी सीताको ले जाकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीको सौंप दो । अन्यथा मारे जाओगे ।’ यह सुनकर रावण उन्हें मारनेको तैयार हो गया । अङ्गद राक्षसोंको मार-पीटकर लौट आये और श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—‘भगवन् । रावण केवल युद्ध करना चाहता है ।’ अङ्गदकी बात सुनकर श्रीरामने बानरोंकी सेना साथ ले युद्धके लिये लक्ष्मणमें प्रवेश किया । इनुमान्, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, नल, नील, तार, अङ्गद, धूम, सुषेण, केसरी, गज, पनस, विनत, रम्भ, शरम, महावली कम्पन, गवाक्ष, दधिमुख, गवय और गन्धमादन—ये सब तो वहाँ आये हैं, अन्य भी बहुत से बानर आ पहुँचे । इन असंख्य बानरोंसहित [कपिराज] सुधीव भी युद्धके लिये उपस्थित थे । फिर तो गाक्षगो और बानरोंमें लक्ष्मण युद्ध छिड़ गया । राक्षस बानरोंको बाण, शक्ति और गदा आदिके द्वारा मारने लगे और बानर नस, दौत एवं शिला आदिके द्वारा राक्षसोंका संहार करने लगे । राक्षसोंकी हाथी, बोडे, रथ और पैदलोंसे युक्त चतुरक्षिणी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी । इनुमान्ते पर्वतशिखरसे अपने बैरी घूमाक्ष कब्ज कर डाला । नीलने भी युद्धके लिये सामने आये हुए अकम्यन और प्रहस्तको मौतके घाट उतार दिया ॥ १—८ ॥

श्रीराम और लक्ष्मण यद्यपि इन्द्रजितके नागास्त्रसे बँध गये थे, तथापि गदाहकी दृष्टि पढ़ते ही उससे मुक्त हो गये । तदनन्तर उन दोनों भाइयोंने बाणोंसे राक्षसी सेनाका संहार आदम्य किया । श्रीरामने रावणको युद्धमें आग्ने बाणोंकी मारके लक्ष्मण कर डाला । इससे दृष्टित होकर रावणने

कुम्भकर्णको सोतिसे जगाया । जागनेपर कुम्भकर्णने हजार घडे मदिरा पीकर किसने ही मैंस आदि पशुओंका भक्षण किया । फिर रावणसे कुम्भकर्ण बोल—‘सीताका हरण करके तुमने पाप किया है । तुम मेरे बड़े भाई हो । इसालिये तुम्हारे कहनेसे युद्ध करने जाता हूँ । मैं बानरोंसहित रामको मार डालूँगा’ ॥ ९—१२ ॥

ऐसा कहकर कुम्भकर्णने समस्त बानरोंको कुन्तलना आरम्भ किया । एक बार उसने सुधीवको पकड़ लिया, तब सुर्यावने उसकी नाक और कान काट लिये । नाक और कानसे रहित होकर वह बानरोंका भक्षण करने लगा । यह देख श्रीरामचन्द्रजीने अपने बाणोंसे कुम्भकर्णकी दोनों भुजाएँ काट डालीं । इसके बाद उसके दोनों पैर तथा मस्तक काटकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया । तदनन्तर कुम्भ, निकुम्भ, राक्षस मकराक्ष, महोदर, महापाश्व, मत्त, राक्षसश्रेष्ठ उन्मत्त, प्रघस, भासकर्ण, विस्पाक्ष, देवान्तक, नरान्तक, चित्तिरा और अतिकाय युद्धमें कूद पड़े । तब इनको तथा और भी बहुत से युद्धपरायण राक्षसोंको श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण एवं बानरोंने पृथ्वीपर सुला दिया । तत्पश्चात् इन्द्रजित् (मेघनाद्) ने मायासे युद्ध करते हुए बरदानमें प्राप्त हुए नागपाशद्वारा श्रीराम और लक्ष्मणको बाँध लिया । उस समय इनुमान्जीके द्वारा लाये हुए पर्वतपर उगी हुई ‘विश्वल्या’ नामकी ओवधिसे श्रीराम और लक्ष्मणके बाब अच्छे हुए । उनके शरीरसे बाण निकाल दिये गये । इनुमान्जी पर्वतको जहाँसे लाये थे, वहीं उसे पुनः रख आये । इधर मेघनाद निकुम्भलदेवीके मन्दिरमें होम आदि करने लगा । उस समय लक्ष्मणने अपने बाणोंसे इन्द्रको भी परास्त कर देने-काले उस श्रीरको युद्धमें मार गिराया । पुत्रकी मृत्युका

लगाचार पाकर रावण शोकसे संतुष्ट हो उठा और सीताको मार ढाढ़नेके लिये उच्छत हो उठा; किंतु अविन्द्यके मना करनेसे वह मान गया और रथपर बैठकर सेनासहित युद्धभूमिमें गया। तब इन्द्रके आदेशसे मातलिने आकर श्रीरघुनाथजीको भी देवराज इन्द्रके रथपर बिठाया ॥१३—२२॥

श्रीराम और रावणका युद्ध श्रीराम और रावणके युद्धके ही समान था—उसकी कहीं भी वृूपरी कोई उपमा नहीं थी। रावण बानरोंपर प्रहार करता था और हनुमान् आदि बानर रावणको चोट पहुँचाते थे। जैसे मेघ पानी वरसाता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीने रावणके ऊपर अज-शाखोंकी बर्षा आरम्भ कर दी। उन्होंने रावणके रथ, घज, अश्व, सारथि, घनुष, बाहु और मस्तक काट डाले। काटे हुए मस्तकोंके स्थानपर दूसरे नये मस्तक उत्पन्न हो जाते थे। यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीने ब्रह्मालंके द्वारा रावणका वक्षःस्थल विदीर्ण करके उसे रणभूमिमें गिरा दिया। उस समय [मरनेसे बचे हुए सब] रात्रिसौके साथ रावणकी अनाथा किंचियाँ विलाप करने लगीं। तब श्रीरामचन्द्रजीकी आशासे विभीषणने उन सबको सान्त्वना दे, रावणके शवका दाह-संस्कार किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीके द्वारा सीताजीको बुलवाया। यथापि वे स्वरूपसे ही नित्य शुद्ध थीं, तो भी उन्होंने अग्निमें प्रवेश करके अपनी विशुद्धताका परिचय दिया। तपश्चात् रघुनाथजीने उन्हें स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्रादि देवताओंने उनका स्तबन किया। फिर ब्रह्माजी तथा स्वर्णवासी महाराज दशरथने आकर त्युति करते हुए

इस प्रकार आदि आगेय महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत युद्धकाण्डकी कथाका वर्णन'नमक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

उत्तरकाण्डकी संक्षिप्त कथा

नारदजी कहते हैं—जब रघुनाथजी अयोध्याके राजसिंहासनपर आसीन हो गये, तब अगस्त्य आदि महर्षि उनका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ उनका भलीभौति स्वागत-स्तकार हुआ। तदनन्तर उन श्रुतियोंने कहा—
अगवन्। आप धन्य हैं, जो लङ्घामें विजयी हुए और इन्द्रजित-जैसे राक्षसको मार गिराया। [अब इम उनकी उत्तराञ्जिकथा बतलाते हैं, सुनिये—] ब्रह्माजीके पुन युनिवर पुरुष्य हुए और पुरुष्यसे महर्षि विश्वाका जन्म हुआ।

कहा—‘श्रीराम ! तुम राजसौका संहार करनेवाले साक्षात् श्रीविष्णु हो ।’ फिर श्रीरामके अनुरोधसे इन्होंने असूत्र वरसाकर मरे हुए बानरोंको जीवित कर दिया। उससे देवता युद्ध देखकर, श्रीरामचन्द्रजीके द्वाय पूजित हो स्वर्गलोकमें चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने लङ्घाका राज्य विभीषणको दे दिया और बानरोंका विशेष सम्मान किया ॥२३—२९॥

फिर सबको साथ ले, सीतासहित पुष्पक विमानपर बैठकर श्रीराम जिस मार्गसे आये थे, उसीसे लौट चले। मर्त्यमें वे सीताको प्रसन्नचित्त होकर बनों और दुर्गम स्थानोंको दिखाते जा रहे थे। प्रयागमें महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके वे अयोध्याके पास नन्दिआममें आये। वहाँ भरतने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वे अयोध्यामें आकर वहाँ रहने लो। सबसे पहले उन्होंने महर्षि वसिष्ठ आदिको नमस्कार करके कमशः कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राके चरणोंमें मस्तक लाकाया। फिर राज्य-प्राप्ति करके ब्राह्मणों आदिको पूजन किया। अश्वप्रेषण यज्ञ करके उन्होंने अपने आत्मस्वरूप श्रीवासुदेवका यजन किया, सब प्रकारके दान दिये और प्रजाजनोंका पुत्रवत् पालन करने लो। उन्होंने धर्म और कामादिका भी सेवन किया तथा वे दुष्टोंको सदा दण्ड देते रहे। उनके राज्यमें सब लोग धर्मपरायण थे तथा पृथ्वीपर सब प्रकारकी खेती फली-फूली रहती थी। श्रीरघुनाथजीके शासनकालमें किसीकी अकालमृत्यु भी नहीं होती थी ॥३०—३५॥

उनकी दो पत्नियाँ थीं—पुष्पोक्टा और कैकसी। उनमें पुष्पोक्टा ज्येष्ठ थी। उसके गर्भसे धनाव्यक्ष कुवेरका जन्म हुआ। कैकसीके गर्भसे पहले रावणका जन्म हुआ, जिसके दस मुख और बीस मुजाएँ थीं। रावणने तपस्या की और ब्रह्माजीने उसे वरदान दिया, जिससे उसने समस्त देवताओंको जीत लिया। कैकसीके दूसरे पुत्रका नाम कुम्भकर्ण और तीसरका विभीषण था। कुम्भकर्ण सदा नीदमें ही पड़ा रहता था; किंतु विभीषण वडे धमोत्पा

हुए । हन तीनोंकी बहन शूरपणा हुई । रावणसे मेघनाद-का जन्म हुआ । उसने इन्द्रको जीत लिया था, इसलिये 'इन्द्रजित्' के नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई । वह रावणसे भी अधिक बलवान् था । परंतु देवताओं आदिके कल्याण-की इच्छा रखनेवाले आपने लक्ष्मणके द्वारा उभयका बध करा दिया । ऐसा कहकर वे अगस्त्य आदि ब्रह्मर्पि श्रीरघुनाथजीके द्वारा अभिनन्दित हो अपने-अपने आभ्रमको चले गये । तदनन्तर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रमावित श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे शशुद्धने लवणासुरको मारकर एक पुरी बसायी, जो 'मथुरा' नामसे प्रसिद्ध हुई । तत्पश्चात् भरतने श्रीरामकी आशा पाकर सिन्धु-तीर-निवासी शैलूष नामक बलोन्मत्त गन्धर्वका तथा उसके तीन करोड़ वंशजोंका अपने तीखे बाणोंसे संहार किया । फिर उस देशके [गान्धार और मद्र] दो विभाग करके, उनमें अपने पुत्र तक और पुरुषको स्थापित कर दिया ॥ १—९ ॥

इसके बाद भरत और शशुद्ध अयोध्यामें चले आये और वहाँ श्रीरघुनाथजीकी आराधना करते हुए रहने लगे ।

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें 'रामायण-कथाके अन्तर्गत उत्तरकाण्डकी कथाका वर्णन'नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

हरिवंशका वर्णन एवं श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा

अनिवेद कहते हैं—अब मैं हरिवंशका वर्णन करूँगा । श्रीविष्णुके नाभि-कमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ । ब्रह्माजीसे अत्रि, अत्रिसे सोम, सोमसे [बुध एवं बुधसे] पुरुषवा उत्पन्न हुए । पुरुषवासे आयु, आयुसे नहुप तथा नहुपसे यथातिका जन्म हुआ । यथातिकी पहली पल्ली देवयानीने यहु और तुर्वमु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया । उनकी दूसरी पल्ली शर्मिष्ठाके गर्भसे, जो वृषपर्वकी पुत्री थी, द्वृशु, अनु और पूरू—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । यहुके वंशमें 'यादव' नामसे प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए । उन समये भगवान् बासुदेव सर्वश्रेष्ठ थे । परम पुरुष भगवान् विष्णु ही इस पृथ्वीका भाव उत्तारनेके लिये बसुदेव और देवकीके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे । भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योगनिद्राने क्रमशः छः गर्भ, जो पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिष्यके पुत्र थे, देवकीके उदरमें

श्रीरामचन्द्रजीने दुष्ट पुरुषोंका युद्धमें संहार किया और शिष्ट पुरुषोंका दान आदिके द्वारा भलीभाँति पालन किया । उन्होंने लोकापवादके भयसे अपनी धर्मपत्नी सीताको बनमें छोड़ दिया था । वहाँ वाल्मीकि मुनिके आश्रममें उनके गर्भसे दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम कृष्ण और लव थे । उनके उत्तम चरित्रोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी-को भलीभाँति निश्चय हो गया कि ये मेरे ही पुत्र हैं । तत्पश्चात् उन दोनोंको कोसलके दो राज्योंपर अभिषिक्त करके, मैं ब्रह्म हूँ इसकी भावनापूर्वक व्यानयोगमें स्थित होकर उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे भावयो और पुरवासियों-सहित अपने परमधारमें प्रवेश किया । अत्रोच्यामें ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके वे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे । उनके बाद सीताके पुत्र कोसल जनपदके राजा हुए ॥ १०—१३ ॥

अनिवेद कहते हैं—विष्णुजी ! देवर्पि नारदसे यह कथा सुनकर महर्पि वाल्मीकिने विस्तारपूर्वक रामायण नामक महाकाव्यकी रचना की । जो इस प्रमङ्गको सुनता है, वह सर्वगलोको जाता है ॥ १४ ॥

* शुक्रल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर कृष्णपक्षकी अमावस्यातक एक मास होता है । इस मास्यताके अनुसार गणना करनेपर आजकी गणनाके अनुसार जो भाद्रपद कृष्ण अष्टमी है, वही श्रावण कृष्ण अष्टमी सिद्ध होती है । गुजरात, महाराष्ट्रमें अब भी ऐसा ही मानते हैं ।

सुनकर कंस आ पहुँचा और देवकीके मना करनेपर भी उसने उस बालिकाको उठाकर शिलापर पटक दिया। उसने आकाशवाणीसे सुन रखा था कि देवकीके आठबैंगर्भसे मेरी मृत्यु होगी। इसीलिये उसने देवकीके उसका हुए कभी शिशुओंको मार डाला था ॥ १—९ ॥

कंसके द्वारा शिलापर पटकी हुई वह बालिका आकाशमें उड़ गयी और वहाँसे इस प्रकार बोली—‘कंस ! मुझे पटकनेसे तुम्हारा क्या लाभ हुआ ? जिनके हाथसे तुम्हारा वध होगा वे देवताओंके सर्वस्वभूत भगवान् तो इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतार ले चुके’ ॥ १०—११ ॥

ऐसा कहकर वह चली गयी। उसीने देवताओंकी प्रार्थनासे शुभ्य आदि दैत्योंका वध किया। तब इन्द्रने इस प्रकार स्तुति की—‘जो आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अभिका, भद्रकाली, भग्ना, क्षेम्या, क्षेमकरी तथा नैकबाहु* आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं, उन जगद्भाको मैं नमस्कार करता हूँ।’ जो तीनों समय इन नामोंका पाठ करता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं।+ उधर कंसने भी (बालिकाकी बात सुनकर) नवजात शिशुओंका वध करनेके लिये पूतना आदिको सब और भेजा। कंस आदिसे ढेरे हुए, बुद्धिवेन अपने दोनों पुत्रोंकी रक्षाके लिये उन्हें गोकुलमें यशोदापति नन्दजीको सौंप दिया था। वहाँ बलराम और श्रीकृष्ण—दोनों भाई गौओं तथा खाल-बालोंके साथ विचरा करते थे। यद्यपि वे सम्पूर्ण जगत्के पालक थे, तो भी बजमें गोपालक बनकर रहे। एक बार श्रीकृष्णके ऊधमसे तंग आकर मैया यशोदाने उन्हें रस्तीसे ऊखलमें बौध दिगा। वे ऊखल घसीटते हुए दो अर्जुन-बृक्षणोंके बीचसे निकले। इससे वे दोनों बृह दूटकर गिर पड़े। एक दिन श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सो रहे थे। वे माताका स्तनपान करनेकी इच्छासे अपने पैर फैक-फैककर रोने लगे। उनके पैरका हल्का-सा आघात लगते ही छकड़ा उल्ट गया ॥ १२—१७ ॥

* नैकबाहुका अर्थ है—अनेक बाँहोवाली। इससे दिनुजा, चतुरुजा, अष्टरुजा तथा अष्टादशरुजा आदि सभी देवियोंका अहण हो जाता है।

+ आर्या दुर्गा वेद गर्भा अभिका भद्रकालीष्यपि।

भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुनमायि ताम् ॥

क्षिसंख्यः पठेन्नाम सर्वाश्च कामान् स चामुचात् ॥

(अन्ति० १२ । १३-१४)

पूतना अपना स्तन पिलकर श्रीकृष्णको मारनेके लिये उद्यत थी; किंतु श्रीकृष्णने ही उसका काम लम्भा कर दिया। उन्होंने वृन्दावनमें जानेके पश्चात् कालियनाको परापत किया और उसे अमृतके कुण्डसे निकालकर सुमुद्रमें भेज दिया। बलरामजीके साथ जा, गदहेका रूप धारण करनेवाले भेनुकासुरको मारकर, उन्होंने ताल्बनको क्षेमयुक्त स्तान बना दिया तथा वृषभस्तुपधारी अरिष्ठासुर और अश्वस्तुपधारी केशीको मार डाला। फिर श्रीकृष्णने इन्द्रियागके उत्सवको बंद कराया और उसके स्थानमें गिरियाज गोवर्धनकी पूजा प्रचलित की। इससे कुपित हो इन्द्रने जो वर्षा आम्भम् की, उसका निवारण श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको धारण करके किया। अन्तमें महेन्द्रने आकर उनके चरणोंमें मस्तक क्षुकाया और उन्हें प्रोविन्द॑की पदवी दी। फिर अपने पुत्र अर्जुनको उन्हें सौंपा। इससे संतुष्ट होकर श्रीकृष्णने पुनः इन्द्रियागका भी उत्सव कराया। तदनन्तर एक दिन वे दोनों भाई कंसका संदेश लेकर आये हुए अकूरके साथ रथपर बैठकर मधुरा चले गये। जाते समय श्रीकृष्णमें अनुराग रखनेवाली गोपियाँ, जिनके साथ वे भौति-भौतिकी मधुर लीलाएँ कर चुके थे, उन्हें बहुत देरतक निहारती रहीं। मार्गमें अकूरने उनकी स्तुति की। मथुरामें एक रजक (धोनी) को, जो बहुत बढ़-बढ़कर बातें बना रहा था, मारकर श्रीकृष्णने उससे सारे वस्त्र ले लिये ॥ १८—२३ ॥

एक मालीके द्वारपर उन्होंने बलरामजीके साथ फूलकी मालाएँ धारण कीं और मालीको उत्तम वर दिया। कंसकी दाढ़ी कुञ्जाने उनके शरीरमें चन्दनका लेप कर दिया, इससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसका कुबङ्घापन दूर कर दिया—उसे सुडौल एवं सुन्दरी बना दिया। आगे जानेपर रङ्गशालाके द्वारपर खड़े हुए कुबल्यापीड नामक मतवाले हाथीको मारा और रङ्गभूमिमें प्रवेश करके श्रीकृष्णने मङ्गपर बैठे हुए कंस आदि राजाओंके समझ चाणूर नामक मल्लके साथ [उठके लल्कानेपर] कुदती लड़ी और बलरामने मुष्टिक नामवाले पहल्वानके साथ दंगल शुरू किया। उन दोनों माझियोंने चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य पहल्वानोंको भी [बात-की-बातमें] मार गिराया। तपश्चात् श्रीहरिने मथुराविपति कंसको मारकर उसके पिता उग्रवेनको यदुवंशियोंका राजा बनाया। कंसके दो रानियाँ थीं—अद्वि और प्रासि। वे दोनों जगरसन्धकी पुत्रियाँ थीं।

उनकी प्रेरणासे जरासन्धने मधुरापुरीपर बैरा डाल दिया और युवंशियोंके साथ बाणोंसे युद्ध करने लगा । बलराम और श्रीकृष्ण जरासन्धको परात्त करके मधुरा छोड़कर गोमत्त पर्वतपर चले आये और द्वारका नगरीका निर्माण करके वहीं युवंशियोंके साथ रहने लगे । उन्होंने युद्धमें वासुदेव नाम धारण करनेवाले पौण्ड्रको भी मारा तथा भूमिपुत्र नरकासुरका बध करके उसके द्वारा हरकर लायी हुई देवता, गन्धर्व तथा यज्ञोंकी कन्याओंके साथ विवाह किया । श्रीकृष्णके सोलह हजार आठ रानियाँ थीं, उनमें रुक्मिणी आदि प्रधान थीं ॥ २४—३१ ॥

इसके बाद नरकासुरका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभाष्माके साथ गृहडपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकमें गये । वहाँसे इन्द्रको परात्त करके रस्तोंसहित मणिपर्वत तथा पारिजात वृक्ष उठा लाये और उन्हें सत्यभाष्माके भवनमें स्थापित कर दिया । श्रीकृष्णने सान्दीपनि मुनिसे अञ्ज-शब्दोंकी शिक्षा ग्रहण की थी । शिक्षा पानेके अनन्तर उन्होंने गुरुदक्षिणाके रूपमें गुदके मरे हुए बालकको लाकर दिया था । इसके लिये उन्हें 'पञ्चजन' नामक दैत्यको परात्त करके यमराजके लोकमें भी जाना पड़ा था । वहाँ यमराजने उनकी बहु पूजा की थी । उन्होंने राजा मुचुकुन्दके द्वारा काल-यवनका बध करवा दिया । उस समय मुचुकुन्दने भी भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेव, देवकी तथा भगवद्गुरु ब्राह्मणोंका बड़ा आदर-सक्कार करते थे । बलभद्र-जीके द्वारा रेतीके गर्भसे निशाठ और उत्पुक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । श्रीकृष्णद्वारा जाम्बवतीके गर्भसे साम्बका जन्म हुआ । इसी प्रकार अन्य रानियोंसे अन्यान्य पुत्र उत्पन्न हुए । रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ था । वे अभी छः दिनके थे, तभी शम्भरासुर उन्हें मायावल्से हर ले गया । उसने बालकको समुद्रमें फेंक दिया । समुद्रमें एक मत्स्य उसे निगल गया । उस मत्स्यको एक मल्लाहने पकड़ा और शम्भरासुरको भेट किया । फिर शम्भरासुरने उस मत्स्यको मायावतीके हवाले कर दिया । मायावतीने मत्स्यके पेटमें अपने पतिको देखकर वहे आदरसे उसका पालन-पोषण किया । वहे हो जानेपर मायावतीने प्रद्युम्नसे कहा—
माथ ! मैं आपकी पत्नी रति हूँ और आप मेरे पति कामदेव हैं । पूर्वकालमें भगवान् शंकरने आपको अनङ्ग (शारीर-रहित) कर दिया था । आपके न रहनेसे शम्भरासुर युद्ध हर लाया है । मैंने उसकी पत्नी होना स्वीकार नहीं किया

है । आप मायाके लाला हैं, अतः शम्भरासुरको भीर ढालिये ॥ ३२—३९ ॥

यह सुनकर प्रद्युम्नने शम्भरासुरका बध किया और अपनी भार्या मायावतीके साथ वे श्रीकृष्णके पास चले गये । उनके आगमनसे श्रीकृष्ण और रुक्मिणीको बड़ी प्रसन्नता हुई । प्रद्युम्नसे उदारत्वाद्वि अनिरुद्धका जन्म हुआ । वहे होनेपर वे उषाके स्वामी हुए । राजा बलिके बाण नामक पुत्र था । उषा उसीकी पुत्री थी । उसका निवासस्थान शौणितपुरमें था । बाणने बड़ी भारी तपस्याकी, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उसको अपना पुत्र मान लिया था । एक दिन शिवजीने बलेन्मत ब्राणासुरकी युद्धविषयक इच्छासे संतुष्ट होकर उसे कहा—
ब्राण ! जिस दिन तुहारे महलका मध्यरथवज अपने-आप दूटकर गिर जाय, उस दिन यह समझना कि तुम्हें युद्ध प्राप्त होगा ।' एक दिन कैलास पर्वतपर भगवती पार्वती भगवान् शंकरके साथ कीड़ा कर रही थीं । उन्हें देखकर उषाके मनमें भी पतिका अभिलाषा जाग्रत् हुई । पार्वतीजीने उसके मनोभावको समझकर कहा—
वैशाख मासकी द्वादशी तिथिको रातके समय स्वनमें जिस पुष्करका तुम्हें दर्शन होगा, वही तुम्हारा पति होगा ।' पार्वतीजीकी यह शात सुनकर उषा बहुत प्रसन्न हुई । उक्त तिथिको जब वह अपने घरमें सो गयी, तो उसे वैसा ही स्वन दिवायी दिया । उषाकी एक सली निश्चलेत्वा थी । वह ब्राणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी कन्या थी । उसके बनाये हुए चित्रपटसे उषाने अनिरुद्धको पहचाना कि वे ही स्वनमें उससे मिले थे । उसने चित्रलेलाके ही द्वारा श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धको द्वारकासे अपने यहाँ बुला गया था । अनिरुद्ध आये और उषाके साथ विहार करते हुए रहने लगे । इसी समय मध्यरथवजके रक्षकोंने ब्राणासुरको घ्वजके गिरनेकी सूचना दी । फिर तो अनिरुद्ध और ब्राणासुरमें भयंकर युद्ध हुआ ॥ ४०—४७ ॥

नारदजीके मुखसे अनिरुद्धके शौणितपुर पहुँचनेका समाचार सुनकर, भगवान् श्रीकृष्ण प्रद्युम्न और बलभद्रको साथ ले, गृहडपर बैठकर वहाँ गये और अग्नि एवं माहेश्वर घ्वजको जीतकर शंकरजीके साथ युद्ध करने लगे । श्रीकृष्ण और शंकरमें परस्पर बाणोंके आघात-प्रत्याघातसे युक्त भीषण युद्ध होने लगा । नन्दी, गणेश और कार्तिकेय आदि प्रमुख बीरोंको गृहड आदिने तल्काल परात्त कर दिया । श्रीकृष्णने जूम्पणाल्कका प्रयोग किया, जिससे भगवान् शंकर जँभाई लेते हुए सो गये । इसी बीचमें श्रीकृष्णने

वाणासुरको हजार भुजाएँ काट डार्ता । जृष्मणाका प्रभाव कम होनेपर शिवजीने वाणासुरके लिये अभयदान माया, तब श्रीकृष्णने दो भुजाओंके साथ वाणासुरको जंगिन छोड़ दिया और दांकरजांभ कहा—॥ ६८ - ५१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—भगवन् ! आपने जब वाणासुरको अभयदान दिया है, तो मैंने भी दे दिया । हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है । जो भेद मानता है, वह नरकमें पड़ता है॥ ५२ ॥

अग्निदेव कहते हैं—नदनन्दन दिव आटिने श्रीकृष्ण-का पूजन किया । वे अनिरुद्ध और उपा आदिके माथ डापकामं जाकर उगमेन आदि यादवोंके माथ आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ५३ ॥

इस प्रकार आदि आगमें महापुण्यमें दरिवंशका बणेन नामक बारहवारा अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

अनिरुद्धके बड़ा नामक पुत्र हुआ । उसने मार्कुदेय मूर्मिं नव विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया । बलभद्रजीने प्रलभ्यासुरको मार, यमनार्हा धागके लौचकर केर दिया, विविद नामक वानरका मंदार किया तथा अपने हाथके अग्रभागमें दर्मिनापुरको गड्ढमें छुकाकर कौरबांके पर्वतको चूर-चूर कर दिया । भगवान् श्रीकृष्ण अनेक रूप धारण करके अपनी रुक्मिणी आदि गणियोंके साथ विहार करते रहे । उन्होंने असंख्य पुत्रोंको जन्म दिया । [अन्तमं यादवोंका उपर्योग करके वे परमधामको पधारे ।] जो इस हरिवंशका भाठ करता है, वह मध्यांग कामिनार्ह प्राप्त करके अन्तमें भीहरिके समर्पण जाना है ॥ ५४ - ५६ ॥

तेरहवाँ अध्याय

महाभारतकी संक्षिप्त कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं श्रीकृष्णकी महिमाको लक्षित करनेवाला महाभाग्यका उपाख्यान मुनाता हूँ, जिसमें श्रीहरिने पाण्डवोंको निर्मित वनाकर इस पुरुषोंका भार उतारा था । भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । व्रह्माजीने अत्रि, अत्रिमें चन्द्रमा, चन्द्रमासि बुध और बुधमें इलानन्दन पुरुषवाका जन्म हुआ । पुरुषवाम आयु, आयुमें गजा नहुएँ और नहुएँ यथाति उत्पन्न हुए । यथाति-में पूरु हुए । पूरुके वंशमें भरत और भरतके कुलमें राजा कुरु हुए । कुरुके वंशमें शान्तनुका जन्म हुआ । शान्तनुसे गड्ढानन्दन भीप्त उत्पन्न हुए । उनके दो लोटे भाई और थे—
१ विचाङ्गद और विचित्रवीर्य । वे शान्तनुसे सल्यवतीके गर्भमें उत्पन्न हुए थे । शान्तनुके स्वर्गलोक बोले जानेपर भीप्तने अविवाहित रहकर अपने भाई विचित्रवीर्यके राज्यका पालन किया । विचाङ्गद वाल्यावस्थामें ही विचाङ्गद नामवाले गन्धव-के द्वारा मारे गये । किर भीप्त यग्मामें विचित्रीको परालू करके कादिशजकी दो कन्याओं अभिका और अम्बालिका-को हर लाये । वे दोनों विचित्रवीर्यकी भार्याएँ हुई । कुछ कालके बाद गजा विचित्रवीर्य राजयक्षमामें प्रस्त हो ग्यावासी हो गये । तब सल्यवतीको अनुमतिमें व्यासजीके द्वारा अभिका-

के गर्भमें राजा धृतराष्ट्र और अस्यालिकके गर्भमें पाण्डु उत्पन्न हुए । धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भमें सं पुत्रोंको जन्म दिया, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था ॥ १ - ८ ॥

राजा पाण्डु बनमें रहते थे । वे एक अष्टपिके शापवश शनशृङ्ख मुनिके आश्रमके पास भी समागमके कारण मृत्यु-को प्राप्त हुए । [पाण्डु शाशके ही कारण व्यासी-सम्भोगमें दूर रहते थे,] इसलिये उनकी आशाके अनुसार कुन्तीके गर्भमें धर्मके अंशमें युधिष्ठिरका जन्म हुआ । वायुमें भीम और इन्द्रमें अर्जुन उत्पन्न हुए । पाण्डुकी दूसरीपक्षी मादीके गर्भमें अश्विनीकुमारेके अंशमें नकुल-सहदेवका जन्म हुआ । [शापवश] एक दिन मादीके साथ सम्भोग होनेमें पाण्डुकी मृत्यु हो गयी और मादी भी उनके साथ सती हो गयी । जब कुन्तीका विवाह नहीं हुआ था, उसी समय [मूर्यके अंशमें] उनके गर्भमें कर्णका जन्म हुआ था । वह दुर्योधन-के आश्रयमें रहता था । दुर्योधनके कोरवों और पाण्डवोंमें वैर-की आग प्रव्यालिन हो उठी । दुर्योधन बड़ी न्योटी बुद्धिका मनुष्य था । उसने लाल्हाके बने हुए धरमें पाण्डवोंको रथकर आग लगाकर उन्हें जलानेका प्रयत्न किया । किन्तु पांचों पाण्डव अपनी माताके साथ उस जलते हुए धरमें बाहर निकल गये ।

* श्रीकृष्ण देवता—

स्वया करगय दत्तं वाणस्याम्य विष्यार्थं तत् । आवयोनीर्थं भेदो वै भेदो नरकमान्युयात् ॥ (अधि० १२ । ५२)

बहाँमे एकचक्रा मगरीमें जाकर वे मुनिके वेषमें एक ब्राह्मण के वरमें निवास करने लगे । फिर वक नामक राजसका वन करके वे पाञ्चाल-राज्यमें, जहाँ द्वौपदीका स्वर्गवर होनेवाला था, गये । वहाँ अर्जुनके बाहुबलीमें मत्स्यभेद होनेपर गोचो पाण्डवोंने द्वौपदीको पल्लीरूपमें प्राप्त किया । तत्पश्चात् दुयोधन आदिको उनके जीवित होनेका पता चलोपर उन्होंने कांगवं-में अपना आधा राज्य भी प्राप्त करलिया । अर्जुनने अग्निदेव-में दिव्य गाढ़ीव धनुष और उत्तम रथ प्राप्त किया था । उन्हें युद्धमें भगवान् कृष्ण-जैसे सारथि मिले थे तथा उन्होंने आचार्य द्रोणसे व्रह्मास्त्र आदि दिव्य आयुष और कभी नष्ट न होनेवाले वाण प्राप्त किये थे । सभी पाण्डव श्रव प्रकाःकी विद्याओंमें प्रवीण थे ॥ ९ - १६ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ व्याघ्रव वनमें इन्द्रके द्वारा भी दूर्द युधिष्ठिर अपने बाणोंकी [लक्षाक्षर] वौष्ठमें नियारण करते हुए अग्निको तृप्त किया था । पाण्डवोंने सम्पूर्ण दिव्यांशपर विजय पायी । युधिष्ठिर राज्य करने लगे । उन्होंने प्रचुर सुवर्णगदिमें परिपूर्ण गजमूर्ख यजका अनुष्ठान किया । उनका यह वैभव दुयोधनके लियं असत्य हो उठा । उसने अपने भाई दुःशासन और वैभवप्राप्त मुहूर्द कर्णके कहनेम शकुनिको साथ ले, द्यूत सभामें तपामें प्रवृत्त होकर, युधिष्ठिर और उनके राज्यको कपट द्यूतके द्वाप्र हसनेहसने जीत लिया । जपामें परगम होकर युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ वनमें चल गये । वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार बारह वर्ष व्यतीत किये । वे वनमें भी पहलेजीकी भाँति प्रतिदिन बहुमर्बक ब्राह्मणोंको भोजन करते थे । [एक दिन उन्होंने] अठासी हजार द्विजोंसहित दुर्बासाको [श्रीकृष्ण-कृपामें] परितृप्त किया । वहाँ उनके साथ उनकी पत्नी द्वांपदी तथा

इस प्रकार आदि आमंत्रम् महापुण्यमें, आदिपर्वतसे

कशका मंडित्व वर्णनं नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

कौरव और पाण्डवोंका युद्ध तथा उसका परिणाम

अग्निदेव कहते हैं—युधिष्ठिर और दुयोधनकी मेनार्द-कुरुक्षेत्रके मैदानमें जा डटा । अपने शिपक्षमें पितामह भीम तथा आचार्य द्रोण आदि गुरुजनोंको देखकर अर्जुन युद्धमें विरत हो गये, तब भगवान् श्रीकृष्णने उनमें कहा—‘पार्थ ! भीम आदि गुरुजन शोकके योग्य नहीं हैं । मनुष्यका शरीर

पुरोहित धौम्यजी भी थे । बारहवाँ वर्ष वीनेपर वे विराट-नगरमें गये । वहाँ युधिष्ठिर सबमें अपरिचित रहकर ‘कङ्क’ नामन् व्राह्मणके स्वप्नमें रहने लगे । भीमसेन रसोइया वने थे । अर्जुनने अपना नाम ‘बृहस्पति’ रखवा था । पाण्डव-पली द्वांपदी गनिवासमें सैरन्वीके स्वप्नमें रहने लगी । इसी प्रकार नकुल सहदेवने भी अपने नाम बदल लियं थे । भीमसेनने गत्रिकालमें द्वांपदीका सतीत्व-हरण करनेकी इच्छा रखनेवाले कीनकको मार डाला । तत्पश्चात् कौरव विराट-की गोआंको हरकर ले जाने लगे, तब उन्हें अर्जुनने परास्त किया । उस समय कौरवोंने पाण्डवोंको पहचान लिया । श्रीकृष्णकी बहिन मुभदाने अर्जुनसे अभिमन्यु नामक पुत्रको उत्पन्न किया था । उसे राजा विराटने अपनी कन्या उत्तरा व्याह दी ॥ १३-२९ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर सात अश्रीहिणी सनाके स्वामी होकर कौरवोंके साथ युद्ध करनेको तैयार हुए । पहले भगवान् श्रीकृष्ण परम क्रोधी दुयोधनके पास दूत बनकर गयं । उन्होंने ग्यारह अश्रीहिणी भनाके स्वामी राजा दुयोधनमें कहा—‘राजन ! तुम युधिष्ठिरकी आधा राज्य दे दो या उन्हें पांच ही गाँव अपित कर दोः नहीं तो उनके साथ युद्ध करा ।’ श्रीकृष्णकी बान सुनकर दुयोधनने कहा—‘मैं उन्हें मुहूर्दकी नोकके बगबर भूमि भी नहीं दूँगा । हो, उनसे युद्ध अवश्य करूँगा ।’ ऐसा कहकर वह भगवान् श्रीकृष्णको बंदी बनाने के लियं उद्यत हो गया । उस समय राजसमामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम दुर्धर्ष विश्वभूपका दर्शन कराकर दुयोधनको भयभीत कर दिया । फिर चिन्हाने अपने धर ले जाकर भगवानका प्रजन और सत्कार किया । नदनन्दन वे युधिष्ठिरके पास लौट गये और बोले—‘महाराज ! आप दुयोधनके साथ युद्ध कीजिये ॥ २६-२९ ॥

श्रामन करके [ऋग्यपर्व-पर्वत] मदामागत-

प्रहृत हुए। उन्होंने शास्त्रधनि की। दुयोधनकी सेनामें सबसे पहले पितामह भीष्म सेनापति हुए। पाण्डवोंके मेनापति शिव्यण्डी थे। इन दोनोंमें भारी युद्ध छिड़ गया। भीष्म-सहित कौरवपक्षके योद्धा उस युद्धमें पाण्डव-पक्षके सैनिकों-पर प्रहार करने लगे और शिव्यण्डी आदि पाण्डव-पक्षके बीर कौरव-सैनिकोंको अपने बाणोंका निशाजा बनाने लगे। कौरव और पाण्डव-सेनाका वह युद्ध, देवासुर-संग्रामके समान जान पड़ता था। आश्रितमें खड़े होकर देवनेवाले देवताओंको वह युद्ध बड़ा आनन्ददायक प्रतीत हो रहा था। भीष्मने दस दिनोंतक युद्ध करके पाण्डवोंकी अधिकांश सेनाको अपने बाणोंमें मार गिराया ॥ १-७ ॥

दसवें दिन अर्जुनने बीरवर भीष्मपर बाणोंकी बड़ी भारी बृष्टि की। इधर द्रुपदकी प्रेरणामें शिव्यण्डीने भी पानी चरसांचालं मेघकी भोनि भीष्मपर बाणोंकी क्षणी लगा दी। दोनों ओरके हाथीसवार, युद्धसवार, रथी और पैदल एक दूसरेके बाणोंमें मारे गये। भीष्मकी मृत्यु उनकी इच्छाके अर्धान थी। उन्होंने युद्धका मार्ग दिखाकर वसु-देवताके कहनेपर वसुलोकमें जानकी तेयारी की और बाण-शस्यापर सो रहे। वे उत्तरायणकी प्रतीक्षामें भगवान् विष्णु-का ध्यान और मन्त्रन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। भीष्मके बाण-शश्यापर गिर जानके बाद जय दुयोधन शोकसे व्याकुल हो उठा, तब आचार्य द्रोणने सेनापतित्वका भार ग्रहण किया। उधर हर्ष मनाती हुई पाण्डवोंकी मेनामें धृष्टद्युम्न मेनापति हुए। उन दोनोंमें बड़ा भयकर युद्ध हुआ, जो यमलोकको आवादीको बढ़ानेवाला था। विराट और द्रुपद आदि राजा द्रोणरूपी सभुद्वामें झूब गये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल मैनिकोंसे युक्त दुयोधनकी विशाल वाहिनी धृष्टद्युम्नके हाथमें मारी जाने लगी। उस समय द्रोण कालके समान जान पड़ते थे। इतनेहोमें उनके कानोंमें यह आवाज आयी कि 'अश्वत्थामा मारा गया'। इतना सुनत ही आचार्य द्रोणने अब शास्त्र त्याग दिये। ऐस समयमें धृष्टद्युम्नके बाणोंमें आहत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८-१४ ॥

द्रोण बड़े ही दुर्घंप थे। वे समृण क्षत्रियोंका विनाश करके पांचवें दिन मारे गये। दुयोधन पुनः शोकमें आनुर हो उठा। उस समय कर्ण उसकी मेनाका कर्णधार हुआ। पाण्डव-सेनाका आधिपत्य अर्जुनको मिला। कर्ण और अर्जुनमें भोनि-भोतिके अस्त्र-शस्त्रोंकी भारकाटामें युक्त महा-

भयानक युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्रामको भी मात करने वाला था। कर्ण और अर्जुनके संग्राममें कर्णने अपने बाणोंसे शत्रु-पक्षके बहुत-से बीरोंका संहार कर डाला; किंतु इसे दिन अर्जुनने उसे मार गिराया ॥ १५-१७ ॥

नदनन्तर राजा शत्र्यु कौरव-सेनाके मेनापति हुए; किंतु वे युद्धमें आधे दिनतक ही टिक सके। दोपहर होते-होने राजा युधिष्ठिरने उन्हे मार गिराया। दुयोधनकी प्रायः सारी सेना युद्धमें मारी गयी थी। अनन्तोगत्वा उसका भीमसेनके साथ युद्ध हुआ। उसने पाण्डव-पक्षके पैदल आदि बहुत-से सैनिकोंका वध करके भीमसेनपर धावा किया। उस समय गदामें प्रहार करते हुए दुयोधनको भीमसेनने मौतके घाट उतार दिया। दुयोधनके अन्य छोड़े भाई भी भीमसेनके ही द्वारामें मारे गये थे। महाभारत-संग्रामके उस अटारहवें दिन रात्रिकालमें मद्यावली अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी सोयी हुई एक अश्रीहिणी मेनाको सदाके लियं सुला दिया। उसने द्रौपदीके पैरों पुत्रों, उसके पाञ्चालदेवीय चन्द्रुओं तथा धृष्टद्युम्नको भी जीवित नहीं छोड़ा। द्रौपदी पुत्रीहीन होकर गोने-विलवने लगी। तब अर्जुनने सींकोंके अस्त्रसं अश्वत्थामाको परास करके उसके मरतककी मणि निकाल ली। [उसे मारा जाता देख द्रौपदीने ही अनुनय-विनय करके उसके प्राण बचाये ।] ॥ १८-२२ ॥

इतनेपर भी दुष्ट अश्वत्थामाने उत्तराके गर्भको नष्ट करनेके लिये उसपर अस्त्रका प्रयोग किया। वह गर्भ उसके अस्त्रमें प्रायः दध्व हो गया था; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसको पुनः जीवन दान दिया। उत्तराका वही गर्भम्य शिशु आंग चलकर राजा पराकृतिके नाममें विख्यान हुआ। कृतवर्मी, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा-ये तीन कौरवपक्षीय वीर उस समामें जीवित वचे। दूसरी ओर पांच पाण्डव, सात्यकि तथा भगवान् श्रीकृष्ण—ये गान ही जीवित रह सके; दूसरे कोई नहीं वचे। उस समय सब ओर अनाथा लियोंका अनाद व्यास हो रहा था। भीमसेन आदि भाइयोंके साथ जाकर युधिष्ठिरने उनमें समझ शान्तिदायक धर्म, राजधर्म (आपद्धर्म), मोक्षधर्म तथा दानधर्मकी बातें सुनीं। फिर वे राजसिंहासनपर भासीन हुए। इसके बाद उन शत्रुमदन

राजने अश्वमेष्ठ-यश करके उसमें ब्राह्मणोंको बहुत धन दान किया । तदनन्तर द्वारकासे लैट हुए अर्जुनके मुख्यमें मृगल-काण्डक कारण प्राप्त हुए शापसे पारम्परिक युद्धद्राशा

यादवोंके संहारका समाचार सुनकर युधिष्ठिरने परीक्षितको राजासनपर बिटाया और स्वयं भाइयोंके साथ महाप्रसादन कर म्वर्गलोकों चले गये ॥ २३-२७ ॥*

इस प्रकार आदि आर्थिक महापुराणमें नीचपर्वतमें लेकर भ्रततकर्ता सहायता-कथाका भंडपाम वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

यदुकुलका संहार और पाण्डवोंका स्वर्गगमन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन् ! जब युधिष्ठिर राजसिहामन पर विराजमान हो गये, तब धृतराष्ट्र गृहस्थ आश्रममें वानप्रस्थ आश्रममें प्रविष्ट हो बनमें चले गये । [अथवा ऋषियोंके एक आश्रममें दूसरे आश्रमोंमें होते हुए वे बनको गये ।] उनके साथ देवी गान्धारी और पृथ्वी (कुनी) भी थीं । विदुरजी दावानलमें दग्ध हो म्वर्ग सिधारे । इस प्रकार भगवान् विष्णुने पृथ्वीका भार उनाश ओर धर्मकी आपना नथा अधर्मका नाश करनेके लिये पाण्डवोंको निमित्त बनाकर दानव-देव्य आदिका भंडार किया । तत्पश्चात भूमिका भार बदलनेयाले यादवकुलका भी ब्राह्मणोंके शापके बहाने मूसलके द्वारा संहार कर डाल्य । अनिरुद्धके पुत्र वड्रको गजाके पदपर अभिप्रिक किया । तदनन्तर देवताओंके अनुग्रहमें प्रभासक्षेत्रमें श्रीहरि स्वयं ही म्घूल शर्वरकी लीलाका मंवरण करके अपने धामको पथारे ॥ १-४ ॥

वे हन्द्योंके और ब्रह्मलोकमें म्वर्गवासीं देवताओंद्वारा पूजित होते हैं । वलभद्रजी शेषनाशके म्वर्ष्य औः अनः उन्होंने पानालर्पी म्वर्गका आश्रय लिया । अविनार्ती भगवान् श्रीहरि ध्यानीं पुरुषोंके व्यय है । उनके अनवधान हो जानेपर समुद्रने उनके निजी निवासस्थानको लोडकर ऊप द्वारकापुरीको अपने जलमें डूया दिया । अर्जुनने मंग हुए यादवोंका दाह सक्तार करके उनके लिये जलाञ्जलि दी और धन आदिका दान किया । फिर भगवान् श्रीकृष्णका रानियोंको, जो पहले अप्सराएँ थीं और अश्रवकके शापमें मानवीरूपमें प्रकट हुई थीं, लेकर हस्तिनापुरको चले ।

इस प्रकार आदि आर्थिक महापुराणमें आश्रमवासिक पर्वमें लेकर स्वर्गरोहण-पर्वतमें महाभारत-कथाका

संक्षिप्त वर्णन नामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९.५ ॥

* वर्द्धाप इन अध्यायके अन्तर्गत गदानारामी धूरा कथा यमास दुःखी जान पाया है, नथापि आश्रमवासियों पर्वमें लेकर स्वर्गरोहण

पर्वतका बृत्तान् कुछ विभागमें कहना चेत् रह गया है; इसलिये भगवें (पंद्रहवें) अन्यायमें उसे पूरा किया गया है ।

मोलहवाँ अध्याय

बुद्ध और कल्पि अवतारोंकी कथा

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं बुद्धावतारका वर्णन करूँगा, जो पढ़ने और सुननेवालोंके मनोरथको सिद्ध करनेवाला है। पूर्वकालमें देवताओं और अमुरोंमें घोर मंग्राम हुआ। उसमें दैत्योंने देवताओंको पश्चात् कर दिया। तब देवतालोग ‘त्राहि त्राहि’ पुकारते हुए भगवानकी शरणमें गये। भगवान् मायामोहमय रूपमें आकर राजा शुद्धोदन-के पृत्र हुए। उन्होंने दैत्योंको मोहित किया और उनमें वैदिक धर्मका परित्याग करा दिया। वे बुद्धके अनुयायी दैत्य ‘जौङ्क’ कहलाये। फिर उन्होंने दूसरे लोगोंमें वद-धर्मका त्याग करवाया। इसके बाद माया-मोह ही ‘आहंत’ रूपमें प्रकट हुआ। उसने दूसरे लोगोंको भी ‘आहंत’ बनाया। इस प्रकार उनके अनुयायी वद-धर्ममें विजित होकर पाव्याणी बन गये। उन्होंने नरकमें जानेवाले कमं करना आरम्भ कर दिया। वे सब-के-सब कलियुगके अनन्म वर्णमयकर होंगे और नीचे पुरुषोंमें दान लेंगे। इतना ही नहीं, वे लोग डाक और दुरान्नारी भी होंगे। वाजसनेय (बृहदारण्यक) मात्र ही ‘वद’ कहलायेंगा। वैदिकी दस-पाँच आवार्ण ही प्रमाणभूत मानी जायेंगी। धर्मका नोला पहने हुए सब लोग अधर्ममें ही रुचि रन्मनेवाले होंगे। गजारूपधारी म्लेच्छ मनुष्योंका ही भक्षण करेंगे॥ १-३ ॥

इस प्रकार आदि ग्रन्थमें महापुराणमें
वर्णन-नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥



मन्त्रहवाँ अध्याय

जगत्की सुषिक्षा वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं जगत्की सृष्टि आदिका, जो श्रीहरिकी लीलामात्र है, वर्णन करूँगा; मुझों। श्रीहरि ही स्वर्ग आदिके रूपयना है। सृष्टि और प्रलय आदि उन्होंके स्वरूप हैं। सुषिक्षे आदिकारण भी वे ही हैं। वे ही निर्गुण हैं और वे ही संगुण हैं। सबसे पहले सत्त्वरूप अव्यक्त ब्रह्म ही था; उस समय न तो आकाश था और न रात दिन आदिका ही विभाग था। तदनन्तर सुषिक्षालमें परमपुरुष श्रीविष्णुने प्रकृतिमें प्रवेश करके उसे क्षुब्ध (विकृत) कर दिया। फिर

प्रकृतिमें महस्त्व और उसमें अहंकार प्रकट हुआ। अहंकार तीन प्रकारका है वैकारिक (सात्त्विक), तेजस (राजस) और भूतादिरूप तामस। तामस अहंकारमें शब्द-तन्मात्रावाली आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशमें सर्व-तन्मात्रावाले वायुका प्रादुर्भाव हुआ। वायुमें रूप-तन्मात्रावाला अभिन्नत्व प्रकट हुआ। अग्निमें रस तन्मात्रावाले जलकी उत्पत्ति हुई और जलमें गन्ध-तन्मात्रावाली भूमिका प्रादुर्भाव हुआ। यह सब तामस अहंकारमें होनेवाली सृष्टि है। इन्द्रियों तेजस अथात् राजस अहंकारमें प्रकट हुई हैं।

दस इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहकी इन्द्रिय मन- (के भी अधिष्ठाता देवता)—ये बकारिक अर्थोत् सात्त्विक अहंकारकी सृष्टि हैं । तत्पश्चात् नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छावाले भगवान् स्वयम्भूने सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की और उसमें अपनी शक्ति (वीर्य) का आधान किया । जलको 'नार' कहा गया है क्योंकि वह नरस उत्पन्न हुआ है । 'नार' (जल) ही पूर्वकालमें भगवानको 'अयन' (निवास-स्थान) था; इसलिये भगवानको 'नारायण' कहा गया है ॥ १-७ ॥

स्वयम्भू श्रीहरिने जो बीर्व स्यापित किया था, वह जलमें सुखान्नमथ अण्डके रूपमें प्रकट हुआ । उसमें सात्त्वा-स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए, ऐसा हमने सुना है । भगवान् हिरण्यगर्भने एक बर्षतक उस अण्डके भीतर निवास करके उसके दो भाग किये । एकका नाम 'शुलोक' हुआ और दूसरेका 'भूलोक' । उन दोनों अण्ड-प्रणालेके बीचमें उन्होंने आकाशकी सृष्टि की । जलके ऊपर तैरनी हुई पृथ्वीको रक्खा और दसों दिशाओंके विभाग किये ।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'जगन्की सूर्तिका वर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

स्वायम्भूव मनुके वंशका वर्णन

अग्निनदेव कहते हैं—मुने ! स्वायम्भूव मनुमें उनकी तपस्त्विनी भावां शतरूपाने प्रियव्रत और उत्तानगाद नामक दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की । वह कमनीया कन्या (देवहनि) कर्दम ऋषिकी भावां हुई । गजा प्रियव्रतस भग्नाद् कुशिं और विराट नामक सामर्थ्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए । उत्तानपादमें सुरुचिके गर्भमें उत्तमनामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुरुचिके गर्भमें भ्रुवका जन्म हुआ । ह मुने ! कुमार भ्रुवने सुन्दर कीर्ति यद्यनेके लियं तांने हजार दिव्य वर्णोत्तक तप किया । उत्तम प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उमे नमर्तियोंके आगं स्थिर स्थान (भूवपद) दिया । भ्रुवके इन अभ्युदयको देखकर युक्तान्यने उनके मुश्केका सूनक पह इलोक पढ़ा 'अहो ! इम भ्रुवकी

?—श्रीमद्भागवतके वर्णनानुसार भ्रुव के बल छः माम नपथ्य करके सिद्धिके भावी हु' ये । इन भग्निपुराणमें तपस्याकाल वहुत अधिक कहा गया है । कल्पोदेशमें दोनों ही वर्णन संगम हो सकते हैं ।

फिर सुषिकी इच्छावाले प्रजापतिने वहों काल, मन, बाणी, काम, क्रोध तथा रति आदिकी तत्त्वदूरपसं सृष्टि की । उन्होंने आदिमं विच्छिन्न, ब्रह्म, मंथ, रोहित इन्द्रधनुष, पथियों तथा पञ्चन्यका निर्माण किया । तत्पश्चात् यशकी सिद्धिके लियं मुखमें प्रकृत् यजु और सामवंदको प्रकट किया । उनके द्वारा साध्यगणोंनं देवताओंका यजन किया । फिर ब्रह्माजीने अपनी भुजाम ऊचै-नीचै (या छोटे-बड़े) भूतोंको उत्पन्न किया, सनस्तुमारकी उत्पत्ति की तथा क्रोधमें प्रकट होनेवाले रुद्रकों जन्म दिया । मर्गीनि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और जनिष्ठ इन सात ब्रह्मपुत्रोंको ब्रह्माजीने निश्चय ही अपने भनमें प्रकट किया । साधुश्रूष्ट ! ये तथा रुद्रगण प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं । ब्रह्माजीने अपने शरीरके दो भाग किये । आधे भागमें वे पुरुष हुए और आधे स्त्री बन गयं; फिर उस नारीके गर्भमें उन्होंने प्रजाओंकी सृष्टि की । (ये ही स्वायम्भूव मनु तथा शतरूपादेनाममें प्रसिद्ध हुए । इनमें ही मानवीय सृष्टि हुई ।) ॥ ८ ॥ ७ ॥

तपस्याका कितना प्रभाव है, हरका शास्त्र-शान कितना अद्भुत है, जिमं आज मसर्पि भी आगं करके स्थित ह । उम ध्रुवमें उनकी पत्नी शम्भुने दिलष्टि और मध्य नामक पुत्र उत्पन्न किये । दिलष्टिमें उभकां पत्नी मुच्छायाने क्रमशः रिपु, रिपुजय, पुण्य, ब्रुक्ति और ब्रुक्तेजा । इग पाच निष्पाप पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया । रिपुके वीर्यमें बृहतीने चाकुष और मवंनेजाको अपने गर्भमें स्थान दिया ॥ १ - ७ ॥

चाकुषपन वीरण प्रजापतिकी अन्या पुष्करिणीके गर्भमें मनुको जन्म दिया । मनुमें नड्बलाके गर्भमें इस उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए । [उनके नाम ये हैं :] ऊरु, पूरु, शतशुमन, तपस्वी, मत्यवाक्, कवि, अग्निष्ठृत्, अतिगात्र, सुद्युमन और अभिमन्यु । ऊरुके अशाम आनेयोंने अङ्ग, सुमना, म्वानि, क्रतु, अङ्गिरा और गय नामक महान् तेजस्मी छः पुत्र उत्पन्न किये । अङ्गसे सुर्नीथाने पक ही मंतान वेनको जन्म दिया । वह प्रजाओंकी गत्ता न करके गदा पापमें ही लगा रहता था । उम मुनियोंनं कुशोंमें भार डाला । तदनन्तर

श्रुतियोंने संतानके लिये देवके दाये हाथका मन्थन किया । हाथका मन्थन होनेपर गजा पुथ प्रकट हुए । उन्हें देवकर मृतियोंने कहा - 'ये महान् नेजर्वी गजा अवश्य ही समस्त प्रजाको आनन्दित करेंगे तथा महान् यथा प्राप्त करेंगे ।' शत्रियवंशके पृथिवीवर गजा पुथ अपने तंत्रम् गवको दरध करने हुए ने धनुष और कवच धारण किये हुए ही प्रकट हुए थे; वे सम्पूर्ण प्रजाकी रक्षा करने लगे ॥८-१४॥

राजसूय-यज्ञमें दीक्षित होनेवालं नरंशामें वे सबमें पहले भूपाल थे । उनमें दो पुत्र उत्पन्न हुए । मृतिकर्ममें निषुण अद्भुतकर्मा सूत और मार्गार्थाने उनका स्तवन किया । वे प्रजाओंके रक्षक करनेके कारण 'गजा' नामसे विस्वात हुए । उन्होंने प्रजाओंकी जीवन रक्षाके निमित्त अन्नकी उपज बढ़ानेके लिये गोम्पत्राणिणी पृथिवीका दोहन किया । उस समय एक माथ ही देवता, मुनिवन्द, गन्धर्व, अणगणगण, पितर, दानव, राय, लता, पर्वत और मनुष्यों आदिके द्वारा अपने अपने विभिन्न पात्रोंमें दुही जानेवाली पृथिवीने मवको इच्छानुगमर दूध दिया, त्रिमं भवने प्राप्त धारण किये । पृथुके जो दो धर्मज पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे अन्तर्धि और पालित । अन्तर्धान (अन्तर्धि) के अंतर्में उनकी डिग्विण्डी नामवाली पल्लीने 'हविर्थान'को जन्म दिया । अभिन्नकुमारी धिषणाने हविर्थानके अंशामें द्वाये पुत्रोंको उत्पन्न किया । उनके नाम ये हैं प्राचीनवर्हिष्ठु, शुक्र, गव, कृष्ण, ब्रज और अजिन । गजा प्राचीनवर्हिष्ठु प्राप्तः यज्ञमें ही ज्यों रहने थे, जिसमें उस समय पृथिवीपर दूर-दूरनक पूर्वाय कृष्ण फैल गये थे । इसमें ये ऐश्वर्यशाली गजा 'प्राचीनवर्हिष्ठु' नामसे विगवात हुए । वे एक महान् प्रजापति थे ॥ १९-२१ ॥

प्राचीनवर्हिष्ठुम् उनकी पल्ली समुद्र कल्या गवणाने दस पुत्रोंको अपने गर्भमें धारण किया । वे गभी 'प्रजेता'नामसे प्रभिद्व हुए और मव-के-मव श्रुत्वेदमें पारपत थे । वे एक समान धर्मका आन्द्रण करने हुए समुद्रके जलमें रहकर दस हजार वर्षोंतक महान् तपमें लगे रहे । अन्तमें भगवान् विष्णुसे प्रजापति होनेका वरदान पाकर वे सत्त्वु हो जलसे बाहर निकले । उस समय प्राप्तः समस्त भूमण्डल और आकाश वडे वडे मध्यन वृक्षोंमें व्यास हो गया था । यह देव उन्होंने अपने मुखमें प्रकट अभिन और वायुके द्वारा यव वृक्षोंको जला दिया । तब वृक्षोंका यह महार देव राजा सोम इन प्रचेताओंके पास जाकर थोले ।

"आपलोग अपना कोप शान करें; ये त्रुक्षमप आपको एक 'मारिश' नामवाली सुन्दरी कल्या अर्पण करेंगे । वह कल्या तपस्त्री मुनि कण्डुके अंशमें प्रम्लोना अप्सराके गर्भमें [भवेद्-शिन्दुके रूपमें] प्रकट हुई है । मैंने ही भविष्यकी बातें जानकर इसे कल्यास्त्रमें उत्पन्न कर पाया थीमा है । इसके गर्भमें दक्ष उत्पन्न होगे, जो प्रजाकी दृढ़ि करेंगे" ॥ २२-२७ ॥

प्रचेताओंने उस कल्याको प्रहण किया । तत्पश्चात् उसके गर्भमें दक्ष उत्पन्न हुए । दक्ष चर, अचर, द्विपद और चतुष्पद आदि प्राणियोंकी मानसिक सृष्टि करके अन्तमें बहुत भी विश्वोंको' उत्पन्न किया । उनमेंमें दमको तो उन्होंने धर्मगाजके अर्पण किया और तेरह कल्याएं कल्याएं कल्याएं दी । मनार्हग अन्याएं नन्दमाको, चार अग्नि नेमिको, दो वहुपुत्रोंको और दो कल्याएं अङ्गिराको दी । पूर्वकालमें मानसिक मकल्यामें सृष्टि होनी थी । उसके बाद उन दक्ष-कल्याओंमें मैथुनद्वारा देवता और नाग आदि प्रकट हुए । अब मैं धर्मराजमें उनकी दस पलियांके गर्भमें जो मताने हुई, उस धर्मराजका बर्णन करूँगा । विद्वा नामवाली पल्लीसे विश्वदेव प्रकट हुए । मात्राने मायोंको जन्म दिया । मरुत्वतीमें मरुत्वान् और बरुमें बसुगण प्रकट हुए । भानुमें भानु और मुहूर्तमें मुहूर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए । धर्मराजके द्वारा लक्ष्मामें धोप नामक पुत्र हुआ और यामिनामक पल्लीमें नामवीर्या नामवाली कल्या उत्पन्न हुई । पृथिवीका सम्पूर्ण विषय भी मरुत्वतीमें ही प्रकट हुआ । सकल्याके गर्भमें संकल्योकी सृष्टि हुई । नन्दमामें उनकी नक्षत्ररूपिणी पलियांके गर्भमें आठ पुत्र हुए ॥ २८-३४ ॥

उनके नाम ये हैं - आप, ध्रुव, भोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूप और प्रमाण— ये आठ बसुहैं । आपके बैताङ्ग, श्रम, शान और मुनि नामक पुत्र हुए । ध्रुवका पुत्र लोकान्तकारी काल हुआ और सोमका पुत्र वर्चो हुआ । धरकी पल्ली मनोहराके गर्भमें द्रविण, हुतहव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण उत्पन्न हुए । अनिलका पुत्र पुषीजब और अनल (अभिन-) का अविश्वान था । अभिनका पुत्र कुमार हुआ, जो सरकंडोंकी देवीपर उत्पन्न हुआ । उसके पोछे शाय्य, विशाख और नैगमेय नामक पुत्र हुए । कुमार कृत्तिकाके गर्भमें उत्पन्न होनेके कारण 'कार्तिक्रेय' कहलाये तथा

कृतिकाके दूसरे पुत्र भनलकुमार नामक यति हुए। प्रत्यूपमे देवलका जन्म हुआ और प्रभासमे विश्वकर्माका। ये विश्वकर्मा देवताओंके बदूई थे और हजारों प्रकारकी शिल्पकारीका काम करते थे। उनके ही निर्माण किंवदं हुए शिल्प और भूषण आदिके महारे आज भी मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं। मुरभीने कश्यपजीके अंशमें याहह रुद्रों को उत्पन्न किया तथा हे गाधुथ्रेत ! मतीने अपनी

इस प्रकार आदि आग्नेय भाष्यपुराणमें वैवस्तत मनुके वंशका वर्णन नामक अठाहरवें अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

तपस्या एवं महादेवजीके अनुयायसे सम्भावित होकर नार पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं - अजैकपाद, अहिरुच्य, त्वप्टा और रुद्र। त्वप्टाके पुत्र यहायशम्बी श्रीमान् विश्वरूप हुए। हर, बहुसुप, अम्यक, अपराजित, वृगकपि, शम्भु, कपदों, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली—ये ग्यारह रुद्र प्रथम हैं। यों तो मैकड़ों-लालों रुद्र हैं, जिनमे यह नगन्त्र जगत् व्याप है ॥ ३५—४५ ॥

उच्चीमवाँ अध्याय

कश्यप आदिके वंशका वर्णन

अविनिदेश योले हे मुने ! अब मैं आदिति आदि दशकन्याओंमे उत्पन्न हुई कश्यपजीकी सुषिका वर्णन करता हूँ - चाक्षुष मून्यन्तरमे जो तुष्टित नामक वाहह देवता थे, वे ही पुनः इस वैवस्तत मन्यन्तरमे कश्यपके अंशमें अदिति के गर्भमें आये थे। वे विष्णु, शक्र (इन्द्र), त्वष्णा, धाना, अर्यमा, पूर्णा, विश्वस्त्रा, गर्विता, मित्र, वरुण, भग और अशु नामक वारह आदित्य * हुए। अरिष्ठनेमिकी चार पत्नियोंमें सोलह मंतानें उत्पन्न हुईं। विद्वान् वह पुत्रके [उनकी दो पत्नियोंमें कपिला, लंगिता आदिके मैत्रेय] चार प्रकारकी विश्वलक्षणा कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अङ्गिरा मुनिसे (उनकी दो पत्नियोंद्वारा) अंष्ट शृङ्गार हुईं तथा कृशके भी [उनकी दो पत्नियोंमें] देवताओंके दिव्य आयुध उत्पन्न हुए ॥ १-६ ॥

* यहो दी हुई आदित्योंकी नामावली हरिवंशके हरिवंश-पर्वत तीसरे अध्यायमें इलोक मं० ६०-६५ में कार्यत नामावलीसे ढीक-टीक लिखी है ।

+ प्रत्यक्षिरमजा: श्रेष्ठा: कृशाधर्य सुराशुया: ।

इस अर्थात् मौरे के श्लोकका भाव भनिष्ठ है । अनः उस सम्पूर्ण इलोकपर हृष्टि न रखती जाय तो अर्थकी भमझनेमें अम होता है । हरिवंशके निम्नांकित (हरि० ३ । ६५) श्लोकसे उपर्युक्त पद्धतियोंका भाव पूर्णतः स्पष्ट होता है ।

प्रथक्षिरसजा: श्रेष्ठा शत्रु अक्षयिमत्तुना: ।

कृशाधर्य हु राजदेवग्रहणानि च ॥

सम्पूर्ण दिव्याल कृशके पुत्र हैं, इस विषयमें वा० रामायण बाल०, मं० २१के इलोक २३-२४ तथा मत्स्यपुराण ६ । ६ द्रष्टव्य है ।

जैसे आकाशमें सूर्यके उदय और अम्बाव वाग्वाम होने रहते हैं, उसी प्रकार देवतालोग युग युगमें (कल्प-कल्पमें) उत्पन्न [एवं विनष्ट] होते रहते हैं । कश्यपजीमें उनकी पत्नी दिनिके गर्भमें हिरण्यकशिरु और हिरण्याधि नामक पुत्र उत्पन्न हुए । फिर मिहिका नामवार्ता एक कन्या भी हुई, जो विप्राचिति नामक दानवका पत्नी हुई । उसके गर्भमें गहु आदिकी उत्पत्ति हुई, जो 'मैहिकय' नाममें विद्यान द्वारा हुए । हिरण्यकशिरुके चार पुत्र हुए, जो अपने बल-पराक्रमके कारण विद्यान थे । इनमें पहला हाद, दूसरा अनुहाद और तीसरे प्रहाद हुए, जो महान् विष्णुभक्त थे और नौथा मंहाद था । मंहादका पुत्र हृष्ट हुआ । मंहादके पुत्र आयुष्मान शिवि और वाप्कल थे । प्रहादका पुत्र विराजन द्वारा और विराजनमें वलिका जन्म हुआ । हे महामुने ! वलिके सो पुत्र हुए, जिनमें वाणासुर ज्येष्ठ था । पूर्वकल्पमें इस वाणासुरने भगवान् उमापत्निको [भक्तिभावसं] प्रसन्न कर उन परमेश्वरं यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं आपके पास ही विचरता रहूँगा ।' हिरण्याक्षके पॉन्न पुत्र थे शाम्बर, शाकुनि, द्विमूर्धी, शाकु और आर्य । कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दनुके गर्भमें मां दानव-पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५-११ ॥

* इस अर्थात् भावको ममझनेके लिये मी हरिवंशके निम्नांकित श्लोकपर दृष्टिपात करना आवश्यक है ।

यते युगमहस्यान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।

मर्वदेवगणाम्तान अवस्थित्यन्तु कामजा: ॥

(हरि०, हरि० ३ । ६५)

—यही भाव मत्स्यपुराण ६ । ७ में मी आया है ।

इनमें सर्वानुकी कल्पा सुप्रगा थी और पुलोमा दानवकी पुत्री थी हन्ती। उपदानवकी कल्पा हयशिरा थी और बृष्टपर्वतीकी पुत्री शर्मिष्ठा। पुलोमा और कालका—ये दो वैश्वानरकी कल्पाएँ थीं। ये दोनों कल्पयजीकी पत्नी हुईं। इन दोनोंके करोड़ों पुत्र थे। प्रह्लादके बंधनमें चार करोड़ ‘निवातकबच’ नामक देवत हुए। कल्पयजीकी ताप्रा नामवाली पत्नीसे छः पुत्र हुए। इनके अतिरिक्त काकी, श्येनी, भासी, गृष्मिका और शुचिमीका आदि भी कल्पयजीकी भार्याएँ थीं; उनसे काक आदि पक्षी उत्पन्न हुए। ताप्रा के पुत्र घोड़े और लैंट थे। विनताके अरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र हुए। सुरसारे हजारों साँप उत्पन्न हुए और कद्गुके गर्भसे भी शेष, बासुकि और तक्षक आदि सहजों नाग हुए। क्रोधवशाके गर्भसे दंशनशील दाँतबाले सर्प प्रकट हुए। धरासे जल-पक्षी उत्पन्न हुए। सुरभिसे गाय-भैंस आदि पशुओंकी उत्पत्ति हुई। इराके गर्भसे तृण आदि उत्पन्न हुए। खसारे यश-नाक्षत्र और मुनिके गर्भसे अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसी प्रकार अरिष्टके गर्भसे गन्धर्व उत्पन्न हुए। इस तरह कल्पयजीसे स्थावर-जङ्गम जगत्की उत्पत्ति हुई॥ १२-१८॥

इन सबके असंख्य पुत्र हुए। देवताओंने देव्योंको युद्धमें जीत लिया। अपने पुत्रोंके मारे जानेपर दिसिने कल्पयजीको सेवासे संतुष्ट किया। वह इन्द्रका संहार करनेवाले पुत्रों पाना चाहती थी; उसने कल्पयजीसे अपना वह अभिमत बर प्राप्त कर लिया। जब वह गर्भवती और ब्रतपाल्ममें तत्पर थी, उस समय एक दिन भोजनके बाद बिना पैर बोये ही सो गयी। तब इन्द्रने यह छिन्द

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें प्रतिसर्गविषयक कल्पयजीका वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

सर्गका वर्णन

अन्निवेद्य कहते हैं—मुने ! [प्रकृतिसे] पहले महसूत्यकी सृष्टि हुई, इसे ब्राह्मण-समझना चाहिये। दूसरी तन्मात्राओंकी सृष्टि हुई, इसे भूतसर्ग कहा गया है। तीसरी वैकारिक सृष्टि है, इसे ऐन्त्रियकसर्ग कहते हैं। इस प्रकार यह त्रुदिपूर्वक प्रकट हुआ प्राकृतसर्ग तीन प्रकारका है। चौथे प्रकारकी सृष्टिको ‘भुख्यसर्ग’ कहते हैं। ‘भुख्य’ नाम है—स्थावरों (बृक्ष-पर्वत आदि-) का। जो ‘तिर्यक्षोत्ता’ कहा गया है, अर्थात् जिससे पशु-

(जुटि या दोष) छूटकर उसके गर्भमें प्रविष्ट हो, उस गर्भके द्वारें दुकहे कर दिये; [किंतु नतके प्रदर्शनमें उनकी मृत्यु नहीं हुई।] वे सभी अव्यन्त तेजस्वी और इन्द्रके सहायक उनचास भृष्ट नामक देवता हुए। मुने ! यह सार्व बृत्तान्त मैंने मुना दिया। श्रीहरि-स्वरूप ब्रह्माजीने पृथुको नर-लोकके राजपदपर अभिषिक्त करके क्रमशः दूसरोंको भी राज्य दिये—उन्हें विभिन्न समृद्धेंका राजा बनाया। अन्य सबके अधिपति [तथा परिगणित अधिपतियोंके भी अधिपति] साक्षात् श्रीहरि ही हैं॥ १९-२२॥

ब्राह्मणों और ओषधियोंके राजा चन्द्रमा हुए। जलके स्वामी वरुण हुए। श्रावाओंके राजा कुबेर हुए। द्वादश सूर्यों (आदित्यों) के अधीक्ष्वर भगवान् विष्णु थे। बुद्धोंके राजा पावक और महाराजोंके स्वामी इन्द्र हुए। प्रजापतियोंके स्वामी दक्ष और दानवोंके अधिपति प्रह्लाद हुए। पितरोंके यमराज और भूत आदिके स्वामी सर्वेत्यर्थ भगवान् शिव हुए तथा शैलों (पर्वतों) के राजा हिमवान् हुए और नदियोंका स्वामी सागर हुआ। गन्धर्वोंके चित्ररथ, नारोंके बासुकि, सर्पोंके तक्षक और पक्षियोंके गरुड़ राजा हुए। श्रेष्ठ हाथियोंका स्वामी पेरावत हुआ और गौओंका अधिपति साँड़। बनचर जीवोंका स्वामी शेर हुआ और बनस्पतियोंका प्लक्ष (पकड़ी)। घोड़ोंका स्वामी उच्चैःश्रवा हुआ। सुधन्वा पूर्व दिशाका रक्षक हुआ। दक्षिण दिशामें शाङ्कपद और पश्चिममें केतुमान् रक्षक नियुक्त हुए। इसी प्रकार उत्तर दिशामें हिरण्यरोमक राजा हुआ। यह प्रति-सर्गका वर्णन किया गया॥ २३-२९॥

है । स्थासि आदि दक्ष-कल्यांशसे भृगु आदि महर्षियोंने व्याह किया । कुछ लोग नित्य, नैमित्यिक और प्राकृत—इस भैद्रसे लीन प्रकारकी छष्टि मानते हैं । जो प्रतिदिन होनेवाले अवान्तर-प्रलयसे प्रतिदिन जन्म लेते रहते हैं, वह नित्यसंग^१ कहा गया है ॥ १-८ ॥

भृगुसे उनकी पत्नी ख्यातिने धाता-विधाता नामक दो देवताओंको जन्म दिया तथा लक्ष्मी नामकी कन्या भी उत्पन्न की, जो भगवान् विष्णुकी पत्नी हुई । इन्द्रने अपने अन्युदयके लिये इन्हींका स्वाक्षर किया था । धाता और विधाताके क्रमशः प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए । मृकण्डुसे मार्कण्डेयका जन्म हुआ । उनमें वेदशिरा उत्पन्न हुए । मरीचिके सम्मूतिके गर्भसे पौर्णमास नामक पुत्र हुआ और अङ्गिराके सम्मूतिके गर्भसे अनेक पुत्र तथा सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्याएँ हुईं । अङ्गिके अंशसे अनसूयाने सोम, हुर्वासा और दत्तात्रेय नामक पुत्रोंको जन्म दिया । इनमें दत्तात्रेय महान् योगी थे । पुलस्त्य सुनिकी पत्नी प्रीतिके गर्भसे दत्तोलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । पुलस्त्यसे क्षमाके गर्भसे सहिष्णु एवं सर्वपादिकका^२ जन्म हुआ । क्रतुके उत्तरसे बालविल्य नामक साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए, जो अङ्गूठेके पोदोंके बराबर और महान् तेजस्वी थे । विष्णुउरुज्जितके गर्भसे राजा, गात्र, ऊर्ध्वाहु, सबन, अनघ, शुक्र और सुतपा—ये सात शृंखि प्रकट हुए ॥ ९-१५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें जगत्-सुषिका ब्रह्मनामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

इक्षीसर्वोँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी समान्य पूजाका विधान

नारदजी बोले—अब मैं विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाका वर्णन करता हूँ तथा समस्त कामनाओंको देनेवाले पूजा-सम्बन्धी मन्त्रोंको भी बतलाता हूँ । भगवान् विष्णुके पूजनमें सर्वप्रथम परिवारसहित भगवान् अन्युतको नमस्कार करके पूजन आरम्भ करे, इसी प्रकार पूजा-मण्डपके द्वारदेशमें क्रमशः दक्षिण-वाम भागमें धाता और विधाताका तथा गङ्गा और यमुनाका भी पूजन करे । फिर शृङ्खलनिधि और पश्चनिधि—इन दो निधियोंकी, द्वारलक्ष्मी-

* छही-करी कर्मणादिक नाम मिलता है ।

स्वाहा एवं अभिसे पात्रक, पवमान और शूद्रि नामक पुत्र हुए । इसी प्रकार अजसे अनिष्टाच, वर्हिष्टव, अनन्ति एवं साम्बि पितर हुए । पितरोंसे स्वधाके गर्भसे मेना और वैधारिणी नामक दो कन्याएँ हुईं । अधर्मकी पत्नी हिंसा हुई; उन दोनोंसे अमृत नामक पुत्र और निष्ठाति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई । [इन दोनोंने परस्पर विवाह किया और] इनसे भय तथा नरकका जन्म हुआ । क्रमशः माया और वेदना इनकी पत्नियाँ हुईं । इनमेंसे मायाने [भयके सम्पर्कसे] समस्त प्राणियोंके प्राण लेनेवाले मृत्युको जन्म दिया और वेदनाने नरकके संयोगसे दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया । इसके पश्चात् मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, दृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई । ब्रह्माजीसे एक रोता हुआ पुत्र हुआ, जो रुदन करनेके कारण ‘रुद्र’ नामसे प्रसिद्ध हुआ । तथा हे द्विज ! उन पितामह (ब्रह्माजी) ने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव आदि नामोंसे पुकारा । रुद्रकी पत्नी सर्ताने अपने पिता दक्षपर कोप करनेके कारण देहत्याग किया और हिमवानकी कन्यालूपमें प्रकट होकर पुनः वैशंकरजांकी ही धर्मपत्नी हुई । किंतु समय नारदजीने श्रृङ्खियोंके प्रति विष्णु आदि देवताओंकी पूजाका विधान बतलाया था । स्नान आदि पूर्वक की जानेवाली उन पूजाओंका विधिवत् अनुष्ठान करके स्वायम्भूत मनु आदिने भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त किये थे ॥ १६—२३ ॥

की, बालु-पुरुषकी तथा आधारदाति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, धर्म, शान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे । तदनन्तर अधर्म आदिका (अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यका) पूजन करे तथा एक कमलकी भावना करके उसके मूल, नाल, पद्म, केशर और कर्णिकाओंकी पूजा करे ।

फिर शृङ्खल आदि चारों वेदोंकी, सत्ययुग आदि युगोंकी, सत्त्व आदि तुणोंकी और सूर्य आदिके मण्डलकी

पूजा करे। इसी प्रकार विमला, उत्तर्पिणी, शाना, किया, योगा आदि जो शक्तियाँ हैं, उनकी पूजा करे तथा प्रही, लता, ईशा, अनुभवा, निर्भल्पूर्ति दुर्गा, सरदत्ती, गण (गणेश), क्षेत्रपाल और बालुदेव [संकरण, प्रद्युम्न, अनिष्ट] आदिका पूजन करे। इनके बाद हृदय, सिर, चूडा (शिखा), धर्म (कवच), नेत्र आदि अङ्गोंकी, फिर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म नामक अङ्गोंकी, श्रीवत्स, कौसुम एवं बनमालाकी तथा लक्ष्मी, पुष्टि, गरुड और गुरुदेवकी पूजा करे। तत्प्रथात् इन्द्र, अग्नि, यम, निर्मूलि, जल (ब्रह्म), वायु, कुवेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त—इन दिक्पालोंकी, इनके अङ्गोंकी, कुमुद आदि विष्णु-पार्षदों या दारपालोंकी और विवरक्सेनकी आवरण-प्रणल आदिमें पूजा आदि करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १—८ ॥

अब भगवान् शिवकी सामान्य पूजा बतायी जाती है—इसमें पहले नन्दीका पूजन करना चाहिये, फिर महाकालका। तदनन्तर क्रमशः दुर्गा, यमुना, गण आदिका, वाणी, श्री, गुरु, वालुदेव, आधारशक्ति आदि और धर्म आदिका अर्चन करे। फिर वामा, ज्येष्ठा, रोद्री, काली, कल-विकरिणी, बलविकरिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा कल्याणमयी मनोन्मनी—इन नौ शक्तियोंका क्रमसे पूजन करे। ‘हाँ हं हाँ शिवमृतये नमः’—इस मन्त्रसे हृदयादि अङ्ग और ईशान आदि मुखसहित शिवकी पूजा करे। ‘हाँ शिवाय हौं’। इत्यादिसे केवल शिवकी अर्चना करे और ‘हाँ’। इत्यादिसे ईशानादि पाँच मुखोंकी आराधना करे। ‘हाँ गौथै नमः’। इससे गौरीका और ‘गं गणपतये नमः’। इस मन्त्रसे गणपतिकी, नाम-मन्त्रोंसे इन्द्र आदि दिक्पालोंकी, चण्डीकी और हृदय, सिर आदिकी भी पूजा करे ॥ ९—१२ ॥

अब क्रमशः सूर्यकी पूजाके मन्त्र बताये जाते हैं। इसमें दण्डी सर्वप्रथम पूजनीय हैं। फिर क्रमशः पिङ्गल, उच्चैःश्रवा और अशणकी पूजा करे। तत्प्रथात् प्रभूत, विमल, सोम, दोनों संध्याकाल, परसुल और स्कन्द आदिकी मध्यमें पूजा करे। इसके बाद दीपा, सूक्ष्मा,

१. ईशान, वामदेव, सूर्योजात, अवोर और तत्पुरुष—ये शिवके पाँच मुख हैं। हाँ ईशानाय नमः। ही वामदेवाय नमः। हं सूर्योजाताय नमः। है अवोराय नमः। हाँ तत्पुरुषाय नमः।—इन मन्त्रोंसे इन मुखोंकी पूजा करनी चाहिये।

जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोका, विचुता तथा स्त्री—मुखी—इन नौ शक्तियोंकी पूजा होनी चाहिये। तत्प्रथात् ‘ॐ ब्रह्मादिष्टुष्टिवाक्यम् तौदाय शमः।’ इष्ट मन्त्रसे सूर्यके आसनका स्थान और पूजन करे। फिर ‘ॐ तं शालोलकाय नमः।’ इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी मूर्तिकी उद्घाटना करके उत्तरका अर्चन करे। तत्प्रथात् ‘ॐ हाँ ही शः सूर्याय नमः।’ इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी पूजा करे। इसके बाद हृदयादिका पूजन करे—‘ॐ आं नमः।’ इससे हृदयकी ‘ॐ अर्काय नमः।’ इससे शिरकी पूजा करे। इसी प्रकार अग्नि, ईशा और ध्यायुमें अधिष्ठित सूर्यदेवका भी पूजन करे। फिर ‘ॐ भूर्सुवः स्वः ऋषांस्त्रियै विश्वायै नमः।’ इससे शिखाकी, ‘ॐ हूं कवचाय नमः।’ इससे कवचकी, ‘ॐ भां नेत्राभ्यां नमः।’ इससे नेत्रकी और ‘ॐ रम् अर्कास्त्राय नमः।’ इससे अङ्गकी पूजा करे। इसके बाद सूर्यकी शक्ति रानी संशाकी तथा उनसे प्रकट हुई छायादेवीकी पूजा करे। फिर चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—क्रमशः। इन ग्रहोंका और सूर्यके प्रवण्ड तेजका पूजन करे। अब संक्षेपसे पूजन बतलाते हैं—देवनाके आसन, मूर्ति, मूल, हृदय आदि अङ्ग और परिचारक इनकी ही पूजा होती है ॥ १३—१९ ॥

भगवान् विष्णुके आसनका पूजन ‘ॐ श्री श्री श्रीधरो हरि: हाँ।’ इस मन्त्रसे करना चाहिये। इसी मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी मूर्तिका भी पूजन करे। यह सर्वप्रतिमन्त्र है। इसीको बैलेक्यमोहन मन्त्र भी कहते हैं। भगवान् के पूजनमें ‘ॐ हाँ हृषीकेशाय नमः।’ ‘ॐ हूं विश्ववे नमः।’—इन मन्त्रोंका उत्तरोग करे। सम्पूर्ण दीर्घ स्वरोंके द्वारा हृदय आदिकी पूजा करे; जैसे—‘ॐ आं हृदयाय नमः।’ इससे हृदयकी, ‘ॐ हूं शिरसे नमः।’ इससे शिखाकी, ‘ॐ एं कवचाय नमः।’ इससे नेत्रोंकी और ‘ॐ औं अङ्गाभ्यां नमः।’ इससे अङ्गकी पूजा करे। पॅचवर्षी अर्थात् परिचारकोंकी पूजा संग्राम आदिमें विजय आदि देनेवाली है। परिचारकोंमें चक्र, गदा, शङ्ख, मुसल, लङ्घ, शार्दूलनुप, पात्र, अंकुश, श्रीवत्स, कौसुम, बनमाला, ‘ओ’। इस बीजमें युक्त श्री—महालक्ष्मी, गरुड, गुरुदेव और इन्द्रादि देवताओंका पूजन किया जाता है। [इनके पूजनमें प्रणवसहित नामके आदि अक्षरमें अनुग्राम लगाकर चतुर्थ विभक्तियुक्त नामके अन्तमें ‘नमः।’ जोड़ना

चाहिये । जैसे 'ॐ गं ब्रह्मण्य नमः ।' 'ॐ गं शशवै नमः ।' इत्यादि । सरस्वतीके आत्मनकी पूजामें 'ॐ देवै सरस्वत्यै नमः ।' इस मन्त्रका उपयोग करे और उनकी मूर्तिके पूजानमें 'ॐ ह्रीं देवै सरस्वत्यै नमः ।' इस मन्त्रसे काम ले । हृदय आदिके लिये पूर्ववत् मन्त्र हैं । सरस्वतीके परिचारकोंमें लक्ष्मी, मेधा, कला, तुष्णि, पुष्टि, गौरी, प्रभा, मति, दुर्गा, गण, शुक्र और क्षेत्रपालकी पूजा करे ॥ २०—२४ ॥

तथा 'ॐ गं गणपतये नमः ।'—इस मन्त्रसे गणेशकी, 'ॐ ह्रीं दौर्यै नमः ।' इस मन्त्रसे गौरीकी, 'ॐ श्रीं विश्वै नमः ।' इससे श्रीकी, 'ॐ ह्रीं लक्ष्मितावै नमः ।' इस मन्त्रसे लक्ष्मिताकी, 'ॐ देवै ह्रीं सौं विष्णुराहै नमः ।' इस मन्त्रसे

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें विष्णु आदि देवताओंकी सामान्य पूजाके विवाहनका वर्णन नामक इसकीसर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

पूजाके अधिकारकी सिद्धिके लिये सामान्यतः स्थान-विधि

नारदजी बोले—विप्रवरो । पूजन आदि क्रियाओंके लिये पहले स्थान-विधिका वर्णन करता हूँ । पहले दृष्टिः-सम्भवी बीज या मन्त्रसे^१ मृतिका हाथमेंले । उसे दो भागों-में विभक्त कर एक भागके द्वारा [नाभिसे लेकर पैरोंतक लेपन करे, फिर दूसरे भागके द्वारा] अपने अन्य सब अङ्गों-में लेपन कर मल-स्थान सम्पन्न करे । तदनन्तर दुद्ध ज्ञानके लिये जड़में हुबकी लगाकर आचमन करे । दृष्टिः-मन्त्रसे स्वास करके आत्म-रक्षा करे । इसके बाद [तन्त्रोक्त रीतिसे] विधि-स्थान करे । और प्राणायामादिपूर्वक हृदयमें भगवान्

* दृष्टिः—बीज 'ह्रीं' है । मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ द्वयं बीरं महाविष्णुं ज्वलतं सर्वतोमुखम् ।

दृष्टिः—सीधं भद्रं शशुशृष्टं नगम्यहम् ॥

† सोमशम्भुकी कर्मकाण्डकमावलीके अनुसार मिठौके एक भाग-को नाभिसे लेकर पैरोंतक लगावे और दूसरे भागको शेष सारे शरीर-में । इसके बाद दोनों हाथोंसे बाँस्त, कान, नाक बंद करके अङ्गमें हुबकी लगावे । फिर मन-ही-मन कालिकी समान तेजवी वस्तका सरण करते हुए जड़से बाहर निकले । इस तरह मलज्ञान एवं संघोपासन सम्पन्न करके (तन्त्रोक्त रीतिसे) विधि-स्थान करना चाहिये । (प्राच्य कोक ९, १० तथा ११) ।

प्रिपुराकी पूजा करे । इस प्रकार 'विष्णु' शब्द भी चतुर्थी विभक्त्यन्त हो और अन्तमें 'नमः' शब्दका प्रयोग हो । जिन देवताओंके लिये कोई विशेष मन्त्र नहीं बतलाया गया है, उनके नामके आदिमें प्रणव लगावे । नामके आदि अक्षरमें अनुस्वार लगाकर उसे बीजके रूपमें रखले तथा पूर्ववत् नामके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और 'नमः' शब्द जोड़ ले । पूजन और जपमें प्रायः सभी मन्त्र ऊँकारयुक्त बताये गये हैं । अन्तमें तिल और ची आदिसे होम करे । इस प्रकार ये देवता और मन्त्र धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ देनेवाले हैं । जो पूजाके इन मन्त्रोंका पाठ करेगा, वह समस्त भोगोंका उपयोग कर अन्तमें देवलोकको प्राप्त होगा ॥ २५—२७ ॥

विष्णुका ध्यान करते हुए 'ॐ नमो नारायणम्' इस अष्टाक्षर-मन्त्रसे हाथमें मिठौ लेकर उसके तीन भाग करे । फिर दृष्टिः-मन्त्रके जपपूर्वक [उन तीनों भागोंसे तीन बार] दिग्बन्धु करे । इसके बाद 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाम् ।' इस वासुदेव-मन्त्रका जप करके संकल्पपूर्वक तीर्थ-जलका सर्वा करे । फिर वेद आदिके मन्त्रोंसे अपने शरीरका और आराध्यदेवकी प्रतिमा या ध्यानकलित विग्रहका मार्जन करे । इसके बाद अधमर्ण-मन्त्रका जपकर बख पहनकर आगेका कार्य करे । पहले अङ्गस्वास कर मार्जन-मन्त्रोंसे मार्जन करे । इसके बाद हाथमें जल लेकर नारायण-मन्त्रसे प्राण-संथम करके जलको नासिकासे लगाकर सूंचे । फिर भगवान्का ध्यान करते हुए जलका परित्याग कर दे । इसके बाद अर्थ देकर ['ॐ नमो भगवते वासुदेवाम् ।' इस] द्वादशाश्वर मन्त्र-का जप करे । फिर अन्य देवता आदिका भक्तिपूर्वक तर्पण करे । योगीठ आदिके कमसे दिक्षालक्षके मन्त्रों और देवताओंका, भूषियोंका, पितरोंका, मनुष्योंका तथा

१. प्रत्येक दिवामें यहाँके विज्ञातर भूतोंके भगवनेही भावना-से उक्त शृणिवाको विवेचना 'विज्ञातर' करकाया है ।

सम्पूर्ण भूतोंका रक्षण करके आचमन करे । फिर अङ्गभ्यास करके अपने हृदयमें मन्त्रोंका उपसंहार कर

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें भूजाके लिये सामान्यतः ज्ञान-विधिका वर्णन भासक बाह्यसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

तेर्ईसर्वां अध्याय

देवताओं तथा भगवान् विष्णुकी सामान्य पूजा-विधि

नारदजी बोले—ब्रह्मर्थी ! अब मैं पूजाकी वर्णन करूँगा, जिसका अनुषान करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । हाथ-पैर खोकर आखनपर बैठकर आचमन करे । फिर मौनमासके रहकर सब औरते अपनी रक्षा करे । * पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके स्वसिकासन या पश्चासन आदि कोई-सा आसन बांधकर स्थिर बैठे और नाभिके मध्यभागमें स्थित धूपेंके समान वर्णवाले, प्रचण्ड बायुलप (यं बीजका चिन्तन करते हुए अपने शरीरसे सम्पूर्ण पापोंको भावना-द्वारा पृथक् करे । फिर हृदय-कमलके मध्यमें स्थित तेजकी राशिभूत 'क्षूँ' बीजका ध्यान करते हुए ऊपर, नीचे तथा अगल-बगलमें फैली हुई अभिन्नी प्रचण्ड ज्वालाओंसे उस पापको जला डाले । इसके बाद त्रिमात्र त्रुपुरुष आकाशमें स्थित चन्द्रमाकी आकृतिके समान किसी शान्त ज्योतिका ध्यान करे और उससे प्रवाहित होकर हृदय-कमलमें व्याप्त होनेवाली तुष्टामय सलिलकी धाराओंसे, जो सुषुम्ना-योनिके मार्गसे शरीरकी सब नाडियोंमें फैल रही हैं, अपने निष्पाप शरीरको आप्लावित करे । इस प्रकार शरीरकी शुद्धि करके तत्त्वोंका नाश करे । फिर हस्तशुद्धि करे । इसके लिये पहले दोनों हाथोंमें अख एवं व्यापकमुद्दा करे और दाहिने अङ्गूठेसे आरम्भ करके करतल और करपृष्ठतक न्यास करे ॥ १—५ ॥

इसके बाद एक-एक अक्षरके क्रमसे बारह अङ्गोंवाले

* अपकामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम् ।

- सर्वेषामविरोधेन पूजाकर्म समाप्ते ॥

इसादि मन्त्रोंकारा अपना कवच आदिके मन्त्रोंसे रक्षा करे । दाहिने हाथमें रक्षा-दण्ड बांधकर भी रक्षा की जाती है । इसका मत है—

येन वदो वक्ती राजा दाववेन्द्रो मणवः ।

तेव त्वं प्रतिवास्मि रहे मा चल जा चल ॥

पूजन-प्रान्दिरमें प्रक्षेप करे । इसी प्रकार अन्य पूजाओंमें भी मूल आदि मन्त्रोंसे ज्ञान-कार्य सम्पन्न करे ॥ १—९ ॥

इस प्रकार आग्नेय महापुराणमें भूजाके लिये सामान्यतः ज्ञान-विधिका वर्णन भासक बाह्यसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

दादशाश्वर मूल-मन्त्रका अपने देहमें बारह मन्त्र-बाक्षों-द्वारा न्याल करे । हृदय, लिंग, शिखा, कवच, अख, नेत्र, उदर, पीठ, बाहु, ऊरु, छुटना, पैर—ये शरीरके बारह स्थान हैं, इनमें ही दादशाश्वरके एक-एक वर्षका न्याल करे । (वया—ॐ नमः हृष्णे । ॐ नमः विश्वामिति । ॐ नमः विष्णवान् । इत्यादि) । फिर मुझ समर्पणकर भगवान् विष्णुका स्वरण करे और अङ्गौत्तर-शत (१०८) मन्त्रका जप करके पूजन करे ॥ ३-८ ॥

बायें भागमें जलपात्र और दाहिने भागमें पूजाका सामान रखकर 'भक्षाव फट्' मन्त्रसे उसको धो दें; इसके पश्चात् गन्ध और पुष्प आदिसे युक्त दो अर्घ-पात्र रखसे । फिर हाथमें जल लेकर 'भक्षाव फट्' । इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर योगीठको सींच दे । उसके मध्य भागमें सर्वव्यापी चेतन ज्योतिर्मय परमेश्वर भीहरिका ध्यान करके उस योगीठपर पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे धर्म, शान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अभिन आदि दिक्षपाल तथा अपर्य आदिके विग्रहकी स्थापना करे । उस पीठपर कच्छप, अनन्त, पश्च, सूर्य आदि मण्डल और विमला आदि शक्तियोंकी कमलके केसरके रूपमें और ग्रहोंकी कणिकामें स्थापना करे । पहले अपने हृदयमें ध्यान करे । फिर मण्डलमें आवाहन करके पूजन करे । [आवाहनके अनन्तर] क्रमदाः अर्धं, पात्र, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, यजोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिको पुण्डरीकाश-विद्या ('ॐ नमो भगवते पुण्डरी-काशाव ।'—इस मन्त्र-) से अर्पण करे ॥ ९—१४ ॥

मण्डलके पूर्व आदि द्वारोंपर भगवान्के विग्रहकी सेवामें रहनेवाले पार्वदोंकी पूजा करे । पूर्वके दरवाजेपर गद्धकी, दक्षिणद्वारपर चक्रकी, उत्तरवाले द्वारपर गद्धाकी और ईशान तथा अभिन्नोंमें शशु एवं धनुषकी स्थापना करे । भगवान्के बायें-दायें दो तूणीर, बायें भागमें तलवार

और चर्म (छाल), दाहिने भागमें लकड़ी और बाम मारामें पुष्टि देवीकी स्थापना करे । भगवान्के सामने बनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभको स्थापित करे । मण्डलके बाहर दिक्गालोंकी स्थापना करे । मण्डलके भीतर और बाहर स्थापित किये हुए सभी देवताओंकी उनके नाम-मन्त्रोंसे पूजा करे । सबके अन्तमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये ॥ १५-१७ ॥

अङ्गोऽसहित पृथक्-पृथक् बीज-मन्त्रोंसे और सभी बीज-मन्त्रोंको एक साथ पढ़कर भी भगवान्का अर्चन करे । मन्त्र-जप करके भगवान्की परिक्रमा करे और स्तुतिके पश्चात् अर्थ-समर्पण कर हृदयमें भगवान्की स्थापना कर ले । फिर यह स्थान करे कि 'परब्रह्म भगवान् विष्णु मैं हो हूँ' [—इस प्रकार अभेदभावसे चिन्तन करके पूजन करना चाहिये ।] भगवान्का आवाहन करते समय 'आगच्छ' (भगवन् ! आहये ।)

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सामन्यपूजा-विषयक वर्णन'नामक तेर्हसराँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

कुण्ड-निर्माण एवं अग्नि-स्थापन-सम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—महर्षियो ! अब मैं अग्नि-सम्बन्धी कार्यका वर्णन करूँगा, जिससे मनुष्य सम्पूर्ण मनोवाचित्त चरन्तोंका भागी होता है । चौबीस अङ्गुलकी चौकोर भूमिको सूतसे नापकर चिह्न बना दे । फिर उस क्षेत्रको सब ओरसे बाबार खोदे । दो अङ्गुल भूमि चारों ओर छोड़कर खोदे हुए कुण्डकी मेखला बनावे । मेखलाएँ तीन होती हैं, जो 'स्त्रव, रज और तम' नामसे कही गयी हैं । उनका मुख पूर्व, अर्थात् बाह्य दिशाकी ओर रहना चाहिये । मेखलाओंकी अधिकतम ऊँचाई बारह अङ्गुलकी रखें, अर्थात् भीतरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई बारह अङ्गुल रहनी चाहिये । [उसके बाह्यभागमें पूसरी मेखलाकी ऊँचाई आठ अङ्गुलकी और उसके भी बाह्यभागमें तीसरी मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी रहनी चाहिये ।] इसकी चौड़ाई क्रमशः आठ, दो और चार अङ्गुलकी होती है ॥ १-३ ॥*

* शारदातिलकमें टहन वसिष्ठसंहिताके बचनानुसार पहली मेखला बारह अङ्गुल चौड़ी होनी चाहिये और चार अङ्गुल ऊँची, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी और चार अङ्गुल ऊँची, फिर तीसरी

इस प्रकार पढ़ना चाहिये और विसर्जनके समय 'क्षमात्मा' (हमारी कृष्णियोंको क्षमा कीजियेगा ।)—ऐसी शोभा करनी चाहिये ॥ १८-१९ ॥

इस प्रकार अष्टाक्षर आदि मन्त्रोंसे पूजा करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है । यह भगवान्के एक विग्रहका पूजन बताया गया । अब नौ व्यूहोंके पूजनकी विधि तुनो ॥ २० ॥

दोनों अँगूठों और तर्जनी आदिमें बासुदेव, बलमद आदिका न्याय करे । इसके बाद शशीरमें अर्थात् सिर ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुहा अङ्ग, जानु और चरण आदि अङ्गोंमें न्याय करे । फिर मध्यमें एवं पूर्व आदि दिव्याओंमें पूजन करे । इस प्रकार एक पीठपर एक व्यूहके क्रमसे पूर्ववत् नौ व्यूहोंके लिये नौ पीठोंकी स्थापना करे । नौ कमलोंमें नौ मूर्तियोंके द्वारा पूर्ववत् नौ व्यूहोंका पूजन करे । कमलके मध्यभागमें जो भगवान्का स्थान है, उसमें बासुदेवकी पूजा करे ॥ २१-२३ ॥

योनि सुन्दर बनायी जाय । उसकी लंबाई दस अङ्गुल-की हो । वह आगे-आगेकी ओर क्रमशः छः, चार और

चार-चार अङ्गुल चौड़ी तथा ऊँची रहनी चाहिये । यथा—

प्रथमा	मेखला	तत्र	दादशाकुलविस्तृता ।
चतुर्भिरङ्गुलैस्तस्याशोक्तिश्च			समन्ततः ॥
तस्याशोपरि	वप्रः	स्याच्चतुरङ्गुलमुक्तः ।	
अष्टाभिरङ्गुलैः	सम्यग्	विस्तीर्णस्तु	समन्ततः ॥
तस्योपरि	पुनः	सोऽपि तृतीयकः ।	
न्ततुरङ्गुलविस्तीर्णशोक्ततश्च			तथाचितः ॥

इस ब्रह्मसे बाहरकी ओरसे पहली मेखलाकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी होगी, फिर बादवाली उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेके कारण मूलनः आठ अङ्गुल ऊँची होगी तथा तीसरी उससे भी चार अङ्गुल ऊँची होनेसे मूलनः बारह अङ्गुल ऊँची होगी । अग्निपुराणमें इसी वृष्टिसे भीतरकी ओरसे पहली मेखलाको बारह अङ्गुल ऊँची कहा गया है । चौड़ाई तो मौनरकी ओरसे बाहरकी ओर देखनेपर पहली बारह अङ्गुल चौड़ी, दूसरी आठ अङ्गुल चौड़ी तथा तीसरी चार अङ्गुल चौड़ी होगी । यहाँ भूलमें जो आठ, दो और चार अङ्गुलका विस्तार बताया गया है, इसका आपार अन्वेषणीय है ।

दो अङ्गुल लँची रहे अर्थात् उसका विश्वला भाग छः अङ्गुल, उससे आगे का भाग चार अङ्गुल और उससे भी आगे का भाग दो अङ्गुल लँचा होना चाहिये। योनिका स्थान कुण्डकी पश्चिम दिशाका मध्यभाग है। उसे आगे की ओर कमशः नीची बनाना चाहिये। उसकी आकृति पीपलके पत्तेकी-री होनी चाहिये। उसका कुछ भाग कुण्डमें प्रविष्ट रहना चाहिये। योनिका आयाम चार अङ्गुलका रहे और नाल पंद्रह अङ्गुल बढ़ा हो। योनिका मूलभाग तीन अङ्गुल और उससे आगे का भाग छः अङ्गुल विस्तृत हो। यह एक हाथ लंबे-खौड़े कुण्डका लक्षण कहा गया है। दो हाथ या तीन हाथके कुण्डमें नियमानुसार सब बस्तुएँ तदनुरूप द्विगुण या त्रिगुण बढ़ जायेंगी ॥ ४-५ ॥

अब मैं एक या तीन मेलावाले गोल और अर्ध-चन्द्राकार आदि कुण्डोंका बर्णन करता हूँ। चौकोर कुण्डके आधे भाग, अर्थात् ठीक बीचों-बीचमें सूत रखकर उसे किसी कोणकी सीमातक ले जाय; मध्यभागसे कोणतक ले जानेमें सामान्य दिशाओंकी अपेक्षा वह सूत जितना बढ़ जाय, उसके आधे भागको प्रत्येक दिशामें बढ़ाकर स्थापित करे और मध्यस्थानसे उन्हीं बिन्दुओंपर सूतको सब और छुमावे तो गोल आकार बन जायगा। कुण्डार्धसे बढ़ा हुआ जो कोणभागार्थ है, उसे उत्तर दिशामें बढ़ाये तथा उसी सीधमें पूर्व और पश्चिम दिशामें भी बाहरकी ओर यक्षपूर्वक बढ़ाकर चिह्न कर दे। फिर मध्यस्थानमें सूतका एक सिर रखकर दूसरा छोर पूर्व दिशावाले चिह्नपर रखने और उसे दक्षिणकी ओरसे छुमाते हुए पश्चिम दिशाके चिह्नातक ले जाय। इससे अर्धचन्द्राकार चिह्न बन जायगा। फिर उस क्षेत्रको खोदनेपर सुन्दर अर्धचन्द्र-कुण्ड तैयार हो जायगा ॥ ७-९ ॥

* अर्थात् एक हाथके कुण्डकी लंबाई चौकाई २४ अङ्गुलकी होती है, दो हाथके कुण्डकी चौकीस अङ्गुल और तीन हाथके कुण्डकी एकतालीस अङ्गुल होनी है। इसी तरह अधिक हाथोंके विषयमें भी समझना चाहिये।

+ एक हाथ या २४ अङ्गुलके चौकोर क्षेत्रमें कुण्डार्ध होता है—१२ अङ्गुल और कोणभागार्थ है—१८ अङ्गुल। अतिरिक्त हुआ दूसरा अङ्गुल। उसका आधा भाग है—३ अङ्गुल। इसीको सब भोर बढ़ाकर सूत छुमानेसे गोल कुण्ड बनेगा।

‡ कुण्ड-निर्माणके लिये निम्नान्वित परिभाषाको ध्यानमें रखना चाहिये—८ परमाणुओंका एक वस्त्रेणु, ८ असरेणुओंका १ रेणु, ८ ऐरुओंका १ वालाघ, ८ वालाघोंकी १ लिख्या, ८ लिख्याओंकी

कमलकी आकृतिवाले सोल कुण्डकी मेलावाले राजापर चिह्न बनाये जायें। होमके लिये एक सुन्दर सुकृतेयां लायें।

१ यूका, ८ यूकाओंका १ यव, ८ यवोंका १ अङ्गुल, २१ अङ्गुलके पर्वतों १ रक्ष तथा २४ अङ्गुलका १ हाथ होता है। एक हाथ लंबे-खौड़े कुण्डको 'चतुरस' कहते हैं। चारों दिशाओंमें और एक-एक हाथ भूमिको मापकर वो कुण्ड तैयार किया जाता है, उसकी 'चतुरस' या 'चतुर्कोण' संसा है।

इसकी रचनाका प्रकार यो है—पहले पूर्व-पश्चिम आदि दिशाओंका सम्मक्ष परिशान कर ले। फिर जितना बड़ा क्षेत्र अभीष्ट हो, उसनेहीमें पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओंमें क्षीर गाढ़ दे। यदि २४ अङ्गुलका क्षेत्र अभीष्ट हो तो ४८ अङ्गुलका सूत लेकर उसमें बारह-बारह अङ्गुलपर चिह्न लगा दे। फिर स्तरमें दोनों कीलोंमें गांध दे। फिर उस क्षेत्रके चतुरांश चिह्नको जोणकी दिशाकी ओर खींचकर कोणका निश्चय करे। इससे चारों कोण शुद्ध होते हैं। इस प्रकार समान चतुरस क्षेत्र शुद्ध होता है। क्षेत्रशुद्धिके अनन्तर कुण्डका स्थान करे। चतुर्मुख क्षेत्रमें मुख और कोटिके अङ्गोंमें गुण करनेपर जो गुणनफल आता है, वही क्षेत्रफल होता है। इस प्रकार २४ अङ्गुलके क्षेत्रमें २४ अङ्गुल मुख और २४ अङ्गुल कोटि परस्पर गुणित हों तो ५७६ अङ्गुल क्षेत्रफल होगा।

चतुरस क्षेत्रको चौकीस भागोंमें विभक्त करे। फिर उसमेंसे तेरह भागको व्यासार्थ बाने और उतने ही विस्तारके परकालसे क्षेत्रके मध्यभागसे आरम्भ करके मण्डलाकार रेखा खींचनेपर उत्तम वृत्त कुण्ड बन जायगा।

चतुरस क्षेत्रके शतांश और पञ्चमांशको जोड़कर उतना अंश क्षेत्रमानमें स्थान दें। फिर जो क्षेत्रमान क्षेत्र रह जाय, उतने ही विस्तारका परकाल लेकर क्षेत्रके मध्यभागमें लगा दे और अर्ध-चतुरांश कीरेखा खींचे। फिर अर्धचन्द्रके एक अंशभागसे इन्होंने अर्धभागतक पक्की रेखा खींचे। इससे अर्धचन्द्रकुण्ड समीक्षी बनेगा। उदाहरणार्थ—२४ अङ्गुलके क्षेत्रका पञ्चमांश ४ अङ्गुल, ६ यवा, ३ यूका, १ लिख्या (या लिक्षा) और ५ वालाघ होगा। उस क्षेत्रका शतांश ० अङ्गुल, ० यवा, ३ यूका, ० लिक्षा और ४ वालाघ होगा। इन दोनोंका योग ४ अङ्गुल ६ यवा, ६ यूका, २ लिक्षा और १ वालाघ होगा। यह मान २४ अङ्गुलमें धटा दिया जाय तो शेष रहेगा १९ अङ्गुल, १ यवा, १ यूका, ५ लिक्षा और ७ वालाघ। उतने विस्तारके परकालसे अर्धचन्द्र बनाना चाहिये। असिपुराणमें इन कुण्डोंके निर्माणकी विधि मत्यन्त संक्षेपसे लिखी गयी है; अतः अन्य अन्योंका भूत भी वहाँ दे दिया गया है।

जो अपने आहुदण्डके बराबर हो । उसके दण्डका मूलभाग चतुरस्र हो । उसका माप सात या पाँच अङ्गुलका बताया गया है । उस चतुरस्रके तिहाई भागको सुदबाकर गर्त बनावे । उसके मध्यभागमें उत्तम शोभाभाग छुत हो । उक्त गर्तको नीचेसे ऊपरतक तथा अगल-बगलमें बराबर कुदावे । याइरका अर्थभाग छीलकर साफ करा दे (उसपर रंदा करा दे) । चारों ओर चौथाई अङ्गुल; जो शेषके आधेका आशा भाग है, भीतरसे भी छीलकर साफ (चिकना) करा दे । शेषार्धभागद्वारा उक्त खातकी सुन्दर मेलला बनावे । मेललाके भीतरी भागमें उस खातका कण्ठ तैयार करावे, जिसका सारा विस्तार मेललकी तीन-चौथाईके बराबर हो । कण्ठकी चौडाई एक या डेढ़ अङ्गुलके मापकी हो । उक्त सुक्के अग्रभागमें उसका मुख रहे, जिसका विस्तार चार या पाँच अङ्गुलका हो ॥१०-१४॥

सुखका मध्य भाग तीन या दो अङ्गुलका हो । उसे सुन्दर एवं शोभाभाग बनाया जाय । उसकी लंबाई भी चौडाईके ही बराबर हो । उस मुखका मध्य भाग नीचा और परम बुन्दर होना चाहिये । सुक्के कण्ठदेशमें एक ऐसा छेद रहे, जिसमें कनिष्ठिका अङ्गुलि प्रविष्ट हो जाय । कुण्ड (अर्थात् सुक्के मुख) का शेष भाग अपनी दिनिके अनुसार विचित्र शोभासे सम्पन्न किया जाय । सुक्के अतिरिक्त एक सुखा भी आवश्यक है, जिसकी लंबाई दण्डहित एक हाथकी हो । उसके ढंडेको गोल बनाया जाय । उस गोल ढंडेकी मोटाई दो अङ्गुलकी हो । उसे खूब सुन्दर बनाना चाहिये । सुखका मुख-भाग कैसा हो ? यह बताया जाता है । थोड़ी-सी कीचड़में गाय अथवा बछड़ेका पैर पहनेपर जैसा पदचिह्न उभर आता है, ठीक बैद्या ही सुखका मुख बनाया जाय, अर्थात् उस मुखका मध्य भाग दो भागोंमें विभक्त रहे । उपर्युक्त अग्रिकुण्डको गोबरसे लीपकर उसके भीतरकी भूमिपर बीचमें एक अङ्गुल मोटी एक रेखा खीचे, जो दक्षिणसे उत्तरकी ओर गयी हो । उस रेखाको 'वज्र' की संज्ञा दी गयी है । उस प्रथम उत्तराप्र रेखापर उसके दक्षिण और उत्तर पाद्वरमें दो पूर्वांश रेखाएँ खीचे । इन दोनों रेखाओंके बीचमें पुनः तीन धूर्धांश रेखाएँ खीचे । इनमें पहली रेखा दक्षिण भागमें हो हो और शेष दो क्रमशः उसके उत्तरोत्तर भागमें खीची जायें । मन्त्रज्ञ पुरुष हस प्रकार उल्लेखन (रेखाकरण) करके उस भूमिका अभ्युक्षण (सेचन) करे ।

फिर प्रणवके उच्चारणपूर्वक आवनाद्वारा एक विष्टर (आकृत) की कस्तना करके उसके ऊपर बैणवी शक्तिका आकाहन एवं स्थापन करे ॥ १५—२० ॥

देवीके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—‘वे दिव्य रूपस्थाली हैं और दिव्य बलाभूतोंसे विमूषित हैं ।’ तत्पश्चात् यह चिन्तन करे कि ‘देवीको संतुष्ट करनेके लिये अग्निदेवके रूपमें साक्षात् श्रीहरि पवारे हैं ।’ साथक (उन दोनोंका पूजन करके शुद्ध कांस्यादि-पात्रमें रक्खी और ऊपरसे शुद्ध कांस्यादि पात्रद्वारा ढकी हुई अग्निको लाकर, क्रव्याद-अंशाको अलग करके, ईक्षणादिसे शोषित उठा ॥) अग्निको कुण्डके भीतर स्थापित करे । तत्पश्चात् उस अग्निमें प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तजनीके अग्रभागके बराबरकी) समिधाएँ देकर कुशोंद्वारा तीन बार परिस्पूहन करे । फिर पूर्वादि सभी दिशाओंमें कुशास्तरण करके अग्निकी उत्तर दिशामें पश्चिमसे आरम्भ करके क्रमशः पूर्वादि दिशामें पात्रासादन करे—समिधा, कुशा, सुक्, सुखा, आज्यस्थाली, चरस्थाली तथा कुशान्धादित थी, (प्रणीता-पात्र, प्रोक्षणीपात्र) आदि ‘वस्तुएँ रखले । इसके बाद प्रणीताको सामने रखकर उसे जलसे भर दे और कुशासे प्रणीताका जल लेकर प्रोक्षणीपात्रका प्रोक्षण करे । तदनन्तर उसे बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथमें यहीत प्रणीताके जलसे भर दे । प्रणीता और हाथके बीचमें पवित्रीका अन्तर रहना चाहिये । प्रोक्षणीमें गिराते समय प्रणीताके जलको भूमिपर नहीं गिरने देना चाहिये । प्रोक्षणीमें अग्निदेवका ध्यान करके उसे कुण्डकी योनिके समीप अपने सामने रखले । फिर उस प्रोक्षणीके जलसे आत्मादित वस्तुओंको तीन बार सींचकर समिधाओंके बोक्षको खोलकर उसके नन्धनको सरकाकर सामने रखले । प्रणीतापात्रमें पुष्प छोड़कर उसमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके उसे अग्निसे उत्तर दिशामें कुशके ऊपर स्थापित कर दे (और अग्नि तथा प्रणीताके मध्य भागमें प्रोक्षणीपात्रको कुशापर रख दे) ॥ २१—२५ ॥

तदनन्तर आज्यस्थालीको धीसे भरकर अपने आगे रखले । फिर उसे आगपर चढ़ाकर सम्प्लवन एवं उत्तरवनकी क्रियादानंश परिस्पूह्य ईक्षणादिशोक्षितम् ॥ इति सोमशम्भुः

* वहि शुद्धाभ्यानीतं शुद्धपात्रोपरिस्तिम् ।

क्रव्यादानंशं परिस्पूह्य ईक्षणादिशोक्षितम् ॥ इति सोमशम्भुः

प्रकार है—) प्रादेशमात्र होने दो कुश हाथमें हैं । उनके अग्रभाग स्त्रिहत न हुए हीं तथा उनके गर्भमें बूजहा कुश अकुरित न हुआ हो । दोनों हाथोंको उत्तान रखने और उनके अकुड़ एवं कनिहिका अकुलिसे उन कुशोंको पकड़े रहे । इस तरह उन कुशोंद्वारा धीको थोड़ा-थोड़ा उठाकर ऊपरकी ओर तीन बार उठाले । प्रज्ञलित तुण आदि लेकर धीको देखे और उनमें कोई अपद्रव्य (खराब वस्तु) हो तो उसे निकाल दे । इसके बाद तुण अनिमें फेंककर उस धीको आगामसे उतार ले और मामने रखने । फिर सुक् और सु बाको लेकर उनके द्वारा होम-सम्बन्धी कार्य करे । पहले जलसे उनको धो ले । फिर अग्निसे तयाकर सम्मार्जन कुशों-द्वारा उनका मार्जन करे (उन कुशोंके अग्रभागोंद्वारा सुक्-सुबाके भीतरी भागका तथा मूल भागमें उनके बायां भागका मार्जन करना चाहिये) । तत्पश्चात् पुनः उन्हें जलसे धोकर आगसे तपावे और अपने दाहिने भागमें स्थापित कर दे । उसके बाद साधक प्रणवसे ही अथवा देवताके नामके आदिमें 'प्रणव' तथा अन्तमें 'नमः' पद ल्पाकर उसके उच्चारणपूर्वक होम करे ॥ २६—२९ ॥

इवनसे पहले अग्निके गर्भाभानसे लेकर सम्पूर्ण संस्कार अङ्ग-व्यवस्थाके अनुसार सम्पन्न करने चाहिये । मतान्तरके अनुसार नामान्तरत, वतवन्वान्तरत (यशोपवीतान्त), समावर्त-नान्त अथवा यशोधिकारान्त संस्कार अङ्गानुसार करने चाहिये । साधक सर्वत्र प्रणवका उच्चारण करते हुए पूजनोपचार अर्पित करे और अपने वैभवके अनुसार प्रथेक संस्कारके लिये अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोद्वारा होम करे । पहला गर्भाभान-संस्कार है, दूसरा पुंसवन, तीसरा सीमन्तोद्वयन, चौथा जातकर्म, पाँचवाँ नामकरण, छठा चूडाकरण, सातवाँ ब्रतवन्धन (यशोपवीत), आठवाँ वेदारम्भ, नवाँ समावर्तन तथा दसवाँ पल्लीवंशयोग (विवाह-) संस्कार है, जो यहके लिये अधिकार प्रदान करनेवाला है । क्रमशः एक-एक संस्कार-कर्मका चिन्तन और तदनुरूप पूजन करते हुए हृदय आदि अङ्ग-मन्त्रोद्वारा प्रति कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ अर्पित करें ॥ ३०—३५ ॥

* आवार्य सोमदान-भुने संस्कारोंके चिन्तनका कम इस प्रकार बताया है—अग्निस्त्रायन ही श्रीहरिके द्वारा देवताके गर्भमें शोजका आवान है । शैव होम-कर्ममें वार्षीय शिवके द्वारा वार्षीय शिवके गर्भमें शोजावान होता है । तत्पश्चात् देवताके परिशान-संवरण, शौचाचमन आदिका चिन्तन करके इदं-

तदनन्तर साधक मूलमन्त्रद्वारा चुवाले पूर्णाहुति है । उस समय मन्त्रके अन्तमें 'बौषधौ' पद लगाकर ल्पुतस्वरहै सुस्पष्ट मन्त्रोद्वारण करना चाहिये । इस तरह वैष्णव-अग्निका संस्कार करके उत्तर पिण्ड-देवताके निमित्त चह पकावे । वैदोपर भगवान् विष्णुकी स्थापना एवं आराधना करके मन्त्रोंका समरण करते हुए उनका पूजन करे । अङ्ग और आवरण-देवताओंसहित इष्टदेव श्रीहरिको आसन आदि उपचार अर्पित करते हुए उत्तम रीतिये उनकी पूजा करनी चाहिये । फिर गन्ध-पुष्पोद्वारा अर्चना करके सुरशेष नारायणदेवका ध्यान करनेके अनन्तर अग्निमें समिधारका आधान करे और अग्नीश्वर श्रीहरिके समीप 'आवार' संशक दो धृताहुतियाँ हैं । इनमेंसे एकको तो वायव्य-कोणमें दे और दूसरीको नैऋत्यकोणमें । यही इनके लिये क्रम है । तत्पश्चात् 'आव्यभाग' नामक दो आहुतियाँ क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशामें दे और उनमें अग्निदेवके दायें-चायें नेत्रकी भावना करे । शेष सब आहुतियोंको इनहोंके दीनमें मन्त्रोद्वारणपूर्वक देना चाहिये । जिस क्रमसे देवताओंकी पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे उनके लिये आहुति देनेका विचान है । धीसे इष्टदेवकी मूर्तिको तृत करे । इष्टदेव-सम्बन्धी इवन-संख्याकी अपेक्षा दशांश्वरे अङ्ग-देवताओंके लिये होम करे । धृत आदिसे, समिधारोंसे अथवा धृताक तिलोंसे सदा यजनीय देवताओंके लिये एक-एक वहस्त या एक-एक शत आहुतियाँ देनी चाहिये । इस प्रकार होमान्त-पूजन समाप्त करके स्नानादिसे शुद्ध हुए शिष्योंको गुह बुलाकर अपने आगे बिठावे । वे सभी शिष्य उपवासवत किये हों । उनमें पाश-बद्ध पशुकी भावना करके उनका प्रोक्षण करे ॥ ३६—४२ ॥

यत्व (नमः) के द्वारा गर्भाभिका पूजन करे, यथा—^{४८} गर्भाभन्ये नमः । पूजनके पश्चात् उस गर्भकी रक्षाके लिये भावना-द्वारा देवताके पाणिपत्तनमें 'अस्त्राय फट्' बोलकर कुशाका कहूप बांध दे । फिर पूजोंका मन्त्रसे अथवा सर्वोक्त-मन्त्रसे अग्निकी पूजा कर गर्भाभान-संस्कारके निमित्त इष्ट-मन्त्र (इष्टाय नमः) से ही आहुतियाँ हैं । दृतीय मासमें पुंसवनकी भावना करके, वामदेव-मन्त्रसे पूजन करके शिरोमन्त्र (शरसे स्वादा) द्वारा आहुति देनेका विचान है । षष्ठ मासमें सीमन्तोद्वयनकी भावना और पूजा करके 'शिवायै वषट्' इस मन्त्रसे आहुतियाँ देनी चाहिये । इसी तरह नामकरणादि संस्कारोंका भी पूजन-इवनादिके द्वारा सम्पादन कर लेना चाहिये ।

तदनन्तर उन सब दिव्योंको भावनाद्वारा अपने आत्मासे संयुक्त करके अविद्या और कर्मके बन्धनोंसे आवङ्द हो लिङ्गशरीरका अनुर्वतन करनेवाले चैतन्य (जीव) का, जो लिङ्गशरीरके साथ बँधा हुआ है, ध्यान-मारणसे साक्षात्कार करके उसका सम्बूद्ध प्रोक्षण करनेके पश्चात् बालुबीज (वं) के द्वारा उसके शरीरका शोषण करे। इसके बाद अग्निबीज (रं) के चिन्तनसे अग्नि प्रकट करके यह भावना करे कि 'ब्रह्माण्ड' संशक सारी सृष्टि हाथ होकर भस्मकी पर्वताकार राशिके समान स्थित है। तत्परात् भावनाद्वारा ही बलुबीज (वं) के चिन्तनसे अपार जलराशि प्रकट करके उस भस्मराशिको बहा दे और संसार अब बाणीमात्रमें ही शेष रह गया है—ऐसा स्मरण करे। तदनन्तर बहाँ (ल) बीजस्वरूपा भगवानकी पार्थिवी शक्तिका न्यास करे। फिर ध्यानद्वारा देखे कि समस्त तत्त्वात्राओंसे आद्वृत शुभ पार्थिव-तत्त्व विराजमान है। उससे एक अण्ड प्रकट हुआ है, जो उसके आधारपर स्थित है और वही उसका उपादान भी है। उस अण्डके भीतर प्रणवस्वरूपा मूर्तिका चिन्तन करे॥ ४३-४७ ॥

तदनन्तर अपने आत्मामें स्थित पूर्वसंस्कृत लिङ्ग-शरीरका उस पुरुषमें संकरण करावे, अर्थात् यह भावना करे कि वह पुरुष लिङ्गशरीरसे युक्त है। उसके उस शरीरमें सभी इन्द्रियोंके आकार पृथक्-पृथक् अभिव्यक्त हैं तथा वह पुरुष क्रमशः बढ़ता और पुष्ट होता जा रहा है। फिर ध्यानमें देखे कि वह अण्ड एक वर्षतक बढ़कर और पुष्ट होकर पूर्ण गया है। उसके दो टुकड़े ही गये हैं। उसमें कापरबाला टुकड़ा छुलोक है और नीचेबाला भूलोक। इन दोनोंके बीचमें प्रजापति पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार बहाँ उसमें हुए प्रजापतिका ध्यान करके पुनः प्रणवसे उन शिशुरूप प्रजापतिका प्रोक्षण करे। फिर यथास्थान पूर्वोक्त न्यास करके उनके शरीरको मन्त्रमय

इस प्रकार आदि आरनेव महापुरुषमें कुष्ठजिमीण और अग्नि-स्त्रापनसम्बन्धी कार्य आदिका वर्णन।

विषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

बना दे। उनके ऊपर विष्णुद्वारा रक्षे और उन्हें बेष्टक माने। इस तरह एक अथवा बहुतसे लोगोंके जन्मका ध्यानद्वारा प्रत्यक्ष करे (दिव्योंके भी नूतन दिव्य जन्मकी भावना करे)। तदनन्तर भूलमन्त्रसे दिव्योंके दोनों हाथ पकड़कर मन्त्रोपदेश गुरु नेत्रमन्त्र (कौषट्) के उच्चारणपूर्वक नूतन एवं छिद्ररहित बलसे उनके नेत्रोंको बोঁध दे। फिर देवाधिदेव भगवानकी यथोचित पूजा सम्पन्न करके तत्त्वश आचार्य हाथमें पुष्पाङ्गुलि धारण करनेवाले उन दिव्योंको अपने पास पूर्वाभिमुख बैठावे ॥ ४८-५३ ॥

इस प्रकार गुरुद्वारा दिव्य नूतन जन्म पाकर वे दिव्य भी श्रीहरिको पुष्पाङ्गुलि अर्पित करके पुण्य आदि उपचारोंसे उनका पूजन करें। तदनन्तर पुनः बालुदेवकी अर्चना करके वे गुरुके चरणोंका पूजन करें। दक्षिणारूपमें उन्हें अपना सर्वस अथवा आधी सम्पत्ति समर्पित कर दें। इसके बाद गुरु दिव्योंको आवश्यक शिक्षा दें और वे (दिव्य) नाम-मन्त्रोदारा श्रीहरिका पूजन करें। फिर मण्डलमें विराजमान शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्वक्सेनका यजन करें, जो द्वारपालके रूपमें अपनी तर्जनी अङ्गुलिसे लोगोंको तर्जना देते हुए अनुचित क्रियासे रोक रहे हैं। इसके बाद श्रीहरिकी प्रतिमाका विसर्जन करे। भगवान् विष्णुका सारा निर्मल्य विष्वक्सेनको अर्पित कर दे।

तदनन्तर प्रणीताके जलसे अपना और अश्विणुष्टका अभिषेक करके बहाँके अग्निदेवको अपने आत्मामें लीन कर ले। इसके पश्चात् विष्वक्सेनका विसर्जन करे। ऐसा करनेसे भोगकी इच्छा रखनेवाला साधक सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुको पा लेता है और सुमुक्षु पुरुष श्रीहरिमें विलीन होता—सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ५४-५८ ॥

पञ्चीसवाँ अध्याय

बासुदेव, संकर्ण आदिके मन्त्रोंका निर्देश तथा एक व्यूहसे लेकर द्वादश व्यूहतकके व्यूहोंका एवं पञ्चविंश और पद्मविंश व्यूहका वर्णन

बारदजी कहते हैं—शृणितो ! अब मैं बासुदेव आदिके आराधनीय मन्त्रोंका लक्षण बता रहा हूँ । बासुदेव, संकर्ण, प्रद्युम्न और अनिष्टद—इन चार व्यूह-मूर्तियोंके नामके आदिमें ३०, फिर कमशः ‘अ आ अं अः’ ये चार बीज तथा नमो भगवते पद जोड़ने चाहिये और अन्तमें ‘नमः’ पदको जोड़ देना चाहिये । ऐसा करनेसे इनके पृथक्-पृथक् चार मन्त्र बन जाते हैं । १० इसके बाद नारायण-मन्त्र है, जिसका स्वरूप है—‘ॐ नमो नारायणाय ।’ १० तत्सद् व्रह्मणे ३० नमः ।—यह ब्रह्ममन्त्र है । ३० विष्णुवे नमः ।—यह विष्णुमन्त्र है । ३० शौ ओ नमो भगवते नरसिंहाय नमः ।—यह नरसिंहमन्त्र है । ३० भूरंसो भगवते वराहाय ।—यह भगवान् वराहका मन्त्र है । ये सभी मन्त्रराज हैं । उपर्युक्त नौ मन्त्रोंके बासुदेव आदि नौ नायक हैं, जो उपासकोंके बल्लभ (इष्टदेवता) हैं । इनकी अङ्ग-कानित कमशः ज्वाकुसुमके सदृश अरण, इर्दीके समान पीली, नीली, श्यामल, लोहित, मेघ सदृश, अग्नितुल्य तथा मधुके समान पिङ्गल है । तन्त्रवेत्ता पुरुषोंके स्वरके बीजोद्भाव कमशः पृथक्-पृथक् ‘हृदय’ आदि अङ्गोंकी कल्पना करनी चाहिये । उन बीजोंके अन्तमें अङ्गोंके नाम रहने चाहिये—(यथा—३० आं हृदयाय नमः । ३० इं शिरसे स्वाहा । ३० ऊं शिखायै वषट् । हृदयादि) ॥ १—५६ ॥

जिनके आदिमें व्यक्तन अक्षर होते हैं, उनके लक्षण अन्य प्रकारके हैं । दीर्घ स्वरोंके संयोगसे उनके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं । उनके अन्तमें अङ्गोंके नाम होते हैं और उन अङ्ग-नामोंके अन्तमें नमः आदि पद जुड़े होते हैं । (यथा—३० हृदयाय नमः । ३० शिरसे स्वाहा । हृदयादि) । हृष्व स्वरोंसे युक्त बीजवाले अङ्ग ‘उपाङ्ग’ कहलते हैं । देवताके नाम-सम्बन्धी अश्रोको पृथक्-पृथक् करके, उनमेंसे प्रत्येकके अन्तमें विन्द्रात्मक बीजका योग करके उनसे

* ३० अं न तो भगवते बासुदेवाय नमः । ३० आं नमो भगवते संकर्णाय नमः । ३० अं न तो भगवते प्रद्युम्नाय नमः । ३० अः नमो भगवते अनिष्टाय नमः ।

अङ्गन्यास करना भी उत्तम माना गया है । अथवा नामके आदि अक्षरको दीर्घ स्वरों एवं इस स्वरोंसे युक्त करके अङ्ग-उपाङ्गोंकी कल्पना करे और उनके द्वारा कमशः न्याय करे । हृदय आदि अङ्गोंकी कल्पनाके लिये व्यक्तिनोंका यही कम है । देवताके मन्त्रका जो अपना म्वर-बीज है, उसके अन्तमें उसका अपना नाम देकर अङ्गसम्बन्धी नामोद्भावा पृथक्-पृथक् ब्राह्मयरचना करके उससे युक्त हृदयादि द्वादश अङ्गोंकी कल्पना करे । पाँचने लेकर बारह अङ्गोततके न्याय-बायकी कल्पना करके मिल्किके अनुरूप उनका जप करे । हृदय, सिर, शिवा, कवच, नेत्र और अङ्ग—ये छः अङ्ग हैं । मूलमन्त्रके बीजोंका इन अङ्गोंमें न्याय करना चाहिये । बारह अङ्ग ये हैं—हृदय, सिर, शिवा, हाथ, नेत्र, उदरु पीठ, बाहु, ऊरु, जानु, जह्ना और पैर । इनमें कमशः न्याय करना चाहिये । कं ठं पं सं दैनतेवाय नमः ।—यह गुरुदसम्बन्धी बीजमन्त्र है । कं ठं पं सं गश्चै नमः ।—यह गदा-मन्त्र है । गं ढं वं सं पुष्टयै नमः ।—यह पुष्टिदेवी-सम्बन्धी मन्त्र है । घं ठं भं हं शियै नमः ।—यह श्रीमन्त्र है । चं ञं मं खं—यह पाञ्चजन्य (शङ्क) का मन्त्र है । छं तं पं कौस्तुभाय नमः ।—यह कौस्तुभ-मन्त्र है । जं सं वं सुदर्शनाय नमः ।—यह सुदर्शनचक्रका मन्त्र है । सं वं दं छं श्रीवत्स-मन्त्र है ॥६—१४॥

३० वं वनमालायै नमः ।—यह वनमालाका और ३० पं० पश्चानाभाष नमः ।—यह पश्च या पश्चनाभका मन्त्र है । बीज रहित पदबाले मन्त्रोंका अङ्गन्यास उनके पदोद्भावा ही करना चाहिये । नामसंयुक्त जात्यन्त पदोद्भावा हृदय आदि पाँच अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् न्याय करे । पहले प्रणवका उच्चारण, फिर हृदय आदि पूर्वोक्त पाँचोंके अङ्गोंके नाम; कम यह है । (उदाहरणके लिये यो समझना चाहिये—३० हृदयाय नमः । इत्यादि ।) पहले प्रणव तथा हृदय-मन्त्रका उच्चारण करे । (अर्थात्—३० हृदयाय नमः । कहकर हृदयका स्पर्श करे ।) पिर ‘पराय शिरसे स्वाहा’ शोलकर

१. हृदयकी ‘नमः’, सिरकी ‘स्वाहा’, शिखकी ‘वपट्’, कवचकी ‘दुर्ग्’, नेत्रकी ‘बौद्ध’ तथा अङ्गकी ‘फट्’ जानि है ।

मस्तकका स्पर्श करे । तत्यथात् इष्टदेवका नाम लेकर शिखाको छूये । अर्थात् 'वासुदेवाय शिखायै चर्द' । —बोलकर शिखाका स्पर्श करे । इसके बाद 'आत्मने कवचाय त्रुप् ।'—बोलकर कवच-न्यास करे । पुनः देवताका नाम लेकर, अर्थात् 'वासुदेवाय अशाय फट् ।'—बोलकर अश-न्यासकी किला पूरी करे । आदिमें 'अशारादि' जो नामात्मक पद है, उसके अन्तमें 'कमः' पद जोड़ दे और उस नामात्मक पदको चतुर्थन्त करके बोले । एक व्यूहसे लेकर वद्विषय व्यूहतकके लिये यह समान मन्त्र है । कनिष्ठारे लेकर सभी अङ्गुलियोंमें हाथके अग्रभागमें प्रकृतिका अपने शरीरोंही पूजन करे । 'पराष' पदसे एक-मात्र परम पुरुष परमात्माका बोध होता है । वही एकसे दो हो जाता है, अर्थात् प्रकृति और पुरुष—दो व्यूहोंमें अभिव्यक्त होता है । 'ॐ परायान्वात्मने नमः ।'—यह व्यापक-मन्त्र है । वसु, अर्क (सूर्य) और अग्नि—ये चिव्यूहात्मक मूर्तियाँ हैं—इन तीनोंमें अग्निका न्यास करके हाथ और सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक-न्यास करे ॥ १५—२० ॥

वायु और अर्कका कमदः दायें और बायें दोनों हाथोंकी अङ्गुलियोंमें न्यास करे तथा हृदयमें मूर्तिमान् अग्निका चिन्तन करे । चिव्यूह-चिन्तनका यही कम है । चतुर्भूमें चारों दोनोंका न्यास होता है । पञ्चवेदका सम्पूर्ण देह तथा हाथमें व्यापक-न्यास करना चाहिये । अङ्गुलियोंमें युखेदका, हथेलियोंमें अर्थवेदका तथा हृदय और चरणोंमें शीर्ष-स्थानीय सामवेदका न्यास करे । पञ्चव्यूहमें पहले आकाशका पूर्ववत् शरीर और हाथमें व्यापक-न्यास करे । पिर अङ्गुलियोंमें भी आकाशका न्यास करके वायु, व्योति, जल और पृथ्वी—इन पाँच तत्त्वोंको 'पञ्चव्यूह' कहा गया है । मन, श्वेत, त्वचा, नेत्र, इसना और नासिका—इन छः इन्द्रियोंको पञ्चव्यूहकी संज्ञा दी गयी है । मनका व्यापक-न्यास करके शेष पाँचका अङ्गुष्ठ आदिके कमसे पाँचों अङ्गुलियोंमें तथा गिर, मुख, हृदय, गुदा और चरण—इन पाँच अङ्गोंमें भी न्यास करे । यह 'करणात्मक व्यूहका न्यास' कहा गया है । आदिमूर्ति जीव मर्वन व्यापक है । भूलोंक, भुवलोंक, स्वलोंक, महलोंक, जनलोंक, तपोलोंक और सम्यलोंक—ये सात लोक पञ्चव्यूह कहे गये हैं । इनमेंसे प्रथम भूलोंकका हाथ एवं सम्पूर्ण शरीर न्यास

करे । भुवलोंक आदि पाँच लोकोंका अङ्गुष्ठ आदिके कमसे पाँचों अङ्गुलियोंमें तथा सातवें सत्यलोकका इयेलीमें न्यास करे । इस प्रकार यह लोकात्मक सप्त अङ्गुष्ठ है, जिसका पूर्वोक्त कमसे शरीरमें न्यास किया जाता है । अब यशात्मक सप्तव्यूहका परिचय दिया जाता है । सप्तव्यूहस्तरूप यशपुरुष परमात्मदेव श्रीहरि सम्पूर्ण शरीर एवं सिर, ल्लाट, मुख, हृदय, गुदा और चरणमें शित हैं, अर्थात् उन अङ्गोंमें उनका न्यास करना चाहिये । वे यश इस प्रकार हैं—अग्निष्ठोम, उक्त्य, बोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आत्मोर्याम—ये छः यश तथा सातवें यशात्मा—इन सात रूपोंको 'यशमय सप्तव्यूह' कहा गया है ॥ २१—२८ ॥

बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये आठ तत्व अष्टव्यूहस्तरूप हैं । इनमेंसे बुद्धितत्वका हाथ और शरीरमें व्यापक-न्यास करे । फिर उपर्युक्त आठों तत्त्वोंका कमदः चरणोंके तलवों, मस्तक, ल्लाट, मुख, हृदय, नाभि, गुदा देश और पैर—इन आठ अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये । इन रूपको 'अष्टव्यूहात्मक पुरुष' कहा गया है । जीव, बुद्धि, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-गुण—इनका समुदाय 'नवव्यूह' है । इनमेंसे जीवका दोनों हाथोंके अङ्गूठोंमें न्यास करे और शेष आठ तत्त्वोंका कमदः दाहिने हाथकी तर्जनीसे लेकर बायें हाथकी तर्जनीतक आठ अङ्गुलियोंमें न्यास करे । सम्पूर्ण देह, सिर, ल्लाट, मुख, हृदय, नाभि, गुदा, जानु और पाद—इन नी स्थानोंमें उपर्युक्त नी तत्त्वोंका न्यास करके इनका पूर्ववत् व्यापक-न्यास किया जाय तो यही 'दशव्यूहात्मक न्यास' हो जाता है ॥ २९—३३ ॥

दोनों अङ्गुष्ठोंमें, तलद्वयमें, तर्जनी आदि आठ अङ्गुलियोंमें तथा सिर, ल्लाट, मुख, हृदय, नाभि, गुदा (उपस्थ और गुदा), जानुद्वय और पादद्वय—इन ग्यारह अङ्गोंमें ग्यारह इन्द्रियात्मक तत्त्वोंका जो न्यास किया जाता है, उसे 'एकादशव्यूह-न्यास' कहा गया है । वे ग्यारह तत्व इस प्रकार हैं—मन, श्वेत, त्वचा, नेत्र, जिहा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ । मनका व्यापक-न्यास करे । अङ्गुष्ठद्वयमें श्वेतेन्द्रियका न्यास करके शेष तत्त्वा आदि आठ तत्त्वोंका तर्जनी आदि आठ अङ्गुलियोंमें न्यास करना चाहिये । शंप जो ग्यारहवाँ तत्व (उपस्थ) है, उसका तलद्वयमें न्यास करे । मस्तक, ल्लाट, मुख, हृदय,

नाभि, अरण, गुहा, काळिय, जहू, गुरुक और पैर—इन व्यारह अङ्गोंमें भी पूर्वोक्त व्यारह तत्वोंका कलशः न्यास करे। विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, बामन, शीघ्र, हृषीकेश, पश्चानाम, दामोदर, कैश्च, नारायण, माधव और गोविन्द—यह 'द्वादशात्मक व्यूह' है। इनमेंसे विष्णुका तो व्यापक-न्यास करे और शेष भगवानोंका अङ्गुष्ठ आदि दस अङ्गुलियों एवं करतलमें न्यास करके, फिर पाटतल, दक्षिण पाद, दक्षिण जानु, दक्षिण कटि, सिर, शिखा, बक्ष, बाम कटि, भुख, बाम जानु और बाम पादादिमें भी न्यास करना चाहिये ॥ ३४—३९ ॥

यह द्वादशव्यूह हुआ। अब पञ्चविंश एवं षष्ठविंश व्यूहका परिचय दिया जाता है। पुरुष, लुट्ठि, अहंकार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिहा, नासिका, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ, भूगि, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पचीस तत्व हैं। इनमेंसे पुरुषका सर्वाङ्गमें व्यापक-न्यास करके, दसका अङ्गुष्ठ आदिमें न्यास करे। शेषका करतल, सिर, कट्टा, मुख, हृदय, नाभि, गुदा, ऊँठ, जानु, पैर, जानु, उपस्थ, हृदय और मूँहमें क्रमशः न्यास करे। इन्हमें गर्वप्रथम परम-पुरुष परमात्माको समिलित करके उनका पूर्ववत् व्यापक-न्यास कर दिया जाय तो षष्ठविंश व्यूहका न्यास सम्पन्न हो

इस प्रकार आदि आनन्दे महापुराणमें 'वासुदेवादि मन्त्रोंके लक्षण [तथा न्यास] का वर्णन' नामक पृष्ठीसर्वांगमन्त्र सूचा हुआ ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

सुद्राओंके लक्षण

नारदजी कहते हैं—मृनिगण ! अब मैं सुद्राओंका लक्षण बताऊँगा। सानिष्व (संनिधापिनी) आदि सुद्राके प्रकारभेद हैं । पहली सुद्रा अङ्गुष्ठि है, दूसरी बन्दनी है और

१. दोनों हाथोंके अङ्गूठोंको ऊपर करके गुटी बोंधकर दोनों गुद्धियोंको परस्पर सटानेसे 'संनिधापिनी सुद्रा' होनी है।

२. 'आदि'पदसे 'आवाहनी' आदि सुद्राओंको ग्रहण करना चाहिये। उनके लक्षण अन्यान्तरसे जानने चाहिये ।

३. यहाँ अजलियों प्रथम सुद्रा कहा गया है 'अजलि' और 'बन्दनी'—दोनों सुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका विशेष लक्षण यह है नहीं दिया गया है। तथापि मन्त्रसद्वार्णवमें अजलियोंही 'अजलिसुद्रा' कहते हैं, यह परिभाषा दी गयी है—'अजल्यजलिसुद्रा स्यात्' ।

४. हाथ जोड़कर नमस्कर करना ही 'बन्दनी' सुद्रा है।

जाता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि अष्टदलकम्लकम्लप्रकृतिका चिन्तन करके उसका पूजन करे। उस कम्लके पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दलोंमें हृदय आदि चार अङ्गोंका न्यास करे। अग्निकोण आदिके दलोंमें अङ्ग पूर्व वैनसेय (गरुड) आदिको पूर्ववत् स्थापित करे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि दिक्षालोंका चिन्तन करे। इन सबके ध्यान-पूजनकी विधि एक-सी है। (सूर्य, सौम और अग्निरूप) त्रिव्यहमें अग्निका स्थान मर्यादमें है। पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें जिनका आवास है, उन देवताओंके साथ कम्लकी कर्णिकामें नाभस (आकाशकी भौति व्यापक 'आस्मा') तथा मानस (अन्तरात्मा) विराजमान हैं। ४०—४८ ॥

सांचकको चाहिये कि वह सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये तथा राज्यपर विजय पानेके लिये विष्वरूप (परमात्मा) का यजन करे। सम्पूर्ण व्यूहों, हृदय आदि पौनों अङ्गों, गरुड आदि तथा इन्द्र आदि दिक्षालोंके साथ ही उन शीहरिकी पूजाका विचार है। पेशा करनेवाला उपासक सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर सकता है। अन्यमें विष्वरूपेनकी नाम-मन्त्रसे पूजा करे। नामके साथ ही 'बीज लगा के, अर्थात् 'है विष्वरूपेनाथ चमः ।' योल्कर उनके लिये पूजनोनपचार अर्पित करे ॥ ४९-५० ॥

तीसरी हृदयानुगा है। याये हाथकी मुट्ठीसे दाहिने हाथके अङ्गूठेको बाँध ले और याये अङ्गुष्ठको ऊपर उठाये रखें। सारांश यह है कि बाये और दाहिने—दोनों हाथोंके अङ्गूठ ऊपरकी ओर ही उठे रहें। यही 'हृदयानुगा' सुद्रा है।

इशान शिव-गुरुदेव-पद्मिनी इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

'बद्धाजलि पङ्कजकोशकल्पं गद्दक्षिणज्येष्ठिक्या सु वामाग् ।

उद्योग्या सप्तकम्लं तु बन्दनीयं गुदा नमस्कारविधी प्रयोज्या ॥

अर्थात् कम्ल-सुकुलके समान अजलि बोंधकर, जब दाहिने अङ्गूठसे बाये अङ्गूठेको दबा दिया जाय तो 'बन्दनीं सुद्रा' होनी है। इसका प्रयोग नमस्कारके लिये होना चाहिये। (उत्तरार्ध त्रियापाद सप्तम पट्टक १)

(इसीको कोई 'संरोधिनी' और कोई 'निष्ठुरा' कहते हैं)। व्यूहार्थनमें वे तीन मुद्राएँ साधारण हैं। अब आगे ये असाधारण (विशेष) मुद्राएँ बतायी जाती हैं। दोनों हाथोंमें अङ्गूठेसे कनिष्ठातककी तीन अङ्गुलियोंको नवाकर कनिष्ठा आदिकी क्रमशः मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनते हैं। 'अ क च ट त प य श'—ये जो आठ वर्ग हैं, उनके जो पूर्व शीज (अ क च ट इत्यादि) हैं, उनको ही सूचित करनेवाली उक्त आठ मुद्राएँ हैं—ऐसा निष्पत्य करे। फिर पाँचों अङ्गुलियोंको ऊपर करके हाथको सम्मुख करनेसे जो

नवीं मुद्रा बनती है, वह नवम शीज (क्षं) के लिये है ॥ ३—४१ ॥

दाहिने हाथके ऊपर वायें हाथको उतान रखकर उत्ते चीरे-चीरे नीचेको छुकाये। यह वराहकी मुद्रा मानी गयी है। ये क्रमशः अङ्गूठेकी मुद्राएँ हैं। वायीं मुट्ठीमें बैंधी हुई एक-एक अङ्गुलीको क्रमशः मुक्त करे और पहलेकी मुक्त हुई अङ्गुलीको फिर सिकोड़ ले। वायें हाथमें ऐसा करनेके बाद दाहिने हाथमें भी यही किया करे। वायीं मुट्ठीके अङ्गूठे-को ऊपर उठाये रखें। ऐसा करनेमें मुद्राएँ सिद्ध होती हैं ॥ ५—७ ॥

इस प्रकार आदि आगेय महापुराणमें 'मुद्रात्मण-दर्जन'नामक छन्दोसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—महर्षिण ! अब मैं सब कुछ देनेवाली दीक्षाका वर्णन करूँगा। कमलाकारमण्डलमें श्रीहरि-का शूक्ल करे। दशानी तिथिको समस्त यश-सम्बन्धी द्रव्यका संग्रह एवं संस्कार (शुद्धि) करके रख ले। नरसिंह-शीज-मन्त्र (क्षौं) से सौ बार उसे अभिमन्त्रित करके, उस मन्त्र-के अन्तमें 'फट्' लगाकर बोले तथा राक्षसोंका विनाश करने-के उद्देश्यसे उब और उरसों छाटि। फिर वहाँ सर्वस्वरूपा प्राणादरूपिणी शक्तिका व्यास करे। सर्वोषित्योंका संग्रह करके विलोनेके उपयोगमें आगेवाली सरसों आदि वस्तुओंको शुभ पात्रमें रखकर साधक वासुदेव-मन्त्रसे उनका सौ बार अभिमन्त्रण करे। तदनन्तर वासुदेवसे लेकर नारायणपर्यन्त पूर्वोक्त पाँच भूर्तियों (वासुदेव, संकरण, प्रशुभ, अनिष्ट तथा नारायण) के मूल-मन्त्रोदारा पञ्चग्रन्थ भार करे और कुशाग्रसे पञ्चग्रन्थ छिन्नकर उब भूमिका प्रोक्षण करे। फिर

वासुदेव-मन्त्रसे उचान हाथके द्वारा समस्त विफिर वस्तुओंको सब और बिल्लेरे। उस स्थिर पूर्वोभिमुख यहा हो, मन-ही-मन भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए तीन बार उन विफिर वस्तुओंको सब और छीटे। तत्पश्चात् वर्धनीसहित कलशपर स्थापित भगवान् विष्णुका अङ्गवाहित पूजन करे। अब-मन्त्र-से वर्धनीको सौ बार अभिमन्त्रित करके अविच्छिन्न जलधारासे सीचते हुए उसे ईशानकोणकी ओर ले जाय। कलशको पीछे ले जाकर विफिरपर स्थापित करे। विफिर-द्रव्योंको कुशद्राघा एकत्र करके कुम्भेश और कर्कीका यज्ञ करे ॥ १—८ ॥

पञ्चवलयुक्त सबस्त्र वेदोपर श्रीहरिकी पूजा करे। अभिमन्त्रमें भी उनकी अर्चना करके पूर्ववन् मन्त्रादारा उनका संतर्पण करे। तत्पश्चात् पूँछरीक-मन्त्रसे उत्ता (पात्रविशेष)का प्रक्षालन करके उसके भीतर सुगन्धयुक्त घो पोत ले। इसके

१. यहाँ मूलमें 'हृदयानुगा' मुद्राका जो लक्षण दिया गया है, वही अन्यत्र 'मंत्रोधिनी मुद्रा'का लक्षण है। नन्दमहार्णवमें 'संनिधापिनी मुद्रा'का लक्षण देकर कहा है—'अन्नःप्रवेशिताकुशा सैव संरोधिनी मता ।' अर्थात् भूमिधिनीको ही यहि उनकी मुट्ठियोंके भीतर अङ्गुठका प्रवेश हो तो 'मंत्रोधिनी' कहते हैं। हृदयानुगामें वायीं मुट्ठीके भीतर दाधिनी मुट्ठीका अङ्गूठा रहा है और वाया अङ्गूठा छुला रहा है, परंतु संरोधिनीमें दोनों ही अङ्गुठे मुट्ठीके भीतर रहते हैं, यही अन्तर है।

२. ईशानशिवगुहदेवमित्रने शब्दान्तरसे यही बात करी है। उन्होंने संनिधिनीको निष्ठुराकी मता दी है—'नन्दमन्त्रम्—कर्त्योः शितोर्ध्वं चयेषानुगं वय समुक्ताऽन्म् ।' ता संनिधापिन्यथ सैव गर्भाकुशा भत्रेच्छेदिष्ट निष्ठुराव्या ॥'

३. पुण्डरीक-मन्त्र—

४. अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । व. मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाणाम्बन्दरः शुचिः ॥

शब्द साक्षर उल्लम्भ गायत्रा दूध भरकर चाषुदेव-मन्त्रसे उसका अवेक्षण करे और संकर्षण-मन्त्रसे सुसंस्कृत किये गये दूधमें भूताक चावल छोड़ दे । इसके बाद प्रदुष-मन्त्रसे काषुल-द्वारा उस दूध और चावलका आलोड़न करके भीरे-भीरे उसे उलटे-पलटे । जब खीर या चरु पक जाय, तब आचार्य अनिष्ट-मन्त्र पढ़कर उसे आगसे नीचे उतार दे । तदनन्तर उसपर जल छिह्नके और भूतालेपन करके हाथमें भस्त्र लेकर उसके द्वारा नाशयण-मन्त्रसे ललाट एवं पार्श्व-भागोंमें ऊर्ध्व-पुण्ड्र करे । इस प्रकार सुन्दर संस्कारयुक्त चरके चार भाग करके एक भाग इष्टदेवको अर्पित करे, दूसरा भाग कलशको चढ़ावे, तीसरे भागसे अग्निमें तीन बार आहुति दे और चौथे भागको गुरु शिष्योंके साथ बैठकर खाय; इससे आलशुद्धि होती है । (दूसरे दिन एकादशीको) प्रातःकाल पेसे तृक्षसे दौतन ले, जो दूधबाला हो । उस दौतनको नाशयण-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर ले । उसका दन्तशुद्धिके लिये उपयोग करके फिर उसे त्याग दे । अपने पातकका स्वरण करके पूर्व, अग्निकोण, उत्तर अथवा ईशानकोणकी ओर मुँह करके अच्छी तरह ज्ञान करे । फिर 'शुभ' एवं 'शिद्ध' की भावना करके, अर्थात् ऐसे निष्पाप एवं शुद्ध होकर शुभ सिद्धिकी ओर अग्रसर हुआ हूँ—ऐसा अनुभव करके आचमन-प्राणायामके पश्चात् मन्त्रोपदेश गुरु भगवान् विष्णु-से प्रार्थना करके उनकी परिक्रमाके पश्चात् पूजागृहमें प्रवेश करे ॥ ९—१७ ॥

प्रार्थना इम प्रकार करे—‘देव ! संसार-सागरमें मग पशुओंको पाशसे कुटकारा दिलानेके लिये आप ही शरणदाता हैं । आप सदा अपने भक्तोंपर वास्तव्यभाव रखते हैं । देवदेव ! आशा दीजिये, प्राकृत पाश-बन्धनोंसे बँधे हुए इन पशुओंको आज आपकी कृपासे मैं मुक्त करूँगा ।’ देवेशर भीहरिसे इस प्रकार प्रार्थना करके पूजागृहमें प्रविष्ट हो, गुरु पूर्ववत् अग्नि अदिकी धारणाओंद्वारा शिष्यभूत समस्त पशुओंका शोषण करके संस्कार करनेके पश्चात्, उनका चाषुदेवादि मूर्तियोंसे संयोग करे । शिष्योंके नेत्र बँधकर उन्हें मूर्तियोंकी ओर देखनेका आदेश दे । शिष्य उन मूर्तियोंकी ओर पुष्पाङ्किलि फैके, तदनुसारंगुण उनका नाम-निर्देश करें । पूर्ववत् शिष्योंसे क्रमशः मूर्तियोंका मन्त्रहित पूजन करावे । जिस शिष्यके हाथका फूल जिस मूर्तिपर गिरे, गुरु उस शिष्यका वही नाम रखें । कुमारी कन्याके हाथसे काता हुआ लाल रंगका सूत लेकर उसे कँड़ गुना करके कट दे । उस कँड़ गुने सूतकी

लंगाई पैरके अँगूठेसे लेकर चिलातककी होनी चाहिये । फिर उसे भी मोड़कर तिगुना कर ले । उक तिगुणित सूतमें प्रक्रिया-भेदसे स्त्रिय उस प्रकृति देवीका चिन्तन करे, जिसमें लम्बूर्ण विशका लघ इत्यहै और जिससे ही लमस्त जगतका प्राहुर्मात्र हुआ करता है । उस सूतमें प्राकृतिक पाण्डोंको तत्त्वकी संख्याके अनुसार ग्रथित करे, अर्थात् २४ गाँठ लगाकर उनको प्राकृतिक पाण्डोंके प्रतीक लमस्त हो । फिर उस ग्रथियुक्त सूतको प्यालेमें रखकर कुण्डके पाल स्थापित कर दे । तदनन्तर सभी तत्त्वोंका चिन्तन करके गुह उनका शिष्य-के शरीरमें न्यास करे । तत्त्वोंका वह न्यास सुष्ठुप्तिमें अनुसार प्रकृतिसे लेकर पृथिवीपर्यन्त होना चाहिये ॥ १८—२६ ॥

तीन, पाँच, दस अथवा बारह जितने भी सूत-भेद सम्भव हैं, उन सब सूत-भेदोंके द्वारा बटे हुए उस सूतको ग्रथित करके देना चाहिये । तत्त्वचिन्तक पुरुषोंके लिये यही उचित है । हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्त पाँच अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्र पढ़कर सम्पूर्ण भूतोंको प्रकृतिकमसे (अर्थात् कार्य-तत्त्व-का कारण-तत्त्वमें लघके क्रमसे) तन्मात्रास्वरूपमें लीन करके उस मायामय सूत्रमें और पश्च (जीव-)के शरीरमें भी प्रकृति, लिङ्गाद्यक्ति, कर्ता, बुद्धि तथा मनका उपसंहार करे । तदनन्तर पञ्चतन्मात्र, बुद्धि, कर्म और पञ्चमहाभूत—इन बारह रूपोंमें अभिव्यक्त द्वादशात्मका सूत्र और शिष्यके शरीरमें चिन्तन करे । तत्पश्चात् इच्छानुसार सुष्ठुप्ती सम्यात-विधिसे इवन करके, सुष्ठुप्तिमसे एक-एकके लिये सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति करे । प्यालेमें रखे हुए ग्रथित सूतको ऊपरसे ढककर उसे कुम्भेशको अर्पित करे । फिर यथोचित रीतसे अधिवासन करके भक्त शिष्यको दीक्षा दे । करनी, कैंची, धूल या बालू खड़िया मिही और अन्य उपयोगी बस्तुओंका भी संग्रह करके उन सबको उसके बामभागमें स्थापित कर दे । फिर मूल-मन्त्रसे उनका स्पर्श करके अधिवासित करे । तत्पश्चात् भीहरिके स्वरणपूर्वक कुशोंपर भूतोंके लिये बलि दे और कहे—‘नमो भूतेभ्यः ।’ इसके बाद चँदों, कलशों और लम्बूर्णोंसे मण्डपको मुसित करके मण्डपके भीतर भगवान् विष्णुका पूजन करे । फिर अग्निको बीते तृप्त करके, शिष्योंको पास बुलाकर बद्धपश्चात्नसे बिठावे और दीक्षा दे । बारी-बारीसे उन सबका प्रोक्षण करके विष्णुहस्तसे उनके मरणकाम स्फूर्त करे । प्रहृतिसे विहृतिपर्यन्त, अविभूत और अधिवैशतवाहित सम्पूर्ण सुष्ठुप्तो आव्यासिक करके अर्थात्

सबको अपने आत्मा में स्थित मानकर, हृदयमें ही क्रमशः
उसका संहार करे ॥ २७—३६ ॥

इससे तन्मात्रस्वरूप हुई सारी सृष्टि जीवके समान हो
जाती है। इसके बाद ब्रूत्सेक्षरसे प्रार्थना करके गुरु पूर्वोक्त
मूलका संस्कार करनेके अनन्तर, अग्निके समीप आ॒उसको
अपने पास ही रख ले। फिर मूल मन्त्रसे सृष्टीशके लिये सौ
भासुंहुतियाँ दे। इसके बाद उदासीनभावसे स्थित सृष्टीशको
पूर्णाहुति अर्पित करके गुरु इवेत रज (बालू) हाथमें लेकर
उसे मूल-मन्त्रसे सौ बार अभिशन्त्रित करे। फिर उससे
शिष्यके हृदयपर ताडन करे। उस समय वियोगवाची क्रिया-
पदसे युक्त वीज-मन्त्रों एवं क्रमशः पादादि इन्द्रियोंसे अटित
वाक्यकी योजना करके अन्तमें 'हुं फट्' का उच्चारण करे।
इस प्रकार पृथिवी आदि तत्त्वोंका वियोग कराकर आचार्य
मावनाद्वारा उन्हें अग्निमें होम दे। इस तरह कार्य-तत्त्वोंका
कारण-तत्त्वोंमें होम अथवा लय करते हुए क्रमशः अखिल
तत्त्वोंके आश्रयभूत श्रीहरिमें सबका लय कर दे। विद्वान्
पुरुष इसी क्रमसे सब तत्त्वोंको श्रीहरितक पहुँचाकर, उन
सापूर्ण तत्त्वोंके अविष्णानका स्परण करे। उक्त रीतिसे ताडन-
द्वारा भूतों और इन्द्रियोंसे वियोग कराकर शुद्ध हुए शिष्यको
अपनावे और प्रकृतिसे उसकी समताका सम्पादन करके पूर्वोक्त
अग्निमें उसके उस प्राकृतमावका भी इच्छन कर दे। फिर
गर्भावान, जातकर्म, भोग और लक्षका अनुष्ठान करके उस-
उस कर्मके निमित्त वहाँ आठ-आठ बार शुद्धरथ्य होम करे।
तदनन्तर आचार्य पूर्णाहुतिद्वारा शुद्ध तत्त्वका उद्धार करके
अव्याकृत प्रकृतिपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्का क्रमानुसार परम तत्त्वमें
लय कर दे। उस परम तत्त्वको भी शान्तेयोगसे परमात्मामें
विलीन करके बन्धनमुक्त हुए जीवको अविनाशी परमात्मपद-
में प्रतिष्ठित करे। तत्प्रथात् विद्वान् पुरुष यह अनुभव करे
कि पश्चिम शुद्ध, बुद्ध, परमानन्द-संदोहमें निमग्न एवं
शुद्धकर्त्त्व हो चुका है। ऐसा चिन्तन करनेके प्रधात् गुरु
पूर्णाहुति दे। इस प्रकार दीक्षा-कर्मकी समाप्ति होती
है ॥ ३७—४० ॥

अब मैं उन प्रयोग-सम्बन्धी मन्त्रोंका वर्णन करता हूँ,
जिनसे दीक्षा, होम और लय समादित होते हैं। 'ॐ यं
भूतानि वियुद्धक्षवं हुं फट्' (अर्थात् भूतोंको मुक्त्वा अलग

॥ यथा 'ॐ रं (नमः) कर्मेन्द्रियाणि वियुद्धक्षवं हुं फट्; ॐ यं
(नमः) भूतानि वियुद्धक्षवं हुं फट्'। इत्यादि ।

करो ।) — इस मन्त्रसे ताडन करनेका विधान है। इसके
द्वारा भूतोंसे वियोजन (विल्याव) होता है। यहाँ वियोजन-
के दो मन्त्र हैं। एक तो वही है, जिसका ऊपर वर्णन हुआ
है और दूसरा इस प्रकार है—‘ॐ यं भूतान्वापातयेऽहम्।’
(मैं भूतोंको अपनेसे दूर चिराता हूँ)। इस मन्त्रसे
'आपातन' (वियोजन) करके पुनः दिव्य प्रकृतिसे खीं
संयोजन किया जाना है। उसके लिये मन्त्र सुनो—
'ॐ यं भूतानि युद्धक्षव'। अब होम-मन्त्रका वर्णन करता
हूँ। उसके बाद पूर्णाहुतिका मन्त्र बताऊँगा। 'ॐ भूतानि
संहर स्वाहा।' — यह होम-मन्त्र है और 'ॐ यं यं नमो
भगवते वासुदेशय अं शोष्ट्।' — यह पूर्णाहुति-मन्त्र है।
पूर्णाहुतिके प्रधात् तत्त्वमें शिष्यको संयुक्त करे। विद्वान्
पुरुष इसी तरह समस्त तत्त्वोंका क्रमशः शोधन करे।
तत्त्वोंके अपने-अपने वीजके अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर
ताडनादिपूर्वक तत्त्व-शुद्धिका सम्पादन करे ॥ ४८—५३ ॥

'ॐ रं (नमः) कर्मेन्द्रियाणि ।' 'ॐ यं (नमः)
बुद्धीन्द्रियाणि ।' — इन पदोंके अन्तमें 'वियुद्धक्षवं हुं फट्।'
की संयोजना करे। पूर्वोक्त 'यं' वीजके समान ही इन
उपर्युक्त वीजोंसे भी ताडन आदिका प्रयोग होता है।
'ॐ सुं गन्धतन्मात्रे विद्वं युद्धक्षवं हुं फट्।', 'ॐ सं पाहि हां
ॐ स्वं स्वं युद्धक्षवं प्रकृतया अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर
स्वाहा।' — ये क्रमशः संयोजन और होमके मन्त्र हैं।
तदनन्तर पूर्णाहुतिका विधान है। इसी प्रकार उत्तरवर्ती
कर्मोंमें भी प्रयोग किया जाता है। 'ॐ रं रसतन्मात्रे ।
ॐ ते रसतन्मात्रे । ओं वं स्पर्हतन्मात्रे । ओं यं शाद्-
तन्मात्रे । ओं मं नमः । ओं सों अहंकारे । ओं नं बुद्धौ । ओं
ओं प्रकृतौ । यह दीक्षायोग एकव्यूहात्मक मूर्तिके लिये संक्षेप-
से बताया गया है। नवव्यूहादिक मूर्तियोंके विषयमें भी ऐसा
ही प्रयोग है। मनुष्य प्रकृतिको दग्ध करके उसे निर्वाणस्वरूप
परमात्मामें लीन कर दे। फिर भूतोंकी शुद्धि करके
कर्मेन्द्रियोंका शोधन करे ॥ ५४—५९ ॥

तत्प्रथात् ज्ञानेन्द्रियोंका, तम्मात्राओंका, मन-शुद्धि एवं
अहंकारका तथा लिङ्गात्माका शोधन करके सबके अन्तमें
पुनः प्रकृतिकी शुद्धि करे। 'शुद्ध हुआ प्राकृत पुरुष
ईश्वरीय धारमें प्रतिष्ठित है। उठने सापूर्ण भोगोंका अनुभव
कर लिया है और अब वह मुक्तिपदमें स्थित है।' — इस
प्रकार ध्यान करे और पूर्णाहुति दे। यह अधिकार-प्रदान

करनेवाली रीत है। पूर्वोक्त मल्कके अन्नोद्धारा आवश्यक करके तत्त्वसमूहको समझन (प्रकृत्यवस्था) में पूँछचाहत क्रमशः इसी रीतिसे शोधन करके, अन्तमें साधक अपनेको सम्पूर्ण विद्वितोंसे युक्त परमात्मकरपदे स्थित अनुभव करते हुए पूर्णाङ्गति दे—यह साधक-विषयक दीक्षा कही गयी है। यदि यहोपयोगी इत्यका सम्मादन (संग्रह) न हो सके, अथवा अपनेमें असमर्थता हो तो समस्त उपकरणोंसहित भेष्ट गुरु पूर्ववत् इष्टदेवका पूजन करके, तत्काल उन्हें अधिवासित करके, द्वादशी तिथिमें शिष्यको दीक्षा दे दे। जो गुरुमत्, विनयशील एवं समस्त शारीरिक सहृदोंसे सम्पन्न हो, ऐसा शिष्य यदि अधिक धनवान् न हो तो ब्रेदीपर इष्टदेवका पूजनमात्र करके दीक्षा ग्रहण करे। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक, सम्पूर्ण अध्याका सृष्टिक्रमसे शिष्यके शरीरमें चिन्तन करके, गुरु पहले बारी-बारीसे आठ आहुतियोंद्वारा एक-एककी तृती करनेके पश्चात् स्थिमान् हो, बासुदेव आदि विग्रहोंका उनके निजनिज मन्त्रोद्धारा पूजन एवं इवन करे और हवन-पूजनके पश्चात् अन्न आदिका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त होमद्वारा संहारक्रमसे तत्त्वोंका शोधन करे॥ ६०—६८॥

दीक्षाकर्ममें पहले जिन सूत्रोंमें गॉडें बाँधी गयी थीं, उनकी वे गॉडें खोल, गुरु उन्हें शिष्यके शरीरसे लेकर, क्रमशः उन तत्त्वोंका शोधन करे। प्राकृतिक अन्न एवं आधिदैविक विष्णुमें अशुद्ध-मिश्रित शुद्ध-तत्त्वको लीन करके पूर्णाङ्गतिद्वारा शिष्यको उस तत्त्वसे संयुक्त करे। इस प्रकार शिष्य प्रकृतिभावको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् गुरु उसके प्राकृतिक गुणोंको भावनाद्वारा दर्श करके उसे उनसे कुट्टकारा दिलावे। ऐसा करके वे शिशुस्वरूप उन शिष्योंको अधिकारमें

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सर्वदीक्षा-विधि-क्रन्थन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अट्टाईसवाँ अध्याय

आचार्यके अभिवेकका विधान

नारदजी कहते हैं—महर्षियो ! अब मैं आचार्यके अभिवेकका वर्णन करूँगा, जिसे पुन अथवा पुत्रोपम अद्वाकु शिष्य सम्मादित कर उकता है। इस अभिवेकसे साधक सिद्धिका भागी होता है और रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। राजाको राज्य और छोटीको पुत्रकी प्राप्ति होती

निषुक करे। तदनन्तर यात्री लिखत गुरु आदिके भक्तिभावसे शरणमें आये हुए यतिरी तथा लिखन शिष्यको 'शक्ति' नामधारी हृत्सरी दीक्षा दे। ब्रेदीपर धनवान्, विष्णुकी पूजा करके पुन (शिष्य-विष्णुपूजा) को अपने पास लिया ले। फिर शिष्य देवताके सम्मुख हो तिर्थम्-दिशाकी ओर मुँह करके स्वयं बैठे। गुरु शिष्यके शरीरमें अपने शी पवित्रोंसे कल्पित सम्पूर्ण अध्याका ज्ञान करके आधिदैविक यजनके लिये प्रेरित करनेवाले इष्टदेवका भी ज्ञानयोगके द्वारा चिन्तन करे। फिर पूर्ववत् ताडन आदिके द्वाया क्रमशः सम्पूर्ण तत्त्वोंका ब्रेदीगत श्रीहरिमें शोधन करे। ताडनद्वारा तत्त्वोंका वियोजन करके उन्हें आत्मामें शुहीत करे और पुनः इष्टदेवके साथ उनका संयोजन एवं शोधन करके, स्वभावतः ग्रहण करनेके अनन्तर ले आकर क्रमशः शुद्ध तत्त्वके साथ संयुक्त करे। सर्वत्र ज्ञानयोग एवं उत्तान मुद्राद्वारा शोधन करे॥ ६९—७७॥

सम्पूर्ण तत्त्वोंकी शुद्धि हो जानेपर जब प्रधान (प्रकृति) तथा परमेश्वर रित रह जायें, तब पूर्वोक्त रीतिसे प्रकृतिकी दर्श करके शुद्ध हुए शिष्योंको परमेश्वरपदमें प्रतिष्ठित करे। भेष्ट गुरु साधको इस तरह सिद्धिमार्गसे ले चले। अधिकारासु गृहस्थ भी इसी प्रकार आलस्य छोडकर समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करे। जबतक राग (आसक्ति) का सर्वथा नाश न हो जाय, तबतक आत्म-शुद्धिका सम्मादन करता रहे। जब यह अनुभव हो जाय कि 'मेरे हृदयका राग सर्वथा क्षीण हो गया है', तब पापसे शुद्ध हुआ संयमशील पुरुष अपने पुनः या शिष्यको अधिकार सौंपकर मात्थामय पाशको दर्श करके संन्यास ले, आत्मनिष्ठ हो, देहपातकी प्रतीक्षा करता रहे। अपनी सिद्धिसम्बन्धी किसी चिह्नको दूसरोंपर व्यक्त न होने दे॥ ७८—८१॥

है। इससे अन्तःकरणके मलका नाश होता है। मिट्टीके बहुत से घड़ीमें उत्तम रत्न रखकर एक स्थानपर स्थापित करे। पहले एक घड़ा बीचमें रखले; फिर उसके चारों ओर घट स्थापित करे। इस तरह एक सहस्र या एक सौ आवृत्तिमें उन सबकी स्थापना करे। फिर मण्डपके भीतर कमलाकार

मण्डलमें शुर्व और ईशानकोणके मध्यमाणमें पीठ का लिङ्गास्तंभपर भगवान् विष्णुको सापित करके पुत्र एवं साधक आदिका सकलीकरण करे । तदनन्तर शिव्य भा पुत्र भगवत्पूजनपूर्वक गुरुकी अर्चना करके उन कण्ठशोंके बलसे उनका अभिषेक करे । उस समय गीत-साधका

उत्तरव होता रहे । फिर योगीठ आदि गुरुको अर्पित कर दे और प्रार्थना करे—गुरुदेव ! आप हम सब मनुष्योंको कृपापूर्वक अनुग्रहीत करें । गुरु भी उनको समय-दीक्षाके अनुकूल आचारका उपरेक्षा दे । इससे गुरु और साधक भी सम्पूर्ण मनोरथोंके भागी होते हैं ॥ १-५ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें आचार्यके अभिषेककी विविका वर्णन नामक अद्भुतसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

मन्त्र-साधन-विधि, सर्वतोभद्रादि मण्डलोंके लक्षण

नारदजी कहते हैं—मुनिवरो ! साधको चाहिये कि वह देव-मन्दिर आदिमें मन्त्रकी साधना करे । वरके भीतर शुद्ध भूमिपर मण्डलमें परमेश्वर श्रीहस्तिका विशेष पूजन करके चौकोर क्षेत्रमें मण्डल आदिकी रचना करे । दो सौ छप्पन कोष्ठोंमें ‘सर्वतोभद्र मण्डल’ लिखे । (कम यह है कि पूर्वसे पञ्चियकी ओर तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर बराबर सत्रह रेखाएँ खींचे ।) देश करनेसे दो सौ छप्पन कोष्ठ हो जायेंगे । उनमेंसे चारोंके छातीस कोष्ठोंको एक करके उनके द्वारा कमल बनायें, अथवा उसे कमलका क्षेत्र निर्धारित करे । इस कमलक्ष्मके बाहर चारों ओरकी एक-एक पंक्तिको मिटाकर उसके द्वारा पीठकी कल्पना करे अथवा उसे पीठ समझो । फिर पीठसे भी बाहरकी दो-दो पंक्तियोंका मार्जन करके, उनके द्वारा ‘वीथी’की कल्पना करे । फिर चारों दिशाओंमें द्वार-निर्माण करे । पूर्वोक्त पदार्थोंमें सब ओर बाहरके बाहरवें भागको छोड़ दे और सर्व-मध्य-स्थानपर सूत्र रखकर, पद्म-निर्माणके लिये विभाग-पूर्वक समान अन्तर रखते हुए सूत बुमाकर, तीन वृत्त बनाये । इस तरह उस चौकोर क्षेत्रको बर्तुल (गोल) बना दे । इन तीनोंमें प्रथम तो कर्णिकाका क्षेत्र है, शूद्रर केसरका क्षेत्र है और तीसरा दल-संधियोंका क्षेत्र है । शेष चौथा अंश दल-प्रभागका स्थान है । कोणसूत्रोंको फैलाकर कोणसे दिशाके मध्यभागतक ले जाय तथा केसरके अप्रभागमें सूत रखकर दल-संधियोंको चिह्नित करे ॥ १-६२ ॥

फिर सूत निराकर अष्टदलोंका निर्माण करे । दलोंके मध्यगत अन्तरालका जो मान है, उसे मध्यमें स्वतंत्र उससे दलागको बुमावे । तदनन्तर उसके भी अप्रभागको बुमावे ।

उनके अन्तराल-मानको उनके पार्श्वभागमें रखकर बाह्य-क्रमसे एक-एक दलमें दो-दो केसरोंका उल्फेल करे । यह सामान्यतः कमलका चिह्न है । अब द्वादशदल कमलका वर्णन किया जाता है । कर्णिकार्धमानसे पूर्व दिशाकी ओर सूत रखकर क्रमशः सब ओर बुमावे । उसके पार्श्वभागमें भ्रमणयोगसे छः कुण्डलियाँ होंगी और बाहर मस्त्यचिह्न बनेंगे । उनके द्वारा द्वादशदल कमल सम्पूर्ण होगा । पञ्चदल आदिकी सिद्धिके लिये भी इसी प्रकार मस्त्यचिह्नोंसे कमल बनाकर, आकाशरेखासे बाहर जो पीठभाग है वहाँके कोष्ठोंको मिटा दे । पीठभागके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोष्ठोंको उस पीठके पायोंके रूपमें कस्तियत करे । अवशिष्ट जो चारों दिशाओंमें दो-दो जोड़े, अर्थात् चार-चार कोष्ठक हैं, उन सबको मिटा दे । वे पीठके पाटे हैं । पीठ-के बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको बीथी (मार्ग) के लिये सर्वथा छुस कर दे (मिटा दे); तदनन्तर चारों दिशाओंमें चार द्वारोंकी कल्पना करे । (बीथीके बाहर जो दो पंक्तियाँ शेष हैं, उनमेंसे भीतरबाली पंक्तिके मध्यवर्ती दो-दो कोष्ठ और बाहरबाली पंक्तिके मध्यवर्ती चार-चार कोष्ठोंको एक करके द्वार बनाने चाहिये ।) ॥ ७-१४ ॥

द्वारोंके पार्श्वभागोंमें विद्वान् पुरुष आठ शोभा-स्थानोंकी कल्पना करे और शोभाके पार्श्वभागमें उपशोभा-स्थान बनाये । उपशोभाओंकी संख्या भी उतनी ही बतायी गयी है, जितनी कि शोभाओंकी । उपशोभाओंके समीपके स्थान ‘क्षेण’ कहे गये हैं । तदनन्तर चारों दिशाओंमें दो-दो मध्यवर्ती कोष्ठोंको और उससे बाहर पंक्तिके चार-चार मध्यवर्ती कोष्ठों-का द्वारके लिये चिन्तन करे । उन सबको एकत्र करके मिटा दे—इस तरह चार द्वार बन जाते हैं । द्वारके दोनों

पाठ्यक्रमे क्लेशकी वाहार्यकिके एक-एक और भीतरी पंक्तिके तीन-तीन कोडोको 'शोभा' बनानेके लिये मिटा दे । शोभाके पार्श्वभागमें उसके विपरीत करनेसे, अर्थात् क्लेशकी वाहार्यकिके तीन-तीन और भीतरी पंक्तिके एक-एक कोडोको मिटानेसे उपशोभाका निर्माण होता है । तत्पश्चात् कोणके भीतर और बाहरके तीन-तीन कोडोका भेद मिटा-कर—एक करके चिन्तन करे ॥ १५—१८ ॥

* भीविष्यापांच-तत्त्व, बाहरवे खासमें इस सर्वतोमध्यमण्डलका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—चौकोर क्लेशमें पूर्वसे पवित्र-की सजार रेखाएँ खींचकर, उनके कपर उत्तरसे दक्षिणकी ओर उतनी ही रेखाएँ खींचे । इस तरह दो सौ छपन कोडोका चतुरस मण्डल तैयार होगा । उनमें बीचके छत्तीस कोडोको एक करके, उनके बाहरकी एक-एक पंक्तिको चारों दिशाओंमें भिताकर, पीठकी कल्पना करे । पीठके बाहर चारों दिशाओंकी दो-दो पंक्तियोंको एक करके सम्माजनपूर्वक बींधीकी कल्पना करे । बीचके छत्तीस कोडोको जो एक किया गया है, वह कमलका शेष है; उस क्लेशमें ही बाहरकी ओरसे बाहरकों भाग खाली छोड़ दे । अर्थात् बदि बह क्लेश बाहर अकुल कम्बा-चौड़ा है तो चारों ओरसे एक-एक अकुलको खाली छोड़ दे । शेष भागमें सबसे बीचके क्लेशमें सूत रखकर कमलः तीन गोंड रेखाएँ खींचे । वे तीनों एक-दूसरीसे समान अन्तरपर हों । इनमें सबसे भीतरी या बीचके शूलको कमलकी क्षणिका माने । उससे बाहरकी बींधीको केसरका स्थान भानकर उस केसरस्थानको सोलह भागोंमें विभक्त करे और उसके चिह्नका अवक्षमन करते हुए दूसरे और तीसरे शूलोंमें अन्तराल भानस्थके मानसे शुक्रकी जलायी हुई शुक्रिकारा सोलह अवक्षम्बनकी कल्पना करे । उनके द्वारा आठ दलोंका निर्माण करके उत्तीर्ण वृत्तसे बाहर कोडे हुए एक बंशके खाली स्थानसे बीचके चिह्नका अवक्षमन करते हुए एक और वृत्त बनावे । वहाँ शुक्रकी जलायी शुक्रिसे दलायोंका निर्माण करे । एक-एक दलके मूलमें विस तरह दो-दो केसर दीख पड़ें, उस तरहकी रचना करके कमलको साझेपाइङ सम्पन्न करके पश्चेषते बाहर ये एक पंक्तिरूप चतुरस पीठ है, उसके चारों कोणोंमें तीन-तीन कोडोंको पीठके पाये माने और एक-क्षेत्र कोडोंको पीठके अन्व अन्व होनेवाली कल्पना करे । पीठके बाहरकी बींधीका एक पंक्तिमें चारों दिशाओंके जो मध्यवर्ती दो-दो कोड हैं, उनको एक करके सबसे बाहरी पंक्तिमें भी चारों दिशाओंके मध्यवर्ती चार-चार कोडोंको भिताकर चार द्वार बिर्माण करे । एव चारोंके उभयपार्श्वमें दोनों पंक्तियोंके कोडोंमें भीतरी

इस प्रकार सोलह-कोडोंके क्लेशके बननेवाले दो छपन कोडोंके मण्डलका बर्णन हुआ । इसी तरह इस मण्डल भी बन रहते हैं । बाहर-बाहर कोडोंसे (एक भी चौकोरीत) कोडोंको जो मण्डल बनता है, उसके भी मध्यवर्ती छत्तीस पदों (कोडों) का कमल होता है । इसमें बींधी नहीं होती ॥ । एक पंक्ति पीठके लिये होती है । शेष दो पंक्तियोंद्वारा पूर्ववर्त द्वार और शोभाकी कल्पना होती है । (इसमें उपशोभा नहीं देखी जाती । अवशिष्ट छ: पदोंद्वारा कोणोंकी कल्पना करनी चाहिये ।) † एक हाथके मण्डलमें बाहर अकुलका कमल-क्लेश होता है । दो हाथके मण्डलमें कमलका स्थान एक हाथ लंबा-चौड़ा होता है । तदनुसार इदिकरके द्वार आदिके साथ मण्डलकी रचना करे । दो हाथका पीठ-विहित चतुरस-मण्डल हो तो उसमें चक्राकार कमल (चक्राब्ज-) का निर्माण करे । जौ अकुलोंका 'पशार्थ' कहा गया है । तीन अकुलोंकी 'नामि' मानी गयी है । आठ अकुलोंके 'अरे' बनावे और चार अकुलोंकी 'नेमि' । क्लेशके तीन भाग करके, फिर भीतरसे प्रत्येकके दो भाग करे । भीतरके जो पाँच कोडुक हैं, उनको अरे या आरे बनानेके लिये आसानित (मार्जित) करके उनके ऊपर 'अरे' अङ्कित करे । वे अरे इन्दीवरके दलोंकी-सी आङ्कितिवाले हों, अथवा माटुलिङ्ग (विजौरा नीवू-) के आकारके हों या कमलदलके समान विस्तृत हों, अथवा अपनी इच्छाके अनुसार उनकी आङ्कित अङ्कित करे । अरोंकी संधियोंके बीचमें सूत रखकर उसे बाहरकी नेमितक के जाय और चारों ओर घुमावे ।

पंक्तिके तीन और बाहरी पंक्तिके एक—इन चार कोडोंको एक करके 'शोभा' बनावे । शोभाके पार्श्वभागमें भीतरी पंक्तियाँ एक और बाहरी पंक्तियाँ तीन—इन चार कोडोंको एक करके 'उपशोभा' बनावे । अङ्कित जो छ: कोड है, उनके द्वारा चारों कोणोंकी कल्पना करे । इस प्रकार सर्वतो-अद्वयमण्डलका निर्माण करके, कमलकी क्षणिका, केसर, दलाय-पीठ, बींधी, द्वार, शोभा, उपशोभा और कोण-स्थानोंको पाँच प्रकारके रूपसे रखित करके उक्त मण्डलकी शोभा बनावे ।

* 'नैवाच बींधिका ।' (शारदातिलङ्क, दृतीय पटक १३२)

† द्वारस्थोमें यथा पूर्वसुपशोभा न हृष्टवरे ॥

अङ्किते: पदोः कुर्वोद वद्भिः कोणानि तत्त्वाणि ।

(शारदा ० १ । १३२-१३३)

अरेके श्रूतभागको उसके संविस्थानमें सह रखकर शुभावे तथा अरेके मध्यमें सूत्र-स्थापन करके उस मध्यभागके सब ओर लम्भावसे सुदृगको शुभावे। इस तरह शुभानेसे शादुषिष्ठके समान 'अरे' बन जायेगे ॥१९-२६॥

चौदह पदोंके क्षेत्रको सात भागोंमें बाँटकर पुनः दो-दो भागोंमें बाँटे अथवा पूर्वी नविक्रम तथा उत्तरसे दक्षिणकी ओर पंद्रह-पंद्रह उमान रेखाएँ लगाने। ऐसा करनेसे एक सौ छियानवे कोष्ठक दिख जाएंगे। वे जो कोष्ठक हैं, उनमेंसे बीचके चार कोष्ठोंद्वारा 'भद्रमण्डल' लिखे। उसके चारों ओर बीचीके लिये स्थान छोड़ दे। फिर सम्पूर्ण दिशाओंमें कमल लिखे। उन कमलोंके चारों ओर बीचीके लिये एक-एक कोष्ठका मार्जन कर दे। तत्पश्चात् मध्यके दो-दो कोष्ठ श्रीवामागके लिये विजुल कर दे। फिर बाहरके जो चार कोष्ठ हैं, उनमेंसे तीन-तीनको सब ओर मिटा दे। बाहरका एक-एक कोष्ठ श्रीवामाके पार्श्वभागमें शेष रहने दे। उसे द्वारशोभाकी संका दी गयी है।

बाह्य कोणोंमें सातको छोड़कर भीतर-भीतरके तीन-तीन कोष्ठोंका मार्जन कर दे। इसे 'नवनाल' या 'नवनाम-मण्डल' कहते हैं। उसकी नी नाभियोंमें नवव्यूहस्तरुप श्रीहरिका पूजन करे। पचास व्यूहोंका जो मण्डल है, वह विश्वव्यापी है, अथवा सम्पूर्ण रूपोंमें व्याप्त है। बत्तीस हाथ अथवा कोष्ठवाले क्षेत्रको बत्तीससे ही वरावर-वरावर विभक्त कर दे, अर्थात् ऊपरसे नीचेको लैटीस रेखाएँ लगाकर उनपर तैनीस आढ़ी रेखाएँ लगाने। इससे एक हजार चौतीस कोष्ठक बनेंगे। उनमेंसे बीचके सोलह कोष्ठोंद्वारा 'भद्रमण्डल' की रचना करे। फिर चारों ओरकी एक-एक पंक्ति छोड़ दे। तत्पश्चात् आठों दिशाओंमें सोलह कोष्ठकोंद्वारा आठ भद्रमण्डल लिखे। इसे 'भद्राष्टक' की संका दी गयी है ॥२७-३४॥

उसके बादकी भी एक पंक्ति मिटाकर पुनः पूर्ववत् सोलह भद्रमण्डल लिखे। तदनन्तर सब ओरकी एक-एक पंक्ति मिटाकर प्रत्येक दिशामें तीन-तीनके क्रमसे बाहर द्वारोंकी रचना करे। बाहरके छः कोष्ठ मिटाकर बीचके पार्श्वभागोंके चार मिटा दे। फिर भीतरके चार और बाहरके दो कोष्ठ श्रीभागके लिये मिटावे।

इस प्रकार आदि गान्धेय भगवानुषाणमें 'सर्वतोमद आदि मध्यके कल्पकक्ष वर्णन' नामक उत्तीसवाँ अथाय पूरा हुआ ॥२९॥

इसके बाद उपद्वारकी तिदिके लिये भीतरके तीन और बाहरके पाँच कोष्ठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् श्रीभागकी कल्पना करे। कोणोंमें बाहरके सात और भीतरके तीन कोष्ठ मिटा दे। इस प्रकार जो पञ्चविंशतिका व्यूहमण्डल तैयार होता है, उसके भीतरकी कमल-कर्णिकामें परब्रह्म परमात्माका यजन करे। फिर पूर्वोदि दिशाओंके कमलोंमें क्रमशः बासुदेव आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् पूर्ववर्ती कमलवर भगवान् वराहका पूजन करके क्रमशः सम्पूर्ण (अर्थात् पचास) व्यूहोंकी पूजा करे। यह कम तबतक चलता रहे जबतक छ्ल्लीसवें तत्व—परमात्माका पूजन न सम्पन्न हो जाय। इस विषयमें प्रचेताका मत यह है कि एक ही मण्डलमें इन सम्पूर्ण कथित व्यूहोंका क्रमशः पूजन-यज्ञ सम्पन्न होना चाहिये। परंतु 'सत्य' का कथन है कि भूतिभेदसे भगवान्के व्यक्तित्वमें भेद हो जाता है; अतः सबका पृथक्-पृथक् पूजन करना उचित है। बयालीस कोष्ठवाले मण्डलको आङ्गी रेखाद्वारा क्रमशः 'विभक्त करे। पहले एक-एकके सात भाग करे; फिर ग्रत्येकके तीन-तीन भाग और उसके भी दो-दो भाग करे। इस प्रकार एक हजार सात सौ चौसठ कोष्ठक बनेंगे। बीचके सोलह कोष्ठोंसे कमल बनावे। पार्श्वभागमें बीचीकी रचना करे। फिर आठ भद्र और बीची बनावे। तदनन्तर सोलह दलके कमल और बीचीका निर्माण करे। तत्पश्चात् क्रमशः चौतीस दलके कमल, बीची, बत्तीस दलके कमल, बीची, चालीस दलके कमल और बीची बनावे। तदनन्तर शेष तीन पंक्तियोंसे द्वार, श्रीभा और उपश्रीमाएँ बनेंगी। सम्पूर्ण दिशाओंके मध्यभागमें द्वारसिद्धिके लिये दो, चार और छः कोष्ठकोंको मिटावे। उसके बाह्यभागमें श्रीभा तथा उपद्वारकी तिदिके लिये पाँच, तीन और एक कोष्ठ मिटावे। द्वारोंके पार्श्वभागोंमें भीतरकी ओर क्रमशः छः तथा चार कोष्ठ मिटावे और बीचके दो-दो कोष्ठ छुट कर दे। इस तरह छः उपश्रीमाएँ बन जायेंगी। एक-एक दिशामें चार-चार श्रीमाएँ और तीन-तीन द्वार होंगे। कोणोंमें प्रत्येक पंक्तिके पाँच-पाँच कोष्ठ छोड़ दे। वे क्षेत्र होंगे। इस तरह रचना करनेपर सुन्दर अभीष्ट मण्डलका निर्माण होता है ॥३५-५०॥

तीसवाँ अध्याय

भद्रमण्डल आदिकी पूजन-विधिका वर्णन

गरदजी कहते हैं—मुनिवरो ! पूर्वोक्त भद्रमण्डलके मध्यवर्ती कमलमें अङ्गोंसहित ब्रह्मका पूजन करना चाहिये। पूर्ववर्ती कमलमें भगवान् पद्मनाभका, अग्निकोणयाले कमलमें प्रकृतिदेवीका तथा दक्षिण दिशाके कमलमें पुष्पशकी पूजा करनी चाहिये। पुरुषके दक्षिण भागमें अग्निदेवताकी, नैर्सूत्यकोणमें निर्श्रुतिकी, पश्चिम दिशाकाले कमलमें बृहणकी, बायव्यक्तोणमें बायुकी, उत्तर दिशाके कमलमें आदित्यकी तथा ईशानकोण-वाले कमलमें ऋग्वेद एवं यजुर्वेदका पूजन करे। द्वितीय आवरणमें इन्ह आदि दिक्कालोंका और श्रोदशदलवाले कमलमें क्रमशः सामवेद, अर्थवेद, आकाश, बायु, तेज, जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, ब्राणेन्द्रिय, भूलोक, भुवलोक तथा सोलहवेंमें खलोंकका पूजन करना चाहिये ॥ १-४ ॥

तदनन्तर तृतीय आवरणमें चौबीस दलवाले कमलमें क्रमशः महलोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक, अग्निशोम, अत्यग्निशोम, उक्थ, षोडशी, बाजपेय, अतिरात्र, आसीर्योम, व्यष्टि मन, व्यष्टि बुद्धि, व्यष्टि अहंकार, शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, जीव, समष्टि मन, समष्टि बुद्धि (महत्त्व), समष्टि अहंकार तथा प्रकृति—इन चौबीसकी अर्चना करे। इन सबका स्वरूप शब्दमात्र है—अर्थात् केवल इनका नाम छेकर इनके प्रति मस्तक छाका लेना चाहिये। इनकी पूजामें इनके स्वरूपका विन्नतन अनावश्यक है। पचासवें अध्यायमें कथित वासुदेवादि नौ सूर्ति, दशविंश प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, पायु और उपस्थ, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, शाण, वाक्, पाणि और पाद—इन चौबीस वस्तुओंकी बत्तीस दलवाले कमलमें अर्चना करनी चाहिये। ये चौथे आवरणके देवता हैं। उक्त आवरणमें इनका साझा एवं सपरिवार पूजन होना चाहिये ॥ ५-९ ॥

तदनन्तर बाढ़ आवरणमें पायु और उपस्थकी पूजा करके बारह मासोंके बारह अविपत्तियोंका तथा पुरुषोत्तम आदि छत्त्वास तत्त्वोंका पूजन करे। उनमेंसे जो मासाविपति है उनका चक्राब्जमें क्रमशः पूजन करना चाहिये। आठ, छः, पाँच या चार प्रकृतियोंका भी पूजन वहीं करना चाहिये। तदनन्तर किसित मण्डलमें विभिन्न रंगोंके

चूर्ण ढालनेका विधान है। कहाँ, किस रंगके चूर्णका उपयोग है, यह सुनो। कमलकी कर्णिका पीले रंगकी होनी चाहिये। समस्त रेखाएँ बराबर और इवेत रंगकी रहें। दो हाथके मण्डलमें रेखाएँ ऑग्नेके बराबर मोटी होनी चाहिये। एक हाथके मण्डलमें उनकी मोटाई आपे ऑग्नेके समान रखनी चाहिये। रेखाएँ इवेत बनायी जावें। कमलको इवेत रंगसे और संधियोंको काले या श्याम (नीले) रंगसे रंगना चाहिये। केसर आल-पीछे रंगके हैं। कोणगत कोष्ठोंको लाल रंगके चूर्णसे भरना चाहिये। इस प्रकार योगपीठको सभी तरहेके रंगोंसे यथेष्ट विभूषित करना चाहिये। लता-बलरियों और पत्तों आदिसे बीधीकी शोभा बढ़ावे। पीठके द्वारको इवेत रंगसे सजावे और शोभास्थानोंको लाल रंगके चूर्णसे भरे। उपयोगाभाओंको नीके रंगसे विभूषित करे। कोणोंके शङ्खोंको इवेत चिप्रित करे। यह भद्रमण्डलमें रंग भरनेकी बात बतायी गयी है। अन्य मण्डलोंमें भी इसी तरह विविध रंगोंके चूर्ण भरने चाहिये। विकोण मण्डलको इवेत, रक्त और कृष्ण रंगसे अलंकृत करे। दिक्कोणको लाल और पीलेसे रंगे। चक्राब्जमें जो नामिस्थान है, उसे कृष्ण रंगके चूर्णसे विभूषित करे ॥ १०-१७ ॥

चक्राब्जके अर्देंको पीले और लालसे रंगे। नेमिको नीले तथा लाल रंगसे सजावे और बाहरकी रेखाओंको इवेत, श्याम, अद्वन, काले एवं पीले रंगोंसे रंगे। अगहनीके चावलका पीसा दुआ चूर्ण आदि इवेत रंगका काम करता है। कुसुम्भ आदिका चूर्ण लाल रंगकी पूर्ति करता है। पीका रंग इच्छाके चूर्णसे तैयार होता है। जले दुए चावलके चूर्णसे काले रंगकी आवश्यकता पूर्ण होती है। शमी-पत्र आदिसे श्याम रंगका काम लिया जाता है। बीज-मन्त्रोंका एक लाल जप करनेसे, अन्य मन्त्रोंका उनके अक्षरोंके बराबर लाल बार जप करनेसे, विद्याओंको एक लक्ष जपनेसे, बुद्ध-विद्याओंको दस हजार बार जपनेसे, खोजोंका एक सहस्र बार याठ करनेसे अथवा सभी मन्त्रोंको पहली बार एक लाल जप करनेसे उन मन्त्रोंकी तथा अपनी भी शुद्धि होती है। दूसरी बार एक लाल जपनेसे मन्त्र क्षेत्रीकृत

होता है। बीज-मन्त्रोंका पहले जितना जप किया गया हो, उसना ही उनके लिये होमका भी विधान है। अन्य मन्त्रादिके होमकी संख्या पूर्वजपके होमाको त्रुट्य बतायी गयी है। मन्त्रसे पुरश्चरण करना हो तो एक-एक मासका ज्ञात ले। पृथ्वीपर पहले बायाँ पैर रखले। किसीसे दान न ले। इस प्रकार दुगुना और तिगुना जप करनेसे ही अध्यम और उत्तम श्रेणीकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अब मैं मन्त्रका ध्यान बताता हूँ, जिससे मन्त्र-जपजनित फलकी प्राप्ति होती है। मन्त्रका स्थूलरूप शब्दमय है; इसे उसका बाधा विग्रह माना गया है। मन्त्रका सूक्ष्मरूप ज्योतिर्मय है। वही उसका आन्तरिक रूप है। यह केवल चिन्तनमय है। जो चिन्तनसे भी रहित है, उसे 'पर' कहा गया है। बाराह, नरसिंह तथा शक्तिके स्थूलरूपकी ही प्रधानता है। बासुरेषका रूप चिन्तनरहित (अचिन्त्य) कहा गया है ॥ २८-२७ ॥

अन्य देवताओंका चिन्तनमय आन्तरिक रूप ही सदा 'मुख्य' माना गया है। 'वैराज' अर्थात् विराट्का स्वरूप 'स्थूल' कहा गया है। लिङ्गमय स्वरूपको 'मुख्य' मानना चाहिये। ईश्वरका जो स्वरूप बताया गया है, वह

इस प्रकार आदि आमेष महापुराणमें 'मद्भ-मद्भादिविच-कथन' नामक तीसराँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

इकट्ठीसर्वाँ अध्याय

'अपामार्जन-विधान' एवं 'कुशापामार्जन' नामक स्तोत्रका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—युने ! अब मैं अपनी तथा दूसरोंकी रक्षाका उपाय बताऊँगा। उसका नाम है—मार्जन (या अपामार्जन)। यह वह रक्षा है जिसके द्वारा मानव दुःखसे छूट जाता है और मुखको प्राप्त कर केता है। उन सचिन्तनन्दमय, परमार्थस्वरूप, सर्वान्तर्यामी, महात्मा, निराकार तथा सहस्रों आकारभारी व्यापक परमात्माको भेरा नमस्कार है। जो समस्त कष्मर्णीसे रहित, परम शुद्ध तथा नित्य ध्यानयोग-रक्षा है, उसे नमस्कार करके मैं प्रस्तुत रक्षाके विषयमें कहूँगा, जिससे मेरी बाणी सत्य हो। महामुने !

- * नमः परमाद्यं पुरुषाय महास्मने ।
- ब्रह्मन्तुक्याय व्यापिने परमास्मने ॥
- विष्वस्मयाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च ।
- नमस्कार्यं प्रवद्यामि वद तद् सिद्धतु मे च ॥

चिन्तारहित है। बीज-मन्त्र हृदयकमलमें निवास करनेवाला, अविनाशी, चिन्मय, ज्योतिस्वरूप और जीवात्मक है। उसकी आकृति कदम्ब-पुष्पके समान है—इस तरह ध्यान करना चाहिये। जैसे घडेके भीतर रक्खे हुए दीपककी प्रभाका प्रसार अवश्य हो जाता है; वह संहतभावसे अकेला ही स्थित रहता है; उसी प्रकार मन्त्रेश्वर हृदयमें विराजमान हैं। जैसे अनेक छिद्रबाले कलशमें जितने छेद होते हैं, उतनी ही दीपककी प्रभाकी किरणें बाहरकी ओर फैलती हैं, उसी तरह नाडियोंद्वारा ज्योतिर्मय बीजमन्त्रकी रश्मियाँ आँतेको प्रकाशित करती हुई दैव-देहको अपनाकर स्थित हैं। नाडियों हृदयसे प्रस्थित हो नेत्रेन्द्रियोंतक चली गयी हैं। उनमें से दो नाडियों अग्नीषोयत्पक हैं, जो नासिकाभ्योंके अग्रभागमें स्थित हैं। मन्त्रका साधक सम्यक् उद्घात-शोषणसे शरीरव्यापी प्राणवायुको जीतकर जप और ध्यानमें तसर रहे तो वह मन्त्रजनित फलका भागी होता है। पञ्चभूततन्मात्राओंकी शुद्धि करके योगाय्यास करनेवाला साधक यदि सकाम हो तो अणिमा आदि सिद्धियोंको पाता है और यदि विरक्त हो तो उन सिद्धियोंको लौघकर, चिन्मय स्वरूपसे स्थित हो, भूतमात्रसे तथा इन्द्रियरूपी ग्रहसे सर्वथा मुक्त हो जाता है ॥ २८-३६ ॥

मैं भगवान् बाराह, दुर्सिंह तथा वामनको भी नमस्कार करके रक्षाके विषयमें जो कुछ कहूँगा, मेरा वह कथन सिद्ध (सफल) हो ॥ मैं भगवान् त्रिविक्रम (त्रिलोकीको तीन पाँचसे नापनेवाले विराट्स्वरूप), श्रीराम, वैकुण्ठ (नारायण) तथा नरको भी नमस्कार करके जो कहूँगा, वह मेरा बचन सत्य सिद्ध हो ॥ १-५ ॥

अपामार्जनविधानम्

वराह	नरसिंहेष्ट	वामनेष्ट	त्रिविक्रम ।
हृषीकेष्ट	सर्वेष्ट	हृषीकेष्ट	हराकुम्भम् ॥ ६ ॥

- * वराहाय नरसिंहाय वामनाय महास्मने ।
- नमस्कृत्य प्रवद्यामि वद तद् सिद्धतु मे च ॥
- † त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च ।
- नमस्कृत्य प्रवद्यामि वद तद् सिद्धतु मे च ॥
- (३१ । ३-५)

असरतित अस्त्राचैत्युभ्ये परमात्मैः ।
असरित्याकुश्चावैसर्वं पर्वतुष्टुरो भव ॥ ५ ॥
हरमुक्तं तुरितं सर्वं च कुशलं तुर ।
कुशुभ्यातिभवदं तुरित्य च वर्तकम् ॥ ६ ॥

भगवन् वराह ! वृतिहेश्वर ! वामनेश्वर ! त्रिविक्रम !
इत्यीयेषा सर्वेष तथा हृषीकेश ! मेरा सारा अशुभ
हर लीजिये । किसीसे भी पराजित न होनेवाके
परमेश्वर ! अपने अखण्डित प्रभावशाली चक्र आदि
चारों आशुधोंसे समस्त दुष्टोंका संहर कर डालिये । प्रभो !
आप अमुक (रोगी या प्रार्थी) के सम्पूर्ण पाणोंको हर
लीजिये और उसके लिये पूर्णतया कुशल-क्षेमका सम्पादन
कीजिये । दोषशुक्त यश या पापके फलस्वरूप जो मृत्यु,
बन्धन, रोग, पीड़ा या भय आदि प्राप्त होते हैं, उन सबको
मिटा दीजिये ॥ ६-८ ॥

पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं आभिचारिकम् ।
गरस्पर्शमहारोगप्रबोगं जरया जर ॥ ९ ॥
ॐ नमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय लक्ष्मिने ।
नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे ॥ १० ॥
नमः कमलकिस्त्रकर्तिनिर्मलवाससे ।
महावरिपुस्कन्धशृष्टचक्राय चक्रिणे ॥ ११ ॥
वद्ग्रेदृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ।
महापद्मवराहाय शोषभोगाकृशायिने ॥ १२ ॥
तस्त्राटककेशाक्षज्यलयावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्शं दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥
काइयपायातिहस्याय श्रावणःसामग्र्यिणे ।
तुभ्यं वामनरूपायाकमते गां नमो नमः ॥ १४ ॥

दूसरोंके अनिष्ट-चिन्तनमें संलग्न लोगोंद्वारा जो आभि-
चारिक कर्मका, विषयित्रित अङ्ग-यानका या महारोगका
प्रयोग किया गया है, उन सबको जरा-जीर्ण कर डालिये—
नष्ट कर दीजिये । ॐ भगवान् वासुदेवको नमस्कार
है । खड़ाशारी श्रीकृष्णको नमस्कार है । आदिचक्रारी
कमल-नयन केशवको नमस्कार है । कमलपुष्टके केसरोंकी
भाँति पीत-निर्मल बज्ज धारण करनेवाले भगवान्
पीताम्बरको प्रणाम है । जो महाउमरमें शत्रुओंके
कंधोंसे छूट होता है, ऐसे चक्रके चालक भगवान्
चक्रपाणिको नमस्कार है । अपनी हंड्डापर उठायी दुई
पृथ्वीकी धारण करनेवाले वेद-विग्रह एवं शेषशश्यायामी

महान् वस्त्रवाहको नमस्कार है । दिव्यसिंह ! असरके
केशान्त प्रसास-कुशके समान कानित्यान् हैं, जेव प्रसरित
पावकके समान लेजसी हैं तथा आपके लेजोंका सर्वोच्चते
भी अधिक तीक्ष्ण है; आपको नमस्कार है । अस्त्र
क्षमताय तथा शृग्, शुक्र और साम तीनों वेदोंसे विभूषित
आप कश्यपकुमार वामनको नमस्कार है । फिर विराट-स्त्रै
पृथ्वीको लौंघ जानेवाले आप त्रिविक्रमको नमस्कार है ॥ १५-१८ ॥

वराहाशेषद्वुष्टायि सर्वप्रकाशि वे ।
मर्दं मर्दं माहादंडं मर्दं मर्दं च तत्परम् ॥ १५ ॥
नारसिंह कराखास्य दन्तप्रान्ताम्बकोउच्चल ।
भज भज भिन्नदेन दुष्टान् पश्चार्तिनाशन ॥ १६ ॥
कृष्ण्युजामार्भामिद्वैमिद्वैमनस्यष्टक् ।
प्रसामं सर्वदुःखायि नवत्वस्य जनार्दन ॥ १७ ॥
ऐकाहिं द्वयाहिं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम् ।
चातुर्थिं तथात्मुपं तयैव सततं ज्वरम् ॥ १८ ॥
दोषोदयं संक्षिप्तात्रयं तयैवागम्भुकं ज्वरम् ।
शमं नवायु गोविन्द चिकित्सि चिकित्स्य वेदलाभम् ॥ १९ ॥

वदाइलपधारी नारायण ! समस्त पापोंके फलरूपसे प्रस्त
रम्पूर्ण उष्ट रोगोंको कुचल दीजिये, कुचल दीजिये । बड़े-बड़े
दाढ़ोंवाले महावराह ! पापजनित फलको मखल डालिये,
नष्ट कर दीजिये । विकटानन दृष्टिंह ! आपका दन्त-प्रान्त
अभिके समान जावत्यमान है । आर्तिनाशन ! आक्रमणकारी
कुष्टोंको देखिये और अपनी दहाढ़से इन सबका नाश
कीजिये, नाश कीजिये । वामनरूपधारी जनार्दन ! शृकं,
यजुः एवं वामवेदके गूढ तत्त्वोंसे भरी वाणीद्वारा इस आर्त-
जनके समस्त दुःखोंका शमन कीजिये । गोविन्द ! इसके
त्रिदोषज, संनिपातज, आगन्तुक, ऐकाहिक, द्वयाहिक,
च्याहिक तथा अत्यन्त उग्र चातुर्थिक ज्वरको एवं सतत
बने रहनेवाले ज्वरको भी शीघ्र शान्त कीजिये । इसकी
वेदनाको मिटा दीजिये, मिटा दीजिये ॥ १५—१९ ॥

नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं चोदरसम्भवम् ।
अभिशासमतिशासं परितापं सर्वेषुम् ॥ २० ॥
गुदग्रामाक्षिरोगांश्च कुड्डोगांस्तथा श्वरम् ।
कामलार्द्दिक्षाय रोगान् भ्रमेहाम्बालिदास्यान् ॥ २१ ॥
भगव्युत्प्रतिशासीश्च मुखरोगांश्च श्वरुदीय ।
कामर्दी शूलहस्त्रांश्च रोगाम्बाल शास्यान् ॥ २२ ॥

वे जास्तभवता रोगा वे च पितृसमुद्दत्ताः ।
कषोक्षयात् वे केचिद् वे चाम्बे सन्निपातिकाः ॥ २३ ॥
आगच्छुकाम् वे रोगा लक्षणिलोकादृशः ।
ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥ २४ ॥
विद्युतं वान्तु से सर्वे विष्णीलक्षणर्णवे च ।
श्वरं गच्छन्तु चाशेषस्ते वज्रभिहता इहे ॥ २५ ॥
अच्छुतानन्तरोविनिवासमोक्षारणवेशात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः स्त्रयं सर्वं वदाम्ब्यहम् ॥ २६ ॥

इस दुखियोंके नेत्ररोग, शिररोग, उदररोग, भ्रासाबरोग, अतिश्वास (दमा), परिताप, कम्पन, गुदरोग, नाशिका-रोग, पादरोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कामला आदि रोग, अस्तन्त दाढ़ण प्रसेह, भगंदर, अतिशार, मुखरोग, वस्त्राली, अश्मरी (पथरी), मूषकच्छ्र तथा अन्य महाभयंकर रोगोंको भी दूर कीजिये । भगवान् वासुदेवके संकीर्तनमात्रसे जो भी वातज, पित्तज, कफज, संनिपातज, आगच्छुक तथा लूता (मकरी), विस्फोट (फोड़े) आदि रोग हैं, वे सभी अपमार्जित होकर शान्त हो जायें । वे सभी भगवान् विष्णुके नामोक्षारणके प्रभावसे विलुप्त हो जायें । वे समस्त रोग श्रीहरिके चक्रसे प्रतिहत होकर क्षयको प्राप्त हों । ‘अच्छुत’, ‘अनन्त’ एवं ‘प्रोविन्ट’—इन नामोंके उक्तारणस्य औपचार्यसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं कल्प-सत्य कहता हूँ ॥ २०—२६ ॥

श्वारं अङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि विष्णवद् ।
दम्तोद्धरं नश्यन्तवामाकाशप्रभवं विषम् ॥ २७ ॥
—लक्षणादिप्रभवं वा विषमन्यसु तु त्वद्वद् ।
श्वरं नयनु तत्सर्वं वासुदेवस्य कीर्तनम् ॥ २८ ॥
भ्रान् प्रेतद्याहापि तथां वे डाकिनीभ्रान् ।
वेसालांश्च पिण्डाचार्य गच्छबाहूद्य यक्षराक्षसाद् ॥ २९ ॥
क्षाकुलीप्रत्याधार्यं तथा वैगायकान् ग्राहाद् ।
मुखमण्डीं तथा कूरी देवतीं चृदेवतीम् ॥ ३० ॥
हृदिकालस्यान्तर्होपार्थकात्था मातृप्रहान्ति ।
वाक्षस्य विष्णोऽपरितं हन्तु वाक्ग्राहानिमान् ॥ ३१ ॥
तुद्वद् वे ग्राहाः केचिद् वे च वाक्ग्राहाःः क्षिति ।
नरसिंहस्व ते इच्छा दृष्टा वे चापि वैष्णवे ॥ ३२ ॥
सदाकरतावदनो नारसिंहो महावकः ।
भ्रह्मदेवान्मिः वैष्णवः करोतु जनतो हितः ॥ ३३ ॥
नरसिंह चृहसिंह उवाकामाक्षोरुद्यक्षानन् ।
प्रहृतदेवान् सर्वेषां चाद वाक्मिलकोशल ॥ ३४ ॥

स्यावर, जङ्घम, कृत्रिम, दम्तोद्धर, नस्तोद्धर, आकाशोद्धर तथा लूतादिसे उत्पन्न एवं अन्य जो भी दुःखप्रद विष हैं—भगवान् वासुदेवका संकीर्तन उनका प्रशमन करे । बालस्वचारी श्रीहरि (श्रीकृष्ण) के चरित्रका कीर्तन ग्रह, प्रेतग्रह, डाकिनीग्रह, चेताल, पिण्डाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, शकुनी-पूतना आदि ग्रह, विनायकग्रह, मुख-मणिडका, कूर रेवती, वृद्धरेवती, वृद्धिका नामसे प्रसिद्ध उग्र ग्रह एवं मातृग्रह—इन सभी बालग्रहोंका नाश करे । भगवन् ! आप नरसिंहके हृषिपातसे जो भी दृढ़, बाल तथा युवा ग्रह हैं, वे दग्ध हो जायें । जिनका मुख सुटा-समूहसे विकराल प्रतीत होता है, वे लोक-हितैषी महाबलवान् भगवान् नृसिंह समस्त बालग्रहोंको निःशेष कर दें । महासिंह नरसिंह ! ज्वालामालाओंसे आपका मुखमण्डल उज्ज्वल हो रहा है । अग्निलोचन ! सर्वेश्वर ! समस्त ग्रहोंका भक्षण कीजिये, भक्षण कीजिये ॥ ३५—३४ ॥

वे रोगा वे महोत्पाता वद्विं वे महाग्रहाः ।
शानि च कूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारूणाः ॥ ३५ ॥
श्वसक्षतेषु वे दोषा ज्वाकागर्द्धभकादृशः ।
दानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा ज्वादैनः ॥ ३६ ॥
किञ्चिद्दूरं समाश्वस्य वासुदेवस्य नाशय ।
हिष्पता सुदर्शनं चक्रं ज्वाकामाकातिभीषणम् ॥ ३७ ॥
सर्वदुष्टोपकामवं कूर देववरात्मुत ।
सुदर्शन महाव्याक डिङ्गिं विलन्धि महारव ॥ ३८ ॥
सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं वान्तु विभीषण ।
प्राच्यां प्रतीच्यां च दिवि दक्षिणोचरतस्यात् ॥ ३९ ॥
रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः खगर्जितैः ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठसः पाइर्वतोऽप्रसः ॥ ४० ॥
रक्षां करोतु भगवान् चहुरुपी जनादैनः ।
यथा विष्णुजंगलस्वं सदेवातुरमानुषम् ॥ ४१ ॥
तेन सर्वेन तुषानि शमसस्य व्रजन्तु चै ।
वासुदेव ! आप सर्वात्मा परमेश्वर जनादैन हैं । इस व्यक्तिके जो भी रोग, महान् उत्पात, विष, महाग्रह, कूर भूत, दाढ़ण ग्रहपीडा तथा ज्वालागर्द्धभक आदि शब्द-शब्द-जनित दोष हैं, उन सबका कोई भी रूप धारण करके नाश करें । देवभेद अच्छुत । ज्वालामालाओंसे अस्तन्त भीषण सुदर्शन-चक्रको प्रेरित करके समस्त दुष्ट रोगोंका शमन कीजिये । महाभयंकर सुदर्शन । तुम प्रचण्ड ज्वालाओंसे सुशोभित और महान् शब्द करनेवाले हो । अतः सम्पूर्ण दुष्ट राक्षसोंका संहार करो,

संहार करो । वे तुम्हारे प्रभावसे क्षयको प्राप्त हो । पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें सर्वात्मा नृसिंह अपनी मर्जनाते रक्षा करें । स्वर्गलोकमें, भूलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा आगे-पीछे अनेक रूपधारी भगवान् जनार्दन रक्षा करें । देवता, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णुका ही स्वरूप है; इस सत्यके प्रभावसे इसके तुष्ट रोग शान्त हों ॥ ४३ ॥

यथा विष्णु स्मृते सद्यः संक्षयं यान्ति पातकाः ॥ ४२ ॥
सर्वेन तेन सकलं दुष्मस्य प्रशास्यतु ।
यथा बहेश्वरो विष्णुर्वैष्वपि हि गोवते ॥ ४३ ॥
सर्वेन तेन सकलं बन्धमयोक्तं तथास्तु तत् ।
शास्त्रिनिरस्तु शिवं चास्तु दुष्मस्य प्रशास्यतु ॥ ४४ ॥
वासुदेवशारीरोत्थः कुरौर्मिर्णाशितं नया ।
अपामार्जन्तु गोविन्दो नरो नारायणस्तथा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'कुशापामार्जन-स्तोत्रका वर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

तथास्तु सर्वतुःसाक्षां प्रसामो वचकाद्वरः ।
अपामार्जन्ते कं सर्वते सर्वैरोपादिकारणम् ॥ ४६ ॥
अहं हरिः कुशत् विष्णुर्वैका होशा वक्षा तत्वं ते धर्मं ते

श्रीविष्णुके स्वरूपमात्रसे पापसमूह तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इस बलके प्रभावसे इसके समस्त दूरित देश शान्त हो जायें । यहेश्वर विष्णु देवताओंद्वारा प्रशंसित होते हैं; इस सत्यके प्रभावसे भेद कथन सत्य हो । शान्ति हो, मङ्गल हो । इसका तुष्ट रोग शान्त हो । मैंने भगवान् वासुदेवके शारीरसे प्रादुर्भूत कुद्वांसे इसके रोगोंको नष्ट किया है । नर-नारायण और गोविन्द—इसका अपामार्जन करें । श्रीहरिके बचनसे इसके सम्पूर्ण दुःखोंका शामन हो जाय । समस्त रोगादिके निवारणके लिये 'अपामार्जन-स्तोत्र' प्रशस्त है । मैं श्रीहरि हूँ, कुशा विष्णु हैं । मैंने तुम्हारे रोगोंका नाश कर दिया है' ॥ ४२—४७ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

निर्बाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्म ! ब्रुदिमान् पुरुष
निर्बाणादि दीक्षाओंमें अङ्गतालीस संस्कार करावे । उन संस्कारोंका वर्णन सुनिये, जिनसे मनुष्य देवतुल्य हो जाता है । सर्वप्रथम योनिमें गर्भाधान, तदनन्तर पुंसवन-संस्कार करे । किंतु सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, चार ब्रह्मार्चयवत—वैष्णवी, पार्थी, भौतिकी और श्रौतिकी, गोदान, समावर्तन, सात पाक्यवत—अष्टका, अन्वष्टका पार्वणशास्त्र, धावणी, आग्रहायणी, चैत्री एवं आश्वयुजी, सात हविर्यज—आधान, अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पश्चवन्ध तथा सौत्रामणी, सात सोमसंस्थाय—यज्ञधेष्ठ अग्निहोत्र, अत्यग्निहोत्र, उक्ष्य, घोडशी, वाजपेय, अतिरात्र

एवं आसोवर्णम; महस्तेश यज्ञ—हिरण्याङ्गुष्ठि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्र, हिरण्यास्य, हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् और सब यज्ञोंका स्वामी अश्वेषधत्ता तथा आठ गुण—पर्वमूलदया, क्षमा, आर्जव, शौच, अनायास, मङ्गल, अकृपणता और असृष्टा—ये संस्कार करे । इष्टदेवके मूल-मन्त्रसे सौ आहुतिवाँ दे । सौर, शाक, वैष्णव तथा शौष्ठ—सभी दीक्षाओंमें ये समान माने गये हैं । इन संस्कारोंसे संस्कृत होकर मनुष्य भोग-भोक्षको प्राप्त करता है । वह सम्पूर्ण रोगादिसे मुक्त होकर देववत् हो जाता है । मनुष्य अपने इष्टदेवताके जप, होम, पूजन तथा ध्यानसे इच्छित वस्तुको प्राप्त करता है ॥ १—१३ ॥

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'निर्बाणादि-दीक्षाकी सिद्धिके उद्देश्यसे सम्पादनीय संस्कारोंका वर्णन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

तीतीसवाँ अध्याय

पवित्रारोपण, भूतशुद्धि, योग्यीठस देवताओं तथा प्रधान देवताके पार्वद—आवरणदेवोंकी पूजा

अपनिवेद कहते हैं—मुने ! अब मैं पवित्रारोपणकी विधि बताऊँगा । बच्चे मैं एक बार किया गया पवित्रारोपण सम्पूर्ण वर्षभर की हुई श्रीहरिकी पूजाका फल देनेवाला है । आषाढ़ (की शुक्ला एकादशी) से लेकर कार्तिक (की शुक्ला एकादशी) तकके बीचके कालमें ही 'पवित्रारोपण' किया जाता है । प्रतिपदा घनदत्तिथि है । द्वितीया आदि तिथियाँ क्रमशः लक्ष्मी आदि देवताओंकी हैं । यथा—लक्ष्मीकी द्वितीया, गौरीकी तृतीया, गणेशाकी चतुर्थी,

* वर्षभरके पूजा-विधानकी सम्पूर्ण बुटियोंका दोष दूर करके उस कमंडी साहोपाङ्क सम्पत्ति एवं उससे समस्त इन फलोंकी प्राप्तिके लिये 'पवित्रारोपण' अस्त्र आवश्यक कर्म है । इसे न करनेपर मन्त्र-साधक वा उपासकोंसे सिद्धिसे बचित होना पड़ता है । जैसा कि आचार्य सोमशम्भुने कहा है—

सर्वपूजाविधिष्ठपूरण्य	पवित्रकम् ।
कर्तव्यमन्यथा	मन्त्री
सिद्धिज्ञशम्भवान्तुयात् ॥	
(क० क० ३६४)	

आचार्य क० विष्णु-रहस्यमें भी कहा गया है—

तस्माद् भक्तिसमायुक्तैरेविष्णुपरायणैः ।
वये वये प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः ॥
(बाचस्पत्ये हेमाद्री)

पवित्रारोपण सभी देवताओंके लिये उनके उपासकोंद्वारा कर्तव्य है । इसके न करनेदेव वर्षभरके देवपूजनके फलसे हाथ खोना पड़ता है । वह कर्म अस्त्र अप्यदायक माना गया है ।

सबसे पहले शास्त्रोंमें इसके लिये उत्तम कालका विचार किया गया है, जिसका दिग्दर्शन यूलके दूसरे तथा तीसरे श्लोकोंमें कराया गया है । सोमशम्भुके भ्रात्ये इसके लिये आषाढ़ मास उत्तम, आवण मध्यम तथा भाष्ट्रपद कर्मिष्ठ है । वे इससे आगे बढ़नेकी आशा नहीं देते । परंतु 'विष्णुरहस्य'के अनुसार भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणका मुख्यकाल श्रावण-शुक्ल द्वादशी है । वैसे तो वह सिंहशत सूर्य और कन्दागत सुर्यों, अर्धात् भाद्रों और आष्टिनकी शुक्ला द्वादशीको भी किया जा सकता है । कार्तिकमें इसके करनेका सर्वथा निषेद्ध है—

'तुलास्ये न कराचन ।'

१. कोहे-कोई विद्वान् प्रग्निपदाको अधिकी और द्वितीयाको ब्रह्मजीकी तिथि मनाते हैं ।

सरस्वती [तथा नाग देवताओं] की पञ्चमी, स्वामी कार्तिकेयकी पष्ठी, सूर्यकी सप्तमी, मातृकाओंकी अष्टमी, दुर्गाकी नवमी, नागों [या यमराज] की दशमी, शृणियों तथा भगवान् विज्ञुकी एकादशी, श्रीहरिकी द्वादशी, कामदेवकी श्रोदशी, दिव्यकी चतुर्दशी तथा ब्रह्माकी पौर्णमासी एवं अमावास्या तिथि है । जो मनुष्य जिस देवताका भक्त है, उसके लिये वही तिथि पवित्र है ॥ १—३ ॥

पवित्रारोपणकी विधि सब देवताओंके लिये समान है; केवल मन्त्र आदि प्रत्येक देवताके लिये पृथक्-पृथक् बोले । पवित्रक बनानेके लिये मोने-जाँदी और तौंचेके तार तथा कपास आदिके सूत होने चाहिये ॥ ४ ॥

+ पवित्रक बनानेके लिये सौने, चाँदी या तांबिके तार गृहीत है और रेशम तथा कपासके सूतोंसे भी इसका निर्माण होता है । सोमशम्भुके विचारसे सौने, चाँदी तथा तांबिके तारोंसे पवित्रक बनानेका विधान क्रमशः सत्ययुग, ब्रेनायुग तथा द्वापरयुगके लिये रहा है । विक्षिणमें रुईके सूतोंसे भी काम लिया जा सकता है । शक्ति हो नो रेशमी सूतोंके पवित्रक अप्रिय करने चाहिये । विष्णु-रहस्यमें दर्भमूल, पश्यमूल, क्षौमसूत्र पटट-मूत्र तथा शुद्ध कपासका मूल—इन सबके द्वारा पवित्रक बनानेका विधान है ।

कपासका सूत ब्राह्मणीका काना हुआ हो, ऐसा अस्तिपुराणका विचार है । उसके अभावमें किनी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लाया जा सकता है । सोमशम्भुके मात्रमें ब्राह्मणकन्याओं-द्वारा काना हुआ सूत श्राव्य है । 'विष्णुरहस्य'के अनुसार ब्राह्मणीकी कन्या, पवित्रिगा ब्राह्मणी तथा द्वारीला ब्राह्मणजातीया विष्वा भी पवित्रकके लिये सूत तैयार कर सकती है ।

सूतमें केश न लगा हो, वह द्वया या जला न हो, अदिरा तथा रक्त आदिके स्पर्शमें दूषित न हुआ हो, मैला या नीलका रंग न हो—इस तरहके सूत बाजित हैं । उपसूक्त रूपसे शुद्ध सूत लेकर, उसे पहल बार तिगुना करके पुलः तिगुना करे और उन नी तन्तुओं-के द्वारा पवित्रक बनाये । पवित्रकली जार अणिर्णी है—कर्मिष्ठ, मध्यम, उत्तम और बनमाला । 'कर्मिष्ठ' पवित्रकला निर्वाण लक्ष्याद्वारा

ब्राह्मणोंके हाथका काता हुआ सूत सर्वोच्चम् है । वह न मिले तो किसी भी सूतको उसका संस्कार करके उपयोगमें लेना चाहिये । सूतको तिपुना करके, उसे पुनः लिगुना करे और उसीसे, अर्थात् नौ तनुओंद्वारा पवित्रक बनाये । एक सौ आठसे लेकर अधिक तनुओंद्वारा निर्मित पवित्रक उत्तम आदिकी घोणीमें गिना जाता है । [पवित्रारोपणके पूर्व] इष्ट देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—
‘प्रभो ! कियालोपजनित दोषको दूर करनेके लिये आपने जो साधन बताया है, देव ! वही मैं कर रहा हूँ । जहाँ जैसा पवित्रक आवश्यक है, वहाँके लिये बैसा ही पवित्रक अर्पित होगा । नाथ ! आपकी कृपासे इस कार्यमें कोई विष-वाधा न आवे । अविनाशी परमेश्वर ! आपकी जय हो’ ॥ ५—७ ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके मनुष्य पहले इष्टदेवके मण्डलके लिये गायत्री-मन्त्रसे पवित्रक बाँधे । इष्टदेव नारायणके लिये गायत्री मन्त्र इस प्रकार है—
‘ॐ नमो नारायणाय विश्वे, वासुदेवाय धीमहि, तत्त्वे विष्णुः

तनुओंसे होता है । वह शुभ होता है तथा उसके अर्पणसे सुख, आशु, धन और पुत्रकी प्राप्ति बतायी गयी है । चौबन तनुओंसे बनाये गये पवित्रकको ‘मध्यम’की संक्षा दी गयी है । यह और भी उत्तम है । इसके अर्पणसे पुण्य दिव्य भोग तथा दिव्य धारमें निवासका द्वाज प्राप्त होना बताया गया है । ‘उत्तम’ संक्ष पवित्रक एक सौ आठ तनुओंसे बनाता है । ऐसा पवित्रक जो भगवान् विष्णुको अर्पित करता है, वह विष्णुधारमें जाता है । एक इजार आठ तनुओंसे निर्मित पवित्रकको ‘बनमाला’ कहते हैं । वह भगवद्भक्ति प्रदान करनेवाली मानी गयी है । ‘कनिष्ठ पवित्रक’की लंबाई नाभिनककी होती है, ‘मध्यम पवित्रक’ जॉथ्रक लटकता है और ‘उत्तम’ छुन्नोत्तकम लंबा होता है । कालिकापुराण अच्याय ५८ में भी यही बात कही गयी है । यथा—

कनिष्ठं नाभिमार्चं स्यादूकमात्रं तु मध्यमम् ।
पवित्रं चोत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं प्रमाणतः ॥

‘बनमाला’ भगवद्प्रतिनिधि बराबर बनायी जाती है । वह पैरोत्तक लंबी होती है । उसके अर्पणसे उपासकके जन्म-हृष्टुम् संसार-वन्धनका उच्छेद हो जाता है ।

विष्णुरहस्यमें तनु-देवताओंका भी क्षण है तथा पवित्रकके आध्यात्मिक, आधिमौतिक और आधिदेविक स्वरूपका भी विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है ।

प्रवौद्यसद् ॥९॥ इष्टदेवताके जापके अनुकूल वह आयत्री है । देव-प्रवित्रायोग्यर अर्पित करनेके लिये अनेक प्रकारका पवित्रक होता है । एक तो विष्णुकी नाभितक पहुँचता है, दूसरा जॉथ्रोत्तक और तीसरा छुट्टो-तक पहुँचता है । [ये क्रमशः कनिष्ठ मध्यम तथा उत्तम घोणीमें परिणित हैं ।] एक चौथा प्रकार भी है, जो पैरोत्तक लटकता है । यह पैरोत्तक लटकनेवाला पवित्रक व्यन्नमाला कहा जाता है । वह एक इजार आठ तनुओंसे तैयार किया जाता है । [इसका माहात्म्य सबसे अधिक है ।] साधारण माला अपनी शक्तिके अनुसार बनायी जाती है । अथवा वह सोलह अङ्गुलसे द्युमुली बड़ी होनी चाहिये । कर्णिका, केसर और दल आदिसे युक्त जो यन्त्र या चक्र आदि मण्डल है, उस मण्डलको जो नीचेसे ऊपरतक ढक लेए सा पवित्रक उसके ऊपर चढ़ाना चाहिये । एकचक और एकांज आदि मण्डल (चक्र) में, उस मण्डलका मान जितने अङ्गुलका हो, उतने अङ्गुल मानवाला पवित्रक अर्पित करना चाहिये । बेदीपर अपने सत्ताईस अङ्गुलके मापका पवित्रक अर्पित करे ॥ ८—१२ ॥

आचार्योंके लिये, पिता-माता आदिके लिये तथा पुस्तकपर चढ़ानेके लिये [या स्वयं धारण करनेके लिये] जो पवित्रक बनाये, वह नाभितक ही लंबा होना चाहिये । उसमें बारह गाँठें ल्याँ हों तथा उस पवित्रकपर गन्ध (चन्दन, रोली या केसर) लगाया गया हो । (वह उसीमें रँगा गया हो ।) ब्रह्मन् ! बनमालामें दो-दो अङ्गुल-की दूरीपर क्रमशः एक सौ आठ गाँठें रहनी चाहिये ।

* श्रीनारायणकी प्राप्तिके लिये हम शानार्जन करें । बासुदेवके लिये ध्यान लगावें । वे भगवान् विष्णु हमें अपने भजन-ध्यानकी ओर प्रेरित करें ।

+ सोभशम्भुका कथन है कि पवित्रक लालचन्दन या कंसर आदि किसी एक रंगसे रँगा रहे । यथा—

रक्तचन्दनकाइमीरकस्त्री नद्रोचनाः ।

इरिदा गैरिकं चैर्या रजेदेकमेन तद् ॥ (१८२-१८३)

१. सोभशम्भुका भी वही मत है—

दध्नुला दध्नुलास्त्रव् ग्रन्थयः ॥ १९०-१९१ ॥

२. विष्णुरहस्यमें भी यही कहा गया है—

शशमष्टीचरं कार्यं ग्रन्थीनां तु विधानः ।

मुचीन्द्र चनमालयाम् ॥ १९२-१९३ ॥

अथवा कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्तम पवित्रकर्ये क्रमशः आरह, चौथीस तथा छत्तीस गाँठे रखनी चाहिये । मन्द, मध्यम और उत्तम माल्यार्थी पुरुषोंको अनामिका, मध्यम और अहुष्टसे ही पवित्रक-माला ग्रहण करनी चाहिये । अथवा कनिष्ठ आदि नामवाले पवित्रकर्ये लमानरूपसे बारह-बारह ही गाँठे रखनी चाहिये । [केवल तनुओंकी संस्थामें और लंबाईमें भेद होनेसे उनकी मिज संश्याएँ माली जाती हैं ।] सूर्य, कलश तथा अग्नि आदिके लिये भी यथासम्प्रथ विष्णु भगवान्के दुल्य ही पवित्रक अर्पित करना उत्तम माना गया है । पीठके लिये पीठकी लंबाईके अनुसार तथा कुण्डके लिये भी मेखलापर्यन्त लंबा पवित्रक होना चाहिये । विष्णु-पाण्डितोंके लिये यथादक्षिणि सूत्र-ग्रन्थि देनी चाहिये । अथवा बिना ग्रन्थिके ही सत्रह सूत्र चढ़ावे और भद्र नामक पार्षदको त्रिसूत (तिरसूत) अर्पित करे ॥ १५—१७ ॥

पवित्रकको रोचना, अगुरुक-पूर्व-मिश्रित हल्दी एवं कुम्भमके रंगसे रंग देना चाहिये । भक्त पुरुष एकादशीको स्नान, संध्या आदि करके पूजान्तरमें जाकर भगवान् श्रीहरिका यजन करे । उनके समस्त परिवारको बलि देकर उसकी अर्चना करे । द्वारके अन्तमें ‘क्षेत्रपालाय नमः ।’—बोलकर क्षेत्रपालकी पूजा करे । द्वारके ऊपर ‘श्री नमः ।’ कहकर श्रीदेवीकी पूजा करे । द्वारके दक्षिण देशमें ‘धावे नमः ।’, ‘गङ्गायै नमः ।’—इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए ‘धाता’ तथा ‘गङ्गा’जीकी अर्चना करे और वाम देशमें ‘विधादे नमः ।’, ‘यमुनायै नमः ।’—बोलकर विधाता एवं यमुनाजीकी पूजा करे । इसी तरह द्वारके दक्षिण-वाम देशमें क्रमशः ‘शङ्कुनिष्ठये नमः ।’ ‘पश्चनिष्ठये नमः ।’ बोलकर शङ्कुनिष्ठ एवं पश्चनिष्ठिकी पूजा करे । [फिर मण्डपके भीतर दाहिने पैरके पार्श्वभागको तीन बार पटककर विष्णुका अपसारण करे ।] * तदनन्तर ‘सामङ्गल्य नमः’ बोलकर विष्णुकारी भूतोंको दूर भगावे । [इसके बाद ‘ॐ हां वास्तव-विष्टतये शङ्कुणे नमः ।’ इस मन्त्रका उच्चारण करके

व्रक्षके स्थानमें पुष्प चढ़ावे ।] फिर आसनपर बैठकर भूतशुद्धि करे ॥ १८—१९ ॥

१. अग्निशुरामां भूत-शुद्धिके लिये केवल उद्घात-मन्त्र दिये गये हैं । सामान्य पाठको भूतशुद्धिका सम्बन्ध परिचय करानेके लिये यहाँ ‘मन्त्र-महार्णव’ में दिया हुआ प्रकार प्रस्तुत किया जाता है ।

भूतशुद्धि

पहले—

ॐ दत्यः सोमो यमः कालः संध्या भूतानि पञ्च च ।
पते शुभाशुभस्यैह । कर्मणो मम साक्षिणः ॥
मो देव प्राकृतं चित्तं पापाकान्तमभूम्नम् ।
तत्त्विः सारथ चित्तान्मे पापं तेऽस्तु नमो नमः ॥

—ये दोनो मन्त्र पढ़कर आर्थना करे । तदनन्तर अपने दक्षिण भागमें—‘श्रीगुरुस्यो नमः ।’ बोलकर श्रीगुरुजोंको तथा बामभागमें ‘ॐ गणेश्याय नमः ।’—बोलकर श्रीगणेशजीको प्रणाम करे । तत्पश्चात् तुम्हके प्राणायाम करते हुए मूलधार चक्रसे क्षमतन्नाल-सी प्रतीत होनेवाली परम-दैवता कुण्डलिनीको उठाकर वह भावना करे कि यह कुण्डलिनी वहाँसे क्षयरकी ओर उठती हुई ब्रह्मरन्ध-तक जा पहुँची है । प्रदीपकलिका के आकारवाले हृदयस्थ जीवको साध ले, सुपुस्तानार्दीके पथसे ब्रह्मरन्धमें जाकर स्थित हो गयी है । उस अवस्थामें ‘हं सः सोऽहम् ।’ इस मन्त्रसे जीवको परमात्मा परमात्मासे संयुक्त कर दे । तदनन्तर अपने शरीरके पैरोंसे लेकर भुटनोतकके भागमें चौकोर आकृतिवाले बज्जलिंगित भू-मण्डलका चिन्तन करे, उसकी कानि सुवर्णके सभान है तथा वह ‘ॐ लम्’ इस भू-जीजसे युक्त है । फिर भुटनोतके लेकर नामिनके भागमें अर्धचन्द्राकार, जलके स्थानभूत सौमसण्डलजी भावना करे । वह दो कम्बोंसे अद्वित, द्वेत वर्णवाला तथा ‘ॐ वम्’ इस वर्ण-जीजसे विभूषित है । इसके बाद नामिसे लेकर हृदयतनके भागमें जिक्रायाकार, स्वस्तिक-चिह्नसे अद्वित, रक्षणर्ण अग्निमण्डलका चिन्तन करे, जो ‘ॐ रम्’—इस अग्निवीजसे युक्त है ।

तत्पश्चात् हृदयसे लेकर भूमध्यलक्षके भागमें गोलाकार, दद्धि-सिद्धि-विलक्षित, बूजवण्ण वायुमण्डलकी भावना करे, जो ‘ॐ धम्’ इस वायुवीजसे युक्त है । तदनन्तर भूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध-पर्वन्त भागमें गोलाकार, दद्धि, भग्नोहर आकृतिमण्डलका चिन्तन करे, जो ‘ॐ हम्’—इस आकृतिवीजसे युक्त है । इस प्रकार भूतशुद्धिभी भावना करके पूर्वोक्त भूमण्डलमें पारेन्द्रिय, गमन,

* दक्षपाण्डितिविष्टतैश्चूमित्यांस्तिविभानिति

विष्टनामुद्दारयेन्मन्त्री वागमन्दूरमन्त्रमः ॥

(सोमशुरुचित कर्मकाण्ड-क्रमान्तरी ११८)

उत्तरार्थी किमि योऽहे—

ॐ हं हः फट् हं गणवत्समात्रं संहरामि नमः ।
ॐ हं हः फट् हं रसवत्समात्रं संहरामि नमः ।
ॐ हं हः फट् हं रूपवत्समात्रं संहरामि नमः ।
ॐ हं हः फट् हं स्पर्शवत्समात्रं संहरामि नमः ।
ॐ हं हः फट् हं शब्दवत्समात्रं संहरामि नमः ।

प्राण, शन्य, ब्रह्मा, निहृतिकला, समान वायु तथा गन्तव्य देश—इन आठ पदार्थोंका चिन्तन करे । (सोन या) जल-मण्डलमें इस्तेन्द्रिय, अहण, ग्राण, रसना, रस, विष्णु, प्रतिष्ठाकला तथा उदानवायुका ध्वान करे । तेजोमण्डलमें पायु-इन्द्रिय, विसर्ग, विसर्जनीय, नेत्र, रूप, शिव, विष्णुकला तथा व्यानवायु—देखे हैं । वायुमण्डलमें उपश्य, आमन्द, स्त्री, स्पर्शन, स्पर्श, ईशान, शान्तिकला तथा अगानवायु—ये आठ पदार्थ चिन्तनीय हैं । इसी तरह आकाशमण्डलमें वाग्, वत्स्य, वर्दन, श्रीव, शब्द, सदाशिव, शान्त्यीना कला तथा प्राणवायु—इन आठ वस्तुओंका चिन्तन करना चाहिये ।

इस तरह भूतोंका चिन्तन करके पूर्व-पूर्व कार्यका उत्तरोत्तर कारणमें ब्रह्मर्थन विलीन करे । उसका क्रम इस प्रकार है—‘ॐ लं फट्’! बोलकर ‘पाँच गुणवाली पृथिवीका जलमें उपसंहार करता हूँ’!—इस भावनाके साथ भूमिका जलमें ल्प्य करे । फिर ‘ॐ वं हुं फट्’!—यह बोलकर ‘चार गुणवाले जल-तत्त्वका अविनियोग उपसंहार करता हूँ’—इस भावनाके साथ जलका अविनियोग ल्प्य करे । तदनन्तर ‘ॐ रं हुं फट्’! बोलकर ‘तीन गुणोंसे युक्त तेजका वायुतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ’—इस भावनाके साथ अविनियोग ल्प्य करे । फिर ‘ॐ वं हुं फट्’! यह बोलकर ‘दो गुणवाले वायु तत्त्वका आकाशतत्त्वमें उपसंहार करता हूँ’—इस भावनाके साथ वायुका आकाशमें ल्प्य करे । इसके बाद ‘ॐ हं हुं फट्’! ऐसा बोलकर ‘एक गुणवाले आकाशका अहंकारमें उपसंहार करता हूँ’—इस संकल्पके साथ आकाशका अहंकारमें ल्प्य करे । इसी क्रमसे अहंकारका महत्त्वत्त्वमें, महत्त्वत्त्वका प्रकृतिमें और प्रकृति या आकाशका आत्मामें ल्प्य करे ।

इस प्रकार शुद्ध सञ्चिन्मय होकर वायुपुरुषका चिन्तन करे—‘वासनाभ्य पाप वारी कुष्ठिमें स्थित है । उसका रंग काला है । वह अमृष्टके वराचर है । वायुहत्या उसका सिर, सुवर्णकी चोरी वैहै, मदिरापान हृदय, गुरुतत्परमन कठिप्रदेश तथा इन सबके साथ संसर्ग ही उसके दोनों पैर हैं । उपपातक-राशि उसका मस्तक है । उसके हाथमें ढाल और तख्तार है । उस दुष्ट पायुपुरुषका

—इस प्रकार पाँच उद्घास-वार्ष्योंका उचारण करके ग्रन्थतन्मत्वस्त्रिय भूमिमण्डलको, वाचिकीहित सुवर्णमय वायुरस्त पीड़को तथा इन्द्रादि देवताओंको अपने हुए नीचेन्ती ओर है । वह अस्त्रमें दुश्मीह है । ऐसे पायुपुरुषका चिन्तन करके पूरक प्राणायाममें ‘ॐ वं’—इस वायुवीजका वर्तीस या सोलह वार जप करके उत्पादित वायुद्वये उसका शोषण करे । तत्पश्चात् तुम्हक प्राणायाममें चौसठ वार जपे गये । ‘ॐ रंम्’—इस अविनियोजिता उत्पादित आगकी ऊबालमें अपने शरीरस्तित्रिय उस पायुपुरुषको जलाकर भस्त रहे । तदनन्तर देवक प्राणायाममें ‘ॐ वम्’—इस वायुवीजका सोलह वार वर्तीस वार जप करके उत्पादित वायुद्वय दक्षिणगांडीके आगमें उस भस्मको वाहर निकाले । इसके बाद देवगन भस्मको ‘ॐ वम्’—इस प्रकार उत्पादित अमृत-वीजके द्वारा आगामित उत्पादित वायुको १०० लभ्—इस भूवीजके द्वारा उस भस्मको बनोभूत पिण्डके आकारमें परिणत कर दे और भाकनमें ही देखे कि वह सोनेके अण्डेके समान जान पहा है । तदनन्तर ‘ॐ हम्’—इस आकाशवीजका जप करते हुए, उस पिण्डके दर्पण-की भाँति स्वच्छ होनेको भावना करे और उसके द्वारा भस्मकसे लेकर चरण-नखपर्यन्त अवयवोंकी भनके द्वारा रचना करे ।

इसके बाद युनः सुषिमार्गका आश्रय ले, जळसे प्रकृति, प्रकृतिसे महत्त्व, महत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अविनि, अविनिसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे ओषधि, ओषधिसे अज्ञ, अज्ञसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष-शरीरकी उत्पत्ति करके ‘ॐ हं सः सोऽइर्’!—इस मन्त्रद्वारा ब्रह्मके साथ संयुक्त हो, पक्षीभूत हुए जीवको अपने हृदय-कमठमें स्थापित करे । तदनन्तर कुण्डलिनीको पुनः भूलाधारगत हुई देखे । फिर इस प्रकार आगद्विका ध्यान करे—

रत्नाम्भोधिस्थपोतोल्लन्दरुणसरोजाधिरूढः कराण्डजः
पांशुं कोदण्डमिक्षुद्वयगुणमय चाय्यहूर्णं पञ्च वाणान् ।
विभ्राणा सुक्षकपालं विनयनलसिता पीनवक्षोरुदाढया
देवी आलार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥

‘जो लालसागरमें स्थित एक गोत्पर प्रमुख अक्षण कमलके आसनमध्ये विराजमान हैं, अपने कर-कमलोंमें पाश, इक्षुमरी प्रत्यञ्जासे युक्त कोदण्ड, अद्भुत तथा पाँच वाण लिये रहती हैं, जिन्होंने खूनसे भरा खण्डर भी ले रखता है, तीन नेत्र जिनके मुखमण्डलकी शोभा बढ़ाते हैं, जो उभे हुए पीन उरोजोंसे सुशोभित हैं तथा आलरविंशती भस्मान जिनकी अरुण-पीन कान्ति है, वे ग्राणशक्ति-स्वरूपा परा देवी हमारे लिये सुष्टि करनेवाली हैं ।’

उपर शिखि स्थित देखते हुए उनका चिन्तन करे । इस प्रकार यह हुए रसतन्मात्रको रसतन्मात्रमें शीत करके उपायक इसी क्रमसे रसतन्मात्रका रूपतन्मात्रमें सहार करे । ‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’, ‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’, ‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’, ‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’—इन चार उद्घात-वाक्योंका उचारण करके जानुसे लेकर नाभितके भागको बेत कमलसे चिह्नित, मुङ्गवर्ण एवं अर्धचन्द्राकार देखे । ध्यानद्वारा यह चिन्तन करे कि ‘इस जलीय भागके देवता व्रहण हैं ।’ उक्त चार उद्घातोंके उचारणसे रसतन्मात्रकी शुद्धि होती है । इसके बाद इस रसतन्मात्रका रूपतन्मात्रमें लय कर दे ॥ २२-२० ॥

‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’
 ‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’
 ‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’

—इन तीन उद्घातवाक्योंका उचारण करके नाभिसे लेकर कण्ठस्तकके भागमें त्रिकोणाकार अग्निमण्डलका चिन्तन करे । ‘उसका रंग लाल है; वह स्वतिकाकार चिह्नसे चिह्नित है । उसके अधिदेवता अग्नि हैं ।’ इस प्रकार ध्यान करके शुद्ध किये हुए रूपतन्मात्रको रसतन्मात्रमें लीन करे । तत्प्रथात् ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’, ‘ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’—इन दो उद्घात-वाक्योंके उचारणपूर्वक कण्ठसे लेकर नासिकाके बीचके भागमें गोलाकार वायुमण्डलका चिन्तन करे—‘उसका रंग धूमके ममान है । वह निष्कलङ्घ चन्द्रमासे चिह्नित है ।’ इस तरह शुद्ध हुए रसतन्मात्रका ध्यानद्वारा ही रसतन्मात्रमें लय कर दे । इसके बाद ॐ हूः फट् हूः रसतन्मात्रं संहरमि नमः ।’—इस एक उद्घात-वाक्यसे शुद्ध स्फटिकके समान आकाशका नासिकासे लेकर शिखातके भागमें चिन्तन करें । फिर उस शुद्ध हुए आकाशका (अहंकारमें) उपसंहार करे ॥ ३१-३७ ॥

तत्प्रथात् क्रमशः शोषण आदिके द्वारा देहकी शुद्धि करे । ध्यानमें यह देखे कि ‘यः वीजस्त्वं ज्ञायुके द्वारा

पेतोसे लेकर शिखातकका सम्मुख शरीर सूज गया है । फिर ॐ वीज द्वारा अग्निको प्रकट करके देखे कि सरा शरीर अग्निकी ज्वालाओंमें आ गया और जलकर भस्त हो गया । इसके बाद ॐ वीजका उचारण करके भावना करे कि ब्रह्मरन्ध्रसे अमृतका विन्दु प्रकट हुआ है । उससे जो अमृतकी धारा प्रकट हुई है, उसने द्वारीके उस भस्मको आप्लावित कर दिया है । तदनन्तर ॐ वीजका उचारण करते हुए यह चिन्तन करे कि उस भस्मसे दिव्य देहको प्रादुर्भाव हो गया है । इस प्रकार दिव्य देहको उद्भावना करके करन्याप और अङ्गन्याप करे । इसके बाद मानस-यागका अनुष्ठान करे । हृदय-कमलमें मानसिक पुष्प आदि उपचारेण्डारा मूल-मन्त्रसे अङ्गोंसहित देवेश्वर भगवान् विष्णुका पूजन करे । वे भगवान् भोग और मोक्ष देनेवाले हैं । भगवान्में मानसिक पूजा स्वीकार करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—‘देव ! देवेश्वर केशव ! आपका स्वागत है । मेरे निकट पधारिये और यथार्थस्पतं भावना-द्वारा प्रस्तुत इस मानसिक पूजाको ग्रहण कीजिये ।’ योगपीठको धारण करनेवालो आधारस्तकि क्रम, अनन्त (शेषनाग) तथा पृथ्वीका पीठके मध्यभागमें पूजन करना चाहिये । तदनन्तर अग्निकोण आदि चारों कोणोंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यका पूजन करे । पूर्व आदि मुख्य दिशाओंमें अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्यकी अचंना करे ।* पीठके मध्य-

* आधारस्तकि कूपैरुपा शिलांपर विराजमान है । गोदुर्भके समान धबल उसका गौर करेव है और वीजाद्वारा भस्ती आकृति है । उसके पूजनका मन्त्र है—ॐ हूः आधार-शत्रुमे नमः । भगवान् अनन्त श्रीहरिके आमन हैं । उनकी अङ्ग-काणि कुन्द, इन्दु (चन्द्रमा) के समान धबल है; कंपर उठे नाल-दण्डाले कमल-मुकुलके सदृश उनकी आकृति है तथा वे ब्रह्मसिंहापर आरूढ हैं । पूजनका मन्त्र है—ॐ हूः अनन्तासनाय नमः । धर्म आदिके पूजनके मन्त्र यों हैं—ॐ हूः धर्माय नमः—आग्नेये ।, ॐ हूः ज्ञानाय नमः—ज्ञेयेये ।, ॐ हूः वैराग्याय नमः—वैराग्ये ।, ॐ हूः ऐश्वर्याय नमः—ऐश्वर्ये । (सोमवश्यु-रचित कर्णकाण्ड-कमावली १६१-१६४ के आधारपर) । इसी तरह ॐ हूः अधर्माय नमः । शत्रादि कूपसे मन्त्रोंकी ज्ञान करके अज्ञानादिकी भी अचंना करे । जारदातिलकमें आधारस्तकिक ध्यान एक देवीके कृपमें

भास्मये लक्ष्यादि शुण्डिका, समवाय, भास्मा और अविद्या-
सम्बन्ध तत्त्वोंका कल्पनात्मका शूर्यादि अपनलक्ष्या तथा
फलिराज गद्योंका पूजन करे। पीठके वायव्यकोणसे ईशान
कोषतक शुष्टिकिञ्चि पूजा करे॥४८-४९॥

कथा गया है। वह कूर्मशिलार आरुद है। उसके मनोहर
मुख शरस्वतीके चम्भमाको लजिन कर रहा है तथा उसने
अपने हाथोंमें दो कमल धारण किये हैं। उक्त आधारशिला
मन्त्रकपर भगवान् कूर्म विराजमान है। उनकी कानित नीली है।
ॐ हाँ कूर्माय नमः । १—इस मन्त्रसे उनका भी पूजन करे। कूर्मके
कपर ब्रह्मशिला (इष्टदेवती प्रतिमाके नीचेकी आधारभूता शिला)
है, उसपर कुन्द्र-सहश्र गौर अनन्तदेव विराज रहे हैं। उनके हाथोंमें
चक्र है। (नामिसे नीचे उनकी आकृति सर्पबद्ध है और नामिसे
कपर मनुष्यबद्ध ।) वे मन्त्रकपर पूर्णीको धारण करते हैं। इस
झाँकीमें पूर्वोक्त मन्त्राश्रारा उनकी पूजा करके उनके सिरपर
विराजमान भूदेवोंका ध्यान और पूजन करे। वे तमाङ्के समान
द्यायमवर्ण हैं। हाथोंमें नील कमल धारण करती हैं। उनके कटि-
प्रदेशमें सागरमयी भेदखला स्फुरित हो रही है। (२—हाँ वसुनाथ
नमः । ३—हाँ सागराय नमः । ४—इससे पूर्णी तथा समुद्रकी
पूजा करके) उसके कपर रक्षमय द्वीपका, उस द्वीपमें मणिमय
मण्डपका तथा वहाँ शोभा पानेवाले वाञ्छापूरक कलाशकोका
निन्दन और पूजन करना चाहिये। उन कल्पवृक्षोंके नीचे मणिमयी
वेदिकाका ध्यान करे। उक्त वेदीपर योगीठ ल्यापित है। उस
पीठके जो पाये हैं, वे ही धर्म आदि रूप हैं। इनमें धर्म लाल,
शान द्याम, वैराग्य हरिद्रातुर्य पीत तथा ऐश्वर्य नील है। धर्मकी
आकृति वृषभके समान है। शान सिंहके, वैराग्य भूतके तथा
ऐश्वर्य हाथीके रूपमें विराजमान है। कोणोंमें धर्मादिका और
दिशाओंमें अधर्मादिका पूजन करनेके अनन्तर पीठस्थित कमलका
ध्यान करे। वह तीन प्रकारका है—पहला आनन्दकन्द, दूसरा
संविजाल और तीसरा सर्वत्सारमय है। इस विविध कमलका
पूजन करके साक्ष व्रहतिमय दलोंका, विकृतिमय केसरोंका तथा
पचास अक्षरोंसे शुक्र कांडिकोंका पूजन करे। तत्पश्चात् कलाओं-
सहित सूर्य, चम्भमा और अग्निमण्डलका पूजन करे। कमलादिके
पूजनका मन्त्र यो समझना चाहिये—अग्निमण्डलय संविजालय
सर्वत्सारमयका तथा कमलय नमः । , प्रवृत्तिमयदलेभ्यो नमः । ,
विकृतिमयकेसरूपो नमः । , द्वादशकलात्मकसूर्यमण्डलय नमः । ,
प्रोक्षशकलात्मकसूर्यमण्डलय नमः । , दशकलात्मकविमण्डलय
नमः ।

—(सारदातिक, चतुर्थ पटक ५६-५७)

गण, सरस्वती, नारद, वासुदेव, गुरु, मुख्यादिका
परम गुरु और उनकी पात्रुकाली शूला भी पूजनकिञ्चि पूजा
है। पूर्वसिद्ध और परविद्ध शक्तियोंकी केसरोंमें पूजा करनी
चाहिये। पूर्वसिद्ध शक्तियों ये हैं—जहाँ, सरस्वती, श्रीसू
कीर्ति, शान्ति, कान्ति, पुष्टि तथा तुष्टि। इनकी कलाएँ
पूर्व आदि दिशाओंमें पूजा की जानी चाहिये। इसी तरह
इन्द्र आदि दस दिक्पालोंका भी उनकी दिशाओंमें पूजन
आवश्यक है। इन सबके बीचमें श्रीहरि विराजमान है।
परसिद्ध शक्तियाँ—धृति, श्री, रति तथा कानित आदि हैं।
मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी स्थापना की जाती है। पूजाके
प्रारम्भमें भगवान्से थों प्रार्थना करे—हे भगवन् ! आप
मेरे सम्मुख हों। (५ अभिमुखी भव ।) पूर्व दिशामें मेरे
समीप स्थित हों ! इस तरह प्रार्थना करके स्थापनाके
पश्चात् अर्घ्य-पाश आदि निवेदन कर गन्ध आदि उपचारों-
द्वारा मूल-मन्त्रसे भगवान् अच्युतकी अर्चना करे। ६ भीषण
भीषण भीषण हृदयाय नमः । ७ प्रात्यय प्रात्यय शिरसे
नमः । ८ मर्दय मर्दय शिखायै नमः । ९ रक्ष रक्ष
नेत्रप्रश्वाय नमः । १० प्रज्वलय प्रज्वलय छवचाय नमः ।
११ हूँ कट् अस्त्राय नमः । इस प्रकार अग्निकोण आदि
दिशाओंमें क्रमसे मूलबीजदारा अङ्गोंका पूजन करे॥४८-५१॥

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें मूर्त्यादिक
आवरणकी अर्चना करे। वासुदेव, संकर्षण, प्रवृत्ति और
अनिश्चद—ये चार मूर्तियाँ हैं। अग्निकोण आदि कोणोंमें
कलशः श्री, रति, धृति और कानितकी पूजा करे। ये भी
श्रीहरिकी मूर्तियाँ हैं। अग्नि आदि कोणोंमें कलशः शारु,
चक्र, गदा और पद्मकी परिचर्या करे। पूर्वादि दिशाओंमें
शारु, मुश्ल, खड्ग तथा वनमालाकी अर्चना करे। उसके
बाह्यभागमें पूर्वादि दिशाओंमें कलशः इन्द्र, अग्नि, यम,
निर्वृति, वरण, वायु, कुबेर तथा ईशानकी पूजा करके
नैऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्तकी तथा पूर्व और
ईशानके बीचमें ब्रह्माजीकी अर्चना करे। इनके बाह्य-
भागमें ब्रग्र आदि अस्त्रमय आवरणोंका पूजन करे।
इनके भी बाह्यभागमें दिक्पालोंके बाहनरूप आवरण पूजनीय
होते हैं। पूर्वादिके क्रमसे ऐरावत, छाग, मैसा, वानर, मत्स्य,
मृग, शश (खरगोश), हृषभ, कूर्म और हंस—इनकी
पूजा करनी चाहिये। इनके भी बाह्यभागमें प्रभिगर्भ और
कुमुद आदि द्वारपालोंकी पूजाकी विधि कही गयी है। पूर्वों

लेकर उत्तरतक प्रत्येक द्वारपर दो-दो द्वारपालोंकी पूजा आवश्यक है। तदनन्तर श्रीहरिको नमस्कार करके बाह्यभागमें बलि अर्पण करे। 'ॐ विष्णुपार्वतेभ्यो नमः ।' बोलकर बलिपीठपर उनके लिये बलि समर्पित करे ॥ ५२-५७ ॥

ईशानकोणमें 'ॐ विश्वाव विष्वक्सेनात्मने कमः ।'-इस मन्त्रसे विष्वक्सेनकी अर्चना करे। इसके बाद भगवान्के दाहिने हाथमें रक्षासूत्र बाँधे। उस समय भगवान्से इस प्रकार कहे—'प्रभो ! जो एक वर्षतक निरन्तर की हुई आपकी पूजाके सम्पूर्ण कलकी ग्रासिमें हेतु है, वह पवित्रारोहण (या पवित्रारोपण) कर्म होनेवाला है; उसके लिये यह कौटुक (मङ्गल-सूत्र) धारण कीजिये।' ॐ नमः ।

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'सर्वदेवसाधारणपवित्रारोपण-विविध-कथन'
नामक तीतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

पवित्रारोपणके लिये पूजा-होमादिकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुनीक्षर ! निम्नाङ्कित मन्त्रका उत्तराण करते हुए साधक यागमण्डपमें प्रवेश करे और सजावटसे यशके स्थानकी शोभा बढ़ावे [तथा निम्नाङ्कित स्लोक पढ़कर भगवान्को नमस्कार करे]—बदों तथा ब्राह्मणोंके हितकारी देवता अव्ययात्मा भगवान् श्रीधरको नमस्कार है। 'ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद आपके स्वरूप हैं; शब्दमात्र आपके शरीर हैं; आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।' * सायंकाल सर्वतोभद्रादि-मण्डलकी रचना करके यजन-पूजन-सम्बन्धी द्रव्योंका संग्रह करे। हाथ-पैर धो ले। सब सामग्रीको यथास्थान जँचाकर हाथमें अर्ध्य लेकर मनुष्य उसके जलसे अपने मस्तकको संचि। किर द्वारकेद्या आदिमें भी जल छिड़के। तदनन्तर द्वारयाग (द्वारस्थ देवताओंका पूजन) आरम्भ करे। पहले तोरणेश्वरोंकी भलीभाँति पूजा करे। पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे अक्षत्य, उडुम्बर, बट तथा पाकर—ये बृंश पूजनीय हैं। इनके सिवा पूर्व दिशामें ऋग्वेद, इन्द्र तथा शीभनकी, दक्षिणमें यजुर्वेद, यम तथा सुभद्रकी, पश्चिममें सामवेद, वरुण तथा सुधर्मवाकी और उत्तरमें अथवेद, सोम एवं सुहोत्रकी अर्चना करे ॥ १—५ ॥

* नमो ब्रह्मव्यदेवाय वीक्षावाय्यवासने ।

ऋग्वेदः सामवेदाय शब्दवेदाय विष्णवे ॥ १३ ॥

इसके बाद भगवान्के समीप उपवास आदिका नियम प्रवण करे और इस प्रकार कहे—'मैं उपवासके साथ नियमार्थक रहकर इष्टदेवको संतुष्ट करूँगा। देवेश्वर ! आजसे लेकर ज्यतक वैशेषिक (विशेष उत्तरव) का दिन न आ जाय तबतक काम, क्रोध आदि भारे दोष मेरे पास किसी तरह भी न फटकने पावें।' वती यजमान यदि उपवास करनेमें असमर्थ हो तो नक्त-ब्रत (रातमें भोजन) किया करे। हवन करके भगवान्की स्तुतिके बाद उनका विसर्जन करे। भगवान्का नित्य-पूजन लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है। 'हीं हीं श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः ।'—यह भगवान्की पूजाके लिये मन्त्र है ॥ ५८-६३ ॥

तोरण (फाटक) के भीतर पताकाएँ फहरायी जायें, दो-दो कलश स्थापित हों और कुमुद आदि दिग्गजोंका पूजन हो। प्रत्येक दरवाजेपर दो-दो द्वारपालोंकी उनके नाम-मन्त्रसे ही पूजा की जाय। पूर्व दिशामें पूर्ण और पुक्करका, दक्षिण दिशामें आनन्द और नन्दनका, पश्चिममें धीरसेन और सुषेणका तथा उत्तर दिशामें सम्भव और प्रभव नामक द्वारपालोंका पूजन करना चाहिये। अख्यन्त्र (फट्ट) के उत्तराणपूर्वक फूल विश्वेषकर विष्णोंका अपसारण करनेके पश्चात् मण्डपके भीतर प्रवेश करे। भूतशुद्धि, न्याल और मुद्रा करके चिखा (वश्ट) के अन्तमें 'फट्ट' जोड़कर उसका जप करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें सरसों छीटे। इसके बाद वासुदेव-मन्त्रसे गोमूज, संकर्षण-मन्त्रसे गोमय, प्रशुम्न-मन्त्रसे गोदुग्ध, अनिष्ट-मन्त्रसे दही और नारायण-मन्त्रसे धूत लेकर सबको चूतपात्रमें एकत्र करे; अन्य वस्तुओंका भाग भीसे अधिक होना चाहिये। इन सबके मिलनेसे जो वस्तु तैयार होती है, उसे 'पञ्चग्रन्थ' कहा गया है। पञ्चग्रन्थ एक, दो या तीन बार अलग-अलग बनावे। इनमेंसे एक तो मण्डप (तथा बहाँकी वस्तुओं) का प्रोक्षण करनेके लिये है, दूसरा ग्रादानके लिये और तीसरा स्नानके उपयोगमें आता है। इस कलशोंकी स्थापना करके उनमें इन्द्रादि

लोकयात्रोंकी पूजा करे । पूजन करके उन्हें श्रीहरिकी आशा दुनावे—‘लोकपालगण ! आपको इस यशकी रक्षाके लिये श्रीहरिकी आशासे यहाँ सदा स्थित रहना चाहिये’ ॥६—१८॥

याग-द्रव्य आदिकी रक्षाकी व्यवस्था करके विकिर^१ (विष्णु-निवारणके लिये सब ओर छीटे जानेवाले सर्वप्र आदि) द्रव्योंको विस्तेरे । सात^२ बार अख्य-सम्बन्धी मूल-मन्त्र (अख्य फट्) का जप करते हुए ही उक्त वस्तुओंको सब ओर विवेरना चाहिये । फिर उसी तरह अख्य-मन्त्रका जप करके कुश^३-कूर्च ले आये । उन्हें ईशान कोणमें रखकर उन्हींके ऊपर कलश और वर्धनीको खापित करे । कलशमें श्रीहरिका साङ्ग पूजन करके वर्धनीमें अख्यकी अर्चना करे । वर्धनीकी छिन्न धारासे यागमण्डपको प्रदक्षिणाक्रमसे सीचते हुए कलशको उसके उपर्युक्त स्थानपर ले जाय और स्थिर आग्नेयपर खापित करके उसकी पूजा करे । कलशके भीतर पञ्चरन ढाले । उसके ऊपर बस्त्र लपेटे । फिर उसपर गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करे । वर्धनीमें भी सौनेका ढुकड़ा ढाले । उसके बाद उसपर अख्यकी पूजा करके, उसके बाम-भागमें पाल ही, बास्तु-लक्ष्मी तथा भूविनायक^४की अर्चना करे । संक्रान्ति आदिके ममय इसी प्रकार श्रीविष्णुके स्नान-अभिषेककी व्यवस्था करे । मण्डपके कोणों और दिशाओंमें कुल मिलाकर आठ और मध्यमें एक—इस प्रकार नीं पूर्ण कलशोंको, जिनमें छिद्र न

१. शारदातिलक (पटल ४ छोक १४-१५) में कहा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्घात तथा अक्षतको ‘विकिर’ कहा है; ये समस्त विष्णुसमूहका नाश करनेवाले हैं—

लाजाश्वन्दनसिद्धार्थमसदृष्ट्वाकृष्णतः ।

विकिर इति संदिधः सर्वविजीषनाशनाः ॥

२. शारदातिलकमें भी सात बार अख्य-मन्त्र-जपपूर्वक विकिर-विकिरणका विधान है । वसा—

विकिराश् विकिरेतत्र सप्तजसाञ्छरणुना ॥

३. पूर्वीस कुशोंसे बंधा हुआ कूर्च ‘वानसप्त’ कहा गया है । दो दमोच्च सामान्य कूर्च तथा पाँच-पाँच कुशोंका विशेष कूर्च होता है । सत्रह कुशोंका ‘वानसप्त’ होता है । कूर्चोंका दण्ड एक वित्तेका, उनकी वृद्धिग्राम्य एक अकुश्मी और उसके अग्रभागकी कंवाई तीन अकुश्मी होनी चाहिये ।

(ईश्वरानिधि उद्देश्यप्रदति, लालम पटल १४-१५)

हैं, खापित करके उनमें पाल, अर्च, आचमनीय तथा पञ्चगव्य ढाले । पूर्व आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुएँ डालनी चाहिये । अग्निकोण आदिके कलशोंमें उक्त वस्तुओंके अतिरिक्त पञ्चामृतयुक्त अल्प अधिक डालनेका विधान है । पाद्यकी अङ्गभूता चार वस्तुएँ हैं—दही, दूध, मधु और गरम जल ॥ १३—१९ ॥

किन्हींके मतमें कमल, श्यामक (तिक्कीका चावल), दूधांदल और विष्णुकान्ता ओषधि—इन चार वस्तुओंसे युक्त जल ‘पाद्य’ कहलाता है । इसी तरह अर्चके भी आठ अङ्ग कहे गये हैं । जौ, गन्ध, फल, अक्षत, कुश, सरसों, फूल और तिल—इन्हें आठ द्रव्योंका अर्चके लिये संग्रह करना चाहिये । जाती (जायफल), लवज्ज और कङ्कोलयुक्त जलका आचमनका देना चाहिये । इष्टदेवकी मूलमन्त्रसे पञ्चामृतद्वारा स्नान कराये । बांचवाले कलशसे भगवान्‌के मस्तकपर शुद्ध जलका छोटा दे । कलशसे निकले हुए जल एवं कूर्चप्रका स्पर्श करे । फिर शुद्ध जलसे पाल, अर्च और आचमनीय नियेदन करे । तत्पश्चात् वस्त्रमें भगवान्‌के श्रीविश्राहकों पोछकर वस्त्र धारण कराये और वस्त्रके संहित उन्हें मण्डलमें ले जाय । वहाँ भर्ताभाँते पूजा करके प्राणायामपूर्वक कुण्ड आदिमें होम करे । (हवनकी विधि—) दोनों हाथ धोकर कुण्डमें या बेदीपर तीन पूर्णांग रेखाएँ खीचे । ये रेखाएँ दक्षिणाकी ओरसे आरम्भ करके क्रमशः उत्तरकी ओर खीची जायें । फिर इन्हींके ऊपर तीन उत्तराम्ब रेखाएँ खीचे । (ये भी दाहिने-में आरम्भ करके क्रमशः बायें खीची जायें) ॥२०—२५॥

तत्पश्चात् अर्चके जलसे इन रेखाओंका प्रोक्षण करे

* शारदातिलकमें भी यही बात कही गयी है—

पार्षं पादाम्बुजे दशाद् देवत्य इदयाणुना ।

पतञ्जल्यामाकूर्द्वाजविष्णुक्रन्तामिरीरितम् ॥

(पटक ४ । ९३)

† गच्छपुष्पाक्षतवद्वाक्षात्रतिलसपर्ये:

सदूर्धेः सर्वदेवानामेनदर्थमुदीरितम् ॥

(शा० तिं० ४ । ९५-९६)

‡ सुधामन्त्रेण बदने दशादाचमनीयकम् ।

विष्णुसमूहसमूहेऽसत्तुमतः तम्बवेदिभिः ॥

(शा० तिं० ४ । ९४)

और योनिमुद्रा दिखावे । अग्निका आत्मरूपसे चिन्तन करके मनुष्य योनियुक्त कुण्डमें उसकी स्थापना करे । इसके बाद इर्भ, शुक्, सुवा आदिके साथ पात्रासादन करे । आहुमात्र-की परिधियाँ, इध्मवश्न, प्रणीतापात्र, प्रोक्षणीपात्र, आज्य-स्नाली, धी, दो-दो सेर चावल तथा अथोमुख शुक् और सुवा-की जोड़ी । प्रणीता एवं प्रोक्षणीमें पूर्वाम कुश रखें । प्रणीताको जलसे भरकर भगवान्का ध्यान-पूजन करके उसको अग्नि-के पश्चिम अपने आगे और आसादित द्रव्योंके मध्यमें रखें । प्रोक्षणीको जलसे भरकर पूजनके पश्चात् दाहिने रखें । आगपर चर्चको चढ़ाकर पकावे और अग्निसे दक्षिण दिशामें ब्रह्माजीकी स्थापना करे । कुण्ड या बेदीके चारों ओर पूर्वादि दिशामें कुश (बहिष्) विछाकर परिधियोंको स्थापित करे । तदनन्तर गर्भाधानादि संस्कारके द्वारा अग्नि-का वैष्णवीकरण करे । गर्भाधान, पुंगवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म एवं नामकरणादि-समावतंनान्त संस्कार करके प्रत्येक कर्मके लिये आठ-आठ आहुतियाँ दे तथा सुवायुक्त शुक्-के द्वारा पूर्णाहुति प्रदान करे ॥ २६—३३ ॥

कुण्डके भीतर श्रुतुस्नाता लक्ष्मीका ध्यान करके इवन करे । कुण्डके भीतर जो लक्ष्मी हैं, उन्हें 'कुण्डलक्ष्मी' कहा गया है । वे ही चिर्युणात्मिका प्रकृति हैं । वे सम्पूर्ण

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें पवित्रोपण-सम्बन्धी पूजा-होम-विधिका वर्णन विषयक चौतीसवाँ अव्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

भूतोंकी तथा विद्या एवं मन्त्र-समुदायकी व्याप्ति है । परमात्म-स्वरूप अग्निदेव मोक्षके कारण एवं मुक्तिदाता हैं । पूर्व दिशाकी ओर कुण्डलक्ष्मीका सिर है, ईशान और अग्निकोणकी ओर उसकी भुजाएँ हैं, बायव्य तथा नैऋत्यकोणमें जंबाएँ हैं, उदरको 'कुण्ड' कहा है तथा योनिके स्थानमें कुण्ड-योनिका विधान है । सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही तीन मेवलाएँ हैं । इन प्रकार ध्यान करके प्रणवमन्त्रसे मुष्टिमुद्रा-द्वारा पद्मह समिधाओंका होम करे । फिर वायुसे लेकर अग्निकोणतक 'आधार' नामक दो आहुतियाँ दे । इसी तरह आग्नेयसे ईशानान्ततक 'आज्य-भाग' नामक आहुतियों-का इवन करे । आज्यस्नालीमें उत्तर, दक्षिण और मध्य-भागमें धृत लेकर द्वादशान्तमें अर्थात् मूलको बारह बार जप कर अग्निमें भी उन्हीं दिशाओंमें उसकी आहुति दे और वही उसका त्याग करे ॥ इसके बाद 'भूः स्वाहा' इत्यादि रूपसे व्याहृति होम करे । कमलके मध्यभागमें संस्कार-सम्बन्ध अग्निदेवका 'विष्णु' रूपमें ध्यान करे । वे मात जिहाओंसे युक्त हैं, कर्पों-सूर्योंके समान उनकी प्रभा है, चन्द्रोपम मुख है और सूर्य-गृह्य देवीप्रामान नेत्र हैं ।' इस तरह ध्यान करके उनके लिये एक सौ आठ आहुतियाँ दे । अथवा मूल-मन्त्रसे उत्तरका आधी एवं आठ आहुतियाँ दे । अङ्गोंके लिये भी दस-दस आहुतियाँ दे ॥ ३४—४१ ॥

१—मन्त्र-महार्णवमें योनिमुद्राका ऋषण इस प्रकार कहा गया है—

मिथ्यः क्षनिद्विके वद्धा तर्जनीन्यामनामिके । अनामिकोर्जसंक्षिप्ते दीर्घमायमयोरपि ॥ (पू० ख० १ तरं २)

* प्रादेशमत्र ग्रन्थियुक्त दो कुशा लेकर, धीके दीचमें ढालकर, उसके दो भाग करके, उसे शुक् और कृष्ण—दो पक्षोंके रूपमें सरण करे । तदनन्तर बामगागमें इकानाडी, दक्षिणगागमें पिङ्कलानाडी और भव्यभागमें सुषम्ना नाडीका ध्यान करके इवन करे । '—स भव्याहारा शुब्दसे दक्षिण भागकी ओरसे धी लेकर दाहिने नेत्रमें '—स अग्नवे स्वाहा इदं त्योग्य ।' कहकर एक आहुति अग्निके बासनेकर्ममें दे । इसके बाद धीचसे धी लेकर 'अग्नीपोनाम्या नमः ।' इस भन्नसे एक आहुति अग्निके भालस्य नेत्रमें दे । फिर सुवद्वारा दक्षिण भागसे धी लेकर अग्निके सुहामें 'अग्नवे त्विष्टहुते स्वाहा' बोलकर एक आहुति दे । इसके बाद व्याहृति-होम चरन चाहिये [मन्त्रमहार्णवसे] । जिस भागसे आव्याहुति भी जाय, अग्निके उसी भागमें बसका सम्बात आ त्याग करे । जैसा कि कहा है—

‘स्वाहान्तरोमं विद्यव ‘स्वाहा’ इत्यस्तान्ते बसाद् भागमद्वयाहुतिगृहीता तस्मिन्नेत्र नामे तत्त्वं तत्त्वात् कुर्वात् ।’

(ख० ख० ५ वटक, इकों ५८ की वैका)

पैतीसवाँ अध्याय

पवित्राधिवासन-विधि

अग्निकौच कहते हैं—मुनीष्वर ! सम्याताहुतिसे पवित्राधोका सेचन करके उनका अधिवासन करना चाहिये । नृतिंह-मन्त्रका जप करके उन्हें अभिमन्त्रित करे और अज्ञ-मन्त्र (अख्याय फट् ।) से उन्हें सुरक्षित रखें । पवित्राधोका वस्त्र लपेटे हुए ही उन्हें पात्रमें रखकर अभिमन्त्रित करना चाहिये । चित्व आदिके सम्पर्कमें युक्त जलद्वारा मन्त्रो-श्वासणपूर्वक उन सबका एक या दो बार प्रोक्षण करना चाहिये । गुरुको चाहिये कि कुम्भपात्रमें पवित्राधोको रखकर उनका रक्षाके उद्देश्यसे उस पात्रसे पूर्व-दिशामें सक्षण-मन्त्रद्वारा दन्तकाष्ठ और औंबला, दक्षिण-दिशामें प्रद्युम्न-मन्त्रद्वारा भस्म और तिल, पवित्र-दिशामें अनिष्ट-मन्त्रद्वारा गोबर और मिट्टी तथा उत्तर-दिशामें नारायण-मन्त्रद्वारा कुड्डोदक ढाले । तदनन्तर अग्निकोणमें हृदय-मन्त्रसे कुकुम तथा रोचना, ईशानकोणमें शिरोमन्त्रद्वारा धूप, नैऋत्यकोणमें शिलामन्त्रद्वारा दिव्य मूलपूष्ट तथा वायव्यकोणमें कवच-मन्त्रद्वारा चन्दन, जल, अक्षत, दही और दूर्वाको दोनोंमें रखकर छोटे । मण्डपको त्रिसूत्रसे आवृष्टि करके पुनः सब ओर सरसों विख्येरे ॥ १-६ ॥

देवताधोकी जिम क्रमसे पूजा की गयी हो, उसी क्रमसे, उनके लिये उनके अपने-अपने नाम-मन्त्रोंमें गंत्यवित्रक देना चाहिये । द्वारापाल आदिको नाम-मन्त्रोंसे हाँ गन्ध-पवित्रक अर्पित करे । इसी क्रमसे कुम्भमें भगवान् विष्णुको सम्बोधित करके पवित्रक दे—हे देव ! यह आप भगवान् विष्णुके ही तेजसे उत्पन्न रमणीय तथा सर्वपातकनाशन पवित्रक है । यह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है, इसे मैं आपके अङ्गमें धारण करता हूँ । धूप-दीप आदिके

इस प्रकार आदि आडनंग महापुण्यमें ‘पवित्राधिवासन-विधिका वर्णन’ नामक पैतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

१. सूत्रके केवल विष्णुपूजा करके पवित्र बनायी जाय तो उसे ‘गन्धपवित्रक’ कहते हैं । इसमें एक गाँठ होती है और घोड़ेसे तन्तु । कोई-कोई इसे ‘कनिष्ठसंख्य’ भी कहते हैं । जैसा कि बचत है—

‘विष्णुकी गन्धपत्रे स्थात् ।’

तत्र गन्धपवित्रं स्वादेकमन्दस्यतनुकम् । कनिष्ठसंख्यमित्येके विस्त्रेण विनिर्भितम् ॥

(ईकानश्चित् शुद्धैवपद्धति, किंवाद २१ पद्म १२, १६)

* वहिनिर्णय प्राचीनेषु विष्णु मण्डलेषु दीक्षोत्तमार्गेण पश्चागच्छं च दस्तकावनं च भवेत् ।

(ईशानश्चित् शुद्धैवपद्धति, उत्तरार्थं, किंवाद २१वाँ पद्म)

छत्तीसवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके लिये पवित्रारोपणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने । प्रातःकाल स्नान आदि करके, द्वारपालोंका पूजन करनेके पश्चात् गुप्त स्थानमें प्रवेश करके पूर्वाधिवासित पवित्रकम्भेसे एक लेकर, प्रसादरूपसे धारण कर ले । शेष द्रव्य-बस्त्र, आभूषण, गन्ध एवं सम्पूर्ण निर्माण्यको हटाकर भगवान्को स्नान करानेके पश्चात् उनका पूजा करे । पश्चामृत, कथाय एवं शुद्ध गन्धोदकसे नहं आकर भगवान्के निमित्त पहलेसे रक्खे हुए बस्त्र, गन्ध और पुष्टिको उनकी सेवामें प्रस्तुत करे । अग्निमें निर्घोमकी माँति हवन करके भगवान्की सुति-प्रार्थना करनेके अनन्तर उनके चरणोंमें मस्तक नवाए । फिर अपने समस्त कम भगवान्को अर्पित करके उनकी नैमित्तिका पूजा करे । द्वारपाल, विष्णु, कुम्भ और वर्षनार्की प्रार्थना करे । ‘अतो देवा’ हस्तादि मन्त्रमें, अथवा मूल-मन्त्रमें कलशपर श्रीहरिकी सुति-प्रार्थना करे—‘हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! आपको नमस्कार है । इस पवित्रको ग्रहण काजिये । यह उपासकको पवित्र करनेके लिये है और वर्षभर की हुई पूजाके सम्पूर्ण कल्पको देनेवाला है । नाथ ! पहले मुझसे जो दुःखत (पाप) बन गया हो, उसे नष्ट करके आप मुझे परम पवित्र बना दीजिये । देव ! सुरेश्वर ! आपकी कृपामें मैं शुद्ध हो जाऊँगा ।’* हृदय, मिर आदि मन्त्रोऽदाग पवित्रकका तथा अपना भी अभिषेक करके विष्णुकल्पाका भी प्रोक्षण करनेके बाद भगवान्के समीप जाय । उनके ग्रन्थावन्धनको हटाकर उन्हें पवित्रक अर्पण कर और कहे—‘पर्मो ! मैंने जो ब्रह्मसूत्र तैयार किया है, इसे आप ग्रहण करें । यह कमंकी गूर्तिका साधक है; अतः इन पवित्रारोपण कमंको आप इस तरह सम्पन्न करें, जिससे मुझे दोषका भागी न होना पड़े’ ॥ १—९३ ॥

द्वारपाल, योगपीठामन तथा सुरव्य गुरुओंको पवित्रक चढ़ावे । इनमें कनिष्ठ श्रेणीका (नाभितकका) पवित्रक

* कृष्ण कृष्ण नमस्तुम्य शुद्धिष्ठेद पवित्रकम् ।

पवित्रीकरणार्थात् वर्षसूक्ष्माकल्पदम् ॥

पवित्रकं कुरुभाष वन्मना दुःखतं कृतम् ।

कृद्ये भवान्वयं देव त्वरप्रसादात् छुरेभर ॥

(अन्तिः ३६ । ६, ७)

द्वारपालोंको, मध्यम श्रेणीका (जांघतक लटकनेवाला) पवित्रक योगपीठासनको और उत्तम (धुटनेतकका) पवित्रक गुरुजनोंको दे । साक्षात् भगवान्को मूल-मन्त्रसे बनमाला (पौराणिक लटकनेवाला पवित्रक) अर्पित करे । ‘नमो विष्वक्सेनाय’ मन्त्र बोलकर विष्वक्सेनको भी पवित्रक चढ़ावे । अग्निमें होम करके अग्निस्थ विश्वादि देवताओंका पवित्रक अर्पित करे । तदनन्तर पूजनके पश्चात् मूल-मन्त्रसे प्रायार्थनके उद्देश्यसे पूजार्थुति देनी चाहिये । मणि या मूर्गाकी मालाओंसे अथवा मन्दार-पुष्प आदिम अष्टोचर-शतकी गाङ्गा कगड़ी चाहिये । अन्तमें भगवान्ने इग प्रकार प्रार्थना करे—‘॥ रुद्रदेवज ॥ यह आपकी वार्षिक पूजा सफल हो । देव ! जैसे बनमाला आपके बद्रःस्थलमें नदा शोभा पाती है, उनीं तरह पवित्रकके इन तनुओंको और इनके द्वारा की गयी पूजाको भी आप अपने हृदयमें धारण करें । मैंने इच्छासे या अनिच्छासे नियमपूर्वक की जानेवाली पूजामें जो श्रुतियों की है, विष्ववश विधिके पालनमें जो न्यूनता हुई है, अथवा कर्मलोपका प्रयत्न आया है, वह सब आपकी कृपामें पूर्ण हो जाय । मेरे द्वारा की हुई आपकी पूजा पूर्णतः सफल हो ॥’ १०—१५६ ॥

इस प्रकार प्रार्थना और नमस्कार करके अपराधोंके लिये क्षमा भूगकर पवित्रको मस्तकपर चढ़ावे । फिर वथायोग्य बलि अर्पित करके दक्षिणाद्वारा वैष्णव गुरुओंसे सतुष्ट करे । यथाशक्ति एक दिन या एक पश्चतक ब्राह्मणोंको भोजन-बस्त्र आदिसे संतोष प्रदान करे । स्नानकालमें पवित्रको उतारकर पूजा करे । उत्तरवेदके दिन किंचिको आनेसे न रोके और सबको अनिवार्यरूपमें अन्न देकर अन्तमें स्वयं भी भोजन करे । विसर्जनके दिन पूजन करके पवित्रकोंका विसर्जन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—‘हे पवित्रक ! मेरी इस वार्षिक पूजाको विधिवत् सम्मादित करके अब तुम मेरेद्वारा विसर्जित हो विष्णुलोकको पक्षारो ।’ उत्तर और ईश्वानकोणके बीचमें विष्वक्सेनकी पूजा करके उनके भी पवित्रकोंकी अर्चना करनेके पश्चात् उन्हें ब्राह्मण-कों दे दे । उस पवित्रकमें जितने तन्मु कस्तित हुए हैं, उतने सहस्र युगोतक उपासक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।

संक्षेप संक्षेपसे अपनी सी शूर्प पीढ़ियोंका उद्धार कोकमें स्थापित करता और शर्व यी युक्ति प्राप्त करने के लिए दस पहले और दस बादकी पीढ़ियोंको विष्णु- है ॥ १७—१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें 'विष्णु-पवित्रारोपणविद्विष्णुर्ज्ञान' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

सेतीसवाँ अध्याय

संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये साधारण पवित्रारोपणकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! अब संक्षेपसे समस्त देवताओंके लिये पवित्रारोपणकी विधि सुनो । पहले जो चिह्न कहे गये हैं उन्हीं लक्षणोंसे युक्त पवित्रक देवताओं अर्पित किया जाता है । उसके दो मेंद होते हैं 'खरन' और 'अमल्ला' । पहले निम्नाङ्कित रूपसे इष्टदेवताओं निमन्त्रण देना चाहिये—जगत्के कारणभूत ब्रह्मदेव । आप परिवार सहित यहाँ पश्चारे । मैं आपको निमन्त्रित करता हूँ । कल प्रातःकाल आपकी सेवामें पवित्रक अर्पित करूँगा ।' फिर दूसरे दिन पश्चात निम्नाङ्कित प्रार्थना करके पवित्रक भेट करे—'संसारकी सुष्ठि करनेवाले आप विधाता-को नमस्कार है । यह पवित्रक ग्रहण कीजिये । इसे आपनेको पवित्र करनेके लिये आपकी मेवामें प्रस्तुत किया गया है । यह वर्षभरकी पूजाका फल देनेवाला है' । 'पवित्रदेव ! वेद-वेच्छाओंके पालक प्रभो ! आपको नमस्कार है । यह पवित्रक स्वीकार कीजिये । इसके द्वारा आपके लिये गणि, मूर्ग और मन्दार-दुमुक आदिसे प्रतिदिन एक वर्षतक की जानेवाली पूजा भग्नादित हो ।' 'पवित्र ! मेरी इस वार्षिक-पूजाका विविवत् सम्पादन करके मुझसे विदा लेकर अब तुम स्वर्गलोकको पश्चातो ।' 'सूर्यदेव ! आपको नमस्कार है; यह पवित्रक लीजिये । इसे पवित्रीकरणके उद्देश्यसे आपकी सेवामें अर्पित किया गया है । यह एक वर्षकी पूजाका फल

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें 'संक्षेपः सर्वदेवसाधारण पवित्रारोपण' नामक सेतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

अड्डीसवाँ अध्याय

देवालय-निर्माणसे प्राप्त होनेवाले कलं आदिका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—मुनिवर वसिष्ठ ! भगवान् बासुदेव आदि विभिन्न देवताओंके निभित मन्दिरका निर्माण करानेसे जिस फल आदिको प्राप्ति होती है, अब मैं उसीका बर्णन करूँगा । जो देवताके लिये मन्दिर-जलाशय-आदिके निर्माण करानेकी इच्छा करता है, उसका वह शुभ संकल्प

ही उसके हजारों जन्मोंके पापोंका नाश कर देता है । जो मनसे भावनाद्वारा भी मन्दिरका निर्माण करते हैं, उनके लेकिन जन्मोंके पापोंका नाश हो जाता है । जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके लिये किसी दूसरेके द्वारा करवाये जाने हुए मन्दिरके निर्माण-कार्यका अनुमोदन मान कर देते हैं,

वे भी समस्त पापोंसे मुक्त हो उन भक्ष्युतदेवके लोक (वैकुण्ठ अथवा गोलोकचामको) प्राप्त होते हैं । भगवान् विष्णुके निर्मित मन्दिरका निर्माण करके मनुष्य अपने भूतपूर्व तथा भविष्यमें होनेवाले दस हजार कुलोंको तत्काल विष्णुलोकमें जानेका अधिकारी बना देता है । श्रीकृष्ण-मन्दिरका निर्माण करनेवाले मनुष्यके पितर नरकके कलेशोंसे तत्काल छुटकारा पा जाते हैं और दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो बड़े हर्षके साथ विष्णुधाममें निवास करते हैं । देवालयका निर्माण ब्रह्महत्या आदि पापोंके पुण्यका नाश करनेवाला है ॥ १-५ ॥

यहाँसे जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती है, वह भी देवालयका निर्माण करानेमात्रमें प्राप्त हो जाता है । देवालयका निर्माण करा देनेपर गम्भीर तीर्थोंमें भ्रान्त करनेका कल प्राप्त हो जाता है । देवता-ब्रह्मण आदिके लिये रणभूमिमें मारे जानेवाले धर्मांत्मा शूरवारोंको जिस कल आदिकी प्राप्ति होती है, वही देवालयके निर्माणसे भी बुलभ होता है । कोई शठता (कजूमी) के कारण धूल-मिट्टीसे भी देवालय बनवा दे तो वह उसे स्वर्ग या दिव्यलोक प्रदान करनेवाला होता है । एकाक्षत (एक ही देव-विग्रहके लिये एक कमरीका) मन्दिर बनवानेवाले पुरुषको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है । ऋग्यतन-मन्दिरका निर्माता ब्रह्मलोकमें निवास पाता है । पञ्चायतन-मन्दिरका निर्माण करनेवालेको शिवलोकही प्राप्ति होती है और अष्टायतन-मन्दिरके निर्माणमें श्रीहरिकी संनिधिमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है । जो श्रीडशायतन-मन्दिरका निर्माण करता है, वह घोग और मोठा, दोनों पाता है । श्रीहरिके मन्दिरकी तीन श्रेणियाँ हैं—कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ । इनका निर्माण करानेसे क्रमशः स्वर्गलोक, विष्णुलोक तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है । उनी मनुष्य भगवान् विष्णुका उत्तम श्रेणीका मन्दिर बनवाकर जिस फलको प्राप्त करता है, उसे ही निर्धन मनुष्य निम्नश्रेणीका मन्दिर बनवाकर भी प्राप्त करता है । उन उपार्जनकर उसमेंसे योद्धा-गा ही सर्व करके बढ़ि मनुष्य देव मन्दिर बनवा ले तो बहुत अधिक पुण्य एवं भगवान्का बगदान प्राप्त करता है । एक लाख या एक हजार वा एक सौ अथवा उसका आधा (५०) शुद्ध ही सर्व करके भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवानेवाला मनुष्य उस नित्य कालको प्राप्त होता है जहाँ साक्षात् गरुदकी

जला फहरानेवाले भगवान् विष्णु विराजमान होते हैं ॥ १-१२४ ॥

जो लोग बचपनमें खेलते समय धूलिसे भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाते हैं, वे भी उनके भासको प्राप्त होते हैं । तीर्थमें, पवित्र स्थानमें, सिद्धसेत्रमें तथा किसी आश्रम-पर जो भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें अन्यत्र मन्दिर बनानेका जो कल बताया गया है, उससे तीन गुना अधिक कल मिलता है । जो लोग भगवान् विष्णुके मन्दिरको चूनेसे लिपाते और उसपर बन्धुकोंके फूलका चित्र बनाते हैं, वे अन्तमें भगवान्के धाममें पटुच जाते हैं । भगवान्का जो मन्दिर गिर गया हो, गिर रहा हो, अथवा आधा गिर चुका हो, उसका जो मनुष्य जीणोदार करता है, वह नवान मन्दिर बनवानेकी अपेक्षा दूना पुण्यकल प्राप्त करता है । जो गिरे हुए विष्णु मन्दिरकी पुनः बनवाता और गिरे हुएकी रक्षा करता है, वह मनुष्य साक्षात् भगवान् विष्णुका स्वरूप प्राप्त करता है । भगवान्के मन्दिरका हँडे जबतक रहती है, तबतक उसका बनवानेवाला विष्णुलोकमें कुलसहित प्रतिष्ठित होता है । इन संसारमें और परलोकमें वहाँ पुण्यवान् और पूजनीय है ॥ १३—२० ॥

जो भगवान् श्रीकृष्णका मन्दिर बनवाता है, वही एष्यवान् उत्पन्न हुआ है, उसीने अपने कुलकी रक्षा की है । जो भगवान् विष्णु, शिव, मूर्य और देवी आदिका मन्दिर बनवाता है, वही इस लोकमें कीर्तिका भागी होता है । सदा धनका रक्षामें लोग रहनेवाले मूर्व मनुष्यको बड़े कष्टसे कमाये हुए अधिक धनसे क्या लाभ हुआ, यदि वह उससे श्रीकृष्णका मन्दिर हा नहीं बनवाता । जिसका धन पितरी, ब्राह्मणों और देवताओंके उपयोगमें नहीं आता तथा बन्धु-बान्धवोंके भी उपयोगमें नहीं आ सका, उसके धनकी प्राप्ति अर्थ हुई । जैसे प्राणियोंकी मृत्यु निश्चित है, उसी प्रकार कमाये हुए धनका नाश भी निश्चित है । मूर्व मनुष्य ही क्षणभ्रुर जीवन और चश्चल धनके मोहमें बेधा रहता है । जब धन दानके लिये, प्राणियोंके उपभोगके लिये, कीर्तिके लिये और धर्मके लिये काममें नहीं लाया जा सके तो उस धनका मालिक बननेमें क्या लाभ है ? इसलिये प्रारब्धसे भिन्ने अथवा पुण्यवार्षणे, किसी भी उपाक्षे धनको प्राप्तकर उसे उसम ब्राह्मणोंको दान दे, अथवा कोई स्विर कीर्ति बनवावे । चूँकि दान और कीर्तिसे भी बढ़कर मन्दिर

बनवाना है, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य विष्णु आदि देवताओं का मन्दिर आदि बनवाते। भक्तिमान् श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वाया बहि भगवान्‌के मन्दिरका निर्माण और उसमें भगवान्‌का प्रवेश (स्थापन आदि) हुआ तो यह समझना चाहिये कि उसने समस्त चरान्नर विभुवनको रहनेके लिये भवन बनवा दिया। ब्रह्मासे लेफर तृणपर्यन्त जो कुछ भी भूत, वर्तमान, भविष्य, स्थूल, सूक्ष्म और इससे भिन्न है, वह सब भगवान् विष्णुसे प्रकट हुआ है। उन देवाधिदेव सर्वव्यापक महात्मा विष्णुका मन्दिरमें स्थापन करके मनुष्य पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता [मुक्त हो जाता है]। जिस प्रकार विष्णुका मन्दिर बनवानेमें फल बताया गया है, उसी प्रकार अन्य देवताओं—शिव, ब्रह्म, सूर्य, गणेश, दुर्गा और लक्ष्मी आदिका भी मन्दिर बनवानेसे होता है। मन्दिर बनवानेसे अधिक पुण्य देवताकी प्रतिमा बनवानेमें है। देव-प्रतिमाकी स्थापना-सम्बन्धी जो यश होता है, उसके फलक तो अन्त ही नहीं है। कच्ची मिट्टीकी प्रतिमासे लकड़ीकी प्रतिमा उत्तम है, उससे ईंटकी, उससे भी पत्थरकी और उससे भी अधिक सुर्खां आदि जातुओंकी प्रतिमाका फल है। देवमन्दिरका प्रारम्भ करने मात्रसे सात जन्मोंके किये हुए पापका नाश हो जाता है तथा बनवानेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका अधिकारी होता है; वह नरकमें नहीं जाता। इतना ही नहीं, वह मनुष्य अपनी सौ पाँडीका उद्धार करके उसे विष्णुलोकमें पहुँचा देता है। यमराजने अपने दूतोंसे देवमन्दिर बनानेवालोंको लक्ष्य करके ऐसा कहा था—॥ २१-३५ ॥

यम बोले—(देवालय और) देव-प्रतिमाका निर्माण तथा उसकी पूजा आदि करनेवाले मनुष्योंको तुमलोग नरकमें न ले आना तथा जो देव-मन्दिर आदि नहीं बनवाते, उन्हें लास तैरपर पकड़ लाना। जाओ। तुमलोग संसारमें विचरो और न्यायपूर्वक मेरी आशाका पालन करो। संसारके कोई भी ग्राणी कभी तुम्हारी आशा नहीं टाल सकेगी। केवल उन लोगोंको तुम छोड़ देना जो कि जगतिता भगवान् अनन्तकी शरणमें जा चुके हैं; क्योंकि उन लोगोंकी स्थिति यहाँ (यमलोकमें) नहीं होती। संसारमें जहाँ भी भगवान्‌में चित्त ल्याये हुए, भगवान्‌की ही शरणमें पढ़े हुए भगवद्गक महात्मा सदा भगवान् विष्णुकी बूजा करते हैं, उन्हें दूरते ही छोड़कर तुमलोग चढ़े जाना। जो स्थिर होते, सोते, चलते, उठते,

गिरते, पड़ते या लड़े होते, समय भगवान् श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग देना। वे नित्य-नैमित्तिक कर्मोद्धारा भगवान् जनार्दनकी पूजा करते हैं, उनकी ओर तुमलोग ऑर्ज उठाकर देखना भी नहीं; क्योंकि भगवान्‌का व्रत छारनेवाले लोग भगवान्‌को ही प्रस देते हैं॥ ३६-४१ ॥

जो लोग पूल, धूप, वस्त्र और अस्त्रत प्रिय आभूषणों-द्वाया भगवान्‌की पूजा करते हैं, उनका सर्व न करना; क्योंकि वे मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके धामको पहुँच नुके हैं। जो भगवान्‌के मन्दिरमें लेप करते या ब्रह्मारी लगाते हैं, उनके पुष्पोंको तथा उनके वंशको भी छोड़ देना। जिन्होंने भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाया हो, उनके बंदमें सौ पाँडीतके मनुष्योंका और तुमलोग छुरे मावसे न देखना। जो लकड़ीका, पत्थरका अथवा मिट्टीका ही देवालय भगवान् विष्णुके लिये बनवाता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रतिदिन यशोदारा भगवान्‌की आराधना करनेवालेको जो यमान् फल मिलता है, उसी फलको, जो विष्णुका मन्दिर बनवाता है, वह भी प्राप्त करता है। जो भगवान् अन्युतका मन्दिर बनवाता है, वह अपनी बीतो हुई सौ पाँडीके पितरोंको तथा होनेवाले सौ पाँडीके बशजांको भगवान् विष्णुके लोकको पहुँचा देता है। भगवान् विष्णु सप्तलोकमय हैं। उनका मन्दिर जो बनवाता है, वह अपने कुलको तारता है, उन्हें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति कराता है और स्वयं भी अक्षय लोकोंको

* यम उचाच—

प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नरः ।
देवालयाधकर्तारं आनेवास्ये विदेषतः ॥
विचरत्वं यशन्यायं नियोगो मम पास्यताम् ।
नाशाभाङ्गं करिष्यन्ति भवतां जनावः कवित ॥
केवलं ये जगतानमनन्तं समुपाश्रिताः ।
मवद्विः परिवर्त्यास्तेषां नाशात्तिं संस्थितिः ॥
यत्र भागवता लोके तवितागस्तपरावणाः ।
पूजयन्ति सदा विष्णुं ते च लाज्याः सुदृशः ॥
पत्सिष्टन् प्रस्वपन् गच्छनुसिष्टन् सखलिना विज्ञा ।
सक्षीत्यन्तिं गोविन्दं ते वरत्वाच्चाः सुदृशः ॥
नित्यैर्नैमित्तिर्देवं ये वज्रिति जनार्दनम् ।
ज्ञवज्रेन्द्रम् नवद्वित्ये तदाता वानि तदतिग् ॥

(अरिषु० १८ । ३६-४१)

प्राप्त होता है। मन्दिरमें ईटके समूहका जोड़ जिसने बर्चीतक रहता है, उसने ही हजार क्षोतक उस मन्दिरके बनवानेवालेकी स्थापितकमें स्थिति होती है। भगवानकी प्रतिमा बनानेवाला विष्णुलोकको प्राप्त होता है, उसकी स्थापना करनेवाला भगवानमें लीन हो जाता है और देवालय बनवाकर उसमें प्रतिमाकी स्थापना करनेवाला

सदा भगवानके लोकमें निवास पाता है॥ ४२—५०॥

अग्निदेव बोले—यमराजके इस प्रकार आशा देने पर यमके दूत भगवान् विष्णुकी स्थापना आदि करने वालोंको यमलोकमें नहीं ले जाते। देवताओंकी प्रतिष्ठा आदिकी विधिका भगवान् इयशीवने ब्रह्माजीसे वर्णन किया था॥ ५१॥

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें ‘देवालय-निर्माण महात्मादिका वर्णन’ नामक अहीतसर्वां अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके लिये भूपरिग्रहका विधान

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाके विशयमें कहूँगा, ध्यान देकर सुनिये। इस विशयमें मेरे द्वारा बर्णित पञ्चरात्रों एव सप्तरात्रोंका अध्ययनेने मानवलोकमें प्रचार किया है। वे संख्यामें पञ्चास हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—) आदिहक्षीर्वतन्त्र, वैद्येक्यमोहनतन्त्र, वैभवतन्त्र, उष्टुक-
तन्त्र, प्रह्लादतन्त्र, गार्यतन्त्र, गालवतन्त्र, नारदीय-
तन्त्र, श्रीप्रभृतन्त्र, शाष्ठित्यतन्त्र, ईश्वरतन्त्र, सत्यतन्त्र,
शौनकतन्त्र, वसिष्ठोक्त शानकागरतन्त्र, स्वायम्भुवतन्त्र,
कापिलतन्त्र, तार्षण (गारुड) तन्त्र, नारायणीयतन्त्र, आत्रेय-
तन्त्र, नारसिंहतन्त्र, आनन्दतन्त्र, आरुण्यतन्त्र, बौद्धायनतन्त्र,
अष्टाङ्गतन्त्र और विश्वतन्त्र॥ १—५॥

इन तन्त्रोंके अनुसार मध्यदेश आदिमें उत्तम्न द्विज देवविष्णुओंकी प्रतिष्ठा करे। कच्छदेश, कावेरीतटवर्ती देश, कौकण, कामरूप, कलिङ्ग, काञ्ची तथा काशीमीर देशमें उत्तम्न भास्त्रण देवप्रतिष्ठा आदि न करे। आकाश,

वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी—ये पञ्चमहाभूत पञ्चरात्र हैं। जो चेतना-शून्य एवं अशानान्धकारसे आन्धन्न हैं, वे पञ्चरात्रसे रहित हैं। जो मनुष्य यह धारणा करता है कि ‘मैं पापमुक्त परव्रह्म विष्णु हूँ’—वह देशिक होता है। वह समस्त बाश्च लक्षणों (वेष आदि) से हीन होनेपर भी दन्तवेत्ता आचार्य माना गया है॥ ६—८॥

देवताओंकी नगराभिमुख स्थापना करनी चाहिये। नगरकी ओर उनका पृष्ठभाग नहीं होना चाहिये। कुबक्षेत्र, गया आदि तीर्थस्थानोंमें अथवा नदीके समीप देवालयका निर्माण कराना चाहिये। ब्रह्माका मन्दिर नगरके मध्यमें तथा इन्द्रका पूर्व दिशामें उत्तम माना गया है। अग्निदेव तथा मातृकाओंका आनेयकोणमें, भूतगण और यमराजका दक्षिणमें, चण्डिका, पितृगण एवं दैत्यादिका मन्दिर नैऋत्यकोणमें बनवाना चाहिये। बरुणका पश्चिममें, वायुदेव और नाराका वायव्यकोणमें, यक्ष या कुवेरका उत्तर दिशामें, चण्डीश्वर-महेश्वका ईशानकोणमें और विष्णुका मन्दिर सभी

* वे पुष्पकूपासेमिर्बूषणैक्षतिकृष्णः। अर्चवन्ति न ते आशा नरः कृष्णालये गतः॥
उपलेपनकांरः सम्भार्जनपराश ये। कृष्णालये परिस्वाज्यासेषां पुत्रास्तथा कुलम्॥
येन चावतनं विष्णोः कारितं तस्कृपेऽप्तम्। पुंसा शूतं नावज्ञेण्यं भवद्विद्वृष्टेत्तसा॥
पत्सु देवालयं विष्णोर्दास्त्वैर्मयं तथा। कारयेष्वृष्टमयं वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
अहन्वहनि यज्ञेन यज्ञो अन्महापत्तम्। प्राप्नोति तप्तलं विष्णोर्वः कारयति कैतनम्॥
कुलाना शतमागामि समर्तीतं तथा शतम्। क्षरयन् भगवद्वाम नयत्प्रसुतलोक्ताम्॥
सप्तलोकमयो विष्णुलत्तस यः कुरुते शृणु। तारयत्यक्षोऽक्षोक्षनक्षम्यान् अतिपचये॥
दृष्ट्वा चयविन्दासो वावन्यस्त्रानि निष्ठाति। तावद्वर्त्सद्वस्त्रामि तत्कर्तुर्देवि संस्थितिः॥
व्रतिमाङ्गर् विष्णुलोकं स्थापनो जीवते हरी। देवसप्तमविष्णुदिव्यलोकाङ्गम्॥

(अग्निदेव ३८ । ४२—५०)

और बनवाना चेष्टा है। कानवार मनुष्यको पूर्ववर्ती देव-मन्दिरको संकुचित करके अस्प, समान या विशाल मन्दिर नहीं बनवाना चाहिये ॥ ९—१३३ ॥

(किसी देव-मन्दिरके समीप मन्दिर बनवानेपर)

दोनों मन्दिरोंकी ऊँचाईके बराबर दुगुनी सीमा छोड़कर नवीन देव-प्रापादका निर्माण करावे। विद्वान् अक्ति दोनों मन्दिरोंको पीड़ित न करे। भूमिका शोषण करनेके बाद भूमि-परिग्रह करे। तदनन्तर प्राकारकी सीमातक भाष, इरिदाकूर्ण, खील, दधि और सकुसे भूतबलि प्रदान करे।

इस प्रकार आदि आम्नेय महापुत्राणमें विष्णु आदि देवताओंकी, स्थापनाके लिये

‘भूपरिग्रहका वर्णन’ नामक उन्नतीसर्वों अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

फिर अशाकारमन्त्र पदकर आठों दिवाओंमें बहु विद्वेषों द्वारा करे—‘इस भूमिस्पृष्ठपर जो द्राशुष एवं विश्वामी आदि निवास करते हैं, वे सब यहाँसे चले जायें। मैं यहाँ-पर ओहरिके लिये मन्दिरका निर्माण करूँगा।’^१ फिर भूमिको इस्ते जुटाकर गोचारण करावे। आठ परमाणुका ‘व्रद्धेणु’ माना गया है। आठ रथरेणुका ‘व्रद्धेणु’ माना जाता है। आठ व्रद्धरेणुका ‘वालाश्र’ तथा आठ वालाश्रकी ‘विक्षा’ कही जाती है। आठ लिङ्गाकी ‘वूका’, आठ यूकड़का ‘व्यवमध्यम’, आठ यवका ‘अङ्गुल’, चौबीस अङ्गुलका ‘कर’ और अङ्गुलिए अङ्गुलका ‘पश्चात्त’ होता है+ ॥ १४—११ ॥

चालीसवाँ अध्याय

वास्तुमण्डलवर्ती देवताओंके स्थापन, पूजन, अर्धदान तथा बलिदान आदिकी विधि

भगवान् हयप्रीव कहते हैं—व्रह्मन् ! पूर्वकालमें सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके लिये भयंकर एक महाभूत था। देवताओंने उसे भूमिमें निहित कर दिया। उसीको ‘वास्तु-पुरुष’ माना गया है। न्तुःषष्ठि पदोंसे युक्त शेषमें अर्धकोणमें स्थित ईश (या शिवी) को भूत एवं अक्षतोंमें तुम करे। फिर एक पदमें स्थित पर्जन्यको कमल तथा ललसे, दो पदोंमें स्थित जयन्तको पताकासे, दो कोड़ोंमें स्थित महेन्द्रको भी उसीसे, द्विपदस्थ रविको सभी लाल रंगकी वस्तुओंसे संतुष्ट करे। दो पदोंमें स्थित सत्यको वितान (चँदोबाँ)से एवं एक-पदस्थ भृशको भूतसे, अग्निकोणवर्ती अर्धपदमें स्थित व्योम (आकाश) को शाकुननामक औषधके गूदेसे, उसी कोषके द्वारे अर्धपदमें स्थित अग्निदेवको खुक्से, एकपदस्थ पूषाको जाजा (खील) से, द्विपदस्थ वित्यको स्वर्णसे, एकपदस्थ गृहकतको मालवनसे, एक पदमें स्थित यमराजको उड़दमिति भातसे, द्विपदस्थ गन्धर्वको गन्धसे, एकपदस्थ भूमिको शाकुन-

जिहा नामक ओषधिसे, अर्धपदमें स्थित मूगको नीले बज्जसे, अर्धकोषके निम्नभागमें विद्यमान पितृगणको कृशर (खिचडी) से, एकपदस्थ दौवारिको दन्तकाष्ठसे एवं दो पदोंमें स्थित सुग्रीवोंको यव-निर्मित पदार्थ (हङ्का आदि) से परिसृप करे ॥ १—७३ ॥

द्विपदस्थ पुष्पदन्तको कुश-सगौहोसे, दो पदोंमें स्थित वृषको पश्चसे, द्विपदस्थ अबुरको सुरासे, एक पदमें स्थित शेषको घृतमिति जल्से, अर्धपदस्थ पाप (या पापयस्मा) को यवाज्जसे, अर्धपदस्थ रोगको माँड़से, एकपदस्थित नाग (सर्प)को नागपुष्पसे, द्विपदगत मुख्यको भृश-पदार्थोंसे, एकपदस्थ भलाटको मूँग-भातसे, एकपद-संस्थित सोमको भूषयुक्त खीरसे, दो पदोंमें आधांष्ठत शृष्टिको आळकरे, एक पदमें विद्यमान अदितिको लोपिकासे एवं अर्धपदस्थ दितिको पूरियोदाय संतुष्ट करे। फिर ईशानस्थित ईशके निम्न भागमें अर्धपदस्थित ‘आप’को दुर्घसे एवं उसके नीचे अर्ध-

* राष्ट्रसाम्ब पिण्डाचार्य देवसिंहान्ति भूतके। सर्वे ते व्यपगम्भन्तु स्थानं कुर्यामः हरेः ॥

+ ओविजाणवत्तमामें यह याज इस प्रकार दिवा गया है—

वातावरनप्यं ग्राव्य वै भान्ति रविरश्मवः । तेऽपि सहमा विसपंते ऐवक्षसरेणवः ॥

परमाणोरहुणस्तरेणुवदाहातः । तेऽप्तौ केवाह्यास्तेऽप्तौ लिङ्गा शूक्रस्तदद्वक्ष ॥

उद्गके वक्त्वेऽप्तवृक्षः समुदाहातः । सा दृष्टमाहुक्षः सप्तवता सैव तु मध्यमा ॥

पद्मवा वापेमा ग्रोक्षा वामाङ्गुष्ठमितीरितम् ॥ (१३ । १—४)

पहमें अविष्टि आपनवत्सको दहीसे संतुष्ट करे । साथ ही पूर्ववर्ती कोष्ठ-चतुष्ठयमें मरीचिको स्वद्भू देकर रुत करे । ब्रह्माके उर्ध्वभागके कोणस्थित कोष्ठमें अर्धपदव्य सावित्रिको रक्षपूर्ण निषेदन करे । उसके निम्नवर्ती अर्ध कोष्ठमें स्थित सविताको कुशोदक प्रदान करे । चार पदोंमें स्थित विश्वस्वानको रक्षन्वन्दन, नैऋत्यकोणवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित सुराधिप इन्द्रको हरिदामिश्रित जलका अर्घ्य दे । उसीके अर्धभागमें कोणवर्ती कोष्ठकमें स्थित इन्द्रजय (अथवा जय) को शृतका अर्घ्य दे । चतुष्ठदमें मिश्रको गुडबुक पायस दे । वायव्यकोणके आधे कोष्ठकमें प्रतिष्ठित छटको पकायी हुई उडद (या उसका बहा) एवं उसके अधोवर्ती अर्धकोष्ठमें स्थित यथा (या रद्वास) को आर्द्रफल (आंगूह सेव आदि) समर्पित करे । चतुष्पदवर्ती महीधर (या पृथ्वीधर) को उडदमिश्रित अज एवं माष (उडद)की बलि दे । मध्यवर्ती कोष्ठ-चतुष्ठयमें भगवान् ब्रह्माके निमित्त तिळ-तण्डुल स्थापित करे । चरकीको उडद और शृतसे, स्फन्दको खिचड़ी तथा पुष्पमालासे, विदारीको लाल कमलसे, कन्दर्पको एक पलके तोखाले भातसे, पूतनाको पलपित्तसे, जम्भकको उडद एवं पुष्पमालासे, पापा या पापराक्षसीको पित्त, पुष्पमाला एवं अस्त्रियोंसे तथा पिण्डित्यको भौति-भौतिकी मालाके द्वारा संतुष्ट करे । तदनन्तर ईशान आदि दिक्पालोंको लाल उडदकी बलि दे । इन सबके अभावमें अक्षतोंसे सबकी पूजा करनी चाहिये ॥ राक्षस, मातृका, गण, पिशाच, पितॄर एवं क्षेत्रपालको मी इच्छानुसार (दही-अक्षत या दही-उडदकी) बलि प्रदान करनी चाहिये ॥ ८—२१ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें 'वास्तु-देवताओंके अर्घ-दान-विधान आदिका वर्णन'नामक

चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

शिलान्यासकी विधि

भगवान् हयग्रीव बोले—अब मैं शिलान्यासवस्त्रपा पाद-प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा । पहले मण्डप बनाना चाहिये; फिर उसमें चार कुण्ड बनावे । वे कुण्ड क्रमशः कुम्भन्यास,

इष्टेकान्यास, द्वार और सम्मेके शुभ आश्रय होंगे । कुण्डका तीन चौथाई हिस्सा कंकड़ आदिसे भर दे और बराबर करके उसपर वास्तुदेवताका पूजन करे । नींवमें ढाली

* वर्तमान समवये अक्षतसे ही सबका पूजन करना चाहिये । इससे शक्तियां आकाश भी परिवर्तन होता है तथा हिंसा आदि दोषकी भी प्राप्ति नहीं होती है ।

१. कम्भकी सापना । २. इव च 'परमर्थी सापना ।

जानेवाली हैं जूल पक्की हों; आरह-बारह अहुलकी लंबी ही तथा विश्वारके तिश्वार्ह भागके बरबर, अर्थात् चार अहुल उनकी मोटाई होनी चाहिये। अगर पत्थरका मन्दिर बनवाना हो तो इंटकी जगह पत्थर ही नीचमें ढाढ़ा जायगा। एक-एक पत्थर, एक-एक हाथका लंबा होना चाहिये। (यदि सामर्थ्य हो तो) ताँबेके नी कलशोंकी, अन्यथा चिट्ठीके बने नौ कलशोंकी स्थापना करे। जल, पञ्चकशाय, सर्वोषधि और चन्दनगिरिथित जलसे उन कलशोंको पूर्ण करना चाहिये। इसी प्रकार सोना, चान आदिसे सुक तथा गन्ध-चन्दन आदिसे भलीमाँति पूजित करके उन जलपूर्ण कलशोंहारा 'आपो' हि छा' इत्यादि तीन शृंचाओं, 'शं नो देवीरभिष्ट' आदि मन्त्रों घरस्ते मन्त्रीः' इत्यादि मन्त्र एवं पावमौनी शृंचाओंके तथा 'उद्गुतमं वर्णं', 'कर्या नः' और 'वर्कर्णस्येतमनमसि'

१. तत्के अनुसार निम्नानुकूल पाँच कृष्णोंका काव्य;—आमुन, सेमर, खिरटी, मौलिसिरी और वेर। वह काव्य कृष्णोंकी पानीमें भिगोकर निकाला जाता है और कलशमें डालने एवं पुराना-पूजन आदिके काम जाता है।

२. शं आपो हि छा मयोभुवः । शं ता न अज्ञे दण्डतम ।
शं भेद रण्य चक्षसे । शं यो चः विष्वामो रसः । शं तस्य
भाजयतेह नः । शं उश्तीरिव भातरः । शं तस्ता अरं गमाम
वः । शं यस्य क्षयाय जिन्वन् । शं आपो जनयता च नः ।

(अजु०, अ० ११, मन्त्र ५०, ५१, ५२)

३. शं नो देवीरभिष्ट वापो भवन्तु पीतये । शं वोरभि-
श्वन्तु नः ॥ (अर्थ०, १ । ६ । १)

४. तरस्स मन्दी धावति भारा द्वृतस्यान्वसः । तरस्स मन्दी
धावति ॥ १ ॥ उत्ता वेद बद्धना मर्तस्य देव्यवसः । तरस्स मन्दी धावति
॥ २ ॥ व्यस्तयोः पुष्पन्त्योरा सहस्राणि दध्ये । तरस्स मन्दी
धावति ॥ ३ ॥ आ ययोर्जिष्ठतं तना सहस्राणि च दध्ये । तरस्स
मन्दी धावति ॥ ४ ॥ (अ०, म०, ९, द० ५८ । १-४)

५. कर्मवेद, नवम माण्डल, अध्याय १, २, ३के सूतोंको
'पावमानसूक्त' तथा शृंचाओंको 'पावमानी शृंचार्ण' कहते हैं।

६. उद्गुतमं वर्णं पाशमसद्बाधमं वि मव्यमं अथाय । अथ-
वयमादित्य अते तत्त्वानागतो अदितये स्याम ॥ (अजु०, १२ । १२)

७. कव्या नविष्ट व्यामुक्ती लदाष्टः सदाष्टः सद्गा । कव्या
शनिष्टया वृता ॥ (अजु०, ३६ । ४)

८. वरणस्येतमनमसि वरणस्य स्फूर्तसज्जंबी स्तो वरणस्य
कर्तसदन्व्यसि वरणस्य कर्तसदनमसि वरणस्य श्रातसदनमासीद ॥

(अजु०, ४ । ३६)

इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक 'इंसः शुचिष्टं' इत्यादि मन्त्र तथा श्रीसूक्तका भी उच्चारण करते हुए बहुत-सी शिक्षाओं अथवा इंटोंका अभिषेक करे। फिर उन्हें नीचमें स्थापित करके मण्डपके भीतर एक शब्दापर पूर्वमण्डलमें भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। अरणी-मन्थनद्वारा अस्त्र प्रकट करके द्वादशाक्षर-मन्त्रसे उसमें समिधाओंका इवन करना चाहिये ॥ १-९ ॥

'आचार' और 'आज्ञ्यमाग' नामक आहुतियाँ प्रणव-मन्त्रसे ही कराये। फिर अष्टाक्षर-मन्त्रसे आठ आहुतिं देकर शुः स्ताहा, शुः सुवः स्ताहा, शुः स्तः स्ताहा—इस प्रकार तीन व्याहुतियोंसे क्रमशः लोकेश्वर अग्नि, सोमग्रह और भगवान् पुरुषोत्तमके निमित्त इवन करे। इसके बाद प्रायश्चित्तसंबंधक इवन करके प्रणवपुरुष द्वादशाक्षर मन्त्रसे उड्डव, धी और तिळको एक साथ लेकर पूर्णाहुति-इवन करना चाहिये। तत्प्रात् आचार्य पूर्वाभिष्टमुख होकर आठ दिशाओंमें स्थापित कलशोंपर पृथक्-पृथक् पथ आदि देवताओंका स्थापन-पूजन करे। बीचमें भी धरती लीपकर पत्थरकी एक शिक्षा और कलश स्थापित करे। इन नौ कलशोंपर क्रमशः नीचे लिखे देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये ॥ १०-१३ ॥

पश्च, महापश्च, मकर, कञ्जप, कुमुद, आनन्द, पश्च और शङ्ख—इनको आठ कलशोंमें और पद्मिनीको मध्य-वर्ती कलशपर स्थापित करे ॥ १४ ॥

इन कलशोंको हिलावे-हुलावे नहीं; उनके निकट पूर्व आदिके क्रमसे ईशान कोणताक एक-एक ईट रख दे। फिर उनपर उनकी देवता विमला आदि शक्तियोंका न्यास (स्थापन) करना चाहिये *। बीचमें 'अनुग्रहाकी' स्थापना करे। इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे—'मुनिवर अङ्गिराकी सुपुत्री इष्टका देवी, तुम्हारा कोई अङ्ग दृटा-भृटा या खराय नहीं हुआ है; तुम अपने सभी अङ्गोंसे

९. इंसः शुचिष्टसुरन्तरिक्षसद्वाता वेदिषदतिष्ठिरुरोणसद् ।
नृष्टदस्तुतसद्योमसदम्भा गोजा नृतजा अद्रिजा नृतं वहय ॥

(अजु० ३० । २४; कठ० २ । २ । २)

* विमला आदि शक्तियोंके नाम इस प्रकार है—

विमला, वल्लर्षिणी, ज्ञाना, विद्या, वोगा, प्राणी, सत्या, ईश्वरा
तथा अनुग्रहा ।

पूर्ण हो । मेरा अभीष्ट पूर्ण करो । अब मैं प्रतिष्ठा करा रहा हूँ ॥ १५-१० ॥

उत्तम आचार्य इस मन्त्रसे इष्टकाओंकी सापना करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर मध्यवाले लानमें गर्भाचान करे । [उसकी विधि यौं है—] एक कलशके ऊपर देवेश्वरं भगवान् नारायणं तथा पांडितीं (लक्ष्मी) देवीको स्थापित करके उनके पास भिट्ठी, घृत, चातु और रस्तोंको रखले । इसके बाद लोहे आदिके बने हुए गर्भपात्रमें, जिसका विस्तार बारह अङ्कुल और ऊँचाई चार अङ्कुल हो, अल्पकी पूजा करे । फिर ताँबेके बने हुए कमलके आकारबाले एक पात्रमें पृथ्वीका पूजन करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—‘समूर्णं भूतोकी ईश्वरी पृथ्वीदेवी । तुम पर्वतोंके आसनसे सुशोभित हो; चारों ओर समुद्रोंसे छिरी हुई हो; एकान्तमें गर्भ धारण करो । वसिष्ठकन्या नन्दा । वसुओं और प्रजाओंके राहित तुम मुझे आनन्दित करो । मार्गवपुत्री जया । तुम प्रजाओंको विजय दिलानेवाली हो । [मुझे भी विजय दो ।] अङ्गिराकी पुत्री पूर्णा । तुम मेरी कामनाएँ पूर्ण करो । महर्षि कश्यपकी कन्या भद्रा । तुम मेरी तुदि कल्याणमयी कर दो । सम्यूर्ण बीबोंसे युक्त और समस्त रस्तों एवं औषधोंसे सम्पन्न सुन्दरी जया देवी । तथा वसिष्ठपुत्री नन्दा देवी । यहाँ आनन्दपूर्वक रम जाओ । हे कश्यपकी कन्या भद्रा । तुम प्रजापतिकी पुत्री हो, चारों ओर फैली हुई हो, परम महान् हो; साथ ही सुन्दरी और सुकान्त हो, इस शहमें रमण करो । हे मार्गवी देवी । तुम परम आश्चर्यमयी हो; गन्ध और माल्य आदिसे सुशोभित एवं पूजित हो; लोकोंको देश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि । तुम इस शहमें रमण करो । इस देशके सम्माट्, इस नगरके राजा और इस घरके मालिकके बाल-बच्चोंको तथा मनुष्य आदि प्राणियोंको

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें ‘सर्वशिलाविन्यासविचान आदिका कथन’ नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

प्रासाद-रक्षण-वर्णन

भगवान् हथशीत कहते हैं—भगवन् । अब मैं सर्व-साधारण प्रासाद (देवालय) का वर्णन करता हूँ, तुलो । विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जहाँ मन्दिरका निर्माण करना

आनन्द देनेके लिये पश्च आदि सम्पदाकी इदि करो ।” इस प्रकार प्रार्थना करके बालु-कुण्डको गोमूत्रसे सीकना चाहिये ॥ १८-१८ ॥

यह सब विधि पूर्ण करके कुछमें गर्भको स्थापित करे । यह गर्भाचान रातमें होना चाहिये । उस समय आचार्यको गौ-बल आदि दान करे तथा अन्य लोगोंको भोजन दे । इस प्रकार गर्भपात्र रखकर और ईटोंको भी रखकर उस कुण्डको भर दे । तत्पश्चात् मन्दिरकी ऊँचाईके अनुसार प्रधानदेवताके पीठका निर्माण करे । ‘उत्तम पीठ’ कह है, जो ऊँचाईमें मन्दिरके आचे विस्तारके बराबर हो । उत्तम पीठकी अपेक्षा एक चौथाई कम ऊँचाई होनेपर मध्यम पीठ, कहलाता है और उत्तम पीठकी आधी ऊँचाई होनेपर ‘कनिष्ठ पीठ’ होता है । पीठ-बन्धके ऊपर पुनः बालु-याग (बालुदेवताका पूजन) करना चाहिये । केवल पाद-प्रतिष्ठा करनेवाला भनुष्य भी सब पापोंसे रहित होकर देवलोकमें आनन्द-भोग करता है ॥ २९-३२ ॥

मैं देव-मन्दिर बनवा रहा हूँ, ऐसा जो मनसे विन्दन भी करता है, उसका शारीरिक पाप उसी दिन नष्ट हो जाता है । फिर जो विशिष्टपूर्वक मन्दिर बनवाता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ? जो आठ ईटोंका भी देवमन्दिर बनवाता है, उसके फलकी सम्पत्तिका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता । इसीसे विशाल मन्दिर बनवानेसे मिलनेवाले महान् फलका अनुमान कर लेना चाहिये ॥ ३३-३५ ॥

गाँवके बीचमें अथवा गाँवसे पूर्वदिशामें यदि मन्दिर बनवाया जाय तो उसका दरवाजा पञ्चमकी ओर रखना चाहिये और सब कोणोंमेंसे किसी ओर बनवाना हो तो गाँवकी ओर दरवाजा रखले । गाँवसे दक्षिण, उत्तर या पञ्चमदिशामें मन्दिर बने, तो उसका दरवाजा पूर्वदिशाकी ओर रखना चाहिये ॥ ३६-३७ ॥

हो, बहाँके चौकोर देवके सोलह भाग करे । उसमें मध्यके चार भागोंवाला आयसहित गर्भ (मन्दिरके भीतरी भागकी रिक्त भूमि) निर्वित करे तथा शेष बारह

भागोंको दीवार उठानेके लिये नियत करे। उस बारह भागोंमें सार भागकी जितनी लंबाई है, उतनी ही ऊँचाई प्रासादकी दीवारोंकी होनी चाहिये। विद्वान् पुष्ट दीवारोंकी ऊँचाईसे युगुनी शिखरकी ऊँचाई रखें। शिखरके चौथे भागकी ऊँचाईके अनुसार मन्दिरकी परिकल्पना की ऊँचाई रखें। उसी मानके अनुसार दोनों पार्श्व भागोंमें निकलनेका सार्ग (द्वार) बनाना चाहिये। वे द्वार एक दूसरेके समान होने चाहिये। मन्दिरके सामनेके भूभागका विस्तार भी शिखरके समान ही करना चाहिये। जिस तरह उसकी शोभा हो सके, उसके अनुरूप उसका विस्तार शिखरसे दूना भी किया जा सकता है। मन्दिरके आगेका सभामण्डप विस्तारमें मन्दिरके गर्भसूत्रसे दूना होना चाहिये। मन्दिरके पादस्तम्भ आदि भित्तिके बीचबीच ही लंबे बनाये जायें। वे मध्यवर्ती स्तम्भोंसे विभूजित हों। अथवा मन्दिरके गर्भका जो मान है, वही उसके मुख-मण्डप (सभामण्डप या जग्योहन) का भी रखें। तत्पश्चात् इक्यासी पदों (स्थानों) से युक्त वात्सु-मण्डपका आरम्भ करे॥ १-७ ॥

इनमें पहले द्वारन्यासके समीपबर्ती पदोंके भीतर स्थित होनेवाले देवताओंका पूजन करे। फिर परकोटेके निकट-बर्ती एवं सबसे अन्तके पदोंमें खापित होनेवाले बत्तीय देवताओंकी पूजा करे॥ ८ ॥

यह प्रासादका सर्वसाधारण लक्षण है। अब प्रतिमाके मानके अनुसार दूसरे प्रासादका वर्णन सुनो॥ ९ ॥

जितनी बड़ी प्रतिमा हो, उतनी ही बड़ी सुन्दर पिण्डी बनावे। पिण्डीके आधे मानसे गर्भका निर्माण करे और गर्भके ही मानके अनुसार भित्तियाँ उठावे। भीतोंकी लंबाईके अनुसार ही उनकी ऊँचाई रखें। विद्वान् पुष्ट भीतकी ऊँचाईसे युगुनी शिखरकी ऊँचाई करावे। शिखरकी अपेक्षा चौथाई ऊँचाईमें मन्दिरकी परिकल्पना बनावे तथा

* नारदपुराण, पूर्वभाग, द्वितीय चतुर्थ, ५६ वं भाष्यामें ५०० से कैफर ६०६ तकके कोलोमें भी यही बात कही गया है।

इसी ऊँचाईमें मन्दिरके आगेके मुख-मण्डपका भी निर्माण करावे॥ १०-१२ ॥

गर्भके आठवें अंशके मापका इथकोंके निकलनेका मार्ग (द्वार) बनावे। अथवा परिभिके तूलीव भागके अनुसार वहाँ रथकों (छोटे-छोटे रथों) की रचना करवाए तथा उनके भी तूतीय भागके मापका उन रथोंके निकलनेके मार्ग (द्वार) का निर्माण करावे। तीन रथकोंपर सदा तीन बांधोंकी स्थापना करे॥ १३-१४ ॥

शिखरके लिये चार सूत्रोंका नियातन करे। शुकनासाके ऊपरसे घूटको 'सिरङ्ग' गिरावे। शिखरके आधे भागमें सिंहकी प्रतिमाका निर्माण करावे। शुकनासापर घूटको शिर करके उसे मध्य संधितक ले जाय॥ १५-१६ ॥

इसी प्रकार दूसरे पार्श्वमें भी सूत्रपात करे। शुकनासा-के ऊपर बेदी हो और बेदीके ऊपर आमलसार नामक कण्ठसहित कलशका निर्माण कराया जाय। उसे बिकराल न बनाया जाय। जहाँतक बेदीका मान है, उससे ऊपर ही कलशकी कल्पना होनी चाहिये। मन्दिरके द्वारकी जितनी ऊँचाई हो, उससे दूनी उसकी ऊँचाई रखनी चाहिये। द्वारको बहुत ही सुन्दर और शोभामण्डप बनाना चाहिये। द्वारके कर्परी भागमें सुन्दर मङ्गलमय वस्तुओंके साथ गूलरकी दो शाखाएँ खापित करे (बुद्वावे)॥ १७-१९ ॥

द्वारके चतुर्थीशमें चण्ड, प्रचण्ड, विष्वक्षेन और वस्तदण्ड—इन चार द्वारपालोंकी मूर्तियोंका निर्माण करावे। गूलरकी शाखाओंके अर्ध भागमें सुन्दर रूपबाली

१. शिखरके चार भाग करके नीचेके दो भागोंको 'शुकनासा' कहते हैं। उसके ऊपरके तीसरे भागमें बेदी होती है, जिसपर उसका कण्ठसात्र स्थित होता है। सबसे ऊपरके चतुर्थ भागमें 'आमलसार' संकक काठका निर्माण कराया जाना चाहिये। जैसा कि महस्तपुराणमें कहा है—

शुकनासं शुक्लाद शरीरे बैद्यक भवा ।
कण्ठसात्राद्वारं तु वृष्ट विष्वक्षेन ।
(२५९ । १८१९)

लक्ष्मीदेवीके श्रीविग्रहको अद्वित करे । उनके हाथमें कमल हो और दिमाज कलशोंके जलदाय उन्हें नहला रहे हों । मन्दिरके परकोटेकी ऊँचाई उसके चतुर्थांशके बराबर हो । प्रासादके गोपुरकी ऊँचाई प्रासादसे एक चौथाई कम हो । यदि देवताका विग्रह पाँच हाथका हो तो उसके लिये एक हाथकी पीठिका होनी चाहिये ॥ २०-२२ ॥

विष्णु-मन्दिरके सामने एक गढ़मण्डप तथा भौमादि धामका निर्माण करावे । भगवान्के श्रीविग्रहके सब ओर

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रासाद आदिके लक्षणका वर्णन' नामक व्याख्यासदाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥



तैतालीसवाँ अध्याय

मन्दिरके देवताकी स्थापना और भूतशान्ति आदिका कथन

हयश्रीवज्जी कहते हैं—ग्रहन् । अब मैं मन्दिरमें स्थापित करनेयोग्य देवताओंका वर्णन करूँगा, आप सुनें । पञ्चायतन मन्दिरमें जो बीचका प्रधान मन्दिर हो, उसमें भगवान् वासुदेवको स्थापित करे । शेष चार मन्दिरोंमें से अग्निकोणवाले मन्दिरमें भगवान् वामनकी, नैऋत्यकोणमें नरसिंहकी, वायव्यकोणमें हयश्रीवज्जी और ईशानकोणमें वयस्त्रभगवानकी स्थापना करे । अथवा यदि बीचमें भगवान्, नारायणकी स्थापना करे तो अग्निकोणमें दुर्गाकी, नैऋत्यकोणमें सूर्यकी, वायव्यकोणमें ब्रह्माकी और ईशानकोणमें लिङ्गमय शिवकी स्थापना करे । अथवा ईशानमें छद्रस्तपकी स्थापना करे । अथवा एक-एक आठ दिशाओंमें और एक बीचमें—इस प्रकार कुल नौ मन्दिर बनवावे । उनमें से बीचमें वासुदेवकी स्थापना करे और पूर्वादि दिशाओंमें परशुराम राम आदि मुख्य-मुख्य नौ अवतारोंकी तथा इन्द्र आदि लोकपालोंकी स्थापना करनी चाहिये । अथवा कुल नौ धारोंमें पाँच मन्दिर मुख्य बनवावे । इनके मध्यमें भगवान् पुरुषोत्तमकी स्थापना करे ॥ १-५ ॥

पूर्व दिशामें लक्ष्मी और कुबेरकी, दक्षिणमें मातृकागण, स्कन्द, गणेश और शिवकी, पश्चिममें सूर्य आदि नौ ग्रहोंकी तथा उत्तरमें मत्स्य आदि दस अवतारोंकी स्थापना करे । इसी प्रकार अग्निकोणमें चण्डीकी, नैऋत्यकोणमें अग्निकाकी, वायव्यकोणमें सरस्वतीकी और ईशानकोणमें

आठों दिशाओंके ऊपरी भागमें भगवान्तिमासे द्युमिनी वसी अवतारोंकी मूर्तियाँ बनावे । पूर्व दिशामें बरह, दक्षिणमें नरसिंह, पश्चिममें श्रीधर, उत्तरमें हयश्रीव, अग्निकोणमें परशुराम, नैऋत्यकोणमें श्रीराम, वायव्यकोणमें वामन तथा ईशानकोणमें वासुदेवकी मूर्तिका निर्माण करे । प्रासाद-रचना आठ, बारह आदि समसंख्यावाले स्तम्भोद्घात्य करनी चाहिये । द्वारके अष्टम आदि अंशको छोड़कर जो वेष्ठ होता है, वह दोषकारक नहीं होता है ॥ २३-२६ ॥

पूर्व आदि दिशाओंमें कैश्च आदि द्वादश विग्रहोंको स्थापित करे तथा इनसे अतिरिक्त यहाँमें साक्षात् ये श्रीहरि ही विराजमान होते हैं । भगवान्की प्रतिमा मिठ्ठी, लकड़ी, लोहा, रत्न, पत्थर, चन्दन और फूल—इन सात वस्तुओंकी बनी हुई सात प्रकारकी मानी जाती है । फूल, मिठ्ठी तथा चन्दनकी बनी हुई प्रतिमाएँ बननेके बाद दुरंत पूजी जाती हैं । [अधिक कालके लिये नहीं होती ।] पूजन करनेपर ये समस्त कामनाओंको पूर्ण करती हैं । अब मैं शैलमयी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ, जहाँ प्रतिमा बनानेमें शिला (पत्थर) का उपयोग किया जाता है ॥ ९-११ ॥

उत्तम तो यह है कि किसी पर्वतका पत्थर लाकर प्रतिमा बनवावे । पर्वतोंके अभावमें जमीनसे निकले हुए पत्थरका उपयोग करे । ब्राह्मण आदि चारों वर्णवालोंके लिये क्रमशः सफेद, लाल, पीला और काल पत्थर उत्तम माना गया है । यदि ब्राह्मण आदि वर्णवालोंको उनके वर्णके अनुकूल उत्तम शिला न मिले तो उसमें आवश्यक वर्णकी कमीकी पूर्ति करनेके लिये नरसिंह-मन्त्रसे इवन करना चाहिये । यदि शिलामें सफेद रेखा हो तो वह बहुत

ही उत्तम है, अगर काली रेता हो तो वह नरसिंह-मन्त्र से इच्छन करनेपर उत्तम होती है। यदि शिलासे काँटेके बने हुए घटेकी-सी आवाज निकलती हो और काटनेपर उससे चिनगारियाँ निकलती हों तो वह 'पुंसिङ्ग' है, ऐसा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त चिह्न उसमें कम दिखाती हैं, तो उसे 'भीलिङ्ग' समझना चाहिये और पुंसिङ्ग-जीलिङ्ग-बोधक कोई रूप न होनेपर उसे 'नर्पुत्रक' मानना चाहिये। तथा जिस शिलामें कोई मण्डलका चिह्न दिखाती है, उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिये ॥ १२-१५ ॥

प्रतिमा बनानेके लिये बनमें जाकर बनयाम आरम्भ करना चाहिये। वहाँ कुप्त खोदकर और उसे लीपकर मष्ठपमें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये तथा उन्हें बलि समर्पणकर कर्ममें उपयोगी टंक आदि शब्दोंकी भी पूजा करनी चाहिये। फिर इच्छन करनेके पश्चात् अगहनीके चावलके जलसे अख-मन्त्र (अखाय फट्) के उच्चारण-पूर्वक उस शिलाको सौंचना चाहिये। नरसिंह-मन्त्रसे उसकी रक्षा करके मूल-मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) से पूजन करे। फिर पूर्णाहुति-होम करके आचार्य भूतोंके लिये बलि समर्पित करें। वहाँ जो भी अव्यक्तरूपसे रहनेवाले जन्म, यातुधान (रक्षस), गुहाक और तिद्र आदि हों अथवा और भी जो हों, उन सबका पूजन करके इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १६-१९ ॥

'भगवान्' के चूबकी आशासे प्रतिमाके लिये हमल्योंकी यह यात्रा हुई है। भगवान् विष्णुके लिये जो कार्य हो, वह आपलोगोंका भी कार्य है। अतः हमारे दिये हुए इस बलिदानसे आपलेग सर्वथा तुत हों और शीघ्र ही यह स्थान छोड़कर कुशलगूर्वक अन्यत्र चले जायें ॥ २०-२१ ॥

इस प्रकार आदि आर्मेय महापुण्यमें 'मन्दिरके देवताकी स्थापना, मूर्ति-शान्ति, शिला-उक्षण और प्रतिमा-निर्माण आदिका निरूपण' नामक तैतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण

भगवान् हयग्रीष बोले—बहान् । अब मैं दुस्हे वासुदेव आदिकी प्रतिमाके लक्षण बताता हूँ, सुनो। मन्दिरके उत्तर भागमें शिलाको पूर्णामिश्र अथवा उत्तरामिश्र रस-कर उसकी पूजा करे और उसे बलि अर्पित करके कारीगर

इस प्रकार सावधान करनेपर वे जीव वहे प्रसन्न होते हैं और सुखगूर्वक उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र जाते हैं। इसके बाद कारीगरोंके साथ यहका चह मक्षण करके रातमें सोते समय स्वप्न मन्त्रका जप करे। जो समझ प्राणियोंके निवासस्थान हैं, व्यापक हैं, सबको उत्पन्न करने-वाले हैं, स्थय विद्यरूप हैं और सम्पूर्ण विद्य जिनका स्वरूप है, उन स्वप्नके अधिपति भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। देव ! देवेशर ! मैं आपके निकट सो रहा हूँ। मेरे मनमें जिन कार्योंका संकल्प है, उन सबके सम्बन्धमें पुकारे कुछ कहिये ॥ २२-२४ ॥

'कृ अ हं फट् विष्णवे स्वाहा ।' इस प्रकार मन्त्र-जप करके सो जानेपर यदि अच्छा स्वप्न हो तो सब शुभ होता है और यदि बुरा स्वप्न हुआ तो नरसिंह-मन्त्रसे इच्छन करनेपर शुभ होता है। सबरे उठकर अख-मन्त्रसे शिलापर अर्थ्य दे। फिर अखकी भी पूजा करे। कुदाल (फालडे), टंक और शब्द आदिके मुखपर मधु और धी लगाकर पूजन करना चाहिये। अपने-आपका विष्णुरूपसे चिन्तन करे। कारीगरको विश्वकर्मा माने और शब्दके भी विष्णुरूप होनेको ही भावना करे। फिर शब्द कारीगरको दे और उसका मुख-मृष्ट आदि उसे दिखा दे ॥ २५-२७ ॥

कारीगर अपनी इन्द्रियोंको बश्यमें रखें और हाथमें टंक लेकर उससे उस शिलाको चौकोर बनावे। फिर पिण्डी बनानेके लिये उसे कुछ छोटी करे। इसके बाद शिलाको बश्यमें लेपेटकर रथपर रखें और शिवशब्दमें अकर पुनः उस शिलाका पूजन करे। इसके बाद कारीगर प्रतिमा बनावे ॥ २८-२९ ॥

शिलाके बीचमें सूत लगाकर उसका नौ भाग करे। नवें भागोंको भी १२ भागोंमें विभाजित करनेपर एक-एक भाग अपने अकुलसे एक अकुलका होता है। दो अकुलका एक गोलक होता है, जिसे 'कालनेत्र' भी कहते हैं ॥ १—३ ॥

उक्त नौ भागोंमें से एक भागके तीन हिस्से करके उसमें पार्थिण-भागको कथना करे । एक भाग मुट्ठेके लिये तथा एक भाग कण्ठके लिये निश्चित रखते । मुकुटको एक विचा रखते । मुँहका भाग भी एक विचेका ही होना चाहिये । इसी प्रकार एक विचेका कण्ठ और एक ही विचेका हृदय भी रहे । नाभि और जिज्ञके बीचमें एक विचेका अन्तर होना चाहिये । दोनों ऊरु दो विचेके हैं । बंधा भी दो विचेकी हो । अब सूतोंका माप मुनो—॥ ४—६ ॥

दो सूत पैरमें और दो सूत जड़ामें लगावे । मुट्ठोंमें दो सूत तथा दोनों कठओंमें भी दो सूतका उपयोग करे । जिज्ञमें दूसरे दो सूत तथा कटिमें भी कमरबन्ध (करभन) बनानेके लिये दूसरे दो सूतोंका योग करे । नाभिमें भी दो सूत काममें लगे । इसी प्रकार हृदय और कण्ठमें दो सूतका उपयोग करे । छलाटमें दूसरे और मस्तकमें दूसरे दो सूतोंका उपयोग करे । त्रिदिवान् कारीगरोंको मुकुटके कमर पर एक सूत करना चाहिये । ब्रह्मन् । कमर सात ही सूत देने चाहिये । तीन कथाओंके अन्तरसे ही छः सूत दिलावे । फिर मन्त्र-सूतको त्याग दे और केवल सूतोंको ही निवेदित करे ॥ ७—११ ॥

छलाट, नासिक और मुखका विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये । गङ्गा और कानका भी चार-नार अङ्गुल विस्तार करना चाहिये । दोनों ओरकी हतु (ठोढ़ी) दो-दो अङ्गुल चौड़ी हो और चिबुक (ठोढ़ाके बीचका भाग) भी दो अङ्गुलका हो । पूरा विस्तार छः अङ्गुलका होना चाहिये । इसी प्रकार छलाट भी विस्तारमें आठ अङ्गुलका बताया गया है । दोनों ओरके शङ्ख दो-दो अङ्गुलके बनाये जायें और उनपर बाल भी हों । कान और नेत्रके बीचमें चार अङ्गुलका अन्तर रहना चाहिये । दो-दो अङ्गुलके कान परं पृथुक बनावे । भौंहोंके समान सूतके मापका कानका ल्होत कहा गया है । विष्णा हुआ कान छः अङ्गुलका हो और विना विष्णा हुआ चार अङ्गुलका । अथवा विष्णा हो या विना विष्णा, सब चिबुकके समान छः अङ्गुलका होना चाहिये ॥ १२—१६ ॥

गन्धपात्र, आर्त तथा शङ्खुली (कानका पूरा बेरा) भी बनावे । एक अङ्गुलमें नीचेका ओठ और आधे अङ्गुलका ऊपरका ओठ बनावे । नेत्रका विस्तार आधा अङ्गुल हो और मुखका विस्तार चार अङ्गुल हो । मुखकी चौड़ाई छेद

अङ्गुलकी होनी चाहिये । नाककी चौड़ाई एक अङ्गुल हो और चौड़ाईसे आगे केवल छंबाई दो अङ्गुलकी रहे । करबीर-कुसुमके समान उसकी आकृति होनी चाहिये । दोनों नेत्रोंके बीच चार अङ्गुलका अन्तर हो । दो अङ्गुल तो आँखेके बीचमें आ जाता है, सिर्फ दो अङ्गुल अन्तर रह जाता है । पूरे नेत्रका तीन भाग करके एक भागके बराबर तारा (काली पुतली) बनावे और पाँच भाग करके, एक भागके बराबर हृदयारा (छोटी पुतली) बनावे । नेत्रका विस्तार दो अङ्गुलका हो और द्वेषी आधे अङ्गुलकी । उतना ही प्रमाण भौंहोंका रेखाका हो । दोनों ओरकी भौंहें बराबर रहनी चाहिये । भौंहोंका मध्य दो अङ्गुलका और विस्तार चार अङ्गुलका होना चाहिये ॥ १७—२२ ॥

भगवान् केशव आदिकी भूतियोंके मस्तकका पूरा बेरा छम्बीय अङ्गुलका होवे अथवा बत्तीय अङ्गुलका । नीचे ग्रीवा (गला) पाँच नेत्र (अर्थात् दस अङ्गुल) की हो और इसके तीन गुना अर्थात् तीस अङ्गुल उसका बेलन (चारों ओरका बेरा) हो । नीचेसे छमरकी ओर ग्रीवाका विस्तार आठ अङ्गुलका हो । ग्रीवा और छातीके बीचका अन्तर ग्रीवाके तीन गुने विस्तारावाला होना चाहिये । दोनों ओरके कंचे आठ-आठ अङ्गुलके और सुन्दर अंस तीन-तीन अङ्गुलके हों । सात नेत्र (यानी चौदह अङ्गुल) की दोनों बाईं और सोलह अङ्गुलकी दोनों प्रवाहुरूँ हों (बाड़ और प्रवाहु मिलकर पूरी बाँह समझी जाती है) । बाडुओंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी हो । प्रवाहुओंकी भी इनके समान ही होनी चाहिये । बाडुदण्डका चारों ओरका बेरा कुछ ऊपरसे छेद नौ कला अथवा सज्जह अङ्गुल समझना चाहिये । आधेपर बीचमें कूर्पर (कोहनी) है । कूर्परका बेरा सोलह अङ्गुलका होता है । ब्रह्माजी ! प्रवाहुके मध्यमें उसका विस्तार सोलह अङ्गुलका हो । हाथके अप्रभागका विस्तार चारह अङ्गुल हो और उसके बीच करतलका विस्तार छः अङ्गुल कहा गया है । हाथकी चौड़ाई सात अङ्गुलकी करे । हाथके मध्यमा अङ्गुलीकी छंबाई पाँच अङ्गुलकी हो और तर्बनी तथा अनामिकाकी छंबाई उससे आधा अङ्गुल कम अर्थात् ४ ॥ अङ्गुलकी करे । कनिष्ठिका और अँगूठेकी छंबाई चार अङ्गुलकी करे । अँगूठेमें दो पोह बनावे और बाली तभी अँगुलियोंमें तीन-तीन पोह रखते । तभी अँगुलियोंके एक-एक पोहके आधे भागके बराबर प्रत्येक अँगुलीके नक्की नाप समझनी चाहिये । छातीकी विस्तारी माप हो, पेढ़की

उतनी ही रखे। एक अङ्गुलके छेदवाली नामि हो। नामिते लिङ्गके बीचका अन्तर एक विचा होना चाहिये ॥ २३—२३ ॥

नामि—मध्याङ्ग (उदर)का बेरा बीचालीस अङ्गुलका हो। दोनों स्तनोंके बीचका अन्तर एक विचा होना चाहिये। स्तनोंका अग्रभाग—मुङ्गुक यवके बराबर बनावे। दोनों स्तनोंका बेरा दो पदोंके बराबर हो। छातीका बेरा चौडठ अङ्गुलका बनावे। उसके नीचे और चारों ओरका बेरा 'वेष्टन' कहा गया है। इसी प्रकार कमरका बेरा चौबन अङ्गुलका होना चाहिये। ऊर्ध्वोंके मूलका विस्तार बारह-बारह अङ्गुलका हो। इसके ऊपर मध्यभागका विस्तार अधिक रखना चाहिये। मध्यभागसे नीचेके अङ्गोंका विस्तार क्रमशः कम होना चाहिये। शुटनोंका विस्तार आठ अङ्गुलका करे और उसके नीचे जंघाका बेरा तीन गुना, अर्थात् चौबीस अङ्गुलका हो; जंघाके मध्यका विस्तार सात अङ्गुलका होना चाहिये और उसका बेरा तीन गुना, अर्थात् इक्कीस अङ्गुलका हो। जंघाके अग्रभागका विस्तार पाँच अङ्गुल और उसका बेरा तीन गुना—पंद्रह अङ्गुलका हो। चरण एक-एक विचे लंबे होने चाहिये। विस्तारसे उठे हुए पैर अर्थात् पैरोंकी ऊँचाई चार अङ्गुलकी हो। गुल्फ (शुद्धी) से पहलेका हिस्सा भी चार अङ्गुलका ही हो ॥ ३४—४० ॥

दोनों पैरोंकी चौड़ाई छः अङ्गुलकी, गुण्डाभाग तीन अङ्गुलका और उसका पजा पाँच अङ्गुलका होना चाहिये। पैरोंमें प्रदेशिनी, अर्थात् अँगूठा चौड़ा होना उचित है। शेष अङ्गुलियोंके मध्यभागका विस्तार क्रमशः पहली अङ्गुलीके आठवें-आठवें भागके बराबर कम होना चाहिये। अँगूठेकी

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वासुदेव आदिकी प्रतिमाओंके लक्षणका वर्णन' नामक चौबीसर्दी अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

पिण्डिका आदिके लक्षण

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—त्रिशून् । अब मैं पिण्डिकाका लक्षण बता रहा हूँ। पिण्डिका लंबाईमें प्रतिमाके समान ही होती है, परंतु उसकी ऊँचाई प्रतिमासे आधी होती है। पिण्डिकाको चौसठ कुटी (पदों या कोष्ठों) से युक्त करके नीचेकी दो पक्कियां कोड़ दे और उसके ऊपरका जो कोड़ है, उसे चारों ओर दोनों पाखोंमें भीतरकी ओरसे

मिटा दे। इसी तरह ऊपरकी दो पक्कियोंको त्वागकर उसके नीचेका जो एक कोड़ (या एक पक्कि) है, उसे भीतरकी ओरसे बल्नपूर्वक मिटा दे। दोनों पाखोंमें समान रूपसे यह किया करे ॥ १—३ ॥

दोनों पाखोंके मध्यगत जो दो चौक हैं, उनका भी मार्बन कर दे। तदनन्तर उसे चार भागोंमें बाँटकर विद्वान्

पुरुष उपरकी हो पक्षियोंको मेलला माने । मेललभागकी जो मात्रा है, उसके आधे मानके अनुसार उसमें खात् खुदावे । फिर दोनों पाश्वभागोंमें समानरूपसे एक-एक भागको त्यागकर बाहरकी ओरका एक पद नाली बनानेके लिये दे दे । विदान् पुरुष उसमें नाली बनवाये । फिर तीन भागमें जो एक भाग है, उसके आगे जल निकलनेका मार्ग रहे ॥ ४-६ ॥

नाना प्रकारके मेदसे यह शुभ पिण्डिका 'भद्रा' कही गयी है । लक्ष्मी देवीकी प्रतिमा ताल (हथेली) के मापसे आठ तालकी बनायी जानी चाहिये । अन्य देवियोंकी प्रतिमा भी पेसी ही हो । दोनों भौंहोंको नासिकाकी अपेक्षा एक-एक जौ अधिक बनाये और नासिकाको उनकी अपेक्षा एक जौ कम । मुखकी गोलाई नेत्रगोलकसे बड़ी होनी चाहिये । वह चैंचा और टेढ़ा-मेदा न हो । आँखें बड़ी-बड़ी बनायी चाहिये । उनका माप सवा तीन जौके बराबर हो । नेत्रोंकी चौड़ाई उनकी लंबाईकी अपेक्षा आधी करे । मुखके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतककी जितनी लंबाई है, उसके बराबरके स्तरसे नापकर कर्णपाश (कानक पूरा धेरा) बनावे । उसकी लंबाई उक्त स्तरसे

कुछ अधिक ही रखें । दोनों कंधोंको कुछ छुका छुआ और एक कलासे रहित बनावे । ग्रीवाकी लंबाई ढेढ़ कला रखनी चाहिये । वह उतनी ही चौड़ाईसे भी मुशोभित हो । दोनों करुओंका विस्तार ग्रीवाकी अपेक्षा एक नेत्र कम होगा । जानु (बुटने), पिण्डली, पैरू, पीठ, नितम्ब तथा कटिभाग—इन सबकी यथादेश्य कल्पना करे ॥ ७-११३ ॥

हाथकी अङ्गुलियाँ बड़ी हों । वे परस्पर अवहद न हों । बड़ी अङ्गुलीकी अपेक्षा छोटी अङ्गुलियाँ सातवें अंशसे रहित हों । जंघा, ऊर और कटि—इनकी लंबाई कमशः एक-एक नेत्र कम हो । शरीरके मध्यभागके आस-पासका अङ्ग गोल हो । दोनों कुच बने (परस्पर स्टे हुए) और पीन (उभे हुए) हों । सनोंका माप हथेलीके बराबर हो । कटि उनकी अपेक्षा ढेढ़ कला अधिक बड़ी हो । शेष चिह्न पूर्ववत् रहें । लक्ष्मीजीके दाहिने हाथमें कमल और बायें हाथमें विल्वफल हो । † उनके पाश्वभागमें हाथमें चैंचर लिये दो सुन्दरी, छियाँ खड़ी हों । सामने बड़ी नाकबाले गरुड़की स्थापना करे । अब मैं चकाङ्कित (शालग्राम) मूर्ति आदिका बर्णन करता हूँ ॥ १२-१५ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुण्यमें 'पिण्डिका आदिके लक्षणका वर्णन' नामक घैतलीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

शालग्राम-मूर्तियोंके लक्षण

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ग्रहन् ! अब मैं शाल-प्रामगत भगवन्मूर्तियोंका वर्णन आरम्भ करता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं । जिस शालग्राम-शिलाके द्वारमें दो चक्रके चिह्न हों और जिसका वर्ण इवेत हो, उसकी 'वासुदेव' संशा है । जिस उत्तम शिलाका रंग लाल हो और

जिसमें दो चक्रके चिह्न संलग्न हों, उसे भगवान् 'संकषण' का श्रीविग्रह जानना चाहिये । जिसमें चक्रका सूक्ष्म चिह्न हो, अनेक छिद्र हों, नील वर्ण हो और आकृति बड़ी दिखायी देती हो, वह 'प्रशुभ्न' की मूर्ति है । जहाँ कमलका चिह्न हो, जिसकी आकृति गोल और रंग पीला हो तथा

* नेत्रकी जो लंबाई और चौड़ाई है, उसने मापको 'एक नेत्र' कहते हैं ।

† मस्तपुराणमें दाहिने हाथमें शीफल और बायें हाथमें कमलका उल्लेख है—

'पश्च हस्ते प्रदत्तव्यं शीफलं दक्षिणे करे ।' (२६१ । ४१)

‡ मस्तपुराणमें उनेक चामरकरियों किंवित्का वर्णन है—'पाश्वे तस्माः रियः कार्णश्वामस्त्वप्रपाणयः ।' (२६१ । ४५)

१. वाच्यप्रस्तवकोषमें संक्षिप्त ग्रहपुराण (४५ में वाच्याय) के निम्नाङ्कित वचनसे 'प्रशुभ्न-शिलाका पीतवर्ण' सूचित होता है । वसा—वाच्य प्रशुभ्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः ।'

२. उक्त अवके अनुसार ही अविकल्पक नीकलां सूचित होता है । यथा—अनिश्चयस्तु वरुणो नीको बारि ग्रिहेष्य ।

जिसमें दो-सीन रेखाएँ शोभा पा रही हैं, वह 'अनिष्टद' का भी अन्न है। जिसकी कान्ति काली, नाभि उन्नत और जिसमें बड़े-बड़े छिप हैं, उसे 'भारायण' का स्थलप समझना चाहिये। जिसमें कमल और चक्रका चिह्न हो, पृष्ठभागमें छिप हो और जो बिन्दुसे युक्त हो, वह शालग्राम 'परमेष्ठी' नामसे प्रसिद्ध है। जिसमें चक्रका स्थूल चिह्न हो, जिसकी कान्ति इथाम हो और मध्यमें गदा-जैसी रेखा हो, उस शालग्रामकी 'विष्णु' संक्षा है॥ १-४ ॥

नृसिंह-विग्रहमें चक्रका स्थूल चिह्न होता है। उसकी कान्ति कपिल वर्णकी होती है और उसमें पाँच बिन्दु सुशोभित होते हैं।^३

वाराह-विग्रहमें शक्ति नामक अस्त्रका चिह्न होता है। उसमें दो चक्र होते हैं, जो परस्पर विषम (समानतासे रहित) हैं। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान नीली होती है। वह तीन स्थूल रेखाओंसे चिह्नित एवं शुभ होता है।^४ जिसका पृष्ठभाग ऊँचा हो, जो गोलाकार आवर्तनचिह्नसे युक्त एवं इथाम हो, उस शालग्रामकी 'कूर्म' (कच्छप) संक्षा है॥ ५-६ ॥

जो अंकुरवार्णी-सी रेखासे सुशोभित, नीलवर्ण एवं बिन्दु-युक्त हो, उस शालग्राम-शिलाको 'इयशीव' कहते हैं। जिसमें एक चक्र और कमलका चिह्न हो, जो मणिके समान प्रकाशमान तथा पुच्छाकार रेखासे शोभित हो, उस शालग्रामको 'वैकुण्ठ' रामझना चाहिये।^५ जिसकी आङ्कुरित बड़ी हो, जिसमें तीन बिन्दु शोभा पाते हैं, जो काँचके समान

श्वेत तथा भय-पूरा हो, वह शालग्राम-शिला भस्यावतारधरी भगवान्की मूर्ति भानी जाती है।^६ जिसमें बनमालाका चिह्न और पाँच रेखाएँ हैं, उस गोलाकार शालग्राम-शिलाको 'श्रीधर' कहते हैं॥ ७-८ ॥

गोलाकार, अस्त्रल छोटी, नीली एवं बिन्दुयुक्त शालग्राम-शिलाकी 'व्यामन' संक्षा है।^७ जिसकी कान्ति इथाम हो, दक्षिण भागमें हारकी रेखा और बायें भागमें बिन्दुका चिह्न हो, उस शालग्राम-शिलाको 'त्रिविक्रम' कहते हैं॥ ९ ॥

जिसमें सर्पके शरीरका चिह्न हो, अनेक प्रकारकी आभाएँ दीखती हैं तथा जो अनेक मूर्तियोंसे मण्डित हो, वह शालग्राम-शिला 'अनन्त' (शेषनाग) कही गयी है।^{१०} जो स्थूल हो, जिसके मध्यभागमें चक्रका चिह्न हो तथा अभोभागमें सूक्ष्म बिन्दु शोभा पा रहा हो, उस शालग्रामकी 'द्वामोदर' संक्षा है।^{११} एक चक्रवाले शालग्रामको सुदर्शन कहते हैं, दो चक्र होनेसे उसकी 'लक्ष्मीनारायण' संक्षा होती है। जिसमें तीन चक्र हों, वह शिला भगवान् 'अन्युत' अथवा 'त्रिविक्रम' है। चार चक्रोंसे युक्त शालग्रामको 'ज्ञानदान', पाँच चक्रवालेको 'वासुदेव', छः चक्रवालेको 'प्रद्युम्न' तथा सात चक्रवालेको 'संकरण' कहते हैं। आठ चक्रवाले शालग्रामकी 'पुरुषोत्तम' संक्षा है। नौ चक्रवालेको 'नवव्यूह' कहते हैं। दस चक्रोंसे युक्त शिलाकी 'दशावतार' संक्षा है। ग्यारह चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे 'अनिष्ट', द्वादश चक्रोंसे चिह्नित होनेपर 'द्वादशात्मा' तथा इससे अधिक चक्रोंसे युक्त होनेपर उसे 'अनन्त' कहते हैं॥ १०-१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें शालग्रामगत मूर्तियोंके लक्षणका वर्णन नामक छिगालीसबाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६ ॥

३. पृष्ठचक्रो नृसिंहोऽय कपिलोऽव्यात्विविन्दुकः। अथवा पञ्चविन्दुसत्पूजनं त्रिघावरिणाम्॥ (इति गण्डपुराणोऽपि)
४. वराहः शूभ्रलिङ्गोऽव्याद् विषभस्त्रिचक्रकः। नीलस्त्रिरेखः स्थूलः। (१० पु०)
५. अथ कूर्ममूर्तिः स विन्दुसाम्। कूर्मः स बतुंकर्तः पातु चोन्नताष्टकः। (१० पु०)
६. इयशीवोऽकुशाकारः पञ्चरेखः सकौत्तुमः। वैकुण्ठो मणिरसाम एकचक्रानुज्ञोऽस्तितः॥ (१० पु०)
७. महसो दीर्घानुजाकारो हाररेखश्च पातु वः। (१० पु०)
८. श्रीधरः पञ्चरेखोऽव्याद् बनमाली गदानितः। (१० पु०) (वानस्पत्यकोषसे संकलित)
९. वामचक्रो वारुणो हस्तः वामचक्रः शुरेशः। (१० पु०)
१०. वामचक्रो हाररेखः इयमो वोऽव्यात् त्रिविक्रमः। (१० पु०)
११. नानाकण्ठोऽनेकमूर्तिनार्गभोगी त्वनन्तकः। (१० पु०)
१२. स्थूलो दामोदरो नीलो भव्येचक्रः सनीककः। (१० पु०)

सैतालीसवाँ अध्याय

शालग्राम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन

भगवान् हयग्रीष कहते हैं—ब्रह्म ! अब मैं तुम्हारे सम्मुख पूर्वोक्त चक्राङ्गित शालग्राम-विग्रहोंकी पूजाका वर्णन करता हूँ, जो सिद्धि प्रदान करनेवाली है। श्रीहरिकी पूजा तीन प्रकारकी होती है—काम्या, अकाम्या और उभयात्मिका। भृत्य आदि पाँच विग्रहोंकी पूजा काम्या अथवा उभयात्मिका हो सकती है। पूर्वोक्त चक्राङ्गित से सुशोभित वराह, नृसिंह और वामन—इन तीनोंकी पूजा मुक्तिके लिये करनी चाहिये। अब शालग्राम-पूजनके विषयमें सुनो, जो तीन प्रकारकी होती है। इनमें निष्कला पूजा उत्तम, सकला पूजा कनिष्ठ और मूर्तिपूजाको मध्यम माना गया है। चौकोर मण्डलमें स्थित कमलपर पूजाकी विधि इस प्रकार है—हृदयमें प्रणवका न्यास करते हुए षड्भून्यास करे। फिर करन्यास और व्यापक न्यास करके तीन मुद्राओंका प्रदर्शन करे। तत्प्रश्नात् चक्रके बाष्पभागमें पूर्व दिशाकी ओर गुरुदेवका पूजन करे। पश्चिम दिशामें गणका, बायव्यक्तोणमें धाताका एवं नैश्चृत्यकोणमें विधाताका पूजन करे। दक्षिण और उत्तर दिशामें क्रमशः कर्ता और हत्तीकी पूजा करे। इसी प्रकार ईशानकोणमें विष्वक्षेन और अग्निकोणमें क्षेत्रपालकी पूजा करे। फिर पूर्वांदि

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शालग्राम आदिकी पूजाका वर्णन' विषयक सैतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अङ्गतालीसवाँ अध्याय चतुर्विंशति-मूर्तिस्तोत्र एवं द्वादशाक्षर स्तोत्र

श्रीभगवान् हयग्रीष कहते हैं—ब्रह्म ! औंकार-स्वरूप केदेव अपने हाथोंमें पद्म, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं*। नारायण शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र धारण करते हैं, मैं प्रदक्षिणापूर्वक उनके चरणोंमें

* अस-धारणका यह क्रम दैविते भागके नीचेवाले दाढ़से धारन्म होकर वायें भागके नीचेवाले हाथतक आता है। वायें केशव दायें भागके निच्छले हाथमें पद्म, कपरवाले हाथमें शङ्ख, वायें भागके कपरवाले हाथमें चक्र और नीचेवाले हाथमें गदा धारण करते हैं। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिये। मतान्तरके अनुसार दाहिने हाथके कपरवाले हाथदे भी यह क्रम आरम्भ होता है।

दिशाओंमें ऋग्वेद आदि चारों वैदेंकी पूजा करके आधारशक्ति, अनन्त, पृथिवी, योगपीठ, पश्च तथा सूर्य, चन्द्र और ब्रह्मात्मक अग्नि—इन तीनोंके मण्डलोंका वज्रन करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर मन्त्रसे आसनपर शिलाकी स्थापना करके पूजन करे। फिर भूल मन्त्रके विभाग करके एवं सम्पूर्ण मन्त्रसे क्रमपूर्वक पूजन करे। फिर प्रणवसे पूजन करनेके पश्चात् तीन मुद्राओंका प्रदर्शन करे॥ १—१॥

इस प्रकार यह शालग्रामकी प्रथम पूजा निष्कला कही जाती है। पूर्ववत् षोडशदल्कमलसे युक्त मण्डलको अङ्गित करे। उसमें शङ्ख, चक्र, गदा और शङ्ख—इन आयुर्वेदोंकी तथा गुरु आदिकी पहलेकी भौति पूजा करे। पूर्व और उत्तर दिशाओंमें क्रमशः धनुष और वाणकी पूजा करे। प्रणवमन्त्रसे आसन समर्पण करे और द्वादशाक्षर मन्त्रसे शिलाका न्यास करना चाहिये। अब तीसरे प्रकारकी कनिष्ठ पूजाका वर्णन करता हूँ, सुनो। अष्टदलकमल अङ्गित करके उसपर पहलेके समान गुरु आदिकी पूजा करे। फिर अष्टाक्षर मन्त्रसे आसन देकर उसीसे शिलाका न्यास करे॥ १०—१३॥

नतमस्तक होता हूँ। माधव (गदा), चक्र, शङ्ख और पश्च धारण करनेवाले हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ। गोविन्द अपने हाथोंमें क्रमशः चक्र, गदा, पद्म और शङ्ख धारण करनेवाले तथा बलव्याली हैं। श्रीविष्णु गदा, पद्म, शङ्ख एवं चक्र धारण करते हैं, वे भोग देनेवाले हैं। मधुसूदन शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा धारण करते हैं। मैं उनके सामने भक्तिभावसे नतमस्तक होता हूँ। विशिकम क्रमशः पश्च, गदा, चक्र एवं शङ्ख धारण करते हैं। भगवान् वामनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म शोभा पाते हैं, वे सदा मेरी रक्षा करें॥ १—४॥

श्रीधर कमल, चक्र, शङ्ख भनुष एवं शङ्ख धारण करते हैं । वे सबको सदृशि प्रदान करनेवाले हैं । हसीकेश गदा, चक्र, पद्म एवं शङ्ख धारण करते हैं, वे हम सबकी रक्षा करें । बरदायक भगवान् पद्मनाभ शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा धारण करते हैं । दामोदरके हाथोंमें पद्म, शङ्ख, गदा और चक्र शोभा पाते हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । गदा, शङ्ख, चक्र और पद्म धारण करनेवाले वासुदेवने ही सम्पूर्ण जगत्का विस्तार किया है । गदा, शङ्ख, पद्म और चक्र धारण करनेवाले संकरण आपलोगोंकी रक्षा करें ॥५-७॥

वाद (युद्ध) कुशल भगवान् प्रशुभ चक्र, शङ्ख, गदा और पद्म धारण करते हैं । अनिरुद्ध चक्र, गदा, शङ्ख और पद्म धारण करनेवाले हैं, वे हमलोगोंकी रक्षा करें । सुरेश्वर पुरुषोत्तम चक्र, कमल, शङ्ख और गदा धारण करते हैं, भगवान् अधोक्षज पद्म, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले हैं । वे आपलोगोंकी रक्षा करें । नृसिंहदेव

इस प्रकार आदि आनंद महापुराणमें 'श्रीहरिकी चौबीस मूर्तियोंके स्तोत्रका वर्णन' नामक अङ्गतात्त्वीसर्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

* तात्पर्य यह है कि वासुदेवसे केशव, नारायण और माधवकी, संकरणसे गोविन्द, विष्णु और मधुसूदनकी, प्रशुभसे विविक्षम, बामन और श्रीधरकी तथा अनिरुद्धसे हसीकेश, पद्मनाभ एवं दामोदरकी अभिव्यक्ति हुई ।

† इस अध्यायमें वारह श्लोक स्तुतिके हैं । प्रत्येक श्लोकमें भगवान्की दो-दो मूर्तियोंका स्वरूप हुआ तथा इन वारहों कोकोके आविका एक-एक अधूर जोड़नेसे 'अंग नमो भगवते वासुदेवाय' वह दादशास्त्रर मन्त्र बनता है । इसीलिये इसे दादशास्त्र-स्तोत्र एवं चौबीस मूर्तियोंका स्तोत्र कहते हैं ।

श्रीभगवान्तुत्तात्र—

३५४:	केशवः	पद्मशङ्खचक्रगदाधारः । नारायणः	शङ्खपद्मगदाचक्री	प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥
ननो गदी	माधवोऽरिशङ्खभी	नमामि तम् । चक्रक्षीमोदकोपशङ्खी	गोविन्द	अर्जितः ॥ २ ॥
मोक्षदः	श्रीगदी पशी शङ्खी	विष्णुक्ष चक्रशङ्ख । शङ्खचक्राच्छादिनं		प्रशुभस्तुतानमे ॥ ३ ॥
भक्तसा	विविक्षमः	पश्यगदी चक्री च शङ्ख्यपि । शङ्खचक्रगदापशी	बामनः	पातु मा सदा ॥ ४ ॥
गतिदः	श्रीधरः	पशी नक्षशङ्खी च शङ्ख्यपि । हसीकेशो गदी चक्री पशी शङ्खी च पातु नः ॥ ५ ॥		
वरदः	पद्मनाभस्तु	शङ्खाज्ञारिगदाधरः । दामोदरः	पद्मशङ्खगदाचक्री	नमामि तम् ॥ ६ ॥
तेने	गदी	वासुदेवोऽज्ञशुभजगत् । संकरणो	गदी शङ्खी पशी चक्री च पातु वः ॥ ७ ॥	
बादी	चक्री	शङ्खगदी प्रशुभः । पश्यप्रशुभः	बान्स्तुतात्त्वाक्षरदी	पातु नः ॥ ८ ॥
सुरेशोऽर्जुनशङ्खाक्ष्यः	श्रीगदी	पुरुषोत्तमः । अधोक्षजः	शङ्खगदी शङ्खी पशी च पातु वः ॥ ९ ॥	
देवोः	नृतिहस्तकाच्छादिनी	शङ्खी नमामि तम् । अच्युतः	पश्यगदी शङ्खचक्री च पातु वः ॥ १० ॥	
वालकृषी	शङ्खगदी	उपेन्द्रशङ्खप्रस्त्वपि । जनादेनः	पश्यचक्री शङ्खभारी	गदाधरः ॥ ११ ॥
वहः	शङ्खी पश्यचक्री	हरिः कौमोदकीधरः । हर्षः	शङ्खी गदी पशी चक्री चे शुक्लसुक्लिः	॥ १२ ॥
आदिमूर्तिर्वासुदेवशङ्खसंकरणोऽमवद			संकरणात्	प्रशुभः प्रशुभादनिरुदकः ॥ १३ ॥
दादशास्त्रकं	स्तोत्रं	वतुविशालि-मूर्तिमद् । वः	पठेच्छुभुग्यामाडपि	निर्मलः सर्वामप्यत् ॥ १५ ॥

उनचासवाँ अध्याय

मत्स्यादि दशावतारोंके लक्षणोंका वर्णन

भगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् । अब मैं तुम्हें मत्स्य आदि दस अवतार-विग्रहोंका लक्षण बताता हूँ । मत्स्य-भगवान्की आकृति मत्स्यके समान और कर्म भगवान्की प्रतिमा कूर्म (कच्छप)के आकारकी होनी चाहिये । पृथ्वीके उद्धारक भगवान् वराहको मनुष्याकार बनाना चाहिये, वे दाहिने हाथमें गदा और चक्र धारण करते हैं । उनके बायें हाथमें शङ्ख और पद्म शोभा पाते हैं । अथवा पद्मके स्थानपर शाम भागमें पद्म देवी सुशोभित होती है । लक्ष्मी उनके बायें कूर्पर (कोहनी) का सहारा लिये रहती है । पृथ्वी तथा अनन्त चरणोंके अनुगत होते हैं । भगवान् वराहकी स्थापनासे राज्यकी प्राप्ति होती है और मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है । नरसिंहका मुँह खुल हुआ है । उन्होंने अपनी बायीं जांघपर दानव हिरण्यकशिपुको दबा रखा है और उस देस्यके वक्षको विदीर्ण करते दिखायी देते हैं । उनके गलेमें माला है और हाथोंमें चक्र एवं गदा प्रकाशित हो रहे हैं ॥ १-४ ॥

बामनका विग्रह छथ एवं दण्डसे सुशोभित होता है अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज बनाया जाय । परशुरामके हाथोंमें धनुष और बाण होना चाहिये । वे खड़ और फ़र्सेसे भी घोभित होते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके श्रीविग्रहकी धनुष, बाण, खड़ और शङ्खसे सुशोभित करना चाहिये । अथवा वे द्विभुज माने गये हैं । बलरामजी गदा एवं इल धारण करनेवाले हैं, अथवा उन्हें भी चतुर्भुज बनाना चाहिये । उनके बायें भागके ऊपरवाले हाथमें इल धारण करावे और नीचेवालेमें सुन्दर शोभाशाली शङ्ख, दायें भागके ऊपरवाले हाथमें सुसल धारण करावे और नीचेवाले हाथमें शोभायमान सुदर्शन चक्र ॥ ५-७ ॥

बुद्धदेवकी प्रतिमाका लक्षण यों है । बुद्ध ऊँचे पश्चमथ आसनपर बैठे हैं । उनके एक हाथमें वरद और दूसरेमें अभस्त्रकी मुड़ा है । वे शान्तस्वरूप हैं । उनके शरीरका रंग गोरा और कान लंबे हैं । वे सुन्दर पीत वस्त्रसे आवृत हैं । कल्पकी भगवान् धनुष और दूषीरसे सुशोभित हैं । म्लेच्छोंके हाथमें रुक्षे हैं । वे ब्राह्मण हैं । अथवा उनकी आकृति इस

प्रकार बनावे—वे धोड़ेकी पीठपर बैठे हैं और अपने चार हाथोंमें लड्ड, शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करते हैं ॥ ८-९ ॥

ब्रह्मन् ! अब मैं तुम्हें बासुदेव आदि नौ मूर्तियोंके लक्षण बताता हूँ । दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें उत्तम चक्र—यह बासुदेवकी मुख्य पहचान है । उनके एक पार्श्वमें ब्रह्मा और दूसरे भागमें महादेवजी सदा विराजमान रहते हैं । बासुदेवकी शेष बातें पूर्ववत् हैं । वे शङ्ख अथवा वरदकी मुड़ा धारण करते हैं । उनका स्वरूप द्विभुज अथवा चतुर्भुज होता है । बलरामके चार मुजाएँ हैं । वे दायें हाथमें इल और मुसल तथा बायें हाथमें गदा और पद्म धारण करते हैं । प्रद्युम्न दायें हाथमें चक्र और शङ्ख तथा बायें हाथमें धनुष-बाण धारण करते हैं । अथवा द्विभुज प्रद्युम्नके एक हाथमें गदा और दूसरेमें धनुष है । वे प्रसन्नतापूर्वक इन अज्ञोंको धारण करते हैं । या उनके एक हाथमें धनुष और दूसरेमें बाण है । अनिष्ट और भगवान् नारायणका विग्रह चतुर्भुज होता है ॥ १०-१३ ॥

ब्रह्मजी हंसपर आरूढ होते हैं । उनके चार मुख और चार मुजाएँ हैं । उदर-मण्डल विशाल है । लंबी दाढ़ी और सिरपर जटा—यही उनकी प्रतिमाका लक्षण है । वे दाहिने हाथोंमें अक्षसूत्र और खुवा एवं बायें हाथोंमें दुष्पिंडिका और आज्यस्थाली धारण करते हैं । उनके बाम भागमें सरस्वती और दक्षिण भागमें सावित्री हैं । विष्णुके आठ मुजाएँ हैं । वे गरुडपर आरूढ हैं । उनके दाहिने हाथोंमें लड्ड, गदा, बाण और वरदकी मुड़ा है । बायें हाथोंमें धनुष, स्लेट, चक्र और शङ्ख हैं । अथवा उनका विग्रह चतुर्भुज भी है । दूसिंहके चार मुजाएँ हैं । उनकी दो मुजाओंमें शङ्ख और चक्र हैं तथा दो मुजाओंसे वे महान् अमुर हिरण्यकशिपुका वक्ष विदीर्ण कर रहे हैं ॥ १४-१७ ॥

वराहके चार मुजाएँ हैं । उन्होंने शेष नागको अपने करतालमें धारण कर रखा है । वे बायें हाथसे पृथ्वीको और बाम भागमें लक्ष्मीको धारण करते हैं । जब लक्ष्मी उनके साथ हो, तब पृथ्वीको उनके चरणोंमें संलग्न बनाना चाहिये । ब्रेलोक्यमोहनमूर्ति श्रीहरि गरुडपर आरूढ हैं । उनके आठ

भुजाएँ हैं। वे दाहिने हाथोंमें चक्र, शङ्ख, मुसल और अंकुश धारण करते हैं। उनके बायें हाथोंमें शङ्ख, शार्करानुष, गदा और पाणी शोभा पाते हैं। वाम भागमें कमलधारिणी कमल और दक्षिण भागमें बीणाधारिणी सरसवतीकी प्रतिमाएँ बनानी चाहिये। भगवान् विश्वलक्षण किंगड़ बीस भुजाओंसे सुशोभित है। वे दाहिने हाथोंमें क्रमशः चक्र, शङ्ख, मुसल, अंकुश, पट्टिश, मुद्रा, पाणी, शक्ति, शूल तथा वाण धारण करते हैं। बायें हाथोंमें शङ्ख, शार्करानुष, गदा, पाणी, तोमर, इल, फरसा, दण्ड, कुरी और उत्तम ढाल लिये रहते हैं। उनके दाहिने भागमें चतुर्मुख ब्रह्मा तथा बायें भागमें ब्रिनेश्वरारी महादेव विराजमान हैं। जलशायी जलमें शयन करते हैं। इनकी मूर्ति शेषशब्दापर सोयी हुई बनानी चाहिये। भगवती लक्ष्मी उनकी एक चरणकी सेवामें लगी है।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें मत्स्यादि देवाचतरोंकी प्रतिमाओंके नम्भणोंका वर्णनः नामक
उनचासद्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण

श्रीभगवान् बोले—चण्डी बीस भुजाओंसे विभूषित होती है। वह अपने दाहिने हाथोंमें शूल, शङ्ख, शक्ति, चक्र, पाणी, खेट, आयुध, अभय, डमरु और शक्ति धारण करती है। बायें हाथोंमें नागपाणी, खेटक, कुठार, अंकुश, पाणी, घण्टा, आयुध, गदा, दर्पण और मुद्रा लिये रहती है। अथवा चण्डीकी प्रतिमा दस भुजाओंसे युक्त होनी चाहिये। उसके चरणोंके नीचे कटे हुए मस्तकवाला महिष हो। उसका मस्तक अलग गिरा हुआ हो। वह हाथोंमें शङ्ख उठाये हो। उसकी ग्रीवासे एक पुरुष प्रकट हुआ हो, जो अत्यन्त कुपित हो। उसके हाथमें शूल हो, वह मुँहसे रक्त उगल रहा हो। उसके गलेकी माला, सिरके बाल और दोनों नेत्र लाल दिखायी देते हों। देवीका बाहन सिंह उसके रक्षका आस्वादन कर रहा हो। उस महिषासुरके मलेष्व खूब कसकर पाणी बाँधा गया हो। देवीका दाहिना पैर सिंहपर और बायाँ पैर नीचे महिषासुरके शरीरपर हो ॥ १-५ ॥

ये चण्डीदेवी ब्रिनेश्वरारिणी हैं तथा शब्दोंसे सम्पूर्ण रहकर भुजाओंका मर्दन करनेवाली हैं। नवकमलात्मक

हैं। विमल आदि शक्तियों उनकी स्फुटि करती हैं। उन शीर्षियों
वाभिकमलपर चतुर्मुख ब्रह्मा विराज रहे हैं ॥ १७-२४ ॥

हरिहर-मूर्ति इस प्रकार बनानी चाहिये—वह दाहिने हाथमें शूल तथा शङ्ख धारण करती है और बायें हाथमें गदा एवं चक्र। शरीरके दाहिने भागमें रुद्रके चिह्न हैं और वाम भागमें केशवके। दाहिने पार्श्वमें गौरी तथा वाम पार्श्वमें लक्ष्मी विराज रही हैं। भगवान् इयग्रीवके चार हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और वेद शोभा पाते हैं। उन्होंने अपना बायाँ पैर शेषनागपर और दाहिना पैद चक्रपक्षी पीठपर इन छोड़ा है। दत्तात्रेयके दो शांहे हैं। उनके बामाङ्गमें लक्ष्मी शोभा पाती है। भगवान्के पार्श्व विष्वक्सेन अपने चार हाथोंमें क्रमशः चक्र, गदा, इल और शङ्ख धारण करते हैं ॥ २५-२८ ॥

पीठपर दुर्गांकी प्रतिमामें उनकी पूजा करनी चाहिये। पहले कमलके नौ दलोंमें तथा मध्यवर्तीनी कर्णिकामें इन्द्र आदि दिक्षपालोंकी तथा नौ तत्त्वात्मिका शक्तियों* के साथ दुर्गांकी पूजा करे ॥ ६३ ॥

दुर्गांजीकी एक प्रतिमा अठारह भुजाओंकी होती है। वह दाहिने भागके हाथोंमें मुण्ड, खेटक, दर्पण, सर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरु, ढाल और पाणी धारण करती है; तथा वाम भागकी भुजाओंमें शक्ति, मुद्रा, शूल, शङ्ख, खड्ग, अंकुश, वाण, चक्र और शलाका लिये रहती है। सोलह बाँहवाली दुर्गांकी प्रतिमा भी इन्हों आयुधोंसे युक्त होती है। अठारहमेंसे दो भुजाओं तथा डमरु और

* इन नौ तत्त्वात्मिका शक्तियोंकी नामावली इस प्रकार समझनी चाहिये—अनिन्पुराण अध्याय २१ में—कश्मी, मेषा, कला, तुष्टि, युष्मि, गौरी, प्रभा, मति और दुर्गा—ये नाम आये हैं। तथा तन्त्रसमुच्चय और मन्त्रमहाण्डवके अनुसार इन शक्तियोंके ये नाम हैं—भगा, माया, जया, सूर्या, विश्वा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा।

तर्जनी—इन दो आयुर्वेदोंको छोड़कर शेष सोलह हाथ उन पूर्वोक्त आयुर्वेदोंसे ही सम्बन्ध होते हैं। रद्धचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोगा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डसुपा और अतिच्छण्डिका। ये पूर्वोक्त आठ देवियोंमें पूजित होती हैं तथा नवीं उग्रचण्डा मध्यभागमें स्थापित एवं पूजित होती हैं। रद्धचण्डा आदि आठ देवियोंकी अङ्गकान्ति क्रमशः गोरोचनाके सदृश पीली, अक्षगवर्णा, काली, नीली, शुक्लगवर्णा, धूमगवर्णा, पीतगवर्णा और क्षेत्रवर्णा हैं। ये सबकी सब सिंहवाहिनी हैं। महिषासुरके कण्ठसे प्रकट हुआ जो पुरुष है, वह शाकधारी है और ये पूर्वोक्त देवियाँ अपनी सुन्दरीमें उसका केश पकड़े रहती हैं ॥ ७-१२ ॥

ये नौ दुर्गाएँ ‘आलीढ़ा’ आङ्गुष्ठिकी होनी चाहिये। पुञ्च-पौञ्च आदिकी दृदिके लिये इनकी स्थापना (एवं पूजा) करनी उचित है। गौरी ही चण्डिका आदि देवियोंके रूपमें पूजित होती हैं। वे ही हाथोंमें कुण्डी, अक्षमाला, गदा और अग्नि धारण करके धूम्भार कहलाती हैं। वे ही बनमें ‘सिद्धा’ कही गयी हैं। सिद्धावस्थामें वे अनिस्ते रहित होती हैं। ‘लक्ष्मिता’ भी वे ही हैं। उनका परिचय इस प्रकार है—उनके एक बायें हाथमें गर्दन-सहित मुण्ड है और दूसरेमें दर्पण। दाहिने हाथमें फलाङ्गलि है और उससे ऊपरके हाथमें सौभाग्यकी मुद्रा ॥ १३-१४३ ॥

लक्ष्मीके दायें हाथमें कमल और बायें हाथमें श्रीफल होता है। सरस्वतीके दो हाथोंमें पुस्तक और अक्षमाला शोभा पाती है और शेष दो हाथोंमें वे वीणा धारण करती हैं। गङ्गाजीकी अङ्गकान्ति श्वेत है। वे मकरपर आरूढ़ हैं। उनके एक हाथमें कलश है और दूसरेमें कमल। यसुना देवी क्षुप्तपर आरूढ़ हैं। उनके दोनों हाथोंमें कलश हैं

१. बाचस्पत्य कोषमें आलीढ़ा लक्ष्मण इस प्रकार दिया गया है—

ब्रह्मवायर्यं पश्चात्स्वर्णानुदद्विग्नम् ।
वित्तस्तः पञ्च विस्तारे तदालीडं प्रसीतितम् ॥

विस्तमें सुना हुआ वायं पैर तो पीछे हो और तने हुए हुड़ने तथा अस्त्राका दाहिना पैर आगोकी ओर हो, दोनोंके बीचका विस्तार पाँच वित्त हो तो इस प्रकारके आसन या अस्त्रानकी ‘आलीढ़’ करा गया है।

और वे श्यामवर्ण हैं। इसी रूपमें इनकी पूजा होती है। दुम्खुरुकी प्रतिमा वीणावहित होनी चाहिये। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। शूलपाणि शंकर वृषभपर आरूढ़ हो मातृकाओंके आगे-आगे चलते हैं। ब्रह्माजीकी प्रिया सावित्री गौरवर्णा एवं चतुर्मुखी हैं। उनके दाहिने हाथोंमें अक्षमाला और सुक् शोभा पाते हैं और बायें हाथोंमें वे कुण्ड एवं अक्षवाह लिये रहती हैं। उनका बाहन हंस है। शंकरप्रिया पार्वती वृषभपर आरूढ़ होती है। उनके दाहिने हाथोंमें बनुप-बाण और बायें हाथोंमें चक्र-धनुष शोभित होते हैं। कौमारी शक्ति मोरपर आरूढ़ होती है। उसकी अङ्गकान्ति लाल है। उसके दो हाथ हैं और वह अपने हाथोंमें शक्ति धारण करती है ॥ १५-१६ ॥

लक्ष्मी (वैष्णवी शक्ति) अपने दायें हाथोंमें चक्र और शङ्ख धारण करती हैं तथा बायें हाथोंमें गदा एवं कमल लिये रहती हैं। बायाही शक्ति भैसेपर आरूढ़ होती है। उसके हाथ दण्ड, शङ्ख, चक्र और गदासे सुशोभित होते हैं। ऐन्द्री शक्ति ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होती है। उसके सहस्र नेत्र हैं तथा उसके हाथोंमें वज्र शोभा पाता है। ऐन्द्री देवी पूजित होनेपर छिद्र प्रदान करनेवाली हैं। चामुण्डाकी आँखें वृक्षके खोखलेकी भाँति गहरी होती हैं। उनका शरीर मांसरहित—कंकाल दिखायी देता है। उनके तीन नेत्र हैं। मासहीन शरीरमें अस्थिमात्र ही सार है। केवल ऊपरकी ओर उठे हुए हैं। पेट सदा हुआ है। वे हाथीका चमड़ा पहनती हैं। उनके बायें हाथोंमें कपाल और पट्टिश हैं तथा दायें हाथोंमें शूल और कटार। वे शब्दपर आरूढ़ होती और इङ्कियोंके गहनोंसे अपने शरीरको विभूषित करती हैं ॥ २०-२२३ ॥

विनायक (गणेश) की आङ्गुष्ठि मनुष्यके समान है; किन्तु उनका पेट बहुत बड़ा है। मुख हाथोंके समान है और दैँड़ लंबी है। वे यशोपचोत धारण करते हैं। उनके मुखकी चौड़ाई सात कला है और दैँड़की लंबाई छत्तीस अङ्गुष्ठ। उनकी नाड़ी (गर्दनके ऊपरकी हड्डी) बारह कला विस्तृत और गर्दन ढेढ़ कला ऊँची होती है। उनके कण्ठमार्गकी लंबाई छत्तीस अङ्गुष्ठ है। और गुण्डभागका वेरा ढेढ़ अङ्गुष्ठ। नाभि और कूचका विस्तार बारह अङ्गुष्ठ है। जाँघों और पैरोंका भी यही माप है। वे दाहिने हाथोंमें गजदन्त और करता धारण करते हैं तथा बायें हाथोंमें लड्डू एवं उसके लिये रहते हैं ॥ २३-२५ ॥

स्तन्द्र स्तम्भी मधूपर आरुह हैं। उनके उभयं पादमें सुमुखी और विहालकी मानुका तथा शाख और विशाख अनुज लड़े हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। वे काल-रूपधारी हैं। उनके दाहिने हाथमें शक्ति शोभा वाली है और बायें हाथमें कुष्कुट। उनके एक या छः मुख बनाने चाहिये। गाँवमें उनके अर्चाविमहको छः अथवा बारह भुजाओंसे युक्त बनाना चाहिये, परंतु बनमें यदि उनकी मूर्ति स्थापित करनी हो तो उभके दो ही भुजाएँ बनानी चाहिये। कौमारी-शक्तिकी छहों दाहिनी भुजाओंमें शक्ति, बाण, पाश, खड़, गदा और तर्जनी (मुद्रा) —ये अस्त्र रहने चाहिये और छः बायें हाथोंमें मोरपंख, धनुष, खेट, पताका, अभयमुद्रा तथा कुष्कुट होने चाहिये। छद्रचर्चिका देवी हाथीके चर्म धारण करती है। उनके मुख और एक पैर ऊपरकी ओर उठे हैं। वे बायें-दायें हाथोंमें कमशा: कपाल, कर्तरी, शूल और पाश धारण करती हैं। वे ही देवी ‘अष्टभुजा’के रूपमें भी पूजित होती हैं॥२७-३१॥

मुण्डमाला और डमरुले युक्त होनेपर वे ही ‘सद्गच्छामुण्डा’ कही गयी हैं। वे दृश्य करती हैं, इसलिये ‘नाटयेश्वरी’ कहलानी है। ये ही आसनपर बैठी हुई चतुर्मुखी महालक्ष्मी (की तामरी मूर्ति) कही गयी है, जो अपने हाथोंमें पढ़े हुए मनुष्यों, बोड़ों, भैंसों और हाथियोंको खा रही हैं। ‘सद्गच्छामुण्डा’ देवीके दस भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। वे दाहिने भागके पाँच हाथोंमें शक्ति, खड़ तथा तीन डमरु धारण करती हैं और बायें भागके हाथोंमें घटा, खेट, लट्ठाज्ञ, त्रिशूल (और ढाल) लिये रहती हैं। ‘सिद्धयोगेश्वरी’ देवी सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। इन्हीं देवीकी स्वरूपशूता एक दूसरी शक्ति हैं, जिनकी अङ्गकान्ति अस्त्र है। ये अपने दो हाथोंमें पाश और

इस प्रकार आदि आनन्दय महापुराणमें ‘चण्डी आदि देवी-देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका निष्कर्षण’

नामक पचासबाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥



‘सद्गच्छामुण्डा, अष्टभुजा (या सद्गच्छामुण्डा), नाटयेश्वरी, चतुर्मुखी महालक्ष्मी, सिद्धच्छामुण्डा, मिठ्योगेश्वरी, भैंसी तथा करविका—इन आठ देवियोंको ही ‘अम्बाहक’ कहा गया है।

इक्ष्यावनवाँ अध्याय

सूर्योदि ग्रहों तथा दिक्षाल आदि देवताओंके प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन

भीमगच्छान् हयप्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! सात अश्वोंसे जुते हुए एक पहियेवाले रथपर विराजमान सूर्यदेवकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये । भगवान् सूर्य अपने दोनों हाथोंमें दो कमल धारण करते हैं । उनके दाहिने भागमें दावात और कलम लिये दण्डीखड़े हैं और बास भागमें पिङ्गल हाथमें दण्ड लिये दावपर विद्यमान हैं । ये दोनों सूर्यदेवके पार्श्वद हैं । भगवान् सूर्यदेवके उभय पार्श्वमें गालव्यजन (चैवर) लिये 'राशी' तथा 'निष्ठमा' खड़ी हैं ।* अथवा घोड़पर नदे हुए पक्षमात्र सूर्यकी ही प्रतिमा यनानी चाहिये । समस्त दिक्षाल हाथोंमें वरद मुद्रा, दो-दो कमल तथा शश लिये कमशः पूर्वोदि दिशाओंमें स्थित दिखाये जाने चाहिये ॥ १—३ ॥

यारह दलोका एक कमल चक्र बनावे । उसमें सूर्य, अर्यमाण आदि नामवाले यारह आदित्योंका कमशः यारह दलोंमें स्थापन करे । यह स्थापना वरुण-दिशा एवं वायव्य-कोणसे आरम्भ करके नैऋत्यकोणके अन्ततकके दलोंमें होनी चाहिये । उक्त आदित्यगण चार-चार हाथवाले हों और उन हाथोंमें मुद्रा, शूल, चक्र एवं कमल धारण किये हों । अग्निकोणसे लेकर नैऋत्यक, नैऋत्यसे वायव्यक, वायव्यसे ईशानतक और वहाँसे अग्निकोणतकके दलोंमें उन आदित्योंकी स्थिति जाननी चाहिये ॥ ४ ॥

*'राशी' और 'निष्ठमा'—ये चैवर दुलानेवाली किसीके नाम हैं । अथवा इन नामोद्वारा सूर्यदेवकी दोनों पहियोंकी ओर संकेन किया गया है । 'राशी' शब्दसे उनकी रानी 'सक्षा' गृहीत होती है और 'निष्ठमा' शब्दसे 'छाया' । ये दोनों देवियों चैवर दुलाकर पतिकी सेवा कर रही हैं ।

+ सूर्य आदि द्वादश आदित्योंके नाम दीने गिनावे गये हैं और अर्यमा आदि द्वादश आदित्योंके नाम १५ वें अध्यायके दूसरे ओर तीसरे कोडोंमें देखने चाहिये । ये नाम वैष्णव मन्त्रनामके आदित्योंके हैं । चापुष मन्त्रनाममें ये ही 'त्रिवित' नामसे विद्यमान हैं । अथवा पुराणोंमें भी आविष्योक्ती नामाकी तथा उनके मासक्रममें नहाँकी अपेक्षा त्रुष्ट अन्तर विद्यत है । इसकी संगति उपर्योगके अनुसार नामानी चाहिये ।

यारह आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्म, सूर्य, सहस्रांशु, धाता, तपन, सविता, गमस्तिक, रवि, पर्जन्य, त्वाष्टा भित्र और विष्णु । ये मेष आदि यारह राशियोंमें स्थित होकर जगत्को ताप एवं प्रकाश देते हैं । ये वरुण आदि आदित्य कमशः मार्गशीर्ष मास (या शूष्मिक राशि) से लेकर कार्तिक मास (या तुलाराशि) तकके मासों (एवं राशियों) में स्थित होकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं । इनकी अङ्गकान्ति कमशः काली, लाल, कुछ कुछ लाल, पीली, पाण्डुवर्ण, इवेत, कपिलवर्ण, पीतवर्ण, तोतेके नमान हरी, ध्वलवर्ण, धूम्रवर्ण और नीली है । इनकी शक्तियाँ द्वादशदल कमलके केसरोंके अग्रभागमें स्थित होती है । उनके नाम इस प्रकार है—इडा, मुषुम्ना, विश्वर्णि, इन्दु, प्रमर्दिनी (प्रवर्द्धिनी), प्रहर्षिणी, महाकाली, कपिला, प्रवोधिनी, नीलाम्बरा, वर्णान्तस्था (धनान्तस्था) और अमृतारुद्धा । वहण आदिकी जो अङ्गकान्ति है, वही इन शक्तियोंकी भी है । केसरोंके अग्रभागोंमें इनकी स्थापना करे । सूर्यदेवका नेज ब्रह्मण्ड और भूत्व विद्याल है । उनके दो भुजाएँ हैं । वे अपने हाथोंमें कमल और लक्ष धारण करते हैं ॥ ५—१० ॥

चन्द्रमा कुण्डिका तथा जपमाला धारण करते हैं । मङ्गलके हाथोंमें शक्ति और अक्षमाला शोभित होती है । बृद्धके हाथोंमें धनुष और अक्षमाला शोभा पाते हैं । बृहस्पति कुण्डिका और अक्षमालाधारी है । शुक्रका भी ऐसा ही स्वरूप है । अर्थात् उनके हाथोंमें भी कुण्डिका और अक्षमाला शोभित होती हैं । शनि किञ्चिणी-सूत्र धारण करते हैं । राहु अर्द्धचन्द्रधारी हैं तथा केदुके हाथोंमें लक्ष और दीपक शोभा पाते हैं । अनन्त, लक्षक, कक्षीटक, पश्च, महापश्च, शङ्ख और कुलिक आदि सभी मुख्य नामगण सूत्रधारी होते हैं । फल ही इनके मुख हैं । ये सबके-सब महान् प्रभाषुजसे उद्दासित होते हैं । इन्द्र वज्रधारी हैं । ये हाथीपर आरूढ़ होते हैं । अग्निका वाहन बकरा है । अग्निदेव शक्ति धारण करते हैं । यम दण्डधारी हैं और मैत्रेपर आरूढ़ होते हैं । निश्चर्ति लक्षधारी हैं और मनुष्य उनका वाहन है । बद्रण मकरपर आरूढ़ हैं और पाण्ड धारण करते

है। बायुरेस बायारी है और सूर्य उन ता वाहन है। कुपेर मैरपर चढ़ते और गदा भारण करते हैं। इशान जटाधारी हैं और कृष्ण उनका वाहन है ॥ ११—१५ ॥

समझ लोकपाल द्विभुज हैं। विश्वकर्मा अक्षसूत्र धारण करते हैं। इनुमानजीके हाथमें बड़ा है। उन्होंने अपने दोनों

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें ‘सूर्योदि ग्रहों तथा दिक्पतादि देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका

वर्णन’ नामक इकावनबाँ अध्याय भूरा हुआ ॥ ५१ ॥

पैरोंसे एक अकुरको दशा रखता है। किंमर-भूतिक्षेत्र इसमें बीणा लिये हों और विश्वापत्र भाला धारण किये। उनकाहमें स्थित दिखाये जायें। पिश्चात्तोंके शरीर कुर्बान-कालासमाप्त हों। घेतालोंके मुख विकराल हों। क्षेत्रपाल शुल्घारी बनाये जायें। प्रेतोंके देट लंबे और शरीर कृष्ण हों ॥ १६—१८ ॥

बावनवाँ अध्याय

चौसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षण

श्रीभगवान् दोले—ब्रह्मन ! अब मैं चौसठ योगिनियोंका वर्णन करूँगा। इनका स्थान क्रमशः पूर्व दिशामें लेकर इशानपर्यन्त है। इनके नाम इस प्रकार हैं—
 १. अक्षोभ्या, २. रुक्षकर्णी, ३. राक्षसी, ४. क्षपणा,
 ५. धमा, ६. पिङ्गाक्षी, ७. अक्षया, ८. क्षेमा,
 ९. डला, १०. नीलालया, ११. लोला, १२. रक्ता (या लक्ता), १३. वलाकेशी, १४. लालसा, १५. विमला,
 १६. दुर्गा (अथवा हुताशा), १७. विशालाक्षी,
 १८. हींकारा (या हुंकारा), १९. बडवामुखी, २०. महाकूरा,
 २१. क्रोधना, २२. भयंकरी, २३. महानना, २४. सर्वज्ञा,
 २५. तरला, २६. नारा, २७. शुग्वेदा, २८. हयानना,
 २९. मारा, ३०. रससंग्राही (अथवा मुसंग्राही या शुद्रसंग्राही), ३१. शबरा (या शम्बरा), ३२. नालज़िहाका,
 ३३. रक्ताक्षी, ३४. सुप्रसिद्धा, ३५. विशुजिहा,
 ३६. करद्धिणी, ३७. मेवनादा, ३८. प्रचण्डा, ३९. उग्रा,
 ४०. कालकर्णी, ४१. वरप्रदा, ४२. चण्डा (अथवा चन्द्रा), ४३. चण्डवती (या चन्द्रावली), ४४. प्रपञ्चा,
 ४५. प्रलयान्तिका, ४६. दिशुवक्षा, ४७. पिश्चाची,
 ४८. पिशितासवलोक्षणा, ४९. धमनी, ५०. तपनी,
 ५१. रागिणी (अथवा वामनी), ५२. विकृतानना,
 ५३. बायुवेगा, ५४. बृहत्कुषि, ५५. विकृता,
 ५६. विश्वरूपिका, ५७. यमजिहा, ५८. जयमनी,
 ५९. दुर्जया, ६०. जयन्तिका (अथवा यमान्तिका),
 ६१. विडाली, ६२. रेवती, ६३. पूतना तथा ६४. विजया-
 निका ॥ १—८ ॥

योगिनियाँ आठ अथवा चार हाथोंमें युक्त होती हैं।

इच्छानुभार शब्द धारण करती हैं तथा उपासकोंको सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली हैं। भैरवके बारह हाथ हैं। उनके मुखमें ऊँचे दौत दौत हैं तथा वे सिरपर जटा एवं चन्द्रमा धारण करते हैं। उन्होंने एक ओरके पाँच हाथोंमें क्रमशः खड़, अंकुर, कुठार, बाण तथा जगत्को अभ्य प्रदान करनेवाली मुद्रा धारण कर रखी है। उनके दूसरी ओरके पाँच हाथ धनुष, त्रिशूल, खट्टवाङ्म, पाशकार्द एवं वरकी मुद्रासे सुधोभित हैं। दोष दो हाथोंमें उन्होंने गजचर्म ले रखा है। हाथीका चमड़ा ही उनका वस्त्र है और वे सर्पमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। प्रेतपर आसन लगाये मातृकाओंके मध्यभागमें विराजमान है। इन रूपमें उनकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भैरवके एक या गाँच मुख बनाने चाहिये ॥ ९—११ ॥

पूर्व दिशासे लेकर अग्निकोणतक विलोम-क्रममें प्रत्येक दिशामें भैरवको स्थापित करके क्रमशः उनका पूजन करे। बीज-मन्त्रको आठ दीर्घ स्वरोंमें एक-एकके द्वारा भेदिन एवं अनुस्वारयुक्त करके उस-उस दिशाके भैरवके माथ संयुक्त करे और उन सबके अन्तमें ‘नमः’ पदको जोड़े। यथा—
 ॐ हौं भैरवाय नमः—प्रात्याम् । ॐ हौं भैरवाय नमः—पैशान्त्याम् । ॐ हौं भैरवाय नमः—उद्रीत्याम् । ॐ हौं भैरवाय नमः—वायव्ये । ॐ हौं भैरवाय नमः—प्रतीत्याम् । ॐ हौं भैरवाय नमः—नैर्हत्याम् । ॐ हौं भैरवाय नमः—आग्नेत्याम् । इस प्रकार इन मन्त्रोद्धारा क्रमशः उन दिशाओंमें भैरवका पूजन करे। इन्हींमेंसे छः बीजमन्त्रोद्धारा पहङ्गन्याम एवं

उन अङ्गोंका पूजन भी करना चाहिये ॥ १२ ॥

उनका ध्यान इस प्रकार है—भैरवजी मन्दिर अथवा मण्डलके आग्नेयदल (अनिकोणस्थ दल) में विराजमान सुबहंमयी रसनामे युक्त, नाद, विनु परं इन्दुसे सुधोभित तथा मातृकाधिपति के अङ्गसे प्रकाशित है। (ऐसे भगवान् भैरवका मैं भजन करता हूँ ।) बीरभद्र वृग्भपर आरुद हैं। वे मातृकाओंके मण्डलमें विराजमान और चार भुजाधारी हैं। गौरी दो भुजाओंमें युक्त और त्रिनेत्रधारिणी है। उनके एक हाथमें शूल और दूसरेमें दर्पण है। ललिता-

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें जौसठ योगिनी आदिकी प्रतिमाओंके लक्षणोंका वर्णन-

नामक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ अध्याय लिङ्ग आदिका लक्षण

श्रीभगवान् हृष्टप्रीष्ठ कहते हैं—कमलोद्धन ! अब मैं लिङ्ग आदिका लक्षण बताता हूँ, सुनो । लंबाईके आधेमें आठसे भाग देकर आठ भागोंमें से तीन भागको त्याग दे और शेष पाँच भागोंमें चौकोर विष्कम्भक। निर्माण कराये । फिर लंबाईके छः भाग करके उन सबको एक, दो और तीनके कमसे अलग-अलग रखें । इनमें पहला भाग ब्रह्म-

का, दूसरा विष्णुका और हीसरा शिवका है । उन भागोंमें यह 'बद्रमान' भाग कहा जाता है । चौकोर मण्डलमें कोण सूक्ष्मके आधे मापको लेकर उसे सभी कोणोंमें चिह्नित करे । ऐसा करनेमें आठ कोणोंका 'वैष्णवभाग' मिल जाएगा । इसमें संशय नहीं है । तदनन्तर उसे प्रोडश कोण और फिर बत्तीस कोणोंसे युक्त करे ॥ १—४ ॥

* यथा—ॐ हाँ हृष्टप्रीष्ठ नमः । ॐ हीं दिरसे स्वाहा । ॐ हं शिखायै बृहद् । ॐ हैं कवचाय हुम् । ॐ हीं नेत्रव्याय बैषट् । ॐ हः अखाय फट् ।

१. श्रीविष्णवनन्तके ११ वें श्लोकमें लिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि इस प्रकार दी गयी है—
जैसा कि शैवागमका बत्तन है—लिङ्गमन्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रूप्यसमो भवेत् । लिङ्गके मस्तकका विस्तार जिनना हो, उससे निरुप्ते सूक्ष्मे वेष्टित होने वोग्य लिङ्गकी रथूलना (मोटाई) रखें । शिवलिङ्गकी जो सूखूलता या मोटाई है, उसके सूक्ष्मे बराबर पीठका विस्तार रखें । तत्पश्चात् पूज्य लिङ्गका जो उच्च अंश है, उसमें दुगुनी केंचाईसे युक्त वृत्ताकार या न्तुरुल धीठ बनावे । पीठके मध्यभागमें लिङ्गके सूखूलामात्रसूक्ष्म नाडन्त्रके द्विगुण सूक्ष्मसे वेष्टित होने वोग्य सूखूल कण्ठका निर्माण करे । काठके ऊपर और नीचे सम्भागसे तीन या दो बेललाओंकी रचना करे । तदनन्तर लिङ्गके भस्त्रका जो विस्तार है, उसको छः भागोंमें विभक्त करे । उनकोंमें एक अंशके भानके अनुसार उससे संलग्न अशके द्वारा खान (गर्व) की रचना करे । पीठसे बाहरभागमें लिङ्गके समान ही वर्षी अवधा पीठमालके आवे भानके बराबर बधी, मूलदेशमें शीर्षांश मानके भनान विग्रहारबाली और भद्रभागमें उसके आवे भानके तुष्ट्य विग्रहारबाली नाली बनावे । इसीको 'प्रणाल' कहते हैं । प्रणालके मध्यमें मूलसे अद्यभागपर्वन्म अक्षवार्य बनावे । प्रणालका जो विस्तार है, उसके एक तिलाई विस्तारकाले खानहप जलभागमें युक्त पीठ-मूहश मेखलायुक्त प्रगाल बनाना चाहिये । यह स्फटिक आदि रत्नविकृतों अवधा पाषाण जारिके द्वारा द्विलिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि है । पथा—

लिङ्गमन्तकविस्तारं पूज्यभागमम् नयेत् । लक्षणभागवेत् ॥ १—८ ॥

तत्पश्चात् चौकुठ कोर्णेंसे युक्त करके वहाँ बोल रेखा बनावे । तदनन्तर श्रेष्ठ आचार्य लिङ्गके शिरोभागका कर्तन करे । इसके बाद लिङ्गके विस्तारको आठ भागोंमें विभाजित करे । फिर उनमेंसे एक भागके चौथे अंशको छोड़ देनेपर छत्राकार सिरका निर्माण होता है । जिसकी लंबाई-नौइकाई तीन भागोंमें समान हो, वह समभागवाला लिङ्ग लम्बूर्ण मनोकाञ्चित्त फलोंको देनेवाला है । देवपूजित लिङ्गमें लंबाईके चौथे भागसे विष्टम्भ बनता है । अब दुम तभी लिङ्गोंके लक्षण सुनो ॥ ५—८ ॥

विद्वान् पुरुष सोलह अङ्गुलवाले लिङ्गके मध्यवर्ती सूत्रको, जो ब्रह्म और एवं भागके निकटस्थ है, छेकर उसे छः भागोंमें विभाजित करे । वैयमन-सूत्रोद्धारा निर्वित जो वह माप है, उसे 'अन्तर' कहते हैं । जो सबसे उत्तरवर्ती लिङ्ग है, उसे आठ जौ बढ़ा बनाना चाहिये; शेष लिङ्गोंको एक-एक जौ छोटा कर देना चाहिये । उपर्युक्त लिङ्गके निच्चले भागको तीन हिस्सोंमें विभक्त करके ऊपरके एक भागको छोड़ दे । शेष दो भागोंको आठ हिस्सोंमें विभक्त करके ऊपरके तीन भागोंको स्थाग दे । पाँचवें भागके ऊपरसे धूमती हुई एक लंबी रेखा बनावे और एक भागको छोड़ कर बांधमें उन दो रेखाओंका संगम करावे । यह लिङ्गोंका साधारण लक्षण बताया गया; अब पिण्डिकाका सर्वाधारण लक्षण बताता हूँ, मुखसे सुनो ॥ ९—१३ ॥

ब्रह्मभागमें प्रवेश तथा लिङ्गकी ऊँचाई जानकर विद्वान्

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'लिङ्ग आदिके लक्षणका वर्णन' नामक तिरपन्नर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ।

चौवनवाँ अध्याय

लिङ्ग-मान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन

भ्रीभगवान् हयप्रीष्ठ कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं दूसरे प्रकारसे लिङ्ग आदिका वर्णन करता हूँ, सुनो, लक्षण तथा धृतसे निर्मित शिवलिङ्ग बुद्धिको बढ़ानेवाला होता है । वस्त्रमय लिङ्ग ऐश्वर्यदायक होता है । उसे तास्कलिक (केवल एक बार ही पूजाके उपयोगमें आनेवाला) लिङ्ग माना गया है । मूर्तिकासे बनाया हुआ शिव लिङ्ग दो प्रकारका होता है—एक तथा अपक । अपकसे एक श्रेष्ठ माना गया है । उसकी अपेक्षा काष्ठका बना हुआ शिवलिङ्ग अधिक पवित्र एवं पुण्यदायक है । काष्ठमय

पुरुष ब्रह्मद्विखाली लक्षणमा छारे और उस शिलाके ऊपर ही उसम रीतिह सर्वादन करे । पिण्डिकाङ्की ऊँचाईको जानकर उसका विभाजन करे । दो भागोंकी ऊँचाईको पीठ समझे । नौकाईमें वह लिङ्गके लमान ही हो । पीठके मध्यभागमें खात (गड्ढा) करके उसे तीन भागोंमें विभाजित करे । अपने मानके आधे विभागमें 'वाहुस्थ'की कल्पना करे । वाहुस्थके तृतीय भागसे मेलला बनावे और मेललाके ही तुस्य खात (गड्ढा) तैयार करे । उसे क्रमशः निम्न (नीचे सुका हुआ) रखें । मेललाके सीलहवे अंशसे खात निर्माण करे और उसीके मापके अनुसार उस पीठकी ऊँचाई, जिसे 'विकाराङ्ग' कहते हैं, करावे । प्रस्तरका एक भाग धूमिमें प्रविष्ट हो, एक भागसे पिण्डिका बने, तीन भागोंसे कण्ठका निर्माण कराया जाय और एक भागसे पट्टिका बनायी जाय ॥ १४—१९ ॥

दो भागसे ऊपरका पट्ट बने; एक भागसे शेष-पट्टिका तैयार करायी जाय । कण्ठपर्यन्त एक-एक भाग प्रविष्ट हो । तत्पश्चात् पुनः एक भागसे निर्गम (जल निकलनेका मार्ग) बनाया जाय । यह शेष पट्टिका तक रहे । प्रणाल (नाली) के तृतीय भागसे निर्गम बनना चाहिये । तृतीय भागकी मूलमें अङ्गुलिके अग्रभागके बराबर विस्तृत खात बनावें, जो तृतीय भागसे आधे विस्तारका हो । वह खात उत्तरका ओर जाय । यह पिण्डिकासहित साधारण लिङ्गका बांधन किया गया ॥ २०—२३ ॥

लिङ्गसे प्रस्तरका लिङ्ग श्रेष्ठ है । प्रस्तरसे मोतांका और मोतीसे सुबर्णका बना हुआ 'लौह लिङ्ग' उत्तम भान । गया है । चाँदी, ताँबे, पीतल, रत्न तथा रस (पारद) का बना हुआ शिवलिङ्ग भोग-मोक्ष देनेवाला एवं श्रेष्ठ है । रस (पारद आदि) के लिङ्गको रँगा, लोह (सुबर्ण, ताँबा) आदि तथा रत्नके भीतर आबद्ध करके स्थापित करे । सिद्ध आदिके द्वारा स्थापित स्वयम्भूलिङ्ग आदिके लिये मात्र आदि करना अभीष्ट नहीं है ॥ १—५ ॥

बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) के लिये मात्र यही बात है ।

(अर्थात् उसके किये भी वाह हतने अकृत्का हो'—इस तरहका मान आदि आवश्यक नहीं है।) वेसे शिवलिङ्गोंके किये अपनी इच्छाके अनुसार पीठ और प्राणादका निर्माण करा कैना चाहिये । सूर्यमण्डलस्थ शिवलिङ्गके दर्पणमें प्रतिविभित करके उसका पूजन करना चाहिये । वेसे तो भगवान् इंकर सर्वत्र ही पूजनीय हैं, किंतु शिवलिङ्गमें उनके अर्चनकी पूर्णता होती है । प्रस्तरका शिवलिङ्ग एक हाथसे अधिक ऊँचा होना चाहिये । काष्ठमय लिङ्कका मान भी ऐसा ही है । चल शिवलिङ्गका स्वरूप अकृत्मानके अनुसार निर्मित करना चाहिये तथा स्थिर लिङ्गका द्वारमान, गर्भमान एवं हस्तमानके अनुसार । यहमें पूजित होनेवाला चललिङ्ग एक अकृत्मने लेकर पंद्रह अकृत्म तकका हो सकता है ॥ ६-८ ॥

द्वारमानसे लिङ्गके तीन भेद हैं । इनमें प्रत्यक्कके गर्भमानके अनुसार नौ-नी भेद होते हैं । [इस तरह कुल सत्तार्हस हुए । इनके अतिरिक्त] करमानसे नौ लिङ्ग और हैं । इनकी देवालयमें पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार सबको एकमें जोड़नेसे छत्तीस लिङ्ग जानने चाहिये । ये ज्येष्ठमानके अनुसार हैं । मध्यममानसे और अधम (कनिष्ठ) मानसे भी छत्तीस-छत्तीस शिवलिङ्ग हैं—ऐसा जानना चाहिये । इस प्रकार ममत्त लिङ्गोंको एकत्र करनेसे एक सौ आठ शिवलिङ्ग हो सकते हैं । एकसे लेकर पाँच अकृत्म तकका चलशिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहलाता है, छः से लेकर दस अकृत्म तकका चल लिङ्ग 'मध्यम' कहा गया है तथा ब्यारहसे लेकर पंद्रह अकृत्म तकका चल शिवलिङ्ग 'ज्येष्ठ' जानने योग्य है । महामूल्यवान् २-३ोंका बना हुआ शिवलिङ्ग छः अकृत्मका, अन्य रसोंसे निर्मित शिवलिङ्ग नौ अकृत्मका, सुवर्णभारका बना हुआ बारह अकृत्मका तथा शोष बस्तुओंसे निर्मित शिवलिङ्ग पंद्रह अकृत्मका होना चाहिये ॥ ९-१३ ॥

लिङ्ग-शिलाके सोलह अंश करके उसके ऊपरी चार अंशोंमें पाश्वर्वती दो भाग निकाल दे । फिर बत्तीस अंश करके उसके दोनों कोणवर्ती सोलह अंशोंको छुत कर दे । फिर उसमें चार अंश यिलानेसे 'कण्ठ' होता है । तात्पर्य यह कि बीस अंशोंका कण्ठ होता है और उभय पाश्वर्वती ३५४=१२ अंशोंको मिटानेसे ज्येष्ठ चल लिङ्ग बनता है । प्राणादकी ऊँचाईके मानको सोलह अंशोंमें विभक्त करके उसमेंसे चार, छः और आठ अंशोंडाग क्रमशः हीन,

मध्यम और ज्येष्ठ द्वार निर्मित होता है । द्वारकी ऊँचाईमेंसे एक ऊँचाई कम कर दिया जाय तो वह लिङ्गकी ऊँचाईका मान है । लिङ्गशिलाके गर्भके आवे भागतककी ऊँचाईका शिवलिङ्ग 'अधम' (कनिष्ठ) होता है और तीन भूतांश (३५५=) पंद्रह अंशोंके वरावरकी ऊँचाईका शिवलिङ्ग 'ज्येष्ठ' कहा गया है । इन दोनोंके बीचमें वरावरकी ऊँचाईपर सात जगह सूत्रपात (सतहाय रेखा) करे । इस तरह नौ सूत (सूत्रनिर्मित रेखाचिह्न) होंगे । इन नौ सूतोंमेंसे पाँच सूतोंकी ऊँचाईके मापका शिवलिङ्ग 'मध्यम' होगा । लिङ्गोंकी लंबाई (या ऊँचाई) उत्तरोत्तर दो-दो अंशके अन्तरसे होगी । इस तरह लिङ्गोंकी दीर्घता बढ़ती जायगी और नौ लिङ्ग निर्मित होंगे ॥ १४-१८ ॥

यदि हाथके मापसे नौ लिङ्ग बनायं जायें तो पहला लिङ्ग एक हाथका होगा, फिर दूसरेके मापमें पहलेसे एक हाथ बढ़ जायगा; इस प्रकार जनतक नौ हाथकी लंबाई पूरी न हो जाय तबतक शिला या काष्ठकी मापमें एक-एक हाथ बढ़ते रहेंगे । ऊपर जो हीन, मध्यम और उत्तम—तीन प्रकारके लिङ्ग बताये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन भेद हैं । बुद्धिमान् पुरुष एक-एक लिङ्गमें विभागपूर्वक तीन-तीन लिङ्गका निर्माण करावें । छः अकृत्म और नौ अकृत्मके शिवलिङ्गोंमें भी तीन-तीन लिङ्ग-निर्माण करावें । स्थिर लिङ्ग द्वारमान, गर्भमान तथा हस्तमान—इन नीन दीर्घ प्रसाणों (मांसों) के अनुसार बनाना चाहिये । उक्त तीन मांसोंके अनुगम ही उमकी तीन सज्जाएँ हैं—भगेश, जलेश तथा देवेश । विष्णुभ (विस्तार-) के अनुसार लिङ्गके चार स्थल लंकात करे । दीर्घप्रसाणके अनुसार सम्पादित होनेवाले तीन रस्पोंमें निर्दिष्ट लिङ्गको शुभ आय आदिसं युक्त करके निर्मित करावें । उन शिविध लिङ्गोंकी लंबाई चार या आठ आठ हाथकी हो—यह अभीष्ट है । वे क्रमशः श्रितत्वरूप अथवा त्रिगुणरूप हैं । जो लिङ्ग जितने हाथका हो, उसका अकृत्म बनाकर आय-संख्या (८), स्वर-संख्या (७), भूत-संख्या (५) तथा अग्नि-संख्या (३) से पृथक्-पृथक् भाग दे । जो शोष बने उसके अनुगम शुभाकृम फलको जाने ॥ १९-२४ ॥

* 'समराङ्गसद्वार' में कहा है कि दो-दो अंशकी लृडि करते हुए तीन हाथकी लंबाई तक पहुँचते-पहुँचते नौ लिङ्ग निर्मित हो मिलते हैं—'त्रिग्राहुदा नैवेदं स्युग्राह्मत्रिनयावधेः ।'

ब्रह्मादि आयोगमें घज, सिंह, हस्ती और हृषभ—ये भेष हैं। अन्य चार आय अशुभ हैं। (सात संख्याले भाग देनेपर जो शोष बचे, उसके अनुसार सरका निश्चय करे।) स्वर्णमें घज, गग्धार तथा पञ्चम शुभदायक है। [पाँचसे भाग देनेपर जो शोष बचे, उसके अनुसार पृथ्वी आदि भूतोंका निश्चय करे।] भूतोंमें पृथ्वी ही शुभ है। [तीनसे भाग देनेपर जो शोष रहे, तदनुसार अन्नि जाने।] अन्नियोंमें आहवनीय अन्नि ही शुभ है। उक्त लिङ्गकी लंबाईको आधा करके उसमें आठसे भाग देनेपर यदि शोष सातसे अधिक हो तो वह लिङ्ग 'आळ्य' कहा जाता है। यदि पाँचसे अधिक शोष रहे तो वह 'अनाढ़' है। यदि छः अंदासे अधिक शोष हो तो वह लिङ्ग 'देवेश्य' है और यदि तीन अंदासे अधिक शोष हो तो उस लिङ्गको 'अर्कतुल्य' माना जाता है। ये चारों ही प्रकारके लिङ्ग न्युकोण होते हैं। पाँचवाँ 'वर्धमान' संज्ञक लिङ्ग है, उसमें व्याससे नाह बढ़ा हुआ होता है। व्यासके समान नाह एवं व्याससे बढ़ा हुआ नाह—इस प्रकार इन लिङ्गोंके दो भेद हो जाते हैं। विश्वकर्म-शास्त्रके अनुसार इन सबके बहुत-ने भेद बताये जायेंगे। आळ्य आदि लिङ्गोंकी स्थूलता आदिके कारण तीन भेद और होते हैं। उनमें एक-एक यवकी वृद्धि करनेसे वे नव आठ प्रकारके लिङ्ग होते हैं। फिर हस्तमानसे 'जिन' संज्ञक लिङ्गके भी तीन भेद होंगे। उसको सर्वसम लिङ्गमें जोड़ लिया जायगा ॥ २५-२९ ॥

अनाढ़, देवार्चित तथा अर्कतुल्यमें भी पाँच-पाँच भेद होनेसे ये पञ्चीस होंगे। ये सब एक, जिन और

* 'अपराजितपञ्चा'के 'आवाचिकार' नामक नीसठवें वृत्तमें आयोंके नाम इस प्रकार लिये गये हैं—घज, घृत, सिंह, शान, वृष, गर्दभ, गज और ध्वंश (काक)। इनकी स्थिति पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे है। देवालयके लिये घज, सिंह, वृष और गज—ये आय भेष कहे गये हैं। अपमोक्षके लिये शोष आय सुखावह है। सत्ययुगमें घज, श्रेष्ठोंसे सिंह, द्वारपरमें वृषभ और कल्पित्युगमें गजी नामक आयका प्राभान्य है। सिंह नामक आय मुख्यतः राजाओंके लिये काल्पाणकारक है; वाहाणके लिये घज प्रशस्त है तथा देवताके लिये वृष। घज आयमें अर्द्धाभ होता है और वृषमें संताप। सिंह आयमें विपुल भोग उपलिख होते हैं। शान नामक आयमें कल्प होता है। वृषमें घन-धान्यकी वृद्धि होती है। गर्दभमें दिशयोंका अरिज दृष्टित होता है। शानी नामक आयमें सब कोण शुभ देखते हैं और काक नामक आय देनेपर निश्चय ही शुभ होती है।

(श्लोक १-१३)

भक्त—सैरोंके पचाशर हो कर्पोरे। सरका साकलन करनेहो पंडह इतार चार सौ दिशिका हो लकते हैं।

* अनिष्टुरण अध्याय ५४ के २८ वें श्लोकमें विश्वकर्मानीके कथनानुसार लिङ्ग-भेदोंकी वरियताना की गयी है और सब मिलाकर चौदह इतार चौदह सौ भेद करे गये हैं। इस प्रकारणका मूल पाठ अपने शुद्धप्रयोगमें उपलब्ध नहीं हो रहा है; अतएव यहाँ दी हुई गणना नेठ नहीं रही है। यद्यु विश्वकर्मानीके शास्त्र 'अपराजितपञ्चा'के अवलोकनसे इन भेदोंपर विवेचन प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार समस्त लिङ्ग-भेद १४४२० होते हैं। इस प्रकार, सौ शताब्दा जाता है—प्रस्तारम् लिङ्ग कम-से-कम एक शताब्दा होता है, उससे कम नहीं। उसका अनितम आवास तीन शाखाका बताया गया है। इस प्रकार एक शाखसे लेकर नी शाखाके लिङ्ग बनाये जायें तो उनकी संख्या नौ होती है। इनका प्रस्तार यो समस्तना आदित्ये।

एक हाथसे तीन शाखाके विश्वलिङ्ग 'क्षणिष्ठ' कहे गये हैं। नारसे छः शाखाके 'मध्यम' माने गये हैं और सातसे नौ तकके 'उत्तम' या 'ज्येष्ठ' कहे गये हैं। इन तीनोंके प्रमाणमें पादवृद्धि करनेसे कुल द३ विश्वलिङ्ग होते हैं। वरा—

एक हाथ, सदौ हाथ, दो हाथ, पैने दो हाथ, दो हाथ, सर्वा दो हाथ, दाई हाथ, पैने नोर्न हाथ, नीन हाथ, सदा नीन १०, सादे नीन हाथ, पैने चार हाथ, चार हाथ, सदा चार हाथ, १५ सादे चार हाथ पैने पाँच हाथ, पाँच हाथ, सदा पाँच हाथ, १० पाँच हाथ, पैने छः हाथ, छः हाथ, सदा छः हाथ, २० माडे छः हाथ, पैने सात हाथ, सात हाथ, मदा माद हाथ, सादे २५ मान हाथ, पैने आठ हाथ, आठ हाथ, सदा आठ हाथ, मादे २० मान हाथ, पैने नौ हाथ, नौ हाथ।

इन तीनोंके नाम विश्वकर्मानीके क्रमसः इस प्रकार बनाये हैं—१. भव, २. भवोद्भव, ३. भाव, ४. संसारभवनाशन, ५. पाशयुक्त, ६. मदातेज, ७. मदावेष, ८. परास्पर, ९. ईश्वर, १०. वेदव, ११. विव, १२. शास्त्र, १३. भवोद्भादक, १४. मदतेज, १५. सदास्पर (सदोजान), १६. वामदेव, १७. अषोर, १८. नपुरण, १९. ईशान, २०. मृत्युजय, २१. विजय, २२. विरणाक, २३. अवोरात्म, २४. शीकाठ, २५. पुण्यवर्षन, २६. पुण्ड्रीक, २७. मुकुल, २८. उमातेजः, २९. विश्वेश्वर, ३०. त्रिनेत्र, ३१. व्यम्बक, ३२. वोर, ३३. मशाकाल।

कह जाए। अलङ्करणे विस्तारवाला लिह भी शक्तिशुल्क नहीं, इसलाल एवं गर्भभानके अनुसार नी ऐसी ही उक्त है। इस संस्कृते कोण तथा अर्द्धकोणसं सूतौद्वारा कोणोंका डेवर (विभाजन) करे। लिङ्गके मध्यभागके विस्तारके ही प्रत्येक विभागोंका विस्तार मानकर, तदनुसार मध्य, ऊर्ध्व और अश्च—इन विभागोंकी स्थापना करे। मध्यम विभागसे उपरका अष्टकोण या षोडश कोणवाला विभाग छिवका अंश है। पाद या मूलभागसे जानुपर्यन्त लिङ्गका अधोभाग है, यह बक्षाका अंश है तथा जानुसे नाभिर्यन्त लिङ्गका मध्यम भाग है, जो भगवान् विष्णुका अंश है॥ ३०-३१ ॥

मूर्खान्तभाग भूतभागश्वरका है। व्यक्त-अव्यक्त सभी लिङ्गोंके लिये ऐसी ही बात है। जिस शिवलिङ्गमें पाँच लिङ्गकी व्यवस्था है, वहाँ शिरोभाग गोलाकार होना चाहिये—ऐसा बताया जाता है। वह गोलाई छत्राकार हो, मुर्गोंके अंडेके समान हो; नवोदित चन्द्रके सहश्र हो या पुरुषके आकारकी हो। ['पुरुषाकृति' के स्थानमें 'अपुरुषाकृति' पाठ हो तो गोलाई व्रपुषके रमान आकारवाली हो—ऐसा अर्थ लेना चाहिये।] इस प्रकार एक-एकके चार भेद होते हैं। कामनाओंके भेदमें इनके फल्लीये भी भेद होता है, यह बताऊँगा। लिङ्गके मस्तक-भागका विस्तार जितने अकूलका हो, उतनी संख्यामें आठसे भाग है। इस प्रकार मस्तकको आठ भागोंमें विभक्त करके आदिके लो चार भाग हैं, उनका विस्तार और ऊँचाईके अनुसार ग्रहण करे। एक भागके छाँट देनेमें 'पुण्डरीक' नामक लिङ्ग होता है, दो भागोंको उस कर देनेसे 'विशाल' संज्ञक लिङ्ग होता है, तीन भागोंका उच्छेद कर देनेपर उसकी 'भीवस्त्र' मर्जा होती है तथा चार-

पूर्वीक क्रमसे पाठार्थवृद्धि करनेपर ६५ तक मस्त्या पूर्वोंगी।
 " " दो अकूल वृद्धि करनेपर १७ " " "
 " " एक अकूल वृद्धि " " १५३ " "
 " " अद्वैतुल वृद्धि " " ३८८ " "
 " " अकूलका चतुर्वांश बदानेपर ७६ " " "
 " " एक-एक दैवकेमानकी वृद्धि करनेपर १४२ " "
 " " उत्त्र-प्रमाण लिङ्गमें प्रत्येकके दम में द करनेपर १४२० " "

भागोंके लोपसे उस लिङ्गको 'जानुकारक' कहा गया है। शिरोभाग सब ओरसे सम हो तो श्रेष्ठ माना गया है। देवपूज्य लिङ्गमें मस्तक-भाग कुकुटके अण्डकी भाँति गोल होना चाहिये ॥ ३४-३८ ॥

चतुर्भागात्मक लिङ्गमें उपरका दो भाग मिटा देनेसे 'व्रपुष' नामक लिङ्ग होता है। यह (व्रपुष) अनावृत्सशक शिवलिङ्गका सिर माना गया है। अब अर्द्ध-चन्द्राकार सिरके विषयमें सुनो—शिवलिङ्गके प्रान्तभागमें एक अंशके चार अंश करके एक अंशको त्याग दिया जाय तो वह 'अमृताक्ष' नाम धारण करता है। दूसरे, तीसरे और चौथे अंशका लोप करनेपर क्रमशः उन शिवलिङ्गोंकी 'पूर्णेन्दु,' 'बालेन्दु' तथा 'कुमुद' संज्ञा होती है। ये क्रमशः चतुर्मुख, चिमुख और एकमुख होते हैं। इन तीनोंको 'मुखलिङ्ग' भी कहते हैं। अब मुखलिङ्गके विषयमें सुनो—पूजाभागकी त्रिविधि कल्पना करनी चाहिये—मूर्तिपूजा, अग्निपूजा तथा पदपूजा। पूर्ववत् द्वादशांशका त्याग करके छः भागोंद्वारा छः स्थानोंकी अभिव्यक्ति करे। रिको ऊँचा करना चाहिये तथा ललाट, नामिका, मुख, चिमुख तथा ग्रीवाभागको भी स्पष्टतया व्यक्त करे। चार भागों (या अंशों) द्वारा दोनों भुजाओं तथा नेत्रोंको प्रकट करे। प्रतिमाके प्रमाणके अनुसार मुकुलाकार हाथ बनाकर विस्तारके अष्टमांशसे चारों मुखोंका निर्माण करे। प्रत्येक मुख सब ओरसे सम होना चाहिये। यह मैने चतुर्मुखलिङ्गके विषयमें बताया है; अब त्रिमुखलिङ्गके विषयमें बताया जाता है, सुनो—॥ ३९-४४ ॥

त्रिमुखलिङ्गमें चतुर्मुखकी अपेक्षा कान और पैर अधिक रहेंगे। ललाट आदि अंशोंका पूर्ववत् ही निर्देश करे। चार अंशोंसे दो भुजाओंका निर्माण करें, जिनका पिछला भाग सुहृद एवं सुपुष्ट हो। विस्तारके अष्टमांशसे तीनों मुखोंका विनिर्माण (प्राकट्य) हो। [अब एकमुखलिङ्गके विषयमें सुनो—] एकमुख पूर्व दिशामें बनाना चाहिये; उसके नेत्रोंमें सौख्यभाव रहें। (उग्रता न हो।) उसके ललाट, नामिका, मुख और ग्रीवामें विर्वर्तन (विशेष उभाइ) हो। बाहु-विस्तारके पञ्चमांशसे पूर्वीक अंशोंका निर्माण होना चाहिये। एकमुखलिङ्गको बाहुरहित बनाना

चाहिये । एकमुखलिङ्गमें विस्तारके छठे अंशसे मुखका है, उन सबका शिरोभाग त्रिपुष्टाकार या कुकुद्याप्तके निर्णयन हितकर कहा गया है । मुखयुक्त जितने भी लिङ्ग समान गोलाकार होना चाहिये ॥ ४५-४८ ॥

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें लिङ्गमान एवं व्यक्ताव्यक्त लक्षण आदिका वर्णन । नामक चौबनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ अध्याय

पिण्डिकाका लक्षण

श्रीभगवान् हयग्रीष कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं प्रतिमाओंकी पिण्डिकाका लक्षण बता रहा हूँ । पिण्डिका लंबाईमें तो प्रतिमाके बराबर होनी चाहिये और चौड़ाईमें उससे आधी । उगकी ऊँचाई भी प्रतिमाकी लंबाईसे आधी हो और उस अद्वंभागके बराबर ही वह मुचिस्तृत हो । अथवा उगका विस्तार लंबाईके तृतीयांशके तुल्य हो । उसके एक तिहाई भागको लेकर मेखला बनाव । प.नी अहनेके लिये जो व्यात या गर्त हो, उगका माप भी मेखलाके ही तुल्य रहे । वह खात उत्तर दिशाकी ओर बुल्लीचा होना चाहिये । पिण्डिकाके विस्तारके एक नौथाई भागमें जलके निकलनेका भाग (प्राणाल) बनाना चाहिये । मूल भागमें उसका विस्तार मूलके ही बराबर हो, परंतु आगे जाकर वह आधा हो जाय । पिण्डिकाके विस्तारके एक तिहाई भागके अथवा पिण्डिकाके आधे भागके बराबर वह जलभाग हो । उसका लंबाई प्रतिमाकी लंबाईके तुल्य ही बतायी गयी है । अथवा प्रतिमा ही इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'पिण्डिकाके लक्षणका वर्णन' नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

उसका लंबाईके तुल्य हो । इस व्यातको अच्छी तरह समझकर उसका सूचपात करे ॥ १-९ ॥

प्रतिमाकी ऊँचाई पूर्ववत् भोल्ह भागकी संख्याके अनुसार करे । लः और दो अथात् आठ भागोंको नौचिके आधे अङ्गमें गतार्थ करे । इससे ऊरके तीन भागको लेकर कण्ठका निर्माण करे । शेष भागोंको एक-एक करके गांडिष्ठा, निर्गम तथा पटिका आदिगे विभाजित करे । यह सामान्य प्रतिमाओंमें पिण्डिकाका लक्षण बताया गया है । प्रासादके द्वारके दैश्य-निलारके अनुसार प्रतिमा-गृहका भी द्वार कहा गया है । प्रतिमाओंमें हाथी और ब्याल (सर्प या व्याघ आदि) की मूर्तियोंसे युक्त तन्त्र-देवताविश्वक शोभाकी रचना करे ॥ ६-८ ॥

श्रीहरिका पिण्डिका भा मदा शथोचित शोभामें सम्पन्न बनाया जानी चाहिये । सभी देवताओंकी प्रतिमाओंके लिये वही मान बताया जाता है, जो विष्णु-प्रतिमाके लिये कहा गया है तथा सम्पूर्ण देवियोंके लिये भी वही मान बताया जाता है, जो लक्ष्माजी की प्रतिमाके लिये कहा गया है ॥ ९१० ॥

छृपनवाँ अध्याय

प्रतिष्ठाके अङ्गभूत मण्डपनिर्माण, तोरण-स्तम्भ, कलश एवं ध्वजके स्थापन तथा दस दिक्पाल-यागका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीष कहते हैं—ब्रह्मन् ! मैं प्रतिष्ठाके पाँच अङ्गोंका वर्णन करूँगा । प्रतिमा पुरुषका प्रतोक है तो पिण्डिका प्रकृतिका । अथवा प्रतिमा नारायणका स्वरूप है तो पिण्डिका लक्ष्मीका । उन दोनोंके योगको 'प्रतिष्ठा' कहते हैं । इसलिये इच्छानुसर पल चाहनेवाले मनुष्योंद्वारा इष्ट-देवताकी प्रतिष्ठा (स्थापना) की जाती है । आचारको

चाहिये कि वह भन्दिरके सामने गर्भसूत्रको निकालकर आठ, सेल्ह अथवा वीस हाथका मण्डप तैयार करे । इनमें आठ हाथका मण्डप 'निम्न', सोल्ह हाथका 'मध्यम' और बीस हाथका 'उत्तम' माना गया है । मण्डपमें देवताके स्नानके लिये, कलश-स्थापनके लिये तथा वाग सम्बन्धी द्रव्योंको रखनेके लिये आघा स्थान मुरक्कित कर ले । फिर मण्डपके

आथे या तिहाई भागमें सुन्दर वेदी बनावे । उसे बड़े-बड़े कलशों, छोटे-छोटे घड़ों और चंदोवे आदिसे विभूषित करे । पञ्चगव्यसे मण्डपके भीतरके स्थानोंका प्रोक्षण करके वहाँ सब सामग्री रखते । तत्पत्रात् गुरु वस्त्र एवं माला आदिसे अलंकृत हो, भगवान् विष्णुका ध्यान करके उनका पूजन करे ॥ १—५ ॥

अङ्गूठो आदि भूषणों तथा प्रार्थना आदिसे मूर्तिपालक विद्वानोंका सत्कार करके कुण्ड-कुण्डपर उन्हें विठावे । वे वेदोंके पारंगत हों । चौकोर, अधर्चन्द्र, गोलाकार अथवा कमल-सदृश आकारवाले कुण्डोंपर उन विद्वानोंको विराजमान करना चाहिये । पूर्व आदि दिशाओंमें तोरण (द्वार) के लिये पांचल, गूलर, बट और पळ्लके वृक्षके काष्ठका उपयोग करना चाहिये । पूर्व दिशाका द्वार ‘मुशोभन’ नाममें प्रसिद्ध है । दक्षिण दिशाका द्वार ‘मुभद्र’ कहा गया है, पश्चिमका द्वार ‘मुकर्मा’ और उत्तरका ‘सुहंत्र’ नाममें प्रसिद्ध है । ये सभी तोरण स्तम्भ पॉच हाथ ऊँचे होने चाहिये । इनकी स्थापना करके ‘स्तोनो शृथिविनो—’ (शु० यजु० ३६ । १३) इस मन्त्रसे पूजन करे । तोरण-स्तम्भके मूलभागमें मङ्गल अङ्कुर (आम्र-पलव, यवाङ्कुर आदि)से युक्त कलश स्थापित करे ॥ ६—९ ॥

तोरणस्तम्भके ऊपरी भागमें मुद्रानचक्रकी स्थापना करे । इसके अतिरिक्त विद्वान् पुरुषोंको वहाँ पॉच हाथका ध्वज स्थापित करना चाहिये । उस ध्वजकी चौड़ाई सोलह अङ्कुलकी हो । सुरशेष ! उस ध्वजका दण्ड सात हाथ ऊँचा होना चाहिये । अशगवर्ण, अर्घनवर्ण (धूम्रवर्ण), कृष्ण, शुक्र, पीत, रक्त तथा श्वेत—ये वर्ण कमशः पूर्वादि दिशाओंके ध्वजमें होने चाहिये । कुमुद, कुमुदाक, पुण्डरीक, वामन, शङ्खकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये कमशः पूर्व आदि ध्वजोंके पूजनीय देवता हैं । इनमें करोड़ों दिव्य गुण विद्यमान हैं । कलश ऐसे पके हुए हों कि नुपक विम्बफलके समान लाल दिलायी देते हों । वे एक-एक आढक जलसे पूर्णतः भरे हों । उनकी संख्या एक सौ अङ्कुरहस हो । उनकी स्थापना ऐसे समय करनी चाहिये, जब कि ‘कालदण्ड’ नामक योग न हो । उन सभी कलशोंमें सुर्खण डाला गवा हो । उनके कण्ठभागमें बस्त्र लपेटे गये हों । वे

१. पूरा भव इस लक्ष्यर है—ॐ स्तोना शृणुवि नो मतानृक्षरा निवेशनी । यस्ता नः शर्मं तत्त्वाः ॥ (शु० यजु० ३६ । १३)

जलपूर्ण कलश तोरणमें बाहर स्थापित किये जायें ॥ १०—१५ ॥

वेदोंके पूर्व आदि दिशाओं तथा कोणोंमें भी कलश स्थापित करने चाहिये । पहले पूर्वादि चारों दिशाओंमें चार कलश स्थापित करे । उस समय ‘आजिन्द्रे कलशं’ आदि मन्त्रका पाठ करना चाहिये । उन कलशोंमें पूर्वादि दिशाओंके मन्त्रसे इन्द्र आदि दिवपालोंका आवाहनपूर्वक पूजन करे । इन्द्रका आवाहन करते समय इस प्रकार कहे—‘ऐरावत हाथीपर बैठे और हाथमें बड़ा धारण किये देवराज इन्द्र ! यहाँ आइये और अन्य देवताओंके साथ मेरे पूर्व द्वारकी रक्षा कीजिये । देवताओंसहित आपको नमस्कार है ।’ इस तरह आवाहन करके विद्वान् पुरुष ‘त्रातारभिन्दम्’—इत्यादि मन्त्रसे उनकी अर्चना एवं आरानना करे ॥ १६—१८ ॥

इसके बाद निम्नाङ्कितम्बसे अनिदेवका आवाहन करे—‘वकरेपर आरुष शक्तिधारी एवं वलशाली अभिदेव ! आइये और देवताओंके साथ अग्निकोणकी रक्षा कीजिये । यह पूजा ग्रहण कीजिये । आपको नमस्कार है ।’ तदनन्तर ‘अग्निमूर्द्धी’ इत्यादिसे अथवा ‘अग्न्ये नमः ।’—इस मन्त्रमें अग्निकी पूजा करे । यमराजका आवाहन—‘महियपर आरुष, दण्डधारी, महावर्ली सूर्यपुत्र यम ! आप यहाँ पधारिये और दक्षिण द्वारकी रक्षा कीजिये । आपको नमस्कार है ।’ इस प्रकार आवाहन करके ‘वैवस्तं सङ्गमनम्’ इत्यादि मन्त्रसे यमराजकी पूजा करे । निर्वृतिका आवाहन—‘बल और वाहनसे सम्पन्न खड़गधारी निर्वृति ! आइये । आपके लिये यह अर्थ है, यह पाठ है । आप नेश्वर्त्य दिशाकी रक्षा कीजिये ।’ इस तरह आवाहन करके ‘एष ते निर्वृते’ इत्यादिसे मनुष्य अर्थ आदि उपचारोंद्वारा निर्वृतिकी पूजा करे ॥ १९—२२ ॥

२—आजिन्द्र कलशं मद्या त्वा विश्वनिवन्दवः । पुनरुर्जा निवत्स्तु
सा नः सहस्रं धुस्तोरुधारा पवस्ती पुनर्माविशताद्रयिः ॥
(यजु० ८ । ४२)

३—त्रातारभिन्दमवितारभिन्द । इवे इवे सुहवर शूरभिन्दम् ।
इत्यामि शकं पुरुषत्वमिन्द्र । स्वस्ति नो मधवा धात्विन्दः ॥
(यजु० २० । ५०)

४. अग्निमूर्द्धी दिवः कम्त्रत्वतः पृथिव्या अवम् । अपार रेतादति
क्षिप्ति ॥
(यजु० २ । १२)

५. एष ते निर्वृते भागस्तं तुरस्तं त्वाशा । (यजु० ९ । ३५)

ब्रह्मका आवाहन—भक्तपर आरुद्ध पश्चाधारी महाबली ब्रह्मदेव ! आइये और पश्चिम द्वारकी रक्षा कीजिये । आपको नमस्कार है । इस प्रकार आवाहन करके, ‘उह हि राजा ब्रह्मः०’ इत्यादि मन्त्रोद्घारा आचार्य ब्रह्म-देवताका अर्थ आदिमे पूजन करे । वायुदेवताका आवाहन—अपने वाहनपर आरुद्ध ध्वजधारी महाबली ब्रह्मदेव ! आइये और देवताओं तथा मरुद्रोणके भाथ वायुव्यक्तोणका रक्षा कीजिये । आपको नमस्कार है । ‘वातं आवातु०’ इत्यादि वैदिक मन्त्रसे अथवा ‘ॐ नमो वायवे०’ इस मन्त्रसे वायुकी पूजा करे ॥ २३—२५३ ॥

सोमका आवाहन—‘बल और वाहनसे सम्बन्ध गदाधारी सोम ! आप यहाँ पधारिये और उत्तर द्वारकी रक्षा कीजिये । कुबेरमहित आपको नमस्कार है ।’ इस प्रकार आवाहन करके, ‘सोमं राजानं’ इत्यादिमे अथवा ‘सोमाय नमः ।’ इस मन्त्रसे सोमकी पूजा करे । इत्यानका आवाहन—‘वृषभपर

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें ‘दस दिक्-पालोंके पूजनका वर्णन’ नामक छपनबाँ अव्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

आरुद्ध महाबलशाली शुलधारी ईशान ! पधारिये और यह मण्डपकी ईशान-दिशाका संस्थण कीजिये । आपको नमस्कार है । इस प्रकार आवाहन करके ‘ईशानमस्त०’ इत्यादिसे अथवा ‘ईशानाय नमः ।’ इस मन्त्रसे ईशानदेवताका पूजन करे । ब्रह्माका आवाहन—‘हाथके अग्रभागमें सुक् और सुवा लेकर हगपर आरुद्ध हुए अजन्मा ब्रह्माजी । आइये और लोकमहित यशमण्डपकी ऊर्ध्व-दिशाकी रक्षा कीजिये । आपको नमस्कार है ।’ इस प्रकार आवाहन करके ‘हिरण्यगर्भः०’ इत्यादिसे अथवा ‘नमस्ते ब्रह्मणे’ इस मन्त्रसे ब्रह्माजीकी पूजा करे ॥ २६—२० ॥

अनन्तका आवाहन—‘कण्ठपका पीटपर विराजमान, नागगणोंके अधिपति, चक्रधारी अनन्त ! आइये और नीन्यकी दिशाकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । अनन्तेश्वर ! आपको नमस्कार है ।’ इस प्रकार आवाहन करके ‘नमोऽस्तु सर्वेभ्यो’ इत्यादिसे अथवा ‘अनन्ताय नमः ।’ इस मन्त्रसे भगवान् अनन्तकी पूजा करे ॥ ३१-३२ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय कलशाभिवासकी विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयश्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! प्रतिष्ठाके लिये अथवा देवपूजनके लिये जिम भूमिको ग्रहण कर, वहाँ नारसिंह-मन्त्रका पाठ करते हुए राक्षसोंका अपसारण करने-वाले अक्षत और सररों छीटे तथा पञ्चग्रन्थसे उस भूमिका प्रोक्षण करे । रत्नयुक्त कलशपर अङ्ग देवताओंसहित श्रीहरिका पूजन करके, वहाँ अस्त्र-मन्त्रसे एक सौ आठ करकों (कमण्डलओं) का पूजन करे । अविच्छिन्न धारासे

बेदीका मेचन करके वहाँ बीहि (धान, जौ आदि) को संस्कारपूर्वक विवेरे तथा कलशको प्रदत्तिणाक्रामसे बुझाकर उस विवेरे हुए अचके ऊपर स्थापित करे । बस्त्रवेष्टित कलशपर पुनः भगवान् विष्णु और लक्ष्मीकी पूजा करे । तत्प्रश्नात् ‘योगेयोगे०’ इत्यादि मन्त्रसे मण्डलमें शय्या स्थापित करे । स्नान-मण्डपमें कुशके ऊपर शय्या और शय्याके ऊपर तूलिका (रुईभरा गदा) विछाकर, दिशाओं

६. उह हि राजा ब्रह्मशक्तार सर्वाय पञ्चमन्त्रेन्वा ३ । अपदे पादा प्रतिष्ठात्वेऽकस्तापवत्ता हृदयाविवशित् ।

(अ० म० १ स० २४ । ८)

७. वात आ वातु मेषजं शम्भुर्वो भु नो हृदे । प्रण आर्यूषि तारिष्ट ॥ (अ० म० १० श० १८६ । १)

८. सोमर राजानमवसेऽर्गिन गोमिहवामहे । आदित्यान् विष्णुं सर्वं ब्रह्माणं च ब्रह्मत्विम् । (अ० म० १० श० १८१ । ३)

तत्प्रश्न० ९ । २६)

९. हिरण्यगर्भः समवर्तताये भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाखार पूर्विर्वाणुमोक्षमै देवाय इविपा विषयम् ॥

(यजु० १३ । ४)

१०. नमोऽस्तु सर्वेभ्यो ये के न शक्षिन्मनु । ये अस्तरिष्टे ये दिवि तेज्यः सर्वेभ्यो नमः ॥

(यजु० १३ । ६)

* योगेयोगे नवस्तरं काजे वाजे हवामहे । सर्वाय हृदशूलये ॥

(यजु० ११ । १४)

और विदिशाओंमें विद्याधिपतियों (भगवान् विष्णुके ही विभिन्न विग्रहों) का पूजन करे । पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम और बासनका तथा अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः श्रीधर, हर्षीकेश, पश्चनाम एवं दामोदरका पूजन करे । दामोदरका पूजन ईशानकोणमें होना चाहिये ॥ १-६ ॥

इस तरह पूजन करनेके पश्चात् स्नानमण्डपके भीतर ईशानकोणमें स्थित तथा वेदीसे विभूषित चार कलशोंमें स्नानोपयोगी सब द्रव्योंको लाकर ढाले । उन कलशोंको चारों दिशाओंमें विराजमान कर दे । भगवान्के अभिरेकके लिये संचित किये गये वे कलश बड़े आदरके गाथ रखने योग्य हैं । पूर्व दिशाके कलशमें बड़, गूलर, पीपल, चम्पा, अशोक, श्रीद्रुम (विल्व), पलाश, अर्जुन, पाकड़, कटम, मौलिरी और आमके पल्लवोंको लाकर ढाले । दक्षिणके कलशमें कमल, गोचरा, दूर्वा, कुशकी मुँही, जारापुष्प, कुन्द, इवेतनन्दन, रत्नन्दन, सरणों, तगर और अक्षत ढाले । पश्चिमके कलशमें सोना, चौदी, समुद्रगमिनी नर्दोंके दोनों तटोंकी मिट्ठी, विशेषतः गङ्गाकी मृत्तिका, गोबर, जौ, अगहनी धानका चावल और तिल छोड़े ॥ ७-१२ ॥

उत्तरके कलशमें विष्णुर्णी (भुई आँवला), शालपर्णी (मरिवन), भृगुराज (भैंगरीया), शतावरी, सहदेवी (सहदेहया), बच, मिही (कटेरी या भजूगा), वला (वरेटी), व्याघ्री (कटेहरी) और लक्षणा—इन ओग्यियोंको छोड़े । ईशानकोणवर्ती अन्य कलशमें माझलिक वस्तुएँ छोड़े । अग्निकोणस्य दूसरे कलशमें बोर्वा आदि मात स्थानोंकी मिट्ठी छोड़े । नैश्चल्यकोणवर्ती अन्य कलशमें गङ्गाजीकी

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'कलशाधिवासकी विधिका वर्णन' नामक सत्तावन्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अट्टावनवाँ अध्याय

भगवद्विग्रहको स्नान और शयन करानेकी विधि

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! आन्नार्य ईशानकोणमें एक होमकुण्ड तैयार करे और उसमें वैष्णव-अग्निकी स्थापना करे । तदनन्तर गायत्री-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ देकर सम्पात-विधिसे कलशोंका प्रोक्षण करे । तदनन्तर मूर्तिपालक विद्वानों तथा शिल्पियोंसहित

बाल और जल ढाले तथा आयव्यकोणवर्ती अन्य कलशमें सूकर, ब्रुषम और गजराजके दाँत एवं सीगोंदारा कोड़ी हुई मिट्ठी, कमलकी जड़के पासकी मिट्ठी तथा इतर कलशमें कुदाके मूल भागकी मृत्तिका ढाले । इसी तरह किसी कलशमें तीर्थ और पर्वतोंकी मृत्तिकाओंसे युक्त जल ढाले, किसीमें नागेक्षरके पूल और केसर छोड़े, किसी कलशमें चन्दन, अगुर और कपूरसे पूरित जल भरे और उसमें वैदूर्य, विद्वुम, मुना, स्फटिक तथा वज्र (हीरा)—ये पाँच रत्न ढाले ॥ १३-१८ ॥

इन सबको एक कलशमें ढालकर उसीके ऊपर इष्ट-देवताकी स्थापना करे । अन्य कलशमें नदी, नद और तालायोंके जलसे युक्त जल छोड़े । इक्ष्यासी पदवाले वास्तु-मण्डलमें अन्यान्य कलशोंकी स्थापना करे । वे कलश गन्धोदक आदिमें पूर्ण हैं । उन सबको श्रीसूक्तसे अभिमन्त्रित करे । जौ, गरमो, गन्ध, कुद्याग्र, अक्षत, तिल, फल और पुष्प—इन सबको अध्यंके लिये पात्रविशेषमें संचित करके पूर्व दिशाकी ओर रख दे । कमल, श्यामला, दूर्वादल, विष्णुक्रान्ता और कुश—इन सबको पात्र-निवेदनके लिये दक्षिण भागमें स्थापित करे । मधुपक पश्चिम दिशामें रखें । कड्डोल, लकड़ और मुन्द्र जायफल—इन सबको आचमनके उपयोगके लिये उत्तर दिशामें रखें । अग्निकोणमें दूर्वा और अक्षतमें युक्त एक पात्र नीरजना (आरती उतारने)के लिये रखें । वायव्यकोणमें उद्वर्तनपात्र तथा ईशानकोणमें गन्ध-पिष्टसे युक्त पात्र रखें । कलशमें सुरमामी (जटामांसी), आँवला, सहदेहया तथा हल्दी आदि छोड़े । नीरजनाके लिये अड्सठ दीपोंकी स्थापना करे । शङ्ख तथा धानुनिर्मित चक्र, श्रीवत्स, वज्र एवं कमलपुष्प आदि गंग-विशेष पुष्प सुवर्ण आदिके पात्रमें सजित करके रखें ॥ १९-२६ ॥

यजमान बाजे-गाजेके साथ काष्ठशाला (कारीगरकी कर्म-शाल) में जाय । वहाँ प्रतिमावर्ती इष्टदेवताके दाहिने हाथमें कौतुक सूत (कङ्कण आदि) बाँधे । उसे बाँधते समय 'विष्णवे विष्णिविष्टाव नमः ।'—इस मन्त्रका पाठ करे । उस समय आचार्यके हाथमें भी ऊनी सूत, सरसों और

रेशमी बख्ते कौतुक बाँध देना चाहिये । मण्डलमें सबस्त
प्रतिमाकी स्थापना और पूजा करके उसकी स्तुति करते हुए
कहे—‘विश्वकर्माकी बनायी हुई देवेश्वरि प्रतिमे ! तुम्हें
नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत्को प्रभावित करनेवाली
जगदम्ब ! तुम्हें मेरा बारंबार प्रणाम है । ईश्वरि ! मैं
तुममें निरामय नारायणदेवका पूजन करता हूँ । तुम
शिल्प-सम्बन्धी दोषोंसे रहित हो; अतः मेरे लिये सदा
समृद्धिशालिनी बनी रहो’ ॥ १-५३ ॥

इस तरह प्रार्थना करके प्रतिमाको स्नान-मण्डपमें ले
जाय । शिल्पीको यथेष्ट द्रव्य देकर सुनुष्ट करे । गुरुको
गोदान दे । ‘चिंत्रं हैवानाऽ’ इत्यादि मन्त्रसे प्रतिमाका
नेघोन्मीलन करे । ‘अग्नैज्योतिः०’ इत्यादि मन्त्रसे हृषि-
संचार करे । फिर भद्रपीठपर प्रतिमाको स्थापित करे ।
तत्पश्चात् आनांश श्वेत पुण्ड्र, धी, सरस्मौ, दूर्वादल तथा
कुशाग्र हृष्टदेवके मिरपर चढाव ॥ ६-८ ॥

इसके बाद 'मधु वैता०' इत्यादि मन्त्रसे गुरु प्रतिमाके नेत्रोंमें अञ्जन करे । उन समय 'हिरण्यगर्भः' इत्यादि तथा 'इम् मे बरुण' (यजु० २१ । १) इत्यादि मन्त्रोंका कीर्तन करे । तत्पश्चात् पुनः 'पृतैवती' शृच्चाका पाठ करते हुए पृतका अभ्यन्न लगावे । इसके बाद मसूरके बेसनसे उबटनका काम लेकर 'अतो०' देवा००' इत्यादि मन्त्रका कीर्तन

१. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुमित्रस्य बहुणसामने: ।
आ प्रा धावापृथिवी अगररिक्ष २ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च
स्वाहा ॥ (यजु० ७ । ४२ तथा १३ । ४६)
 २. अग्निर्योनियोनिर्योनिर्योनिः स्वाहा स्यां यज्ञो यज्ञोतिर्योति:
सूर्यः स्वाहा । अग्निर्योनियोनिर्योति: स्वाहा स्यां चत्रो यज्ञोतिर्योति:
स्वाहा । यज्ञोति: सूर्यः स्यां यज्ञोति: स्वाहा ॥ (यजु० ३ । ९)
 ३. मधु वाना जलायते मधु क्षरन्ति गिन्धवः । माध्यीर्णः सन्त्वोषधीः ॥
मधु नक्षमुनोषसो मधुमयाखिंचरजः । मधु धौरस्तु नः पिता ॥
मधुमान्नो बनस्पति मधुमार्जमधुरन्तु सूर्यः । माध्यीर्णो भवन्तु नः ॥
(यजु० १३ । २७, २८, २९)
 ४. (यजु० १३ । ४) यह मन्त्र अच्याय ५६ की टिप्पणी में
दिया जा चुका है ।
 ५. इतती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुषे सुपेशसा । आवा
पृथिवी बहुणस्य धर्मणा विष्णुमिते अजरे भूरिरेतसा ॥
(यजु० ३४ । ४५)
 ६. अतो देवा अभन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तशामग्निः ॥
(यजु० ८० १, ४० २२ । १६)

करे । फिर 'सप्तैं ते अन्ने०' इत्यादि मन्त्र बोलकर गुह गर्म जलसे प्रतिमाका प्रक्षालन करे । तदनन्तर 'अुपर्दीविद०' इत्यादि मन्त्रसे अनुलेपन और 'आरो३ हि ष्टा०' इत्यादिसे अभिषेक करे । अभिषेकके पश्चात् नदी एवं तीर्थके जलसे स्नान कराकर 'पावामानी' श्रूत्या (शु० वजु० १९-४३)का पाठ करते हुए, रत्न-स्थानसे युक्त जलद्वारा स्नान करावे । 'समुद्रं' गच्छ स्वाहा० इत्यादि मन्त्र पढ़कर तीर्थकी मृत्तिका और कलशके जलसे स्नान करावे । 'शं ऊ०' वेदी००० इत्यादि तथा गायत्री-मन्त्रसे गरम जलके द्वारा इष्टदेवकी प्रतिमाको नहचावे ॥ १-१३ ॥

‘हृष्णगर्भः०’ हत्यादि मन्त्रसे पाँच प्रकारकी मृत्तिकाओं-
द्वारा परमेश्वरको स्नान कराने । इसके बाद ‘हृष्म मे गंडे
यसुने०’ हत्यादि मन्त्रसे शालुकामित्रित जलके द्वारा तथा
‘तद् विष्णोः०’ हत्यादि मन्त्रसे वाँवीकी मिट्टी मिले हुए जलसे
पूर्ण घटके द्वारा भगवान्को स्नान करावे । ‘आ॑ औषधी॒०’

७. सप्त ते अग्ने समिथः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम
प्रियाणि । सप्त होत्राः सप्त त्वा यजन्ति सप्त योनीरा-
ष्टपत्ता श्वरेन स्वाहा । (यजु० १७ । ७९)

८. द्रुपदादिव मुमुक्षानः स्तिवन्नः स्नातो मलादिव । पूर्तं
पवित्रेणवाच्यमापाः शून्धन्तु मैनसः ॥ (यजु० २० । २०)

९. आपो हि ष्ठा भयोभुवस्ता न उज्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥
यो वः शिवर्मो रससत्स्य भाजयदेह नः । उशीरिव मातरः ॥
तस्मा अरं गमाम बो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥
(यजु० ११ । ५०, ५१, ५२)

१०. समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देव ३ सवितारं
गच्छ स्वाहा भित्रावन्णी गच्छ स्वाहाहोत्रे गच्छ स्वाहा
छन्दाऽपि गच्छ स्वाहा वाचापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ
स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नमो गच्छ स्वाहान्तिनैवेशानरं
गच्छ स्वाहा । मनो मे हारिं वच्छ दिवं ते वूमो गच्छतु
स्वज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ॥ (यजु० ६ । २१)

११. शं नो देवीरभीष्टव आपो भवन्तु पीतये शं योरेति ज्वन्तु नः ।
(अथर्वदे० १ । ६ । १)

१२. तद् विष्णोः परमं पदं ३ सदा पश्यन्ति दृश्यः । दिवीव
न्युत्प्रततम् ॥ (यजु० ६ । ५)

१३. या ओषधीः पूर्वा जाता देवेन्यग्निसुगं पुरा । मनेनु
बद्धाणामह ३ इतं धामनि सप्त च ॥ (यजु० १२ । ७५)

इत्यादि मन्त्रसे ओषधिमिश्रित जलके द्वारा, 'यज्ञा यज्ञा' इत्यादि मन्त्रसे आँखें आदि कमैले पदार्थोंसे मिश्रित जलके द्वारा, 'पयः पृथिव्यां०' इत्यादि मन्त्रसे पञ्चगव्योद्वारा तथा 'याः कलिनीः०' इत्यादि मन्त्रसे फलमिश्रित जलके द्वारा भगवान्को नहलावे । 'विश्वतदश्चुँ०' इत्यादि मन्त्रसे उत्तरवर्ती कलशद्वारा, 'सोमं॒ राजानं०' इस मन्त्रसे पूर्ववर्ती कलशद्वारा, 'विष्णो रराटमसि०' इत्यादि मन्त्रमें दक्षिणवर्ती कलशद्वारा तथा 'है॒मः शुचिरदू०' इत्यादि मन्त्रमें पश्चिमवर्ती कलशद्वारा भगवान्को उद्दर्तन-स्नान करावे ॥ १४-१७ ॥

'मूर्ढानं दिवो०' इत्यादि मन्त्रसे आँखें मिले हुए जलके द्वारा, 'मा नस्तोके०' इत्यादि मन्त्रसे जटामांसामिश्रित

१४. यज्ञा यज्ञा वो अनन्ये गिरा गिरा च दक्षसे । प्र प्र वयमस्तु जातवेदस प्रियं पित्रं न शश सितम् ॥ (यजु० २७ । ४२)

१५. पयः पृथिव्या पय ओषधीषु पयो दिव्यन्नरिते पयो धाः । पयस्तीः प्रदिशः सन्तु मात्रम् ॥ (यजु० १८ । ३६)

१६. याः कलिनीयो अफला अपुणा याइन पुष्पिणीः । वृषभस्त्रिप्रद्युम्ना नो मुञ्चन्वत्तरैः० ॥ (यजु० १२ । ८९)

१७. विद्वतश्चक्षुरुन् विद्वनोऽसुखो विद्वनोवाकुरुन् विद्वनस्पात् । सं वाकुन्या धमति सं पत्रैर्यावामूर्मा जनयन्देव एकः ॥ (यजु० १७ । १९)

१८. सोमं॒ राजानमवसेऽग्निमन्त्रारभामहे । आदित्यानिविष्णु॒ सूर्यं ब्रह्माणं च बृद्धस्पति॒ स्वाहा ॥ (यजु० ० । २६)

१९. विष्णो रराटमसि विष्णोः श्वर्णे स्तो विष्णोः स्वरूपि विष्णो-
मूर्खोऽस्ति वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ (यजु० ५ । २१)

२०. है॒ सः शुचिरद्वारन्तरिक्षसदोना वैदिषदतिर्थुरोणसत् । नृथद्रसदृशोमसदस्त्वा गोजा अत्तजा अतिजा अन्त ब्रह्मत् ॥ (यजु० १० । २४)

२१. मूर्ढानं दिवो अरति पृथिव्या वैशानरमृतं वा जनमग्निम् । कविर् सक्रान्तमार्थिं जनानामासक्ता पात्रं जनयन् देवाः ॥ (यजु० ७ । २४)

२२. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोपु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भाषिलो वर्षीहविष्मन्त्रासदभित्वा हवामहे ॥ (यजु० १६ । १६)

जलके द्वारा, 'गन्धद्वारां०' इत्यादि मन्त्रसे गन्धमिश्रित जलके द्वारा तथा 'इदमापः०' इत्यादि मन्त्रसे इक्षासी पदोंवाले वासुमण्डलमें रक्खे गये कलशोद्वारा भगवान्को नहलावे । इस प्रकार स्नानके पश्चात् भगवान्को सम्बोधित करके कहे—'भगवन् । समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले सर्वव्यापी वासुदेव । आहये, आहये, इस यज्ञभागको ग्रहण कराजिये । आपको नमस्कार है ।' इस प्रकार देवेश्वरका आवाहन करके उनके हाथमें बैंधा हुआ मङ्गलसूत्र खोल दे । उन्हें खोलते समय 'मुञ्चामि त्वा०' इस मन्त्रका पाठ करे । इसी मन्त्रसे आचार्यका भी कौतुकसूत्र खोल दे । तदनन्तरं 'हिरण्यमयेन०' इत्यादि मन्त्रमें पाश और 'अतो देवाः०' (शूक्र० १ । १३ । ६) इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य दे । किं 'अधू वाताः०' इत्यादि मन्त्रसे मधुपुकं देवर अथि॑ गृह्णामि०' इत्यादि मन्त्रसे आचमन करावे । तत्पश्चात् वद्वान् पुरुष 'अक्षमन्तर्मामदन्त०' इत्यादि मन्त्र पढ़कर भगवान्के श्रीअङ्गोपर दूर्वा एवं अक्षत तिक्किवेरे ॥ १८-२२ ॥

'काण्डात्०' इत्यादि मन्त्रसे निर्मच्छन करे । 'गन्धवती०' इत्यादिसे गन्ध अर्पित करे । 'उच्चामिऽ०' इस मन्त्रसे पूल-
२३. गन्धद्वारां दुराधर्षो नित्यपुष्टां कर्त्तिपीम् । इंकरी सर्वभूताना नामिदोपहृये अथिम् ॥ (श्रीसूक्त)

२४. इदमापः प्रवद्वावध च मल च थृत । वचार्पिदुर्दोऽनुनां यच देहे अर्भासाम् । आपो मा नस्तोनसः पवानश्च मुञ्चतु ॥ (यजु० ६ । १७)

२५. मुञ्चामि त्वा इविषा जीवनाय कमशान्तयस्मादुन् राजवद्यमान् । ग्राहिंज्याह वदि वैनदेनं तस्या इन्द्रिया प्रमुकमेनम् ॥ (शूक्र० ८० । १०, द० । १६२ । १)

२६. हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । योऽसावादित्ये पुरुषः साऽसावाहम् ॥ (यजु० ४० । १७)

२७. मयि गृह्णाम्येऽपिनिः रावस्योवाय सुप्रजासत्त्वाय सुबीर्योव । मामु देवताः सचन्नाम् ॥ . (यजु० १३ । १)

२८. अक्षमन्तर्मामदन्त शब्द प्रिया अथूपत । अस्तोपत स्वभान्वो विष्णा नविष्णवा मती योजा निवद्वते इरी ॥ (यजु० ३ । ५१)

२९. काण्डात्माण्डात्परोहन्नी पुरुषः पुरुषस्परि । पवा नो दूर्वे प्रनु सहस्रेण शतेन च ॥ (यजु० १३ । २०)

३०. 'गन्धद्वारां०' इत्यादि मन्त्र ही यहाँ गन्धवी नामसे गृहीत होते हैं ।

मात्र और 'इदं विष्णुः०' इत्यादि मन्त्रसे पवित्रक अर्पित करे। 'बृहस्पते०' इत्यादि मन्त्रसे एक जोड़ा बन चढ़ावे। 'वेदाहमेतम्०' इत्यादिसे उत्तरीय अर्पित करे। 'महावतेन०' इस मन्त्रसे फूल और औषध—इन सबको चढ़ावे। तदनन्तर 'धूरसि०' इस मन्त्रसे धूप दे। 'विआद०' सूक्तसे अङ्गन अर्पित करे। 'युज्ञन्ति०' इत्यादि मन्त्रसे तिलक लगावे तथा 'दीर्घात्माव०' (अथर्व० २।४।१) इस मन्त्रसे पूलमाल चढ़ावे। 'इन्द्रं भगवान्मित०' (अथर्व०७।४।२) इत्यादि मन्त्रसे छंच, 'विराट०' मन्त्रसे दर्पण, 'विकर्ण०' मन्त्रसे चंचर तथा 'श्वन्नर' साम-मन्त्रमें आभूषण निवेदित करे॥ २३-२६॥

बायुदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोद्धारा व्यजन, 'मुखामि त्वा' (शृङ्क० १०।१६।११) इस मन्त्रसे फूल तथा वेदादि (प्रणव)-युक्त पुरुषसूक्तके मन्त्रोद्धारा श्रीहरिकी स्तुति करे। ये सारी वस्तुएँ पिण्डिका आदिपर तथा शिव आदि देवताओंपर इसी प्रकार नढ़ावे। भगवान्को उठाते समय 'सौपर्णी' सूक्तका पाठ करे। 'प्रभो ! उठिये' ऐसा कहकर भगवान्को

इस प्रकार आदि आनन्द महापुण्यमें 'स्नपनकी विधि श्रादिका वर्णन' नामक अट्ठावर्गाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

अधिवास-विधिका वर्णन

श्रीभगवान् हयग्रीव कहते हैं—ब्रह्मन् ! श्रीहरिका सांनियकरण 'अधिवासन' कहलाता है। साथक यह चिन्तन करे कि मैं अथवा मेरा आत्मा सर्वश सर्वज्ञानी

पुरुषोत्तमरूप है। इस प्रकार भावना करके आत्माकी (५९) इस नामके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले परमात्माके साथ एकता करे। तदनन्तर नैतन्याभिमानिनो जीव-शक्तिको

- ३१. इदं विष्णुविचक्षमे त्रेषु निदेषे पदम् । समूढमस्य पारं सुरे स्वाहा ॥ (वज्ञ० ५। १५)
- ३२. बृहस्पते अनि यदयो अङ्गुमदिभाति क्रतुभज्जनेतु । यदीदयच्छवस क्रतुप्रजात तदसामुद्रविष्णं वेहि नित्रम् । उपवास-गृहीतोऽनि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥ (वज्ञ० २६। ३)
- ३३. वेदाहमेतं पुरुषं महात्मप्रादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विवित्वाऽनिमृत्युमेति नाम्यः पन्था विष्वतेऽप्यनाम ॥ (वज्ञ० ३१। १८)
- ३४. धूरसि धूर्वं धूर्वन्तं धूर्वं तं योऽस्याधूर्वन्ति तं धूर्वं वयं धूर्वोऽमः । देवानामसि वहितमर्द सत्स्नितमें प्रप्रितमं जुष्टतमं देवदृतमम् ॥ (वज्ञ० १। ८)
- ३५. विआद० बृहस्पतवतु सोम्य मध्यायुर्दध्यवपतावविहृतम् । बातलूतो यो अमिरक्षति तमना प्रकाः पुणो पुरुषा विराजति ॥ (वज्ञ० ३३। ३०)
- ३६. युज्ञन्ति ब्रह्ममहर्वं चरन्तं परि तस्युः । रोचने रोचना दिवि ॥ (वज्ञ० २३। ५)
- ३७. विराद० ज्योतिरशरवशरवाद० ज्योतिरशरवत् । ब्रह्मपर्वत्ता सादवतु पृष्ठे पृष्ठिका ज्योतिष्मतीम् । विश्वमे प्राणकामानाम आनाम विश्वं ज्योतिर्ष्वः । अस्मिन्देविविक्षिता देवतविष्वरवश्चक्षनात्मि ॥ (वज्ञ० १३। २४)
- ३८. विपादूर्वं उदैत्युवशः पादेऽप्तेषामवतुनः । ततो विष्वकूलमध्यात्मालनानन्दने अभि ॥ (वज्ञ० ३१। ४)

उठावे और सप्तष्ठपर्यं शश्यापर ले जाय। उस समय 'शकुनि' सूक्तका पाठ करे। ब्रह्मरथ एवं पालकी आदिके हाता भगवान्को शश्यापर ले जाना चाहिये। 'जलो देवाः' (शृङ्क० १।२२।१६) इस सूक्तसे तथा 'शीश से लक्ष्मीश' (वज्ञ० ३।२२) से प्रतिमा एवं पिण्डिकाको शश्यापर पक्षरावे। तदनन्तर भगवान् विष्णुके लिये निष्कलीकरणकी क्रिया समाप्ति करे॥ २७-२८॥

सिंह, बृषभ, हाथी, व्यजन, कलश, वैजयन्ती (पताका), मेरी तथा दीपक—ये आठ मङ्गलसूचक वस्तुएँ हैं। इन सब वस्तुओंको अश्वसूक्तका पाठ करते हुए भगवान्को दिखावे। 'विपाद०' इत्यादि मन्त्रसे भगवान्के चरण-प्रान्तमें उम्बा (पात्रविशेष), उसका ढक्कन, अधिका (कङ्गाही), दर्विका (करञ्जुल), पात्र, ओखली, मूल, सिल, शाकू, भोजन-पात्र तथा धरके अन्य सामान रखें। उनके सिरकी ओर वस्त्र और रक्षाएँ युक्त एक कलश स्थापित करें, जो खोड़ और खाद्य-पदार्थसे भरा हुआ हो। उस पटकी 'निंद्रा' मंजा होती है। इस प्रकार भगवान्के शयनकी विधि बतायी गयी है॥ ३१-३४॥

पृथक् करके आत्माके साथ उसकी एकता करे । ऐसा करके स्वास्त्ररूप सर्वब्यापी परमेश्वरमें उसे जोड़ दे । तत्पश्चात् प्राणवायुद्वारा ('सं' वीजात्मक) पृथ्वीकी अग्नि-वीज ('ं') के चिन्तनद्वारा प्रकट हुई अग्निमें जला दे, अर्थात् यह भावना करे कि पृथ्वीका अग्निमें लय हो गया । फिर वायुमें अग्निको विलीन करे और आकाशमें वायुका लय कर दे । अग्निभूत, अधिदैव तथा अथात्म-वैभवके साथ समस्त भूतोंको तन्मात्राओंमें विलीन करके विद्वान् पुरुष आकाशमें उन सबका क्रमशः संहार करे । इसके बाद आकाशका मनमें, मनका अहंकारमें, अहंकारका महत्त्वमें और महत्त्वका अव्याकृत प्रकृतिमें लय करे ॥ १—५ ॥

अव्याकृत प्रकृति (अथवा माया) को ज्ञानस्वरूप परमात्मामें विलीन करे । उन्हीं परमात्माको 'वासुदेव' कहा गया है । उन शब्दस्वरूप भगवान् वासुदेवने सुष्ठिकी इच्छासे उस अव्याकृत मायाका आश्रय के स्पर्शसंशक संकरणको प्रकट किया । संकरणने मायाको भूत्य करके तेजोरूप प्रद्युम्नकी सूषिट की । प्रद्युम्नने रसस्वरूप अनिश्चको और अनिश्चने गन्धस्वरूप ब्रह्माको जन्म दिया । ब्रह्माने उसे पहले जलकी सूषिट की । उस जलमें उन्होंने पौच्छ भूतोंसे युक्त हिरण्मय अण्डको उत्पन्न किया । उस अण्डमें जीव-शक्तिका संचार हुआ । यह वही जीव-शक्ति है, जिसका आत्मामें पहले उपमहार बताया गया है । जीवके साथ प्राणका संयोग होनेपर वह 'बृत्तिमान्' कहलाता है । व्याद्विति-संहक जीव प्राणोंमें स्थित होकर 'आज्ञातिमक पुरुष' कहा गया है । उसे प्राणयुक्त बुद्धि उत्पन्न हुई, जो आठ बृत्तिमानी बतायी गयी है । उस बुद्धिसे अहंकारका और अहंकारसे मनका प्रादुर्भाव हुआ । मनसे संकल्पादियुक्त पौच्छ विश्रय प्रकट हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ॥ ६—१२ ॥

इन सबने ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न पौच्छ इन्द्रियोंको प्रकट किया, जिनके नाम हैं—स्वक्, शोत्र, प्राण, नेत्र और जिहा । इन सबको 'ज्ञानेन्द्रिय' कहा गया है । दो पैर, गुदा, दो हाथ, बाक् और उपल—ये पौच्छ कर्मेन्द्रियों हैं । अब पञ्चभूतोंके नाम जुनो । आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पौच्छ भूत हैं । इनके ही द्वारा सबका आत्मारभूत स्थूल शरीर उत्पन्न होता है । इन तत्त्वोंके ब्राह्मक जो उत्तम् वीज-मन्त्र हैं, उनका न्यायके लिये यहाँ वर्णन किया जाता है । 'मं'

यह वीज जीवस्वरूप (अथवा जीवतत्त्वका वाचक) है । वह सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक है—इस भावनाके साथ उक्त वीजका सम्पूर्ण देहमें व्यापकन्यास करना चाहिये । 'भं' यह प्राणतत्त्वका प्रतीक है । यह जीवकी उपाधिमें स्थित है, अतः इसका वहीं न्यास करना चाहिये । विद्वान् पुरुष बुद्धितत्त्वके वोधक वकार अथवा 'वं' वीजका हृदयमें न्यास करे । फकार (फं) अहंकारका स्वरूप है, अतः उसका भी हृदयमें ही न्यास करे । संकल्पके कारणभूत मनस्तत्त्वरूप पकार (फं) का भी वहीं न्यास करे ॥ १३—१८ ॥

शब्दतन्मात्रतत्त्वके वोधक नकार (नं) का मस्तकमें और स्पर्शरूप धकार (धं) का मुखप्रदेशमें न्यास करे । रूपतत्त्वके वाचक दकार (वं) का नेत्रप्रान्तमें और रसतन्मात्राके वोधक धकार (थं) का वस्तिदेश (मूत्राशय) में न्यास करे । गन्धतन्मात्रस्वरूप तकार (त) का पिण्डलियोंमें न्यास करे । णकार (णं) का दोनों कानोंमें न्यास करके ढकार (ढं) का त्वच्छांस न्यास करे । ढकार (ढं) का दोनों नेत्रोंमें, ठकार (ठं) का रसनामें, टकार (ट) का नासिकामें और जकार (ज) का बागिन्द्रियमें न्यास करे । विद्वान् पुरुष पाणितत्त्वरूप जकार (झ) का दोनों हाथोंमें न्यास करके, जकार (झं) का दोनों पैरोंमें, 'छं' का पायुमें और 'चं' का उपस्थितमें न्यास करे । ढकार (ढं) पृथ्वी-तत्त्वका प्रतीक है । उसका युगल चरणोंमें न्यास करे । धकार (धं) का वरितमें और तेजस्तत्त्वमें 'मं' का हृदयमें न्यास करे । खकार (खं) वायुतत्त्वका प्रतीक है । उसका नासिकामें न्यास करे । ककार (कं) आकाश-तत्त्वरूप है । विद्वान् पुरुष उसका सदा ही मस्तकमें न्यास करे ॥ १९—२५ ॥

हृदय-कमलमें सूर्य-देवता-रामवन्धी 'वं' वीजका न्यास करके, हृदयसे निकली हुई जो चहतर हजार नाड़ियाँ हैं, उनमें बोड्डश कलाओंसे युक्त सकार (सं) का न्यास करे । उसके मध्यभागमें मन्त्रश पुरुष बिन्दुस्वरूप बहिरण्डलका चिन्तन करे । सुरश्रेष्ठ । उसमें प्रणवसाहित हकार (हं) का न्यास करे । १. हं आं नमः परमेष्ठ्यात्मने । २. हं आं नमः पुरुषतत्त्वने । ३. अं आं नमो निष्पारमने । ४. अं नां नमो विश्वात्मने । ५. अं वं नमः सर्वात्मने । ये पौच्छ शक्तिवाँ बतायी गयी हैं । 'स्नानकर्म'में प्रथमा शक्तिकी बोझना करनी चाहिये । 'आखनकर्म'में द्वितीया, शक्तिनामें तृतीया, 'वानकर्म'में चतुर्थी और 'अचननकाल'में

पञ्चमी शक्तिका प्रयोग करना चाहिये—ये पाँच उपनिषद हैं। इनके मध्यमें मन्त्रमय श्रीहरिका ध्यान करके क्षकार (खं) का न्यास करे ॥ २६—३१ ॥

तदनन्तर जित मूर्तिकी स्थापना की जाती है, उसके मूल-मन्त्रका न्यास करना चाहिये । (भगवान् विष्णुकी स्थापनामें) ‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय’—यह मूल-मन्त्र है। भस्त्र, नासिका, ल्लाट, मुख, कण्ठ, हृदय, दो मुजाएँ, दो पिण्डली और दो चरणोंमें क्रमशः उक्त मूल-मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करना चाहिये । तत्पञ्चात् केशबका मस्तकमें न्यास करे । नारायणका मुखमें, माघवका ग्रीवामें और गोविन्दका दोनों मुजाओंमें न्यास करके विष्णुका हृदयमें न्यास करे । पृष्ठभागमें मधुसूदनका, जटरमें वामनका और कठिमें त्रिविक्रमका न्यास करके जंघा (पिण्डली) में श्रीधरका न्यास करे । दक्षिण भागमें हृषीकेशका, गुलफमें पद्मनाभका और दोनों चरणोंमें दामोदरका न्यास करनेके पश्चात् हृदयादि षडङ्गन्यास करे ॥ ३२—३६ ॥

सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी ! यह आदिमूर्तिके लिये न्यासका साधारण क्रम बताया गया है । अथवा जिस देवताकी स्थापनाका आरम्भ हो, उसीके मूल-मन्त्रसे मूर्तिके सजोबकरणकी क्रिया होनी चाहिये । जिस मूर्तिका जो नाम हो, उसके आदि अक्षरका बारह स्वरोंसे भेदन करके अङ्गोंकी कल्पना करनी चाहिये । देवेश्वर ! हृदय आदि अङ्गोंका तथा द्वादश अक्षरबाले मूल-मन्त्रका एवं तत्त्वोंका जैसे देवताके क्रियामें न्यास करे, वैसे ही अपने शरीरमें भी करे । तत्पञ्चात् चक्रकार पश्चमण्डलमें भगवान् विष्णुका गन्ध आदिसे पूजन करे । पूर्ववत् शरीर और बज्जाभूषणोंसहित भगवान्के आसनका ध्यान करे । ऊपरी भागमें बारह अर्दोंसे युक्त सुदर्शनचक्रका चिन्तन करे । वह चक्र तीन नाभि और दो नेभियोंसे युक्त है । साथ ही बारह स्वरोंसे सम्बन्ध है । इस प्रकार चक्रका चिन्तन करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष पृष्ठदेशमें प्रकृति आदिका निवेश करे । फिर अर्दोंके अग्रभागमें बारह सूर्योंका पूजन करे । तदनन्तर वहाँ सोलह कलाओंसे युक्त सोमका ध्यान करे । चक्रकी नाभियमें तीन बरस (बर्ज या बासवान) का चिन्तन करे । तत्पञ्चात् श्रेष्ठ आचार्य पश्चके भीतर द्वादशादल पश्चका चिन्तन करे ॥ ३७—४४ ॥

उस पश्चमें पुरुष-शक्तिका ध्यान करके उसकी पूजा

अ० पु० अ० १४—

करे । फिर प्रतिमामें श्रीहरिका न्यास करके युक्त वहाँ श्रीहरि तथा अन्य देवताओंका पूजन करे । अन्ध, सुष्ठु अहरि उपचारोंसे अङ्ग और आवश्योंतहित इष्टेवका भूलौभास्ति पूजन करना चाहिये । द्वादशास्त्र-मन्त्रके एक-एक अक्षरको बीजलपमें परिकर्तित करके उनके द्वारा केशव आदि भगवद्विग्रहोंकी क्रमशः पूजा करे । द्वादश अर्दोंसे युक्त मण्डलमें लोकपाल आदिकी भी क्रमसे अचंका करे । तदनन्तर, हिंज गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा पुरुषसूक्तसे प्रतिमाकी पूजा करे और श्रीसूक्तसे पिण्डकाकी । इसके बाद जनन आदिके क्रमसे वैष्णव-अग्निको प्रकट करे । तदनन्तर विष्णुदेवता-सङ्गती मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुति देकर विद्वान् पुरुष शान्ति-जल तैयार करे और उसे प्रतिमाके मस्तकपर छिद्रकर अग्निका प्रणयन करे । विद्वान् पुरुषके चाहिये कि ‘अग्निं दूतम्०’ इत्यादि मन्त्रसे दक्षिण कुण्डमें अग्निप्रणयन करे । पूर्वकुण्डमें ‘अग्निमैर्गिनम्०’ इत्यादि मन्त्रसे और उत्तर-कुण्डमें ‘अग्निमैर्गिन इतीमिभिः०’ इत्यादि मन्त्रसे अग्निका प्रणयन करे । अग्निप्रणयन-कालमें ‘स्वमन्त्रे शुभिः०’ इत्यादि मन्त्रका पाठ किया जाता है ॥ ४५—५१ ॥

प्रत्येक कुण्डमें प्रणयके उच्चारणपूर्वक पलाशकी पक हजार आठ समिधाओंका तथा जी आदिका भी होम करे । व्याहृति-मन्त्रसे शृतमिश्रित तिलोंका और मूलमन्त्रसे धीका हवन करे । तत्पञ्चात् मधुरत्रय (धी, बाहद और चीनी) से शान्ति-होम करे । द्वादशास्त्र-मन्त्रसे दोनों पैर, नाभि,

१. अग्निं दूतं पुरो दधे इत्याद्युप त्रुवे ॥ देवाँ २ ॥
आसादयादिः ॥ (वलु० २२ । १७)

२. अग्निमैर्गिन वः समिधा दुष्यत त्रियं प्रियं वो अतिवि गृणीष्यति । उप वो गीविरहृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्य देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥

(च० म० ६ । १५ । ६)

३. अग्निमैर्गिन इतीमिभिः सदा इष्टम विष्णतिम् । इत्यादं पुरुषमिश्र ॥

(च० म० १, द० १२ । २)

४. स्वमन्त्रे शुभिस्तवमाशुद्धाणिर्लभस्त्रवमश्वनस्त्ररि । त्वं बनेष्वस्त्रमोर्धीम्बस्त्रं शूणा शूपते जावसे शुष्ठिः ॥

(वलु० ११ । २०)

हृदय और महाकाशों स्पर्श करे । यी, इही और हृषकी आहुति देकर अस्तकका स्पर्श करे । तत्पश्चात् महाक, नमिं और कुरुणोंका स्पर्श करके क्रमशः गङ्गा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती—इन चार नदियोंकी स्थापना करे । विष्णुः—गायत्रीसे अग्निको प्रज्वलित करे और गायत्री-मन्त्रसे उस अग्निमें चढ़ पकड़वे । गायत्रीसे इह होम और

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवाधिवास-विधिका वर्णन' नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

बलि दे । तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करवे ॥ ५२—५६ ॥

मासाधिपति बारह आदित्योंकी तुष्टिके लिये आचार्यको बुवर्षण और गीती दक्षिणा दे । दिक्षमालोंको बलि देकर यत्में जगरण करे । उस समय वेदपाठ और गीत, कीर्तन आदि करता रहे । इस प्रकार अधिवासनकर्मका सम्पादन करनेपर मनुष्य समूर्ण फलोंका भागी होता है ॥ ५३—५९ ॥

साठवाँ अध्याय

बाषुदेव आदि देवताओंके स्थापनकी साधारण विधि

श्रीभगवान् हृषीके कहते हैं—ब्रह्मन् ! पिण्डिका-की स्थापनाके लिये विद्वान् पुरुष मन्दिरके गर्भगृहको सात भागोंमें विभक्त करे और ब्रह्मभागमें प्रतिमाको स्थापित करे । देव, मनुष्य और पिशाच-भागोंमें कदापि उसकी स्थापना नहीं करनी चाहिये । ब्रह्मन् ! ब्रह्मभागका कुछ अंश छोड़कर तथा देवभाग और मनुष्य-भागोंमेंसे कुछ अंश लेकर, उस भूमिमें यत्नपूर्वक पिण्डिका स्थापित करनी चाहिये । नपुंसक शिलामें रत्नन्यास करे । नृसिंह-मन्त्रसे इवन करके उसीसे रत्नन्यास भी करे । ब्राह्म, रत्न, लोह आदि शादु और चन्दन आदि पदार्थोंको पूर्वादि दिशाओं तथा मध्यमें बने हुए नौ कुण्डोंमें अपनी इच्छेके अनुसार छोड़े । तदनन्तर इन्द्र आदिके मन्त्रोंसे पूर्वादि दिशाओंके गर्तको गुणगुलसे आकृत करके, रत्नन्यासकी विधि सम्पन्न करनेके पश्चात्, गुरु शालकाकासहित कुडा-समूहों और 'सहदेव' नामक औषधके द्वारा प्रतिमाको अच्छी तरह मले और काढ़-पोछ करे । बाहर-भीतरसे संस्कार (सफाई) करके पञ्चगव्यद्वारा उसकी शुद्धि करे । इसके बाद कुशोदक, नदीके जल एवं तीर्थ-जलमें उस प्रतिमाका प्रोक्षण करे ॥ १—७ ॥

होमके लिये बालद्वारा एक वेदी बनावे, जो सब और-से बेद हाथकी लंबी-चौड़ी हो । वह वेदी चौकोर एवं

सुन्दर शोभासे सम्पन्न हो । आठ दिशाओंमें यथास्थान कलशोंको भी स्थापित करे । उन पूर्वादि कलशोंको आठ प्रकारके रंगोंसे सुसज्जित करे । तत्पश्चात् अग्नि ले आकर वेदीपर उसकी स्थापना करे और कुशकण्डिकाद्वारा संस्कार करके उस अग्निमें 'त्वमग्ने शुभिः०' (यजु० ११, २७) इत्यादिसे तथा गायत्रीमन्त्रसे समिधाओंका इवन करे । अष्टाक्षर मन्त्रसे अष्टोत्तरशत घीकी आहुति दे, पूर्णाहुति प्रदान करे । तत्पश्चात् मूल-मन्त्रसे सौ बार अभिमन्त्रित किये गये शान्तिजलको आग्रपलब्दोद्वारा लेकर इष्टदेवताके भस्तकपर अभिषेक करे । अभिषेक-कालमें 'श्रीश्वते ऋक्मीश्वर्च०' इत्यादि शृङ्खाका पाठ करता रहे । 'डत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' इस मन्त्रसे प्रतिमाको उठाकर ब्रह्मरथपर रखे और 'तद् विष्णो०' इत्यादि मन्त्रसे उक्त रथद्वारा उसे मन्दिरकी ओर ले जाय । वहाँ श्रीहरिकी उस प्रतिमाको शिविका (पालकी) में पधराकर नगर आदिमें शुभावे और गीत, वाद एवं वेद मन्त्रोंकी घनिके साथ उसे पुनः लाकर मन्दिरके द्वारपर विराजमान करे ॥ ८—१३ ॥

इसके बाद गुरु सुवासिनी लियों और ब्राह्मणोद्वारा आठ मङ्गल-कलशोंके जलसे भीहरिको स्नान करावे तथा गन्ध आदि उपचारोंसे मूल-मन्त्रद्वारा पूजन करनेके पश्चात् 'अस्ते देवाः०' (शृङ्क० १२२।१६) इत्यादि मन्त्रसे बस्तु आदि अष्टाक्ष

*. नारायणाय विष्णुरे बाषुदेवाय थीमहि । तन्मो विष्णुः प्रचोदयात् ।

१. श्रीश्वते ऋक्मीश्वरे पत्न्यावहोरात्रे पाशमें नक्षत्राणि रूपमहिनौ व्यांतम् । इत्यादिवाणामुं म इषाण सर्वैलोकं म इषाण ॥

(यजु० ११ । २२)

२. डत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० इष्टदेवतस्तेभ्यः० । अथ मूलम् भस्तः सुदानम् इन्द्र भास्तुर्मना सन्ना ॥

(यजु० १४ । ५६)

३. तद् विष्णोः परमं पदम् सदा पश्चिमि सूर्यः० । दिवीष चतुरामात्रः० ॥

(यजु० ६ । ५)

अर्थ निवेदन करे । फिर स्थिर लक्ष्यमें पिण्डिकापर 'वैष्णवं न्मा' ॥ इत्यादि मन्त्रसे इष्टदेवताके उस अर्चादिशहस्रको स्थापित कर दे । स्थापनाके पश्चात् इस प्रकार कहे—'सचिदानन्दस्वरूप श्रिविष्णुम् । आपने तीन पर्णोदारा समूची शिलोक्षीको आकाश कर लिया था । आपको नमस्कार है' ॥ इस तरह पिण्डिकापर प्रतिमाको स्थापित करके बिदान् पुरुष उसे स्थिर करे । प्रतिमा-स्थिरीकरणके समय 'धूर्वा औः' ॥ इत्यादि तथा 'विश्वस्तस्तुः' ॥ (यजु० ३७।१९) इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे । पञ्चग्रन्थसे स्नान के राकर गन्धोदकसे प्रतिमाका प्रश्नालन करे और सकलीकैरण करनेके पश्चात् श्रीहरिका साङ्गोपाङ्ग साधारण पूजान करे ॥ १४—१७३ ॥

४. देवस्य स्वा सवितुः प्रसवेऽस्मिनोर्वाहुभ्यां पूज्णो इस्तान्याम् ।
अग्नये जुर्ष्टं गृहाभ्यग्नीपोमार्घा जुर्ष्टं गृहामि ॥

(यजु० १।१०)

५. धूर्वा धूर्वा धूर्वी धूर्वामः पर्वता इमे ।
धूर्वं विश्विदं जगद् धूर्वो राजा विश्वमयम् ॥

(अक्ष० १०।१७३।४)

६. श्रीविदारण्य मुनिने दृसिंहोत्तरापानीयोपनिषद्की दीक्षामें सकलीकरण नामक न्यासकी विधि यो बैनायी है—एहुके आत्माको 'ॐ' इस नामके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले ब्रह्मके साथ एकना करके, तथा ब्रह्मकी आत्माके साथ ओकारके बाच्यार्थरूपसे एकना करके वह पक्षमात्र जरातित, शूलुरातित, अमृतस्वरूप, निर्वय, विन्यम तत्त्व 'ॐ' है—इस प्रकार अनुभव करे । तत्पश्चात् उस परमात्मस्वरूप ओकारमें शूल, सूक्ष्म और कारण— इन तीन शरीरोंवाले सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चका आरोप करके, अर्थात् एक परमात्मा ही सत्य है, उन्हींमें इस शूल, सूक्ष्म एवं कारण-जगत्-की कलाना दुई हैं—ऐसा विवेदारा अनुभव करके वह निश्चय करे कि 'यह जगत् सचिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही है; क्योंकि न्यम्य (परमात्मस्मय) होनेके कारण अवश्य यह तत्त्वरूप (परमात्मस्वरूप) ही है' और इस दृढ़ निश्चयके द्वारा इस जगत्को 'ॐ'के बाच्यार्थभूत परमात्मामें विलीन कर डाले । इसके बाद चतुर्विंश-शरीरकी सूषिके लिये निम्नाङ्कित प्रकारसे सकलीकरण करे । 'ॐ' का उच्चारण अनेक प्रकारसे होता है— यह तो केवल मकार-पर्यन्त उच्चारण होता है, इसरा विन्दु-पर्यन्त, तीसरा नाद-पर्यन्त और चौथा शक्ति-पर्यन्त होता है । फिर उच्चारण बंद हो जानेपर उसकी 'शान्त' संस्था होती है । सकलीकरणकी किंवा आरम्भ करते समय यहें 'ॐ'का उपर्युक्त रीतिसे शान्त-पर्यन्त

उस समय इस प्रकार ध्यान करे—'आकाश भगवान् विशुका विग्रह है और पृथिवी उसकी पीठिका (सिंहाशन) है । तदनन्तर तेजस परमात्माओंसे भगवान् के श्रीविष्णुहस्ती कल्पना करे और कहे—'मैं पञ्चत तत्त्वोंमें व्यापक जीवका आवाहन करूँगा' ॥ १८-१९ ॥

वह जीव चैतन्यमय, परमात्मानन्दस्वरूप तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे रहित है; वैह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण तथा अहंकारसे शून्य है । वह ब्रह्मा आदिसे लेकर कीटपर्यन्त नमस्त जगत्में व्यात और सबके हृदयोंमें विराजमान है । परमेश्वर ! आप ही जीव-चैतन्य हैं; आप हृदयसे प्रतिमा-विष्मयमें आकर स्थिर होइये । आप इस प्रतिमा-विष्मयको इसके बाहर और भीतर स्थित होकर सजीव कीजिये । अङ्गुष्ठमात्र पुरुष (परमात्मा जीव-रूपसे) सम्पूर्ण देहोपाधियोंमें स्थित हैं । वे ही ज्योतिःस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, एकमात्र अद्वितीय परज्ञाह हैं । इस प्रकार सजीवीकरण करके प्रणवद्वारा भगवान्को जगावे । फिर भगवान्के हृदयका स्पर्श करके पुरुषसूत्रका जप करे । इसे 'सांनियकरण' नामक कर्म कहा गया है । इसके लिये भगवान्का ध्यान करते हुए निम्नाङ्कित गुण-मन्त्रका जप करे—॥ २०-२४ ॥

'प्रभो ! आप देवताओंके स्वामी हैं, संतोष-वैभव रूप हैं । आपको नमस्कार है । शान और विश्वान आपके रूप हैं, ब्रह्मानंज आपका अनुगामी है । आपका स्वरूप गुणातीत उच्चारण करके 'शान्त्यनीतकलात्मने साक्षिणे नमः ।' इस मन्त्रसे व्यापक-न्यास करते हुए 'साक्षी'का चिन्तन करे । फिर शक्तिपर्यन्त प्रणवका उच्चारण करके 'शानिकलाशक्तिपरावागात्मने सामान्य-देहाय नमः ।' इस मन्त्रसे व्यापक करते हुए अनुरुद्ध, सत्त्वरूप, ब्रह्मवान्स्वरूप सामान्य देहका चिन्तन करे । फिर प्रणवका नादपर्यन्त उच्चारण करके 'विद्वाकलानादपश्यनीवागात्मने कारणदेहाय नमः ।' इस मन्त्रसे व्यापक न्यास करते हुए प्रत्य, सुषुप्ति एवं ईक्षणावस्थामें स्थित किंचित् विहित्युस्त सत्त्वरूप कारणदेहका चिन्तन करे । फिर प्रणवका विन्दुपर्यन्त उच्चारण करके 'प्रतिष्ठाकलाविन्दु-मध्यमावागात्मने सूक्ष्मदेहाय नमः ।' इस मन्त्रसे व्यापक हुए दूसरभूत, अन्तःकरण, प्राण तथा इन्द्रियोंके संघातरूप सूक्ष्म शरीर-का चिन्तन करे । फिर प्रणवका मकार-पर्यन्त उच्चारण करके 'निवृत्ति-कलाजीवैकलीवागात्मने सूक्ष्मशरीराय नमः ।' इस मन्त्रसे व्यापक करते हुए पश्चीकृत भूत एवं उसके कार्यरूप सूक्ष्मशरीरका चिन्तन करे ।

है। आप अन्तर्यामी पुरुष एवं परमात्मा हैं; अक्षय पुराण-पुरुष हैं; आपको नमस्कार है। विष्णो ! आप वहाँ संनिहित होहये। आपका जो परमतत्त्व है, जो शानमय शरीर है, वह सब एकत्र हो, इस अर्चाविग्रहमें जग उठे। इस प्रकार परमात्मा श्रीहरिका संनिध्यकरण करके ब्रह्मा आदि परिवारोंकी उनके नामसे स्थापना करे। उनके जो आयुध आदि हैं, उनकी भी मुद्रासहित स्थापना करे। यात्रा-सम्बन्धी उत्सव तथा वार्षिक आदि उत्सवकीं भी योजना करके और उन उत्सवोंका दर्शनकर श्रीहरिको अपने संनिहित जानना चाहिये। भगवान्‌को नमस्कार, स्तोत्र आदिके द्वारा उनकी स्तुति तथा उनके अष्टाक्षर आदि मन्त्रका जप करते समय भी भगवान्‌को अपने निकट उपस्थित जानना चाहिये ॥ २५-२९ ॥

तदनन्तर आचार्य मन्दिरसे निकलकर द्वारवतीं द्वारपाल चण्ड और प्रचण्डका पूजन करे। फिर मष्ठपमें आकर

इस प्रकार आदि आशेय महापुराणमें ‘वासुदेव आदि देवताओंकी स्थापनाके सामान्यविधानका वर्णन’ नामक साड़ों अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

इक्षसठवाँ अध्याय

अवभृथस्थान, द्वारप्रतिष्ठा और ध्वजारोपण आदिकी विधिका वर्णन

श्रीभगवान् त्रयग्रीष्म कहते हैं—ग्रहान् ! अब मैं अवभृथस्थानका वर्णन करता हूँ। ‘विष्णोर्नुं कं वीर्याणि०’ इत्यादि मन्त्रसे हवन करे। इक्षासी पदवाले वास्तुमण्डलमें कलश स्थापित करके उनके जलसे श्रीहरिको स्नान करावे। स्नानके पश्चात् गन्ध, पुष्प आदिसे भगवान्‌की पूजा करे और शलि अर्पित करके गुहका पूजन करे। अब मैं द्वार-प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा। गुह द्वारके निम्नभागमें सुवर्ण रक्खे और आठ कलशोंके साथ वहाँ दो गूलरकी शालाओंको स्थापित करे। फिर गन्ध आदि उपचारों और वैदिक आदि मन्त्रोंसे सम्बृद्ध पूजन करके कुण्डोंमें स्थापित अग्निमें समिधा, धी और तिल आदिकी आहुति दे। तत्पश्चात् शाश्वा आदिका दान देकर नीचे आधारशक्तिकी स्थापना करे ॥ १-४ ॥

१. विष्णोर्नुं कं वीर्याणि प्रवेचनं यः परिवानि विभिन्ने रूपारूपे ।

यो अस्त्रमायत्तुतरः सधस्य विचक्षणादेवोऽग्नो
विष्णवे त्वा ॥ (वलू० ५ । १८)

गलशकी स्थापना एवं पूजा करे। प्रस्त्रे दिशामें दिक्षालों तथा अन्य देवताओंको स्थापन-पूजन करके गुह विष्वक्सेनकी स्थापना तथा शलि, चक्र आदिकी पूजा करे। सम्पूर्ण पार्षदों और भूतोंको बलि अर्पित करे। आचार्यको दक्षिणारूपसे ग्राम, बस्त्र एवं सुवर्ण आदिका दान दे। यजोपयोगी द्रव्य आदि आचार्यको अर्पित करे। आचार्यसे आधी दक्षिणा भूत्विज्ञोंको दे। इसके बाद अन्य ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दे और भोजन करावे। वहाँ आनेवाले किसी भी ब्राह्मणको रोके नहीं, सबका सत्कार करे। तदनन्तर गुह यजमानको फल दे ॥ ३०-३४ ॥

भगवद्विग्रहकी स्थापना करनेवाला पुरुष अपने साथ सम्पूर्ण कुलको भगवान् विष्णुके समीप ले जाता है। सभी देवताओंके लिये वह साधारण विधि है; किंतु उनके मूल-मन्त्र पृथक्-पृथक् होते हैं। शेष सब कार्य समान हैं ॥ ३५-३६ ॥

इस प्रकार आदि आशेय महापुराणमें ‘वासुदेव आदि देवताओंकी स्थापनाके सामान्यविधानका वर्णन’

दोनों शालाओंके मूलभागमें चण्ड और प्रचण्ड नामक देवताओंकी स्थापना करे। उदुम्बर-शालाओंके ऊपरी भारमें देवदृढपूजित लक्ष्मीदेवीकी स्थापना करके श्रीसूक्तसे उनका वर्णन सुनो। वेदीके पहले गर्भगृहके शिरोभागमें, जहाँ छुकनासाकी समाप्ति होती है, उस स्थानपर सोने अथवा चाँदीके बने हुए श्वेत निर्मल कलशकी स्थापना करे। उसमें आठ प्रकारके रल, ओषधि, धातु, बीज और लोह (सुवर्ण) छोड़ दे। उस सुन्दर कलशके कण्ठभागमें बड़ा लेटकर उसमें जल भर दे और मण्डलमें उसका अधिष्ठान करे। उसमें पस्तव ढाल दे। तत्पश्चात् दृसिङ्ग-मन्त्रसे अग्निमें धीकी धारा गिराते हुए होम करे। नारायणतत्त्वसे प्राणन्यास करे ॥ ५-१० ॥

सुरेश ! प्रासादके उत्तर कलशका वैराजरूपमें चिन्तन करे । तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण प्राप्तादका ही पुरुषका भाँति चिन्तन करे । तदनन्तर नीचे सुवर्ण वैकर तत्त्वभूत कलशकी स्थापना करे । गुरु आदिको दक्षिणा दे और ब्राह्मण आदिको भोजन करावे । तत्पश्चात् वेदीके चारों ओर सूत या माला लपेटे । उसके ऊपर कण्ठभागमें सब और सूत अथवा बन्दनबार बाँधे और उसके भी ऊपर 'विमलामलसार' नामके पुष्पहार या बन्दनबार मन्दिरके चारों ओर बाँधे । उसके ऊपर 'वृक्षल' तथा उसके भी ऊपर आदि सुदर्शन-चक्र बनावे । वहीं भगवान् वासुदेवकी ग्रहणत मूर्ति निवेदित करे । अथवा पहले कलश और उसके ऊपर उत्तम सुदर्शनचक्रकी योजना करे । ब्रह्मन् ! वेदीके चारों ओर आठ विघ्नेश्वरोंकी स्थापना करनी चाहिये । अथवा चार दिशाओंमें चार ही विघ्नेश्वर स्थापित किये जाने चाहिये । अब गश्छध्वजारोपणकी विधि बताता हूँ, जिसके होनेसे भूत आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ ११-१६ ॥

प्रासाद-विम्बके द्रव्योंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक मन्दिर-निर्माता पुरुष विष्णुलोकमें निवास करता है । निष्पाप ब्रह्माजी ! जब वायुसे ध्वज फहराता है और कलश, वेदी तथा प्रासादविम्बके कण्ठको आवेदित कर लेता है, तब प्रायादकांको ज्ञानारोपणकी अपेक्षा भी कोटिगुना अधिक फल प्राप्त होता है, ऐसा समझना चाहिये । पताकाको प्रकृति जानो और दण्डको पुरुष । नाथ ही मुझसे यह भी समझ लो कि प्रामाद (मन्दिर) भगवान् वासुदेवकी मूर्ति है । मन्दिर भगवान्को धारण करता है, यही उसमें धरणीतत्त्व है, ऐसा जानो ।
मन्दिरके भीतर जो शून्य अवकाश है, वही उसमें आकाश-तत्त्व है । उसमें जो तेज या प्रकाश है, वही अनितत्त्व है और उसके भीतर जो हवाका सर्वा होता है, वही उसमें वायुतत्त्व है ॥ १७-२० ॥

पाषाण आदिमें ही जो जल है, वह पर्विंश जल है । उसमें पृथ्वीका गुण गन्ध विद्यमान है । प्रतिष्वनिसे जो शान्द प्रकट होता है, वही बहाँका शब्द है । छूटेमें कठोरता आदिका जो अनुभव होता है, वही बहाँका स्पर्श है । शुक्र आदि वर्ण रूप है । आह्वादिका अनुभव करनेवाला रस ही बहाँ रस है । धूप आदिकी गन्ध ही बहाँकी गन्ध है । मेरी आदिमें जो नाद प्रकट होता है, वही मानो वागिन्द्रिय-

का कार्य है । इसलिये वहीं वागिन्द्रियकी खिलौ है । शुक्रनासामें नासिकाकी खिलौ है । दो भूजस्त्रक्ष मुजाहें कही गयी हैं । विलेश्वरपर जो अण्ड-सा बदा रहता है, वहीं मलतक कहा गया है और कलशको केश बताया गया है । प्रासादका कण्ठभाग ही उत्तरका कण्ठ जानना चाहिये । वेदीको कंधा कहा गया है । दो नालियाँ गुदा और उपरथ बतायी गयी हैं । मन्दिरपर जो चूना फेरा गया है, उसको त्वचा नाम दिया गया है । द्वार उसका सुँह है और प्रतिमाको मन्दिरका जीवास्त्रा कहा गया है । पिण्डिकाको जीवकी शक्ति समझो और उसकी आकृतिको प्रकृति ॥ २१-२५ ॥

निष्पलता उसका गर्म है और भगवान् केशव उसके अधिष्ठाता । इन प्रकार ये भगवान् विष्णु ही साक्षात् मन्दिररूपसे रहे हैं । भगवान् विष्व उसकी जंता हैं, ब्रह्मा स्कन्धभागमें स्थित हैं और ऊर्ध्वभागमें स्वयं विष्णु विराजमान हैं । इस प्रकार स्थित हुए प्रासादकी ध्वजरूपसे जो प्रतिष्ठा की गयी है, उसको मुक्षसे सुनो । शास्त्रादिनिहित ध्वजका आरोपण करके देवताओंने दैत्योंको जीता है । अण्डके ऊपर कलश रखकर उसके ऊपर ध्वजकी स्थापना करे । ध्वजका मान विष्वके मानका आधा भाग है । ध्वजदण्डकी लंबाईके एक तिहाई भागसे चक्रका निर्माण कराना चाहिये । वह चक्र आठ या बारह अरोका हो और उसके मध्यभागमें भगवान् दृष्टिंह अथवा गश्छकी मूर्ति हो । ध्वज-दण्ड टूटा-फड़ा या केदवाला न हो । प्रामादकी जो चौडाई है, उसकी दण्डकी लंबाईका मान कहा गया है । अथवा विलेश्वरके आधे या एक तिहाई भागसे उसकी लंबाईका अनुमान करना चाहिये । अथवा द्वारकी लंबाईसे दुगुना वहा दण्ड बनाना चाहिये । उस ध्वज-दण्डको देवमन्दिरपर इंशान या वाथध्वयोगकी ओर स्थापित करना चाहिये ॥ २६-३२ ॥

उसकी पताका रेशमी आदि वस्त्रोंसे विविच्च शोभायुक्त बनावे । अथवा उसे एक रंगकी ही बनावे । यदि उसे छण्टा, चॅवर अथवा छोटी-छोटी घंटियोंसे विभूषित करे तो वह पापोंका नाश करनेवाली होती है । दण्डके अग्रभागसे लेकर भूमितक लंबा जो एक वस्त्र है, उसे 'महाध्वज' कहा गया है । वह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है । जो उससे एक चौथाई छोटा हो, वह ध्वज पूजित होनेपर

सर्वमनोरपोका पूरक होता है। ज्वलके आदे मानवाले बद्धते क्षेत्रे हुए हांडेको 'शताका' कहते हैं अथवा पताका-का कोई माप नहीं होता। ज्वलका विस्तार वीस अङ्गुलके बराबर होना चाहिये। चक्र, दण्ड और ज्वल-इन सबका अविद्यासामनकी विधि से देवताकी ही भाँति सकलीकरण करके मण्डप-स्तान (मण्डपमें नहलनेकी किया) आदि सब कार्य करे। नेत्रोन्मीलन^१ को छोड़कर पूर्वोक्त भव कर्मोंका अनुष्ठान करे। आचार्यको चाहिये कि वह इन सबको विधिवत् शाय्यापर स्थापित करके इनका अविद्यासामन करे॥ ३६-३७ ॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष 'सहस्रार्थं'^२ (यजु० अ० ३१) इत्यादि सूक्तका ज्वाहृत चक्रमें न्यास करे तथा सुदर्शन-मन्त्र एवं 'भनस्तस्त्वं' का न्यास करे। यह भन्त रूपसे उस चक्रका ही 'सजीवीकरण' कहा गया है। सुरभेष्ट ! बारह अरोमें क्रमशः केशब आदि मूर्तियोंका न्यास करना चाहिये। गुरु चक्रकी नामि, कमल एवं प्रतिनेभियोंमें तत्त्वोंका न्यास करे। कमलमें दृश्य अथवा विश्वलूपका निवेश करे। दण्डमें जीवसहित सम्पूर्ण सूक्तात्मका न्यास करे। ज्वलमें भीहरिका ध्यान करते हुए निष्कल परमात्माका निवेश करे। उनकी बलावसारूपा व्यापिनी शक्तिका ज्वलके रूपमें ध्यान करे। मण्डपमें उसकी स्थापना और पूजा करके

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अवमृथमान, द्वारप्रतिष्ठा और ज्वलारोपण आदिकी विधिका वर्णन' नामक इक्षस्त्रं अव्याप्त पूरा हुआ॥ ६१ ॥

बासठबाँ अध्याय

लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि

भीमधारान् कहते हैं—अब मैं सामूहिक रूपसे देवता आदिकी प्रतिष्ठाका तुम्हें वर्णन करता हूँ। पहले लक्ष्मीकी, फिर अन्य देवियोंके समुदायकी स्थापनाका वर्णन करूँगा। पूर्वतीं अध्यायोंमें जैसा बताया गया है, उसके अनुसार मण्डप-अभिषेक आदि सारा कार्य करे। तत्प्रथात् भद्रपीठपर लक्ष्मीकी स्थापना करके आठ दिशाओंमें आठ कलश लगायित करे। देवीकी प्रतिमाका घीसे अम्बजन करके मूल-मन्त्रद्वारा पञ्चग्रन्थसे उसकी स्थान करावे। फिर 'हिरण्यवर्णं इरिकीं'^३ इत्यादि मन्त्रसे

१. हिरण्यवर्णं इरिणी सुवर्णरवस्त्रजात् ।
२. व्याप्ति हिरण्यमी लक्ष्मी बातबेदो म वा 'वह' ॥

कुप्तोंमें हवन करे। कलशमें सोनेका हुकड़ा और पञ्चरत्न ढालकर अस्त्र-मन्त्रसे चक्रकी स्थापना करे। तदनन्तर सर्वचक्रको नीचेसे परेद्वारा सम्प्लावित करके नेत्रपट्टसे आच्छादित करे। तदनन्तर चक्रका निवेश करे और उसके भीतर भीहरिका स्थरण करे॥ ३८-४४ ॥

‘३९ लक्ष्मी त्रिविहार नमः’^४—इस मन्त्रसे भीहरिकी स्थापना और पूजा करे। तदनन्तर अम्बु-बान्धवोंसहित यजमान ज्वल केर दही-भातसे युक्त पान्नमें ज्वलका अग्रभाग डाले। आदिमें (३०) और अन्तमें 'फट्' लगाकर 'उँफट्' इस मन्त्रसे ज्वलका पूजन करे। तत्प्रथात् उस पान्नको मिरिपर रखकर नारायणका बारंबार सरण करते हुए बायोंकी ध्वनि और मङ्गल्याठके साथ परिक्रमा करे। तदनन्तर अद्वाक्षर-मन्त्रसे ज्वलदण्डकी स्थापना करे। विद्वान् पुरुष 'सुखाभित्वा' (ऋू० १८।१६।१) इस सूक्तके द्वारा ज्वलको फहरावे। द्विजको चाहिये कि वह आचार्यको पात्र, ज्वल और हाथी आदि दान करे। यह ज्वलारोपणकी साखारण विधि बतावी गयी है॥ ४५-४९ ॥

जिस देवताका जो चिह्न है, उससे युक्त ज्वलको उसी देवताके मन्त्रसे स्थिरतापूर्वक स्थापित करे। मनुष्य ज्वल-दानके पुण्यसे सर्वलोकमें जाता है तथा वह पृथ्वीपर बलवान् राजा होता है॥ ५० ॥

लक्ष्मीजीके दोनों नेत्रोंका उन्मीलन करे। 'तां म ओ वह' इत्यादि मन्त्र पढ़कर देवीके लिये मधु, धी और चीनी अर्पित करे। तत्प्रथात् 'अस्त्वैर्वर्णं' इत्यादि मन्त्रसे पूर्ववतों कलशके जलद्वारा श्रीदेवीका अभिषेक करे। 'का सोऽस्ति-

२. तां म ओ वह जातबेदो लक्ष्मीमनपणाभिनीम् ।
बसा हिरण्यं लिन्देयं गामश्वं पुरवानहम् ॥
३. अस्त्वैर्वर्णं रथमध्या हस्तिनादभवेभिनीम् ।
मित्र देवीमुहूर्ये श्रीमो देवी जृवनाम् ॥
४. का सोऽस्ति लक्ष्मी नृता नर्यनीम् ।
पदोऽस्ति पदाणी नामिषोपहये लिपम् ॥

तां० हस मन्त्रको पढ़कर दक्षिण कलशसे, 'वास्त्रो ग्रह्योऽस्मौ' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके पवित्रम् कलशसे तथा 'आदिर्विष्टवै' इत्यादि मन्त्र बोलकर उच्चरकर्ती कलशसे देवीका अभिषेक करे ॥ ५—६ ॥

'उपैतुं भौं' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके आग्नेय-कोणके कलशसे, 'शुभिपार्श्वामल्लो-' इत्यादि मन्त्र बोलकर नेवृत्यकोणके कलशसे, 'अस्त्रद्वारा दुर्गापूर्णा-' इत्यादि मन्त्रको पढ़कर वायव्यकोणके कलशसे तथा 'मन्त्रः कामाकूर्ति-' इत्यादि मन्त्र कहकर इशानकोणकर्ती कलशसे लक्ष्मीदेवीका अभिषेक करे । 'कर्दमेन प्रजा' भूता० इत्यादि मन्त्रसे सुवर्णमय कलशके जलसे देवीके मस्तकका अभिषेक करे । तदनन्तर 'आपः॑ सूजन्तु॒' इत्यादि मन्त्रसे इक्यासी कलशोऽहारा श्रीदेवीकी प्रतिमाको स्नान करावे ॥ ६-७ ॥

तत्प्रधान् (श्री-प्रतिमाको शुद्ध बछरे पौष्टकर सिंहासन-पर विराजमान करे और बछ आदि समर्पित करनेके बाद) 'आद्र्म॑ पुष्करिणी०' हस मन्त्रसे गन्ध अर्पित करे । 'आद्र्म॑ यः करिणी०' आदिसे पुष्ट और माला चढ़ाकर पूजा करे । इसके बाद 'तां म आ वह जातवेदो०' इत्यादि

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें लक्ष्मी आदि देवियोंकी प्रतिष्ठाके सामान्य विधानका वर्णन नामक बास्तवीय अस्थाय पूरा हुआ ॥ ६-२ ॥

मन्त्रसे और 'आप्तवृ०' इत्यादि श्लोकसे अस्तित्व उपचार अर्पित करे ॥ ८ ॥

'आप्तवृ०' आदि मन्त्रसे श्री-प्रतिमाको शम्भवपर शब्दन करावे । फिर श्रीसूक्तसे संनिधीकरण करे और लक्ष्मी (श्री) बीज (ऋं) से चिन्त-शस्त्रिका चिन्मास करके पुनः अर्चना करे । इसके बाद श्रीसूक्तसे मण्डपस्थ कुण्डोंमें कमलों अथवा करवीर-पुष्पोंका हवन करे । होम-संस्कार एक हजार वा एक सौ होली चाहिये । यहोमकरण आदि समस्त पूजन-सामग्री आदितः श्रीसूक्तके मन्त्रोंसे ही समर्पित करे । फिर पूर्ववत् पूर्णकल्पसे प्रासाद-संस्कार सम्पन्न करके माता लक्ष्मीके लिये पिण्डिका-निर्माण करे । तदनन्तर उस पिण्डिकापर लक्ष्मीकी प्रतिष्ठा करके श्रीसूक्तसे संनिधीकरण करते हुए, पूर्ववत् उसकी प्रस्त्रेक शूचाका जप करे ॥ ९-१२ ॥

मूलमन्त्रसे चिन्त-शस्त्रिको जाग्रत् करके पुनः संनिधीकरण करे । तदनन्तर आचार्य और ब्रह्मा तथा अन्य श्रृंगिज ब्राह्मणोंको भूमि, सुकर्ण, बछ, गौ एवं अजादिका दान करे । इस प्रकार सभी देवियोंकी स्नापना करके मनुष्य रास्य और स्वर्ग आदिका भागी होता है ॥ १३-१४ ॥

५. नन्दा प्रभासा वदसा ज्वलनीं विषं लोके देवजुषामुदाराम् । तां पश्चिनीमी शरणं प्रस्त्रेऽङ्गस्मीमें नश्यता तां शृण ॥
६. आदिर्विषं तपसोऽधि जाती बनस्पतिशब्द वृक्षोऽप्य विषः । तस्य फलानि तपसा नुजन्तु वा जन्तरा वाय वाया अलक्ष्मीः ॥
७. उपैतुं भौं देवस्त्वः कीर्तिश्च मणिना त्वरः । नादुभूतेऽधिकं राह्रेऽस्त्रियं कीर्तिश्च दशातु मे ॥
८. शुभिपार्श्वामल्लो व्येष्वामल्ली नाशयन्नहम् । अभूतिमस्त्रिदिवं च सर्वं निर्युद मे शुशाद् ॥
९. मन्त्रादारा दुरापां नित्यपूर्णा करीविणीम् । ईश्वरी सर्वभूतानीं तामिहोपहये विवर ॥
१०. मन्त्रः कामाकूर्ति वाचः मन्त्रमन्तीमहि । पहला रूपमन्त्रसे मध्ये श्रीः अवतां वशः ॥
११. कर्दमेन प्रजा भूता मध्ये मन्त्रव चर्दमः । विषं वासव मे कुले मातरं पश्चात्किनीम् ॥
१२. आपः सूजन्तु विषानि विषकीत वस मे शृणे । मि न देवी भातरं विषं वासव मे कुले ॥
१३. आद्र्म॑ पुष्करिणी पुहि पिण्डां पश्चात्किनीम् । चन्द्रा हिरण्यमी लक्ष्मी जातवेदो म वा वह ॥
१४. आद्र्म॑ यः करिणी वहि द्वृकर्णा हेममत्किनीम् । दर्शी हिरण्यमी लक्ष्मी जातवेदो म वा वह ॥
१५. तां म आ वह जातवेदो कर्मसीमनपणामिनीम् । वस्त्रो हिरण्यं शमूतं गावो दाशोऽङ्गाम् विष्टेवं पुरुषानहम् ॥
१६. आप्तवृ० भूत्युर्वस्तुतेमार्थं भौमी वलेन गिरिं भूतिश्चारत ॥

प्राताम्बूजं शमूतं वे विषान्त भूतमवृत्तिमनोरमनिकावः ॥

तिरसठवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि तथा पुस्तक-लेखन-विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—इम प्रकार विनतानन्दन गद्द, सुदर्शनचक्र, ब्रह्मा और भगवान् दृसिंहकी प्रतिष्ठा भी उनके अग्ने-अपने मन्त्रसे श्रीविष्णुकी ही भौति करनी चाहिये; इनका अवण करो ॥ १ ॥

‘ॐ सुदर्शन महाचक्र शास्त्र दुष्टभवंकर, छिन्निदिछिन्नि भिन्निविभिन्नि विद्वारय विद्वारय परमम्भान् प्रस प्रस भक्षय भक्षय भूतांसासय शास्त्र दुःखं फट् सुदर्शनाय नमः ।’

इस मन्त्रसे चक्रका पूजन करके बीर पुरुष उद्धक्षेन्मै शत्रुओंको विदीर्ण कर डालता है ॥ २-३ ॥

‘ॐ श्रीं नरसिंह उद्गरूप उवल उवल प्रवल प्रवल स्वाहा ।’

यह नरसिंहमगवान्का मन्त्र है। अब मैं तुमको पाताल-दृसिंह-मन्त्रका उपदेश करता हूँ—॥ ४-५ ॥

‘ॐ श्रीं भगवते नरसिंहाय प्रदीपसूर्यकोटिसहस्र-समतोलसे ब्रह्मसादंद्वायुधाय स्फुटविकटविकीर्णेसरसदा-प्रसुभितमहार्णवान्मोक्षुभिनिर्वोषाय सर्वमन्त्रोत्तारणाय एकोहि भगवत्तरसिंह उरुष परापर बहा सत्येन स्तुर स्तुर विजून्म विजून्म आक्रम आक्रम शर्ज गर्ज सुख सुख सिंहनारं विद्वारय विद्वारय विद्वारयाऽविद्वारयाऽविद्वारय सर्वमन्त्र-हृषाणि मन्त्रजातीश्च इन हन विष्णुदिष्टलद् संक्षिप्त संक्षिप्त दर दर दास्य दारय रुदृष्ट स्फुट स्फोटय स्फोटय उत्तालामाला-संभासमय सर्वतोऽन्तस्तज्जाकाद्याशमित्येण सर्वपाताला-सुरसाद्वोत्साद्य सर्वतोऽन्तस्तज्जाकाद्याशमित्येण सर्वपाताला-म्परिवारय परिवारय सर्वपातालासुरालासिंहं हृदयाभ्युक्तर्थाऽऽ कर्तव्य दीर्घि दह दह पव पव मध्य शोषय शोषय निरुप्तय निरुप्तय सावधावन्मे वशमायताः पातालेभ्यः (फट्-सुरेभ्यः कण्मन्त्रहृषेभ्यः कण्मन्त्रजातिभ्यः फट्-संक्षाप्तम्भ्यो भगवत्तरसिंहरू विज्ञो सर्वोपदृष्ट्यः) सर्वमन्त्र-हृषेभ्यो रह रह हुँ कण्मन्त्रो नमस्ते ॥ ६ ॥

यह श्रीहरित्वरूपिणी दृसिंह-विद्या है, जो अर्थसिद्धि प्रदान करतेवाली है। बैलोक्यमोहन श्रीविष्णुकी बैलोक्य-मोहन मन्त्रसमूहसे प्रतिष्ठा करे। उनके हिंडुज विग्रहके बाम इसमें गदा और दक्षिण इसमें अभयमुद्गा होनी चाहिये।

यदि चतुर्भुज रूपकी प्रतिष्ठा की जाय, तो दक्षिणोर्ध्वे इसमें चक्र और बामोर्ध्वमें पाञ्चजन्य शङ्ख होना चाहिये। उनके साथ श्री पवं पुष्टि, अथवा बलराम, सुभद्राकी भी स्थापना करनी चाहिये। श्रीविष्णु, बामन, वैकुण्ठ, हयग्रीष और अनिष्टकी प्रासादमें, घरमें अथवा मण्डपमें स्थापना करनी चाहिये। मस्यादि अवतारोंको जल-दात्यापर स्थापित करके शयन करावे। संकर्षण, विश्वरूप, सद्मूर्तिलङ्घ, अर्धनारीश्वर, हरिहर, मातृकागण, भैरव, सूर्य, ग्रह, विनायक तथा इन्द्र आदिके द्वारा सेवनीया गौरी, चित्रजा एवं भलाबला विद्याकी भी उसी प्रकार स्थापना करनी चाहिये ॥ ७—१२ ॥

अब मैं ग्रन्थकी प्रतिष्ठा और उसकी लेखन-विधिका वर्णन करता हूँ। आचार्य स्वस्तिक-मण्डलमें शर्यन्त्रके आसनपर स्थित लेख्य, लिखित पुस्तक, विद्या एवं श्रीहरिका वजन करे। फिर यजमान, गुरु, विद्या एवं भगवान् विष्णु और लिपिक (लेखक) पुरुषकी अर्चना करे। तदनन्तर पूर्वाभिमुख होकर पश्चिनीका ध्यान करे और चाँदीकी दावात-में रखी हुई स्थाही तथा सोनेकी कलमसे देवनागरी अक्षरोंमें पाँच इलोक लिखे। फिर ब्राह्मणोंको यथावक्ति भोजन करावे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे। आचार्य, विद्या और श्रीविष्णुका पूजन करके लेखक पुराण आदिका लेखन प्रारम्भ करे। पूर्ववत् मण्डल आदिके द्वारा ईशानकोणमें गद्वीठपर दर्शणके ऊपर पुस्तक रखकर पहलेकी ही भौति कलमोंते सेचन करे। फिर यजमान नेत्रोन्मीलन करके शश्वापर उस पुस्तकका स्थापन करे। तत्पश्चात् पुस्तकपर पुरुषसूक्त तथा वेद आदिका व्यास करे ॥ १३—१८ ॥

तदनन्तर प्राण-प्रतिष्ठा, पूजन एवं चब्बहोम करके, पूजनके पश्चात् दक्षिणसे आचार्य आदिका सकार करके ब्राह्मण-भोजन करावे। उस ग्रन्थको रथ या हाथीपर रखकर जल-समाजके साथ नगरमें धूमावे। अन्तमें यह या देवाल्यमें उसे स्थापित करके उसकी पूजा करे। ग्रन्थको बलसे आवेषित करके पाठके आदि-अन्तमें उसका पूजन करे। पुस्तकवर्षाचक्र विद्वशान्तिका संकलन करके एक अप्यायका पाठ करे। फिर गुरु कुम्भजलसे यज्ञमान आदिका अभिषेक

हो। ब्रह्मणको पुरुष-दम्भ करनेसे अनन्त कलशी प्राप्ति होती है। मोदान, भूमि-दान और विद्यादान—ये तीन अतिशय कहे गये हैं। ये क्रमशः दोहन, वपन और पाठमात्र करनेपर नरकसे उदार कर देते हैं। मसीष्मिति पक्ष-संचयका दान विद्यादानका फल देता है और उन पश्चो-

की एवं अक्षरोंकी जितनी संख्या होती है। यहाँ पुरुष उसने ही इबार कर्मोत्तम विष्णुलोकमें पूजित होता है। पञ्चाम, पुराण और महाभारतका दान कलशाला मनुष्य अपनी इक्षीस पीढ़ियोंका उदाहर करके परमतत्वमें विलीन हो जाता है॥ १९—२६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें विष्णु आदि देवताओंकी प्रतिष्ठाकी सामान्य विधिका वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चौसठवाँ अध्याय

कुआँ, बावड़ी और पोखरे आदिकी प्रतिष्ठाकी विधि

थीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं कूप, वारी और तड़ागकी प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। भगवान् श्रीहरि ही जलरूपसे देवश्रेष्ठ सोम और वरुण हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व अग्नीषोममय है। जलरूप नारायण उसके कारण हैं। मनुष्य वरुणकी स्वर्ण, रौप्य या रत्नमयी प्रतिमाका निर्याण करावे। वरुणरेत द्विभुज, हस्तरूढ और नदी एवं नालोंसे युक्त हैं। उनके दक्षिण-हस्तमें अभयमुद्रा और वाम-हस्तमें नागपाणी सुशोभित होता है। यशमण्डपके मध्यभागमें कुण्डसे सुशोभित वेदिका होनी चाहिये तथा उसके तोरण (पूर्व-द्वार) पर कमण्डलुसहित वरुण-कलशकी स्थापना करनी चाहिये। इसी तरह भद्रक (दक्षिण-द्वार), अर्द्धचन्द्र (पश्चिम-द्वार) तथा स्वस्तिक (उत्तर-द्वार) पर भी वरुण-कलशोंकी स्थापना आवश्यक है। कुण्डमें अग्निका आधान करके पूर्णाहुति प्रदान करे॥ १—५ ॥

‘ये ते जातं वरुणः’ आदि मन्त्रसे स्नानपीठपर वरुणको स्थापना करे। तत्पश्चात् आचार्य मूल-मन्त्रका उत्तरण करके, वरुण देवताकी प्रतिमाको वहीं पथराकर, उसमें बृतका अभ्यङ्ग करे। फिर ‘कां तो देवीः’ (अथर्व० १ । ६ । १३ शु० यजु० ३६ । १२) इत्यादि मन्त्रसे उसका प्रशालन करके ‘स्तुव्यवाङः० स्वंस्तुव्यवाङो०’ (शु० यजु० २४ । ३) आदिसे पवित्र जलद्वारा उसे स्नान करावे। तदनन्तर स्नानपीठकी पूर्वादि दिशाओंमें आठ कलशोंका अधिवासन (स्थापन) करे। इनमेंसे पूर्ववती कलशमें समुद्रके जल, आग्नेयकोणवर्ती कुम्भमें गङ्गाजल, दक्षिणके कलशमें वरषके जल, वैश्वर्यकोणवर्ती कुम्भमें शत्रुंगके जल, पश्चिमवाले कलशमें नदीके जल, वायव्यकोणमें

नदके जल, उत्तर-कुम्भमें औदिज (सोते) के जल एवं ईशानवर्ती कलशमें तीर्थके जलको भरे। उपर्युक्त विविध जल न मिलनेपर सब कलशोंमें नदाके ही जलको ढाले। उक्त सभी कलशोंको ‘यासीं राजा०’ (अथर्व० १ । ३ ३ २) आदि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। विद्वान् पुरोहित वरुण-देवका ‘स्तुव्यमित्रिणा०’ (शु० यजु० ३५ । १२) आदि मन्त्रसे माजन और निर्मल्लन करके, ‘स्त्रिं देवावां०’ (शु० यजु० १३ । ४६) तथा ‘तत्पञ्चवेदहितं०’ (शु० यजु० ३६ । २४) इन मन्त्रोंसे मधुरत्रय (शहद, धी और चीनी) द्वारा वरुणदेवके नेत्रोंका उन्मीलन करे। फिर वरुणकी उत्तर सुवर्णमयी प्रतिमामें ज्योतिका पूजन करे एवं आचार्यको गोदान दे॥ ६—१०३ ॥

तदनन्तर ‘स्तुव्यवाङः०’ (शूक० ७ । ४९ । १) आदि मन्त्रके द्वारा वरुणदेवताका पूर्व-कलशके जलसे अभिवेक करे। ‘स्तुव्यं गङ्गां०’ (यजु० ६ । २१) इत्यादि मन्त्रके द्वारा अग्निकोणवर्ती कलशके गङ्गाजलसे, ‘सोमो धेनुं०’ (शु० यजु० ३४ । २१) इत्यादि मन्त्रके द्वारा दक्षिण-कलशके वर्षाजलसे, ‘देवीराषो०’ (शु० यजु० ६ । २७) इत्यादि मन्त्रके द्वारा नैश्वर्यकोणवर्ती कलशके निर्झर-जलसे, ‘पञ्च नदाः०’ (शु० यजु० ३४ । ११) आदि मन्त्रके द्वारा पश्चिम-कलशके नदी-जलसे, ‘उमिन्दयः०’ इत्यादि मन्त्रके द्वारा उत्तरवर्ती कलशके उदिज-जलसे और पश्चानी शूचाके द्वारा ईशानकोणवाले कलशके तीर्थ-जलसे वरुणका अभिवेक करे। फिर यजमान मौन रहकर ‘आपो हि द्वा०’ (शु० यजु० ११ । ५०) मन्त्रके द्वारा पञ्चगव्यसे, ‘हिरण्यस्त्राण०’ (औहूक) के द्वारा स्वर्ण-जलसे, ‘आपो

‘वाकान्०’ (शु० यजु० ४ । २) मन्त्रके द्वारा वर्षाजलसे, व्याहृतियोंका उच्चारण करके कूप-जलसे तथा ‘आपो देवीः०’ (शु० यजु० १२ । ३५) मन्त्रके द्वारा तडाग-जल एवं लोरणबत्तीं वरुण-कलशके जलसे वरुणदेवको स्नान करावे । ‘वरुणस्तोत्रम्भनमसि०’ (शु० यजु० ४ । ३६) मन्त्रके द्वारा पर्वतीय जल (अर्थात् शरनेके पानी) से भरे हुए इक्याती कलशोंद्वारा उसको स्नान करावे । फिर त्वं जो अग्ने वरुणस्त०’ (शु० यजु० २१ । ३) इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे । व्याहृतियोंका उच्चारण करके मधुपर्क, ‘हृष्टस्यते अति धद्यो०’ (शु० यजु० २६ । ३) मन्त्रसे ‘वज्रं हृष्टमे वरुणं’ (शु० यजु० २१ । १) इस मन्त्रसे पवित्रक और प्रणवसे उत्तरीय समर्पित करे ॥ ११—१६ ॥

वरुणसूक्तसे वरुणदेवताको पुष्ट, चौंबर, दर्पण, छत्र और पताका निवेदन करे । मूल-मन्त्रसे ‘उत्तिष्ठ’ ऐसा कहकर उत्थापन करे । उस रात्रिको अधिवासन करे । ‘वरुणं वा०’ इस मन्त्रसे संनिधीकरण करके वरुणसूक्तसे उनका पूजन करे । फिर मूल-मन्त्रसे सज्जीवीकरण करके चन्दन आदिद्वारा पूजन करे । मण्डलमें पूर्ववत् अर्चना कर ले । अग्निकृष्णमें समिधाओंका हचन करे । वैदिक मन्त्रोंसे गङ्गा आदि नदीं गौओंका दोहन करे । तदनन्तर सम्पूर्ण दिशाओंमें यवनिर्मित चक्रकी स्थापना करके होम करे । चक्रके व्याहृति, गायत्री या मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके, सूर्य, प्रजापति, दिव्, अन्तक-निग्रह, पृथ्वी, देहधृति, स्वधृति, रति, रमती, उग्र, भीम, रोद्र, विष्णु, वरुण, धाता, रायस्योष, महेन्द्र, अग्नि, यम, निर्गृहि, वरुण, वायु, कुबेर, ईश, अनन्त, ब्रह्मा, राजा जलेश्वर (वरुण)—इन नामोंका चतुर्थन्तररूप बोलकर, अन्तमे स्वाहा लगाकर बलि समर्पित करे । ‘इदं विष्णुः०’ (शु० यजु० ५ । १५) और ‘तद् विग्रासो०’ (शु० यजु० ३४ । ४४)—इन मन्त्रोंसे आहुति दे । ‘सोमो धनुं०’ (शु० यजु० २४ । २१) मन्त्रसे छः आहुतियों देकर ‘हृष्टं मे वरुणः०’ (शु० यजु० २१ । १) मन्त्रसे एक आहुति दे । ‘आपो हि ष्ठा०’ (शु० यजु० ११ । ५०-५२) आदि तीन शृङ्खाओंसे तथा ‘हमा रुद्र०’ इत्यादि मन्त्रसे भी आहुतियाँ दे ॥ १७—२५ ॥

फिर दसों दिशाओंमें बलि समर्पित करे और गन्ध-पुष्ट आदिसे पूजन करे । तत्पश्चात् विद्वान् पुष्ट प्रतिमा-को उठाकर मण्डलमें स्थापित करे तथा गन्ध-पुष्ट आदि एवं स्वर्ण-पुष्ट आदिके द्वारा कमशः उसका पूजन करे ।

तदनन्तर धेष्ठु आचार्य आठों दिशाओंमें दो विच्छे प्रमाणके जलाशय और आठ बालुकामयी सुरस्य वेदियोंका निर्माण करे । ‘वरुणस्त०’ (यजु० ४ । ३६) इस मन्त्रसे युत एवं यवनिर्मित चक्रकी पृथक्-पृथक् एक सौ आठ आहुतियाँ देकर शान्ति-जलले आवे और उस जलसे वरुणदेवके सिंहपर अभिषेक करके सजीवीकरण करे । वरुणदेव अपनी धर्मपत्नी गौरीदेवीके साथ विराजमान नदी-नदोंसे घिरे हुए हैं—इस प्रकार उनका स्थान करे । ‘ॐ वरुणाय नमः ।’ मन्त्रसे पूजन करके सानिध्यकरण करे । तत्रश्चात् वरुणदेवको उठाकर गजराजके पुष्टदेश आदि सवारियोंपर मङ्गल-द्रव्योंसहित स्थापित करके नगरमें भ्रमण करावे । इसके बाद उस वरुण-मूर्तिको ‘आपो हि पृष्ठा०’ आदि मन्त्रका उच्चारण करके त्रिमध्युक्त कलश-जलमें रक्ष्वे और कलशसहित वरुणको जलाशयके मध्यभागमें सुरक्षितरूपमें स्थापित कर दे ॥ २६—३१ ॥

इसके बाद यजमान स्त्रान करके वरुणका स्थान करे । फिर ब्राह्मण मंसिका सृष्टिको अग्निवीज (२) से दग्ध करके उसकी भस्माराशिको जलसे प्लावित करनेकी भावना करे । ‘समस्त लोक जन्मय ही गया है’—ऐसी भावना करके उस जलमें जलेवर वरुणका स्थान करे । इस प्रकार जलके मध्यभागमें वरुणदेवताका चिन्तन करके वहाँ यूपकी स्थापना करे । यूप चतुर्खोण, अष्टकाण या गोलाकार हो तो उत्तम माना गया है । उसकी लंगाई दम हाथकी होनी चाहिये । उसमें उपास्यदेवताका परिचायक निह हो । उसका निर्माण किसी यज्ञ-सम्बन्धी बृक्षके काष्ठसे हुआ हो । ऐसा ही यूप कृपके लिये उपयोगी होता है । उसके मूलभागमें हैममय फलका न्यास करे । वापीमें पद्रह हाथका, पुष्टकरिणीमें बीस हाथका और पोखरेमें पचीस हाथका यूपकाष्ठ जलके भीतर निवेदित करे । यशमण्डपके प्राङ्गणमें ‘यूप ब्रह्मा०’ आदि मन्त्रसे यूपकी स्थापना करके उसको बल्लोंसे आवेष्टित करे तथा यूपके ऊपर पताका लगावे । उसका गन्ध आदिसे पूजन करके जगत् के लिये शान्तिकर्म करे । आचार्यको भूमि, गौ, सुवर्ण तथा जलपात्र आदि दक्षिणामें दे । अन्य ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दे और समागत जनोंको भोजन कराये ।

आश्वासनव्यपर्यन्तं ये केचित्सङ्किळार्थिनः ।
ते शृङ्खुपगच्छन्तु तडागस्थेन वासिणा ॥

‘ब्रह्मासे लेकर तृण-पर्यन्त जो भी जलपिण्डि है, वे इस उडागमें स्थित जलके द्वारा तृप्तिको प्राप्त हो।’—ऐसा कहकर जलका उत्तर्ग करे और जलाशयमें पञ्चगव्य डाले ॥ ३२—४० ॥

तदनन्तर ‘आपी हि ष्ठा०’ इत्यादि तीन ऋचाओंसे ब्राह्मणोंद्वारा सम्प्रदित शान्ति-जल तथा पवित्र तीर्थ-जलका निष्केप करे एवं ब्राह्मणोंको गोवंशका दान करे । सर्व-साधारणके लिये बैरोक-टोक अज्ञ-वितरणका प्रवन्ध करावे ।

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें ‘कुर्मा, बाबौली तथा पौलरे आदिकी प्रतिष्ठाका वर्णन’ नामक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पैसठवाँ अध्याय

सभा-स्थापन और एकशालादि भवनके निर्माण आदिकी विधि, गृहप्रचेशका क्रम तथा गोमातासे अम्युदयके लिये प्रार्थना

श्रीभगवान् वोले—अब मैं सभा (देवमन्दिर) आदिकी स्थापनाका विषय बताऊँगा तथा इन सबकी प्रवृत्तिके विषयमें भी कुछ कहूँगा । भूमिकी परीक्षा करके वहाँ बालुदेवताका पूजन करे । अपनी इच्छाके अनुसार देव-सभा (मन्दिर) का निर्माण करके अपनी ही रुचिके अनुकूल देवताओंकी स्थापना करे । नगरके चौराहेपर अथवा ग्राम आदिमें सभाका निर्माण करावे; सूने स्थानमें नहीं । देव-सभाका निर्माण एवं स्थापना करनेवाला पुरुष निर्मल (पापरहित) होकर, अपने समस्त कुलका उदार करके स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है । इस विधिसे भगवान् श्रीहरिके सत्तमहले मन्दिरका निर्माण करना चाहिये । ठीक उसी तरह, जैसे राजाओंके प्रापाद बनाये जाते हैं । अन्य देवताओंके लिये भी यही बात है । पूर्वोदि दिशाओंके क्रमसे जो ध्वज आपदे आय होते हैं, उनमेंसे कोण-दिशाओंमें स्थित आयोंको त्याग देना चाहिये । चार, तीन, दो अथवा एकशालाका यह बनावे । जहाँ व्यय (शूण) अधिक हो, ऐसे पर्दपर घर न बनावे; क्योंकि वह व्ययरूपी दोषको उत्पन्न करनेवाला होता है । अधिक ‘आय’ होनेपर भी पीड़ाकी सम्प्राप्ति रहती है; अतः आय-व्ययको समझावसे संतुलित करके रखें ॥ १—५२ ॥

१. भूमिकी लंबाई-नीबाईको परस्पर गुणित करनेसे जो संख्या आती है, उसे ‘पद’ कहते हैं ।

जो मनुष्य एक लाख अश्वेष यज्ञोंका अनुष्टुप्ति करता है तथा जो एक बार भी जलाशयकी प्रतिष्ठा करता है, उसका पुण्य उन यज्ञोंकी अपेक्षा हजारों गुना अधिक है । वह स्वर्गलोकको प्राप्त होकर विमानमें प्रसुदित होता है और नरकको कभी नहीं प्राप्त होता है ॥ ४१—४३ ॥

जलाशयसे गौ आदि पशु जल पीते हैं, इससे कर्ता पापमुक्त हो जाता है । मनुष्य जलदानसे सम्पूर्ण दानोंका फल प्राप्त करके स्वर्गलोकको जाता है ॥ ४४ ॥

प्रककी लंबाई और चौड़ाई जितने हाथकी हैं, उन्हें परस्पर गुणित करनेसे जो संख्या होती है, उसे ‘करराशि’ कहा गया है; उसे गर्भाचार्यकी बतायी हुई ज्योतिष-विद्यामें प्रवीण गुरु (पुरोहित) आठगुना करे । फिर भातसे भाग देनेपर शेषके अनुसार ‘आय’का निश्चय होता है और आठसे भाग देनेपर जो शेष होता है, वह ‘व्यय’ माना गया है । अथवा विद्वान् पुरुष करराशिमें सातसे गुणा करे । फिर उस गुणनफलमें आठसे भाग देकर शेषके अनुसार व्यजादि आयोंकी कल्पना करे ।

१. ध्वज, २. धूम, ३. सिंह, ४. श्वान, ५. वृषभ, ६. खर (गधा), ७. गज (हाथी) और ८. घारु (काक)—ये क्रमशः आठ आय कहे गये हैं, जो पूर्वादि दिशाओंमें प्रकट होते हैं—इस प्रकार इनकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ५—९ ॥

तीन शालाओंसे युक्त यहके अनेक भेदोंमेंसे तीन प्रारम्भिक भेद उत्तम माने गये हैं ।* उत्तर-पूर्व दिशामें इसका निर्माण बर्जित है । दक्षिण दिशामें अव्यग्रहसे युक्त दो शालाओंवाला भवन सदा श्रेष्ठ माना जाता है । दक्षिण दिशामें अनेक या एक शालावाला यह भी उत्तम है । दक्षिण-पश्चिममें भी एक शालावाला यह श्रेष्ठ होता है । एक शालावाले यहके जो प्रथम (ध्रुव और धान्य नामक) दो भेद हैं, वे उत्तम हैं । इस प्रकार यहके सोलह + भेदोंमेंसे

*-१ नारदपुराण, पूर्वगम, शिलीयगात, अस्याय ५६के छोड

अधिकांश (अर्थात् १०) उत्तम हैं और शेष (छः; अर्थात् पाँचवाँ; नवाँ; दसवाँ; च्यारहवाँ; तेरहवाँ और चोदहवाँ भेद) अथवा हैं । नार शाला (या द्वार) बाला यह सदा उत्तम है; वह सभी दोषोंसे रहित है । देवताके लिये एक मंजिलसे लेकर गात मंजिलतकका मन्दिर बनावे, जो द्वाष-वेषादि दोष तथा पुराने सामानसे रहित हो । उसे सदा मानव-समुदायके लिये कथित कर्म एवं प्रतिष्ठा-विधिके अनुसार स्थापित करे ॥ १०-१३ ॥

गृहप्रवेश करनेवाले यहस्य पुरुषको चाहिये कि वह आल्य छोड़कर प्रातःकाल सर्वांगधि-मिश्रित जलसे स्नान करके, पवित्र हो, दैवज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मधुर अन्न (मीठे पकवान) भोजन करवे । फिर उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर गायके पीठपर हाथ रखे हुए, पूर्ण कलश आदिसे सुशोभित तोरणयुक्त गृहमें प्रवेश करे । घरमें जाकर एकाग्रवित्त हो, गौके सम्मुख हाथ जोड़ यह पुष्टिकारक मन्त्र पढ़े—‘ॐ श्रीविष्णुजीके द्वाय लालित-पालित नन्दे । धन और संतान देकर मेरा आनन्द बढ़ाओ । प्रजाको विजय दिलानेवाली भार्गवनन्दिनि जये ! तुम मुझे धन और सम्पत्तिसे आनन्दित करो ।

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें सभा आदिकी स्थापनाके विवानका वर्णन नामक
पैसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

छाठठवाँ अध्याय

देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा

श्रीभगवान् कहने हैं—अब मैं देव-समुदायकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा । यह भगवान् वासुदेवकी प्रतिष्ठाकी भाँति ही होती है । आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वदेव, अदिवनीकुमार, अृषि तथा अन्य देवगण—ये देवसमुदाय हैं । इनकी स्थापनाके विषयमें जो विशेषता है, वह बतलाता हूँ । जिस देवताका जो नाम है, उसका आदि अक्षर ग्रहण करके उसे मात्राओंद्वारा भेदन करे, अर्थात् उसमें स्वरमात्रा लगावे । फिर दीर्घ स्वरोंसे युक्त उन बीजोंद्वारा अङ्गन्यास

करे । उस प्रथम अक्षरको विन्दु और प्रणवसे संयुक्त करके ‘बीज’ माने । समस्त देवताओंका मूल-मन्त्रके द्वारा ही पूजन एवं स्थापन करे । इसके सिवा मैं नियम, व्रत, कृच्छ्र, मठ, सेतु, गृह, मासोपवास और द्वादशीव्रत आदिकी स्थापनाके विषयमें भी कहूँगा ॥ १-४ ॥

पहले शिला, पूर्णकुम्भ और कांस्यपात्र लाकर रखले । साधक ब्रह्मकूर्चको लाकर ‘तद् विष्णोः परमं’ (शु० यजु० ६ । ५) मन्त्रके द्वारा कपिला गौके दुर्धर्षे यवमय चढ़

५८० से ५८२में कहा गया है कि ‘धरके छः भेद है—एकशाला, द्विशाला, त्रिशाला, सप्तशाला और दशशाला । इनमेंसे प्रथेकके सोलह-सोलह भेद होते हैं । उन सबके नाम क्रमः इस प्रकार है—१. षुष, २. चान्य, ३. जय, ४. चन्द, ५. खर, ६. कान्न, ७. मनोरम, ८. चुम्ब, ९. दुम्बु, १०. कूर, ११. शुदु, १२. लण्ड, १३. क्षय, १४. जाक्षन्द, १५. चियुल, १६. विजय । पूर्वोदि दिशाओंमें इनका निर्माण होता है । इनका जैसा नाम, जैसा ही गुण है ।

अपित करे । प्रणवके द्वारा उसमे घृत डालकर दर्ढी (कलडी) से संधाटित करे । इस प्रकार चरको सिद्ध करके उतार ले । फिर श्रीविष्णुका पूजन करके हवन करे । व्याहृति और गायत्रीसे युक्त 'तद्विप्रासो' (शु० यजु० ३४ । ४४) आदि मन्त्रसे चम-होम करे । 'विश्वसशङ्कुः०' (शु० यजु० १७ । १९) आदि मन्त्रोंसे भूमि, अग्नि, सूर्य, प्रजापति, अन्तरिक्ष, धौ, ब्रह्मा, पृथ्वी, कुबेर तथा राजा सोमको चतुर्थ्यन्त एवं 'स्वाहा' संयुक्त करके इनके उद्देश्यसे आहुतियाँ प्रदान करे । इन्द्र आदि देवताओंको इन्द्र आदिसे सम्बन्धित मन्त्रोंद्वारा आहुति दे । इस प्रकार चरुभागोंका हवन करके आदरपूर्वक दिग्बलि समर्पित करे ॥ ५-१० ॥

फिर एक सौ आठ पलाश-समिधाओंका हवन करके पुरुषसूक्तसे घृत-होम करे । 'इशावती धेनुमती०' (शु० यजु० ५ । १६) मन्त्रसे तिलाष्टकका होम करके ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—इन देवताओंके पार्षदों, ग्रहों तथा लोकपालोंके लिये पुनः आहुति दे । पवनं, नदी, समुद्र—इन सबके उद्देश्यसे आहुतियोंका हवन करके, तीन महाव्याहृतियोंका उच्चारण करके, सुवाके द्वारा तीन पूर्णाहुति दे । पितामह ! 'वौषट्' संयुक्त वैष्णव मन्त्रसे पञ्चगव्य तथा चरुका प्राशन करके आन्तर्यामी सुवर्णयुक्त तिलपात्र, वस्त्र एवं अर्लंकृत गौ दक्षिणामें दे । विद्वान् पुरुष 'भगवान् विष्णुः प्रीयताम् ।'—ऐसा कहकर व्रतका विसर्जन करे ॥ ११-१५ ॥

मैं मासोपवास आदि व्रतोंकी दूसरी विधि भी कहता हूँ । पहले देवाधिदेव श्रीहरिको यज्ञसे संतुष्ट करे । तिल, तण्डुल, नीवार, द्यामाक अथवा यज्वके द्वारा वैष्णव चरु अपित करे । उसको घृतसे संयुक्त करके उतारकर मूर्ति-मन्त्रोंसे हवन करे । तदनन्तर मासाधिपति विष्णु आदि देवताओंके उद्देश्यसे पुनः होम करे ॥ १६-१८ ॥

ॐ श्रीविष्णवे स्वाहा । ॐ विष्णवे विभूषणाय स्वाहा ।
ॐ विष्णवे विभिषिष्ठाय स्वाहा । ॐ वर्तिष्ठाय स्वाहा ।
ॐ पुरुषोत्तमाय स्वाहा ।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'देवता-सामान्य-प्रतिष्ठा-कथन' नामक छाउठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

—आदि मन्त्रोंसे घृतपूरुत अश्वत्थशूककी बारह समिधाओंका हवन करे । 'विष्णो राट्मसि०' (यजु० शु० ५ । २१) मन्त्रके द्वारा भी बारह आहुतियाँ दे । फिर 'इदं विष्णु०' (शु० यजु० ५ । १५) 'इशावती०' (शु० यजु० ५ । १६) मन्त्रसे चरुकी बारह आहुतियाँ प्रदान करे । 'तद्विप्रासो०' (शु० यजु० ३४ । ४४) आदि मन्त्रसे घृताहुति समर्पित करे । फिर शेष होम करके तीन पूर्णाहुति दे । 'मुञ्चते' (शु० यजु० ५ । १४) आदि अनुवाकका जप करके मन्त्रके आदिमें स्वकर्तृक मन्त्रोच्चारणके पश्चात् पीपलके पत्ते आदिके पात्रमें रखकर चरुका प्राशन करे ॥ १९-२२ ॥

तदनन्तर मासाधिपतियोंके उद्देश्यसे बारह ब्राह्मणोंके भोजन करावे । आचार्य उनमें तेरहवाँ होना चाहिये । उनको मधुर जलसे पूर्ण तेरह कलश, उत्तम छब, पाणुका, श्रेष्ठ वस्त्र, सुर्वं तथा माला प्रदान करे । व्रतपूर्तिके लिये सभी वस्तुएँ तेरह-नेरह होनी चाहिये । 'गौँैऽ प्रसन्न हों । वे हर्षित होकर चरे ।'—ऐसा कहकर पांसला, उद्धान, मठ तथा सेतु आदिके समीप गोपथ (गोचरभूमि) छोड़कर दम हाथ ऊँचा यूप निवेशित करे । यहस्य धरमें होम तथा अन्य कार्य विधिवत् करके, पूर्वोक्त विधिके अनुसार गृहमें प्रवेश करे । इन सभी कार्योंमें जनसाधारणके लिये अनिवारित अज्ञ-सत्र खुलवा दे । विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे ॥ २३-२८ ॥

जो मनुष्य उद्यानका निर्माण करता है, वह चिरकाल-तक नन्दनकाननमें निवास करता है । मठ-प्रदानसे स्वर्ग-लोक एवं हन्दलोककी प्राप्ति होती है । प्रयादान करनेवाला वहांलोकमें तथा पुलका निर्माण करनेवाला देवलोकमें निवास करता है । ईटका सेतु बनवानेवाला भी स्वर्गको प्राप्त होता है । गोपथ-निर्माणसे गोलोकका प्राप्ति होती है । नियमों और व्रतोंका पालन करनेवाला विष्णुके सारूप्यकी अधिगत करता है । कृच्छ्रवत करनेवाला मम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है । यहदान करके दाता प्रलयकालपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है । यहस्य-मनुष्योंको शिव आदि देवताओंकी समुदाय-प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ २९-३२ ॥

सङ्गठवाँ अध्याय

जीर्णोद्धार-विधि

भीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं जीर्णोद्धारकी विधि बतलाता हूँ । आचार्य मूर्तिको विभूषित करके खान करावे । अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्न सहित) प्रतिमाका परिस्थान करे । उसके स्थानपर पूर्वत् देवगृहमें नवीन स्थिर-मूर्तिका न्यास करे । आचार्य वहाँपर [भूतशुद्धि-प्रकरणमें उक्त] संहारविधिमें सम्पूर्ण तत्त्वोंका संहार करे । युह नृसिंह-मन्त्रकी सहज आहुतियाँ देकर मूर्तिको उखाइ दे । फिर दारमयी मूर्तिको अश्रिमें जला दे, प्रस्तरनिर्मित विसर्जित प्रतिमाको जलमें पेंक दे, धातुमयी या रक्तमयी मूर्ति हो तो उसे गमुदकी अग्नाध जल-राशिमें विसर्जित कर दे । जीर्णाङ्ग प्रतिमाको यानपर आरूढ़ कर, शस्त्र आदिमें आच्छादित करके, गाजे-बाजेके साथ ले जाय और जलमें छोड़ दे । फिर आचार्यको दक्षिणा दे । उसी दिन पूर्व प्रतिमाके प्रमाण तथा द्रव्यके अनुगार उसी प्रमाणकी मूर्ति स्थापित करे । इसी प्रकार कृप, वारी और नडाग आदिका जीर्णोद्धार करनेमें भी महान् फलकी प्राप्ति होती है ॥ १-६ ॥

इस प्रकार आदि आश्रेय महापुण्यमें 'जीर्णोद्धारविधिकथन' नामक महासंग्रहाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

अङ्गठवाँ अध्याय

उत्सव-विधिका कथन

भीभगवान् कहते हैं—अब मैं उत्सवकी विधिका वर्णन करता हूँ । देवस्थान होनेके पश्चात् उसी वर्षमें एकरात्र, त्रिशत्र या अष्टशत्र उत्सव मनावे; क्योंकि उत्सवके विना देवप्रतिष्ठा निष्कल होती है । अयन या विषुव-संकान्तिके समय शयनोवान् या देवगृहमें अथवा कर्त्तके जिस प्रकार अनुकूल हो, भगवान्की नगरयात्रा करावे । उस समय मङ्गलाङ्कुरोंका रोपण, नृस्य-गीत तथा गाजे-बाजेका प्रवन्ध करे । अङ्कुरोंके रोपणके लिये शाराव (परदे) या हँडिया श्वेष मानी गयी है । यव, शालि, तिल, मुद्र, गोधूम, श्वेत सर्षप, कुलस्थ, माष और निष्पावको प्रकाशित करके बयन करे । प्रदीपोंके साथ रात्रिमें नगर-भ्रमण करते हुए इन्द्रादि दिक्-गालों, कुमुद आदि दिग्गजों तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके उद्देश्यसे पूर्वादि दिशाओंमें बलिप्रदान करे । जो मनुष्य देवविष्मका बहन करते हुए देवयात्राका अनुगमन करते हैं, उनको पद-पदपर अक्षमेष्वर यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥ १-६८ ॥

आचार्य पहले दिन देवमन्दिरमें आकर देवताको सूक्ष्मित करे—'ध्यगवत् ! देवश्रेष्ठ ! आपको कल तीर्थयात्रा करनी है । सर्वश ! आप उसका आरम्भ करनेकी आशा देनेमें

जला दे, प्रस्तरनिर्मित विसर्जित प्रतिमाको जलमें पेंक दे, धातुमयी या रक्तमयी मूर्ति हो तो उसे गमुदकी अग्नाध जल-राशिमें विसर्जित कर दे । जीर्णाङ्ग प्रतिमाको यानपर आरूढ़ कर, शस्त्र आदिमें आच्छादित करके, गाजे-बाजेके साथ ले जाय और जलमें छोड़ दे । फिर आचार्यको दक्षिणा दे । उसी दिन पूर्व प्रतिमाके प्रमाण तथा द्रव्यके अनुगार उसी प्रमाणकी मूर्ति स्थापित करे । इसी प्रकार कृप, वारी और नडाग आदिका जीर्णोद्धार करनेमें भी महान् फलकी प्राप्ति होती है ॥ ७-१० ॥

फिर विद्वान् पुरुष वैष्णवोंके साथ मूल-मन्त्रसे देवमूर्तिके अङ्गोंमें घृतका लेपन करे तथा सारी रात घृतधारामें अभिषेक करे । देवताको दर्पण दिवलाकर, आरती, गीत, वाद्य आदिके गाथ मङ्गलाङ्कुर्य करे, व्यजन हुत्यवे एवं पूजन करे । फिर दीप, गन्ध तथा पुष्पादिसे यजन करे । इरिडा, कपूर, केमर और इवेत-चन्दन-चूर्णको देवमूर्ति तथा भक्तोंके सिरपर छोड़नेमें समस्त तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होती है । आचार्य यात्राके लिये नियन देवमूर्तिकी रथयात्रा स्थापना और अच्छना करके छत्र-चूँबर तथा शङ्खनाद आदिके साथ रात्रिका पालन करनेवाली नदीके तटपर ले जाय ॥ ११-१४ ॥

नदीमें नहलानेसे पूर्व वहाँ तटपर वेदीका निर्माण करे । फिर मूर्तिको यानसे उतारकर उसे वेदिकापर विस्थाप्त करे । वहाँ चर निर्मित करके उसकी आहुति देनेके पश्चात् पायसका

होम करे । फिर देवतासम्बन्धी मन्त्रोंसे तीर्थोंका आवाहन करे । 'आयो हि छा०' आदि मन्त्रोंसे उनको अर्घ्य प्रदान करके पूजन करे । देवमूर्तिको लेकर जलमें अधर्मर्षण करके ब्राह्मणों और महाजनोंके साथ ज्ञान करे । स्नानके

पश्चात् मूर्तिको ले आकर वेदिकापर रखे । उस दिन देवताका वहाँ पूजन करके देवग्रासादर्मे ले जाय । आचार्य अग्रिमें स्थित देवका पूजन करे । यह उत्सव भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ १५-१९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें 'उत्सव-विधिकथन' नामक अङ्गठबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय स्नपनोत्सवके विस्तारका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन् ! अब मैं स्नपनोत्सवका विभारपूर्वक वर्णन करता हूँ । प्रासादके सभुख मण्डपके नीचे मण्डलमें कलशोंका न्यास करे । प्रारम्भकालमें तथा समर्पण कर्मोंको करते समय भगवान् श्रीहस्तिका ध्यान, पूजन और हवन करे । पूर्णाहुनिके साथ इजार या सौ आहुतियों दे । फिर स्नान द्रव्योंको लाकर कलशोंका बिन्यास करे । कण्ठसूत्रयुक्त कुम्भोंका अधिवासन करके मण्डलमें रखें ॥ १—३ ॥

चौकोर मण्डलका निर्माण करके उसे ग्यारह रेखाओं-द्वारा विभाजित कर दे । फिर पाइवभागकी एक रेखा मिटा दे । इस तरह उस मण्डलमें चारों दिशाओंमें नौ-नौ कोष्ठकोंका न्यासना करके उनको पूर्व आदिके क्रमसे शालिचूर्ण आदिमें पूरित करे । फिर विद्वान् मनुध्य कुम्भमुदाकी रचना करके पूर्वादि दिशाओंमें स्थित नवकर्मे कलश लाकर रखें । पुण्डरीकाश-मन्त्रसे उनमें दर्भ डाले । सर्वरत्नमन्तिम छलपूर्ण कुम्भको मध्यमें बिन्यस्त करे । शेष आठ कुम्भोंमें क्रगशः यज, व्रीहि, तिल, नीबार, इयामाक, कुलस्थ, मुद्रग और इवेत सर्वां डालकर आठ दिशाओंमें स्थापित कर । पूर्वदिशावर्ती नवकर्मे धृतपूर्ण कुम्भ रखें । इसमें पलाश, अश्वत्थ, वट, बिल्ब, उदुभर, प्लक्ष, जमू, शभी तथा कपित्थ वृक्षकी छालका क्वाथ डाले । आग्नेयकोणवर्ती नवकर्मे मधुपूर्ण बटका न्यास करे । इस कलशमें गोशृङ्ख, पर्वत, गङ्गाजल, गजयाला, तीर्थ, खेत और खलिहान—इन आठ स्लोकी मृतिका छोड़े ॥ ४—१० ॥

दक्षिणदिशावर्ती नवकर्मे तिल-तैलसे परिपूर्ण घट स्थापित

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें 'स्नपनोत्सव-विधि-कथन' नामक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

करे । उसमें क्रमशः न्यरंगी, जम्बीरी नीबू, खजूर, मृतिका, नारिकेल, सुपारी, अनार और पनस (कटहल) का पत्ता डाल दे । नैऋत्यकोणगत नवकर्मे क्षीरपूर्ण कलश रखें । उसमें कुकुम, नागपुष्प, चम्पक, मालती, महिला, पुनामा, करबीर एवं कमल-कुसुमोंको प्रक्षिप्त करे । पश्चिमीय नवकर्मे नारिकेल-जलसे पूर्ण कलशमें नदी, समुद्र, सरोवर, नूप, वर्षा, हिम, निर्झर तथा देवनदीका जल छोड़े । वायव्यकोणवर्ती नवकर्मे कदलीजलपूरित कुम्भ रखें । उसमें सहदेवी, कुमारी, सिंही, व्याघ्री, अमृता, विधुपर्णी, दूबा, वच—इन दिव्य ओषधियोंको प्रक्षिप्त करे । पूर्वादि उत्तरवर्ती नवकर्मे दधिकलशका बिन्यास करे । उसमें क्रमशः पत्र, इलायची, तज, कुट, सुगन्धबाला, चन्दनद्वय, लता, कस्तूरी, कृष्णागुरु तथा सिद्ध द्रव्य डाल दे । ईशानस्थ नवकर्मे शान्तिजलसे पूर्ण कुम्भ रखें । उसमें क्रमशः शुभ रजत, लौह, चमु, काल्प, सीसक तथा रत्न ढाले । प्रतिमाको धृतका अस्त्रज्ञ तथा उद्घर्तन करके मूल-मन्त्रसे स्नान करावे । फिर उसका गन्धादिके द्वारा पूजन करे । अग्रिमें होम करके पूर्णाहुति दे । सम्पूर्ण भूतांको बलि प्रदान करे । ब्राह्मणोंको दक्षिणापूर्वक भोजन करावे । देवता और मुनि तथा बहुत-से भूपाल भी भगवद्विग्रहका अभिषेक करके ईश्वरत्वको प्राप्त हुए हैं । इस प्रकार एक हजार आठ कलशोंसे स्नपनोत्सवका अनुशासन करे । इससे मनुष्य सब कुछ प्राप्त करता है । यहके अवधृथ-स्नानमें भी पूर्णस्नान सम्भव हो जाता है । पार्वती तथा लक्ष्मीके विवाह आदिमें भी स्नपनोत्सव किया जाता है ॥ ११—२३ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

बृक्षोंकी प्रतिष्ठाकी विधि

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन् । अब मैं वृक्षप्रतिष्ठाका वर्णन करता हूँ, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है । बृक्षोंको सर्वोष्टविजलमे लिप्स, सुगन्धित चूर्णसे विभूषित तथा मालाओंसे अलङ्कृत करके बृक्षोंमे आवेषित करे । सभी बृक्षोंका सुवर्णमयी सूचीमे कर्णवेधन तथा सुवर्णमयी शलाकासे अङ्गन करे । वेदिकापर मात फल रखवे । प्रत्येक बृक्षका अधिवासन करे तथा कुम्भ मर्मरित करे । फिर इन्द्र आदि दिक्पालोंके उहेश्वरसे बलिप्रदान करे । बृक्षके अधिवासनके समय शृग्वेद, यजुर्वेद या सामवेदके मन्त्रोंसे अथवा वरण-देवता-सम्बन्धी तथा मत्तभैरव-सम्बन्धी मन्त्रोंसे होम करे ।

इस प्रकार आदि आनंद महापुराणमे ‘पादप्रतिष्ठाविचर्णन’ नामक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

गणपतिपूजनकी विधि

भगवान् महेश्वरने कहा—कार्तिकेय ! मैं विज्ञोंके बिनाशके लिये गणपतिपूजाकी विधि बनलाता हूँ, जो समूर्ण अभीष्ट अर्थोंको सिद्ध करनेवाली है । ‘गणंजयाय स्वाहा०’—हृदय, ‘एकदंष्ट्राय हुं कट् ।’—गिर, ‘अचक्षकर्णिने नमो नमः ।’—दिवा, ‘गजत्रक्षाय नमो नमः ।’ कवच, ‘महोदराय चण्डाय नमः ।’ नेत्र एवं ‘सुदर्ढहस्ताय हुं कट् ।’ अज्ञ है ।—इन मन्त्रोंद्वारा अङ्गन्यास करे । गण, गुरु, गुरुपादुका, शक्ति, अनन्त और धर्म—इनका मुख्य कमल-मण्डलके ऊर्ध्व तथा निम्न दलोंमें पूजन करे एवं कमलकर्णिकामे बीजकी अर्चना करे । तीव्रा, ल्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उद्धा, तेजोवती, मत्या एवं

विज्ञनाशिनी—इन नौ वीठशक्तियोंकी भी पूजा करे । फिर चन्दनके चूर्णका आमन मर्मरित करे । ‘यं’ शोषकवायु, ‘रं’ अग्नि, ‘लं’ प्लव (पृथिवी) तथा ‘वं’ अमृतका वीज माना गया है ।

‘कृं’ लम्बोदराय विश्वहे महोदराय धीमहि तसो दम्भी प्रबोदयात् ।—यह गणेश-नायकी-मन्त्र है । गणपति, गणाधिप, गणेश, गणनायक, गणकीड, वक्तुण्ड, एक-दंष्ट्र, महोदर, गजवक्त्र, लम्बोदर, विकट, विज्ञाशन, धूम-वर्ण तथा इन्द्र आदि दिक्पाल—इन सबका गणपतिकी पूजामें अङ्गरूपसे पूजन करे ॥ १—८ ॥

इस प्रकार आदि आनंद महापुराणमे ‘गणपतिपूजाविचर्णन’ नामक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय

स्नान, संध्या और तर्पणकी विधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं नित्य-नैमित्तिक आदि स्नान, संध्या और प्रतिष्ठासहित पूजाका वर्णन करूँगा । किमी तालाब या पोखरेसे अङ्ग-मन्त्र (कट्) के उच्चारणपूर्वक आठ अङ्गुल गहरी मिट्टी

लोदकर निकाले । उसे समूर्णस्पसे ले आकर उसी मन्त्र-द्वारा उसका पूजन करे । इसके बाद शिरोमन्त्र (स्वाहा) से उस मृत्तिकाको जलाशयके तटपर रखकर अङ्गमन्त्रसे उसका शोधन करे । फिर शिखामन्त्र (वषट्) के उच्चारण-

पूर्वक उसमेंते तृण आदिको निकालकर, कवच-मन्त्र (हुम्)-से उस मृत्तिकाके तीन भाग करे। प्रथम भागकी जलभित्रित मिट्टीको नाभिसे लेकर पैरतकके अङ्गोंमें लगावे। तत्पश्चात् उसे धोकर, अङ्ग-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित हुई दूसरे भागकी दीतिमती मृत्तिकाद्वारा शेष सम्पूर्ण शरीरको अनुलिप्त करके, दोनों हाथोंसे कान-नाक आदि इनिद्रयोंके छिद्रोंको बंद कर, साँस रोक मन-ही-मन कालाग्निके समान तेजोमय अङ्गका चिन्तन करते हुए पानीमें हुबकी लगाकर स्नान करे। यह मल (शारीरिक मैल) को दूर करनेवाला स्नान कहलाता है। इसे इस प्रकार करके जलके भीतरसे निकल आवे और संघ्या करके विधि-स्नान करे ॥ १-५३ ॥

हृदय-मन्त्र (नमः) के उच्चारणपूर्वक अङ्गूष्ठमुद्राद्वारा सरस्वती आदि तीर्थोंमें से किसी एक तीर्थका भावनाद्वारा आकर्षण करके, फिर संहारैमुद्राद्वारा उसे अपने सभीपवर्ती जलशयमें स्थापित करे। तदनन्तर शेष (ताम्भे भागकी) मिट्टी लेकर नाभितक जलके भीतर प्रवेश करे और उत्तरभिमुख हो, बायाँ हयेलीपर उसके तीन भाग करे। दक्षिण-भागकी मिट्टीको अङ्गन्यास-सम्बन्धी मन्त्रोद्वारा (अर्थात् ॐ हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वैष्ट्, कवचाय हुम्, नेत्रश्चाय वौषट् तथा अङ्गाय फट्—इन छः मन्त्रोद्वारा) एक बार अभिमन्त्रित करे। पूर्वभागकी मिट्टीको 'अङ्गाय फट्'—इस मन्त्रका सात बार जप करके अभिमन्त्रित करे तथा उत्तरभागकी मिट्टीको 'ॐ नमः शिवाय'—इस मन्त्रका दस बार जप करके अभिमन्त्रण करे। इस तरह पूर्वोक्त मृत्तिकाके तीन भागोंका क्रमशः अभिमन्त्रण करना चाहिये। तत्पश्चात् पहले उन मृत्तिकाओंमेंसे थोड़ा-थोड़ा-सा भाग लेकर सम्पूर्ण दिशाओंमें छोड़े। छोड़ते समय 'अङ्गाय हुं फट्' का जप करता रहे। इसके बाद 'ॐ नमः शिवाय'—इस शिव-मन्त्रका तथा 'ॐ सोमाय स्वाहा'। इस सोम-मन्त्रका जप करके जलमें अपनी भुजाओंको धुमाकर उसे दिवतीर्थस्वरूप बना दे तथा पूर्वोक्त अङ्गन्यास-

१. मध्यना बङ्गुलीको सीधी रक्खर तर्जनीको विच्छेद पोक्तक उसके साथ सदाकर कुछ सिकोड़ ले—यह अङ्गूष्ठ-मुद्रा है।
२. अपेसुख बानहस्तपर अध्यमुख दाहिना हाथ रक्खर बङ्गुलियोंकी परस्पर प्रक्षित करके धुमावे—यह संहार-मुद्रा है।

(मन्त्रमहार्णव)

सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करते हुए उसे मस्तकसे लेकर पैर-तकके सारे अङ्गोंमें लगावे ॥ ६—९ ॥

तदनन्तर अङ्गन्यास-सम्बन्धी चार मन्त्रोंका पाठ करते हुए दाहिनेसे आरम्भ करके बायें तकके हृदय, सिर, शिखा और दोनों भुजाओंका स्पर्श करे तथा नाक, कान आदि सारे छिद्रोंको बंद करके सम्मुखीकरण-मुद्राद्वारा भगवान् शिव, विष्णु अथवा गङ्गाजीका स्मरण करते हुए जलमें गोता लगावे। 'ॐ हृदयाय नमः ।' 'शिरसे स्वाहा ।' 'शिखायै वैष्ट् ।' 'कवचाय हुम् ।' 'नेत्रश्चाय वौषट् ।' तथा 'अङ्गाय फट्'—इन पठङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण करके, जलमें स्थित हो, बायें और दायें हाथ, दोनोंको मिलाकर, कुम्भमुद्राद्वारा अभिषेक करे। फिर रक्खके लिये पूर्वादि दिशाओंमें जल छोड़े। सुगन्ध और ऑवला आदि राजोचित उपचारसे स्नान करे। स्नानके पश्चात् जलसे ब्राह्मण निकलकर संहारिणी-मुद्राद्वारा उस तीर्थका उपसंहार करे। इसके बाद विधि-विधानसे गुद्ध, संहितामन्त्रसे अभिमन्त्रित तथा निवृत्ति द्वादिके द्वारा शोषित भस्मसे स्नान करे ॥ १०—१४३ ॥

'ॐ अङ्गाय हुं फट्'—इस मन्त्रका उच्चारण करके, सिरसे पैरतक भस्मद्वारा मलस्नान करके फिर विधिपूर्वक शुद्ध स्नान करे। ईशान, तत्पुरुष, अधोर, गुह्यक या बामदेव तथा सद्योजात-सम्बन्धी मन्त्रोद्वारा क्रमशः मस्तक, मुख, हृदय, गुह्याङ्ग तथा शरीरके अन्य अवयवोंमें उद्दर्तन (अनुलेप) लगाना चाहिये। तीनों संध्याओंके समय, निशीथकालमें, वर्षोंके पहले और पीछे, सोकर, खाकर यानी पीकर तथा अन्य आवश्यक कार्य करके आनन्द स्नान करना चाहिये। छीं नपुंसक, शूद्र, विल्ली, शब्द और चूहोंका स्पर्श हो जानेपर भी आनन्द स्नानका विधान है। चुल्लभर पवित्र जल पी ले, यही 'आनन्द-स्नान' है। सूर्यकी किरणोंके दिलायी देते समय यदि आकाशसे जलकी वर्षा हो रही हो तो पूर्वाभिमुख हो, दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर, ईशान-मन्त्रका उच्चारण करते हुए, सात पग चल-कर उस वर्षोंके जलसे स्नान करे। यह 'माहेन्द्र-स्नान' कहलाता है। गौओंके समूहके मध्यभागमें स्थित हो उनकी खुरोंसे खुदकर ऊपरको उड़ी हुई धूलसे इष्टदेव-सम्बन्धी मूलमन्त्रका जप करते हुए अथवा कवच-मन्त्र (हुम्) का जप करते हुए जो स्नान किया जाता है, उसे 'पावनस्नान' कहते हैं ॥ १५—२०३ ॥

सद्योजात आदि मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो जलसे अभिवेक किया जाता है, उसे 'मन्त्रस्नान' कहते हैं। इसी प्रकार बृहणदेवता और अग्निदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे भी यह स्नान-कर्म सम्पन्न किया जाता है। मन-ही-मन मूल-मन्त्रका उच्चारण करके प्राणायामपूर्वक मानसिक स्थान करना चाहिये। इसका सर्वत्र विधान है। विष्णुदेवता आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्योंमें उन-उन देवताओंके मन्त्रोंसे ही स्नान करावे ॥ २१—२३ ॥

कार्तिकेय ! अब मैं विभिन्न मन्त्रोङ्गाया संध्या-विधिका सम्बन्ध वर्णन करूँगा। भलीभाँति देख-भालकर ब्रह्मतीर्थसे तीन बार जलका मन्त्रपाठपूर्वक आचमन करे। आचमन-कालमें आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन शब्दोंके अन्तमें 'नमः' सहित 'स्वाहा' शब्द जोड़कर मन्त्रपाठ करना चाहिये। यथा 'ॐ आत्मतत्त्वाय नमः स्वाहा' । 'ॐ विद्यातत्त्वाय नमः स्वाहा' । 'ॐ शिवतत्त्वाय नमः स्वाहा' ।—इन मन्त्रोंसे आचमन करनेके पश्चात् मुख, नासिका, नेत्र और कानोंका स्पर्श करे। फिर प्राणायामद्वारा सकलीकरणकी किया सम्पन्न करके स्थिरतापूर्वक बैठ जाय। इशके बाद मन्त्र-साधक पुरुष मन-ही-मन तीन बार शिवसंहिताकी आवृत्ति करे और आचमन एवं अङ्गन्यास करके प्रातःकाल ब्रह्मो संध्याका हम प्रकार ध्यान करे—॥ २४—२६ ॥

संध्यादेवी प्रातःकाल ब्रह्मशक्तिके रूपमें उपस्थित है। हंसपर आरूढ हो कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति लाल है। वे चार मुख और चार भुजायें धारण करती हैं। उनके दाहिने हाथोंमें कमल और स्फटिकाक्षकी माला तथा बायें, हाथोंमें दण्ड एवं कमण्डल शोभा पाते हैं। * मध्याह्नकालमें वैष्णवी शक्तिके रूपमें संध्याका ध्यान करे। वे गरुडकी पीठपर निछे हुए कमलके आसनपर विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है। वे अपने बायें हाथोंमें शङ्क और चक्र धारण करती हैं तथा दायें हाथोंमें गदा एवं अभयकी मुद्रासे सुशोभित हैं।†

* इसपश्चासना रत्नं चतुर्वर्कां चतुर्मुञ्जाम् ।

अष्टाष्ठामालिङ्गी दक्षे बामेदण्डकमण्डलम् ॥

(अधि० ७२ । २७)

† तात्पर्यपश्चासना व्यायेन्मध्याह्ने वैष्णवी सिताम् ।

शङ्कचक्रर्त्ति बामे दक्षिणे सगदाभयाम् ॥

(अधि० ७२ । २८)

सायंकालमें संध्यादेवीका रुद्रशक्तिके रूपमें ध्यान करे। वे बृशभकी पीठपर निछे हुए कमलके आसनपर बैठी हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे मस्तकपर अधंचन्द्रके मुङ्गटसे विभूषित हैं। दाहिने हाथोंमें त्रिशूल और द्वादश धारण करती हैं और बायें हाथोंमें अभय एवं शक्तिरे गुणोभित हैं।‡ ये संध्यायें कमोंकी साक्षिणी हैं। अपने-आपका उनकी प्रभासे अनुग्रह समझे। इन तीनके अस्तिरिक्त एक चौथी संध्या है, जो केवल शानीके लिये है। उसका आधी रातके आरम्भमें बोधात्मक साक्षात्कार होता है ॥ २७—३० ॥

ये तीन संध्यायें कमशः हृदय, विन्दु और ब्रह्मरनन्दमें स्थित हैं। चौथी संध्याका कोई रूप नहीं है। वह परम-शिवमें विराजमान है; क्योंकि वह शिव सद्वसे परे हैं, इसलिये इसे 'परमा सध्या' कहते हैं। तर्जनी अङ्गुलोंके मूल-भागमें पितरोंका, कनिष्ठोंके मूलभागमें प्रजापतिका, अङ्गुष्ठके मूलभागमें ब्रह्माका और हाथके अग्रभागमें देवताओंका तीर्थ है। दाहिने हाथकी हयेलीमें अग्निका, बायीं हयेलीमें सोमका तथा अङ्गुलियोंके सभी पर्वों पर लंबियोंमें ऋूपियोंका तीर्थ है। संध्याके ध्यानके पश्चात् शिव-सम्बन्धी मन्त्रोङ्गाया तीर्थ (जलाशय) को शिवस्वरूप बनाकर 'आपो हिं छा' इत्यादि संहिता-मन्त्रोङ्गाया उसके जलसे मार्जन करे। बायें हाथपर तीर्थके जलको गिराकर उसे रोके रहे और दाहिने हाथसे मन्त्रपाठपूर्वक कमशः सिरका सेचन करना 'मार्जन' कहलाता है ॥ ३१—३५ ॥

इसके बाद अधमर्ण करे। दाहिने हाथके दोनोंमें रक्खे हुए बोधरूप शिवमय जलको नामिकाके समीप ले जाकर बायें—इडा नाईद्वारा सौसको खींचकर रोके और भीतरसे काले रंगके पाप-पुरुषको दाहिनी—पिङ्ला नाई-द्वारा बाहर निकालकर उस जलमें स्थापित करे। फिर उस पापयुक्त जलको हयेलीद्वारा बज्रमयी शिलाकी भावना करके उसपर दे मारे। इससे अधमर्णकर्म सम्पन्न होता है। तदनन्तर कुश, पुष्प, अक्षत और जलसे युक्त अर्धाङ्गलिले लेकर, उसे 'ॐ नमः शिवाय स्वाहा' ।—इस मन्त्रसे भगवान् शिवको समर्पित करे और श्रद्धाशक्ति गायत्रीमन्त्रका जप करे ॥ ३६—३८ ॥

अब मैं तर्पणकी विधिका वर्णन करूँगा। देवताओंके

‡ दौदी व्यायेद् वृषाञ्जसा ग्रिनेत्रा शशिभूषिताम् ।

शिलाङ्गधर्ति दक्षे बामे सामवशक्तिकाम् ॥

(अधि० ७२ । २९)

लिये देवतीथंसे उनके नाममन्त्रके उच्चारणपूर्वक तर्पण करे । ‘ॐ हूं शिखाय स्वाहा ॥’ ऐसा कहकर शिखका तर्पण करे । इसी प्रकार अन्य देवताओंको भी उनके स्वाहायुक्त नाम लेकर जलसे तृप्त करना चाहिये । ‘ॐ हां हृष्टयाय नमः । ॐ हां शिखाय स्वाहा । ॐ हूं शिखायै वषट् । ॐ हैं कवचाय हुम् । ॐ हैं नेत्रप्रयाय वौषट् । ॐ हैं अस्त्राय फट् ॥’—इन वाक्योंको क्रमशः पढ़कर हृष्टय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एव अस्त्र विश्यक न्यास करना चाहिये । आठ देवगांगोंको उनके नामके अन्तमे ‘नमः’ पद जोड़कर तर्पणार्थ जल अपूर्णत करना चाहिये । यथा—‘ॐ हां आदित्येभ्यो नमः । ॐ हां बसुभ्यो नमः । ॐ हां रुद्रेभ्यो नमः । ॐ हां विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ॐ हां मस्त्रेभ्यो नमः । ॐ हां शुगुभ्यो नमः । ॐ हां अङ्गिरोभ्यो नमः । तत्प्रश्नात् जनेऊको कण्ठमें मालाकी भाँति धारण करके शृण्यिका तर्पण करे ॥ ३९—४१ ॥

‘ॐ हां अन्नये नमः । ॐ हां वसिष्ठाय नमः । ॐ हां पुलस्ये नमः । ॐ हां क्रन्दये नमः । ॐ हां भरद्वाजाय नमः । ॐ हां विश्वामित्राय नमः । ॐ हां प्रचेतसे नमः । ॐ हां भरीचये नमः ।’—इन मन्त्रोंको पढ़ते हुए अन्नि अदि शृण्यियोंको (शृण्यितीर्थमें) एक एक अङ्गलि जल दे । तत्प्रश्नात् सनकादि मनुष्योंको (दो-दो अङ्गलि) जल देते हुए निमाङ्कित मन्त्रवाक्य पढ़े—‘ॐ हां सनकाय वषट् । ॐ हां सनन्दनाय वषट् । ॐ हां सनातनाय वषट् । ॐ हां सनकुमाराय वषट् । ॐ हां कपिळाय वषट् । ॐ हां पञ्चशिखाय वषट् । ॐ हां चतुर्मुखे वषट् ॥’—इन मन्त्रोंद्वारा जुड़े हाथोंकी कनिष्ठिकाओंके मूलभागसे जूँझलि देनी चाहिये ॥ ४२—४४ ॥

‘ॐ हां सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट् ॥’—इस मन्त्रसे वषट्-

इस प्रकार दि आनंद महापुराणमें स्नान आदिकी विधिका वर्णन नामक बहुतरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

तिहतरवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी पूजा-विधिका वर्णन

महादेवजो कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं करन्यास और अङ्गन्यासपूर्वक सूर्यदेवताके पूजनकी विधि बताऊँगा । ‘मैं तेजोमय सर्वं हूं’—ऐसा चिन्तन करके अर्ध्य-पूजन करे । लाल रंगके चन्दन या रोलीसे मिश्रित जलको ललाटके निकटक ले जाकर उसके द्वारा अर्धगात्रको पूर्ण करे । उसका गन्धादिसे पूजन करके सूर्यके अङ्गोंद्वारा रक्षाव-

स्वरूप भूतगांगोंका तर्पण करे । तत्प्रश्नात् यशोपवीतको दाहिने कंधेपर करके दुहरे सुडे हुए कुशके मूल और अग्नभागसे तिलमहित जलर्का तीन सीन अङ्गुलियाँ दिव्य पितरोंके लिये अपूर्णत करे । ‘ॐ हां कवचाहनाय स्वधा । ॐ हां अनलाय स्वधा । ॐ हां सोमाय स्वधा । ॐ हां यमाय स्वधा । ॐ हां अर्येये स्वधा । ॐ हां अविनव्यासेभ्यः स्वधा । ॐ हां बहिष्पद्मयः स्वधा । ॐ हां आज्यरेभ्यः स्वधा । ॐ हां सोमपेभ्यः स्वधा ॥’—इत्यादि मन्त्रोंका उच्चारण कर विशिष्ट देवताओंकी भोग्य दिव्य पितरोंको जलाङ्गलिसे तृप्त करना चाहिये ॥ ४५ ४६ ॥

‘ॐ हां ईशानाय पित्रे स्वधा ।’ कहकर पिताको, ‘ॐ हां पितामहाय स्वधा ।’ कहकर पितामहको तथा ‘ॐ हां शान्त-प्रपितामहाय स्वधा ।’ कहकर प्रपितामहको भी तृप्त करे । इसी प्रकार समस्त प्रेत-पितरोंका तर्पण करे । यथा—‘ॐ हां पितृभ्यः स्वधा । ॐ हां पितामहेभ्यः स्वधा । ॐ हां प्रपिता-महेभ्यः स्वधा । ॐ हां वृद्धप्रपितामहेभ्यः स्वधा । ॐ हां मातृभ्यः स्वधा । ॐ हां मातामहेभ्यः स्वधा । ॐ हां प्रमाता-महेभ्यः स्वधा । ॐ हां वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा । ॐ हां सर्वेभ्यः पितृभ्यः स्वधा । ॐ हां सर्वेभ्यः ज्ञातिभ्यः स्वधा । ॐ हां सर्वोचार्येभ्यः स्वधा । ॐ हां दिग्ययः स्वधा । ॐ हां दिक्पतिभ्यः स्वधा । ॐ हां सिद्धेभ्यः स्वधा । ॐ हां मातृभ्यः स्वधा । ॐ हां ग्रहेभ्यः स्वधा । ॐ हां रक्षोभ्यः स्वधा ॥’—इन वाक् । को पढ़ते हुए क्रमशः पितरों, पितामहों, वृद्धप्रपितामहों, माताओं, मातामहों, प्रमातामहों, सभी पितरों, सभी ज्ञातिजनों, गभी आचार्यों, सभी दिग्याओं, दिक्पतियों, सिद्धों, मातृकाओं, ग्रहों और राश्रयोंको जलाङ्गलि दे ॥ ४७—५१ ॥

गुण्ठन करे । तत्प्रश्नात् जलसे पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण करके पूर्वाभिमुख हो सूर्यदेवकी पूजा करे । ‘ॐ आं हृष्टाय नमः ।’ इस प्रकार आदिमें स्वर-बीज लगाकर मिर आदि अन्य गव अङ्गोंमें भी न्यास करे । पूजा-गृहके द्वारदेशमें दक्षिणकी ओर ‘दण्डी’का और घामभागमें ‘पिङ्गल’का पूजन करे । ईशानकोणमें ‘गं गणपतये नमः ।’ इस मन्त्रमें ‘गणेश’की

और अग्निकोणमें गुरुकी पूजा करे। पीठके मध्यभागमें कमलाकार आसनका चिन्तन एवं पूजन करे। पीठके अग्नि आदि चारों कोणोंमें क्रमशः विमल, सार, आराध्य तथा परम मुख्यकी और मध्यभागमें प्रभूतासनकी पूजा करे। उपर्युक्त प्रभूत आदि चारोंके बांग क्रमशः इवेत, लाल, पीले और नीले हैं तथा उनकी आकृति निंहके समान है। इन सबकी पूजा करनी चाहिये ॥ १—५ ॥

पीठस्थ कमलके भीतर 'रां दीसायै नमः।' इस मन्त्रद्वारा दीसाकी, 'रीं सूक्ष्मायै नमः।' इस मन्त्रसे सूक्ष्माकी, 'हं जयायै नमः।' इससे जगाकी, 'रैं भद्रायै नमः।' इससे भद्राकी, 'रैं विभूतयै नमः।' इससे विभूतिकी, 'रैं विमलायै नमः।' इससे विमलाकी, 'रैं अमोघायै नमः।' इससे अमोघाकी तथा 'रं विवृतायै नमः।' इससे विवृताकी पूर्व आदि आठों दिशाओंमें पूजा करे और मध्यभागमें 'रः सर्वतोमुख्यै नमः।' इस मन्त्रसे नवों पीठशक्ति सर्वतोमुख्यकी आराधना करे। तत्यश्चात् 'ॐ ब्रह्मविष्णु-शिवात्मकाय सौराय योगपीठामने नमः।' इस मन्त्रके द्वारा सूर्यदेवके आसन (पीठ)का पूजन करे। तदनन्तर 'स्खलोकाय नमः।' इस पठकर मन्त्रके आरम्भमें 'ॐ हं खं' जोड़कर नौ अक्षरोंसे युक्त (ॐ हं खं स्खलोकाय नमः।) —इस) मन्त्रद्वारा सूर्यदेवके विग्रहका आवाहन करे। इस प्रकार आवाहन करके भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६—७३ ॥

अज्ञालिमें लिये हुए जलको ललाटके निकटतक ले जाकर रक्त वर्णवाले सूर्यदेवका ध्यान करके उन्हें भावनाद्वारा अपने सामने स्थापित करे। फिर 'हाँ हीं सः सूर्याय नमः।' ऐसा कहकर उक्त जलसे सूर्यदेवको अर्घ्य दे। इसके बाद 'विष्व-मुद्रा' दिखाते हुए आवाहन आदि उपचार अर्पित करे। तदनन्तर सूर्यदेवकी प्रतिके लिये गन्ध (चन्दन-रोली)

आदि समर्पित करे। तत्यश्चात् 'पद्ममुद्रा' और 'विष्वमुद्रा' दिखाकर अग्नि आदि कोणोंमें हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। अग्निकोणमें 'ॐ आं हृदयाय नमः।' इस मन्त्रसे हृदयकी, नैऋत्यकोणमें 'ॐ भूः अर्काय

१. पश्चाकरी करौ कृत्वा प्रणिष्ठिष्टे तु मध्यमे।

अकृत्यौ धारवेत्तसिन् विम्बमुद्रेनि सोच्यते ॥

२. हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संनतप्रोत्तनाकृती।

नलान्तर्मिलपाकृष्टी मुद्रेण पञ्चसंषिता ॥

शिरसे स्वाहा।' इससे सिरकी, बायध्यकोणमें 'ॐ भुवः सुरेशाय शिखायै बौद्ध।' इससे शिखाकी, ईशानकोणमें 'ॐ स्वः कवचाय हुम्।' इससे कवचकी, इष्टदेव और उपासकके बीचमें 'ॐ हाँ नेत्रश्चित्याय बौद्ध।' से नेत्रकी तथा देवताके पञ्चमभागमें 'वः अस्त्राय फट्।' इस मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे^३। इसके बाद पूर्वादि दिशाओंमें मुद्राओंका प्रदर्शन करे ॥ ८—११३ ॥

हृदय, सिर, शिखा और कवच—इनके लिये पूर्वादि दिशाओंमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे। नेत्रोंके लिये गोपूज्ञकी मुद्रा दिखाये। अङ्गोंके लिये त्रासनीमुद्राकी योजना करे। तत्यश्चात् ग्रहोंको नमस्कार और उनका पूजन करे। 'ॐ सौ सोमाय नमः।' इस मन्त्रसे पूज्यमें चन्द्रमाकी, 'ॐ तुं बुधाय नमः।' इस मन्त्रसे दक्षिणमें बुधकी, 'ॐ तुं वृहस्पतयै नमः।' इस मन्त्रसे पश्चिममें वृहस्पतिकी और 'ॐ भं भार्गवाय नमः।' इस मन्त्रसे उत्तरमें शुक्रकी पूजा करे। इस तरह पूर्वादि दिशाओंमें चन्द्रमा आदि ग्रहोंकी पूजा करके, अग्नि आदि कोणोंमें शेष ग्रहोंकी पूजन करे। यथा—'ॐ भौं भौमाय नमः।' इस मन्त्रसे अग्निकोणमें मङ्गलकी, 'ॐ शं शनैश्चराय नमः।' इस मन्त्रसे नैऋत्यकोणमें शनैश्चरकी, 'ॐ रां राहवे नमः।' इस मन्त्रसे वायध्यकोणमें राहुकी तथा 'ॐ कै केतवे नमः।' इस मन्त्रसे ईशानकोणमें केतुकी गन्ध आदि उपचारोंसे पूजा करे। खलोली (भगवान् सूर्य) के साथ इन रथ ग्रहोंका पूजन करना चाहिये ॥ १२—१४ ॥

३. मन्त्रमहार्षवर्णमें हृदयादि अङ्गोंके पूजनका क्रम इस प्रकार दिया गया है—

अस्त्रिकोणे—ॐ सत्पतेजोज्ज्वालामणे हुं फट् रवाहा हृदयाय नमः। निर्द्वैतिकोणे—ॐ ब्रह्मतेजो ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा शिरःश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। वायव्ये—ॐ विष्वपतेजोज्ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचायै बौद्ध विष्वश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। ऐशान्ये—ॐ रुद्रतेजोज्ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुं कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। पूज्य-पूजकरोन्द्ये—ॐ अस्तितेजोज्ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। देवतापञ्चमे—ॐ सर्वतेजोज्ज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। यहाँ सूलकी व्याख्यामें भी इसी क्रमसे संगति लगाते हुए अर्थ किया गया है।

मूँलमन्त्रका जप करके, अर्धपात्रमें जल लेकर सूर्यको समर्पित करनेके पश्चात् उनकी सुति करे । इस तरह सुतिके पश्चात् सामने मुँह किये खड़े हुए सूर्यदेवको नमस्कार करके कहे—‘प्रभो ! मेरे अपराधों और चुटियोंको आप क्षमा करें ।’ इसके बाद ‘अस्त्राय फट् ।’ इस मन्त्रसे अणुसंहारका समाहरण करके ‘शिव ! सूर्य !’ (कल्याणमय

सूर्यदेव !)’—ऐसा कहते हुए संहारिणी-शक्ति या मुद्राके द्वारा सूर्यदेवके उपसंहृत तेजको अपने हृदय-कमलमें खापित कर दे तथा सूर्यदेवका निर्मल्य उनके पांच चण्डको अर्पित कर दे । इस प्रकार जगदीक्षर सूर्यका पूजन करके उनके जप, ध्यान और होम करनेसे साधकका सारा मनोरथ सिद्ध होता है ॥ १५—१७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘सूर्यपूजाकी विधिका वर्णन’ नामक तिहारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

शिवपूजाकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं शिव-पूजाकी विधि बताऊँगा । आचमन (एव स्नान आदि) करके प्रणवका जप करते हुए सूर्यदेवको अर्थ दे । फिर पूजा-मण्डपके द्वारको ‘फट्’ इस मन्त्रद्वारा जलसे सींचकर आदिमें ‘हं’ बीजमहित नन्दी^४ आदि द्वारपालोंका पूजन करे । द्वारपर उदुम्बर वृक्षकी स्थापना या भावना करके उसके ऊपरी भागमें गणपति, सरस्वती और लक्ष्मीजीकी पूजा करे । उस वृक्षकी दाहिनी शाखापर या द्वारके दक्षिण भागमें नन्दी और गङ्गाका पूजन करे तथा बाम शाखापर या द्वारके बाम भागमें महाकाल एवं यमुनाजीकी पूजा करनी चाहिये । तत्यश्चात् अपनी दिव्य दृष्टि डालकर दिव्य विघ्नोंका उत्सारण (निवारण) करे । उनके ऊपर या उनके उद्देश्यसे फूल फैके और यह भावना करे कि ‘आकाशचारी सारे विघ्न दूर हो गये ।’ साथ ही, दाहिने पैरकी एँडीसे तीन बार भूमिपर आघात करे और इस क्रियाद्वारा भूतलवतीं समस्त विघ्नोंके निवारणकी भावना करे । तत्यश्चात् यशमण्डपकी देहलीको लौधे । बाम शाखाका आध्रथ लेकर भीतर प्रवेश करे । दाहिने पैरसे मण्डपके भीतर प्रविष्ट हो उदुम्बरवृक्षमें अख्लका न्यास करे तथा मण्डपके मध्य भागमें पीठकी आधारभूमिमें ‘ॐ हां वास्त्वधिष्ठितये ब्रह्मणे नमः ।’ इस मन्त्रसे वास्तुदेवताकी पूजा करे ॥ १—५ ॥

४. ‘शारदापिलक’ के अनुसार सूर्यका दशाक्षर मूल मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां ब्रह्मः सूर्य आदित्य श्री ।’ इन दशाक्षरों मन्त्रः । किन्तु इस ग्रन्थमें ‘ॐ हं हं’ इन बीजोंके साथ ‘खलोल्काय नमः ।’ इस षष्ठीका उल्लेख है । अनः इसीको यहां मूल मन्त्र समझना चाहिये ।

५. नारदपुराणके अनुसार नन्दी, घूर्णी, रिटि, स्कन्द, गणेश, उमा-महेश्वर, नन्दी वृषभ तथा महाकाल—ये शैव द्वारपाल हैं ।

निरीक्षण आदि शब्दोद्धारा शुद्ध किये हुए गहुओंको हाथमें लेकर, भावनाद्वारा भगवान् शिवसे आशा प्राप्त करके साधक मौन हो गङ्गा आदि नदीके तटपर जाय । वहाँ अपने शरीरको पवित्र करके गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए बसने छाने हुए जलके द्वारा जलाशयमें उन गहुओंको भरे, अथवा हृदय-बीज (नमः) का उच्चारण करके जल भरे । तत्यश्चात् पूजाके लिये गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि सब द्रव्योंको अपने पास एकत्र करके भूत-शुद्धि आदि कर्म करे । फिर उत्तराभिमुग्न हो आराध्यदेवके दाहिने भागमें—शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें मातृकान्यास करके, संहार-मुद्राद्वारा अर्थके लिये जल लेकर मन्त्रोद्धारणपूर्वक मस्तकसे लगावे और उसे देवतापर अर्पित करनेके लिये अपने पास रख ले । इसके बाद भोग्य कर्मोंके उपभोगके लिये पाणि-कच्छपिका (क्रममुद्रा) का प्रदर्शन करके द्वादश दलोंसे युक्त हृदयकमलमें अपने आत्माका चिन्तन करे ॥ ६—१० ॥

तदनन्तर शरीरमें शून्यका चिन्तन करते हुए पाँच भूतोंका क्रमशः द्वाधन करे । पैरोंके दोनों अँगूठोंको पहले बाहर और भीतरसे छिद्रमय (शून्यरूप) देले । फिर कुण्डलिनी-शक्तिको मूलाधारसे उठाकर हृदयकमलसे संयुक्त करके इस प्रकार चिन्तन करे—‘हृदयरन्त्रमें स्थित अर्द्ध-त्रुत्य तेजस्वी ‘हं’ बीजमें कुण्डलिनी-शक्ति विराज रही है ।’

उस समय चिन्तन करनेवाला साधक प्राणायाम का अवरोध (कुम्भक) करके उसका रेतक (निःसारण) करनेके पश्चात्, 'हुं फट्' के उच्चारणपूर्वक क्रमशः उत्तरोत्तर चक्रोंका भेदन करता हुआ उस कुण्डलिनीके हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रमध्य एवं ब्रह्मरन्ध्रमें ले जाकर स्थापित करे । इन ग्रन्थियोंका भेदन करके कुण्डलिनीके साथ हृदयकमलमें ब्रह्मरन्ध्रमें आये 'हुं' वीजसे सम्पुटित हुए उस जीवमें (मस्तकवर्ती ब्रह्मरन्ध्रमें या सहस्रारचक्रमें) स्थापित कर दे । हृदयस्थित 'हुं' वीजसे सम्पुटित हुए उस जीवमें पूरक प्राणायामद्वारा चैतन्यभाव जाग्रत् किया गया है । शिखाके ऊपर 'हुं'का न्याय करके शुद्ध विन्दुस्वरूप जीवका चिन्तन करे । फिर कुम्भक-प्राणायाम करके उस एकमात्र चैतन्य-गुणसे युक्त जीवको शिवके साथ संयुक्त कर दे ॥ ११—१५ ॥

इस तरह शिवमें लीन होकर साधक सबीज रेनक प्राणायामद्वारा शरीरगत भूतोंका शोधन करे । अपने शरीरमें पैरसे लेकर विन्दु-प्रयत्न लभी तत्त्वोका विलोम-क्रमसे चिन्तन करे । विन्दुस्वरूप जीवको विन्दून्त लीन करके पृथ्वी और वायुका एक-दूसरेमें लय करे । साथ ही अग्नि एवं जलका भी परस्पर विलय करे । इन प्रकार दो-दो विरोधी भूतोंका परस्पर शोधन (लय) करना चाहिये । आकाशका किसीसे विरोध नहीं है; इन भूत-शुद्धिका विशेष विवरण सुनो—भूमण्डलका स्वरूप चतुष्कोण है । उसका पाँच सुवर्णके समान पीला है । वह कठोर होनेके भाव हा वज्रके चिह्नसे तथा 'हां' इस आत्मीय वीज (भूवीज) से युक्त है । उसमें 'निजूति' नामक कला है । (शरीरमें पैरसे लेकर छुटनेतक भूमण्डलकी स्थिति है ।) इसी तरह पैरसे लेकर मस्तक-पर्यन्त क्रमशः पाँचों भूतोंका चिन्तन करना चाहिये । इस प्रकार पाँच गुणोंसे युक्त वायुभूत भूमण्डलका चिन्तन करे ॥ १६—१९ ॥

जलका स्वरूप अर्धचन्द्राकार है । वह द्रवस्वरूप है, चन्द्रमण्डलमय है । उसकी कान्ति या वर्ण उल्ज्जल है । वह दो कमलोंसे चिह्नित है । 'हां' इस वीजसे युक्त है । 'प्रतिष्ठा' नामक कलाके स्वरूपको प्राप्त है । वह वामदेव तथा तत्पुरुष-मन्त्रोंसे संयुक्त जल-

२. अन्य तन्त्रोंके अनुसार पृथ्वीका अपना वीज 'लं' है ।

३. जलका वीज 'वं' है । यही अन्यान्यरोमें नि 'वं'

तत्त्व चार गुणोंसे युक्त है । उसे इस प्रकार (छुटनेसे नाभितक जलका) चिन्तन करते हुए उस जल-तत्त्वका वहिन्दूस्वरूपमें लीन करके शोधन करे । अग्निमण्डल शिकोणाकार है । उसका वर्ण लाल है । (नाभिसे हृदय-तक उसकी स्थिति है ।) वह स्वस्तिके चिह्नसे युक्त है । उसमें 'हूं' वीज अঙ्कित है । वह विद्याकला-स्वरूप है । उसका अधोर मन्त्र है तथा वह तीन गुणोंसे युक्त एवं जल-भूत है—इस प्रकार चिन्तन करते हुए अग्नितत्त्वका शोधन करे । वायुमण्डल षट्कोणाकार है । (शरीरमें हृदयसे लेकर भौंहोंके मध्य भागतक उसकी स्थिति है ।) वह छः विन्दुओंसे चिह्नित है । उसका रंग काला है । वह 'हैं' वीज एवं सद्योजात-मन्त्रसे युक्त और शान्तिकला-स्वरूप है । उसमें दो गुण हैं तथा वह पृथ्वीभूत है । इस प्रकार चिन्तन करते हुए वायुतत्त्वका शोधन करे ॥ २०—२४ ॥

आकाशका स्वरूप व्योमाकार, नाद-विन्दुमय, गोलाकार, विन्दु और शक्तिसे, विभूषित तथा शुद्ध स्फटिक मणिके समान निर्मल है । (शरीरमें भ्रमध्यसे लेकर ब्रह्म-रन्ध्रतक उसकी स्थिति है ।) वह 'हैं फट्' इस वीजसे युक्त है । शान्त्यतीतकल्पमय है । एक गुणसे युक्त तथा परम विशुद्ध है । इस प्रकार चिन्तन करते हुए आकाश तत्त्वका शोधन करे । तदनन्तर अमृतवर्ती मूलमन्त्रसे सबको परिपूष्ट करे । तत्पश्चात् आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त (पृथ्वी) की पूजा करे । फिर पीठ (चोकी) के अग्निकोणवाले पायेमें धर्मकी, नैऋत्य कोणवाले पायेमें शानकी, वायव्यकोणमें वैराग्यकी और ऐशान्यकोणमें पैश्वर्यकी पूजा करनी चाहिये । इसके बाद पीठकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः अर्धम, अक्षान, अवैराग्य और अनैवयव्यकी पूजा करनी चाहिये । इसके बाद पीठके मध्यभागमें कमलकी पूजा करे । इस प्रकार मन-ही-मन हस पीठवर्ती कमलमय आसनका ध्यान करके उसपर देव-मूर्ति सच्चिदानन्दधन भगवान् शिवका आवाहन करे । उस शिवमूर्तिमें शिवस्वरूप आत्माको देखे और फिर आसन, पादुकाद्वय तथा नौ पीठशक्ति—

४. अग्निका मुख्य वीज 'रं' है ।

५. वायुका वीज 'वं' है ।

६. जलका वीज 'हूं' है—यही सर्वसम्मत है ।

७. अन्यान्यरोमें भीनर इन्द्रिया, दीपिका, रेचिका और नांदका—ये चार कलाएं आती हैं ।

इन बाहोंका ध्यान करे। फिर शक्तिमन्त्रके अन्तमें 'बौषट्' लगाकर उसके उच्चारणपूर्वक पूर्वोक्त आत्मनूर्तिको दिव्य अमृतसे आप्लाबित करके उसमें सकलीकरण करे। हृदयसे लेकर हृष्ट-पर्यन्त अङ्गोंमें तथा कनिष्ठिका आदि अङ्गुलियोंमें हृदय (नमः) मन्त्रोंका जो न्यास है, इसीको 'सकलीकरण' माना गया है ॥ २५-३० ॥

तत्पश्चात् 'हुं कट्'—इस मन्त्रसे प्राकारकी भावनाद्वारा आत्मरक्षाकी व्यवस्था करके उसके बाहर, नीचे और ऊपर भी भावनात्मक शक्तिजालका विस्तार करे। इसके बाद महार्मुद्राका प्रदर्शन करे। तत्पश्चात् पूरक प्राणायामके द्वारा अपने हृदय-कमलमें विराजमान शिवका ध्यान करके भावमय पुष्पोद्घारा उनके पैरसे लेकर सिरतकके अङ्गोंमें पूजन करे। वे भावमय पुष्प आनन्दामृतमय मकरन्दसे परिपूर्ण होने चाहिये। फिर शिव-मन्त्रोद्घारा नाभिकुण्डमें स्थित शिवस्वरूप अग्निको तृप्त करे। वही शिवानल ललाटमें विन्दुरूपसे स्थित है; उसका विग्रह मङ्गलमय है—इस प्रकार चिन्तन करे ॥ ३१-३३ ॥

स्वर्ण, रजत एवं ताम्रपात्रोंमेंसे किसी एक पात्रको अर्ध्य-के लिये लेकर उसे अख्यातीज (कट्) के उच्चारणपूर्वक जल्दे धोये। फिर विन्दुरूप शिवसे प्रकट होनेवाले अमृतकी भावनासे युक्त जल एवं अक्षत आदिके द्वारा हृदय-मन्त्र (नमः) के उच्चारणपूर्वक उसे भर दे। फिर हृदय, सिर, शिला, कवच, नेत्र और अङ्ग—इन छः अङ्गोद्घारा (अथवा इनके बीज-मन्त्रोद्घारा) उस अर्ध्यपात्रका पूजन करके उसे देवता-सम्बन्धी मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। फिर अङ्ग-मन्त्र (कट्) से उसकी रक्षा करके कवच-बीज (हुम्) के द्वारा उसे अवगुणित कर दे। इस प्रकार अष्टाङ्ग अर्ध्यकी रक्षा करके, वेनुमुद्राके द्वारा उसका अमृतीकरण करके उस जलको सब और सीचे। अपने मस्तकपर भी उस जलकी बूँदोंसे अभिषेक करे। वहाँ रक्खी हुई पूजा-सामग्रीका भी अङ्ग-बीजके उच्चारणपूर्वक उक्त जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर हृदयबीजसे अभिमन्त्रित करके 'हुम्'

८. अन्योन्यविधियामुद्रा प्रसारितकरामुद्रा ।

महामुद्रेयमुद्रिता परमीकरणी त्रुष्णः ॥

(वामकेद्वार तन्मान्तरंत मुद्रानिष्ठण्ड ३१-३२)

—दोनों अङ्गुठोंको परस्पर अधित कर हाथोंकी अन्य सब अङ्गुलियोंको फैलाये रखना—वह 'महामुद्रा' कही गयी है। इसका परमीकरणमें प्रयोग होता है।

बीजसे पिण्डों (अथवा मल्स्यमुद्रा) द्वारा उसे आवेष्टित या आच्छादित करे ॥ ३४-३७ ॥

इराके बाद अमृता (वेनुमुद्रा) के लिये वेनुमुद्राका प्रदर्शन करके अपने आपनपर पुष्प अर्पित करे (अथवा देवताके निज आपनपर पुष्प चढ़ावे)। तत्पश्चात् पूजक अपने मस्तकमें तिळक लगाकर मूलमन्त्रके द्वारा आराध्यदेवको पुष्प अर्पित करे। स्नान, देवपूजन, होम, भोजन, यज्ञानुष्ठान, योग, साधन तथा आवश्यक जपके समय धीरबुद्धि साधकको सदा मौन रहना चाहिये^१। प्रणवका नाद-पर्यन्त उच्चारण करके मन्त्रका शोधन करे। पिर उत्तम संस्कारयुक्त देवपूजा आरम्भ करे। मूलगायत्री (अथवा सद-गायत्री) से अर्ध्य-पूजन करके रक्खे और वह सामान्य अर्ध्य देवताको अर्पित करे ॥ ३८-४० ॥

ब्रह्मांडक (पञ्चगव्य और बुशोदकसे बना हुआ ब्रह्मैकूर्च) तैयार करके पूजित शिवलिङ्गसे पुष्प-निर्मात्य ले

९. वायें हाथके पृष्ठभागपर दाहिने हाथकी इयली रक्खे और दोनों अङ्गुठोंको फैलाये रखें। यही 'मल्स्यमुद्रा' है।

१०. अमृत-बीजका उच्चारण करके वेनुमुद्राको दिखावे।

'वं' इस अमृत-बीजका उच्चारण करके वेनुमुद्राको दिखावे। वेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

वामाकुस्तीनां भव्येषु दक्षिणाकुलिकास्तथा ।

संयोज्य तज्जनी दक्षां वाममध्यमया तथा ॥

दक्षमध्यमया वामा नज्जनी च नियोजयेत् ।

वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत् ॥

दक्षमध्यमया वामा कनिष्ठां च नियोजयेत् ।

विहितामेमुखी चैषा वेनुमुद्रा प्रकोर्त्ता ॥

'वायें हाथकी अङ्गुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तज्जनीको वार्षी भव्यमासे जोड़े। दाहिने हाथकी भव्यमासे वायें हाथकी तज्जनीको मिलावे। फिर वायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकासे वायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। तत्पश्चात् इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही 'वेनुमुद्रा' कही गयी है।'

११. स्नाने देवार्चने होमे भोजने यागयोगोः ।

आवश्यके जपे धीरः सदा वाचयमो भवेत् ॥

(अग्निं ७४ । ३९)

१२. ब्रह्मांडकी विधि इस प्रकार है—पलाश या कमलके पत्तेमें अथवा तांबे या सुखरंके पात्रमें पञ्चगव्य संप्रह करना चाहिये।

ईशानकोणी ओर ‘ब्रह्माय नमः ।’ कहकर चण्डको समर्पित करे । तत्पश्चात् उक्त ब्रह्मपञ्चकसे पिण्डिका (पिण्डी या अर्चा) और शिवलिङ्गको नहलाकर ‘फट्-का’ उच्चारण करके उन्हें जलसे नहलाये । फिर ‘नमो नमः’ के उच्चारण पूर्वक पूर्वोक्त अर्घ्यपात्रके जलसे उस लिङ्गका अभिषेक करे । यह लिङ्ग-बोधनका प्रकार बताया गया है ॥४१-४२॥

आत्मा (शरीर और मन), द्रव्य (पूजनसामग्री), मन्त्र तथा लिङ्गकी शुद्धि हो जानेपर सब देवताओंका पूजन करे । बायव्यक्तोगमें ‘ॐ हाँ गणपतये नमः ।’ कहकर गणेशजीकी पूजा करे और ईशानकोणमें ‘ॐ हाँ

गणयती-मन्त्रसे गोमूत्रका, ‘गन्धारा०’ (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोबरका, ‘आप्यायस्व०’ (शू० यजु० १२ । ११२) इस मन्त्रसे दूधका, ‘दधिकाण्य०’ (शू० यजु० २३ । ३२) इस मन्त्रसे दहीका, ‘तेजोऽसि शुक्र०’ (शू० यजु० २२ । १) इस मन्त्रसे धीका और ‘देवस्य त्वा०’ (शू० यजु० ६ । ३०) इस मन्त्रसे कुशोदकका संघट करे । चतुर्दशीको उपवास करके आमावस्याको उपर्युक्त बस्तुओंका संघट करे । गोमूत्र एक पल होना चाहिये, गोबर आपे जंगलोंके बाबार हो, दूधका मान सात पल और दहीका तीन पल है । धी और कुशोदक एक-एक पल बताये गये हैं । इस प्रकार इन सदको एकत्र करके परस्पर मिला दे । तत्पश्चात् सान-सात पत्तोंके तीन कुश लेकर जिनके अध्यभाग कटे न हों, उनसे उस पञ्चगव्यकी अग्निमें आहुति दे । आहुतिसे बचे दुप पञ्चगव्यको प्रगवसे आलोड़न और प्रगवसे ही मन्त्रन करके, प्रगवसे ही इष्टमें ले तथा फिर प्रगवका ही उच्चारण करके उसे पी जाय । इस प्रकार तैयार किये हुए पञ्चगव्यको ‘ब्रह्मकूर्च’ कहते हैं । श्री-शद्गोको ब्राह्मणके द्वारा पञ्चगव्य बनवाकर प्रगव-उच्चारणके बिना ही पीना चाहिये । सर्व-साधारणके लिये ब्रह्मकूर्च-पानका मन्त्र यह है—

यस्वास्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ।
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीपाग्निरेत्प्रनम् ॥

(बृहदातात्प० १२)

अर्थात् देहशरिरोके शरीरमें चमड़े और इड़ीतकमें जो पाप विद्यमान है, वह सब ब्रह्मकूर्च इस प्रकार जला दे, जैसे प्रज्वलित आग हन्तनको जला बाली है ।

१३. प्रचलित ‘गं’ आदि स्वरीजके स्थानपर ‘हाँ’ शीज सोमशम्भुकी क्रमांकनकमालीमें भी मिलता है ।

गुरुभ्यो नमः ।’ कहकर गुरु, परम गुरु, परात्मर गुरु तथा परमेष्ठी गुरु-गुरुपंक्तिकी पूजा करे ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् क्रमल्पी शिलापर स्थित अङ्गुर-सहदा आधार-शक्तिका तथा ब्रह्मशिलापर आरुढ़ शिवके आसनभूत अनन्तदेवका ‘ॐ हाँ अनन्तसासनाय नमः ।’ मन्त्रद्वारा पूजन करे । शिवके सिंहासनके रूपमें जो मञ्च या चौकी है, उसके चार पर्ये हैं, जो विचित्र सिंहकी-सी आकृतिसे सुशोभित होते हैं । वे सिंह मण्डलाकारमें स्थित रहकर अपने आगेबालेके पृष्ठभागको ही देखते हैं तथा सत्ययुग, व्रता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंके प्रतीक हैं । तत्पश्चात् भगवान् शिवकी आसन-पादुकाकी पूजा करे । तदनन्तर धर्म, शान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे । वे अग्नि आदि चारों कोणोंमें स्थित हैं । उनके वर्ण क्रमशः कपूर, कुङ्कुम, सुवर्ण और काजलके समान हैं । इनका चारों पायोंपर क्रमशः पूजन करे । इसके बाद (‘ॐ हाँ अधश्छद्वनाय नमोऽधः ।’ अहं हाँ ऊर्ध्वश्छद्वनाय नम इत्येऽधः । अहं हाँ पश्चासनाय नमः ।—ऐसा कहकर) आगमपर विराजमान अष्टदल कमलके नीचे-ऊपरके दलोंकी, सभ्यों कमलकी तथा ‘ॐ हाँ कर्णिकाये नमः ।’ के द्वारा कर्णिकाके मध्यभागकी पूजा करे । उस कमलके पूर्व आदि आठ दलोंमें तथा मध्यभागमें नौ पीठ-शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये । वे शक्तियाँ चंचर लेकर खड़ी हैं । उनके हाथ बरद एवं अभयकी मुद्राओंसे सुशोभित हैं ॥ ४४-४७ ॥

उनके नाम इस प्रकार है—वामा, ज्येष्ठा, शैद्वी, काली, कल्लविकारिणी, वर्लैविकारिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी तथा मनोन्मनी—इन सबका क्रमशः पूजन करना चाहिये । वामा आदि आठ शक्तियोंका कमलके पूर्व आदि आठ दलोंमें तथा नवीं मनोन्मनीका कमलके केसर-भागमें क्रमशः पूजन किया जाता है । यथा—‘ॐ हाँ वामाये नमः ।’ हस्तादि । तदनन्तर पृथ्वी आदि अष्ट मूर्तियों परं विशुद्ध विद्यादेहका चिन्तन एवं पूजन करे । (यथा—पूर्वमें ‘ॐ सूर्यमूर्तये नमः ।’ अग्निकोणमें ‘ॐ सच्चमूर्तये नमः ।’ दक्षिणमें ‘ॐ पृथ्वीमूर्तये नमः ।’ नैश्चूर्त्यकोणमें ‘ॐ अळमूर्तये नमः ।’ पश्चिममें ‘ॐ बहिमूर्तये नमः ।’ बायव्यकोणमें ‘ॐ बायमूर्तये नमः ।’ उत्तरमें ‘ॐ आकाश-

१४. अन्य तत्त्व-ग्रन्थोंमें ‘कलविकारिणी’ नाम मिलता है ।

१५. अन्यत्र ‘बलविकारिणी’ नाम मिलता है ।

मूर्तिये नमः ।' और ईशानकोणमें 'ॐ यज्ञमाममूर्तये नमः ।') तत्पश्चात् शुद्ध विद्याकी और तत्त्वव्यापक आसनकी पूजा करनी चाहिये । उस सिंहासनपर कर्पूर-गौर, सर्वव्यापी एवं पाँच मुक्तियोंसे सुशोभित भगवान् महादेवको प्रतिष्ठित करे । उनके दस भुजाएँ हैं । वे अपने मस्तकपर अर्घन्नन्द धारण करते हैं । उनके दाहिने हाथोंमें शक्ति, ऋषि, शूल, विष्णुज्ञ और वरद-मुद्रा हैं तथा अपने बायें हाथोंमें वे इमरु, विजौरा नीबू, पर्व, अक्षयत्र और नील कमल धारण करते हैं ॥ ४८—५१ ॥

आननके मध्यमें विराजमान भगवान् शिवकी वाह दिव्य मूर्ति नक्षीम लक्षणोंसे सम्पन्न है, ऐसा चिन्नन करके स्वयं प्रकाश दियका स्वरण करने द्वारा 'ॐ तां हां हौ शिवमूर्तये नमः ।' कहका । उसे नमस्कार करे । ब्रह्मा आदि कारणोंके ल्यागवर्तक '॥' को ध्यायमें प्रतिष्ठित कर । फिर यह चिन्नन कर नि-नटाटके रथ्यभागमें विराजमान तथा ताराति चन्द्रशङ्के ग्रन्थ प्रकाशमान चिन्हुरूप परमशिव दृदयादि दृश्योंने मरुन, हो पूर्णाङ्गलिमं उत्तर आये हैं । ऐसा ध्यान करके उन्न प्रत्यक्ष पूजनीय मूर्तिमें स्थापित कर दे । इसके बाद '॥ हां हां हौ हौ शिवाय नमः ।'- यह मन्त्र बोलकर मन ही मन आवाहनी-मुद्राद्वारा मूर्तिमें भगवान् शिवका आवाहन द्वारे । यिर स्थायनी मुद्राद्वारा वहां उनकी स्थापना और रांनिधायिनी-मुद्राद्वारा भगवान् शिवको संर्मापमें विराजमान करके संनिरोधनी-मुद्राद्वारा उन्हे उसे

१. व्यसेन मिकामने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विमुग् ।

दशनाहु य खण्डेन्दु दधान दश्मिणः कैः ॥

शमन्त्याद्यशुल्क्षट्वाङ्गवरदं वामकः करैः ।

द्वमन् र्वाजपूर च नागाक्षं मूर्तकोशलम् ॥

(अविन० ७४ । ५०-५१)

२. दोनों हाथोंकी अज्ञाल बनाकर अनामिका अङ्गुष्ठियोंके मूलपर्वत अङ्गूठको लगा देना—यह आवाहनी मुद्रा है ।

३. यह आवाहनी मुद्रा ही अधोमुखी (नीचेका ओर मुखवाली) कर दी जाय तो 'स्वापिनी' (बिठानेवाली) मुद्रा' कहलाती है ।

४. अङ्गूठोंको ऊपर उठाकर दोनों हाथोंकी संयुक्त मुहुर्ह बौंध लेनेपर 'संनिधायिनी' (निकट सम्पर्कमें लानेवाली) मुद्रा' बन जाती है ।

५. यदि मुट्ठीके भी तर अङ्गूठको ढाल दिया जाय तो 'संनिरोधिनी' (रोक रखनेवाली) मुद्रा' कहलाती है ।

मूर्तिमें अवरुद्ध करे । तत्पश्चात् 'लिङ्गुरायै कालकल्पायै (काल-काल्पयै अथवा कालकल्पायै) फट् ।' का उच्चारण करके खड़-मुद्रामें भय दिखाते हुए विद्योंको मार भगावें । इसके बाद लिङ्ग-मुद्राका प्रदर्शन करके नमस्कार करे ॥५२—५६॥

इसके बाद नमः ३ बोलकर अवगुण्डन करे । आवाहन-का अर्थ है सादर सम्मुखीकरण—इष्टदेवको आगे सामने उपर्युक्त करना । देवताको अर्चा-विग्रहमें बिठाना ही उसकी स्थापना है । 'थगो ! मैं आपका हूँ' ऐसा कहकर भगवान्-में निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना ही 'संनिधान' या 'संनिधायन' कहलाता है । जबतक पूजन-प्रथमन्त्य र्कमंकाण्ड चालू रहे, तबतक भगवान्की समीपता को अक्षुण्ण रखना ही 'निरोध' है और अभेत्तके समझ जो शिवतत्वका अप्रकाशन या नंगोपन लेका जाता है, उसीका नाम 'अवगुण्डन' है । तदनन्तर सकलीकरण करके 'दृदयाय नमः', 'शिरसे स्वाहा', 'दिग्माय वषट्', 'कवचाय हुम्', 'नेत्राभ्यां वौषट्', 'अक्षाय फट्' इन छः मन्त्रोंहारा दृदयादि अङ्गोंकी अङ्गीके साथ एकता स्थापित कर --यही 'प्रमृतीकरण' है । चतुर्मन्त्रशक्ति भगवान् शकरका दृदय है, आठ प्रकारका एश्वर्य अनका रंगर है, विद्युत् उनकी शिखा है तथा अभेद तेज भगवान् महेश्वरका कवच है । उनका हुःसह प्रताप ही समस्त विद्माका निवारण करनेवाला अस्त्र है । दृदय आदिको पूर्वमें रखनेर क्रमः 'नमः', 'स्वधा', 'स्वाहा' और 'वौषट्' का क्रमः उच्चारण करके पथ आदि निवेदन करे ॥५७-५८॥

पाश्चको आराध्यदेवके युगल चरणारविन्दीमें, आचमन-को मुख्यारविन्दमें तथा अर्ध, दूर्वा, पुष्प और अक्षतको इष्टदेवके ममतकपर चढाना चाहिये । इस प्रकार दस संस्कारोंमें परमेश्वर शिवका मंस्कार करके गन्ध-पुष्प आदि पञ्च-उपचारांसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे । पहांत जलसे देवांवेग्रहका प्रभुक्षण (अभिषेक) करके गाई-लोन आदिसे उवटन और मार्जन करना चाहिये । तत्पश्चात् अर्धजलकी बूँदों और पुष्प आदिसे अभिषेक करके गडुओंमें रक्खे हुए

६. दोनों हाथोंकी अर्जाल बाखकर अनामिका और कनिष्ठिका अङ्गुष्ठियोंको परस्पर मटाकर लिङ्गाकार खड़ी कर ले । दोनों मध्यमांडोंका अध्यभाग बिना खड़ी किये पररपर भिला दे । दोनों नर्जनियोंको मध्यमांडोंके साथ मटाये रखें और अङ्गूठोंको नर्जनियोंके मूलभागमें लगा दें । यह भर्तीपहिने गिरफ्तारीकी गुदा है ।

जलके द्वारा धीरे-धीरे भगवान् को नहलवे । दूध, दही, धी, मधु और शक्ति आदिको क्रमशः ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—इन पाँच मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित करके उनके द्वारा वारी-वारीसे स्नान कराये । उनको परस्पर मिलाकर पञ्चमृत बना ले और उससे भगवान् को नहलवे । इससे भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है । पूर्वोक्त दूध-दही आदिमें जल और धूप मिलकर उन सबके द्वारा इष्ट देवता-मन्त्रन्वयी मूल मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भगवान् शिवको स्नान कराते ॥ ६२-६३ ॥

तदनन्तर जौके आंतरे चिकनार्दि भिटाकर ईशानुवार शीतल जलमें स्नान कराये । अपनी शक्तिके अनुगाम चन्द्रन, केसर आदिसे युक्त जलद्वारा स्नान कराकर युड्ड बलमें इष्टदेवके श्रीविग्रहको अच्छी तरह पोड़े । उक्त वाद अर्थ निवेदन करे । देवताके ऊपर हाथ न द्युमाने । शिवलङ्घके मस्तकभागको कभी पुष्पसं सून्न न रखने । तत्पश्चात् अन्यथा उपचार समर्पित करे । (स्नानके पश्चात् देवविग्रहको बल्ल और यज्ञोपवीत धारण कराकर) चन्द्रन-रोली आदिका अनुलेप करे । फिर शिव-सम्बन्धी मन्त्र बोलकर पूष्प अर्पण करते हुए पूजन करे । धूपके पात्रका अच्छ-मन्त्र (फट्) से प्रोक्षण करके शिवमन्त्रसे धूपद्वारा पूजन करे । फिर अच्छ-मन्त्रद्वारा पूजित धण्टा बजाते हुए गुण्डुका धूप जलाये । फिर ‘शिवाय नमः ।’ बोलकर अमृतके समान सुखादु जलसे भगवान् को आचमन कराये । इसके बाद आरती उत्तरकर पुनः पूर्ववत् आचमन कराये । फिर प्रणाम करके देवताकी आशा ले भोगाङ्गोंकी पूजा करे ॥ ६७-६९ ॥

७. ये पाँच मन्त्र इस प्रकार हैं—

(१) ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मापिति-
ब्रह्माणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोऽमः ॥

(२) ॐ तत्पुरुषाय विश्वहे महादेवाय धीमहि । नन्त्रो रुदः
प्रचोदयात् ॥

(३) ॐ अघोरेस्वाऽप्य धोरेस्यो धोरवोरतरेभ्यः । सर्वभू-
सर्वशर्वैस्यो नमस्तेऽस्तु रुद्रपूर्वेभ्यः ॥

(४) ॐ वामदेवाय नमो उषेष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय
नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय
नमो बल्यमध्यनाय नमः सर्वभूतदृशनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥

(५) ॐ सद्योजातं पपत्यामि सद्योजानाय हौ नमो नमः ।
भवे भवे नार्ताभवे भवन्व मा नवोऽवाय नमः ॥

अग्निकोणमें चन्द्रमाके समान उच्चवल हृदयका, ईशान-
कोणमें सुवर्णके समान कान्तिवाले सिरका, नैऋत्यकोणमें
लाल रंगकी शिखाका तथा वायव्यकोणमें काले रंगके कवचका
पूजन करे । फिर अग्निवर्ण नेत्र और कृष्ण-पिङ्गल अखका
पूजन करके चतुर्मुख ब्रह्मा और चतुर्भुज विष्णु आदि
देवताओंको कमलके दलोंमें स्थित मानकर इन सबकी पूजा
करे । पूर्व आदि दिशाओंमें दाढ़ोंके समान विकराल,
वज्रगुल्य अखका भी पूजन करे ॥ ७२-७३ ॥

मूल स्थानमें ‘ॐ हां हूं शिवाय नमः ।’ बोलकर पूजन
करे । ‘ॐ हां हृदयाय नमः, ही विरसे स्याहा ।’ बोलकर हृदय
और शिरकी पूजा करे । ‘हूं शिखायै वषट् ।’ बोलकर
शिखाकी, ‘है कवचाय हुम् ।’ कहकर कवचकी तथा ‘हः
अस्त्राय फट् ।’ बोलकर अखकी पूजा करे । इसके बाद
परिवारगहित भगवान् शिवकी क्रमशः पात्र, व्याचमन,
अर्थ, गन्ध, पूष्प, धूप, दीप, नेवेद्य, आचमनीय, करो
द्वारा, ताम्बूल, मुखवास (इल्यान्ती आदि) तथा दपण अर्पण
करे । तदनन्तर देवाधिदेवके मस्तकपर दूधां, अन्त और
पवित्रके नदाकर हृदय (नमः) से अभिमन्त्रित मूलमन्त्रका
एक नीं आठ बार जप करे । तत्पश्चात् कवचमें आवेषित
एवं अखके द्वारा सुरक्षित अशत-कुड़ा, पुष्प तथा उद्धव
नामक मुद्रामें भगवान् शिवमें इस प्रकार प्रार्थना
करे—॥ ७४-७५ ॥

‘प्रभो ! गुहामें भी अति गुहा वस्तुसी आप रक्षा
करनेवाले हैं । आप मेरे किये हुए इस जपको ग्रहण करें,
जिससे आपके रहते हुए आपकी कृपासे मुझे गिरिध्र प्राप्त
हो ॥ ७८ ॥

भोगकी इच्छा रखनेवाला उपर्युक्त लोक
पढ़कर, मूल मन्त्रके उच्चारणपूर्वक दाहिने हाथसे अर्थ-
जल ले भगवान्के वरकी मूद्रामें युक्त हाथमें अर्थ
निवेदन करे । फिर इस प्रकार प्रार्थना करे—‘देव ! शंकर !
हम कल्याणस्वरूप आपके चरणोंकी शरणमें आये हैं । अतः
सदा हम जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करते आ रहे हैं, उन
सबको आप नष्ट कर दीजिये—निकाल फेंकिये । हूं श्वः ।
शिव ही दाता हैं, शिव ही भोक्ता हैं, शिव ही यह सम्पूर्ण

८. गुणातिगुणगोपा तं गृहणासत्कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवतु मे येन त्वप्रसादात् त्वयि स्थिते ॥

(अधिक० पृ० ७८ । १८३)

जगत् हैं, शिवकी गर्वन्त जय हो । जो शिव हैं, वही मैं हूँ ॥ ७९-८१ ॥

इन दो श्लोकोंको पढ़कर अपना किया हुआ जप आशाद्यदेवको समर्पित कर दे । तत्प्रात् जपे हुए शिव-मन्त्रका दशांश भी जपे (यह हवनकी पूर्तिके लिये आवश्यक

है) । फिर अर्ध्य देकर भगवान्की स्तुति करे । अन्तमें अष्टमूर्तिधारी आशाद्यदेव शिवकी परिक्रमा करके उन्हें साषाङ्ग प्रणाम करे । नमस्कार और शिव-ध्यान करके चित्रमें अथवा अग्नि आदिमें भगवान् शिवके उद्देश्यसे यजन-पूजन करना चाहिये ॥ ८२-८४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'शिव-पूजाकी विधिका वर्णन' नामक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! पूजनके पश्चात् अपने शरीरको बन्ध आदिसे आहुत करके हाथमें अर्प्यपत्र लिये उपासक अग्निशालामें जाय और दिव्यदृष्टिसे यज्ञके समस्त उपकरणोंकी कल्पना (संग्रह) करे । उत्तराभिमुख हो कुण्डको देखे । कुशोद्धारा उसका प्रोक्षण एव ताढ़न (मार्जन) करे । ताढ़न तो अङ्ग-मन्त्र (फट्) से करे; किंतु उसका अभ्युक्षण कवच-मन्त्र (हुम्) से करना चाहिये । खड़से कुण्डका खात उद्धार, पूरण और समता करे । कवच (हुम्) से उसका अभिषेक तथा शरमन्त्र (फट्) से भूमिको कूटनेका कार्य करे । सम्मार्जन, उपलेपन, कलात्मक स्पर्शकी कल्पना, त्रिसूत्री परिधान तथा अर्चन भी सदा कवच-मन्त्रसे ही करना चाहिये । कुण्डके उत्तरमें तीन रेखा करे । एक रेखा ऐसी रूचिने, जो पूर्वोभिमुखी हो और ऊपरसे नीचेका ओर गयी हो । कुठ अथवा त्रिशूलमें रेखा करनी चाहिये । अथवा उन मध्यी रेखाओंमें उलट-फेर भी किया जा सकता है ॥ १-५ ॥

अङ्ग-मन्त्र (फट्) का उच्चारण करके वज्रीकरणकी किया करे । नमःका उच्चारण करके कुशोद्धारा चतुष्पथका न्यास करे । कवच-मन्त्र (हुम्) बोलकर अक्षपात्रका और हृदय-मन्त्र (नमः)से विष्टरका स्थापन करे । 'वागीश्वर्यं नमः ।' 'ईशाय नमः ।'—ऐसा बोलकर वागीश्वरी देवी तथा ईशका आवाहन एवं पूजन करे । इसके बाद अच्छे स्थानसे शुद्धपात्रमें रक्तवी हुई अग्निको

ले आवे । उसमेंसे 'कश्याद्मण्डिं प्रहिणोमि दूरं' (शु० यजु० ३५ । १९) इत्यादि मन्त्रके उच्चारणपूर्वक क्रव्याद-के अंशभूत अग्निकणको निकाल दे । फिर निरीक्षण आदिसे शोधित और्दर्य, ऐन्द्रव तथा भौन—इन त्रिविधि अग्नियोंको एकत्र करके 'ॐ हूँ वह्निचैतन्याय नमः ।'का उच्चारण करके अग्निकीज (२) के साथ स्थापित करे ॥६-८३॥

संहिता-मन्त्रसे अभिमन्त्रित, धेनुमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक अग्नीतीकरणकी क्रियासे संस्कृत, अङ्ग-मन्त्रसे सुरक्षित तथा कवच-मन्त्रसे अवगुणित एवं पूजित अग्निको कुण्डके ऊपर प्रदक्षिणा-क्रमसे तीन बार धुमाकर, 'यह भगवान् शिवका बीज है'—ऐसा चिन्तन करके ध्यान करे कि 'वागीश्वरदेवने इस बीजको 'वागीश्वरीके गर्भमें स्थापित किया है'। इस ध्यानके साथ मन्त्र-माधक दोनों धुटने पृथ्वीपर टेककर नमस्कारपूर्वक उस अग्निको अपने सम्मुख कुण्डमें स्थापित कर दे । तत्प्रात् जिसके भीतर बीज-स्वरूप अग्निका आधान हो गया है, उस कुण्डके नाभिदेशमें कुशोद्धारा परिसमृद्धन करे । परिवान-सम्भार, शुद्धि, आचमन एवं नमस्कारपूर्वक गर्भाग्निका पूजन करके उस गर्भज अग्निकी रक्षाके लिये अङ्ग-मन्त्रसे भावनाद्वारा ही वागीश्वरीदेवीके पाणिपल्लवमें कङ्कण (या रक्षामूल) चौड़े ॥ ९-१३३ ॥

मंदोजान-मन्त्रसे गर्भाधानके उद्देश्यमें अग्निका पूजन करके हृदय-मन्त्रसे तीन आहुतियों दे । फिर भावनाद्वारा ही दृतीय मासमें होनेवाले पुमवन-संस्कारकी मिद्दिके लिये

९ यस्त्वचिकुमरे देव सदा दुष्कृतुष्कृतम् ॥

तन्मे शिवपदस्थस्य हृ क्षः क्षेपय शंकर । शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमेष जगत् ॥

शिवो जयति सर्वत यः शिवः सोऽस्मेव च । (अग्नि० ७४ । ८०-८३)

बामदेवमन्त्रद्वारा अग्निकी पूजा करके, ‘शिरमे स्वाहा ।’ बोलकर तीन आहुतियाँ दे । इसके बाद उम अग्निपर जलविन्दुओंसे छोटा दे । तदनन्तर छठे मासमें होनेवाले सीमन्तोन्नयन-संस्कारकी भावना करके, अघोर-मन्त्रसे अग्नि-का पूजन करके शिखायै ब्रह्म ।’ का उच्चारण फरते हुए तीन आहुतियाँ दे तथा शिखा मन्त्रसे ही गुरु और अङ्गोंकी कल्पना करे । मुखका उद्घाटन एवं प्रकटीकरण करे । तत्प्रात् पूर्वत् दसवें मासमें होनेवाले जातकर्म एवं नर-कर्मकी भावनामें तत्पुरुषमन्त्रद्वारा दर्भ आदिसे अग्निका पूजन एवं प्रज्वलन करके गर्भमलको दूर करनेवाला स्नान करावे तथा ध्यानद्वारा देवीके हाथमें मुवां-बन्धन करके हृदय-मन्त्रसे पूजन करे । फिर सूतककी तत्काल निवृत्तिके लिये अख-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे अभिषेक करे ॥ १४-१९ ॥

कुण्डका बाहरकी ओरसे अख-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक कुद्दोंद्वारा ताढ़न या मार्जन करे । फिर ‘हुम्’का उच्चारण करके उसे जलसे मीचे । तत्प्रात् कुण्डके बाहर मेवलाओं-पर अख-मन्त्रसे उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें पूर्वाग्रतथा पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें उत्तराग्र कुशाओंको बिछावे । उनपर हृदय-मन्त्रसे परिधि-विष्ट्र (आठों दिशाओंमें आसन-विशेष) स्थापित करे । इसके बाद सधोजातादि पांच मुख-सम्बन्धी मन्त्रोंमें तथा अख-मन्त्रसे नालच्छेदनके उद्देश्यमें पांच ममिधाओंके मूलभागको धीमे हुबोकर उन धार्चोंकी आहुति दे । तदनन्तर ब्रह्मा, शंकर, विष्णु और अनन्तका दूर्वा और अक्षत आदिसे पूजन करे । पूजनके समय उनके नामके अन्तमें ‘नमः’ जोड़कर उच्चारण करे । यथा—‘ब्रह्मणे नमः ।’ ‘शंकराय नमः ।’ ‘विष्णवे नमः ।’ ‘अनन्ताय नमः ।’ फिर कुण्डके नारों ओर बिछे हुए पूर्वोक्त आठ विष्ट्रोंपर पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः हन्द्र, अग्नि, यम, निर्मृति, ब्रह्म, बायु, कुबेर और ईशानका आवाहन और स्थापन करके यह भावना करे कि उन सबका मुख अग्निदेवकी ओर है । फिर उन्हें मवकी अपनी-अपनी दिशामें पूजा करे । पूजाके समय उनके नाम-मन्त्रके अन्तमें ‘नमः’ जोड़कर बोले । यथा—‘इन्द्राय नमः ।’ इत्यादि ॥ २०-२३ ॥

इसके बाद उन सब देवताओंको भगवान् शिवकी यह आशा सुनावे—‘देवताओं ! तुम सब लोग विघ्न-

समूहका निवारण करके इस बालक (अग्नि) का पालन करो ।’ तदनन्तर ऊर्ध्वमुख सुक् और सुवको लेकर उन्हें वारी वारीमें तीन बार अग्निमें तपावे । फिर कुशके मूळ, मध्य और अग्रभागसे उनका संशो दर्शन कराये । कुशसे सदा कराये हुए स्नानमें क्रमशः आत्मतन्त्र, विश्वतन्त्र और शिवतन्त्र—इन तीनोंका न्याय करे । न्याय-वाक्य इस प्रकार है—‘ॐ हां आत्मतन्त्राय नमः ।’ ‘ॐ हीं विश्व-तन्त्राय नमः ।’ ‘ॐ हूं शिवतन्त्राय नमः ।’ ॥२४-२६ ॥

तत्प्रात् सुक्में ‘नमः’के गाथ शक्तिका ओर स्वयं शिवका न्याय करे । यथा—‘शक्तयै नमः ।’ ‘शिवाय नमः ।’ फिर तीन आवृत्तिमें कैले हुए रक्षामूर्त्यसे सुक् और ओर सुव दोनोंके ग्रीवाभागको आवृष्टि करे । इसके बाद पुष्पादिसे उनका पूजन करके अपने दाहिने भागमें कुशोंके ऊपर उन्हें रख दे । फिर गायका धी लेकर, उसे अच्छी तरह देव-भालकर गुड़ कर ले और अपने ग्वायके ब्रह्मस्थ होनेवाली भावना करके, उस धीके पात्रको हाथमें लेकर हृदय-मन्त्रसे परिधि-विष्ट्र (आठों दिशाओंमें आसन-विशेष) स्थापित करे । तत्प्रात् धृतको ईशानकोणमें रन्वकर कुशाभागमें धी निकाले और ‘विरसे स्वाहा ।’ एवं ‘विष्णवे स्वाहा ।’ बोलकर भगवान् विष्णुके लिये उम धृतविन्दुकी आहुति दे । अपने स्वरूपके रुद्रमय होनेवाली भावना करके, कुण्डके नाभिम्थानमें धृतको रन्वकर उमका आलावन करे ॥ २५ ३६ ॥

(फैलाये हुए अंगूठेमें लेकर तजनो तककी लचाईको ‘प्रादेश’ कहते हैं ।) प्रादेश वरावर लंबे दो कुद्दोंको अङ्गूठ तथा अनामिका—इन दो अङ्गुलियाँमें पकड़कर उनके द्वारा अस्त्र (फट्) के उच्चारणपूर्वक अग्निके सम्मुख धीको प्रवाहित करे । इसी प्रकार हृदय-मन्त्र (नमः) का उच्चारण करके अपने समुग्न धी धृतका आप्लावन करे । ‘नमः’ के उच्चारणपूर्वक हाथमें लिये हुए कुशके द्रव्य हो जानेपर उस शम्न-क्षेप (फट् के उच्चारण) के द्वारा पवित्र करे । एक जलत हुए कुशमें उसकी नीराजना (आरती) करके फिर दूसरे कुशमें उसे जलावे । उस जले हुए कुशको अस्त्र-मन्त्रसे पुनः अग्निमें ही डाल दे । तत्प्रात् धृतमें एक प्रादेश वरावर कुश लोड़े, जिसमें गाँड़ लगायी गयी हो । फिर धीमे दो पश्चों तथा हडा आदि तीन नाडियोंकी भावना करे । हडा आदि तीनों भागोंसे

क्रमशः सुवद्वारा धी लेकर उमका होम करे । 'स्वा' का उच्चारण करके सुवावस्थित धारो अग्निमें डालं और 'हा' का उच्चारण करके हुतशेष धीका उसे डालनेके लिये रखे हुए पात्रविशेषमें ढोइ दे । अर्थात् 'स्वाहा' बोलकर क्रमशः दोगों कार्य (अग्निमें हवन और शेषका पात्रविशेषमें प्रशेष) करे ॥ ३२-३६ ॥

प्रथम इटाभागों धी लेकर 'ॐ हामग्नये स्वाहा ।' इस मन्त्रका उच्चारण करके धीका अग्निमें होम करे और हुतशेषका पात्रविशेषमें प्रशेष करे । हाँ। प्रकार दूसरे पिंडलाभग्रामें धी लेकर 'ॐ हां सोमाय स्वाहा ।' बोलकर धीम आहुति दे और शेषका पात्रविशेषमें प्रशेष करे । फिर 'पुष्पाणी' नामक तृतीय भागमें धी लेकर 'ॐ हामग्नी-पोमाभ्यां स्वाहा ।' बोलकर सुवद्वारा धी अग्निमें डाले और शेषका पात्रविशेषमें प्रशेषण करे । तत्पश्चात् बालक अग्निके मुखमें नेत्रशपके स्थाननिशंपमें तीनों नेत्रोका उद्घाटन करनेके लिये धृतपूर्ण सुवद्वारा निम्नाङ्कित मन्त्र बोलकर अग्निमें चौथी आहुति दे । 'ॐ हामग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।' ॥ ३७-२९ ॥

तत्पश्चात् (पहले अ यायम् बनाये अनुगार) 'ॐ हां हृदयय नमः ।' इत्यादि छहों अङ्ग गम्भीर्यां गन्त्वोद्वारा धीको अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्वाद्वारा ज्ञाते । फिर कवच-मन्त्र (हुम) में अवगुणित करके शरमन्त्र (फट्) से उमकी रक्षा करे । हस्के बाद हृदय मन्त्रमें धृतविन्दुका उत्क्षेपण करके उमका अवगुणण एवं धोधन करे । माथ ही शिवस्वरूप अग्निके पॉच्च मुखोके लिये अभिघास-होम, अनुसंधान-होम तथा मुखोके एकीकरण-सम्बन्धी होम करे । अभिघास-होमकी विधि यों है—'ॐ हां सद्योजाताय स्वाहा । अ॒ हां वाम-देवाय स्वाहा । अ॒ हां अघोराय स्वाहा । अ॒ हां तत्पुरुषाय स्वाहा । अ॒ हां हृज्ञानाय स्वाहा ।'—इन पॉच्च मन्त्रोद्वारा सद्योजातादि पॉच्च मुखोंके लिये अल्प-अल्प क्रमशः धीकी एक एक आहुति देकर उन मुखोंको अभिनारित-धीस आप्लिकित करे । यही मुखभिशर भग्नन्धी होम है । तत्पश्चात् दो-दो मुखोंके लिये एक माथ आहुति दे; यही मुखानुसंधान होम है । यह होम निम्नाङ्कित मन्त्रांसे सम्पन्न करे—'ॐ हां सद्योजातवामदेवाभ्यां स्वाहा । अ॒ हां वामदेवाघोराभ्यां स्वाहा । अ॒ हां अघोरन्तपुरुषाभ्यां स्वाहा । अ॒ हां तत्पुरुषेशानभ्यां स्वाहा ।' ॥ ४०-४४३ ॥

तदनन्तर कुण्डमें अग्निकोणमें बायब्यकोणतक तथा नैश्चल्यकोणसे इशानकोणतक धीकी अविच्छिन्न धाराद्वारा आहुति देकर उक पाँचों मुखोंकी प्रकल्प करे । तथा—'ॐ हां सद्योजातवामदेवाद्योरतत्पुरुषेशानेभ्यः स्वाहा ।' इस मन्त्रसे पाँचों मुखोंके लिये एक ही आहुति देनेमें उन सबका एकीकरण होता है । इस प्रकार इष्टमुखमें सभी मुखोंका अन्तर्भीव होता है, अनः वह एक ही मुख उन सभी मुखोंका आकार धारण करता है—उन सबके माथ उपकी एकता हो जाती है । इसके बाद कुण्डके इशानकोणमें अग्निकी पञ्च करके, अरब-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर अग्निका नामकरण करे ॥८८ अग्निदेव ! तुम सब प्रकारसं शिव हो, तुम्हारा नाम 'शिव' है ॥' इस प्रकार नामकरण करके नमस्कारपूर्वक, पृजित हुए माना-जिता वागीश्वरी एवं वार्गाद्वार अथवा शक्ति पूर्व द्विवास अग्निमें विमर्जन करके उनके लिये विधिपूर्वक पूर्णाहुति दे । मूळ मन्त्रके अन्तमें 'बौषट्' पद लोडकर (यथा—ॐ नमः शिवाय बौषट् । ऐसा कहकर) शिव और शक्तिके लिये विधिपूर्वक पूर्णाहुति देनी चाहिये । तत्पश्चात् हृदय कमलमें अङ्ग और सेनानहित परम तेजस्वी शिवका पूर्ववत् आवाहन करके पूजन करे और उनकी आज्ञा लेकर उन्हें पूर्णतः तृप्त करे ॥ ४५-४९३ ॥

यज्ञाग्नित तथा शिवका अपने गाथ नाडीसंधान करके अपनी शक्तिके अनुगार मूल मन्त्रमें अङ्गोंसहित दशांश होम करे । धी, दूध और मधुका एक एक 'कष' (सालह माशा) होम करना चाहिये । दहीकी आहुतिकी मात्रा एक 'प्रभुतुही' वतायी गर्या है । दूधकी आहुतिकी मात्रा एक 'प्रमर' है । सभी भक्षण पदार्थों तथा लावाकी आहुतिकी मात्रा एक-एक 'मुडी' है । मूलके तीन टुकड़ोंकी एक आहुति दी जाती है । कलकी आहुति उसके अपने ही प्रमाणके अनुगार दी जाती है, अर्थात् एक आहुतिमें छोटा हो या बड़ा एक कल देना चाहिये । उमे व्यजेड नहीं करना चाहिये । अज्ञकी आहुतिका मान आधा ग्राम है । जो सू८म किमिम आदि वस्तुएँ हैं, उन्हें एक बार पॉच्चकी संख्यामें लेकर होम करना चाहिये । इनकी आहुतिका मान एक 'गोऽ' है । लताओंकी आहुतिका मान दो दो अङ्गुलका टुकड़ा है । पुष्प और पर्की आहुति उनके अपने ही मानमें ही जाती है, अर्थात् एक आहुतिमें पूरा एक 'ल' और पूरा 'कु' पत्र देना चाहिये । समिधाओंकी आहुतिका मान दग अङ्गुल है ॥ ५०-५४ ॥

कपूर, चन्दन, केसर और कस्तूरीसे बने हुए दक्ष-कर्दम (अनुलेप-विशेष) की मात्रा एक कलाय (मटर या केराव) के बरादर है। गुम्बुलकी मात्रा बेरके बीजके बराबर होनी चाहिये। कंदोंके आठवें भागसे एक आड़ुति दी जाती है। इस प्रकार विचार करके विधिपूर्वक उत्तम होम करे। इस तरह प्रणव तथा बीज-पदोंमें युक्त मन्त्रोद्घारा होम-कर्म सम्पन्न करना चाहिये ॥ ५५-५६ ॥

तदनन्तर धीसे भरे हुए सुक्के ऊर अधोमुख सूखकों रखकर सुक्के अग्रभागमें फूल रख दे। फिर बायें और दायें हाथसे उन दोनोंको शङ्खकी मुद्रासे पकड़े। इसके बाद शरीरके ऊपरी भागको उच्चत रखते हुए उठकर सड़ा हो जाय। पैरोंको समभावसे रखें। कुक्कु और लुब दोनोंके मूलभागको अपनी नाभिमें टिका दे। नेत्रोंको सुक्के अग्रभागपर ही स्थिरतापूर्वक जमाये रखें। ब्रह्मा आदि कारणोंका त्याग करते हुए भावनाद्वारा सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे निकलकर ऊपर उठे। कुक्कु-सूखके मूलभागको नाभिसे ऊपर उठाकर बायें स्तनके पास ले आवे। अपने तन-मनसे आळस्को बूर रखते तथा (अः नमः शिवाय वौषट् ।—इस प्रकार) मूल-मन्त्रका वौषट्-पर्यन्त अस्पष्ट (मन्द स्वरसे) उच्चारण करे और उम धीकों जौकी-गी पतली धाराके माथ अग्निमें होम दे ॥ ५७-६० ॥

इसके बाद आचमन, चन्दन और ताम्बूल आदि देकर भक्तिभावसे भगवान् शिवके ऐश्वर्यकी बन्दना करते हुए उनके चरणोंमें उत्तम (भाष्याङ्ग) प्रणाम करे। फिर अग्नि-की पूजा करके ‘अः हूः अश्चाय फट् ।’ के उच्चारणपूर्वक संहारमुद्राके द्वारा शंबोरोंका आहरण करके इष्टदेवसे भगवन् ! मेरे अपराधको क्षमा करे—ऐसा कहकर हृदय-मन्त्रसे पूरक प्राणायामके द्वारा उन तेजस्वी परिधियोंको बड़ी अद्भुती साथ अपने हृदयकमलमें स्थापित करे ॥ ६१-६३ ॥

मर्मपूर्ण पाक (रगोई)से अग्रभाग निकालकर कुण्डके

इस प्रकार आदि आनंद महापुण्यमें शिवपूजाके अङ्गभूत होमकी विधिका निष्पण नामक पञ्चत्तरत्रौं अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

छिह्नतरवाँ अध्याय

चण्डकी पूजाका वर्णन

महावेदजी कहते हैं—‘कन्द ! तदनन्तर शिव-बिग्रहके निष्ठ जाकर माघक इस प्रकार प्रार्थना करे—

सभीप अग्निकोणमें दो मण्डल बनाकर एकमें अन्तर्बलि दे और दूसरेमें बाह्य-बलि । प्रथम मण्डलके भीतर पूर्व दिशामें ‘ॐ हां होम्यः स्वाहा ।’—इस मन्त्रसे रुद्रोंके लिये बलि (उपहार) अर्पित करे। दक्षिण दिशामें ‘ॐ हां मातृम्यः स्वाहा ।’ कहकर मातृकाओंके लिये, पश्चिम दिशामें ‘ॐ हां गणेयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर गणोंके लिये, उत्तर दिशामें ‘ॐ हां यज्ञेयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ कहकर यज्ञोंके लिये, ईशानकोणमें ‘ॐ हां यज्ञेयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर ग्रहोंके लिये, अग्निकोणमें ‘ॐ हां असुरेयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर असुरोंके लिये, नैऋत्यकोणमें ‘ॐ हां रक्षोऽयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर राष्ट्रसोंके लिये, वायव्यकोणमें ‘ॐ हां नागेयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर नागोंके लिये तथा मण्डलके मध्यभागमें ‘ॐ हां जलान्नेयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर नक्षत्रोंके लिये बलि अर्पित करे ॥ ६४-६७ ॥

इरी तरह ‘ॐ हां राशिर्यः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर अग्निकोणमें राशियोंके लिये, ‘ॐ हां विश्वेष्यो देवेयः स्वाहा तेभ्योऽयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर नैऋत्यकोणमें विश्वेदेवोंके लिये तथा ‘ॐ हां द्वेष्ट्रपालाय स्वाहा तत्त्वा भयं बलिरस्तु ।’ ऐसा कहकर पश्चिममें द्वेष्ट्रपालको बलि दे ॥ ६८ ॥

तदनन्तर दूसरे बाह्य-मण्डलमें पूर्व आदि दिशाओंके क्रमों बृन्द, अग्नि, यम, निश्चूर्ति, जलेश्वर वरुण, वायु, धनरक्षक फूरेर तथा ईशानके लिये बलि गमर्पित करे। फिर ईशानकोणमें ‘ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा ।’ कहकर ब्रह्माके लिये तथा नैऋत्यकोणमें ‘ॐ विष्णवे नमः स्वाहा ।’ कहकर भगवान् विष्णुके लिये बलि दे। मण्डलसे बाहर काक आदि के लिये भा शलि देनी चाहिये। आन्तर और बाह्य—दोनों बलियोंमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्रोंको संहारमुद्राके द्वारा अपने-आपमें समेट ले ॥ ६९-७१ ॥

‘भगवन् ! मेरेद्वारा जो पूजन और होम आदि कार्य सम्पन्न हुआ है, उसे तथा उसके पुण्यफलको आप ग्रहण करें ।’

ऐसा कहकर स्थिरचित्त हो 'उद्दव' नामक मुद्रा दिखाकर अर्घ्यजलसे 'नमः' सहित पूर्वोक्त मूल मन्त्र पढ़ते हुए इष्ट-देवके अर्घ्य निवेदन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् पूजन तथा स्तोत्रों-द्वारा स्तबन करके प्रणाम करे तथा परामूख अर्घ्य देकर कहे—'प्रभो ! मेरे अपराष्ठोंको क्षमा करें।' ऐसा कहकर दिव्य नारान्मुद्रा दिखा 'अस्त्राय फट्' का उच्चारण करके समस्त संग्रहका अपने-आपमें उपराहार करनेके पश्चात् शिवलिङ्गको मूर्ति-सम्बन्धी मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर वेदीपर इष्टदेवताकी पूजा कर लेनेपर मन्त्रका अपने-आपमें उपस्थित होने के बाद अपने-आपमें चण्डका पूजन करे॥६—७॥

'४० चण्डेवतानाय नमः।' से चण्डदेवताको नमरकार करे। फिर मण्डलके मध्यमात्रमें '४० चण्डसूत्रमें नमः।' से चण्डकी पूजा करे। उस मूर्तिमें '४० शूलिलचण्डेश्वराय हूं फट् स्वाहा।' गोलकर चण्डेश्वरका आवाहन है। इसके बाद अङ्ग-पूजा करे। यथा—'४० चण्डहृष्टव्याय हूं फट्।' इस मन्त्रसे हृष्टयको, '४० चण्डशिराय हूं फट्।' इस मन्त्रसे शिवायकी, '४० चण्डायुक्तवचाय हूं फट्।' से कवचकी तथा '४० चण्डास्त्राय हूं फट्।' से अष्टकी पूजा करे। इसके बाद रुद्राग्निम उत्पन्न हुए चण्ड देवताका इस प्रकार ध्यान करे॥६—७॥

'चण्डदेव अपने दो हाथोंमें शूल और टक्क धारण करते हैं। उनका रंग भाँवला है। उनके तीसरे हाथमें

इस प्रकार आदि आरनेग महापुण्यमें 'चण्डकी पूजाका वर्णन' नामक छिह्नतांत्रों अध्याय पूरा हुआ॥७६॥

मतहतरवाँ अध्याय

घरकी कपिला गाय, चूलहा, चक्की, ओखली, मूसल, शाढ़ और खंभे आदिका पूजन एवं प्रणामिहोत्रकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्वन्द ! अब कपिला-पूजनके विषयमें कहूँगा। निम्नाङ्कित मन्त्रोंमें गोमाताका पूजन करे—'४० कपिले नदे नमः।' ४० कपिले भद्रिके नमः। ४० कपिले सुशीले नमः। ४० कपिले सुरभिप्रभे नमः। ४० कपिले सुमनसे नमः। ४० कपिले भुक्तिसुक्ति-प्रदे नमः।' ४०। इस प्रकार गोमातासे प्रार्थना करे—

* इन मन्त्रोंका भावार्थ इस प्रकार है—आनन्ददायिनी, कृत्याणकारिणी, उत्तम रवानवाली, सुरभिकी मी भगवान् कानिवाली,

अशस्त्र और चौथेमें कमजुलु है। वे टक्की-सी आङ्कुतिवाले या अर्धचन्द्राकार मण्डलमें स्थित हैं। उनके चार मुख हैं।' इस प्रकार ध्यान करके उनका पूजन करना चाहिये। इसके बाद वयाशक्ति जप करे। हवनकी अङ्गमूर्ति सामग्रीका संचय करके उसकी द्वारा जपका दशांश होम करे। भगवान्पर चढ़े हुए या उन्हें अर्पित किये हुए गो, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि तथा मणि-सुवर्ण आर्द्धके आमृपणको लोहकर शेष सारा निर्मात्य चण्डेश्वरको समर्पित कर दे। उस समय इस प्रकार कहे—'हे चण्डेश्वर ! भगवान् शिवकी आशा से यह लेह्य, चौथ्य आदि उत्तम अन्न, तारबूल, पुष्पमाला एवं अनुलेपन आदि निर्मात्यस्वरूप भोजन तुम्हें समर्पित है। चण्ड ! यह राया पूजन सम्बन्धी कर्मकाढ़ मैंने तुम्हारी आशा से किया है। इसमें मोहवश जो न्यूनता या अर्धकता कर दी गयी हो, वह सदा मेरे लिये पूर्ण हो जाय—न्यूनातिरिक्तताका दोष छिट्ठ जाय।' ८०—८२॥

इस तरह निगदन करके, उन देवेश्वरका स्मरण करते हुए उन्हे अर्घ्य देकर संहार-मूर्ति-मन्त्रको पढ़कर सहारमुद्रा दिखाकर धूरि-धीरे पूरक प्राणायामपूर्वक मूल-मन्त्रका उच्चारण करके सब मन्त्रोंका अपने-आपमें उपराहार कर ले। निर्मात्य जहोंसे हटाया गया हो, उस श्यानको गोबर और जलसे छीप दे। फिर अर्घ्य आदिका प्रोक्षण करके देवताका विशर्जन करनेके पश्चात् आचमन करके अन्य आवश्यक कार्य करे॥८३—८५॥

'देवताओंको अमृत प्रदान करनेवाली, वरदायिनी, जगन्माता सौरभेणि ! यह ग्रास ग्रहण करो और मुझे मनोवाञ्छिस बस्तु दो। कपिले ! ब्रह्मर्णि वसिष्ठ तथा बुद्धिमान् विश्वामित्रने भी तुम्हारी बन्दना की है। मैंने जो दुष्कर्म किया हो, मैरा वह सारा पाप तुम हर लो। गौरैं सदा मेरे आगे रहें, गौरैं मेरे पीछे भी रहें, गौरैं मेरे हृदयमें निवास करें और मैं

शुद्ध हृदयवाली तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली कपिले ! तुम्हैं बार बार नमस्कार हैं।

सदा गौआंके वीचमें नियाम करूँ । गोमातः । मेरे दिये हुए हम भासको ग्रहण करो ।'

गोमाताके पास इस प्रकार बारंबार प्रार्थना करनेवाला पुरुष निर्मल (पापरहित) एवं शिवस्वरूप हो जाता है । विद्या पढ़नेवाले मनुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन अपने विद्या-ग्रन्थोंका पूजन करके पुरुषके नशणामें प्रणाम करे । यद्यस्त पुरुष नियम मध्याह्नकालमें स्नान करके अष्टपूर्णिमा (आठ खुलावाली) पूजाका विधिसे भगवान् शिवका पूजन करे । योगपाठ, उत्तरपर स्थापित शिवको मूर्ति तथा भगवान् शिवके जानु, पैर, हाथ, उर, रिंग, वारू, दृष्टि और बुद्धि—इन आठ अङ्गोंकी पूजा ही 'अष्टपूर्णिमा पूजा' कहलाती है (आठ अङ्ग ही आठ 'इत्तद्') । मध्याह्नकालमें सुन्दर रत्निमं लिय पुते हुए रसोई-वरमें पका राताया भोजन हो आय । फिर—

'अथवकं यजामहं सुराणिं पृष्ठिवर्घतम् ।

उत्तरार्थमित्र वन्द्यमास्त्रयोमुर्खेयं माऽस्त्रनात् ॥ वाऽपट् ॥

(शु० वन० ३ । ३०)

इस प्रकार अन्तमं 'वाऽपट्' पदसे युक्त मृत्युज्यमन्त्रकः सात बार जय करके कुशयुक्त शङ्खमें रखे हुए जलकी खूदोंसे उम अचको सोच । तन्मध्यात् सारी रसोईमें अग्राशन निकाल कर भगवान् शिवको निवदन करे ॥ १—९ ॥

इसके बाद आधे नदयों चुहिका-होमका कार्य मध्यम करनेके लिय रखते । निंवपूर्वक नूहेकी शूद्धि करके उसको आगमे पूरक प्राणायामपूर्वक एक आहुति हो । फिर नाभिगत अग्नि—जड़रानलके उद्दरमें एक आहुति देकर रंचक प्राणायामपूर्वक भाँतरमें निकलती हुई वायुके माथ अग्निवीज (२) को लेकर नमजः 'अ' आदि अश्रुरोपे उच्चारण स्थान कण्ठ आदिके मार्गमें वाहण करके 'भुमि शिवस्वरूप अग्नि हो' । ऐसा चिन्तन करते हुए उस चूल्हेकी आगमें भावनाद्वारा समाप्ति कर दे । इसके बाद चूल्हेकी पूर्वांदि दिशाओंमें—'ॐ हां अग्नये नमः । ॐ हां सोमाय नमः । ॐ हां सूर्योय नमः । ॐ हां बृहस्पतये नमः । ॐ हां प्रजापतये नमः । ॐ हां सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ॐ हां सर्वविद्वेभ्यो नमः । ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते नमः ।'—इन आठ मन्त्रोद्वापा अग्नि आदि आठ देवताओं की पूजा करे । फिर इन मन्त्रोंके अन्तमें 'म्याहा' पद जोड़—

इम प्रकार आदि आग्नेय मद्यापुराणमें 'कपिल-पूजन आदिका विधिका वर्णन' नामक रातहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

कर एक-एक आहुति हो और अपराधोंके लिये क्षमा माँगकर उन सबका विसर्जन कर दे ॥ १०—१४ ॥

नूहेके दाहिने बगलमें 'धर्माय नमः ।' इस मन्त्रमें धर्मकी तथा वायं बगलमें 'अधर्माय नमः ।' इस मन्त्रमें अधर्मकी पूजा करे । फिर काँजी आदि रम्बनेके जो पात्र हो, उनमें तथा जलके आश्रयभूत धट आदिमें 'सपस्त्रिवर्त-मानाय वस्त्राय नमः ।' इस मन्त्रसे धटगकी पूजा करे । रमोईघरके द्वारपर 'विज्ञराजाय नमः ।' मे विज्ञराजकी तथा 'सुभगाय नमः ।' से चक्रमें सुभगाकी पूजा करे ॥ १५—१६ ॥

ओवलीमें 'ॐ रौद्रिके गिरिके नमः ।' इस मन्त्रमें रात्रिका तथा गिरिकाकी पूजा करनी चाहिये । मग्निमें 'बलभित्रायायुधाय नमः ।' इस मन्त्रमें बलभद्रनीके आयुधका पूजन करे । शाड़में भी उक्त दो देवियाँ (गेद्रिका और गिरिका-) की शायमें कामदेवक, नथ भक्षण खम्मेम रक्तनुको पूजा करे । वेश रक्तन । तत्त्वान तत्त्वका रात्रन करनेवाला गान्ध का प्रथ पर्याप्ति वास्तुरैवतानो वायुदेवक, सैनके थालमें अथवा पुरहेनके पत्ते आदरमें मानभावसे भोजन करे । भोजनपात्रके स्पर्शमें उपयोग करनेके लिये वरगद, पीपल, मदार, रेडी, सामू और मिठायेके फलोंको ल्याग देना चाहिये—इन्हें कामंभ नहा लाना चाहिये । पहले आचमन करके, प्रणायरुक्त प्राणः आदि शब्दोंके अन्तमें 'म्याहा' नोऽकर अवकां पौन आर्हातवाँ देवत, जड़गनलको उद्दीप्त करनेके पश्चात् भोजन करना चाहिये । इसका क्रम यो है—नाग, कुर्म, कृकल, देवसूत प्राप धनजप—ये पांच उपनाम हैं । 'एतेभ्यो नागादिभ्य उपवायुभ्यः स्वाहा ।' इस मन्त्रमें आचमन करके, भात आदि भोजन नियंत्रित करके, अन्तमें फिर आचमन करे और कहे—'ॐ अस्त्रांपस्तरणमसि स्वाहा ।' इसके बाद पांच प्राणोंको एक एक ग्रासकी आहुतियों अपने मुखमें दे—(१) ॐ प्राणाय स्वाहा । (२) ॐ अपानाय स्वाहा । (३) ॐ व्यानाय स्वाहा । (४) ॐ समानाय स्वाहा । (५) ॐ उदानाय स्वाहा । (६) तत्पश्चात् पूर्ण भोजन करके पुनः चुल्दूभर गांवीन आचमन करे और कहे—'ॐ अस्त्रापिधानमसि स्वाहा ।' यह आचमन शरीरके मीतर पहुँचे हुए अचको आन्तरादित करने या पचानेके लिये है ॥ १७—२४ ॥

* अविनपुराणके भूलमें व्याग वाटुको आहुति अन्तमें बनायी गयी है; परंतु गृहभूमिमें इसका रीमग स्थान है । इसलिये वही क्रम अव्ययमें रखा गया है ।

अठदत्तरवाँ अध्याय

पवित्राधिवासनकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं पवित्रारोहणका वर्णन करूँगा, जो किया, योग तथा पूजा आदिमें न्यूनताकी पूर्ति करनेवाला है। जो पवित्रारोहण कर्म नित्य किया जाता है, उसे 'नित्य' कहा गया है तथा दूसरा, जो विशेष नियमित्यको लेकर किया जाता है, उसे 'नैमित्यिक' कहते हैं। आषाढ़ मासकी आदि-चतुर्दशीको तथा श्रावण और भाद्रपद मासोंकी शुक्ल-कृष्ण उभयपक्षीय चतुर्दशी एवं अष्टी तिथियोंमें पवित्रारोहण या पवित्रारोपण कर्म करना चाहिये। अथवा आषाढ़ मासकी पूर्णिमासे लेकर कार्तिक मासकी पूर्णिमातक प्रतिपदा आदि तिथियोंको विभिन्न देवताओंके लिये पवित्रारोहण करना चाहिये। प्रतिपदाको धर्मांके लिये, द्वितीयाको ब्रह्माजीके लिये, तृतीयाको पार्वतीके लिये, चतुर्थीको गणेशके लिये, पञ्चमीको नागराज अनन्तके लिये, षष्ठीको स्कन्दके अर्थात् तुम्हारे लिये, अष्टमीको सूर्यके लिये, अष्टमीको शूलपाणिके अर्थात् मेरे लिये, नवमीको हुगके लिये, दशमीको यमराजके लिये, एकादशीको इन्द्रके लिये, द्वादशीको भगवान् गोविन्दके लिये, अयोदशीको कामदेवके लिये, चतुर्दशीको मुक्त शिवके लिये तथा पूर्णिमाको अमृतभोजी देवताओंके लिये पवित्रारोपण कर्म करना चाहिये। १—३५ ॥

सत्ययुग आदि तीन युगोंमें क्रमशः सोने, चाँदी और ताँबेके पवित्रक अर्पित किये जाते हैं, किन्तु कल्युगमें कपासके सूत, रेशमी सूत अथवा कमल आदिके सूतका पवित्रक अर्पित करनेका विचान है। प्रणव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, नागराज, स्कन्द, श्रीहरि, सर्वेश्वर तथा सम्पूर्ण देवता—ये क्रमशः पवित्रकके नौ तनुओंके देवता हैं। उच्चम भ्रेणीका पवित्रक एक सौ आठ सूतोंसे बनता है। मध्यम भ्रेणीका चौबन तथा निम्न भ्रेणीका सत्ताईस सूतोंसे निर्मित होता है। अथवा इक्यासी, पचास या अड़तीस सूतोंसे उसका निर्माण करना चाहिये। जो पवित्रक जितने नवसूत्रीते बनाया जाय, उसमें बीचमें उतनी ही गाँठे बनानी चाहिये। पवित्रकोंका व्यास-आन या विस्तार बारह अङ्गुष्ठ, आठ अङ्गुष्ठ अथवा बार अङ्गुष्ठका होना चाहिये। यदि शिवलिङ्गके

लिये पवित्रक बनाना हो तो उस लिङ्गके बराबर ही बनाना चाहिये ॥ ४—८ ॥

(इस प्रकार तीन तरहके पवित्रक बताये गये।) इसी तरह एक चौथे प्रकारका भी पवित्रक बनता है, जो सभी देवताओंके उपयोगमें आता है। वह उनकी पिण्डी या सूर्तिके बराबरका बनाया जाना चाहिये। इस तरह बने हुए पवित्रको 'पाञ्चावतारक' कहते हैं। इसे 'सद्योजात' मन्त्रके द्वारा भलीभांति धोना चाहिये। इसमें 'वामदेव' मन्त्रसे ग्रन्थि ल्यावे। 'अघोर' मन्त्रसे रक्तचन्दन एवं रोलीदारा इसको रखें। अथवा कल्पी, गोरोचना, कपूर, हल्दी और गेहूँ आदिसे मिश्रित रंगके द्वारा पवित्रक मात्रको रंगना चाहिये। सामान्यतः पवित्रकमें दस गाँठे ल्यानी चाहिये अथवा तनुओंकी संख्याके अनुसार उगमें गाँठे लगावे। एक गाँठमें दूगरी गाँठमें एक, दो या चार अङ्गुष्ठका अन्तर रखें। अन्तर उतना ही रखना चाहिये, जिसमें उसकी शोभा बनी रहे। प्रकृति (किया), पौरुषी, बीग, अपराजिता, जया, विजया, अजिता, भद्राशिवा, मनोन्मीती तथा सर्वतोमुखी—ये दस ग्रन्थियोंकी अविद्यात्री देवियाँ हैं। अथवा दससे अधिक भी सुन्दर गाँठे ल्यानी चाहिये। पवित्रकके चन्द्रमण्डल, अङ्गिमण्डल तथा सूर्यमण्डलमें युक्त होनेकी भावना करके, उमे साक्षात् भगवान् शिवके तुल्य मानकर हृदयमें धारण करे—मन ही-मन उसके दिव्य स्वरूपका चिन्तन करे। शिवरूपसे भावित अपने स्वरूपको, पुस्तकको तथा गुरुगणको एक-एक पवित्रक अर्पित करे ॥ ९—१४ ॥

इसी प्रकार द्वारपाल, दिव्यालू और कल्या आदिपर भी एक-एक पवित्रक चढ़ाना चाहिये। शिवलिङ्गोंके लिये एक हाथसे लेकर नौ हाथतकका पवित्रक होता है। एक हाथवाले पवित्रकमें अड़ाईस गाँठें होती हैं। फिर क्रमशः दस-दस गाँठे बढ़ती जाती हैं। इस तरह नौ हाथवाले पवित्रकमें एक सौ आठ गाँठें होती हैं। ये पन्थियाँ क्रमशः

१—४. 'सद्योजात' आदि यांच मूर्तियोंके मन्त्र पचहत्तरवें अव्याप्तमें दिये गये हैं।

एक या दो-दो अङ्गुलके अन्तरपर रहती हैं। इनका मान भी लिङ्गके विस्तारके अनुरूप हुआ करता है। जिस दिन पवित्रारोपण करना हो, उससे एक दिन पूर्व अर्थात् भस्मी या श्रयोदर्शी तिथिको उपासक निष्यकर्म करके पवित्र हो सायकालमें पृथग् और बख्त आदिसे याग-मन्दिर (पूजा-मण्डप) को सजावे। नैमित्तिकी संध्योपासना करके, विशेषरूपसे तर्पण-कर्मका रत्नादान करनेके पश्चात् पूजाके लिये निश्चित किये हुए पवित्र भूभागमें सूर्यदेवका पूजन करे ॥ १५—१६है ॥

आचार्यको चाहिये कि वह आचमन एवं सकली-करणकी किञ्चि करके प्रणवके उच्चारणपूर्वक अर्ध्यपात्र हाथमें लिये अङ्ग-मन्त्र (फट्) बोलकर पूर्वादि दिशाओंके कर्मानं सम्पूर्ण द्वारोका प्रोक्षण करके उनका पूजन करे। 'हां शान्तिकलाद्वाराय नमः ।' 'हां विद्याकलाद्वाराय नमः ।' 'हां निवृत्तिकलाद्वाराय नमः ।' 'हां प्रतिष्ठाकलाद्वाराय नमः ।'—इन मन्त्रोंसे पूर्वादि चारों द्वारोका पूजन करना नाहिये। प्रत्येक द्वारकी दिक्षिण और बाम शास्त्राओंपर दो-दो द्वारपालोंका पूजन करे। पूर्वमें 'कल्पिने नमः ।' 'महाकाळाय नमः ।'—इन मन्त्रोंसे नन्दी और महाकालका, दक्षिणमें 'भृष्णे नमः ।' 'गणाय नमः ।'—इन मन्त्रोंसे भृष्णी और गणाः। पश्चिममें 'वृषभाय नमः ।' 'स्कन्दाय नमः ।'—इन मन्त्रोंसे नन्दिकेशर वृषभ तथा स्कन्दका तथा उत्तर द्वारमें 'वैद्यन्ते नमः ।' 'चण्डाय नमः ।'—इन मन्त्रोंसे देवी तथा चण्ड नामक द्वारपालका क्रमशः पूजन करे ॥ १७—१८ ॥

इस प्रकार द्वारपाल आदिकी 'नित्य'पूजा करके पश्चिम द्वारसे होकर याग-मन्दिरमें प्रवेश करे। फिर वास्तुदेवता-का पूजन करके भूतशुद्धि करे। तत्पश्चात् विशेषार्थी हाथमें छेकर अपनेमें शिवस्वरूपकी भावना करते हुए पूजा-सामग्रीका प्रोक्षण आदि करके यज्ञभूमिका संस्कार करे। फिर कुश, दूर्वा और फूल आदि हाथमें लेकर भन्मः' आदिके उच्चारणपूर्वक उसे अधिष्ठित करे। इस प्रकार शिवहस्तका विचान करके उसे अपने सिरपर रखते और यह भावना करे कि 'मैं सबका आदि कारण सर्वश शिव हूं तथा यहमें मेरी ही प्रधानता है ।' इस प्रकार आचार्य भगवान् शिवका अस्त्वंत ध्यान करे और शान्तिपी खड़ा हाथमें लिये नैऋत्य दिशामें जाकर उत्तराभिमुख हो अर्थका जल छोड़े तथा यज्ञ-मण्डपमें चारों ओर पञ्चग्रन्थ छिद्रके। चतुष्प्रथान्त

संस्कार और उत्तम संस्कारयुक्त वीक्षण आदिके द्वारा वहाँ सब ओर गौर नष्टप आदि विश्वरने योग्य वस्तुओंको विशेषकर कुशनिर्मित रूचके द्वारा उनका उपसंहार करे। फिर उनके द्वारा ईशानकोणमें वर्धनी एवं कलशकी म्यापनाके लिये आसनकी कल्पना करे ॥ २३—२८ ॥

तत्पश्चात् नैऋत्यकोणमें वास्तुदेवताका तथा द्वारपर लक्ष्मीका पूजन करे। फिर पश्चिमाभिमुख कलशको समस्थान्यके ऊपर स्थापित करके प्रणवके उच्चारणपूर्वक यह भावना करे कि 'यह शिवस्वरूप कलश नन्दिकेश्वर वृषभके ऊपर आरुद्द है ।' साथ ही वर्धनी मिहके ऊपर स्थित है, देसी भावना करे। कलशपर साङ्घ भगवान् शिवकी और वर्धनीमें अङ्गकी पूजा करे। इसके बाद पूर्वादि दिशा ओरमें हन्द आदि दिक्षालोंका तथा मण्डपके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् कलशके पृष्ठभागका अनुग्रहण करनेवाली वर्धनीको भर्त्यार्थाति हाथमें लेकर मन्त्रज्ञ गुरु भगवान् गिरावे। आज्ञा मुनावे। फिर पूर्वसे लेकर प्रददिष्टप्रकदसे 'चलते हुए ईशानकोणतक जलकी अविच्छिन्न जारा गिरावे और मूलमन्त्रका उच्चारण करे। शस्त्रस्त्रियां वर्धनीको यज्ञमण्डपकी रकाने के लिये उसके चारों ओर तुमावे। पृष्ठे कलशको आगोपित करने उसके बामभागमें शास्त्रके लिये वर्धनीको स्थापित करे ॥ २९—३३ ॥

उत्तम एव सुर्यशर आसनवाले कलशपर भगवान् शक्तरका तथा प्रगावपर स्थित हुई वर्धनीमें उनके आयुधका पूजन करे। तदनन्तर उन दोनोंका लिङ्गमुद्गाके द्वारा परस्पर मयोग कराकर भगलिङ्ग-संयोगका मम्पादन करे। कलशपर शान्तिपी खड़ अपित करके मूलमन्त्रका जप करे। उस जपके दशांश होमसे वर्धनीमें रक्षा वोधित करे। फिर बायन्यकोणमें गणेशजीकी पूजा करके पञ्चामूर्त आदिसे भगवान् शिवको स्तान करावे और पूर्ववत् पूजन करके कुण्डमें शिवस्वरूप अग्निकी पूजा करे। इसके बाद विष्णिपूर्वक चर तैयार करके उसे सम्पाताहृतिकी विधिमें शोधित करे। तदनन्तर भगवान् शिव, अग्नि और आत्माके भेदसे तीन अधिकारियोंके लिये चम्पचये उस चरके तीन भाग करे तथा अग्निकुण्डमें शिव एवं अग्निका भाग देकर शेष भाग आत्माके लिये सुरक्षित रखले ॥ ३४—३८ ॥

तत्पुरुष-मन्त्रके साथ 'हुं' जोड़कर उसके उच्चारण-पूर्वक पूर्व दिशामें इष्टदेवके लिये दत्तवावन अपित

करे । अधोरभन्त्रके अन्तमें 'वपट्' जोड़कर उसके उच्चारणपूर्वक उत्तर दिशामें औंबला अर्पित करे । बामदेव-मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर उसका उच्चारण करते हुए जल निवेदन करे । ईशान-मन्त्रसे ईशानकोणमें सुगन्धित जल समर्पित करे । पञ्चगव्य और पलाड़ आदिके दोने सब दिशाओंमें रखने । ईशानकोणमें पुष्प, अभिकोणमें गोरोचन, नैऋत्यकोणमें अमुख तथा वायव्य-कोणमें चतुर्संगम समर्पित करे । तुरतके पैदा हुए कुशोंके साथ समस्त होमद्रव्य भी अर्पित करे । दण्ड, अक्षसूत्र, कौपीन तथा भिक्षापात्र भी देवविग्रहको अर्पित करे । काजल, कुङ्कुम, सुगन्धित तेल, केशोंको शुद्ध करनेवाली कंधी, पान, दपण तथा गोरोचन भी उत्तर दिशामें अर्पित करे । तत्पश्चात् आसन, लड्डाऊँ, पात्र, योगपट्ट और छत—ये वस्तुएँ भगवान् शक्रकी प्रसरणताके लिये ईशानकोणमें ईशान-मन्त्रमें ही निवेदन करे ॥ ३९-४४३ ॥

तु दिशामें बीसहित भूत तथा गच्छ आदि भगवान् तस्मुखको अर्पित करे । तदनन्तर अध्यजलसे प्रकालित तथि साईता मन्त्रसे शोधित पवित्रकोंको लेकर अभिके निषट पढ़ृन्नावे । कृष्ण सूगन्धम् आदिसे उन्हे ढककर रखने । उनके भीतर समस्त कर्मोंके गाक्षा और सरक्षक सबलवस्त्रमप अविनाशी भगवान् शिवका निष्ठन करे । फिर 'मा' और 'हा' का प्रयोग करते हुए एन-संहिताके पाठपूर्वक इक्षीण वाग् एन पवित्रकोंका शोधन करे । तत्पश्चात् यह आदिकों सूत्रोंसे वेष्टित करे । सर्वदेवको गच्छ, पुष्प आदि चढ़ावे । फिर पूजित हुए सूर्यदेवको आचमनपूर्वक अर्द्ध रे । न्यास करके नन्दी आदि द्वारपालोंका ओर वास्तुदेवताको भी गन्धाद समर्पित करे । तदनन्तर यश-मण्डपके भाँतर प्रवेश करके शिव-कलशपर उसके चारों ओर इन्द्रादि लोकपालों और उनके शंखोंकी भयन-अपने नाम-मन्त्रोंसे पूजा करे ॥ ४५-५० ॥

इसके बाद वर्धनीमें विष्वाशल, गुरु और आसाका पूजन करे । इन गतका पूजन करनेके अनन्तर गर्वोष्ठिते लिम, धूपसे धूपित तथा पुष्प-दुर्वां आदिसे पूजेत पवित्रको

* ईशानः सर्वविज्ञानार्थीश्वरः सर्वपूजनां विद्याधिपतिनिरुद्धारो विद्याशिवो मेऽन्तु नदशिवोऽम् ।

- एक गंधद्रव्य, जिसमें दो भाग कम्पुरा, चार भाग जन्म, नीन भाग कुङ्कुम और नीन भग फलपूर रहना है ।

दोनों अखलियोंके बीचमें रख ले और भगवान् शिवको सम्बोधित करते हुए कहे—'ममके कारण तथा रुद्र और चेतनके स्वामी परमेश्वर ! पूजनकी समस्त विद्ययोंमें होनेवाली श्रुतिकी प्रतिके लिये मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ । आपसे अभीष्ट मनोरथकी प्राप्ति बरानेवाली मिठि चाहता हूँ । आप अपनी आराधना करनेवाले इस उपासकके लिये उस सिद्धिका अनुमोदन कीजिये । गम्भो ! आपको गदा और सब प्रकारसे मेरा नमस्कार है । आप मुझपर प्रभव हांहाये । देवश्वर ! आप देवी पावती तथा गणेशरोंके साथ आमन्त्रित हैं । मन्त्रेश्वरों, लोकपालों तथा सेवकों-सहित आप पधारें । 'परमेश्वर ! मैं भगवान् भाद्र निमन्त्रित करता हूँ । आपको आशामे कल प्रातःकाल पवित्रारोपण तथा तन्मध्यन्ती निपत्तिका पालन करूँगा' ॥ ५१—५५३ ॥

इस प्रकार महादेवजीको आमन्त्रित करके ऐचक प्राणायामके द्वारा असूतीकरणका क्रिया सम्पादित करते हुए शिवान्त सूलमन्त्रका उच्चारण एवं जप करके उसे भगवान् शिवको समर्पित करे । जप, स्तुति एवं प्रणाम करके भगवान् शकरसे अपनी श्रुतियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे । तत्पश्चात् चरके सुताय अशका होम करे । उभ शिववस्त्र-अभिको, दिव्यामियोंको, दिव्याओंके अविपरितयोंको, भूतगणाको, मातृगणोंहो, एकादश शंखोंको तथा दोषशङ्ख शारिको उनके नाममन्त्रके गाथ 'नमः स्वाहा' बोलकर आहुतिहं रूपमें अर्पित करे । इसके बाद इन गतका चतुर्थन्त नाम बोलकर 'अथं बलि!' कहते हुए बलि समर्पित करे । पूर्वांद दिव्याओंमें दद्याजो आदिके साथ दिकुपालोंको, क्षेत्रपालोंको तथा अभिको भी बलि गमर्पित करनी चाहिये । बलिहं पश्चात् आनन्द करके विभिन्नचिठ्ठ-पूरक होम करे । फिर पूण्याद्युते आप त्याहृति-होम करके अग्निदेवको अवश्वद करे ॥ ५६-५० ॥

तदनन्तर एक अग्नये स्वाहा । 'ॐ सोमाय स्वाहा ।' 'ॐ अश्वीशोमाय स्वाहा ।' 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।'—इन नाम मन्त्रोंसे चार आरूपियों देवर भावी कार्यकी योजना करे । अभिष्ट-डमें पूजित हुए आपः देव भगवान् शिवको पूजामण्डलम् दूषित कलशस्य शिवमें

— विषेके पालन या सम्मानन्म से बोः रुद्र गर्वी हो, नमकी एति करनेवाला ।

नाडीसंचानरूप विधिसे संयोजित करे । फिर बाँस-आदिके पात्रमें 'फट्' और 'नमः' के उच्चारणपूर्वक अस्त्रान्वास और हृदयन्वास करके उसमें सब पवित्रकोंको रख दे । इसके बाद 'शास्त्रिकलात्मने नमः ।' 'विद्याकलात्मने नमः ।' 'निष्ठिकलात्मने नमः ।' 'प्रतिष्ठाकलात्मने नमः ।' 'शास्त्रीतीति-कलात्मने नमः ।'—इन कलामन्त्रोंहारा उन्हें अभिमन्त्रित करे । फिर प्रणालमन्त्र अथवा मूलमन्त्रसे घड़कन्वास करके 'नमः', 'हुं' एवं 'फट्' का उच्चारण करके, उनमें क्रमशः हृदय, कवच एवं अङ्गकी योजना करे ॥ ६१—६४ ॥

यह गत करके उन पवित्रकोंको सूक्ष्मसे आवेषित करे । फिर 'नमः', 'स्वाहा', 'वषट्', 'हुं', 'वौपट्' तथा 'फट्' इन अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्रोंहारा उन गत्रका पूजन करके उनकी रक्षाके लिये भक्तिभावसे नम्न हो, उन्हें जगदीश्वर

हस प्रकार आदि आननेश महापुण्यमें पवित्राधिवासनकी

शिवको समर्पित करे । इसके बाद पुष्प, धूप आदिसे पूजित सिद्धान्त-ग्रन्थपर पवित्रक अर्पित करके गुषके चरणोंके समीप जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक पवित्रक दे । फिर वहाँसे बाहर आकर आचमन करे और गोबरसे लिपे-पुते मण्डलत्रयमें क्रमशः पञ्चगव्य, चक्र एवं दन्तधावनका पूजन करे ॥ ६५—६७ ॥

तदनन्तर भलीभाँति आचमन करके मन्त्रसे आवृत्त एवं सुरक्षित भाष्मक रात्रिमें संगीतकी व्यवस्था करके जागरण करे । आधी रातके बाद भोग-सामग्रीकी इच्छा रखनेवाला पुष्प भगवान् शंकरका स्मरण करता हुआ कुशकी चटाईपर मोये । मोयकी इच्छा रखनेवाला पुष्प भी इसी प्रकार जागरण करके उपवासपूर्वक एकाग्रन्तित हो केवल भस्त्रकी शव्यापर मोये ॥ ६८-६९ ॥

पवित्रिका वर्णनं नामक अस्त्रतत्त्वां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

उन्न्यासीवाँ अध्याय

पवित्रारोपणकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द । तदनन्तर प्रातःकाल उत्तर करनान करके एकाग्रन्ति हो संन्यासपूजनका नियम पूण करके मन्त्र-गाथक यहमाद्यपर्यं प्रवेश करे और जिनका विसर्जन नहीं किया गया है, ऐसे इष्टदेव भगवान् शिवसे पूर्वोन्त पवित्रकोंको लेकर इश्वानकोणमें बने हुए, मण्डलके भोतर किनी शुद्धपात्रमें रखवै । तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका विसर्जन करके, उनपर चढ़ी हुई निर्माल्य-गामग्रीको इटाकर, पूर्वत् शुद्ध भूमिपर दो नार आङ्गिक कर्म करे । फिर सूर्य, द्वारपाल, दिव्यपाल, कलश तथा भगवान् इश्वान (दिव) का शिवाञ्जिमें विशेष विस्तारपूर्वक नैमित्तिकी पूजा करे । फिर मन्त्रतर्पण और अस्त्र-मन्त्रद्वारा एक सौ आठ बार प्रायवित्त-होम करके जीर्णे मन्त्र बोलकर पूर्ण-हुति कर दे ॥ १-५ ॥

इसके बाद मूर्खदेवको पवित्रक ढेकर आचमन करे । फिर द्वारपाल आदिको, दिव्यपालोंको, कलशको और वर्षनी आदिपर भी पावेशक अर्पण करे । तदनन्तर भगवान् शिवके समीप अपने आरनपर बैठकर आस्था, गण, गुरु तथा अग्निको पवित्रक अर्पित करे । उस मम्बू भगवान्

शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—देव ! आप कालस्वरूप हैं । आपने मेरे कार्यके विषयमें जैसी आशा दी थी, उमका ठीक ठीक पालन न करके मैंने जो विहित कर्मको क्लेशयुत (त्रुटियोंमें पूर्ण) कर दिया है, अथवा यावद्यक विधिको छोड़ दिया है या प्रकटको गुप्त कर दिया है, वह मेरा किया हुआ विलष्ट और भंस्कारशून्य कर्म इस पवित्रारोपणकी विधिसे वर्धया अविलष्ट (परिपूर्ण) हो जाय । शम्भो ! आप अपनी ही इच्छासे मेरे इस पवित्रक-द्वारा सम्पूर्ण हृपसे प्रभन्न होकर मेरे नियमको पूर्ण कराजिये । 'ॐ पूरथ पूरथ मखदत्तं नियमेश्वराय स्वाहा ।'—इस मन्त्रका उच्चारण करे ॥ ६-१० ॥

ॐ पश्योन्मिष्याद्विताल्पत्त्वेश्वराय प्रहृतिकलाय
कृ नमः शिवाय ।—इस मन्त्रका उच्चारण करके पवित्रकहारा भगवान् शिवकी पूजा करे । 'विष्णुकालपाकितविद्यालत्त्वेश्वराय
कृ नमः शिवाय ।—इस मन्त्रका उच्चारण करके पवित्रक चढ़ावे । 'चटेकालणपाकितविद्यालत्त्वेश्वराय शिवाय कृ नमः शिवाय ।' इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवको पवित्रक निवेदन करे । उत्तम क्रतुका पालन करनेवाले स्कन्द ।

'सर्वकाशणपालाय शिवाय स्वाहा ॐ नमः शिवाय ।'-
इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवको 'गङ्गावतारक'
नामक सूत्र समर्पित करे ॥ ११-१४ ॥

मुमुक्षु पुरुषोंके लिये आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और
शिवतत्त्वके क्रमसे मन्त्रोद्घारणपूर्वक पवित्रक अर्पित करनेका
विधान है तथा भोगाभिलाषी पुरुष कमशः शिवतत्त्व,
विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वके अधिपति शिवको मन्त्रोद्घारण-
पूर्वक पवित्रक अर्पित करे, उसके लिये ऐसा ही विधान
है । मुमुक्षु पुरुष म्वाहान्त मन्त्रका उच्चारण करे और
भोगाभिलाषी पुरुष नमोऽन्त मन्त्रका । 'म्वाहान्त' मन्त्रका
मरुप्य इस प्रकार है—‘ॐ हां आत्मतत्त्वाधिपतये शिवाय
स्वाहा ।’ ‘ॐ हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।’ ‘ॐ हां
शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।’ ‘ॐ हां सर्वतत्त्वाधिपतये
शिवाय स्वाहा ।’ ('स्वाहा') की जगह 'नमः' पढ़
रख देनेसे ये ही मन्त्र भोगाभिलाषियोंके उपयोगमें
आनेवाले हो जान दें; परंतु इनका कम ऊपर
बताये अनुसार ही होना चाहिये ।) गङ्गावतारक अर्णण
करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर भगवान् शिवसे इस प्रकार
प्रार्थना करे—'परमेश्वर ! आप ही समस्त प्राणियोंकी गति
है । आप ही चराचर जगत्की स्थितिके हेतुभूत (अथवा
लयके आश्रय) हैं । आप सर्वपूर्ण भूतोंके भीतर विचरते
हुए उनके नाशीरूपसे अवस्थित हैं । मन, वाणी और
क्रियाद्वारा आपके गिरा दूर्सी कोई मेरी गति नहीं है ।
महेश्वर ! मैंने प्रनिदिन आपके पूजनमें जो मन्त्रहीन,
क्रियाहीन, द्रव्यहीन तथा जप, होम और अन्तर्नन्मे हीन
कर्म किया है, जो आवश्यक कर्म नहीं किया है तथा जो
शुद्ध वाक्यमें गहित कर्म किया है, वह सब आप पूर्ण करें ।
परमेश्वर ! आप परम पवित्र हैं । आपको अर्पित किया
हुआ यह पवित्रक समस्त पार्योंका नाश करनेवाला है ।
आपने सर्वत्र व्याप्त होकर इस समस्त चराचर जगत्को
पवित्र कर रखा है । देव ! मैंने व्याकुरुताके कारण अथवा
अङ्गूष्ठेकस्य-दोषके कारण जिस क्रतको खण्डित कर दिया
है, वह सब आपकी आशारूप सूत्रमें गुण्यकर एक अस्त्रण
हो जाय' ॥ १५-२२३ ॥

तत्पश्चात् जप निवेदन करके, उपासक भक्तिपूर्वक
भगवान्की स्तुति करे और उन्हे नमस्कार करके, गुरुकी
आशाके अनुसार चार मास, तीन मास, तीन दिन अथवा

एक दिनके लिये ही नियम ग्रहण करे । भगवान् शिवको
प्रणाम करके उनसे श्रुटियोंके लिये क्षमा माँगकर ब्रती पुरुष
कुण्डके गमीप जाय और अग्निमें विराजमान भगवान्
शिवके लिये भूत्यार पवित्रक अर्पित करके पुष्प, धूप और
अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे । इसके बाद सूद आदिको
अन्तर्बस्ति एवं पवित्रक निवेदन करे ॥ २३-२६ ॥

तत्पश्चात् पूजा-माण्डपमें प्रवेश करके भगवान् शिवका
स्तबन करने हुए प्रणामपूर्वक धमा-प्रार्थना करे । प्रायश्चित्त-होम
करके ग्नीरकी आहुति दे । मन्दस्त्ररमें मन्त्र बोलकर पूर्णाहुति
करके अग्निमें विराजमान शिवका विसर्जन करे । फिर
व्याहृति-होम करके, निष्ठुगद्वारा अग्निको निश्चक करे और
अग्नि आदिको निमोक्त मन्त्रोंसे चार आहुति दे । तत्पश्चात्
दिव्यालोको पवित्र एवं ब्राह्मण बलि अर्पित करे । इसके बाद
सिद्धान्त-ग्रन्थपर उसके ब्राह्मणका पवित्रक अर्पित करे ।
पूर्वोक्त व्याहृति-होमके मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हा॒ भूः
स्वाहा ।’ ‘ॐ हा॒ भुवः स्वाहा ।’ ‘ॐ हा॒ स्वः स्वाहा ।’ ‘ॐ
हा॒ भू॒स्तुवः स्वः स्वाहा ।’ ॥ २७-३१ ॥

इस प्रकार व्याहृतियोंद्वारा होम करके अग्नि आदिके
लिये चार आहुतियाँ देकर तूसरा कार्य करे । उन चार
आहुतियोंके मन्त्र इस प्रकार हैं—‘ॐ हां अग्नये स्वाहा ।’
‘ॐ हा॒ सोमाय स्वाहा ।’ ‘ॐ हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ।’
‘ॐ हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।’ फिर गुरुकी शिवके समान
वस्त्राभ्याग आदि विस्तृत सामग्रीसे पूजा करे । जिसके ऊपर
गुरुदेव पूर्ण-पसे सतुष्ट होते हैं, उस साधकका सारा वार्षिक
कर्मकाण्ड आदि सफल हो जाता है—ऐसा परमेश्वरका कथन
है । इस प्रकार गुरुका पूजन करके उन्हे हृदयतक लटकता
हुआ पवित्रक धारण कराये और ब्राह्मण आदिको भोजन
कराकर भक्तिपूर्वक उन्हें बलि आदि दे । उस समय यह
प्रार्थना करे कि 'देवेश्वर भगवान्, सदाशिव इस दानसे मुक्त-
पर प्रसन्न हों ।' फिर प्रातःकाल भक्तिपूर्वक स्नान आदि
करके भगवान् शक्तरके भीविग्रहसे पवित्रकोंको समेट ले
और आठ पूर्णोंसे उनकी पूजा करके उनका विसर्जन कर
दे । फिर यह छोड़की तरह विस्तारपूर्वक नित्य-नैमित्तिक पूजन
करके पवित्रक चढ़ाकर प्रणाम करनेके पश्चात् अग्निमें
शिवका पूजन करे ॥ ३२-३८ ॥

तदनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे प्रायश्चित्त-होम करके पूर्णाहुति
दे । भोग-सामग्रीकी इच्छावाले पुरुषको चाहिये कि वह
भगवान् शिवको अपना सारा कर्म समर्पित करे और कहे-

भ्रमो ! आपकी कृपासे मेरा यह कर्म मनोवाच्छित फलका साधक हो ।^१ मोक्षकी कामना रखनेवाला पूरुष भगवान् शिवसे इस प्रकार प्रार्थना करे—नाथ ! यह कर्म मेरे लिये बन्धनकारक न हो ।^२ इस तरह प्रार्थना करके अग्निमें स्थित शिवको नाहीयोगके द्वारा अन्तरात्मामें स्थित शिवमें संयोजित करे । फिर अणुसमूहका दृदयमें न्यास करके अग्निदेवका विसर्जन कर दे और आचमन करके पूजा-मण्डपके भीतर प्रविष्ट हो, कलशके जलको सब ओर छिङ्कते हुए भगवान् शिवसे संयुक्त करके कहे—भ्रमो ! मेरी बुटियोंको क्षमा करो ।^३ इसके बाद विसर्जन कर दे ॥ ३९-४२ ॥

तदनन्तर लोकगाल आदिका विसर्जन करके भगवान् शिवकी प्रतिमासे पवित्रक लेकर चण्डेश्वरकी प्रतिमामें

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुष्णमें पवित्रारोपणकी विधिका वर्णन नम्भक उन्मासीवां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

अस्सीवाँ अध्याय

दमनकारोपणकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द । अब मैं दमनकारोहणकी विधिका वर्णन करूँगा । इसमें भी सब कार्य पूर्वत् करने चाहिये । प्रान्तीन कालमें भगवान् शंकरके कोपमें भैरवकी उत्पत्ति हुई । भैरवने देवताओंका दमन आग्नेय किया । यह देवता त्रिपुरारि शिवने रुद्ध होकर भैरवको शाप दिया—‘तुम वृक्ष हो जाओ ।’ फिर भैरवके क्षमा मांगनेपर प्रसन्न हो भगवान् शिव शोले—‘जो मनुष्य तुम्हारे पत्रोंद्वारा पूजन करें, अथवा तुम्हारी पूजा करेंगे, उनका मनोवाच्छित फल पूरा होगा । उनकी इच्छा किसी तरह अपूर्ण नहीं रहेगी ।’ सक्षमी या त्रयोदशी तिथियों मन्त्रनेत्रा पूरुष मंहिता-मन्त्रोंसे दमनक-वृक्षकी पूजा करके उसे भगवान् शक्तके वाक्यका समरण दिलाते हुए जगावे—॥ १-३३ ॥

इत्यसादसम्भूत श्वरम् संनिधीभव ।
शिवकार्यं समुहित्य नेत्रज्ञोऽसि शिवाक्षवा ॥

१-मन्त्र । तुम भगवान् शंकरके कृपाप्रसादसे प्रकट हुए हो । तुम यहा मर्नाहन हो जाओ । भगवान् शिवकी प्राक्षसे उम्हीनो कार्यके उद्देश्यमें मुझे तुम्हें अपने साथ ले जाना है ।^१ भगवर भी न, ब्रह्मो भास्मिन्न करे और

उनकी भी पूजा करके उन्हें वह पवित्रक अर्पित करे और शिवनिर्मल्य आदि सारी सामग्री पवित्रकके साथ ही उन्हें समर्पित कर दे । अथवा वेदीपर पूर्ववत् विधिपूर्वक चण्डेश्वरकी पूजा करे और उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—‘चण्डनाथ ! मैंने जो कुछ वार्षिक कर्म किया है, वह यदि न्यूनता या अधिकताके दोषसे युक्त है, तो आपकी आशासे वह दोष दूर होकर मेरा कर्म साङ्गेपाङ्ग परिपूर्ण हो जाय ।’ इस प्रकार प्रार्थना करके देवेश्वर चण्डको नमस्कार करे और स्तुतिके पश्चात् उनका विसर्जन कर दे । निर्मल्यका त्याग करके तुम्ह हो भगवान् शिवको नहलाकर उनका पूजन करे । घरसे पाँच घोजन दूर रहनेपर भी गुरुके समाप्त पवित्रारोहण-कर्मका सम्पादन करना चाहिये ॥ ४३-४६ ॥

साथकालमें अधिवासन-कर्म भग्नन करे । विधिपूर्वक सूत, शंकर और अग्निदेवकी पूजा करके, इष्टदेवताके पश्चिम भागमें मिट्टीके गाथ संयुक्त करके उस वृक्षकी जड़को स्थापित करे । बामदेव-मन्त्र अथवा शिरामन्त्रमें उस वृक्षकी नाल तथा ऑवलेका फल उत्तर दिशामें रखें । उसके दूटे हुए पत्रको दक्षिणमें तथा पुष्प और धावनको पूर्वमें स्थापित करे ॥ ४-७ ॥

ईशानकोणमें एक दोनोंमें उनके फल और मूलको रखकर भगवान् शिवका पूजन करे । उस वृक्षकी जड़, नाल, पत्र, फूल और फल—इन पांचों अङ्गोंको अङ्गालिमें लेकर आमन्त्रित करते हुए सिरपर रखने और इस प्रकार कहे—देवेश्वर । मैं आज आपको निमन्त्रित करता हूँ । कठ प्रातःकाल मुझे तपस्थित्यका लाभ लेना है—की हुई उपासनाको सफल करना है । वह भव कार्य आपकी आशासे पूर्ण हो ।^२ तत्पश्चात् पात्रमें रखते हुए शेष पवित्रको मूलमन्त्रसे छक्कर प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् जगदीश्वर शिवका गत्पृष्ठ आदिसे पूजन करे ॥ ८-१० ॥

तदनन्तर निष्यन्नेभित्तिक कर्म करके दमनकमें पूजन कर । शेष दमनकको अङ्गालिमें लेकर (हाँ आन्ध-

तत्त्वाधिष्ठितये शिवाय स्वाहा ।' 'हूं हाँ विद्वात्तत्वाधिष्ठितये शिवाय स्वाहा ।' 'हूं हाँ विद्वात्तत्वाधिष्ठितये शिवाय स्वाहा ।'—इन चार मन्त्रों-द्वारा दमनक चढ़ाकर शिवका पूजन करना चाहिये । तदनन्तर दमनककी चौथी अङ्गुलि लेकर 'हूं हाँ महेश्वराय मर्म पूर्ण पूर्ण शूलपाणये नमः ।'—इस मन्त्रके उत्तरणपूर्वक भगवान् शिवको अर्पित करे ॥ ११-१३ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें दमनकरोपणकी विधिका वर्णनः नामक अस्तीर्थी अव्याप्तिपूरा हुआ ॥ ८० ॥

इक्यासीवाँ अध्याय

समयाचार-दीक्षाकी विधि

भगवान् महेश्वर कहते हैं—‘कन्द ! अब मैं भोग और मोक्षकी गिरिधिके लिये दीक्षाकी विधि बताऊँगा, जो ‘मस्त पापोंका नाश करनेवाली है तथा जिसके द्वारा भल और माया आदि पापोंका निवारण किया जाता है । जिससे द्विष्ट्यमें शानकी उत्पत्ति करायी जाती है, उसका नाम ‘दीक्षा’ है । वह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है । पशु (पाश-नद जीव) शुद्ध विद्वान्नारा अनुग्राम कहा गया है । वह तीन प्रकारका होता है—पहला विद्वानाकल, दूसरा प्रलयाकल तथा तीसरा रक्षकल ॥ १४ ॥

उनमें प्रथम अर्थात् ‘विद्वानाकल’ पशु केवल मलरूप पाशसे युक्त होता है*, दूसरा अर्थात् ‘प्रलयाकल’ पशु मल और कर्म—इन दो पादोंसे आबद्ध होता है† तथा तीसरा

* जो परमात्माके स्वरूपको पहचानकर अप, व्यान तथा
‘मन्यासद्वारा अथवा भोगद्वारा कर्मोक्त क्षय कर डालता है और
कर्मोक्त क्षय हो जानेके कारण जिसके लिये शरीर और इन्द्रिय
आदिको कोई वर्धन नहीं रहता, उसमें केवल मलरूपी पाश
(वर्धन) रह जाता है, उसे ‘विद्वानाकल’ कहते हैं । मल तीन
प्रकारके होते हैं—‘आणव-मल’, ‘कर्नज-मल’ तथा ‘मायेभ-मल’ ।
विद्वानाकलमें केवल आणव-मल रहता है । वह विद्वान (तत्त्वान)
द्वारा अबद्ध—कलारदित (कलादि भोग-वर्धनोंसे शून्य) हो जाता है, इसलिये उसकी ‘विद्वानाकल’ नाम होती है ।

† जिस जीवात्माके दैह, इन्द्रिय आदि प्रलयक्षकमें कीम हो
जाते हैं, इससे उसमें मायेभ मल तो नहीं रहता, परंतु आणव
और कर्मव—जो दो मलकरी पाश (वर्धन) रह जाते हैं, वह

इस प्रकार शिव और अरिनकी पूजा करके गुहकी विशेषरूपसे अर्चना करते हुए प्रार्थना करे—‘भगवन् । मैंने दमनकद्वारा पूजनकर्ममें जो न्यूनता या अधिकता कर दी है, वह सब आपकी कृपासे परिपूर्ण हो जाय ।’ इस रीतसे दमनकारोहण-कर्मका सम्पादन करके मनुष्य नैऋत्यमास-जनित सम्पूर्ण फलको पाता है और अन्तमें स्वर्गलोकको जाता है ॥ १४-१५ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें दमनकरोपणकी विधिका वर्णनः नामक अस्तीर्थी अव्याप्तिपूरा हुआ ॥ ८० ॥

अर्थात् ‘सकल’ पशु कला आदिसे लेकर भूमिपर्यन्त सारे तत्त्व-समूहोंसे बँधा होता है (अर्थात् वह मल, माया तथा कर्म विविध पादोंसे बँधा हुआ बताया गया है ।) † ॥२-३४॥

प्रलयकालमें ही अबद्ध (कलारदित) होनेके कारण ‘प्रलयाकल’ कहलाता है :

† जिस जीवात्मामें आणव, मायेभ और कर्नज—नीनों भक (पाश) रहते हैं, वह कला आदि भोग-वर्धनोंसे युक्त होनेके कारण ‘सकल’ कहा गया है । पाशुपत-दश्युनके अनुसार विद्वानाकल पशु (जीव)के भी दो भेद हैं—‘समाप्त-कल्प’ और ‘असमाप्त-कल्प’ । (१) जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मको वह मलपर जमानी रहती है । इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता; किंतु जब कर्मोंका खाग हो जाता है, तब तब न जमानेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कल्प समाप्त हो जाते हैं, इसीकिये वह ‘असमाप्त-कल्प’ कहलाता है । ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके ‘विषेशर’-पदपर पहुँचा होते हैं । उनके नाम ये है—

बनन्तस्त्वेव दृक्षमश्च तर्यं त शिवोरामः ।

पक्षेनप्रत्ययेवैकलाद्वापि त्रिमूर्तिः ॥

श्रीकाण्डश्च शिवाण्डी त्र श्रोता विषेशरा हते ।

((१) बनन्त, (२) दृक्षम, (३) शिवोराम, (४) पक्षेनप्रत्यय, (५) पक्षद्वापि, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकाण्ड और (८) शिवाण्डी ।

(२) ‘बनमाह-कल्प’ ये हैं, जिनकी कल्प-राशि अप्ती वर्मास नहीं हुई है । ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर ‘मन्म’ वर्मप दे देता है । कर्म ना शरीरसे रहित

इन पांशोंसे मुक्त होनेके लिये जीवको आचार्यसे मन्त्राराधनकी दीक्षा केनी होती है । वह दीक्षा दो प्रकारकी किंतु मल्लकी पाशमें बैठे हुए जीवात्मा ही 'मस्त' है और इनकी संख्या सात करोड़ है । ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं । 'तत्त्व-प्रकाश' नामक अन्यमें उपर्युक्त विषयके संग्रहालय ऐसे प्रकार हैं—

पश्चिमविषयाः प्रोक्ता विशालप्रकाशकाली सकलः ।
मल्लकुलस्तत्त्वाभ्यो मल्लकुलमयुतो द्वितीयः स्यात् ॥
मल्लमात्राकर्मयुतः सकलमयुतो द्वितीयः भवेदादः ।
आदः समाप्तकुलोऽस्मापकुलो द्वितीयः स्यात् ॥
आदा ननु गृह शिवो विचेश्वरे नियोजयत्यप्त्यौ ।
मन्त्राश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोत्याः सप्त ॥

'प्रस्त्वाकल' भी दो प्रकारके होते हैं—'पव्याप्तपाशक्षय' और 'अपव्याप्तपाशक्षय' । (१) जिनके मल तथा कर्मकर्त्ता दोनों पांशोंका परिपाक हो गया है, वे 'पव्याप्तपाशक्षय' होकर मोक्षकी प्राप्ति हो जाते हैं । (२) 'अपव्याप्तपाशक्षय' जीव पुर्यष्टकमय ऐसे चारण करके नाना प्रकारके कलोंको करते हुए जाना योनियोंमें भूमा करते हैं ।

'सकल' जीवोंके भी दो है—'पव्याप्तकुल' भेदभाव 'अपव्याप्त' । (१) जैसे-जैसे जीवात्माके मल, कर्म तथा माया—इन पांशोंका परिपाक बढ़ना जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते जाते हैं । तब वे पव्याप्तकुल जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं । जात करीब मल्लकी जीव-शिवेशोंके, जिनका कल्पर बर्णन हो चुका है, अधिकारी ये ही १२८ मन्त्रेश्वर जीव हैं । (२) 'अपव्याप्तकुल' जीव भवकूपमें गिरते हैं ।

नारदपुराणमें शैव-महानन्दकी मान्यताके अनुसार पांच प्रकारके पाश बताये गये हैं—(१) मलज, (२) कर्मज, (३) मायेय (मायाकल्प), (४) तिरोधान—शक्तिज्ञ और (५) विन्दुज । आशुनिक शैव दर्शनमें चार प्रकारके पांशोंका उल्लेख है—मल, रोध, कर्म तथा माया । रोध-शक्ति वा तिरोधान-शक्ति एक ही वस्तु है । 'विन्दु' मायाकल्प है । वह 'शिवतत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है । यथापि शिवपद-प्रासिरूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विचेश्वरादि-पदकी आपसिमें परम हेतु होनेके कारण विन्दु-शक्तिको 'अपरा-मुक्ति' कहा गया है । अतः इसे आशुनिक शैव दर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है । इसकिये वहाँ वैष चार पांशों (मल, कर्म, रोध और माया—) के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(५) जो आत्माके शाश्वतिक शान-तथा किया-शक्तिको उक के, वह 'मल' (जार्ज लक्ष्मा)

मानी गयी है—एक 'निराधारा' और दूसरी 'साधारा' । उपर्युक्त तीन पश्चांत्रोंमेंसे विश्वानाकल और प्रलयाकल—इन दो पश्चांत्रोंके लिये निराधारा दीक्षा बतायी गयी है और सकल पश्चाके लिये साधारा । आचार्यकी अपेक्षा न रखकर शम्भुद्वारा ही तीव्र शक्तिपात्र करके जो दीक्षा दी जाती है, वह 'निराधारा' कही गयी है । आचार्यके शारीरमें स्थित होकर भगवान् शक्ति अपनी मन्दा, तीव्रा आदि मेदवाली शक्तिसे जिस दीक्षाका राम्पादन करते हैं, वह 'साधारा' कहलाती है । यह साधारा दीक्षा सबीजा, निर्बीजा, मार्धिकारा और अनार्धिकारा—इन मेदोंके द्वारा

कहलाता है । यह भल आश्वासनपक्षा केवल आचार्यादन ही नहीं करता, किंतु जीवात्माको बलपूर्वक दुर्भमर्ममें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है । (२) प्रयेक वस्तुमें जो सा नव्य है, उसे 'शिवशक्ति' कहते हैं । जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति । यह शक्ति जैसे परायमें रहती है, वैसा ही भला-भुरा स्वरूप धारण कर लेनी है; अनः पाशमें रहती हुई वह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेनी है, तब वह 'रोध-शक्ति' या 'निरोधान-पाश' कहलाती है । इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा भानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है; आत्माके उदारका प्रयत्न नहीं करता । (३) फलकी शक्तिसे किंतु हुए 'धर्मोदयम्' कृप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं । (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है नवा सुहिके समय जिसमें सब कुछ ठटपञ्च हो जाता है, वह 'भायापाश' है । अनः इन पांशोंमें वैष दुष्ट जब तत्त्वानद्वारा इनका उच्छेद कर लाता है, तभी वह 'परम शिवतत्त्व' अर्थात् 'पश्चापनि-पद'को प्राप्त होता है ।

दीक्षा ही शिवत्व-प्राप्तिका साधन है । सर्वानुग्राहक परमेश्वर ही आचार्य-शरीरमें स्थित होकर दीक्षाकरणद्वारा जीवको परम शिवतत्त्वकी प्राप्ति करते हैं; ऐसा ही कहा भी है—

‘दोज्जराति परे नव्ये स दीक्षणाऽऽवार्द्धूतिष्यः ।’

'अपव्याप्तपाशक्षय मल्लकुल' जीव तथा 'अपव्याप्तकुल सकल' जीव जिस पुर्यष्टक देहको धारण करते हैं, वह पश्चभूत तथा मन, शुद्धि, अहंकार—इन भाठ तत्त्वोंसे युक्त होनेके कारण 'पुर्यष्टक' कहलाता है । पुर्यष्टक शरीर छत्तीस तत्त्वोंसे युक्त होता है । अन्यतोंके साधनभूत कला, काल, नियति, विषा, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पश्चभूत, पश्चतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पांच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं । अपव्याप्तपाशक्षय जीवोंमें जो अपिहु पुण्यात्मा है, उन्हें परम दण्डलु भगवान् भगवेश्वर या कोकण बना देते हैं ।

जिस तरह चार प्रकारकी हो जाती है, वह बताया जाता है ॥ ४-७३ ॥

१. जारदापटकमें दीक्षाके चार मैदोक्ष विस्तारसे वर्णन है। वे चार मैद हैं—कियावती, बर्गभी, कलावती और वेषभी। कियावती दीक्षामें कर्मकाण्डका पूरा उपयोग होता है। स्नान, संच्छा, प्राणायाम, शूलशुद्धि, व्यास, घ्यान, पूजा, शङ्ख-सापन आदिसे लैवर शास्त्रोंके पद्धतिसे इवन-पर्यन्त कर्म किये जाते हैं। पठन्धाके शोधन-क्रममें पृथक्-पृथक् आहुति देकर, शिवमें विलीन करके पुनः सृष्टि-क्रमसे शिवका नैतन्ययोग सम्पादित होता है। शुरु शिष्यसे अपनी एकताका अनुग्रह करता हुआ आत्म-विद्याका दान करता है। गुरु-भन्न प्राप्त करके शिष्य बन्ध-बन्ध हो जाता है।

‘बर्णभी दीक्षा’ व्यासरूपा है। अकारादि बर्ण प्रकृति-पुरुपात्मक है। शरीर भी प्रकृति-पुरुषात्मक होनेके कारण बर्णात्मक हो जाता है। इसलिये पहले समस्त शरीरमें कणोंका सविधि व्यास विद्या जाना है। ओशुरुदेव अपने अक्षर और इच्छाशक्तिसे उन कणोंको प्रतिलोभ-विधिसे अर्थात् संदार-क्रमसे विलीन कर देते हैं। यह किया संपन्न होते ही शिवका शरीर दिव्य हो जाता है और उसके द्वारा वह परमात्मामें मिला दिया जाता है। ऐसी सिंति होनेके पश्चात् श्रीशुरुदेव पुनः शिवको पृथक् द्वारके दिव्य शरीरको सृष्टि-क्रमसे रनना जारते हैं। शिवमें परमानन्दसमूह दिव्यभावका विकास होता है और वह छलकृत्य हो जाता है।

कलावती दीक्षा’की विधि निम्नलिखित है—मनुष्यके शरीरमें पाँच प्रकारकी शक्तियां प्रतिष्ठित हैं। पैरके तलवेसे जानु-पर्यन्त ‘प्रतिष्ठा-शक्ति’ है, जानुसे नाभि-पर्यन्त ‘प्रतिष्ठा-शक्ति’ है, नाभिसे कण्ठ पर्यन्त ‘विद्या शक्ति’ है, कण्ठसे लगाट-पर्यन्त ‘शान्ति-शक्ति’ है, लगाटसे शिवा-पर्यन्त ‘शान्त्यतीतकला-शक्ति’ है। संदार-क्रमसे पहलीको दूसरीमें, दूसरीको तीसरीमें और अनितम कलाओं शिवमें संयुक्त करके शिव शिवरूप कर दिया जाता है। पुनः सृष्टि-क्रमसे इसका विस्तार किया जाता है और शिव दिव्य भावको प्राप्त होता है।

‘वेषभी दीक्षा’ बन्धक-नेतृत्व हो रहा है। वह गुरु कृपा करके अपनी शक्तिसे शिवका बन्धकमैद कर रहे हैं, तब इसीको ‘वेषभी दीक्षा’ कहते हैं। गुरु पहले शिवके छः चक्रोंका विनन करते हैं और उन्हें कमज़ोः कुण्डलिनी शक्तिर्थं विलीन करते हैं। छः चक्रोंका विनन विन्दुमें करके तथा विन्दुको कलामें, कलाको नादमें, नादको नादान्तमें, नादान्तको उच्चनीमें, उच्चनीको

समर्थ पुरुषोंको जो समयाचारसे युक्त दीक्षा ही जाती है, उसे ‘सबीजा’ कहते हैं और असमर्थ पुरुषोंको दी जानेवाली समयाचारात्म्य दीक्षा ‘निर्बीजा’ कही गयी है ॥ ८४ ॥

जिस दीक्षासे साधक और आचार्यको नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्मोंमें अधिकार प्राप्त होता है, वह ‘साधिकारा दीक्षा’ है। ‘निर्बीजा दीक्षा’में दीक्षित होनेवाले लोगोंको तथा समयाचारकी दीक्षा लेनेवाले साधारण शिष्य एवं पुत्रक-संज्ञक शिष्यविशेषको नित्यकर्म-मात्रके अधिकारी होनेके कारण जो दीक्षा ही जाती है, वह ‘निराधिकारा दीक्षा’ कहलाती है। साधारा और निराधारा भेदसे जो दीक्षाके दो मैद बताएँ गये हैं, उनमें प्रत्येकके निम्नाङ्कित दो रूप (या मैद) और होते हैं—एक तो ‘कियावती’ कही गयी है, जिसमें कर्मकाण्डकी विभिन्न कुण्ड और मण्डलकी शापना एवं पूजा की जाती है। दूसरी ‘शानवती दीक्षा’ है, जो बाल सामग्रीमें नहीं, मानविक व्यापारग्रामसे साध्य है ॥ ९-१२ ॥

इस प्रकार अधिकारप्राप्त आचार्यद्वारा दीक्षा-कर्मका समादान होता है ॥ स्कन्द । गुरुको चाहिये कि वह नित्यकर्मका विधिवत् अनुष्ठान करके शिवका दीक्षाकर्म सम्पूर्ण करे । प्रणवके जपपूर्वक गुरु अपने कर-कमलमें विश्वमुखमें और तत्पञ्चात् गुमुखमें संयुक्त करके अपने साथ ही उस शक्तिको परमेश्वरमें मिला देते हैं। गुरुको इस कृपासे शिवका पाद छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसे दिव्य शोधकी प्राप्ति होती है और वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इस प्रवार यह ‘बोधमयी दीक्षा’ सम्पूर्ण होती है ।

* सोमशम्बुकी ‘कर्मकाण्ड-क्रमावली’ (श्लोकद १३-६२०३)में ‘इत्यं लब्धविकारेण दीक्षानामेण साध्यते ।’ इस दंतिके बाद वो श्वेत और अधिक उपलब्ध होते हैं, जो इस प्रकार है—

म च सदेशसम्भूतः श्वर्द्धिः सुशीलवान् ॥

शानाचारो गुणोपेतः श्वभी शुद्धाशयो वरः ।

देवकालगुणाचारो गुरुभित्समनितः ॥

शिवानुरागनकान् शशी विरक्तश्च प्रशस्यते ।

‘दीक्षाप्राप्त शिव ददि वत्तम देशमें उत्पन्न, सुन्दर शरीरवाला, शाकाभ्यन एवं शीलसे रुपन्न, जानी, सदाचारी, गुणवान्, क्षमाशील, शुद्ध अन्तःकरणरो शुल, झेड, देश-कालोचित गुण और आचारसे शुशोभित, शुक्षमत, शिवधानपरायण तथा विरक्त हो जो कह उनम भाना गया है और उसकी प्रशंसा की जाती है ।’

अथवा जल के द्वारपालोंका पूजन करे । फिर विश्वोंका निवारण करनेके अनन्तर, द्वार-देहलीपर अस्त्रान्यास करके अपने आसनपर बैठे । शालोक विविधे भूतशुद्धि एवं अन्तर्यांग करे । तिळ, चावल, सरसों, कुश, दूर्वाकुर, जौ, दूध और जल—इन सबको एकत्र करके विशेषार्थ दवावे । उसके जलसे समस्त द्रव्यों (पूजन-सामग्रियों) की शुद्धि करे । फिर तिळक सम्बन्धी अपने सम्ब्रदायके मन्त्रसे भालदेशमें तिळक लगावे । फिर पूर्ववत् पूजन, मन्त्र-शोधन तथा पञ्चगव्य-ग्राहण आहि स्वर्व वर्षने चाहिये । क्रमशः लावा, चन्दन, सरसों, भस्म, दूर्वा, अशत, कुश और अन्तमें पुनः शुद्ध लावा—ये सब 'विकिर' (विवरनेयोग्य द्रव्य) कहे गये हैं । इन सब वस्तुओंको एकत्र करके सात बार अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे । अस्त्र-मन्त्रदारा अभिमन्त्रित जलसे इनका प्रोत्स्थन करके फिर कवच-मन्त्र (हुम्) से अवगुण्ठन करके यह भावना करे कि ये विश्राम्भका निवारण करनेवाले नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं ॥१३-१४॥

तदनन्तर प्रादेश्यमात्र लंबे कुशके छाँसीस दलसे वेणीरूप बोधमय उत्तम खड़ बनाकर उसे सात बार जपते हुए शिव मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे । फिर उसे शिवस्त्रप सानकर भावनाद्वारा अपने हृदयमें स्थापित करे । साथ ही जगदाधार भगवान् शिवकी जो झाँकी अपनेको अभीष्ट हो, उसी रूपसे उनका व्यान-चिन्तन करके निष्क्रिय परमात्मा शिवका अपने भीतर न्याय करे । तत्पश्चात् यह भावना करे कि ये साक्षात् शिव हैं । फिर सिरपर (मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित) इकेत पराही रखकर अपने द्यारीरको (गन्ध, पुष्प एवं अमूर्खणोंसे) अलंकृत करे । तत्पश्चात् युर अपने दाहिने हाथपर सुग्रन्थ-द्रव्य अथवा कुरुकुमद्वारा मण्डलका निर्माण करे । फिर उसपर निश्चार्दक भगवान् शिवकी पूजा करे । इससे वह 'शिवहस्त' हो जाता है । उस देखस्ती शिवहस्तको शिव-मन्त्रसं अपने मलकपर रखकर वह छन् भावना करे कि ये दिनसे अभिन्न और सबका कली साक्षात् परमात्मा शिव ही है । जब युर ऐसी भावना कर ले, तब वह यशमण्डपमें कर्मोंका साक्षी, कल्याणमें यजका रक्षक, अग्निमें होमका अधिष्ठान, शिष्यमें उगके अशानमय पाशका उच्छेद करनेवाला तथा अन्तरात्मामें अनुग्रहीता—इन पाँच आकारोंमें अभिन्युद्ध इश्वररूप हो जाता है । एव इह भावको अत्यन्त दृढ़तर कर के कि 'वह एवमेश्वर मैं ही हूँ' ॥ १५-१६ ॥

तदनन्तर शानस्त्री खड़ हाथमें लिये युर यशमण्डपके नैऋत्यकोणवाले भागमें उत्तराभिमुख शित हो, अर्ध, जल और पञ्चगव्यसे उस पञ्चाका प्रोक्षण करे । इक्षण आदि अतुष्पथान्त संस्कारोद्धारा उसका संस्कार करे । फिर यशमण्डपमें निवरनेदोष यूनोंका नस्तुओंको विवेरकर कुशकी दूँचीसे उन सबको नटार के और उन्हें ईशानकोणमें स्थापित वार्षीनी (जलाश्रव)में आसनके लिये रख दे । नैऋत्यकोणमें वास्तुदेवताओंका और परिवद द्वारपर लक्ष्मीका पूजन करे । साथ ही यह भावना करे कि वे सण्डपस्त्रपिणी लक्ष्मी देवी इन्होंके प्रणालसे यशमण्डपको परिपूर्ण कर रही हैं । इस प्रकार यश एवं आवाहन कर, हृदय-मन्त्र 'नमः' के हारा अथोत् 'क्लेश्यं नमः ।'—इस मन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये । इसके बाद ईशानकोणमें सप्तशान्त्यपर स्थापित किये हुए वस्त्रवेदित पञ्चरत्नयुक्त एवं जलसे परिपूर्ण परिचमाभिमुख कलशादर भगवान् शंकरका पूजन करे । फिर उस कलशके दक्षिण भागमें सिंहपर विराजमान परिचमाभिमुखी दलि, खस्त्रपिणी वार्षीनीका पूजन करे ॥ २३-२४ ॥

तदनन्तर पूर्व आदि दिशादांश्य इन्द्र अर्द्ध दिक्षुपालोंका और हृषीरे प्रत्यक्ष एवं शिव-मन्त्रसे उत्तराभिमुख दृश्य एवं रुपरूप देवताओं अस्त्रनपर विवरण यात् हैं तथा अपने अपने लाहीनों और आयुधोंसे संयुक्त हैं—ऐसी भावना करके उनके नामोंके अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर उन्होंने उनकी पूजा करे । यथा—'हृषीरात् नमः ।' 'दिक्षावं नमः ।' 'इत्यादि ।' पहले पूर्वोक्त वार्षीनीको भजीभाँति हाथमें ले, उसे कलशके मामगोली औरसे के जाकर प्रदक्षिणाक्रमान्तरे उसके चारों ओर छुमावे और उसे लटकी अविच्छिन्न धारा गिराता रहे । साथ ही मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए लोकपालोंको भगवान् शिवकी निमाङ्कित आशा सुनाव—'लोकपालगण ।' आपलोग यथागति लावनीके साथ इन यशकी रक्षा करें । दों अद्देश्य हैं, नीवे एक कलश रखकर उसके ऊपर उस वार्षीनीको रथापित दूर करे । तत्पश्चात् सुस्थिर आसनवाले कलशादर भगवान् शंकरका साङ्ग पूजन करे । इसके बाद कला आदि घण्टवाका न्यास करके शोधन करे और वार्षीनीमें अलंकृती पूजा करे ॥ २५-२६ ॥

पूजाके मन्त्र इह प्रकार हैं—‘ॐ ह; अस्त्रासनाय हुं फट् नमः ।’ ‘ॐ अस्त्रमूर्तये हुं फट् नमः ।’ ‘ॐ हुं फट् यशमण्डपस्त्राय नमः ।’ ‘ॐ अस्त्रहस्तये हुं फट् नमः ।’ ‘ॐ शी

किरसे हूँ कट् नमः।' 'कैं यं शिवायै हूँ कट् नमः।' 'कैं हुँ
कवचाय हूँ कट् नमः।' 'कैं हूँ कट् अद्वाय हूँ कट् नमः।'
इसके बाद पाण्पताङ्के स्वरूपका इस प्रकार चित्तन करे—
'उनके चार मुख हैं। प्रत्येक मुखमें दाढ़े हैं। उनके हाथों-
में शक्ति, मुद्रा, लक्ष और त्रिशूल हैं तथा उनकी प्रभा
करोड़ों स्त्रीयोंके समान है।' इस प्रकार ध्यान करके छिङ्ग-
मुद्राके प्रदर्शनद्वारा भगविज्ञका समायोग करे। हृदय-
मन्त्र (नमः) का उज्जारण करते हुए अङ्गुष्ठसे कलशका
सर्व करे और मुहीमें खज्जरूपिणी वार्षीनीका। भोग आंर
मोक्षकी सिद्धिके लिये पहले मुहीमें वार्षीनीका ही सर्व
करना चाहिये। किर कलशके मुखभागकी रक्षाके लिये
उसपर पूर्वोक्त शान-खज्ज समर्पित करे। साथ ही भूल-
मन्त्रका पक्क सौ आठ बार जप करके गह जप भी कलशको
निवेदन कर दे। उसके दशमांशका जप करके वार्षीनीमें
उमका अर्पण करे। लदनन्तर भगवान्से रक्षाके लिये
प्रार्थना करे—'सम्पूर्ण यदोंको धारण करनेवाले भगवान्
जगद्धाय ! दडे यससे इस यज्ञमन्दिरका निर्माण किया
गया है ? कृपया आप इसकी रक्षा करें।' ३५—४०॥

इसके बाद वायव्यकोणमें प्रणवमय आसनपर लिराजमान खार भुजाधारी गणेशजीका पूजन करे । तत्पश्चात् वेदीपर शिवका पूजन करके अर्थं हाथमें लिये साधक यशकुण्डके पास जाग । वहाँ बैठकर मन्त्र-देवताओं तुसिके लिये बाये भागमें अर्थ्य, गन्ध और घृत आदिको तथा दाहिने भागमें समिष्ठा, कुशा एवं तिल आदिको रखकर कुण्ड, अग्नि, शुक् तथा घृत आदिका पूर्णवत् संस्कार करके, हृदयमें ऊर्जमुख अग्निकी प्रधानताका चिन्तन करे तथा अग्निमें भगवान् शिवका पूजन करे । फिर गुरु अपने शरीरमें, हित-कलशमें, मण्डलमें, अग्नि और शिव्यकी देहमें सृष्टि-न्यायकी रीतिसे न्यायउक्तमका सम्मादन करके अस्वाका विभिन्नरूपक शोधन करनेके पश्चात् कुण्डकी लंबाई-चौड़ाईके अनुसार ही अग्निदेवके मुखकी लंबाई-चौड़ाईका चिन्तन करके अग्निजिह्वाओंके नाम-नन्दके अन्तमें “मः” (एवं “वाहा ”) बोलकर अपीष वस्तुकी आद्यतियों देते हुए अग्निदेवको तृस करे । अग्निकी सात जिह्वाओंके सात बीज हैं । हमके लिये उनका प्रत्यय दिया जाता है ॥ ४१—४५ ॥

अरहित अन्तिम दो वर्षोंमें सभा (अर्धात् सात)
जाहर यदि रक्खार और छठे स्तर (छ) पर आरूढ़ हों

और उनके भी ऊपर चक्रविन्दुरूप शिखा हो तो वे ही
अग्निकी सात जिहाओंके कमशः सात बोज-मन्त्र हैं ।
(यथा—बूँ लूँ बूँ थूँ पूँ दूँ हूँ) * अग्निकी सात
जिहाओंके नाम इस प्रकार है—हिरण्या, कनका, रक्ता;
कृष्णा, सुभासा, अतिरक्ता तथा बहुरूपा । ईशान, पूर्व,
अग्नि, नैऋत्य, पश्चिम, बायव्य तथा मध्य दिशामें कमशः
इनके मुख हैं । (अर्थात् एक जिभुजके ऊपर दूसरा जिभुज
बनानेसे जो छः कोण बनते हैं, वे कमशः ईशान, पूर्व,
अग्नि, नैऋत्य, पश्चिम तथा बायुकोणमें स्थित होते हैं ।
अग्निकी हिरण्या आदि छः जिहाओंको इन्हीं छः कोणोंमें
स्थापित करें तथा अग्निम जिहा 'बहुरूपा'को मध्यमें)

शान्तिक एवं पौष्टिक कर्ममें सीर आदि मधुर पदार्थों-द्वारा होम करे। परंतु अभिचार कर्ममें सरसोंकी खली, सूच, जौकी कॉजी, नमक, राई, मढ़ा, कहड़ा तेल, कॉटै तथा टेढ़ी-मेढ़ी सभिचाओंद्वारा कोषपूर्वक भाष्याणु (भाष्य-मन्त्र) से धृण करे। कदम्बकी कलिकाओंद्वारा होम

* ये साम दीज अग्निको 'हिरण्या' आदि सात जिहाओके नामके आदि में क्यागे जाते हैं और अन्तमें 'नमः' पद घोषकर नाम-भवतोसे ही उनकी पूजा की जाती है। यथा—ॐ शूँ हिरण्यायै नमः । शूँ कर्णकायै नमः । ॐ रत्नायै नमः । ॐ कृष्णायै नमः । ॐ सुग्रीवायै नमः । ॐ अतिरिक्तायै नमः । ॐ वदुरुपायै नमः ।

† सोमशम्भुने इन जिहायोंके अरूप तथा कामनामेत्री
विभिन्न कलाओं इनके उपयोगके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

हिरण्या तपहेनाभा कलका वज्रसुप्रभा ।
 त्स्त्रोदीताश्वप्रस्था द्वृष्टा नीरमणिप्रभा ॥ ६६४ ॥
 शुभा मौक्षिकदोत्तरितद्य पद्मागवतः ।
 चम्द्रकालानश्वरचम्द्रप्रभेव द्वुरुपिणी ॥ ६६५ ॥
 कं सु कामनेदेव क्रमादासामुरीर्थे ।
 वहशाकर्कम्पयोराका धनका स्तम्भने रिहोः ॥ ६६६ ॥
 विषेषत्तेष्वने रक्षा द्वृष्टा मारणकर्मणि ।
 शुभभा शान्तिके प्रदेष सुरस्त्रेष्वादने नवा ॥ ६६७ ॥
 एकैव द्वुरुपिणी शु सर्वकान तत्त्वादा ।
 ‘क्रमाक्षय-क्रमावली’

५ सोनभुज्यादेष्व अक्षये इति त्रिंशति वर्ष एव पक्ष द्वितीय अधिक ५-
लिथापरवल्लभाम् चतुर्थुपुरुषं पुरम् ।
आद्या प्रथमित्यस्मिन्द्वयात् साप्ततीत्याः ॥

करनेसे निश्चय ही यज्ञिणी सिद्ध हो जाती है । वृद्धीकरण और आकर्षणकी सिद्धिके लिये बन्धूक (दुपहरिया) और पलाशके फूलोंका हवन करना चाहिये । राज्यव्याख्यामें लिये विस्वफलका और लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये पाटल (पाइर) एवं चम्पाके फूलोंका होम करे । चक्रवर्तीं समाटका वद पानेके लिये कमलोंका तथा समस्तिके लिये भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका होम करे । दूर्वाका हवन किया जाय तो उससे व्याधियोंका नाश होता है । समस्त जीवोंको वशमें करनेके लिये विद्वान् पुरुष प्रियकृत तथा कदलीके पुष्पोंका हवन करे । आमके पत्तोंका होम अचरका नाशक होता है ॥ ४८—५२ ॥

भृत्युज्य देवता वा मन्त्रका उपासक मृत्युविजयी होता है । तिलका होम करनेसे अम्बुदयकी प्राप्ति होती है । रुद्रशान्ति समस्त दोषोंकी शान्ति करनेवाली होती है । वे अब प्रस्तुत प्रसंगको पुनः प्रारम्भ करते हैं ॥ ५३ ॥

‘साधक-शिरोमणिको चाहिये कि वह ‘शिवावर-पट’ की शासिदे लिये कपूर, अगुर और गुण्डसे अथवा कमलके केसरोंसे हवन करे ।’

* इस प्रसंगमें सोभासन्मुने कुछ अधिक प्रयोग लिखे हैं ।
उनका कथन है कि—

विषमज्वरनाशाय चूतपत्राभिं होमयेत् ।
भूरेन सह सार्वोणि वृत्युज्यानि ज्वारिणः ॥
ॐ असुकस्य ज्वरं नाशय ज्वं सः वैष्ट ।
अले बृणमभ्यर्थ्य वृद्धार्थ्य अशन्युतम् ॥
तिलन् वाङ्गमन्त्रेण ज्वर्याद् गुणकेन वा ।
मेषानाप्लविताशेषादिग्नधरणीतिलान् ॥
धात्रेतिलहोमेन शोऽन् पाषुपाणुना ।
ॐ एष पश्च द्वं फट् वेषान् स्फुटादेवतान् द्वं फट् ॥
सर्वोपद्वननाशाय रुद्रशान्त्या तिलादिभिः ।
विषेना यजनं कुर्याद्य प्रस्तुतमुच्यते ॥
(कर्मकाण्ड-कामावली ६७६—६८०)

अर्द्धान् द्विषमज्वरना नाश वरनेके लिये आमके पत्तोंका हवन करे । उन पत्तोंको धोये आर्द्र करके अथवा धोयें बुद्धोकर उनकी आहुति है । पत्तोंकी आहुति धीकी आहुतिके साथ देनी चाहिये । इससे अरथस्त पुरुषको नाश होता है । इस पुरुषका नाम लेकर कहे—‘एष अमुरपुरुषस्य अर्द्रं नाशह ज्वं सः वैष्ट ।’

‘कुषिके निये निनाहित प्रयोग है । उसमें अर्दीसह, वृक्षणदेवका पूजन करके वाणि अथवा गुणक-मन्त्रसे तिलोंकी

एक सौ आठ आहुतियोंसे मूलका और उसके दशांश आहुतियोंसे अङ्गोंका तर्पण करे । यह हवन अथवा तर्पण मूलमन्त्रसे ही करना चाहिये । किर पूर्ववत् पूर्णाहुति है । शिष्योंका दीक्षामें प्रवेश करानेके लिये प्रत्येक शिष्यके निमित्त मूलमन्त्रकांसौ बार जप करना चाहिये । साथ ही दुर्निमित्तोंका निवारण तथा शुभ निमित्तोंकी सिद्धिके लिये मूलमन्त्रसे पूर्ववत् दो सौ आहुतियाँ देनी चाहिये । पहले बताये हुए जो अङ्ग-सम्बन्धी आठ मन्त्र हैं, उनके आदिमें मूल और अन्तमें ‘स्वाहा’ जोड़कर पाठ बारते हुए एक-एक बार तर्पण करे । मूलमन्त्रमें जो बीज हैं, उन्हें ‘शिवा’ (वषट्) से सम्पुर्ण करके अन्तमें ‘हूं फट्’ जोड़कर जप करे तो उससे मन्त्रका दीपन होता है । ‘हूं हूं शिवाय स्वाहा ।’ इत्यादि मन्त्रोंसे तर्पण किया जाता है । इसी प्रकार ‘हूं हूं शिवाय हूं फट् ।’ इत्यादि दीपन-मन्त्र है ॥ ५४—५७२ ॥

तदनन्तर शिव-मन्त्रये अभिमन्त्रित जलसे धोयी हुई बटलोइको कवच-मन्त्रसे अवगुणित करके उसमें रोली-चम्दन आदि लगा दे । किर उसके गलेमें ‘हूं फट्’ मन्त्रसे अभिमन्त्रित उसम कुच और सूज लाँघ दे । इससे चरकी सिद्धि होती है । किर वर्ग आदि चार पाथोंसे युक्त चौकी आदिका आस्तन देकर उसके ऊपर धने हुए अर्धचन्द्राकार मण्डलमें उस बटलोइको रखते तथा उसे आराध्यदेवताकी मूर्ति मानकर उसके ऊपर भावात्मक पुष्पोंसे भगवान् शिवका पूजन करे । अथवा उस बटलोइके मुखको वस्त्रसे बाँध दे और उसपर वाल्पुष्पोंसे शिवा । पूजन करे । इसके बाद पश्चिमामुख रखते हुए चूर्छे के देवत-भालकर शुद्ध करके उसमें अर्द्धाकारनीजका न्यास करे । तत्प्राण् उने कुण्डके दक्षिण भागमें रक्खे और वह भावना करे कि ‘इह चूर्छेका शरीर प्रमोक्षर्ममय है ।’ फिर उसकी शुद्धिके लिये उसके स्पर्शपूर्वक अङ्ग-मन्त्रका जप करे । इसके बाद अङ्ग-मन्त्र

आहुति है । निलके इस होमसे मनुष्य आकाशमें ऐसे भेदोंको खापिन नहीं सकता है, जो सार्वों दिग्नातों तथा इश्वीको वरार्दिके जलमें अङ्गविल करनेमें ममदें हों । किर शीष द्वं पाषुपाण-मन्त्रसे धन मेवोंमें वर्षाकी लिये विदीर्ण करे । मन्त्र इस प्रवार है—‘हूं हूं पश्च द्वं फट् वेषान् स्फुटानिषतान् द्वं फट् ।’

‘मन्त्र द्वं फट् वेषके नाशके लिये रुद्रमन्त्रसे शान्ति-अभियोग करे तथा निल आदिसे विषपूर्वक होम नहीं करे । अब प्रस्तुत विषयका प्रतिपादन करने हैं ।’

(कट्) के जपसे अभिमन्त्रित गायके धीसे मार्जित हुई उस बटलोहैको चूल्हेपर चढ़ावे ॥ ५८—६२३ ॥

उसमें अख-मन्त्रसे गुद किये हुए गोदुषको सौ बार प्रासाद-मन्त्र (हृ) से अभिमन्त्रित करके डाले । फिर उस दूधमें साँवा आदिके चावल छोड़े । उसकी मात्रा इस प्रकार है—एक शिष्यकी दीक्षा-विधिके लिये पाँच पसर चावल डाले और दो-तीन आदि जितने शिष्य बढ़ें, उन सबके लिये क्रमशः एक-एक पसर चावल बढ़ाता जाय । फिर अख-मन्त्रसे आग जलावे एवं कवच-मन्त्र (हुम्) से बटलोहैको ढक दे । साथक पूर्वाभिमुख हो उक्त शिवान्तिमें मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक चक्रको पकावे । जब वह अच्छी तरह सीक्षा जाय, तब वहाँ खुवाको धीसे भरकर स्वाहान्त संहिता-मन्त्रोद्घारा उस चूल्हेमें ही 'तत्समिधार' नामक आहुति दे । तदनन्तर मण्डलमें चक्र-स्थानीको रखकर अख-मन्त्रसे उसपर कुश रख दे । इसके बाद प्रणवसे चूल्हेमें उल्लेखन और हृदय-मन्त्रसे लेयन करके पूर्ववत् 'तत्समिधार'के शानमें 'सीताभिधार' नामक आहुति दे । इस तरह चूल्हा दीतल होता है । सीताभिधार-आहुतिकी विधि यह है कि संहिता मन्त्रोंके अन्तमें 'वौषट्' पद जोड़कर उसके द्वारा कुण्ड-मण्डपके पश्चिम भागमें दर्प आदिके आसनपर प्रत्येक शिष्यके निमित्तने एक-एक आहुति दे । फिर खुक्क-द्वारा सगात-होम करनेके पश्चात् संहिता-मन्त्रसे शुद्धि करे । फिर अन्तमें 'वौषट्' लगे हुए उगी संहिता-मन्त्रद्वारा एक बार चक्र लेकर धेनुमुद्राद्वारा उगका अमृतीकरण करे । इसके बाद बेदीपर उसके द्वारा शान्ति-होम करे ॥ ६३—७०३ ॥

तत्पञ्चात् गुद अपने शिष्योंके लिये, अग्निदेवताके लिये तथा लोकपालोंके लिये धूतसहित भाग नियत करे । वे तीनों भाग समान धीसे युक्त होते हैं । इन एकके नाम-मन्त्रोंके अन्तमें 'नमः' पद ल्पाकर उनके द्वारा उनका भाग अर्पित करे और उसी मन्त्रसे उन्हें आचमनीय निवेदित करे । तदनन्तर मूलमन्त्रसे एक मौ आठ आहुति देकर विधिवत् पूर्णाङ्गुति होम करे । इसके बाद मण्डलके भीतर कुण्डके पूर्वमागमें अथवा शिव एवं कुण्डके मध्यभागमें हृदय मन्त्रसे चक्र-मन्त्रागण आदिके लिये अन्तर्बलि अर्पित करे । फिर शिवका आश्रय ले, उनकी आशा पाकर एकत्वकी भावना करते हुए इस प्रकार चिन्तन करे—‘मैं सर्वशता आदि गुणोंसे युक्त और समस्त अज्ञाओंके ऊपर

विशज्जमान शिव हूँ । यह यशस्वान मेरा अंश है । मैं यक्षका अधिष्ठाता हूँ’ यों अहंकार—शिवसे अपने ऐकात्म्य-बोध—पूर्वक गुरु यशमण्डपसे आहर निकले ॥ ७१—७५३ ॥

फिर अख-मन्त्र (कट्) द्वारा निर्भित मण्डलमें पूर्वाभिमुख उसम कुश विछाकर, उसमें प्रणवमय आखनकी भावना करके, उसके ऊपर स्तान किये हुए शिष्यको विठावे । उस समय शिष्यको श्वेत वस्त्र और श्वेत उत्तरीय धारण किये रहना चाहिये । यदि वह मुक्तिका इच्छुक हो तो उसका मुख उत्तर दिशाकी ओर होना चाहिये और यदि वह भोगका अभिकाषी हो तो उसे पूर्वाभिमुख विठाना चाहिये । शिष्यके शारीरका धूटनोंसे ऊपरका ही भाग उस प्रणवासनपर स्थित रहना चाहिये, नीचेका भाग नहीं । इस प्रकार बैठे हुए शिष्यकी ओर गुरु पूर्वाभिमुख होकर बैठे । मोक्षरूपी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये शिष्यके पैरोंसे लेकर शिखातकके अङ्गोंका क्रमशः निरीक्षण करना चाहिये और यदि भोगरूपी प्रयोजनकी सिद्धि अभीष्ट हो तो इसके विपरीत क्रमसे शिष्यके अङ्गोंपर हृषिणत करना उचित है, अर्थात् उस दशामें शिखासे लेकर पैरोंतकके अङ्गोंका क्रमशः निरीक्षण करना चाहिये ॥ उस समय गुरुकी दृष्टिमें शिष्यके प्रति कृपा-प्रसाद भरा हो और वह दृष्टि शिष्यके समक्ष शिवके ज्योतिर्मय स्वरूपको अनावृतलूपसे अभिव्यक्त कर रही हो । इसके बाद अख-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके मन्त्राख्य-स्तानका कार्य सम्पन्न करे (प्रोक्षण-मन्त्रसे ही यह स्तान सम्पन्न हो जाता है) । तदनन्तर विज्ञोकी धान्ति और पांगोंके नाशके लिये भस्म-स्तान करावे । इसकी विधि यों है—अख-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित भस्म लेकर उसके द्वारा शिष्यको सृष्टि संहार-योगसे ताडित करे (अर्थात् ऊपरसे नीचे तथा नीचेसे ऊपरतक अनुलोम-विलोम-क्रमसे उसके ऊपर भस्म छिड़के) ॥ ७६—८० ॥

फिर सकलीकरणके लिये पूर्ववत् अख-जलमें शिष्यका प्रोक्षण करके उसकी नाभिसे ऊपरके भागमें अख-मन्त्रका उच्चारण करते हुए कुशाग्रसे मार्जन करे और हृदय-मन्त्रका उच्चारण करके पांगोंके नाशके लिये पूर्वोंक कुशोंके मूल भागसे नाभिके नीचेके अङ्गोंका स्पर्श करे । साथ ही समस्त

* सोमशम्बुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमावली' इलोक ७०४ में शृणितका काम इसके विपरीत है । वहाँ 'मूलौ भुक्तौ विलोमनः' के स्थानमें 'भुक्तौ मुच्यै विलोमनः' पाठ है ।

पश्चोक्ते दो दूष करनेके लिये पुनः अस्त्रमन्त्रसे उन्हीं कुदौं द्वारा यथोक्तरूपसे मार्जन एवं स्पर्श करे । तत्सच्चात् शिष्यके शरीरमें आसनसहित साङ्ग-शिवका न्यास करे । न्यासके पश्चात् शिवकी भावनासे ही पुष्प आदि द्वारा उसका पूजन करे । इसके बाद नेत्र-मन्त्र (बौघट) अथवा हृदय-मन्त्र (नमः) से शिष्यके दोनों नेत्रोंमें इवेत, कोरदार एवं अभिमन्त्रित वस्त्रसे पड़ी बाँध दे और प्रदक्षिण-क्रमसे उसको शिवके दक्षिण पाशवर्णमें ले जाय । वहाँ पहुत्य (छहों अव्याख्याओंसे ऊपर उठा हुआ अथवा उन छहोंमें उत्तम) आसन देकर यथोचित रीतिसे शिष्यको उग्नपर विठाये ॥ ८१—८४३ ॥

संहार-मुद्राद्वारा शिवमूर्तिसे एकीभूत अपने-आपको उसके हृदय-कमलमें अवश्वद करके उसका काय-शोधन करे । तत्पश्चात् न्यास करके उसकी पूजा करे । पूर्वाभिमुख शिष्यके मस्तकापर मूलमन्त्रसे शिवहस्त रखना चाहिये, जो कह एवं ईशका पद प्रदान करनेवाला है । इसके बाद शिव-मन्त्रसे शिष्यके हाथमें शिवकी सेवाकी प्राप्तिके उपायवस्त्रपुष्प दे और उसे शिवपर ही चढ़वावे । तदनन्तर गुरु उसके नेत्रोंमें बँधे हुए वस्त्रको हटाकर उसके लिये शिवदेवगणाङ्कित

इस प्रकार आदि आनेय महापुण्यमें 'समय-दीक्षाकी योग्यताके आपादक-विचारका वर्णन' नामक इक्ष्यासीर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

व्यासीर्वाँ अध्याय

समय-दीक्षाके अन्तर्गत संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन

भगवान् शिव कहते हैं—षडानन ! अब मैं संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन करूँगा, सुनो—अग्निमें स्त्रिय महेश्वरके शिवा-शिवमय (अर्धनारीश्वर) रूपका अपने हृदयमें आवाहन करे । शिव और शिवा दोनों एक शरीरमें ही परस्पर सटे हुए हैं—इस प्रकार च्यानद्वारा देखकर उनका पूजन करके हृदय-मन्त्रसे संतर्पण करे । फिर उनके संनिधानके लिये हृदय-मन्त्रसे ही अग्निमें पाँच आहुतियाँ दे । तदनन्तर अस्त्र मन्त्रसे अभिमन्त्रित पुष्पद्वारा शिष्यके हृदयमें ताइना दे, अर्थात् उसके वक्षपर उस पूलको फेंके । फिर उसके भीतर प्रकाशमान नक्षत्रकी आङ्कुरायुक्त रेचक प्राणायामके योगसे शिष्यके हृदयमें

खान, मन्त्र, नाम आदिकी उद्घावना करे, अथवा अपनी हङ्गासे ही ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमदः नामकरण करे ॥ ८५—८८३ ॥

शिव-कलश तथा वार्षीनीको प्रणाम करवाकर अग्निके समीप अपने दाहिने आग्नपर पूर्ववत् उत्तराभिमुख शिष्यको बिठाने और यह भावना करे कि 'शिष्यके शरीरसे सुषुम्णा निकलकर मेरे शरीरमें चिलीन हो गयी है ।' स्कन्द ! इसके बाद मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित दर्ढ लेकर उसके अग्रभागको तो शिष्यके दाहिने हाथमें रखें और मूलभागको अपनी जंघापर । अथवा अग्रभागको ही अपनी जंघापर रखें और मूलभागको शिष्यके दाहिने हाथमें ॥ ८९—९१३ ॥

शिव-मन्त्रद्वारा रेचक प्राणायामकी क्रिया करते हुए शिष्यके हृदयमें प्रवेशकी भावना करके पुनः उसी मन्त्रसे पूरक प्राणायामद्वारा अपने हृदयकाशमें लौट आनेकी भावना करे । फिर शिवाग्निसे हसी तरह नाड़ी-संधान करके उसके संनिधानके लिये हृदय-मन्त्रसे तीन आहुतियाँ दे । शिवहस्तकी रिंगताके लिये मूलमन्त्रसे एक सौ आहुतियोंका हवन करे । इस प्रकार करनेसे शिष्य समय-दीक्षामें संस्कारके योग्य हो जाता है ॥ ९२—९५ ॥

भावनाद्वारा प्रदेश करके संहारणीमुद्राद्वारा उस जीव-चैतन्यको वहाँसे सर्वीचकर पूरक प्राणायामके योगसे उसे अपने हृदयमें स्थापित करे ॥ १—४ ॥

तदनन्तर 'उद्धव' नामक मुद्राका प्रदर्शन करके दृत्सम्पुटित आस्त्रमन्त्रका उच्चारण करते हुए रेचक प्राणायामके महयोगसे उसका वागीश्वरी देवीकी योगिमें भावनाद्वारा आशन करे । उक्त मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—ॐ हां हां हामामने नमः । इसके बाद अत्यन्त प्रचलित एवं धूमरहित अग्निमें अभीष्ट-सिद्धिके लिये आहुति दे । अप्रज्वलित तथा धूमयुक्त अग्निमें क्रिया गया होम सप्तश्ल नहीं होता है । यदि अग्निकी लपटें दक्षिणाकर्त्त उठ रही हों, उससे उत्तम गन्ध प्रकट

हो रही हो तथा वह अग्नि सुखिष्ठ प्रतीत होती हो तो उसे भेष बताया गया है। इसके विपरीत जिस अग्निसे चिनगारियाँ छूटती हों तथा जिसकी लपट धरतीको ही चूम रही हो, उसे उत्तम नहीं कहा गया है॥ ५-८॥

इस प्रकारके चिह्नोंसे शिष्यके पापको जानकर उसका इच्छन कर दे, अथवा पाप-भक्षण-निभितक होमसे उस पापको जला डाले। फिर नूतन रूपसे उसमें द्विजत्वकी प्राप्ति, रुद्रांशकी भावना, आहार और जीवकी शुद्धि, गर्भाधान, गर्भ-स्थिति (पुंसवन), सीमन्तोज्जयन, जातकर्म तथा नामकरणके लिये पृथक्-पृथक् मूलमन्त्रसे एक यौ पांच-पाँच आहुतियाँ दे तथा चूडावर्म आदिके लिये इनकी अपेक्षा दशमांश आहुतियाँ प्रदान करे। इस प्रकार जिसका वन्धन निश्चिल हो गया है, उस जीवात्माके भीतर जो शक्तिका उत्कर्ष होता है, वही उसके रुद्रपुन

* इस श्लोकके बाद सोमशम्भुकी 'कर्मकाङ्ग-क्रमावलीमें तीन श्लोक अधिक उपलब्ध होते हैं, जिनमें शिष्यके पाप-विशेषको जाननेके लिये शिष्यके लक्षण दिये गये हैं। वे श्लोक इस प्रकार है—

अन्तेश्वरसिद्धिं गां जीवीश्वरादिनश्चार्णः ।
विष्णुगन्वे स भूतां वत्तां तुष्टवस्तुः ॥
मुरापो तुष्टवारा च गोवन्व क्रतवाश्वः ।
कृष्णज्ञवी शशगन्वे च गर्भस्तुविवश्वः ॥
असति जीववे वहः कम्पते हेमहर्तारे ।
वदे रुद्रति वालस्य निरतेजा गर्भवातके ॥

'इनीष अग्निके लक्षणोंसे शिष्याकार किये गये पाप-विशेषको जानना चाहिये। यदि उस अग्निसे 'शिष्यकी-सी दुर्गम्ब प्रकट होती हो तो यह जानना चाहिये कि यह शिष्य भूमिहत्या, वृष्णिहत्यारा, तुष्टवत्सीगमो, तारावो, तुष्टवाशी, गोवन्व करनेवाला तथा कृतव्य रक्षा है। यदे अग्नि द्वाग हो और उससे मुर्देकी-सी बदू आ रही हो तो उस शिष्यको गर्भ-हत्यारा और त्वामिताती समझना चाहिये। यदि शिष्यमें जीवधजनिः पाप हो तो उसके आकृति देते सभय आगकी लपट सब खोर बकर होती है और यदि वह तुष्टवंशकी चोरी करनेवाला है तो उससे अधिदेवमें लक्ष्यन होने लगता है। यदि शिष्यने वाल-हत्याका पाप किया है तो अग्निमें किसी वसुके झटनेकी-सी जावाज होती है। यदि शिष्य गर्भवाती है तो उसके संगिहित होनेसे जाग निरतेज हो जाती है।'

होनेमें निर्मित बनकर 'गर्भाधान' कहलाता है। स्वतन्त्रवा-पूर्वक उसमें जो आत्मगुणोंकी अभिव्यक्ति होती है, उसीको यहो 'पुंसवन' माना गया है। माया और आत्मा—दोनों एक-दूसरेमें पृथक् हैं, इस प्रकार जो विवेक-व्याज उत्पन्न होता है, उसीका नाम यहो 'सीमन्तोज्जयन' है॥ ९-१३॥

शिव आदि शुद्ध सहस्राको स्वीकार करना 'जन्म' माना गया है। मुक्तमें शिवत्व है अथवा मैं शिव हूँ, इस प्रकार जो ग्रोध होता है, वही शिवत्वके योग्य शिष्यका 'ज्ञामकरण' है। संहार-मुद्रासे प्रकाशमान अग्निकरणके समान प्रतीत होनेवाले जीवात्माको लेकर अपने हृदय-कमलमें स्थापित करे। तदनन्तर कुम्भक प्राणायामके योग-पूर्वक मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस समय हृदयके भीतर शक्ति और शिवकी समरपताका समादान करे॥ १४-१६॥

ब्रह्म आदि कारणोंका क्रमशः स्थाग करते हुए रेचक-योगसे जीवात्माको शिवके समीप ले जाकर फिर उद्द्व-मुद्राके द्वारा उसे बापस ले ले और पूर्वोक्त हृत्सम्पूर्णित आत्म-गन्वद्वारा रेचक प्राणायाम करते हुए विष्वानवेत्ता गुड शिष्यके हृदय-कमलकी कणिकामें उस जीवात्माको स्थापित कर दे। इसके बाद गुड शिव और अग्निकी तत्कालीनित पूजा करे और शिष्यसे अपने लिये प्रणाम करवाकर उसे समयाचारका उपदेश दे। वह उपदेश इस प्रकार है—'हृषदेवता (शिव) की कभी निन्दा न करे; शिव-सम्बन्धी शास्त्रोंकी भी निन्दासे दूर रहे; शिव-निर्माण आदिको कभी न लंबे। जीवन-पर्यन्त शिव, अग्नि तथा गुरुदेवकी पूजा करता रहे। बालक, मूढ़, बृद्ध, लौ, भोगार्थी (भूले) तथा रोगी मनुष्योंको यथाशक्ति धन आदि आवश्यक लक्षुपूँ दे।' समर्थ पुरुषके लिये सब कुछ दान करनेका नियम बताया गया है॥ १७-२१॥

इसके अङ्गभूत लटा, भस्त, दण्ड, कौपीन एवं संथम-पोरक अन्य वस्तुओंको ईशान आदि नामोंसे अथवा उनके आदिमें ज्ञमः' लगाकर उन नाम-मन्त्रोंसे क्रमशः अभिमन्त्रित करके स्वाहान्त संहिता-मन्त्रोंका पाठ करते हुए उन्हे पात्रोंमें रखले और पूर्ववत् सम्पाताभिहत (संस्कार-विशेषसे संस्कृत) करके स्थापित-भूजित भगवान् शिव) के समझ उपस्थित करे।

इनकी रक्षाके लिये क्षणभर कलशके नीचे रखते । इसके बाद गुरु विद्वांसे आशा लेकर उक्त सभी वस्तुएँ ब्रतधारी शिष्यको अर्पित करे ॥ २२-२४ ॥

इस प्रकार अदि आग्नेय महापुराणमें 'समय-दीक्षा'के अन्तर्गत संस्कार-दीक्षाकी विधिका वर्णन नामक व्यासीबाँ अहंवाय पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

इस प्रकार विशेषरूपसे विशिष्ट समय-दीक्षा-सम्पन्न हो जानेपर शिष्य अग्निहोम तथा आगमशानके योग्य हो जाता है ॥ २५ ॥

तिरासीबाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवासनकी विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—‘रडानन स्कन्द ! तदनन्तर निर्वाण-दीक्षामें पाशायन्धन-शक्तिके लिये और नाड़न आदिके लिये मूल-मन्त्र आदिका दीपन करे । उस समय प्रत्येकके लिये एक-एक या तीन-तीन आहुति देकर मन्त्रोंका दीपन-कर्म सम्पन्न करे । आदिमें प्रणव और अन्तमें ‘हूं फट्’ लगाकर बीचमें बीज, गर्भं एवं शिखावन्धस्वरूप तीन ‘हूं’ का उच्चारण करे । इससे मूल मन्त्रका दीपन होता है, यथा—‘ॐ हूं हूं हूं हूं फट्’। इसीमें हृदयका दीपन होता है । यथा—‘ॐ हूं हूं हूं हूं फट् हृदयाय नमः ।’ फिर ‘ॐ हूं हूं हूं हूं फट् शिरसे स्ताहा ।’ आदि कहनकर सिर आदि अङ्गोंका दीपन करे । समस्त कूर कर्मोंमें इसी तरह मूलादिका दीपन करना उचित है । शान्तिकर्म, पुष्टिकर्म और वशीकरणमें आदिगत प्रणव मन्त्रके अन्तमें ‘वषट्’ जोड़कर उसी मन्त्रद्वारा प्रत्येकका दीपन करे । ‘वषट्’ और ‘वौषट्’ से युक्त तथा समूर्ण काम्य-कर्मोंके ऊपर स्थित शास्त्र-मन्त्रोदारा आप्यायन आदि सभी कर्मोंमें हवन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

तत्पश्चात् अपने वामभागमें स्थित और मण्डलमें विराजमान शुद्ध शरीरवाले शिष्यका पूजन करके, एक उत्तम सूत्रमें मुषुम्णा नाड़ीकी भावना करके, भूल मन्त्रमें उत्तरका

शिखावन्धतक ले जाकर, वहाँसे फिर पैरोंके अँगूठेतक ले आवे । तत्पश्चात् भंहार क्रमसे उसे पुनः सुमुक्षु शिष्यकी दिलाके समीप ले जाय और वहीं उसे बाँध दे । पुरुषके दाहिने भागमे और नारीके वामभागमें उस सूत्रको नियुक्त करना चाहिये । इसके बाद शिष्यके मस्तकपर शक्तिमन्त्रसे पूजित शक्तिको संहार-मुद्राद्वारा लाकर उक्त सूत्रमें उसी मन्त्रसे जोड़ दे । मुषुम्णा नाड़ीको लेकर मूलमन्त्रसे उसका सूत्रमें न्यास करे और हृदय-मन्त्रसे उसकी पूजा करे । तदनन्तर क्षवच मन्त्रसे अवगुणित करके हृदय-मन्त्रद्वारा तीन आहुतियों दे । ये आहुतियाँ नाड़ीके संनिधानके लिये दी जाती हैं । शक्तिके गंगनिधानके लिये भी इसी तरह आहुति देनेका विधान है ॥ ६-१० ॥

तदनन्तर ‘ॐ हां तत्त्वात्त्वने नमः ।’ ‘ॐ हां पदात्त्वने नमः ।’ ‘ॐ हां वर्णात्त्वने नमः ।’ ‘ॐ हां मन्त्रात्त्वने नमः ।’ ‘ॐ हां कलात्त्वने नमः ।’ ‘ॐ हां भूष्मनात्त्वने नमः ।’—इन मन्त्रोंसे पूर्वोक्त सूत्रमें हृप्रकारके अस्त्राओंका न्यास करके अस्त्र-मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित लालसे शिष्यका प्रोक्षण करे । फिर अस्त्र-मन्त्रके जप्तपूर्वक पुष्प लेकर उसके द्वारा शिष्यके हृदयमें ताइन करे । इसके बाद हूंकारसुक्त रेचक प्राणत्यामके योगसे वहाँ शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके,

* ओग्नश्चुके ग्रन्थमें गदा निर्वाणिति परिवर्त्त्य चर्चित है—

नाईसंभानहोमस्तु मन्त्राणा १५४ नथा । पूर्वजाने: समुदारो द्वित्वापादन नथा ।

नैनन्यापि सम्भागी श्रद्धाद्यापादन नथा । द्वित्वा पर्वत्रकं ष्ठीमशत वाय रात्रसकम् ॥

दीक्षैषा सामग्री प्रोक्ता लद्देशपदाधिनी ।

(इलोक ७४०-७५१)

“नाड़ीसंयोग-द्वारा, मन्त्रपूर्वक, शिष्यका पूर्व-तानिदे उद्धार, उसमें नूनमन्त्रसे द्विजत्वका सम्बादन, चैतन्यसंस्कार, रुद्राशिका आपादन तथा पवित्रक-दानपूर्वक सौ चार या सौबह चार शोम—इन क्रियाओंको ‘सामग्री-नीदा’ कहा गया है । यह रुद्रेश-पद श्वान छानेवाले हैं ।”

उसके भीतर ह स-नीजमें स्थित जीवचैतन्यको अख-मन्त्र पढ़कर बहाँसे विलगा करे। इसके बाद ‘ॐ हं हृष्ट’। इस शक्तिसूत्रसे तथा ‘हं हां स्वाहा।’ इस मन्त्रसे संहारमुद्घादाय उक्त नाड़ीभूत सूत्रमें उस विलग हुए जीवचैतन्यको नियुक्त करे। ‘ॐ हं हां हां हामात्मने नमः।’ इस मन्त्रका जप करते हुए जीवात्माके व्यापक होनेकी भावना करे। फिर कवच-मन्त्रसे उसका अवगुण्ठन करे और उसके सांनिध्यके लिये हृदय-मन्त्रसे तीन बार आहुतियाँ दे ॥ ११-१८ ॥

तत्पश्चात् विद्यादेहका न्यास करके उसमें शान्त्यतीत-कलाका अवलोकन करे। उस कलाके अन्तर्गत इतर तत्त्वोंसे युक्त आत्माका चिन्तन करे। ‘ॐ हं शान्त्यतीतकलापाशाय नमः।’ इस मन्त्रसे उक्त कलाका अवलोकन करे। दो तत्त्व, एक मन्त्र, एक पद, सोलह वर्ण, आठ मुवन, क, ख आदि बीज और नाड़ी, दो कलाएँ, विषय, गुण और एकमात्र कारणभूत सदाशिव—इन सबका इंवेतर्णा शान्त्यतीत-कलामें अन्तर्भूव करके ‘ॐ हं शान्त्यतीतकलापाशाय हृष्ट’। इस मन्त्रसे प्रताङ्गन करे। संहारमुद्घादाय उक्त कलापाशायको लेकर सूत्रके मस्तकपर रखते और उसकी पूजा करे। तदनन्तर उसके सांनिध्यके लिये पूर्ववत् तीन आहुतियाँ दे। शान्त्यतीतकलाका अपना बीज है—‘हं’। दो तत्त्व, दो अक्षर, बीज, नाड़ी, क, ख—ये दो अक्षर, दो गुण, दो मन्त्र, कमलमें विराजमान एकमात्र कारणभूत ईश्वर, बारह पद, सात लोक और एक विषय—इन सबका कृष्णवर्णा शान्तिकलाके भीतर चिन्तन करे। तत्पश्चात् पूर्ववत् ताङ्गन करके सूत्रके मुखभागमें इन सबका नियोजन करे। इसके बाद सांनिध्यके लिये अपने बीज-मन्त्रद्वारा तीन आहुतियाँ दे। शान्तिकलाका अपना बीज है—‘हं हं हं’ ॥ १९-२० ॥

सात तत्त्व, इक्कीस पद, छः वर्ण, एक ईश्वर, पचीस लोक, तीन गुण, एक विषय, रुद्ररूप कारणतत्त्व, बीज, नाड़ी और क, ख—ये दो कलाएँ—इन सबका अत्यन्त रक्त-वर्णवाली विद्याकलामें अन्तर्भूव करके, आवाहन और संयोजनपूर्वक पूर्वोंक सूत्रके हृदयभागमें स्थापित करके अपने मन्त्रसे पूजन करे और इन सबकी संनिधिके लिये पूर्ववत् तीन आहुतियाँ दे। आहुतिके लिये बीज-मन्त्र इस प्रकार है—‘हं हं हं’। चौबीस तत्त्व, पचीस वर्ण, बीज, नाड़ो, क, ख—ये दो कलाएँ, बाईस पद, छाठ लोक, छाठ कला, चार गुण, तीन मन्त्र, एक विषय तथा कारणरूप

भीहरिका शुक्लणी प्रतिष्ठा-कलामें अन्तर्भूव करके ताङ्गन आदि करे। फिर इन सबका पूर्वोंक सूत्रके नाभिभागमें संयोजन करके संनिधिकरणके लिये तीन आहुतियाँ दे। उसके लिये बीज-मन्त्र इस प्रकार है—‘हं हं हं हं’। एक सौ आठ मुवन या लोक, अडाईस पद, बीज, नाड़ी और समीरकी दो-दो संख्या, दो इन्द्रियाँ, एक वर्ण, एक तत्त्व, एक विषय, पाँच गुण, कारणरूप कमलासन ब्रह्मा और चार ईश्वर—इन सबका पातवणी निवृत्तिकलामें अन्तर्भूव करके ताङ्गन करे। इन्हें ग्रहण करके सूत्रके चरणभागमें स्थापित करनेके पश्चात् इनकी पूजा करे और इनके सांनिध्यके लिये अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। आहुतिके लिये बीज-मन्त्र यों है—‘हं हं हं हं’ ॥ २८-३५ ॥

इस प्रकार सूत्रगत पौच्छ कलाओंको लेकर शिष्यके शरीरमें उनका संयोजन करे। सर्वोजा-दीक्षामें समयाचार-पाश्चले, देहारम्भक घर्मसे, मन्त्रसिद्धिके फलसे तथा ईष्टापूर्वादि घर्मसे भी भिन्न चैतन्यरोधक सूक्ष्म प्रबन्धकका कलाओंके भीतर चिन्तन करे। इसी क्रमसे अपने मन्त्रद्वारा तीन-तीन आहुतियाँ देते हुए तर्पण और दीपन करे। ‘ॐ हं शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहा।’ इत्यादि मन्त्रसे तर्पण करे। ‘ॐ हं हं हं शान्त्यतीतकलापाशाय हृष्ट’—इत्यादि मन्त्रसे दीपन करे। पूर्वोंक सूत्रको व्यासितोष्ठके लिये पाँच कला-स्थानोंमें सुरक्षापूर्वक रखकर उसपर कुकुम आदिके द्वारा साङ्घ-शिवका पूजन करे। फिर कला-मन्त्रोंके अन्तमें ‘हं फट्’—इन पदोंको जोड़कर उनका उम्बारण करते हुए क्रमदः पाशोका मेदन करके नमस्कारान्त कला-मन्त्रोंद्वारा ही उनके भीतर प्रवेश करे। साथ ही उन कलाओंका ग्रहण एवं बन्धन भी करे। ‘ॐ हं हं हं शान्त्यतीतकलां गुह्यामि बध्नामि च।’—इत्यादि मन्त्रोंद्वारा कलाओंके ग्रहण एवं बन्धन आदिका प्रयोग होता है। पाश आदिका वशीकरण (या मेदन), ग्रहण और बन्धन तथा पुरुषके प्रति सम्पूर्ण व्यापारोंका निषेध—यह बारंबार प्रत्येक कलाके लिये आवश्यक करत्वा है ॥ ३६-४४ ॥

तदनन्तर शिष्यको निठाकर, पूर्वोंक सूत्रको उसके कबैसे लेकर उसके हाथमें दे और भूले-भटके पापोंका नाश करनेके लिये सौ बार मूळ-मन्त्रसे हवन करे। अख-सम्बन्धी मन्त्रके सम्पूटमें पुरुषके और प्रणवके सम्पूटमें छीके सूत्रको रखकर उसे हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित करके

उसी मन्त्रसे उसकी पूजा करे । साङ्ग-शिवसे सूत्रको सम्यात-शोधित करके कलशके नीचे रखले और उसकी रक्षाके लिये इष्टदेवसे प्रार्थना करे । शिव्यके हाथमें फूल देकर कलश आदिका पूजन एवं प्रणाम करनेके अनन्तर याग-मन्दिरके मध्यभागसे बाहर जाओ । वहाँ तीन मण्डल बनाकर मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले शिव्योंको उत्तराभिमुख बिठावे और भोगकी अभिलाषा रखनेवाले शिव्योंको पूर्वाभिमुख ॥ ४५-४६ ॥

पहले कुशयुक हाथसे तीन चुल्ह पञ्चगव्य पिलावे । दीनमें कोई आचमन न करे । तत्पश्चात् दूसरी बार प्रत्येक शिव्यको तीन या आठ ग्रास चढ़ दे । मुक्तिकार्य-शिव्यको पलाशके दोनोंमें और भोगोच्चुको पीपलके पत्तेसे बने हुए दोनोंमें चढ़ देकर उसे हृदय-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक दृतोंके स्पर्शके बिना खिलाना चाहिये । चढ़ देकर गुरु स्वयं हाथ धो शुद्ध होकर पवित्र जलसे उन शिव्योंको आचमन करावे । इसके बाद हृदय-मन्त्रसे दातुन करके उसे फेंक देव । उसका मुखभाग शुभ दिशाकी ओर हो तो उसका शुभ फल होता है । न्यूनता आदि दोषको दूर करनेके लिये मूल मन्त्रसे एक सौ आठ बार आकृति दे । स्वर्णिकेश्वर (वेदीपर स्थापित-भूजित शिव) को सम्पूर्ण कर्म समर्पित करे । ‘तदनन्तर इनकी पूजा और विसर्जन करके चण्डेश्वरका पूजन करे ॥ ५०-५४ ॥

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें निर्बाज-दीक्षाके अन्तर्गत अधिवासनकी विधिका
बर्णन नामक तिरसीबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

* ‘दन्तकाष्ठं हृदा कृत्वा प्रक्षिपेत् शोभने शुभम् ।’ इस पंक्तिके स्वानन्दे सोमशम्भुकी ‘कर्मकाष्ठ-कमावली’में इस प्रकार बाठ उपलब्ध होता है—

दन्तकाष्ठं हृदा दस्वा तदन्ताग्निविचितम् ॥

धौतमूर्धसुखं	भूमौ	क्षेपयेत्प्राप्तमुख्येत्	श्रापयश्चिमोत्तरे	चोर्धं बद्धने पातमुत्तमम् ॥
सर्वेषामेव		शिव्याणामित्तरासमशोभनम् ।	अशोभनविधार्थं	शतमन्त्रेण होमयेत् ॥ (७९७-७९९)

अर्थात् इसके बाद हृदय-मन्त्रसे दन्तकाष्ठ देकर उसे चबानेको करे । शिव्यके दन्ताग्रभागसे जब वह अच्छी तरह चबिन हो जाय (कूच लिया जाय) तो उसे धोकर उसका मुखभाग ऊपरकी ओर रखते हुए पूर्वीपर फेंकवा दे । जब वह गिर जाय तो उसके सम्बन्धमें निष्पादित प्रकारसे शुभाशुभका विचार करे । यदि उस दातुनका मुखभाग पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा कर्त्त्व दिशाकी ओर हो तो उसका वह गिरना उत्तम माना गया है । इसके सिवा दूसरी दिशाकी ओर उसका मुख हो तो वह सभी शिव्योंके लिये अशुभ होता है । अशुभका निवारण करनेके लिये अस-मन्त्रसे सौ आकृतियाँ हैं ।

+ दीक्षागत कियाकाष्ठके समर्णीय स्वरूपका वर्णन सोमशम्भुकी ‘कर्मकाष्ठ-कमावली’में इस प्रकार मिलता है—
मन्त्राणां दीपनं श्रोकं ततः सूक्ष्मवक्ष्यनम् । शुभम्यानाचित्संयोगं शिव्यचैतन्योजनम् ॥

चौरासीवाँ अध्याय

निर्बाण-दीक्षाके अन्तर्गत निष्ठुरिकला-शोधन-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्फन्द ! तदनन्तर प्रातः-काल उठकर गुरु स्नान आदिसे निवृत्त हो शिष्योंसे उनके द्वारा देखे गये स्वप्नको पूछे । स्वप्नमें दृष्टि, ताजा कच्चा मांस और मध्य आदिका दर्शन या उपयोग उत्तम बताया गया है । ऐसा स्वप्न शुभका सूचक होता है । सपनेमें हाथी और घोड़ेपर चढ़ना तथा श्वेत वस्त्र आदिका दर्शन शुभ है । स्वप्नमें तेल लगाना आदि अशुभ माना गया है । उसकी शान्तिके लिये अशोर-मन्त्रसे होम करना चाहिये । प्रातः और मध्याह्न—दो कालोंका नित्य-कर्म करके यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे तथा विधिवत् आचमन करके नैमित्तिक विधिमें भी नित्यके गमान ही कर्म करे । तत्यश्चात् अध्य-शुद्धि करके अपने ऊपर शिवहस्त रखें । फिर कलशस्थ शिवका पूजन करके इन्द्रादि दिक्षालोकी भी पूजा करे । मण्डलमें और वेदीपर भी भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये । इसके बाद तर्पण, अग्निपूजन, पूर्णाहुति-पर्यन्त होम एवं मन्त्र-तर्पण करे ॥ १-५ ॥

दुःस्वप्न-दर्शनजनित दोषका निवारण करनेके लिये 'हूँ' सम्पुटित अस्त्र-मन्त्र (हूँ कद हूँ) के द्वारा एक सौ आठ आहुतियाँ देकर मन्त्र-दीपन करे । वेदी और कलशके मध्यभागमें अन्तर्बलिका अनुष्ठान करके, शिष्योंके प्रवेशके लिये इष्टदेवसे आशा लेकर, गुरु मण्डपसे बाहर जाय । वहाँ समय-दीक्षाकी ही भाँति मण्डलारोपण आदि करे । सम्यात-होम तथा सुषुम्णा नाड़ील्प कुशको शिष्यके हाथमें देने आदिसे सम्बद्ध कार्यका सम्पादन करे । फिर निष्ठुरिकलाके सानिध्यके लिये मूलमन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर, कुम्भस्थ शिवकी पूजा करके कलापाशभय सूत्र अर्पित करे । तदनन्तर पूजित शिष्यके ऊपरी शरीरके दक्षिणी भागमें—उसकी

शिखामें उस सूत्रको बांधे और उसे पैरके झॅंगूडेतक लंबा रखें । इस प्रकार उस पाशका निवेश करके उसमें मन-ही-मन निष्ठुरिकलाकी व्यापिका दर्शन करे । उसमें एक सौ आठ भुवन जानने योग्य हैं ॥ ६-११ ॥

१. कपाल, २. अज, ३. अहिरुच्य, ४. बप्रदेह, ५. प्रभर्दन, ६. विमूति, ७. अध्यय, ८. शास्ता, ९. पिनाकी, १०. त्रिदशाधिप—ये दस रुद्र पूर्व दिशामें विराजते हैं । ११. अग्निभद्र, १२. हुताश, १३. पिङ्गल, १४. खादक, १५. हर, १६. ज्वलन, १७. दहन, १८. बभु, १९. भस्मान्तक, २०. क्षपान्तक—ये दस रुद्र अग्निकोणमें स्थित हैं । २१. दम्य, २२. मृत्युहर, २३. धाता, २४. विधाता, २५. कर्ता, २६. काल, २७. धर्म, २८. अधर्म, २९. संयोक्ता, ३०. वियोजक—ये दस रुद्र दक्षिण दिशामें शोभा पाते हैं । ३१. नैऋत्य, ३२. मास्त, ३३. इन्द्रा, ३४. क्रूरहस्ति, ३५. भयानक, ३६. ऊर्ध्वकेश, ३७. विस्पात्स, ३८. धूम, ३९. लोहित, ४०. दंडी—ये दस रुद्र नैऋत्य-कोणमें स्थित हैं । ४१. बल, ४२. अतिवल, ४३. पाशहस्त, ४४. महावल, ४५. श्वेत, ४६. जयभद्र, ४७. दीर्घवाहु, ४८. जलान्तक, ४९. वडवास्य, ५०. भीम—ये दस रुद्र वरुणदिशामें स्थित बताये गये हैं । ५१. शीघ्र, ५२. लतु, ५३. बायुवेग, ५४. सूक्ष्म, ५५. तीक्ष्ण, ५६. क्षमान्तक, ५७. पञ्चान्तक, ५८. पञ्चशिल, ५९. कपर्दी, ६०. मेघवाहन—ये दस रुद्र वायव्यकोणमें स्थित हैं । ६१. जटामुकुटधारी, ६२. नानारत्नधर, ६३. निधीश, ६४. रूपवाल, ६५. धन्य, ६६. सौम्यदेह, ६७. प्रगादकृत, ६८. प्रकाम, ६९. लक्ष्मीवान्, ७०. कामरूप—ये दस रुद्र उत्तर दिशामें स्थित हैं । ७१. विद्याधर, ७२. शानधर, ७३. सर्वव,

अहणं ताढनं योगं पूजातपणदीपनम् । बन्धनं शान्त्यतीतादेः शिवकुम्भसमर्पणम् ॥

एवं कर्मकमः प्रोक्तः पाशबन्धे शिवेन तु । (८०८-८०९३)

'एहले तो मन्त्रोक्ता दीपन कहा गया है । फिर स्थावरल्पन, उसमें सुषुम्णा नाड़ीका संयोग, शिष्यवैतन्यका संयोजन, अहण, ताढन, योग, पूजा, तर्पण, दीपन, शान्त्यतीत आदि कलाओंका बन्धन तथा शिव-कलश-समर्पण—इस प्रकार भगवान् शिवने पाशबन्ध-विषयक कर्मकाण्डके क्रमका प्रतिपादन किया है ।'

१. कहीं-कहीं बहितर्पण पाठ भी मिलता है ।

७४. वेदपाठग, ७५. मातृदृष्टि, ७६. पिङ्गाळा, ७७. शूतपाल, ७८. बलिप्रिय, ७९. सर्वविद्याविदाता, ८०. सुख-मुखकर—ये दस कद्र ईशानकोणमें स्थित हैं। ८१. अनन्त, ८२. पालक, ८३. चीर, ८४. पाताळापितृति, ८५. इच्छा, ८६. हृष्ण, ८७. वृषभर, ८८. बीर, ८९. प्रसन, ९०. सर्वतोमुख, ९१. लोहित—इन दस रुद्रोंकी स्थिति नीचेकी दिशा पाताल-लोकमें समझनी चाहिये। ९१. शास्त्र, ९२. विनु, ९३. गणाध्यक्ष, ९४. व्यक्ष, ९५. श्रिदशावन्दित, ९६. संवाह, ९७. विवाह, ९८. नम, ९९. लिप्सु, १००. विचक्षण—ये दस कद्र ऊर्ध्व दिशामें विराजमान हैं। १०१. हृषुक, १०२. कालाभिनिवद्र, १०३. हाटक, १०४. कूप्याण्ड, १०५. मत्य, १०६. ब्रह्मा, १०७. विष्णु तथा १०८. रुद्र—ये आठ कद्र ब्रह्माण्ड-कटाहके भीतर स्थित हैं। यह स्वरण रखना चाहिये कि इन्हींके नामपर एक सौ आठ भुवनोंके भी नाम हैं॥ १२—२५ ॥

(१) सद्गावेशवर, (२) महातेजा, (३) योगाभिपते, (४) मुख मुख, (५) प्रमथ प्रमथ, (६) शर्व शर्व, (७) भव भव, (८) भवोद्भव, (९) सर्वभूतसुखप्रद, (१०) सर्वसान्निध्यकर, (११) ब्रह्मविष्णुरुद्रपर, (१२) अनर्चितानर्चित, (१३) असंख्यासंख्यत, (१४) पूर्वस्थित पूर्वस्थित, (१५) साक्षिन् साक्षिन्, (१६) तुरु तुरु, (१७) पतंग पतंग, (१८) पिङ्ग पिङ्ग, (१९) शान शान, (२०) शब्द शब्द, (२१) सूक्ष्म सूक्ष्म, (२२) शिव, (२३) सर्व, (२४) सर्वद, (२५) नमो नमः, (२६) नमः, (२७) शिवाय, (२८) नमो नमः—ये अद्वाईम पद हैं। स्कन्द ! व्यापक आकाश मन है। अन्य नमो बौघट—ये अभीष्ट मन्त्रवर्ण हैं। अकार और लकार (अंल) बीज हैं। इडा और पिङ्गला नामवालीदो नाडियों हैं। प्राण और अपान—दो वायु हैं और ग्राण तथा उपस्थ—ये दो हन्दियाँ हैं। गन्धको 'विषय' कहा गया है तथा इसमें गन्ध आदि पाँच गुण हैं। यह पृथ्वीतत्त्वसे मम्बनिधत्त है। इसका रंग 'बीला' है। इसकी मण्डलाकृति (भूपुर) चौकोर है और चारों ओरसे बग्गे से अङ्कित है। इस पार्थिव मण्डलका विस्तार सौ कोटि योजन माना गया है। चौदह योनियोंको भी इसीके अन्तर्गत जानना चाहिये॥ २६—२१॥

प्रथम छः योनियाँ मृग आदिकी हैं और आठ दूसरी देवयोनियाँ हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—मृग पहली योनि है, दूसरी पक्षी, तीसरी पश्च, चौथी सर्प आदि, पाँचवीं

स्थावर और छठी योनि मनुष्यकी है। आठ देवयोनियोंमें प्रथम यिशान्वोंकी योनि है, दूसरी राक्षसोंकी, तीसरी यक्षोंकी, चौथी गन्धवोंकी, पाँचवीं इन्द्रकी, छठी सोमकी, सातवीं प्रजापतिकी और आठवीं योनि ब्रह्माकी बतायी गयी है। पार्थिव-तत्त्वपर इन आठोंका अधिकार माना गया है। लव होता है प्रकृतिमें, भोग होता है बुद्धिमें और ब्रह्मा कारण हैं। तदनन्तर जापत् अवस्था-पर्यन्त समस्त भुवन आदिते गर्भित हुई निवृत्तिकलाका स्थान करके उसका अपने मन्त्रमें विनियोग करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—

‘ॐ हां हां हां निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा ।’ इसके बाद ‘ॐ हां हां हां निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् स्वाहा ।’—इस मन्त्रसे अङ्गुशमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक पूरक प्राणायामद्वारा उक्त कलाका आकर्षण करे। फिर ‘ॐ हां हां हां हां हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् ।’—इस मन्त्रसे संहार-मुद्रा एवं कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे नाभिके स्थानसे लेकर ‘ॐ हां हां निवृत्तिकलापाशाय नमः ।’—इस मन्त्रसे उद्धव-मुद्रा एवं रेचक प्राणायामके द्वारा उसको कुण्डमें किसी आधार या आसनपर स्थापित करे। तत्पश्चात् ‘ॐ हां निवृत्तिकलापाशाय नमः ।’—इस मन्त्रसे अर्धदानपूर्वक पूजन करके हसीके अन्तमें ‘स्वाहा’ ल्पाकर तर्पण और संनिधानके उद्देश्यसे पृथक्-पृथक् तीन-तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद ‘ॐ हां हां ब्रह्मणे नमः ।’—इस मन्त्रसे ब्रह्माका आवाहन और पूजन करके उसीके अन्तमें ‘स्वाहा’ जोड़कर तीन आहुतियोंद्वारा ब्रह्माजीको तुस करे। तदनन्तर उनसे इस प्रकार विज्ञसिपूर्वक प्रार्थना करे—‘ब्रह्मन् ।’ मैं इस मुमुक्षुको आपके अधिकारमें दीक्षित कर रहा हूं। आपको सदा इसके अनुकूल रहना चाहिये॥ ३२—३८ ॥

तदनन्तर रनकर्णा वागीश्वरीदेवीका मन-ही-मन हृदय-मन्त्रसे आवाहन करे। वे देवीं इच्छा, ज्ञान और क्रियालयिणी हैं। छः प्रकारके अव्याख्योंकी एकमात्र कारण हैं। फिर पूर्वोक्त प्रकारसे वागीश्वरीदेवीका पूजन और तर्पण करे। साथ ही मंमस्त योनियोंको विश्वास्त्र करनेवाले और हृदयमें विराजमान वागीश्वरदेवका भी पूजन और तर्पण करना चाहिये। आदिमें अपने बीज और अन्तमें ‘हूं फट्’से युक्त जो अङ्ग-मन्त्र है, उसीसे विधानवेत्ता गुरु शिष्यके हृदयका ताङ्कन करे और भावनाद्वारा उसके भीतर प्रविष्ट हो। तत्पश्चात् हृदयके भीतर अग्निकणके समान प्रकाशमान जो शिष्यका जीवन्तत्व निवृत्तिकलामें स्थित होकर पाशोंसे

आवद है, उसे ज्येष्ठाद्वारा विभक्त करे। उसके विभाजनका मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हा हूँ हः हूँ फट्।’ ‘ॐ हा स्वाहा।’ इस मन्त्रसे पूरक प्राणायाम और अङ्गुष्ठ-मुद्राद्वारा उस जीवचैतन्यको हृदयमें आकृष्ट करके, आत्ममन्त्रसे पकड़ कर उसे अपने आत्मामें योजित करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हा हूँ हा हामात्मने नमः।’ || ३९—४५ ||

फिर माता-पिताके संयोगका चिन्तन करके रेचक प्राणायामद्वारा ब्रह्मादि कारणोंका क्रमशः त्याग करते हुए उक्त जीवचैतन्यकी शिवरूप अधिष्ठानमें ले जाय और गर्भाधानके लिये उसे लेकर एक ही समय सब योनियोंमें तथा बामा उन्नद्वय-मुद्राके द्वारा बायीश्वरी योनिमें उसे डाल दे। इसके बाद ‘ॐ हा हूँ हा हामात्मने नमः।’ इसी मन्त्रसे पूजन और पौँच बार तर्पण भी करे। इस जीवचैतन्यका सभी योनियोंमें हृदय-मन्त्रसे देह-साधन करे। यहाँ पुंसवन-संस्कार नहीं होता; क्योंकि छी आदिके शरीरकी भी उत्पत्ति सम्भव है। इसी तरह सीमन्तोऽन्नयन भी नहीं हो सकता; क्योंकि देवघर अन्व आदिके शरीरसे भी उत्पत्तिकी सम्भावना है। || ४६—५० ||

शिरोमन्त्र (स्वाहा) से एक ही समय समझा देह-धारियोंके जन्मकी भावना करे। इसी तरह शिव-मन्त्रसे भी भावना करे। कवच-मन्त्रसे भोगकी और अङ्ग-मन्त्रसे विषय और आत्मामें मोहरूप लय नामक अमेदकी भी भावना करे। तदनन्तर शिव-मन्त्रसे स्तोत्रोंकी शुद्धि और हृदय-मन्त्रसे तत्त्वशोधन करके गर्भाधान आदि संस्कारोंके निमित्त क्रमज्ञान: पौँच-पौँच आहुतियाँ दे। मायेय (मायाजनित), मलजनित तथा कर्मजनित आदि पाश-बन्धनोंकी निवृत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे निष्क्रियति (प्रायश्चित्त अथवा शुद्धि) कर लेनेपर पीछे अग्निमें दी आहुतियाँ दे। मलशक्तिका तिरोधान (लय) और पाशोंका वियोग सम्यादित करनेके लिये ‘स्वाहान्त’ अङ्ग-मन्त्रसे पौँच-पौँच आहुतियोंका हवन करे। अन्तःकरणमें स्थित मल आदि

इस प्रकार आदि आगंय महापुरुणमें ‘निर्बाण-दीक्षाके अन्तर्गत निवृत्तिकला-शोधन’

नामक चौरसीदाँ अध्याय पूर हुआ। || ८४ ||

पाशका सात बार अङ्ग-मन्त्रके अपने अभिमन्त्रित कटार-कला-शाखासे छेदन करे। कला-शाखासे छेदनका मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हा हूँ हा हूँ निवृत्तिकलाप्राप्ताय हः हूँ फट्।’ || ५१—५७ ||

बन्धकाली निवृत्तिके लिये अङ्ग-मन्त्रसे दोनों हाथोंद्वारा मसलकर गोलाकार करके पाशको घीसे मरे हुए कुबमें डाल दे। फिर कलामय अङ्गसे अथवा केवल अङ्ग-मन्त्रसे उसको जलकर भस्स कर डाले। तदनन्तर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये पौँच आहुतियाँ दे। आहुतिका मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हः अश्वाय हूँ फट् स्वाहा।’ उक्त आहुतिके पश्चात् अङ्ग-मन्त्रसे आठ आहुतियाँ देकर प्रायश्चित्त-कर्म सम्पन्न करे। उसके बाद विधाताका आवाहन करके उनका पूजन और तर्पण करे। फिर ‘ॐ हा हावद्वयशी शुद्धकं ब्रह्मण् गृहाण स्वाहा।’ इस मन्त्रसे तीन आहुतियाँ देकर शिष्यको अधिकार अर्पित करे। उस समय ब्रह्माजीको भगवान् दिवकी यह आशा सुनावे—‘ब्रह्मण्! इस बालकके सम्पूर्ण पाश दर्थ हो गये हैं। अब आपको पुनः इसे बन्धनमें डालनेके लिये यहाँ नहीं रहना चाहिये।’ || ५८—६३ ||

—यो कहकर ब्रह्माजीको विदा कर दे और संहार-मुद्राद्वारा एवं कुम्भक प्राणायामपूर्वक राहुमुक्त एक देशवाले चन्द्रमण्डलके सदृश आत्माको तत्सम्बन्धी-मन्त्रका उच्चारण करते हुए दक्षिण नाडीद्वारा धीरे-धीरे लेकर रेचक प्राणायाम एवं ‘उन्नद्वय’ नामक मुद्राके सहयोगसे पूर्वोक्त सूत्रमें योजित करे। फिर उसकी पूजा करके गुड अर्घ्यपात्रमें स्थित अमृतोपम जलविन्दु ले, शिष्यकी पुष्टि एवं तृतीयके लिये उसके मिगपर रखवे। तत्पश्चात् माता-पिताका विसर्जन करके ‘बोपड़न्त’ अङ्ग-मन्त्रके द्वारा विधिकी पूर्तिके लिये पूर्णाहुति होम करे। ऐसा करनेमें निवृत्तिकलाकी शुद्धि होती है। पूर्णाहुतिका पूरा मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हूँ हा हूँ अमुक आत्मनो निवृत्तिकलाशुद्धिरस्तु स्वाहा फट् बौषट्।’ || ६४—६७ ||

१. ‘आदि’ पदसे यहाँ ‘तिरोधान’, ‘शक्तिज’ और ‘विन्दुज’ नामक पाश समझने चाहिये।

पचासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकलाके शोधनकी विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! तदनन्तर शुद्ध और अशुद्ध कलाओंका शान्त और नादान्तसंशक हस्त-दीर्घ-प्रयोगद्वारा संधान करे । संधानका मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां हां हीं हां ।’ इसके बाद प्रतिष्ठाकलामें निविष्ट जल, तेज, वायु, आकाश, पाँच तन्मात्रा, दस इन्द्रिय, बुद्धि, तीनों गुण, चौबीसीवाँ अहंकार और पुरुष—इन पचीस तत्वों तथा ‘क्ष’ से लेकर ‘य’ तकके पञ्चीस अक्षरोंका चिन्तन करे । प्रतिष्ठाकलामें छप्पन भुवन है और उनमें उन्हींके समान नामबाले उतने ही रुद्र जानने चाहिये । इनकी नामावली इस प्रकार है—॥ १—५ ॥

अमरेश, प्रभास, नैमिष, पुष्कर, आषाढ़ि, डिप्पिंडि, भारभूति तथा लकुलीशी—(यह प्रथम अष्टक कहा गया) । हरिश्वन्दि, श्रीशैल, जल्य, आम्रातकेश्वर, महाकाल, मध्यम, कैदार्दुओर भैरव—(यह द्वितीय अष्टक बताया गया) । तत्प्रश्नात् गवा, कुशक्षेत्र, नाल, कनखल, विमल, अदृहास, महेन्द्र और भीम—(यह तृतीय अष्टक कहा गया) । वस्त्रापद, राष्ट्रकोटि, अविमुक्त, महालय, गोकर्ण, भद्रकर्ण, स्वर्णक्ष और स्थाणु—(यह चौथा अष्टक बताया गया) । अजेश, सर्वश, भास्वर, तदनन्तर सुवाहु, मन्त्रस्पी, विशाल, जटिल तथा रौद्र—(यह पाँचवाँ अष्टक हुआ) । पिङ्गलाक्ष, कालदंडी, विषुर, धोर, प्राजपत्य, हुताशान, कालरूपी तथा कालकर्ण—(यह छठा अष्टक कहा गया) । भयानक, पतङ्ग, पिङ्गल, हर, भाता, शङ्कुकर्ण, श्रीकण्ठ तथा चन्द्रमौलि (यह सातवाँ अष्टक बताया गया) । ये छप्पन रुद्र छप्पन भुवनोंमें व्याप्त हैं । अब चत्तीस पद बताये जाने हैं ॥ ६—१३ ॥

व्यापिन्, अरुपिन्, प्रथम, तेजः, ज्योतिः, अरुप, पुरुष, अनन्त, अधूम, अभस्मन्, अनादे, नाना नाना, धूधू धूधूः ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ म्यः, अनिधन, निधन, निधनोन्द्रव, शिव, शर्व, परमात्मन्, महेश्वर, महादेव, सम्भ्राव, ईश्वर, महातेजा, योगाधिपते, मुख, प्रमथ, सर्व, सर्वर्सर्व—ये चत्तीस पद हैं । दो बीज, तीन मन्त्र—वामदेव, शिर, शिखा, गान्धारी और सुषुमा—दो नाड़ियाँ, समान और उदान नामक दो प्राणवायु, रसना और पायु—दो इन्द्रियाँ, रस नामक विषय, रूप, शब्द, स्पर्श तथा रस—

ये चार गुण, कमलसे अङ्कुर इवेत अर्धचन्द्राकार मण्डल, सुषुप्ति अवस्था तथा प्रतिष्ठामें कारणभूत भगवान् विष्णु—इस प्रकार भुवन आदि सब तत्वोंका प्रतिष्ठाके भीतर चिन्तन करके प्रतिष्ठाकला-सम्बन्धी मन्त्रसे शिष्यके शरीरमें भावनाद्वारा प्रवेश करके उसे उस कलापाशसे मुक्त करे ॥ १४—१८ ॥

‘ॐ हां हीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट् स्वाहा ।’—इस स्वाहान्त-मन्त्रसे ही पूरक प्राणायाम तथा अङ्कुशमुद्राद्वारा उक्त कलापाशका आकर्षण करे । तत्प्रश्नात् ‘ॐ हूं हां हीं हां हूं हूं प्रतिष्ठाकलापाशाय हूं फट् ।’—इस मन्त्रसे संहार-मुद्रा और कुम्भक प्राणायामद्वारा उसे हृदयके नीचे नाड़ीसूत्रसे लेकर ‘ॐ हूं हीं हां हूं प्रतिष्ठाकलापाशाय नमः ।’—इस मन्त्रसे उद्धव-मुद्रा तथा रैचक प्राणायामद्वारा कुण्डमें स्थापित करे । तदनन्तर ‘ॐ हां हीं हां हूं हूं हूं प्रतिष्ठाकलाद्वाराश्य नमः ।’—इस मन्त्रसे अर्थ दे, पूजन करके स्वाहान्त मन्त्र-द्वारा तीन-तीन आहुतियाँ देते हुए संतर्पण और संनिधापन करे । इसके बाद ‘ॐ हां हीं हां प्रतिष्ठावे नमः ।’—इस मन्त्रसे विष्णुका आवाहन, पूजन और संतर्पण करके निम्नाङ्कित प्रार्थना करे—‘विष्णो ! आपके अधिकारमें मैं मुमुक्षु शिष्य-को दीक्षा दे रहा हूं । आप सदा अनुकूल रहें ।’ इस प्रकार विष्णुभगवान्में निवेदन करे । तत्प्रश्नात् वागीश्वरी देवी और वागीश्वर देवताका पूर्ववत् आवाहन, पूजन और तर्पण करके शिष्यकी छातीमें ताङ्न करे । ताङ्न का मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां हूं हः हूं फट् ।’ इसी मन्त्रसे शिष्यके हृदयमें प्रवेश करके उसके पाशबद्ध चैतन्यको अस्त-मन्त्र एवं ज्येष्ठ अङ्कुशमुद्राद्वारा उस पाशसे पृथक् करे । यथा—‘ॐ हां हूं हः हूं फट् ।’ उक्त मन्त्रके ही अन्तमें ‘नमः स्वाहा’ लगाकर उससे सम्पुटित मन्त्रद्वारा जीवचैतन्यको खीचे तथा नमस्कारान्त आत्ममन्त्रसे उसको अपने आत्मामें नियोजित करे । आत्मामें नियोजनका मन्त्र यों है—‘ॐ हां हीं हां हामात्मने नमः ।’ ॥ १९—२६ ॥

इसके बाद पूर्ववत् उम जीवचैतन्यके पितासे संयुक्त होनेकी भावना करके बामा उद्धव-मुद्राद्वारा उसे देवीके गर्भमें स्थापित करे । साथ ही इस मन्त्रका उचारण करे—‘ॐ हां

हाँ हामामने नमः । देहोत्पत्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे पाँच बार और जीवात्माकी स्थितिके लिये शिरोमन्त्रसे पाँच बार आहुति दे । अधिकार-प्राप्तिके लिये शिरो-मन्त्रसे, भोग-सिद्धिके लिये कवच-मन्त्रसे, लथके लिये अष्ट-मन्त्रसे, स्तोतः-सिद्धिके लिये शिव-मन्त्रसे तथा तत्त्वशुद्धिके लिये हृदय-मन्त्रसे इसी तरह पाँच-पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये । इसके बाद पूर्वबत् गर्भाधान आदि संस्कार करे । पाशकी शिथिलता और निष्कृति (प्रायश्चित्त) के लिये शिरोमन्त्रसे तौ आहुतियाँ दे । मलशक्तिके तिरोधान (निवारण) के लिये स्वाहान्त अष्ट-मन्त्रसे पाँच बार इवन करे ॥ २७—३० ॥

इस प्रकार पाश-वियोग होनेपर भी सात बार अष्ट-मन्त्रके जपपूर्वक कलाबीजसे युक्त अष्ट-मन्त्ररूपी कटासे उस कलापाशको काट डाले । वह मन्त्र इस प्रकार है—
‘ॐ ही प्रतिष्ठाकलापाशाय हूँ फट् ।’ तदनन्तर पाश-शाखसे उस पाशको मसलकर वर्तुलाकार बनाकर पूर्वबत् धृतपूर्ण छुवामें रख दे और कला-शाखसे ही उसकी आहुति दे दे । इसके बाद पाशाङ्कुरकी निरूपितिके लिये अष्ट-मन्त्रसे पाँच आहुतियों दे और प्रायश्चित्तनिवारणके लिये फिर आठ

इस प्रकार आदि आनेय महापुण्यमें निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत प्रतिष्ठाकलाके शोधनकी विविका वर्णन । नामक पञ्चसीरों अव्याप्त पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

छियासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विद्याकलाका शोधन

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द । पूर्ववर्तिनी कला-प्रतिष्ठाके साथ विद्याकलाका संधान करे तथा पूर्वबत् उसमें तत्त्ववर्ण आदिका चिन्तन भी करे । उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हाँ ही हूँ हाँ ।’—यह संधान-मन्त्र है । राग, शूद्र विद्या, नियति, कला, काल, माया तथा अविद्या—ये सात तत्त्व तथा र, रु, व, श, ष, स—ये छः वर्ण विद्याकलाके अन्तर्गत बताये गये हैं । प्रणव आदि इक्षीस पद भी उसीके अन्तर्गत हैं ।

‘ॐ नमः विद्याय सर्वप्रभवे विद्याय ईशानमूर्धे तस्युक्तव्यवश्याय अधोरहृदयाय वामदेवतुद्याय सर्वोक्तास-मूर्तये ॐ नमः गुणातिगुणाय गोप्ते अविद्यनाय सर्वयोगाधिकृताय सर्वयोगाधिष्ठाय ज्ञोतीद्यपाय परमेष्वराय अवेतन अवेतन व्योमन् व्योमन् ।’

आहुतियोंका इवन करे । आहुतिके लिये अस्त्र-मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हः अस्त्राय हूँ फट् ।’ ॥ ३१—३५ ॥

इसके बाद हृदय-मन्त्रसे भगवान् दृशीकेशका आवाहन करके पूर्वांक विधिमें उनका पूजन और तर्पण करनेके पश्चात् अधिकार-समर्पण करे । इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हाँ विष्णु रसं शुद्धं गृहण स्वाहा ।’ इसके बाद उन्हें भगवान् शिवका आशा इस प्रकार सुनावे—‘हे ! इस पशुका पाश समर्पणः दग्ध हो चुका है । अब आपको इसके लिये बन्धनकारक होकर नहा रहना चाहिये ।’ शिवाशा सुनानेके बाद रौश्नी नाड़ीद्वारा गोविन्दका विसर्जन करके राहुमुक आधे भगवाले चन्द्रमण्डलके समान आत्माको नियोजित करे—संहार-मुद्राद्वारा उसे आत्मस्थ करके उद्धर-मुद्राद्वारा सूत्रमें उत्तरी सयोजना करे । तत्पश्चात् पूर्वबत् जलविन्दु-सहश उस आत्माको शिष्यके सिरपर स्थापित करे । इससे उसका आप्यायन होता है । फिर अग्निके पिता-माताका पुष्प आदिसे पूजन एव विसर्जन करके विषिकी पूर्तिके लिये विषानपूर्वक पूर्णांगुति प्रदान करे । ऐसा करनेपे प्रतिष्ठाकलाका भी शोधन सम्भव हो जाता है ॥ ३६—४१ ॥

—ये इक्षीस पद हैं ॥ १—५ ॥

अब रुद्रों और मुत्रनोंका स्वरूप बताया जाता है—प्रमथ, वामदेव, सर्वदेवोद्देव, भवोद्देव, वज्रदेव, प्रसु, धाता, क्रम, विक्रम, सुप्रभ, बुद्ध, प्रशान्तनामा, ईशान, अक्षर, शिव, सशिव, ब्रह्म, अक्षय, शम्भु, अद्वैतरूपनामा, रूपवर्धन, मनोन्मन, महावीर, चित्राङ्ग तथा कल्याण—ये पचीस भुवन एवं रुद्र जानने चाहिये ॥ ६—९ ॥

विद्याकलामें अधोर-मन्त्र है, ‘म’ और ‘र’ बीज हैं, पूषा और इस्तिजिहा—दो नाडियाँ हैं, व्यान और नाद—ये दो प्राणवायु हैं । एकमात्र रूप ही विषय है । वैर और नेत्र दो इन्द्रियों हैं । शब्द, सर्व तथा रूप—ये तीन गुण कहे गये हैं । सुषुप्ति अवस्था है और रुद्रदेव कारण है । भुवन आदि समस्त वस्तुओंको भावनाद्वारा विद्याके

अन्तर्गत देखे । इसके लिये संधान-मन्त्र है—‘ॐ हूँ हैं हाँ ।’ तत्पत्ता एवं रक्तवर्ण एवं स्वास्थ्यके चिह्नसे अद्वित त्रिकोणाकार मण्डलका चिन्तन करे । शिष्यके वक्षमें ताङन, कलापाशका छेदन, शिष्यके हृदयमें प्रवेश, उसके जीव-चैतन्यका पाश-बन्धनसे वियोजन तथा हृदयप्रदेशसे जीवचैतन्य एवं विद्याकलाका आकर्षण और ग्रहण करे ॥ १०-१३ ॥

जीवचैतन्यका अपने आत्मामें आरोपण करके कलापाशका संग्रहण एवं कुण्डमें स्थापन भी पूर्वोक्त पद्धतिसे करे । कारणरूप रुद्रदेवताका आवाहन-पूजन आदि करके शिष्यके प्रति बन्धनकारी न होनेके लिये उनसे प्रार्थना करे । पिता-माताका आवाहन आदि करके शिशु (शिष्य) के हृदयमें ताङन करे । पूर्वोक्त विधिके अनुसार पहले अख-मन्त्रशाय हृदयमें प्रवेश करके जीवचैतन्यको कलापाशसे विलग करे । फिर उसका आकर्षण एवं ग्रहण करके अपने आत्मामें संयोजन करे । फिर वामा उद्धव-मुद्राशाय वागीश्वरीदेवीके गर्भमें उसके स्थापित होनेकी भावना करे । इसके बाद देह-सम्पादन करे । अन्म, अधिकार, भोग, रूप, स्रोतःशुद्धि, तत्त्वशुद्धि,

निःशेष मलकमादिके निवारण, पाश-बन्धनकी निहृति एवं निष्कृतिके हेतु स्वाहान्त अख-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे । तदनन्तर अख-मन्त्रसे पाश-बन्धनको शिथिल करना, मलश्यकिका तिरोष्णन करना, कलापाशका छेदन, मर्दन, वर्तुलीकरण, दाह, अङ्गुराभाव-सम्पादन तथा प्रायभित्त-कर्म पूर्वोक्त रीतिसे करे । इसके बाद रुद्रदेवका आवाहन, पूजन एवं रूप और गन्धका समर्पण करे । उसके लिये मन्त्र हस प्रकार है—‘ॐ हाँ स्वप्नगळ्यौ शुल्कं रुद्र गृहण स्वाहा ।’ ॥ १४-१९ ॥

शकरजीकी आज्ञा सुनाकर कारणस्वरूप रुद्रदेवका विसर्जन करे । इसके बाद जीवचैतन्यका आत्मामें स्थापन करके उसे पाशसूत्रमें निवेशित करे । फिर जलशिन्दु-स्वरूप उस चैतन्यका शिष्यके सिरपर न्यास करके माता-पिताका विसर्जन करे । तत्पत्ता एवं समस्त विधिकी पूर्ति करनेवाली पूर्णाहुतिका विधिवत् हवन करे ॥ २०-२१ ॥

विद्यामें ताङन आदि कार्य पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये । अन्तर इतना ही है कि उसमें सर्वत्र अपने बीजका प्रयोग होगा । यह सब विचान पूर्ण करनेसे विद्याकलाका शोधन होता है ॥ २२ ॥

इस प्रकार आदि आनेव महापुराणमें ‘निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत विशाकाका शोधन’ नामक छियासीर्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सतासीवाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकलाका शोधन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द । पूर्वोक्त मार्गसे विद्याकलाका शान्तिकलाके साथ विधिपूर्वक संधान करे । उसके लिये मन्त्र है—‘ॐ हाँ हूँ हाँ ।’ शान्तिकलामें दो तत्त्व लीन हैं । वे दोनों हैं—ईश्वर और सदाशिव । हकार और क्षकार—ये दो बर्ण कहे गये हैं । अब मुवनोंके साथ उन्हींके समान नामवाले रुद्राका परिचय दिशा जा रहा है । उनकी नामाचली इस प्रकार है—प्रभव, समय, कुट्ट, विमल, शिव, धन, निरञ्जन, अङ्गार, सुशिरा, दीतकारण, त्रिदर्शशर, कालदेव, सूर्य और अम्बुजेश्वर (या भुजेश्वर)—ये चौदह दश शान्तिकलामें प्रतिष्ठित हैं । योगमव्यापिने, योगमर्माद, योगमर्माय, योगमर्माये, योगमर्माय, अग्नमर्माय, अग्नमर्माय, अग्नमर्मिताय,

धूताय, शाश्वताय, योगमीठसंस्थिताय, नित्ययोगिने, यज्ञानाहराय—ये बारह पद हैं ॥ १-५ ॥

पुरुष और कवच—ये दो मन्त्र हैं; विन्दु और जकार—ये दो बीज हैं; अलम्बुषा और यशा—ये दो नाड़ियाँ हैं; कृकर और कूर्म—ये दो प्राणवाशु हैं; तत्त्वा और हाथ—दो इन्द्रियाँ हैं; शान्तिकलाका विषय स्पर्श माना गया है; स्पर्श और शब्द—ये दो गुण हैं और एक ही कारण है—ईश्वर । इसकी तुर्यावस्था है । इस प्रकार मुवन आदि समस्त तत्त्वोंकी शान्तिकलामें श्यतिका चिन्तन करके पूर्ववत् ताङन, छेदन, हृदय-प्रवेश, चैतन्यका वियोजन, आकर्षण और ग्रहण करे । फिर शान्तिके

मुखसूत्रसे चैतन्यका आत्मामें आरोपण करके, कलाका ग्रहण कर उसे कुण्डमें स्थापित कर दे । तदनन्तर ईशसे इस प्रकार प्रार्थना करे—‘हे ईश ! मैं इस मुमुक्षुको तुम्हारे अधिकारमें दीक्षित कर रहा हूँ । तुम्हें इसके अनुकूल रहना चाहिये’ ॥ ६-१० ॥

फिर माता-पिताका आवाहन आदि और शिष्यका ताहन आदि करके चैतन्यको लेवर विधिवत् आत्मामें नियोजित करे । ततश्चात् पूर्ववत् माता-पिताके मंयोगभी भवना करके उद्घवा नाइद्वारा उस चैतन्यका हृदय-मन्त्रसे सम्पुष्टित आत्मवीजके उच्चारणपूर्वक देवीके गर्भमें नियोजन करे । देहोनन्तिके लिये हृदय-मन्त्रसे, जन्मके हेतु डिगोमन्त्रमें, अधिकार-पिण्डिके लिये डिग्वा-मन्त्रम, भोगके निमित्त कवच-मन्त्रमें, लघुके लिये शब्द-मन्त्रसं, ब्रोतःशुद्धिके लिये शिव-मन्त्रसं तथा तत्त्वशोधनके लिये हृदय-मन्त्रसे पौच्छौच आहुतियों दे । इसी तरह पूर्ववत् गर्भधान आदि मंस्कार भी करे । कवच-मन्त्रमें पाशकी शिखिलता एवं निष्कृतिके लिये सौ आहुतियों दे । मलशक्ति-तिरोधानके उद्देश्यमें शब्द-मन्त्रद्वारा पांच आहुतियोंका हृवन करे । इनी तरह पाण्डित्योगके निमित्त भी पांच आहुतियों देनी चाहिये । तदनन्तर शब्द-मन्त्रका मात वार जप करके वीज-युक्त अस्त्र-मन्त्रलयी कटारमें पाशका छेदन करे । उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हौं शान्तिकलापाशाय नमः हः हूँ फट्’ ॥ ११-१७ ॥

इसके बाद पाशका विमर्शन तथा बनुलीकरण

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें ‘निर्वाण-दीक्षाके अन्तर्गत शान्तिकलाका शोधन’ नामक सत्तासीबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अठासीबाँ अध्याय

निर्वाण-दीक्षाकी अवशिष्ट विधिका वर्णन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! विशुद्ध शान्तिकलाके माथ शान्त्यतीतकलाका संधान करे । उसमें भी पूर्ववत् तत्त्व और वर्ग आदिका चिन्तन करना चाहिये, जैसा कि नीचे बताया जाता है । संधानकलामें इस मन्त्रका उच्चारण करे—‘ॐ हौं हौं हूँ हां’ । शान्त्यतीतकलामें शिव और शक्ति—ये दो तत्त्व हैं । आठ भुवन हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—इन्धक, दीपक, रोचक, भोचक, कुर्वगामी,

पूर्ववत् अस्त्र-मन्त्रसे करके उसे घृतमें भरे हुए सूखेमें रख दे और कला-सम्बन्धी अस्त्र-मन्त्रहीरा उसका हृवन करे । फिर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अस्त्र-मन्त्रसे पांच आहुतियों दे और प्रायश्चित्त-मिवारणके लिये आठ आहुतियोंका हृवन करे । मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हः अस्त्राव हूँ फट्’ । फिर हृदय-मन्त्रसे ईशरका आवाहन करके पूजन-तपांण करनेके पश्चात् उन्दे विभिन्नके शुल्क समर्पण करे । मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां ईशर शुद्धयहंकरौ शुल्कं गृहणाम्वाहा’ । इसके बाद ईशरको शिवकी यह आशा मुनानं-ईशर ! इस पश्चके सारे पाश दर्घ द्वारा गये हैं । अब तुम्हें इसके लिये वन्धनकारक होकर नहीं रहना चाहिये’ ॥ १८-२३ ॥

—ये कहकर ईशर देवका विसर्जन करं और गैर्द्रीदात्तिमें आत्माको नियोजित करे । जैसे ईशने चन्द्रमाको अपने मस्तकपर आश्रय दे रखा है, उसी प्रकार शश्यके जोवात्माको गुरु अपने आत्मामें नियोजित करे । फिर शुद्धा उद्घव-मुद्राके द्वारा इसकी गूच्छमें नयोजना करे और मूल-मन्त्रमें शिष्यके मस्तकपर अमरचिन्हमन्त्ररूप उस चैतन्य-मूर्त्तिको रखवे; तदनन्तर पुथ्य आदिमें पूजित अग्निके पिता-माताका विसर्जन करके विधिश पुरुष समस्त विधिकी पूर्ति करनेवाली पूर्णहृति प्रदान करे । इसमें भी पूर्ववत् ताइन आदि करना चाहिये । विदोषतः कला-सम्बन्धी अपने वीजका प्रयोग होना चाहिये । इस प्रकार शान्तिकलाकी शुद्धि बतायी गयी ॥ २४-२७ ॥

सदाशिव देव ही एकमात्र हेतु है। इस तत्त्वादि-संचयकी शास्त्रतीतकल्पमें स्थिति है, ऐसा चिन्तन करके ताइन आदि कर्म करे। 'फडन्त' मन्त्रसे कला-पाशका नाइन और चोथन करके नमस्कारान्त-मन्त्रमें शिष्यके अन्तःकरणमें प्रवेश करे। इसके बाद फडन्त-मन्त्रमें जीवचैतन्यको पाशसे वियुक्त करे। 'वषट्' और 'नमः' पदोंसे सम्पुटित, स्वाहान्त-मन्त्रका उच्चारण करके, अङ्गुष्ठ-मुद्रा तथा पूरक प्राणायामद्वारा पाशका मस्तकसूत्रसे आकर्षण करके, कुम्भक प्राणायामद्वारा उभे लेकर, रेचक प्राणायाम एवं उद्धव-मुद्राद्वारा हृदय-मन्त्रसे सम्पुटित नमस्कारान्त-मन्त्रमें उसका अग्रिकुण्डमें स्थापन करे। इसका पूजन आदि सब कार्य निवृत्तिकलाके रमान ही सम्पन्न करे। सदाशिवका आवाहन, पूजन और तर्पण करके उनमें भक्तिपूर्वक इस प्रकार निवेदन करे—“भगवन्! इस 'साद' सशक मुमुक्षुको तुम्हारे अधिकारमें दीक्षित करता हूँ। तुम्हे सदा इसके अनुकूल रहना चाहिये” ॥ ७—१२ ॥

फिर माता-पिताका आवाहन, पूजन एवं तर्पण-मनिधान करके हृदय-सम्पुटित आत्मवीजसे शिष्यके वक्षःस्थलमें ताइन करे। मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां हां हां हः हूँ फट्’। इसी मन्त्रमें शिष्यके हृदयमें प्रवेश करके अङ्ग-मन्त्रद्वारा पाशयुक्त चैतन्यका उग पाशसे वियोजन करे। फिर उद्यष्टः अङ्गुष्ठ-मुद्राद्वारा मम्पुटित उसी स्वाहान्त-मन्त्रमें उसका आकर्षण और ग्रहण करके 'नमोऽन्न' मन्त्रसे उसे अपने आत्मामें नियोजित करे। आकर्षण-मन्त्र तो उच्ची ‘ॐ हां हां हां हः हूँ फट्’ है, परंतु आत्म-नियोजनका मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां हां हामात्मने नमः’। पूर्ववत् वामा उद्धव-मुद्राद्वारा माता-पिताके सयोगकी भावना करके इसी मन्त्रसे उस जीवचैतन्यका देवीके गर्भमें स्थापन करे। तदनन्तर प्रवृत्त विधिमें गर्भाधान आदि सब स्तकार करे। पाशबन्धनकी शिथिलताके लिये प्रायश्चित्तके रूपमें मूलमन्त्रसे गौ आहुतियाँ दे (अथवा मूलमन्त्रका सौ बार जप करे) ॥ १३—२० ॥

मलशक्तिके तिरोधान और पाशोंके वियोजनके निमित्त अङ्ग-मन्त्रसे पूर्ववत् पॉच-पॉच आहुतियाँ दे। कला-सम्बन्धी वीजसे युक्त आयुध-मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित की हुई कटाररूप अङ्गसे पाशोंका छेदन करे। उसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हः हां शास्त्रतीतकलापाशाव हूँ फट्’।

तदनन्तर अङ्ग-मन्त्रसे पूर्ववत् उन पाशोंको मस्तकरूप बर्तुलाकार बनाकर, वीसे भरे हुए सुवर्णमें रख दे और कला-सम्बन्धी अङ्ग-मन्त्रके द्वारा ही उसका हवन करे। फिर पाशाङ्कुरकी निवृत्तिके लिये अङ्ग-मन्त्रसे पॉच और प्रायश्चित्त-निषेधके लिये आठ आहुतियाँ दे। इसके बाद हृदय-मन्त्रमें सदाशिवका आवाहन एवं पूजन और तर्पण करके पूर्वोक्त विधिसे अधिकार समर्पण करे। उसका मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हां सदाशिव मनोबिन्दुं शुद्धं गृहण स्वाहा’ ॥ २१—२७ ॥

तत्त्वशात् उन्हें भी निम्नाङ्कित रूपमें शिवकी आशा मुनावें—‘सराशिव’। इस पशुके सारे पाप दग्ध हो गये हैं। अतः अब आपको इसे बन्धनमें डालनेके लिये यहाँ नहीं ठहरना चाहिये। मूलमन्त्रसे पूर्णाहुति दे और सदाशिवका विसर्जन करे। तत्त्वशात् गुरु शिष्यके शरत्कालिक चन्द्रमाके समान उदित विशुद्ध जीवात्माको रौद्री मंहार मुद्राके द्वारा अपने आत्मामें नियोजित करके आत्मस्थ कर ले। शिष्यके गरीरस्य जीवात्माका उद्धव-मुद्राद्वारा उत्थान या उढार करके उसके पोगाकै लिये शिष्यके मस्तकपर अर्ध-जलकी एक बैंदूर श्यापित करे। इसके बाद परम भक्तिपावकसे क्षमा-प्रार्थना करके माता-पिताका विमर्जन करे। विमर्जनके ममय इस प्रकार कहे—‘मैंने शिष्यको दीक्षा देनेके लिये जो आप दोनों माता-पिताको घेद पहुँचाया है, उसके लिये मुझे कृपापूर्वक क्षमा-दान देकर आप दोनों अपने श्यामनको पधारें’ ॥ २८—३२ ॥

वषट्-मन्त्रमें अभिमन्त्रित कर्तरी २(कटार) द्वारा शिवाल्पमें शिष्यका चार अङ्गुल बड़ी बोधशक्तिमवूर्धपिणी शिवाका छेदन करे। छेदनके मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ हूँ शिवाय हूँ फट्’। ३० अङ्गाय हूँ फट्। उसे घृतपूर्ण सुकूमे रखकर ‘हूँ फट्’ अनवाले अङ्ग-मन्त्रसे अग्रिमे होम दे। मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ ॐ हः अङ्गाय हूँ फट्’। इसके बाद सुकूम और सुवाको धोकर शिष्यको स्नान करवानेके पश्चात् स्वयं भी आच्मन करे और योजनिका अथवा योजना-स्थानके लिये अङ्ग-मन्त्रसे अपने-आपका ताइन करे। तत्त्वशात् वियोजन, आकर्षण और संग्रहण करके पूर्ववत् द्वादशीन्त

१. कहीं-कहीं 'हां' पाठ है।

२. 'अङ्गुलविस्तुन्तस्य ललाटस्त्रोर्ध्वशेशो द्वादशान्तपदेनोच्यते।'

अर्थात् 'अङ्गुल विस्तारबाले ललाटका कर्वदेश 'द्वादशान्त' पदसे कथित होता है।' (नित्याबोद्धशिकार्णं ८) । ५५ पर भास्करार्थकी सेतुवच्च-भ्यास्या)

(ललाटके ऊपरी भाग) से जीवचैतन्यको ले आकर अपने हृदय-कमलकी कर्णिकामें स्थापित करे ॥ ३२-३८ ॥

सुक्को धीसे भरकर और उसके ऊपर अधोमुख सुब रखकर शङ्खतुल्य मुद्राद्वारा नित्योक्त विधिसे हाथमें ले । तत्पश्चात् नादोच्चारणके अनुसार भस्तक और श्रीबा फैलाकर दृष्टिको समभावसे रखते हुए स्त्रिर, शान्त एव परमभावमें सम्पन्न हो कलदा, मण्डल, अग्नि, शिष्य तथा अपने आत्मासे भी छः प्रकारके अध्वाको ग्रहण करके, सुक्के अग्रभागमें प्राणमर्या नाड़ीके भीतर स्थापित करके, उसी भावसे उसका चिन्तन करे । इस प्रकार चिन्तन करके क्रमशः सात प्रकारके विपुलका ध्यान करे । उन सातोंका परिचय इस प्रकार है—पहला 'प्राणसंयोगस्वरूप' है और दूसरा हृदयादि-कममें उच्चारित मन्त्रसंशक है । तीसरा सुषुमामें अनुगत भाद्र या नाड़ीरूप है । नाड़ी-मध्यद नादका जो शक्तिमं लय होना है, उसको 'प्रदान्त-विषुव' कहते हैं । शक्तिमं लीन हुए नादका पुनः उज्जीवन होकर जो ऊपरको सचार और समन्वयमें लय होता है, उसे 'शक्ति' नामक विषुव कहा गया है । मम्पुर्ण नादका शक्तिकी सीमाको लोधकर उन्मनीमें लीन होना 'काल-विषुव' कहलाता है । यह छठा है । यह शक्तिमें अतीत होता है । सातवें विषुव है—'तत्त्वसंशक' । यही योजना स्थान है ॥ ३९-४५ ॥

पूर्क और कुभक करके सुहको थोड़ा गोलकर धीरे-धीरे मूल-मन्त्रका उच्चारण वरते हुए भावनाद्वारा शिवात्माका लय करे । उसका क्रम यों है—विद्वुत-महश छहों अध्वाओंके प्राणस्वरूपमें 'कट्कार'का चिन्तन करे । नाभिमें ऊपर एक विसेका ध्यान 'फट्कार' है, जो प्राणका स्थान माना गया है । उसमें ऊपर हृदयमें नार अङ्गुलकी दूरीपर 'अकार'का चिन्तन करना चाहिये (यह ब्रह्माका बोधक है) । उसमें आठ अङ्गुल ऊपर कण्ठमें विष्णुका बाचक 'उकार' है, उससे भी चार अङ्गुल ऊचे तालुस्थानमें रुद्राचक 'प्रकार'की स्थिति है । इसी प्रकार ललाटके मध्यभागमें हृधरवाचक 'विन्दुका' स्थान है । ललाटसे ऊपर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त नादमय सदाचिव देव विराजमान हैं । उनके साथ ही वहों उनकी शक्ति भी

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें 'निर्वाण-दीक्षाका वर्णन' नामक अठासीर्याँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

विद्यमान है । उपर्युक्त तत्त्वोंका क्रमशः चिन्तन और त्याग करते हुए अन्ततोगत्वा शक्तिको भी त्याग दे । वहों दिव्य पिपिलिका-स्पर्शाका अनुभव करके ललाटके ऊपरके प्रदेशमें परम तत्त्व, परमानन्दस्वरूप, भावशूल्य, मनोऽतीत, नित्य गुणोदयशाली शिवतत्त्वमें शिष्यात्माके विलीन होनेकी भावना करे ॥ ४६-५२ ॥

परम शिवमें योजनिकाकी शिरताके लिये ॐ नमः शिवाय बौद्धट् ।—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए अग्निकी ज्वालामें धीकी धारा छोड़ता रहे । फिर विधिगृहंक पूर्णाहुति देकर गुणापादन करे । उसकी विधि इस प्रकार है । निम्नाङ्कित मन्त्रोंको पढ़कर अग्निमें आहुतियाँ दे

'ॐ हां आत्मन् सर्वज्ञो भव स्वाहा ।' 'ॐ हौं आत्मन् नित्यतृत्सो भव स्वाहा ।' 'ॐ हूं आत्मन् अनादिद्विष्ठो भव स्वाहा ।' 'ॐ हैं आत्मन् स्वतन्त्रो भव स्वाहा ।' 'ॐ हौं आत्मन् अलुसशक्तिर्व स्वाहा ।' 'ॐ हः आत्मन् अनन्त-शक्तिर्व स्वाहा ।'

इस प्रकार छः गुणोंमें सम्पन्न आत्माको अविनाशी परमशिवसे लेकर विधिवृत् भावनापूर्वक शिष्यके शरीरमें नियोजित करे । तीव्र और मन्द शक्तिपातजनित श्रमकी शान्तिके लिये शिष्यके मन्त्रकपर न्यासपूर्वक अमृतविन्दु अर्पित करे ॥ ५३-५७ ॥

ईशान-कलश आदिके रूपमें पूजित शिवस्वरूप कलशोंको नमस्कार करके दक्षिणमण्डलमें शिष्यको अपने दाहिने उत्तराभिमुख क्षेत्रवे और देवेश्वर शिवमें प्रार्थना करे—‘प्रभो ! मेरी मूर्तिमें स्थित हुए इस जीवको आपने ही अनुग्रहीत किया है; अतः नाथ ! देवता, अग्नि तथा गुरुमें इसकी भक्ति वदाइये’ ॥ ५८-५९ ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके देवेश्वर शिवको प्रणाम करनेके अनन्तर गुरु स्वयं शिष्यको आदरपूर्वक यह आशीर्वाद दे कि ‘तुम्हारा कल्याण हो’ । इसके बाद भगवान् शिवको उत्तम भक्तिभावसे आठ पुल चढ़ाकर शिवकलशके जलसं शिष्यको स्नान करवाये और यज्ञका विसर्जन करे ॥ ६०-६१ ॥

नवासीवाँ अध्याय

एकतत्त्व-दीक्षाकी विधि*

भगवान् शिव कहते हैं—स्फन्द ! अब लघु होनेके कारण एकतत्त्विकी-दीक्षाका उपदेश दिया जाता है । यथावमर यथोचित रीतिसे स्वकीय मन्त्रद्वारा सूत्रवन्धन आदि कर्म करे । तत्प्रश्नात काल, अस्ति आदिमे लेकर शिव-पर्यन्त ममस्तु तत्त्वोंका प्रशिभावन (चिन्तन) करे । शिवतत्त्वमें अन्य सब तत्त्व धारोमे मनकोंकी भाँति पिरोये हुए हैं । शिव-तत्त्व आदिका आवाहन करके गर्भधान

आदि संस्कारोंका पूर्ववत् सम्पादन करें; किंतु मूलमन्त्रसे मर्वशुलक गमर्क्षण करे । इसके बाद तत्त्वसमूहोंसे गर्भित पूर्णाहुति प्रदान करे । उस एक ही आहुतिसे शिष्य निवाण प्राप्त कर लेता है ॥ ६-४ ॥

शिवमे नियोजन तथा भिरताका आपादन करनेके लिये दूसरी पूर्णाहुति भी देनो चाहिये । उसे देकर शिवकलशके जलमे शिष्यका अभिषेक करे ॥ ५ ॥

इस प्रकार आदि आमन्य महापुराणमें एकतत्त्व-दीक्षाविधिका वर्णनः नामक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नव्वेवाँ अध्याय

अभिषेक आदिकी विधिका वर्णनः

भगवान् शंकर कहते हैं—स्फन्द ! शिवका पूजन करके गुरु शिष्य आदिका अभिषेक करे । इससे शिष्यको श्रीकी प्राप्ति होती है । इद्यान आदि आठ दिवाओंमें आठ और मध्यमें एक—इन प्रकार नौ कलश स्थापित करे । उन आठ कलशोंमें क्रमशः धारोद, धीरोद, दन्तुदक, घृतोद, इक्षुरनोद, सुगोद, स्वादुदक तथा गर्भोद—इन आठ मुद्रोंका आवाहन करे । इसी तरह कथननुसार उनमें आठ विद्येश्वरोंका भी स्थापन करे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. दिवत्पण्डी, २. श्रीकण्ठ, ३. त्रिमृति, ४. एकरुद, ५. प्रकनेत्र, ६. शिवोत्तम, ७. मूर्खम और ८. अनन्तरुद ॥ १-४ ॥

भृथवतीं कलशमें शिव, समुद्र तथा शिव-मन्त्रकी स्थापना करे । यागमण्डपकी दिशाके स्वामीके लिये गच्छन मन्त्रान्तरमें दो हाथ लंबी और आठ अङ्गुल ऊँची एक वेदी बनावे । उपर उपर कमल आदिका आमन विछादे और उसके ऊपर आमनस्वरूप अनन्तका न्याम करके शिष्यको पूर्वभिमुख विटाकर नकलीकरणपूर्वक पूजन कर । काञ्जी, भान, मिट्ठी, भस्म, दूधाँ, गोवरके गोले, गरसों, दही और जल—इन सबके द्वारा उसके शरीरको मलकर

धारोदक आदिके क्रमसे नमस्कारमहित विद्यंशरोंके नाम-मन्त्रोदारा पूर्वोन्तक कलशोंके जलमे शिष्यको स्नान करने और शिष्य मन ही-मन वह धारणा करे कि भुजे अमृतसे नहलाया जा रहा है ॥ ५-८३ ॥

तत्प्रश्नात उसे दो श्वेत बन्ध पहनाकर शिवके दक्षिण भागमें विठावे और पूर्वोन्तक आग्नेय पुनः उस शिष्य ने पहलेकी ही भाँति पूजा करे । इसके बाद उसे पगड़ी, पुकुट, योग-विडिका, कर्तरो (कैंचो, चाकू या कटार), वांझाया, अक्षमाला और पुस्तक आदि अर्पित कर । बाहनके लिये शिष्यिका आदि भी दे । तस्मन्तर गुरु उस शिष्यको अधिकार मौष्ठिक करे । ‘आजमें तुम भलीभाँति जानकर, अ-छी तरह जांच-परत्वकर किमीको दीक्षा, व्याख्या और प्रतिष्ठा आदिका उपदेश करना’—यह आशा सुनावे । तस्मन्तर शिष्यका अभिवादन स्वीकार कर और महेश्वरको प्रणाम करके उसमें विद्य-समृहका निवारण करनेके लिये इस प्रकार प्रार्थना कर—‘प्रभो शिव ! आप गुरु-स्वरूप हैं; आपने इस शिष्यका अभिषेक करनेके लिये मुझ आदेश दिया था, उसके अनुसार मैंने इसका अभिषेक कर दिया । यह महितामें पारंगत है’ ॥ ९-१३३ ॥

* सोमशम्भुकी ‘कर्मकाण्ड-कमाचर्यीमें इसके पूर्व ‘त्रिपञ्चदीक्षा’का विवरण वर्णन है ।

मन्त्रचक्रकी तुमिके लिये पाँच-पाँच आहुतियाँ हैं। फिर पूर्णाहुति-होम करे। इसके बाद शिष्यको अपने दाहिने गिरावे। शिष्यके दाहिने हाथकी अङ्गुष्ठ आदि अङ्गुलियोंको क्रमशः दग्ध दर्भाङ्ग-शम्परौसे 'उत्परत्व'के लिये लाभिष्ठत करे। उसके हाथमें फूल देकर उससे कलश, अग्नि एवं शिवको प्रणाम करवावे। तदनन्तर उसके लिये कर्तव्यका

आदेश दे—‘नुम्हे शास्त्रके अनुसार भलीमाँसि परीक्षा करके शिष्योंको अनुग्रहीत करना चाहिये।’ मानव आदिका राजाकी भाँति अभिषेक करनेसे अभीष्टकी प्राप्ति होती है। ‘ॐ इर्णि पश्चु हूँ फट्।’—यह अखराज पात्रपत-मन्त्र है। इसके द्वारा अखराजका पूजन और अभिषेक करना चाहियेह। १४-१८॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें अभिषेक आदिकी विधिका वर्णन नामक नव्येवाँ अध्याय पूरा हुआ। १०॥

← ३ →

इक्यानवेवाँ अध्याय

देवार्चनकी महिमा तथा विविध मन्त्र एवं मण्डलका कथन

भगवान् शंकर कहने हैं—स्कन्द! अभिषेक हो जानेपर दीक्षित पुरुष शिव, विष्णु तथा मूर्य आदि देवताओंका पूजन करें। जो शङ्ख, भेरी आदि वाद्योंकी घनिके माथ देवताओंको पञ्चगव्यमें स्नान कराता है, वह अपने कुलका उद्धार करके स्वयं भी देवलोकको जाता है। अग्निनन्दन! कोठि महत्व वर्तमें जो पाप उत्पार्जित किया गया है, वह सब देवताओंको धार्मा अभ्यङ्ग लगानेमें भस्म हो जाता है। एक आढ़क वी आदिसे देवताओंको नहलाकर मनुष्य देवता हो जाता है। १-३॥

चन्दनका अनुलेप लगाकर गन्ध आदिसे देवपूजन करे तो उपका भी बही फल है। थोड़से आथासके द्वारा मनुष्टि पटकर यदि सदा देवताओंकी स्तुति की जाय तो वे भूत और भविष्यका ज्ञान, मन्त्रज्ञान, भोग तथा मोक्ष प्रगति करनेवाले होते हैं। ४२॥

यदि कोई मन्त्रके शुभाशुभ फलके विषयमें प्रश्न करे तो प्रश्नकर्त्तके गंगिस प्रश्नवाक्यके अक्षरोंकी संख्या गिन लें। उस संख्यामें दोसे भाग है। एक बचे तो शुभ और शुन्य या दो बचे तो अशुभ फल जाने। तीनसे भाग देनेपर मूल धातुलय जे.वका परिचय मिलता है, अर्थात् एक शेष रहे तो बातजीव, दो शेष रहे तो पित्त-जीव और तीन शेष रहे तो कफजीव जाने। चारसे भाग देनेपर ब्राह्मणादि वर्ग-शुद्धि होती है। तात्पर्य यह कि एक बाकी बचे तो उस मन्त्रमें ब्राह्मण-शुद्धि, दो बचनेपर क्षत्रिय-शुद्धि,

तीन बचनेपर वैश्य-शुद्धि और चार बोप रहनेपर शूद्ध-शुद्धि करे। पाँचमे भाग देनेपर शेषके अनुसार भूततत्त्व आदिका बोध होता है, अर्थात् एक आदि बोप रहनेपर पृथिवी आदि तत्त्वका परिचय मिलता है। इसी प्रकार जय-पराजय आदिका ज्ञान प्राप्त करे। ५-६॥

यदि मन्त्र-पदके अन्तमे एक त्रिक (तीन बीजाक्षर) हो, अधिक बीजाक्षर हो अथवा दो प, म एवं क हो तो इनमें प्रथम वर्ग अशुभ, चाच्चवाला मध्यम तथा अन्तिम वर्ग शुभ है। यदि अन्तमें मंख्या-मनूह हो तो वह जीवन कालके दृग् वर्षका शुभक है। यदि दृग्का मंख्या हो तो दस वर्षके पश्चात् उस मन्त्रके माध्यकार यमगजका निश्चय ही आक्रमण हो सकता है। ७-१॥

मूर्य, गणपति, शिव, दुग्ध, लङ्घी तथा श्रीविष्णु भगवान्के मन्त्रोंके अशरोद्दारा ज्ञामें तत्पर कठिनो (अङ्गुठ अङ्गुली) से स्पर्श कियं गंय कमलपत्रमें गोमूत्राकार रेखापर एक त्रिकसे आरम्भ कर चारह त्रिक-पर्यन्त लिखे। अर्थात् उक्त मन्त्रोंके तीन-तीन अशरोंका गमुदाय एकसे लेकर बारह स्थानोंतक पृथक्-पृथक् लिखे। इसी प्रकार चौसठ कोष्ठोंका एक मण्डल बनाकर उसमें मस्त (चं), व्योम (हं) और मस्त (चं)—इन तीन बीजों का त्रिक पहले कोष्ठसे लेकर आठवें कोष्ठतक लिखे। इन सब स्थानोंपर पासा फेंकनेमें अथवा स्पर्श करनेपर शुभाशुभका परिज्ञान होता है। विषम मंख्यवाले स्थानोंपर

* मोरशम्भुने अपने ग्रन्थमें यहाँ साधसाधिषेक तथा अस्त्राभिषेकका भी विवरण दिया है। (दोस्ते 'कर्त्तव्याण्ड-क्रमाबली' इलोक-सं० १०८७ से १११३ तक)

पासा पड़े या स्पर्श हो तो शुभ और सम संख्यापर पड़े तो अशुभ फल होता है ॥ ८-१० ॥

‘यं हं र्थं’—इन तीन वीजोंके आठ त्रिक हैं । ये ख्वज आदि आठ आयोंके प्रतीक हैं । इन आयोंमें जो सम है, वे अशुभ हैं । विषम आय शुभग्रद कहे गये हैं ॥ ११ ॥

‘क’ आदि अक्षरोंको सोलह ख्वरोंसे तथा सोलह स्वरोंको ‘क’ आदिसे युक्त करके उन सबके साथ ‘आं हीं’ यह पल्लव लगा दे । पल्लवयुक्त इन स्वरोंका द्वादश अक्षरोंको आदिमें रखकर उनके साथ त्रिपुराके नाम-मन्त्रको पृथक्-पृथक् सम्बद्ध करे । उनके आदिमें ‘आं हीं’ जोड़े और अन्तमें ‘नमः’ पद लगा दे । इस प्रकार पूजनकर्मके उपयोगमें आनेवाले इन मन्त्रोंका प्रस्तार चीस हजार एक-मौ साठकी संख्या तक पहुँच जाता है ॥ १२-१३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘नाना-मन्त्र आदिका कथन’ नामक इक्षणवेदां अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

बानवेदां अध्याय

प्रतिष्ठाके अङ्गभूत शिलान्यासकी विधिका वर्णन

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं संक्षेपसे और क्रमशः प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा । पीठ शक्ति है और लिङ्ग शिव । इन दोनों (पीठ और लिङ्ग अथवा शक्ति और शिव) के योगमें शिव-सम्बन्धी मन्त्रोदारा प्रतिष्ठाकी विधि सम्भादित होती है । प्रतिष्ठाके ‘प्रतिष्ठा’ आदि पाँच भेद हैं । उनका स्वरूप तुझे बता रहा हूँ । जहाँ ब्रह्मशिलाका योग हो, वहाँ विशेषरूपसे की हुई स्थापना ‘प्रतिष्ठा’ कही गयी है । पीठपर ही यथायोग्य जो अर्चा-विग्रहको पधाराया जाता है, उसे ‘स्थापन’ कहते हैं । प्रतिष्ठा (ब्रह्मशिला) से भिन्नकी स्थापनाको ‘स्थिर स्थापन’ कहते हैं लिङ्गके आधाररूपक जो स्थापना होती है, उसे ‘उत्थापन’ कहा गया है । जिस प्रतिष्ठामें लिङ्गको आरोपित करके विद्वानोदारा उसका संस्कार किया जाता है, उसकी ‘आस्थापन’ संज्ञा है । ये शिव-प्रतिष्ठाके पाँच भेद हैं । ‘आस्थान’ और ‘उत्थान’ भेदसे विष्णु आदिकी प्रतिष्ठा दो प्रकारकी मानी गयी है । इन सभी प्रतिष्ठाओंमें चैतन्य-स्वरूप परमशिवका निषेजन करे । ‘पदाञ्चा’ आदि भेदसे

* प्रतिष्ठा, स्थापन, स्थिर स्थापन, उत्थापन और आस्थापन ।

† ‘अञ्चा’ छः कहे गये हैं—नस्त्राञ्चा, पदाञ्चा, वर्णाञ्चा,

‘आं हीं’—इन वीजोंसे युक्त सरस्वती, चण्डी, गौरी तथा दुर्गाके मन्त्र हैं । श्रीदेवीके मन्त्र ‘आं शीं’ इन वीजोंसे युक्त हैं । सूर्यके मन्त्र ‘आं क्षीं’ इन वीजोंसे, गणेशके मन्त्र ‘आं गं’ इन वीजोंमें तथा श्रीहरिके मन्त्र ‘आं खं’ इन वीजोंसे युक्त हैं । कादि व्यज्ञन अक्षरों तथा अकारादि सोलह स्वरोंको मिलाकर इक्षावन होते हैं । इस प्रकार स्वरर कादि अक्षरोंको आदिमें और स्वर ‘क्ष’ से लेकर ‘क’ तकके अक्षरोंको अन्तमें रखनेसे सम्पूर्ण मन्त्र बनते हैं ॥ १४-१६ ॥

१४० सम्पूर्ण मण्डल होनेसे सूर्य, शिव, देवी दुर्गा तथा विष्णुमेंसे प्रत्येकके तीन सौ नाठ मण्डल होते हैं । अभिशिक्त गुरु इन सब मन्त्रों तथा देवताओंका जप-ध्यान करे तथा शिष्य एवं पुत्रको दीक्षा भी दे ॥ ७३ ॥

प्रासादोंमें भी पाँच प्रकारकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है+ । प्रासादका इच्छासे पृथ्वीकी परीक्षा करे । जहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो और धीकी सुगन्ध आनी हो, वह भूमि ब्राह्मणके लिये उत्तम बतायी गयी है । इसी तरह क्रमशः क्षत्रियके लिये लाल तथा रक्तकी-सी गन्धवाली मिट्टी, वैश्यके लिये पीली और सुगन्धयुक्त मिट्टीवाली तथा शूद्रके लिये काली एवं सुरकी-गी गन्धवाली मिट्टीमें युक्त भूमि भेड़ कही गयी है ॥ १-७ ॥

पूर्व, ईशान, उत्तर अथवा मध्य ओर नीची और मध्यमें ऊँची भूमि प्रशस्त मानी गयी है+ । एक हाथ गहराईतक खोदकर निकाली हुई मिट्टी यदि किर उस

मन्त्राच्चा, कलाच्चा और सुबनाच्चा । इनमेंसे प्रथमको छोड़कर दोष पाँचोंके भेदसे वहाँ पाँच प्रकारकी प्रतिष्ठाका निरैक्षण्य किया गया है ।

+ ‘समराङ्गणमूलभारभ्ये भी इससे बिली-जुली बान करी गयी है ...

“अनूपरा बहुतुणा शस्ता दिनभोत्सरपल्लवा ।

प्रागीजानप्लवा सर्वलवा वा दर्पणोदरा ॥

(आठवाँ ३०, भूमि-परीक्षा ६-७)

गहुमें डाली आनेपर अधिक हो जाय तो वहाँकी भूमिको उत्तम समझे । अथवा जल आदिसे उसकी परीक्षा करे । * दहुी और कोयले आदिसे दूषित भूमिका खोदने, वहाँ गौओंको उत्तराने अथवा शारवार जोनने आदिके द्वारा अच्छी तरह शोधन करे । नगर, ग्राम, दुर्ग, गृह और प्रासादका निर्माण करानेके लिये उत्त प्रकारसे भूमि-शोधन आवश्यक है । मण्डपमें द्वारपूजासे लेकर मन्त्रतर्पण-पर्यन्त नम्बूर्ण कर्मका सम्पादन करके विधिपूर्वक घोरास्त्र सहस्र्याग करे । बराबर करके लिपी-पुती भूमिपर दिशाओंका साधन करे । सुवर्ण, अक्षत और दहीके द्वारा प्रदक्षिणकमसे रेखाएँ लींचे । मध्यभागसे ईशानकोष्ठमें स्थित भरे हुए कलशमें शिवका पूजन करे । फिर बास्तुकी पूजा करके उस कलशके जलसे कुदाल आदिको संचिते । मण्डपसे बाहर राक्षसों और ग्रहोंका पूजन करके दिशाओंमें विधिपूर्वक बलि दे ॥ ८-१३३ ॥

कलशमें पूजा करके लग्न आनेपर अग्निकोणबत्तीं कोष्ठमें पहले जिसका अभिषेक किया गया था, उस मधुलिंग कुदालसे भरती खुदावे और मिट्टीको नैऋत्यकोणमें फेंके । खोदे गये गहुमें कलशका जल गिरा दे । फिर भूमिका अभिषेक करके कुदाल आदिको नहलकर उसका पूजन करे । तत्पश्चात् दूसरे कलशको दो वस्त्रोंमें आच्छादित करके ब्राह्मणके कंधेपर रखकर गाजे-बाजे और वेदध्वनिके साथ नगरकी पूर्व सीमाके अन्ततक, जितनी दूर जाना अभीष्ट हो, उत्तनी दूर ले जाय और वहाँ क्षणभर ठहरकर बहुमें नगरके चारों ओर प्रदक्षिणकमसे चलते हुए ईशान-

* 'समराङ्गश्चित्तारके अनुसार जलसे परीक्षा करनेकी विधि इस प्रकार है—गहु खोदकर उसकी मिट्टी निकालकर मिट्टीसे ही पूरित करनेके बजाय पानी भरना चाहिये । पानी भरकर सी कदम (पदशतं ब्रेत्) चलना चाहिये । पुनः लौट आनेपर यदि पानी जिसना था उतना ही रहे तो भेड़, कुछ कम ($\frac{1}{2}$) हो जाय तो मध्यम और बहुत कम ($\frac{1}{4}$) अथवा और अधिक कम हो जाय तो वर्ज्य—निकृष्ट समझना चाहिये । समराङ्गकी इस प्रक्रियामें मत्स्यपुराण-प्रक्रियाकी छाप है । परंतु मयमुनिने इस प्रक्रियाके सम्बन्धमें और भी कठोरता दिखायी है । उसके अनुसार गहुमें साथेकाल पानी भरा जाय और दूसरे दिन प्रातः उसकी परीक्षा करनी चाहिये । यदि उसमें प्रातः भी कुछ पानीके दर्शन हो जायें तो उसे अस्युकृष्ट भूमि समझना चाहिये । इसके विपरीत गुणकी भूमि अनिष्टादियनी तथा वर्ज्य है ।

कोणतक उस कलशको पुमावे । साथ ही सीमान्तचिह्नोंका अभिषेक करता रहे ॥ १४-१८ ॥

इस प्रकार उद्गतलशको नगरके चारों ओर मुमाकर भूमिका परिग्राह करे । इस क्रियाको 'अर्घ्यदान' कहा गया है । तदनन्तर शत्रुघ्नेषका निवारण करनेके लिये भूमिको इतनी गहराईतक खुदवावे, जिससे कंडह-पत्थर अथवा पानी दिखायी देने लो । अथवा यदि शत्र्य (दहुी आदि)-का ज्ञान हो जाय तो उसे विधिपूर्वक खुदवाकर निकाल दे । यदि कोई लग्न-कालमें प्रज्ञन पूछे और उसके मुखसे अ, क, च, ट, त, प, स और ह—इन वर्गोंके अक्षर निकलें तो इनकी दिशाओंमें शत्र्यकी स्थिति सूचित होती है । अथवा द्विज आदि वहाँ गिरें तो ये सब उस स्थानमें शत्र्य होनेकी सूचना देते हैं । कतर्कि अपने अङ्ग-विकारसे उसके ही बराबर शत्र्य होनेका निश्चय करे । पश्च आदिके प्रवेशमें, कीर्तनसे तथा पश्चियोंके कलरबोंसे शत्र्यकी दिशाका जान प्राप्त करे ॥ १९-२२ ॥

किसी पहुंचपर या भूमिपर अकारादि आठ वर्गोंसे युक्त मातृका-वर्गोंको लिले । वर्गके अनुसार क्रमशः पूर्वसे लेकर ईशानतककी दिशाओंमें शत्र्यकी जानकारी प्राप्त करे । 'अ' वर्गमें पूर्व दिशाकी ओर लोहा होनेका अनुमान करे । 'क' वर्गमें अग्निकोणकी ओर कोयला जाने । 'च' वर्गमें दक्षिण दिशाकी ओर भस्त तथा 'ट' वर्गमें नैऋत्यकोणकी ओर अस्तिका होना समझे । 'त' वर्गमें पश्चिम दिशाकी ओर और भस्त तथा 'प' वर्गमें वायव्यकोणकी ओर खोपड़ो, 'य' वर्गमें उत्तर दिशाकी ओर मुद्दे और कीड़े आदि और 'स' वर्गमें ईशानकोणकी ओर लोहेका होना चाहावे । इसी प्रकार 'ह' वर्गमें चाँदी होनेका अनुमान करे । 'क्ष' वर्गयुक्त दिग्भागसे उसी दिशामें अन्य अनर्थकारी वस्तुओंके होनेका अनुमान करे । एक-एक हाथ लवे नौ शिलाखण्डोंका प्रोक्षण करके, उन्हें आठ-आठ अङ्गुल मिट्टीके भीतर गाढ़ दे । फिर वहाँ पानी डालकर उनपर मुद्ररसे आधात करे । जब वे प्रस्तर तीन चौथाई भागतक गहुमें भीतर धैस जायें, तब उस खातको भरकर, लीप-पोतकर वहाँकी भूमिको बराबर कर दे । ऐसा करवाकर गुरु सामान्य अर्घ्य हाथमें लिये आगे चढ़ाये जानेवाले मण्डल (या मण्डप) की ओर जाय । मण्डपके द्वारपर द्वारपालोंका पूजन (आदर-स्तकार) करके पश्चिम द्वारसे उसके भीतर प्रवेश करे ॥ २३-२८ ॥

वहाँ आत्मशुद्धि आदि कुण्ड-मण्डपका संस्कार करे ।

कलश और वार्षनी आदिका स्थापन करके लोकपालों तथा शिवका अर्चन करे। अग्निका जनन और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। तत्पश्चात् गुरु यजमानके साथ शिलाओंके स्नान-मण्डपमें जाय। वे शिलाएँ प्रासाद-लिङ्गके चार पाये हैं। उनके नाम हैं—कमशः धर्म, शान, वैगम्य और एश्वर्यः अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि। उनकी ऊँचाई आठ अङ्गुलकी हो तो अच्छी मानी गयी है। वे चौकोर हों और उनकी लचाई एक हाथर्की हो; इस मापमें प्रस्तरकी शिलाएँ बनवानी चाहिये। इंटोकी शिलाओंका माप आधा होना चाहिये। प्रस्तरमण्डपमें बने हुए प्रासादमें जो शिलाएँ उपयोगमें लायी जायें अथवा इंटोके बने हुए मन्दिरमें जो इंटे लगे, उनमेंमें नौ शिलाएँ अथवा इंटे बड़े आदि चिह्नोंसे अंकित हों, अथवा पांच शिलाएँ कमलके चिह्नोंसे अंकित हों। इन अंकित शिलाओंमें ही मन्दिर-निर्माणका कार्य आरम्भ किया जाय ॥२९-३२॥

पांच शिलाओंके नाम इस प्रकार हैं—नन्दा, भद्रा, जया, रिता और पूर्णा। इन पांचोंके निधिकुम्भ इस प्रकार हैं—पद्म, महापद्म, दाढ़, मकर और सुमुद्र। नौ शिलाओंके नाम इस प्रकार हैं—नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, अजिता, अपराजिता, विजया, मङ्गला और नवमी शिला भरणी है। इन नवोंके निधिकलश कमशः इस प्रकार जानने चाहिये—सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, पुष्पदन्त, जय, विजय, कुम्भ, पूर्व और उत्तर। प्रणवमय आसन देकर अख-मन्त्रमें ताङ्गन और उल्लेखन करनेके पश्चात् इन सब शिलाओंको सामान्य रूपसे कवच मन्त्रसे अवगुणित करना चाहिये। अख-मन्त्रके अन्तमें हूँ फट् ल्पाकर उसका उच्चारण करते हुए मिट्टी, गोवर, गोमूत्र, कशाय तथा गन्धयुक्त जलसे मलभ्नान करावे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पञ्चगम्य और पञ्चाभूतमें स्नान कराना चाहिये। इसके बाद गन्धयुक्त जलसे स्नान करनेके अनन्तर अपने नाममें अङ्गुष्ठ मन्त्रद्वारा फल, रत्न, सुवर्ण तथा गोशुद्धके जलसे और चन्दनसे शिलाओंको चर्चित करके उसे नवोंसे आच्छारित करे ॥ ३३-३०॥

वहून्त आग्न देवक, यागमण्डपकी पांकमा करके, उस शिलाओं के जाय और हृदय-मन्त्रद्वारा उसे अग्ना अथवा कुशके विस्तरपर सुला दे। वहाँ पूजन करके, बुद्धिसे लेकर पुथिकी-पर्यन्त तत्त्वसमूहोंका न्यास करनेके पश्चात्, विष्वण्ड-व्यापक तत्त्वब्रह्मका उन शिलाओंमें कमशः

न्यास करे। बुद्धिसे लेकर चित्ततक, चित्तके भीतर मातृकातक और तन्मात्रासे लेकर पुथिकी-पर्यन्त शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा आत्मतत्त्वकी रिति है। पुष्पमाला आदिसे चिह्नित स्थानोंपर क्रमशः तीनों तत्त्वोंका अपने मन्त्रसे और तत्त्वशंकोंका हृदय-मन्त्रसे पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—ॐ हूं शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हूं विद्यातत्त्वाय नमः । ॐ हूं विद्यातर्त्त्वाधिपाय विष्णवे नमः । ॐ हूं आत्मतत्त्वाय नमः । ॐ हूं आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मे नमः ॥ ४१-४६॥

प्रत्येक तत्त्व और प्रत्येक शिलामें पृथ्वी, अंगम, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश इस आठ मूर्तियोंका न्यास करें। फिर क्रमशः शार्व, पश्युपनि, उम, रुद्र, भव, ईश्वर (या ईशान), महादेव तथा भीम इन मूर्तीश्वरोंका न्यास करे। मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरोंके मन्त्र इस प्रकार हैं—३५ धरामूर्तये नमः । ३५ धरामूर्तये नमः । ३५ धराधिपतये शार्णवे नमः । इनके पाद अनन्त आदि लोकपालोंका कमशः अपने मन्त्रमें न्यास करे। इन्त आदि लोकपालोंके बीज आगे बनाये जानेवाले क्रममें यों जानने चाहिये—लूँ, रूँ, यू, वूँ, श्रूँ, एँ, एूँ, सूँ, हूँ, क्षूँ। यह नौ शिलाओंके पक्षमें बनाया गया है। जब पांच पदकी शिलाएँ हों, तब प्रत्येक तत्त्वमयी शिलामें स्पर्शपूर्वक पृथ्वी आदि पांच मूर्तियोंका न्यास करे। उन मूर्तियोंके पांच मूर्तोंग इस प्रकार हैं—ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और महाशिव। इन पांचोंका उक्त पांचों मूर्तियोंमें पूर्ववत् पूजन करना चाहिये ॥ ४७-५२॥

‘३५ पुथिकीमूर्तये नमः । ३५ पुथिकीमूर्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः ।’ इत्यादि मन्त्र पूजनके लिये जानने चाहिये। क्रमशः पांच कलशोंका अपने नाम-मन्त्रोंसे पूजन करके उन्हें स्थापित करे। मध्यशिलाके क्रममें विधिपूर्वक न्यास करे। विष्णु, कुशा और तिलोंसे अख-मन्त्रद्वारा प्राकारकी कल्पना करे। कुण्डोंमें आधार-शक्तिका न्यास और पूजन करके तत्त्वों तत्त्वाधियों, मूर्तियों तथा मूर्तीश्वरोंका घृत आदिसे तर्पण करे। तत्पश्चात् ब्रह्म-शुद्धिके लिये मूलके अङ्गभूत वद्य-मन्त्रोंद्वारा कमशः सौ-सौ आहुतियाँ देवक शूण्यहुति-पर्यन्त होम करनेके पश्चात् शान्ति-जलसे शिलाओंका प्रोक्षणपूर्वक पूजन करे। कुशाओंद्वारा स्पर्श करके प्रत्येक तत्त्वमें क्रमशः सांनिध्य और संधान करके फिर

शुद्ध-स्थान करे। इस प्रकार जा-जाकर तीन भागोंमें कर्म करे। मन्त्र यों हैं—‘ॐ आम् ईम् आत्मतत्त्वविद्यात्तत्त्वाभ्यां नमः।’ इति ॥ ५४-५० ॥

कुशके मूल आदिसे कमशः तत्त्वेशादि तीनका सर्व करे। इसके बाद हस्त-दीर्घके प्रयोगपूर्वक तत्त्वानुसंधान करे। इसके लिये मन्त्र यों है—‘ॐ ई द विद्यासत्त्वविद्यतत्त्वाभ्यां नमः।’ तदनन्तर धी और मधुसे भरे हुए पञ्चरत्नयुक्त और पञ्चगव्यसे अप्रभागमें अभिषिक्त पाँच कलशोंका, जिनके

इस प्रकार आदि आनंद महापुण्यमें प्रतिहाके अङ्गमूर्ति शिलान्यासकी विधिका वर्णन।
नामक बानबेदां अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

तिरानबेदाँ अध्याय

वास्तुपूजा-विधि

भगवान् शिख कहते हैं—स्कन्द। तदनन्तर प्रापादको आमृत्रित करके वास्तुमण्डलकी रचना करे। गमतल चोकोर क्षेत्रमें चौंसठ कोष बनाये। कोनोंमें दो बशोंका विन्यास करे। विकोणगमिनी आठ रज्जुएँ अङ्गित करे। वे द्विपद और षट्पद स्थानोंके रूपमें विभक्त होंगी। उनमें वास्तुदेवताका पूजन करे, जिउकी विधि इस प्रकार है—‘कुञ्जित केशधारी वास्तुपुरुष उत्तान यो रहा है। उसकी आङ्गति असुरके समान है।’ पूजाकालमें उसके इसी स्वरूपका स्मरण करना चाहिये, परतु दीवार आदिकी नींव रखते समय उसका ध्यान यों करना चाहिये कि ‘वह औंधे-॑२ पढ़ा हुआ है। कोहनीसे सटे हुए उसके दो शुटने वायव्य और अग्निकोणमें स्थित हैं। अर्थात् दाहिना शुटना वायव्यकोणमें और बायाँ शुटना अग्निकोणमें स्थित है। उसके जुड़े हुए दोनों चरण पैतृ (नैऋत्य) दिशामें स्थित हैं तथा उसका सिर ईशानकोणकी ओर है। उसके हाथों-की अङ्गलि वक्षःस्थलपर है’ ॥ १—४ ॥

उस वास्तुपूजके शरीरपर आरूढ़ हुए देवताओंकी पूजा करनेसे वे शुभकारक होते हैं। आठ देवता कोणधिपति माने गये हैं, जो आठ कोणधोंमें स्थित हैं। कमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित मरीचि आदि देवता छः-छः, पदोंके स्वामी कहे गये हैं और उनके बीचमें विराजमान ब्रह्मा चार पदोंके स्वामी हैं। शेष देवता एक-एक पदके अधिष्ठाता बताये गये हैं। समस्त नाड़ी-सम्प्रात, महामर्म, कमल, फल, विशूल, स्वस्तिक, वज्र, महास्वस्तिक,

देवता पञ्च-लेकपाल हैं, अपने मन्त्रोंसे पूजन करके उनके निकट होम करे। फिर समस्त शिलाओंके अधिदेवताओंका ध्यान करे। वे शिलाधिदेवता विद्यास्वरूप हैं, स्नान कर चुके हैं। उनकी अङ्गकान्ति मुकुरोंके समान उद्दीप्त होती है। वे उज्ज्वल बल धारण करते हैं और समस्त आभूषणोंसे सम्पन्न हैं। न्यूनतादि दोष दूर करनेके लिये तथा वास्तु-भूमिकी शुद्धिके लिये अङ्ग-मन्त्रद्वारा पूर्णाहुति-पर्यन्त सौ-सौ आहुतियाँ दे ॥ ६१-६५ ॥

इस प्रकार आदि आनंद महापुण्यमें प्रतिहाके अङ्गमूर्ति शिलान्यासकी विधिका वर्णन।

—◆◆◆—

सम्पुट, त्रिकटि, मणिकन्ध तथा सुविशुद्ध पद—ये बाह्य मर्म-स्थान हैं। वास्तुकी भित्ति आदिमे इन स्वका पूजन करे। ईशान (रुद्र) को धून और अश्रत चढ़ावे। पर्जन्यको कमल और जल अर्पित करे। जयन्तको कुकुमभरजित निर्मल पताका दे। महेन्द्रको गन्मिश्रित जल, सूर्यको धूम्र वर्णका चँदोवा, सत्यको शृतयुक्त गेहूँ तथा भूशको उद्दाद-भात चढ़ावे। अन्तरिक्षको विमान (विद्युत फलका गूदा या औषध-विशेष) अथवा सकु (गत्तु) निर्वेदित करे। ये पूर्व दिशाके आठ देवता हैं ॥ ५-१० ॥

अग्निदेवको मधु, दूध और धीसे भरा हुआ मुक् अर्पित करे। पशुको लाजा और वितयको सुतर्ण मिश्रित जल दे। गृहग्रतको शहद तथा यमराजको पलोदन भेट करे। गन्धर्वनाथको गन्ध, भृगुराजको पश्चिजिह्वा तथा मृगको यवपर्ण (जौके पत्ते) चढ़ावे—ये आठ देवता दक्षिण दिशामें पूजित होते हैं। ‘पितृ’ देवताको तिळ-भिश्रित जल अर्पित करे। ‘दौवारिक’ नामवाले देवताको बृक्ष-जनित दूष और दन्तधावन धेनुमुद्राके प्रदर्शनपूर्वक निर्वेदित करे। ‘मुग्रीव’को पूआ चढ़ावे, पुष्पदन्तको कुशा अर्पित करे व बहानको लाल कमल भेट करे और असुरको सुरा एवं आसव चढ़ावे। शोषको धीसे ओतप्रोत भात तथा (पाप यक्षमा) रोगको शृत-मिश्रित माँड़ या लावा चढ़ावे। ये पश्चिम दिशाके आठ देवता कहे गये हैं ॥ ११-१६ ॥

मारुतको पीले रंगका ध्वज, नागदेवताको नागकेशर, मुख्यको भक्ष्यपदार्थ तथा भल्लाटको छौक-बधारकर मूँगकी

दाल अर्पित करे । सोमको बृतमिश्रित खीर, चरकको शालूक, आदितिको लोपी तथा दितिको पूरी चढ़ावे । ये उत्तर दिग्गजके आठ देवता कहे गये । मध्यवर्ती ब्रह्माजीको मोदक चढ़ावे । पूर्व दिशामें छः पदोंके उपभोक्ता मरीचिको भी मोदक अर्पित करे । ब्रह्माजीसे नीचे अग्निकोणवर्ती कोष्ठमें स्थित सविता देवताको लाल फूल चढ़ावे । सुनितासे नीचे वहिकोणवर्ती कोष्ठमें सावित्री देवीको कुशोदक अर्पित करे । ब्रह्माजीसे दक्षिण छः पदोंके अधिडाता विवत्सानको लाल चन्दन चढ़ावे ॥ १७—२० ॥

ब्रह्माजीसे नैऋत्य दिशामें नीचेके कोष्ठमें इन्द्रदेवताके लिये हल्दी-भात अर्पित करे । इन्द्रले नीने नैऋत्यकोणमें इन्द्रजयके लिये पिण्डल निवेदित करे । ब्रह्माजीसे पञ्चिम छः पदोंमें विराजमान मित्र देवताको गुड-मिश्रित भात चढ़ावे । वायव्यकोणसे नीचेके पदमें रुद्रदेवताको धृतपवव अज अर्पित करे । रुद्र देवतासे नीचेके कोष्ठमें, रुद्र दासके लिये आदर्मांस (औषधविशेष) निवेदित करे । तत्पश्चात् उत्तरवर्ती छः पदोंके अधिष्ठाता पृथ्वीधरके निमित्त उद्देश्य का बना नैवेद्य चढ़ावे । ईशानकोणके निमवर्तो पदमें 'आप'की और उससे भी नीचेके पदमें आपवत्सकी विधिवत् पूजा करके उन्हें क्रमशः दही और खीर अर्पित करे ॥ २१—२४ ॥

तत्पश्चात् (चौर्थ पदवाले वास्तुमण्डलमें) मध्य-देशवर्ती चार पदोंमें स्थित ब्रह्माजीको पञ्चव्यव्य, अक्षत और बृतसहित चह निवेदित करे । तदनन्तर ईशानसे छेकर वायव्यकोण-पर्यन्त चार कोणोंमें स्थित चरकी आदि चार मानुकाओंका वास्तुके बाल्यभागमें क्रमशः पूजन करे जैसा कि क्रम बताया जाता है । चरकीको क्षमृत मांस (फलका गूदा), विदारीको दही और कमल तथा पूतनाको पल, पित्त एवं रुधिर अर्पित करे । पाप-राक्षसीको अस्य (हड्डी), मांस, पित्त तथा रुक चढ़ावे । इसके पश्चात् पूर्व दिशामें स्कन्दको उद्द-भात चढ़ावे । दक्षिण दिशामें अर्यमाको लिच्छवी और पूआ चढ़ावे तथा पञ्चिम दिशामें जग्मकको रक्त-मांस अर्पित करे । उत्तर दिशामें पिलिपिञ्चको रक्तवर्णका अज और पुष्प निवेदित करे । अथवा सम्पूर्ण वास्तुमण्डलका कुशः दही, अक्षत तथा जलसे ही पूजन करे ॥ २५—३० ॥

धर और नगर आदिमें इक्षासी पदोंसे युक्त वास्तुमण्डलका पूजन करना चाहिये । इस वास्तुमण्डलमें

इस प्रकार आदि आग्नेय भाषापुराणसे 'वास्तुपूजाकी विधिका वर्णन' नामक लिखनबेबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

विपद और वश्यपद रज्जुएँ पूर्ववत् बनानी चाहिये । उसमें इश आदि देवता 'पदिक' (एक-एक पदके अधिष्ठाता) माने गये हैं । 'आप' आदिकी स्थिति दो-दो कोष्ठमें बतायी गयी है । मरीचि आदि देवता छः पदोंमें अधिष्ठित होते हैं और ब्रह्मा नै पदोंके अधिष्ठाता कहे गये हैं । नगर, ग्राम और खेट आदिमें शतपद-वास्तुका भी विधान है । उसमें दो बंश कोणगत होते हैं । वे सदा दुर्जय और दुर्धर कहे गये हैं ॥ ३१—३३ ॥

देवालयमें जैसा न्यास बताया गया है, वैसा ही शतपद-वास्तुमण्डलमें भी विहित है । उसमें स्कन्द आदि ग्रह 'वश्यपद' (छः पदोंके अधिष्ठाता) जानने चाहिये । चरकी आदि पॉच पॉच पदोंकी अधिष्ठात्री कही गयी हैं । रज्जु और बंश आदिका उल्लेख पूर्ववत् करना चाहिये । देश (या राष्ट्र) की स्थानाके अवसरपर चौतीस सौ पदोंका वास्तुमण्डल ढोना चाहिये । उसमें मध्यवर्ती ब्रह्मा चौंसठ पदोंके अधिष्ठाता होते हैं । मरीचि आदि देवताओंके अधिकारमें चौवंश-चौवन पद होते हैं । 'आप' आदि आठ देवता प्रोंके स्थान छौतीस-छत्तीस पद बताये गये हैं । वहाँ ईशान आदि नौ नौ पदोंके अधिष्ठाता कहे गये हैं और स्कन्द आदि सौ-सौ पदोंके । चरकी आदिके पद भी तदनुसार ही हैं । रज्जु, बंश आदिकी कल्पना पूर्ववत् जाननी चाहिये । योस इजार पदोंके वास्तुमण्डलमें भी वास्तुदेवकी पूजा होती है—यह जानना चाहिये । उसमें देश-वास्तुकी भाँति नौ गुना न्यास करना चाहिये । पञ्चीस पदोंका वास्तुमण्डल चित्तास्थापनके समय विहित है । उसकी 'वताल' सज्जा है । दूसरा नौ पदोंका भी होता है । इसके सिवा एक सोलह पदोंका भी वास्तुमण्डल होता है ॥ ३४—३९ ॥

पट्टकोण, त्रिकोण तथा बृत आदिके मध्यमें चौकोर वास्तुमण्डलका भी विधान है । ऐसा वास्तु खात (नीव आदिके लिये न्वोदे गये गन्हु) के लिये उपयुक्त है । इसीके समान वास्तु ब्रह्म-शिलात्मक गुष्ठन्यासमें, शावाकके निवेद्यमें और मूर्तिस्थापनमें भी उपयोगी होता है । वास्तुमण्डलवर्ती समस्त देवताओंको खीरसे नैवेद्य अर्पित करे । उक्त-अनुक्त सभी कायोंके लिये सामान्यतः पॉच हाथकी लंथाई-चौड़ाईमें वास्तुमण्डल बनाना चाहिये । यह और ग्रासादके मानके अनुसार ही निर्मित वास्तुमण्डल सर्वदा श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ४०—४२ ॥

चौरानबेवाँ अध्याय

शिलान्यासकी विधि

भगवान् दिव कहते हैं—स्कन्द ! ईशन आदि कोणोंमें बालुमण्डलके बाहर पूर्ववत् चरकी आदिका पूजन करे । प्रत्येक देवताके लिये क्रमशः तीन-तीन आद्युतियाँ हैं । भूतवृक्षिं देकर नियत लम्बमें शिलान्यासका उपकरण करे । स्थानके मध्यभागमें आधार-शक्तिका न्यास करे । वहाँ अनन्त (शीघ्रनाग) के मन्त्रसे अभिमन्त्रित उत्तम कलश स्थापित करे । ‘लं पृथिव्यै नमः ।’—इस मूल-मन्त्रसे इस कलशपर पृथिवीस्त्रया शिलाका न्यास करे । उसके पूर्वादि दिग्भागोंमें क्रमशः सुभद्र आदि आठ कलशोंकी स्थापना करे । पहले उनके लिये गड्ढे खोदकर उनमें आधार-शक्तिका न्यास करनेके पश्चात् उक्त कलशोंको इन्द्रादि लोकपालोंके मन्त्रोद्घारा स्थापित करना चाहिये । तदनन्तर उन कलशोंपर क्रमशः नन्दा आदि शिलाओंको रखें ॥ १-४ ॥

तत्त्वमूर्तियोंके अधिदेवता-सम्बन्धी शङ्कोंसे युक्त वे शिलाएँ हानी चाहिये । जैसे दीवारमें मूर्ति तथा अष्ट आदि अङ्कित होते हैं, उनी प्रकार उन शिलाओंमें शर्व आदि मूर्ति, देवताओंके अख-शब्द अङ्कित रहे । उक्त शिलाओंपर कोण और दिग्भागोंके विभागपूर्वक धर्म आदि आठ देवताओंकी स्थापना करे । सुभद्र आदि चार कलशोंपर नन्दा आदि चार शिलाएँ अंग्रे आदि चार कोणोंमें स्थापित करनी चाहिये । फिर जय आदि चार कलशोंपर अजिता आदि चार शिलाओंकी पूर्व आदि चार दिवाओंमें स्थापना करे । उन सदके ऊपर ब्रह्माजी तथा व्यापक गैरेशराजा न्यास करके मन्दिरके मध्यवर्ती ‘आकाश’ नामक अञ्चका चिन्तन करे । इन स्वको यहि अर्पित करके लिङ्गदोषके निवारणार्थ अञ्च-मन्त्रका जप करे । जहाँ पाँच ही शिलाएँ स्थापित करनेकी विधि है, उसके पक्षमें भी कुछ निवेदन किया जाता है ॥ ५-८ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द भूतपुराणमें शिलान्यासकी विधिका वर्णन नामक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पंचानबेवाँ अध्याय

प्रतिष्ठा-काल-सामग्री आदिकी विधिका कथन

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं मन्दिरमें लिङ्ग-स्थापनाकी विधिका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्षको देनेवाली है । यदि मुक्तिके लिये लिङ्ग-प्रतिष्ठा करनी

मध्यभागमें सुभद्र-कलशके ऊपर पूर्णा नामक शिलाकी स्थापना करे और अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः पञ्च आदि कलशोंपर नन्दा आदि शिलाएँ स्थापित करे । मध्यशिलाके अभावमें चार शिलाएँ भी मात्रभावसे सम्मानित करके स्थापित की जा सकती हैं । उक्त पाँचों शिलाओंकी प्रारंभना इस प्रकार करे—

‘ॐ सर्वसंदोहस्तरुपे महाविद्ये पूर्णे । तुम अङ्गिरा-शृणिकी पुनी ही । इस प्रतिष्ठाकर्ममें सब कुछ सम्यक्-स्थपते ही पूर्ण करो । नन्दे ! तुम समस्त पुरुषोंको आनन्दित करनेवाली हो । मैं यहाँ तुम्हारी स्थापना करता हूँ । तुम इस प्रासादमें सम्पूर्णतः तुम होकर तत्त्वक सुस्थिरमावसे स्थित रहो, जबतक कि आकाशमें चन्द्रमा, सूर्य और तारे प्रकाशित होते रहें । वसिष्ठनन्दिनि नन्दे ! तुम देहधारियोंकी आत्म, सम्पूर्ण मनोरथ तथा लक्ष्मी प्रदान करो । तुम्हें प्रासादमें सदा स्थित रहकर यत्कापूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये । ॐ कर्मयनन्दिनि भद्रे । तुम सदा समस्त लोकोंका कल्याण करो । देवि ! तुम सदा ही हमें आत्म, मनोरथ और लक्ष्मी प्रदान करती रहो । ॐ देवि जये ! तुम सदा-संवर्द्धा हमारे लिये लक्ष्मी तथा आत्म प्रदान करनेवाली होंगे । भग्नपुत्रि देवि जये ! तुम स्थापित होकर सदा यहाँ रहो और इस मन्दिरके अधिष्ठाता मुझ यजमानको नित्य-निरन्तर विजय तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली बनो । ॐ रिक्ते ! तुम अतिरिक्त दोषका नाश करनेवाली तथा सिद्धि और भोग प्रदान करनेवाली हो । शुभे ! सम्पूर्ण देश-कालमें तुम्हारा निवास है । ईशरूपिणि ! तुम सदा इस प्रासादमें स्थित रहो’ ॥ ९-१६ ॥

तत्पश्चात् आकाशस्तरुप मन्दिरका ध्यान करके उसमें तीन तत्त्वोंका न्यास करे । फिर विधिवत् प्रायश्चित्त-होम करके यशका विसर्जन करे ॥ १७ ॥

हो तो उसे इर समय किया जा सकता है, परंतु यदि भोग-सिद्धिके उद्देश्यसे लिङ्ग-स्थापना करनेका विचार हो तो देवताओंका दिन (उत्तरायण) होनेपर ही वह कार्य करना

चाहिये । माथमे लेकर पाँच महीनोंमें, चैत्रको छोड़कर, देवस्थापना करनेकी विधि है । जब गुरु और शुक उदित हों तो प्रथम तीन चरणों (वव, बालव और कौलव) में स्थापना करनी चाहिये । विशेषतः शशपक्षमें तथा कृष्ण-पक्षमें भी पञ्चमी तिथि तकका समय प्रतिष्ठाके लिये शुभ माना गया है । चतुर्थी, नवमी, षष्ठी और चतुर्दशीको छोड़कर शेष तिथियाँ कूर-ग्रहके दिनसे रहित होनेपर उत्तम मानी गयी हैं ॥ १-३८ ॥

शतभिगा, धनिष्ठा, आद्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी और अवण—ये नक्षत्र स्थित प्रतिष्ठा आरम्भ करनेके लिये महान् अभ्युदयकारक कहे गये हैं । कुम्भ, रिह, वृश्चिक, तुला, कन्या, वृष—ये लग्न श्रेष्ठ बताये गये हैं* । बृहस्पति (तृतीय, अष्टम और द्वादशको छोड़कर शेष) नीं स्थानोंमें शुभ माने गये हैं । सात स्थानोंमें तो वे सबदा ही शुभ हैं । छठे, आठवें, दसवें, लातवें और चौथें भावामें लुधकी स्थिति हो तो वे शुभकारक होते हैं । इन्हीं स्थानोंमें छठेको छोड़कर यदि शुक हो तो उन्हें शुभ कहा गया है । प्रथम, तृतीय, रसम, षष्ठ, दशम (द्वितीय और नवम) स्थानोंमें चन्द्रमा सदैव बलदायक माने गये हैं । सूर्य दसवें, तासमरे और हृषे भावामें स्थित हो तो शुभफल देनेवाले होते हैं । तीसरे, छठे और दसवेंमें राहुको भी शुभकारक कहा गया है ॥ ४-५ ॥

उड़ और ता रे रसनमें स्थित होनेपर शून्येश्वर, मङ्गल और केतु प्रदास्त कहे गये हैं । शुभग्रह, कूरग्रह और पापग्रह—सभा व्यापद्वय स्थानमें स्थित होनेपर श्रेष्ठ बताये गये हैं । अपनी जगहसे सप्तम स्थानपर ही इन समस्त ग्रहोंकी दृष्टि पूर्ण (चारों चरणोंसे युक्त) होती है । पाँचवें और नवें स्थानोंपर इनकी दृष्टि आधी (दो चरणोंमें युक्त) बतार्ह गया है । तृतीय और दसवें स्थानोंको ये ग्रह

* यहाँ सोमशम्भुने अपनी 'कर्मकाण्ड-क्रमाबली'में पिङ्गल-भतके अनुसार चारों बणोंके लिये पृथक्-पृथक् प्रतिष्ठोपयोगी प्रशस्त नक्षत्र बताये हैं—पुष्य, इस्त, उत्तराधाद, पूर्वाशाढ़ और रोहिणी—ये नक्षत्र ग्राहणके लिये ब्रेष्ट कहे गये हैं । क्षतियके लिये पुनर्वसु, चित्रा, धनिष्ठा और अवण उत्तम कहे गये हैं । वैश्यके लिये रेतारी, आद्रा, उत्तरा और अश्विनी शुभ नक्षत्र हैं तथा शूद्रके लिये भवा, खाती और पूर्वांकाश्युनी—ये नक्षत्र श्रेष्ठ हैं ।

(श्लोक १३४-१३७ तक)

एकपादसे देखते हैं तथा चौथे एवं आठवें स्थानोंपर इनकी दृष्टि तीन चरणोंसे युक्त होती है । मीन और मेष राशिका भोग पैने जार नाड़ीतक है । वृष और कुम्भ भी पैने जार नाड़ीका ही उपभोग करते हैं । मकर और मिथुन पाँच नाड़ी, धन, वृश्चिक, सिंह और कर्क पैने जार नाड़ी तथा तुला और कन्या राशियाँ साढ़े पाँच नाड़ीका उपभोग करती हैं ॥ ८-११ ॥

सिंह, वृष और कुम्भ—ये 'स्थिर' लग्न सिद्धिदायक होते हैं । धन, तुला और मेष 'चर' कहे गये हैं । तीसरी-तीसरी सख्याके लग्न (मिथुन, कन्या आदि) 'द्विस्वभाव' कहे गये हैं । कर्क, मकर और वृश्चिक—ये प्रवज्या (संन्यास) कायके नाशक हैं । जो लग्न शुभग्रहोंसे देखा गया हो, वह शुभ है तथा जिस लग्नमें शुभग्रह स्थित हो, वह श्रेष्ठ माना गया है । बृहस्पति, शुक और बुधसे युक्त लग्न धन, आयु, राज्य, शौर्य (अथवा सौभ्य), बल, पुत्र, यश तथा धर्म आदि वस्तुओंको अधिक भावामें प्रदान करता है । कुण्डलीके वारह भावोंमें प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशमको 'केन्द्र' कहते हैं । उन केन्द्र-स्थानोंमें यदि गुरु, शुक और बुध हों तो वे सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता होते हैं । लग्न-स्थानसे तासरे, ग्यारहवें और चौथें स्थानोंमें यापग्रह हों तो वे शुभकारक होते हैं । अतः इनको तथा इनसे भिन्न शुभग्रहों तथा शुभ तिथियोंको विद्यान् पुरुष प्रतिष्ठाकरणके लिये योजित करे । मन्दिरके सागरे उससे पाँच शुनी अथवा मन्दिरके बराबर ही या सीढ़ीसे दस हाथ आगेतक-की भूमि छोड़कर मण्डप निर्माण करे ॥ १२-१७ ॥

वह मण्डप चौकोर और चार दरवाजोंसे युक्त हो । उसकी आधी भूमि लेकर स्नानके लिये मण्डप बनावे । उसमें भी एक या जार दरवाजे हों । यह स्नान-मण्डप ईशान, पूर्व अथवा उत्तर दिशामें होना चाहिये । [प्रथम तीन लिङ्गोंके लिये तीन मण्डपोंका निर्माण करे । पहले मण्डपकी 'द्वास्तिक' सत्ता है । वह आठ हाथका होता है । शेष दो मण्डप एक-एक हाथ बड़े होंगे, अर्थात् दूसरा मण्डप नौ हाथका और तीसरा दस हाथका होगा । इसी तरह अन्य लिङ्गोंके लिये भी प्रति-मण्डप दो-दो हाथ भूमि बढ़ा दे,

* सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमाबली'में यहाँ चार पंतिर्या अविक उपलब्ध होती है, जिनका अर्थ कोडक [] में दिया गया है (देखिये श्लोक १३९ से १४१ तक) ।

जिसे नौ हाथ बड़े नवें लिङ्गके लिये बाहर हाथका मण्डप सम्पन्न हो सके ।] प्रथम मण्डप आठ हाथका, दस हाथका अथवा बारह हाथका होना चाहिये । शेष आठ मण्डपोंको दो-दो हाथ बढ़ाकर रखें । (इस प्रकार कुल नौ मण्डप होने चाहिये ।) [पाद आदिसे छृष्टलिङ्गोंकी स्थापनामें पादों (पाथों) के अनुसार मण्डप बनावे । बाणलिङ्ग, रत्नलिङ्ग तथा लौहलिङ्गकी स्थापनाके अवसरपर हास्तिक (आठ हाथवाले) मण्डपके अनुसार कुण्ड सब कुछ बनावे । अथवा जो देवीका प्रासाद हो, उसके अनुसार मण्डप बनावे । समस्त लिङ्गोंके लिये प्रासाद-निर्माणकी विधि शैव-शास्त्रके अनुमार जाननी चाहिये । घन, धोग, विराग, काञ्चन, काम, राम, सुवेदा, धर्मर तथा दक्ष—ये नौ लिङ्गोंके लिये नौ मण्डपोंके नाम हैं । चारों कोणोंमें चार खंभे हों और दरवाजोंपर दो-दो । यह सब हास्तिक-मण्डपके विश्वामें बताया गया है । उससे विस्तृत मण्डपमें जंस भी उभकी शोभा सम्भव हो, अन्य खंभोंका भी उपयोग किया जा सकता है ।]* ॥ १८-१९ ॥

मध्य मण्डलमें चार हाथकी बेदी बनावे । उसके चारों कोनामें चार खंभे हों । बंदी और पाथोंके बीचका स्थान छोड़कर कुण्डोंका निर्माण करें । इनकी सख्त्या नौ अथवा पाँच होनी चाहिये । ईशान या पूर्व दिशामें एक ही कुण्ड बनावे । वह गुरुका स्थान है । यदि पचास आहुति देनी हो तो मुट्ठी बंधे हाथसे एक हाथका कुण्ड होना चाहिये । तो आहुतिया देनी हो तो कोहनीसे लेकर कनिष्ठिका तकके भापसे एक अरबि या एक हाथका कुण्ड बनावे । एक हजार आहुतियोंका होम करना हो तो एक हाथ लवा, चौड़ा और गहरा कुण्ड हो । दस हजार आहुतियोंके लिये इससे दूने मापका कुण्ड होना चाहिये । लाल आहुतियोंके लिये चार हाथके और एक करोड़ आहुतियोंके लिये आठ हाथके कुण्डका विधान है । अग्निकोणमें भगाकार, दक्षिण दिशामें अर्धचन्द्राकार, नेश्वर्त्यकोणमें त्रिकोण (पथिम दिशामें चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार), वायव्यकोणमें षट्कोण, उत्तर दिशामें कमलाकार, ईशानकोणमें अष्टकोण (तथा पूर्व दिशामें चतुर्कोण) कुण्डका निर्माण करना चाहिये ॥ २०-२३ ॥

* प्रसङ्गको ठीकसे समझनेके लिये 'कर्मकाण्ड-कमावलीसे अपेक्षित अंश यहाँ भावार्थक्रममें उद्दृत किया गया है । (देखिये शोकसं० १३३३ से १३३५)

कुण्ड सब ओरसे बराबर और ढालू होना चाहिये । अपरकी ओर मेखलाएँ बनी होनी चाहिये । बाहरी भागमें क्रमशः चार तीन और दो अङ्कुल चौड़ी तीन मेखलाएँ होती हैं । अथवा एक ही छः अङ्कुल चौड़ी मेखला रहे । मेखलाएँ कुण्डके आकारके बराबर ही होती हैं । उनके ऊपर मध्यभागमें योनि हो, जिसकी आङ्कुति पीपलके पत्तेकी भाँति रहे । उसकी ऊचाई एक अङ्कुल और चौड़ाई आठ अङ्कुलकी होनी चाहिये । लंबाई कुण्डार्थके तुर्ख हो । योनिका मध्यभाग कुण्डके कण्ठकी भाँति हो, पूर्व, अग्निकोण और दक्षिण दिशाके कुण्डोंकी योनि उत्तराभिमुखी होना चाहिये, शीष दिशाओंके कुण्डोंकी योनि पूर्वाभिमुखी हो तथा ईशानकोणके कुण्डकी योनि उक्त दोनों प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारकी (उत्तराभिमुखी या पूर्वाभिमुखी) रह सकती है ॥ २४-२७ ॥

कुण्डोंका जो चौंचोगवाँ भाग है, वह 'अङ्कुल' कहलाता है । इसके अनुसार विभाजन करके मंखला, कण्ठ और नाभिका निश्चय करना चाहिये । मण्डपमें पूर्वादि दिशाओंकी ओर जो चार दरवाजे लगते हैं, वे क्रमशः पाकड़, गूँड़, पोपल और बड़को लकड़ीके होने चाहिये । पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे इनके नाम शान्ति, भूति, बल और आरोग्य हैं । दरवाजोंकी ऊचाई पाँच, छः अथवा सात हाथकी होनी चाहिये । वे हाथभर गहरे खुदे हुए गड्ढमें लड़े किये गये हों । उनका विस्तार ऊचाई या लबाईकी अपेक्षा आधा होना चाहिये । उनमें आम-पल्लव आदिकी बन्दन-बारें लगा देनी चाहिये । मण्डपकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः इन्द्रायुधकी भाँति तिरंगी, लाल, काली, धूमिल, चांदनीकी भाँति इवेत, तोतेकी पाँखके समान हरे रंगकी, सुनहरे रंगकी तथा स्कटिक भणिके समान उच्चवल पताका फहरानी चाहिये । ईशान और पूर्वके मध्यभागमें ब्रह्माजीके लिये लाल रंगकी तथा नैश्वर्य और पश्चिमके मध्यभागमें अनन्त (शोषनाग) के लिये नोले रंगकी पताका फहरानी चाहिये । अवज्ञाकी पताकाएँ पाँच हाथ लगी और इससे आधी चौड़ी हों । अवज्ञाकी मोटाई ऐसी हो कि दोनों हाथोंकी पकड़में आ जाय ॥ २८-३२ ॥

पर्वत-शिखर, राजद्वार, नदीतट, धुङ्गसार, हथिसार, विमोठ, हाथीके दाँतोंके अग्रभागसे कोई गयी भूमि,

ताँड़के सींगसे खोदी गयी भूमि, कमलसमूहके नीचेके स्थान, सूअरकी खोदी हुई भूमि, गोशाला तथा चौराहा—इन बारह स्थानोंसे बारह प्रकारकी मिट्ठी लेनी चाहिये। भगवान् विष्णुकी स्थापनामें ये द्वादश मृत्तिकाएँ तथा भगवान् शिवकी स्थापनामें आठ प्रकारकी मृत्तिकाएँ ग्रास हैं। बरगद, गूलर, पीपल, आम और जामुनकी छालसे पैदा हुई पांच प्रकारकी गोंद संग्रहणीय हैं। आठ प्रकारके शृतुफल मँगा लेने चाहिये। तीर्थजल, सुगन्धित जल, सर्वोषधि-मिश्रित जल, शस्य-पुष्पमिश्रित जल, स्वर्णमिश्रित, रत्न-मिश्रित तथा गो-शृङ्गके स्पर्शसे युक्त जल, पञ्चगन्ध और पञ्चामृत—इन सबको देवस्तानके लिये एकत्र करे। विष्वकर्माओंको डरानेके लिये आटेके बने हुए बज्र आदि आयुध-द्रव्योंको भी प्रसुत रखना चाहिये। सहस्र छिद्रोंसे युक्त कलश तथा मङ्गलकृत्यके लिये गोरोचना भी रखें। ३३-३७ ॥

सौ प्रकारकी ओषधियोंकी जड़, विजया, लक्षणा (इवेत कण्टकतारिका), बला (अथवा अभया—हरे), गुरुचि, अतिबला, पाठा, सहदेवा, शतावरी, शृद्धि, सुवर्चला और द्विद्वि—इन सबका पृथक्-पृथक् स्नानके लिये उपयोग बताया गया है। स्थानके लिये तिल और कुशा आदि संग्रहणीय हैं। भग्नस्नानके लिये भस्म जुटा ले। विद्वान् पुरुष स्नानके लिये जौ और गेहूँके आटे, बेलका चूर्ण, विलेपन, कपूर, कलश तथा गहुओंका संग्रह कर ले। खाट, दो तूलिका (रुईभरा गहा तथा रजाई), तकिया, चादर आदि अन्य आवश्यक वस्त्र—इन सबको अपने वैभवके अनुसार तैयार करावे और विविध चिह्नोंसे सुसज्जित शयन-कक्षमें इनको रखें। धी और मधुसे युक्त पात्र, सोनेकी सराई, पूजोपयोगी जप्तसे भरा पात्र, शिवकलश और लोकपालोंके लिये कलशका भी संग्रह करें। ३८-४२ ॥

एक कलश निद्राके लिये भी होना चाहिये। कुण्डोंकी संख्याके अनुसार उतने ही शान्ति-कलश रखें जाने चाहिये। द्वारपाल आदि, धर्म आदि तथा प्रशान्त आदिके लिये भी कलश जुटा ले। बालुदेव, लक्ष्मी और गणेशके लिये भी अन्यान्य पृथक्-पृथक् कलश आवश्यक हैं। इन कलशोंके नीचे आधारभूमिपर धान्य-पुङ्ग रखना चाहिये। सभी कलश वस्त्र और पुष्पमालासे विभूषित किये जाने चाहिये। इनके भीतर सुबर्ण ढालकर इनका स्वर्ण किया

जाय और इस्तें सुगन्धित जलसे भरा जाय। सभी कलशोंके ऊपर पूर्णांश और फल रखें जायें। उनके मुखभागमें पञ्चपल्लव रहें तथा वे कलश उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हों। कलशोंको वस्त्रोंसे आच्छादित करे। सब ओर विलेनके लिये पीली सरसों और लालाका संग्रह कर ले। पूर्ववत् शान-सङ्क्रान्तका भी सम्मादन करे। चबूत्र रखनेके लिये बट्टोई और उसका ढक्कन मँगा ले। ताँबेकी बनी हुई करछुल तथा पादाम्ब्रङ्गके लिये घृत और मधुका पात्र भी संग्रहीत कर ले। ४३-४७ ॥

कुशके तीस दलोंसे बने हुए दो-दो हाथ लंबे-चौड़े चार-चार आसन एकत्र कर ले। इसी तरह पलाशोंके बने हुए चार-चार परिधि भी जुटा ले। तिलगाढ़, हविष्यगाढ़, अर्घ्यगाढ़ और पवित्रक एकत्र करे। इनका मान बीम-बीम पल है। धण्डा और धूपदानी भी मँगा ले। मुकु, सुवा, पिटक (पिटारी एवं टोकरी), पीठ (पीढ़ा या चौकी), व्यजन, सूखी लकड़ी, पूल, पंच, गुम्बुल, धीके दीपक, धूप, अक्षत, तिरुगुना सूत, गायका धी, जौ, तिल, कुशा, शान्तिकम्भके लिये त्रिविधि मधुर पदार्थ (मधु, शक्कर और धी), दधन पर्वकी समिधाएँ, बाँह-बरावर या एक हाथका सुवा, सूर्य आदि ग्रहोंकी शान्तिके लिये समिधाएँ—आम, पलाश, रंग, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूबा और कुशा भी संग्रहणीय हैं। आक आदिमें प्रत्येककी समिधाएँ एक सौ आठ-आठ होनी चाहिये। वे न मिल सकें तो इनकी जगह जौ और तिलोंकी आहुति देनी चाहिये। इनके मिवा धरेलू आवश्यकताकी बस्तुओंका भी संग्रह करे। ४८-५३ ॥

बट्टोई, करछुल, ढक्कन आदि जुटा ले। देवता आदिके लिये प्रत्येकको दो-दो वस्त्र देने चाहिये। आन्वर्यकी पूजाके लिये मुद्रा, मुकुट, वस्त्र, हार, कुण्डल और कङ्गन आदि तैयार करा ले। धन खर्च करनेमें कंजूमी न करे। ५४-५५ ॥

मूर्ति धारण करनेवाले तथा अखमन्त्रका जप करनेवाले ब्राह्मणोंको आचार्यकी अपेक्षा एक-एक चौथाई कम दक्षिणा दे। सामान्य ब्राह्मणों, उद्योतिषियों तथा शिल्पियोंको जपकर्ताओंके बराबर ही पूजा देनी चाहिये। हीरा, सूर्य-कान्तमणि, नीलमणि, अतिनीलमणि, मुनाफल, पुष्पराग, पद्मराग तथा आठवाँ रत्न बैदूर्यमणि—इनका भी संग्रह करे। उद्धोर (खस), विष्णुकान्ता (अपराजिता), रक्त-

चन्दन, अगुरु, औलण्ड, शारिका (अनन्ता या इयामालता), कुष्ठ(कुट) और शशिनी (श्वेत पुन्नाग)—इन ओषधियोंका समुदाय संग्रहीय है ॥ ५५-५७२ ॥

सोना, ताँदा, लोहा, रोंगा, चौंदी, कॉसी और सीसा—इन सबकी 'प्लोइ' संज्ञा है । इनका भी संग्रह करे । हरिताळ,

इस प्रकार आदि आनेग महापुण्यमें प्रतिष्ठा, काल और सामग्री आदिकी विधिका वर्णन

नामक पंचानवेदां अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

छियानवेदाँ अध्याय .

प्रतिष्ठामें अधिवासकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्फन्द ! पुरोहितको चाहिये कि वह स्नान करके प्रातःकाल और मध्याह्नकाल, दोनों समयोंका नित्यकर्म सम्पन्न करके मूर्तिरक्षक सहायक ब्राह्मणोंके गाथ यशमण्डपको पधारे । (मूर्तिभिजीयिभिविग्रे :—इस पाठान्तरके अनुसार मूर्तियों और जपकर्ता ब्राह्मणोंके साथ यशमण्डपमें जाय, ऐसा अर्थ समझना चाहिये ।) फिर वहाँ शान्ति आदि द्वारोंका पूर्ववत् क्रमशः पूजन करे । इन द्वारोंकी दोनों शास्त्राओंपर प्रदक्षिणकमसे द्वारपालोंकी पूजा करनी चाहिये । पूर्व दिशामें द्वारपाल नन्दी और महाकालकी, दक्षिण दिशामें भृगी और विनायककी, पश्चिम दिशामें बृंश और स्फन्दकी तथा उत्तर दिशामें देवी और चण्डीकी पूजा करे । द्वार-शास्त्राओंके मूलदेशमें पूर्वादि क्रमसे दो-दो कलद्वारोंकी पूजा करे । उनके नाम इस प्रकार है—पूर्व दिशामें प्रशान्त और शिशिर, दक्षिणमें पर्जन्य और अशोक, पश्चिममें भूतसंजीवन और अमृत तथा उत्तरमें धनद और श्रीप्रद—इन दो-दो कलद्वारोंकी क्रमशः पूजाका विधान है । इनके नामके आदिमें 'प्रणव' और अन्तमें 'जमः' जोड़कर चतुर्थन्त रूप रखते । यही इनके पूजनका मन्त्र है । यथा—‘ॐ प्रशान्तशिशिराभ्यां नमः ।’ इत्यादि ॥ १-५ ॥

लोक दो, ग्रह दो, वसु दो, द्वारपाल दो, नदियाँ दो, सूर्य तीन, युग एक, वेद एक, लक्ष्मी तथा गणेश—इतने देवता यशमण्डपके प्रत्येक द्वारपर रहते हैं । इनका कार्य है—विघ्नसमूहका निवारण और यशका संरक्षण । पूर्वादि दस दिशाओंमें वज्र, शक्ति, दण्ड, सज्ज, पाण्ड, चूज, गदा, शिशूर, चक्र और कमलकी क्रमशः पूजा करे तथा

मैनसिल, गेहू, हेमगाढ़ीक, पारा, बहिगैरिक, गन्धक और अमृत—ये आठ धातुएँ संग्रहीय हैं । इसी प्रकार आठ प्रकारके श्रीहिंसों (अनाजों) का भी संग्रह करना चाहिये । उनके नाम इस प्रकार हैं—धान, गेहू, तिल, उड़द, भूंग, जी, तिनी और सावाँ ॥ ५८-६१ ॥

इस प्रकार आदि आनेग महापुण्यमें प्रतिष्ठा, काल और सामग्री आदिकी विधिका वर्णन

नामक पंचानवेदां अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

प्रत्येक दिशामें दिक्पालकी पताकाका भी पूजन करे । पूजनके मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है—ॐ हूँ हः वज्राय हूँ फट् । ॐ हूँ हः शक्तये हूँ फट् । ॐ इत्यादि ॥ ६-९ ॥

कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्खकर्ण, सर्वनेत्र (अथवा पद्मनेत्र), सुमुख और सुत्रतिष्ठित—ये ज्वजोंके आठ देवता हैं, जो पूर्वादि दिशाओंमें कोटि-कोटि भूतों-सहित पूजनीय हैं । इनके पूजन-सम्बन्धी मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ कुं कुमुदाय नमः ।’ इत्यादि । हैतुक (अथवा हेतुक), त्रिपुरस्न, शक्ति (अथवा वहि), यमजिह्वा, काल, छठा कराली, सातवाँ एकाहृषि और आठवाँ भीम—ये क्षेत्रपाल हैं । इनका क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंमें पूर्ववत् पूजन करे । बलि, पुष्ट और धूप देकर इन सबको संतुष्ट करे । तदनन्तर उत्तम एवं पवित्र तृणोंपर, अथवा वाँसके संभोपर क्रमशः पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वोंकी स्थापना करके सूजोजातादि पाँच मन्त्रोंद्वारा उनका पूजन करे । सदाशिव-पदव्यापी मण्डपका, जो भगवान् शंकरका धाम है तथा पताका एवं शक्तिसे संयुक्त है (पाठान्तरके अनुसार पातालशक्ति या पिनाकशक्ति से संयुक्त है), तत्त्वदृष्टिसे अवलोकन करे ॥ १०-१५ ॥

पूर्ववत् दिव्य अन्तरिक्ष एवं भूलोकवर्ती विष्णोंका अपसारण करके पश्चिम द्वारमें प्रवेश करे और शेष

* सोमशम्भुरचित् ‘कर्मकाण्ड-क्रमावलीमें मन्त्रका यही स्वरूप उपलब्ध होता है । कुछ प्रतियोंमें ‘ॐ हूँ फट् नमः । ॐ हूँ फट् हः शक्तये हूँ फट् नमः ।’ ऐसा पाठ है ।

१. वही-वही—‘कुं’ के स्थानमें ‘कौ’ पाठ है ।

दरवाजोंको बंद करा दे (अथवा शेष द्वारोंका दर्शनमात्र कर ले)। प्रदक्षिणक्रमसे मण्डपके भीतर जाकर वेदीके दक्षिण भागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूर्ववत् भूतशुद्धि करे। अन्तर्याग, विशेषार्थ, मन्त्र-द्रव्यादि-शोधन, स्वात्मपूजन तथा पञ्चग्रन्थ आदि पूर्ववत् करे। फिर वहाँ आधारशक्तिकी प्रतिष्ठानार्थके इलाट्स-स्थापन करे। विशेषतः शिवका ध्यान करे। तदनन्तर क्रमशः तीनों तत्त्वोंका चिन्तन करे। ललाटमें शिवतत्त्वकी, स्कन्धदेशमें विद्यातत्त्वकी तथा पादान्त-भागमें उत्तम आत्मतत्त्वकी भावना करे। शिवतत्त्वके छद्म, विद्यातत्त्वके नारायण तथा आत्मतत्त्वके ब्रह्मा देवता हैं। इनका अपने नाम-मन्त्रोदारा पूजन करना चाहिये। इन तत्त्वोंके आदिनीज क्रमशः इस प्रकार हैं—‘ॐ हं आम्’ ॥ २६—२१ ॥

मूर्तियों और मूर्तिश्वरोंकी वहाँ पूर्ववत् स्थापना करे। उनमें व्यापक शिवका साङ्ग पूजन करके मस्तकपर शिव-हस्त रखने। भावनाद्वारा ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे प्रविष्ट हुए तेजसे अपने बाहर-भीतरकी अन्धकार राशिको नष्ट करके आत्म-स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे कि वह सम्पूर्ण दिव्याण्डलको प्रकाशित कर रहा है।^१ मूर्तिपालोंके साथ अपने-आपको भी हार, बल और मुकुट आदिसे अलंकृत करके—‘मैं शिव हूँ’—ऐसा चिन्तन करते हुए ‘बोधासि’ (शानमय खड़) को उठावे। चतुष्पदान्त संस्कारोदारा यशमण्डपका संस्कार करे। विवेरने योग्य वस्तुओंको सब और विवेरकर, कुशकी वृच्छीसे उन सबको समेटे। उन्हें आसनके नीचे करके वार्धानीके जलसे पूर्ववत् वास्तु आदिका पूजन करे। शिव-कुम्भाल्ल और वार्धानीके सुस्थिर आलूंनोंकी भी पूजा करे। अपनी-अपनी दिशामें कलशोंपर विराजमान इन्द्रादि लोकपालोंका क्रमशः उनके बाहरों और आयुध आदिके साथ यथाविधि पूजन करे ॥ २२—२७ ॥

पूर्व दिशामें इन्द्रका चिन्तन करे। वे ऐरावत हाथीपर बैठे हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति सुवर्णके समान दमक रही है। मस्तकपर किरीट शोभा दे रहा है। वे सहस्र नेत्र धारण करते हैं। उनके हाथमें वज्र शोभा पाता है। अग्निकोणमें सात ज्वालामयी जिहाएँ धारण किये, अक्षमाला और कमण्डल लिये, लपटोंसे घिरे रक्त वर्णवाले अग्निदेवका ध्यान करे। उनके हाथमें शक्ति शोभा पाती है तथा बकरा उनका बाहन है। दक्षिणमें महिषारूढ दण्डधारी

यमराजका चिन्तन करे, जो कालानिनके समान प्रकाशित हो रहे हैं। नैशृत्य-कोणमें लाल नेत्रवाले नैशृत्यकी भावना करे, जो हाथमें तलवार लिये, शब (मुदे) पर आरूढ है। पश्चिममें मकरारूढ, द्वेतत्वर्ण, नागपाणीधारी वरुणका चिन्तन करे। वायव्य-कोणमें वृग्गारूढ, नीलत्वर्ण वायुदेवका तथा उत्तरमें भैंसेपर सवार कुचेरका ध्यान करे। ईशान-कोणमें विशूलधारी, वृषभारूढ ईशानका, नैशृत्य तथा पश्चिमके मध्यभागमें कच्छपपर सवार चक्रधारी भगवान् अनन्तका तथा ईशान और पूर्वके भीतर चार मुख एवं चार भुजा धारण करनेवाले इसवाहन ब्रह्माका ध्यान करे ॥ २८—३२ ॥

खंभोंके मूल भागमें स्थित कलशोंमें तथा वेदीपर धर्म आदिका पूजन करे। कुछ लोग सम्पूर्ण दिवारोंमें स्थित कलशोंपर अनन्त आदिकी पूजा भी करते हैं। इसके बाद शिवाज्ञा सुनावे और कलशोंको अपने पृष्ठभागतक धुमावे। तत्पश्चात् यहले कलशको और फिर वार्धनीयों पूर्ववत् अपने स्थानपर रख दे। स्थिर आसनवाले शिवका कलशमें और शब्दके लिये ब्रुहासनका पूर्ववत् पूजन करके उद्धव-मुद्राद्वारा स्पर्श करे। उस समय भगवान् इस प्रकार प्रार्थना करे—‘हे जगन्नाथ ! आप अपने भक्तजनपर कृपा करके इस अपने ही यक्की रक्षा कीजिये।’—यों रक्षाके लिये प्रार्थना सुनाकर कलशमें खड़की स्थापना करे। दीक्षा और स्थापनाके समय कलशमें, वेदीपर अथवा मण्डलमें भगवान् शिवका पूजन करे। मण्डलमें देवधर शिवका पूजन करनेके पश्चात् कुण्डके समीप जाय ॥ ३३—३७ ॥

कुण्ड-नाभिको आगे करके बैठे हुए मूर्तिधारी पुरुष गुरुकी आशामें अपने-अपने कुण्डका संस्कार करें। जप करनेवाले ब्राह्मण संख्यारहित मन्त्रका जप करें। दूसरे लोग संहिताका पाठ करें। अपनी शाखाके अनुसार वेदोंके पारंगत विद्वान् शान्तिपाठमें लगे रहें। शृग्वेदी विद्वान् पूर्व दिशामें श्रीमूल, पावमानी श्रीनृता, मैत्रेय ब्राह्मण तथा वृशकपि मन्त्र—इन सबका पाठ करें। सामवेदी विद्वान् दक्षिणमें देवत्रत, भास्त्रपद, ज्येष्ठसाम, रथन्तरसाम तथा पुरुषगीत—इन सबका गान करें। यजुर्वेदी विद्वान् पश्चिम दिशामें छद्रसूक, पुरुषसूक्त, इलोकाध्याय तथा विशेषतः ब्राह्मणमागका पाठ करें। अथर्ववेदी विद्वान् उत्तर दिशामें नीलचद्र, सूक्ष्मासूक्म तथा अथर्वशीर्षका तत्परतापूर्वक अध्ययन करें ॥ ३८—४३ ॥

आचार्य (वरणी-भगवन्द्वारा) अग्निका उत्साहन करके उसे प्रत्येक कुण्डमें स्थापित करावें । अग्निके पूर्व आदि भागोंको पूर्व-कुण्ड आदिके क्रमसे लेकर धूप, दीप और चढ़के निमित्त अग्निका उद्धार करे । फिर पहले बताये अनुसार भगवान् शंकरका पूजन करके शिवाग्निमें मन्त्र-तर्पण करे । देश, काल आदिकी सम्प्रसारता तथा शुनिमित्तकी शान्तिके लिये ह्रोम करके मन्त्रश्रव आचार्य मङ्गलकारिणी पूर्णाहृति प्रदान करके, पूर्ववत् चढ़ तैयार करे और उसे प्रत्येक कुण्डमें निवेदित करे । यजमानसे वज्ञाभूषणोद्घारा विभूषित एवं सम्मानित मूर्तिपालक ब्राह्मण स्नान मण्डपमें जायें । भद्रपीठपर भगवान् शिवकी प्रतिमाको स्थापित करके ताङ्न और अवगुण्ठनकी किया करें । पूर्वकी वेदीपर पूजन करके मिट्टी, काषाय-जल, गोबर और गोमृतमें तथा वीच-नीचमें जलसे भगवत्प्रतिमाको स्नान करावे । तत्प्रश्नात् भस्म तथा गन्धघुन्त जलसे नहलावे । इसके बाद आनन्द 'अस्त्वा य फट् ।'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा मूर्तिपालकोंके साथ हाथ धोकर कवच-मन्त्रसे अभिमन्त्रित पीताम्बरद्वारा मूर्तिको आच्छादित करके स्वेत पूलोंसे उसकी पूजा करे । तदनन्तर उसे उत्तर-वेदीपर ले जाय ॥ ४४—५० ॥

वहाँ आसनसुक्त शय्यापर सुलकड़ कुकुममें रँगे हुए सूतसे अङ्गोंका विभाजन करके आचार्य सोनेकी शलाकाद्वारा उस प्रतिमामें दोनों नेत्र अङ्गित करे । यह कार्य शब्द-क्रियाद्वारा सम्पन्न होना चाहिये । पहले चिह्न बनानेवाला गुरु नेत्र-चिह्नको अङ्गनसे अङ्गित कर दें । इसके बाद वह शिल्पी, जो भूर्ति-निर्माणका कार्य पहले भी कर चुका हो, उस नेत्रचिह्नको शब्दाद्वारा लोदे (अर्थात् खुदाई करके नेत्रकी आङ्गतिको स्पष्टस्वरूपसे अभिव्यक्त करे) । अर्चके तीन अंशसे कम अथवा एक चौथाई भाग या आवे भागमें सम्पूर्ण कामनाओंकी लिंगिके लिये शुभ लक्षण (चिह्न) की अवतारणा करनी चाहिये । शिवलिङ्गकी लंबाईके मानमें तीनसे भाग देकर एक भागको स्थाग देनेसे जो मान हो, वही लिङ्गके लक्ष्मदेहका सब ओरसे विस्तार होना चाहिये ॥ ५१—५५ ॥

एक हाथके प्रस्तरखण्डमें जो लक्ष्मरेखा बनेगी, उसकी गहराई और चौडाई उतनी ही होगी, जितनी जैके नी भागोंमेंसे एकको छोड़ने और आठको लेनेसे होती है । इसी प्रकार ढेढ़ हाथ या दो हाथ आदिके लिङ्गसे लेकर

नी हाथतकके लिङ्गमें करवाः हृ मारकी हृदि करके लक्ष्म-रेखा बनानी चाहिये । इस तरह नी हाथवाले लिङ्गमें आठ जैके बराबर मोटी और गहरी लक्ष्मरेखा होनी चाहिये । जो शिवलिङ्ग परस्पर अन्तर रखते हुए उत्तरोत्तर लगाये वह हैं, वहाँ लक्ष्म-देहका विस्तार एक-एक जौ बढ़ाकर करना चाहिये । गहराई और मोटाईकी हृदिके अनुसार रेखा भी एक तिहाई वढ़ जायगी । सभी शिवलिङ्गोंमें लिङ्गका ऊपरी भाग ही उनका सूक्ष्म मस्तक है ॥ ५६—५९ ॥

लक्ष्म अर्थात् चिह्नका जो क्षेत्र है, उसका आठ भाग करके दो भागोंको मस्तकके अन्तर्गत रखने । शेष छः भागोंमें नीचेके दो भागोंको छोड़कर मध्यके अवशिष्ट भागोंमें तीन रैखा खीचे और उन्हें पृष्ठदेशमें ले जाकर जोड़ दे । रत्नमय लिङ्गमें लक्षणोद्घारकी आवश्यकता नहीं है । भूमिसे स्वतः प्रकट हुए अथवा नर्मदादि नदियोंसे प्रादुर्भूत हुए शिवलिङ्गमें भी लक्ष्मोद्घार अपेक्षित नहीं है । रत्नमय लिङ्गोंके रूपोंमें जो निर्मल प्रभा होती है, वही उनके स्वरूपका लक्षण (परिचायक) है । सुखभागमें जो नेत्रोन्मीलन किया जाता है, वह आवश्यक है और उसीके संनिधानके लिये वह लक्ष्म या चिह्न बनाया जाता है । लक्षणोद्घारकी रैखाका छृत और मध्यसे मूल्युद्धय-मन्त्र-द्वारा पूजन करके, शिल्पिदोषकी निवृत्तिके लिये मृतिका आदिसे स्नान कराकर, लिङ्गकी अर्चना करे । फिर दान-मान आदिसे शिल्पीको मंतुष्ट करके आचार्यको गोदान दे ।

तदनन्तर सौभाग्यवती लियाँ धूप, दीप आदिके द्वारा लिङ्गकी विशेष पूजा करके मङ्गल-गीत गायें और सद्य या अपसद्य भावसे सूच अथवा कुशके द्वारा स्पर्श-पूर्वक रोचना अर्पित करके न्योछावर दें । इसके बाद यजमान गुड़, नमक और धनिया देकर उन लिंगोंको विदा करे ॥ ६०—६६ ॥

तत्प्रश्नात् गुरु मूर्तिरक्षक ब्राह्मणोंके साथ 'नमः' या प्रणव-मन्त्रके द्वारा मिट्टी, गोबर, गोमृत और भस्मसे पृथक्-पृथक् स्नान करावे । एक-एकके बाद वीचमें जलसे स्नान कराता जाय । फिर पञ्चगव्य, पञ्चमूत्र, रुखापन दूर करनेवाले कषाय इव्य, सर्वोषधिमिश्रित जल, इनेत पुष्प, फल, सुवर्ण, रन, सींग एवं जौ मिलाये हुए जल, वाहसधारा, दिव्यौषधियुक्त जल, तीर्थ-जल, गङ्गाजल, चन्दनमिश्रित जल, क्षीरसागर आदिके जल, कलशोंके जल तथा शिवकलशके जलसे अभिषेक करे । रुखेपनको दूर

करनेवाला विष्णुन झाकर उसम गन्ध और चन्दन आदिसे पूजन करनेके पश्चात् ब्रह्ममन्त्रद्वारा पुण्य तथा कवच-मन्त्रसे लाल बल चढ़ावे ॥ फिर अनेक प्रकारसे आरती उत्तारकर रक्षा और तिळकपूर्वक गीत-बाद आदिसे विविध द्रव्योंसे तथा जय-जयकार और स्तुति आदिसे भगवान्को बंतुष्ट करके पुरुष-मन्त्रसे उनकी पूजा करे । तदनन्तर हृदय-मन्त्रसे आचमन करके हृष्टदेवसे कहे—‘भग्नो । उठिये’ ॥ ७७-७८ ॥

फिर हृष्टदेवको ब्रह्मरथपर बिठाकर उसीके द्वारा उन्हें शब्द और धूमाते और द्रव्य बिस्तेरते हुए मण्डपके पश्चिम द्वारपर ले जाय और वहाँ शश्यापर भगवान्को पश्चरवे । आसनके आदि-अन्तमें शक्तिकी भावना करके उस शुभ आसनपर उन्हें विराजयान करे । पश्चिमाभिमुख प्रासादमें पश्चिम दिशाकी ओर पिण्डिका स्थापित करके उसके ऊपर ब्रह्मशिला रखवे । शिवकोणमें सौ अच्छ-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित निद्राकलद्वा और शिवासनकी कल्पना करके, हृदय-मन्त्रसे अर्ध दे, देवताको उठाकर लिङ्गमय आसनपर शिरोमन्त्रद्वारा पूर्वकी ओर मस्तक रखते हुए आरोपित एवं स्थापित करे । इस प्रकार उन परमात्माका साक्षात्कार होनेपर चन्दन और धूप चढ़ाते हुए उनकी पूजा करे तथा कवच-मन्त्रसे वस्त्र अर्पित करे । धरका उपकरण आदि अर्पित कर दे । फिर अपनी शक्तिके अनुमार नमस्कार-पूर्वक नैवेद्य निवेदन करे । अस्यङ्गकर्मके लिये धूत और मधुमे युक्त पात्र हृष्टदेवके चरणोंके समीप रखवे । वहाँ उपस्थित हुए आनार्य शक्तिसे लेकर भूमि-पर्यन्त छत्तीस तत्त्वोंके समूहको उनके अधिपतियोग्यसहित स्थापित करके फूलकी मालाओंमें उनके दीन भागोंकी कल्पना करे ॥ ७९-८० ॥

वे तीन भाग भायासे लेकर शक्ति-पर्यन्त हैं । उनमें प्रथम भाग चतुर्षीण, द्वितीय भाग अष्टकोण और तृतीय भाग चतुर्लाकार है । प्रथम भागमें आत्मतर्त्व, द्वितीय भागमें विद्यातत्त्व और तृतीय भागमें शिवतत्त्वकी स्थिति है । इन भागोंमें सुषिक्कमसे एक-एक अधिपति हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाममें प्रसिद्ध हैं । तदनन्तर मूर्तियों और मूर्तीशरोंको पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे न्यास करे । पृथ्वी, अग्नि, यजमान, सूर्य, जल, वायु, चन्द्रमा और आकाश—ये आठ भूर्तिरूप हैं । इनका न्यास करनेके पश्चात् इनके ‘अधिपतियोंका न्यास

करना चाहिये । उनके नाम इस प्रकार हैं—शं, पशुपति, उग्र, रुद्र, भव, ईश्वर, महादेव और भीर्ष । इनके बाचक मन्त्र निम्नलिखित हैं—ॐ, र, शं, षं, षं, षं, षं, षं, षं, इं, अथवा श्रिमात्रिक प्रणव तथा ‘हां’ अथवा हृदय-मन्त्र अथवा कही-कही मूल-मन्त्र इनके (मूर्तियों और मूर्तिपतियोंके) पूजनके उपयोगमें आते हैं । अथवा पञ्चशुष्ठात्मक यागमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच मूर्तियोंका ही न्यास करे ॥ ८१-८६ ॥

फिर क्रमशः इनके पाँच अधिपतियों—ब्रह्मा, शेषनाग, रुद्र, ईश और सदाशिवका मन्त्रश पुष्ट दृष्टिकर्मसे न्यास करे । यदि यजमान मुमक्षु हो तो वह पञ्च-मूर्तियोंके स्थानमें ‘निवृत्ति’ आदि पाँच कलाओं तथा उनके ‘आजात’ आदि अधिगतिगोका न्यास करे । अथवा सर्वत्र व्यासिरूप वारगात्मक वितत्वका ही न्यास करना चाहिये । शुद्ध भ्रष्टामें विचंश्शरोंका और अशुद्धमें लोक-नायकोंका मूर्तिपतियोंके रूपमें दर्शन करना चाहिये । भोगी (सर्व) भी मन्त्रेश्वर हैं । पैतीस, आठ, पाँच और तीन मूर्तीरूप-तत्त्व क्रमशः कहे गये हैं । ये ही इनके तत्त्व हैं । इन तत्त्वोंके अधिपतियोंके मन्त्रोंका दिग्दर्शन-मात्र कराया जाता है । ॐ हां शक्तिस्वाम नमः । इत्यादि । ॐ हां शक्तिस्वाधिपाय नमः । इत्यादि । ॐ हां क्षमामूर्तये नमः । ॐ हां क्षमामूर्त्येषि-पतये ब्रह्मणे नमः । इत्यादि । ॐ हां शिवतस्वाय नमः । ॐ हां शिवतस्वाधिपतये रुद्राय नमः । इत्यादि । नाभि-मूलमें उच्चरित होकर धण्टानादके समान सब और पौल्नेवालं, ब्रह्मादि कारणोंके त्यागपूर्वक, द्वादशान्तस्थानको प्राप्त हुए मनमें अभिन्न तथा आनन्द-रसके उद्भवको पा लेनेवाले मन्त्रका और निष्कल, व्यापक शिवका, जो अद्वैतीष कलाओंमें युक्त, सहस्रों किरणोंमें प्रकाशमान, सर्वशक्तिमय तथा साङ्घ है, ध्यान करते हुए उन्हें द्वादशान्तसे लाकर शिवलिङ्गमें स्थापित करे ॥ ८७-९४ ॥

इस प्रकार शिवलिङ्गमें जीवन्यास होना चाहिये, जो सम्पूर्ण पुरुषाथोंका साधक है । पिण्डिका आदिमें किस प्रकार न्यास करना चाहिये, यह बताया जाता है । पिण्डिकाको ज्ञान कराकर उसमें चन्दन आदिका लेप

* सोमशुष्ठुकी ‘क्षमंकाष्ठ-क्षमावली’में इन मन्त्रोंका क्रम रु, र, श, ष, ष, ष, ष, ष, इ, प्रणव’ इस प्रकार दिया गया है ।

करे और उसे सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित करके, उसके भगवास्वरूप छिद्रमें पञ्चरत्न आदि डालकर, उस पिण्डिका-
को लिङ्गसे उत्तर दिशामें स्थापित करे। उसमें भी लिङ्गकी ही भाँति न्यास करके विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। उसका स्नान आदि पूजन-कार्य सम्पन्न करके लिङ्गके मूलभागमें शिवका न्यास करे। फिर शक्तस्यन्त बृप्तभक्ता भी स्नान आदि संस्कार करके स्थापन करना चाहिये ॥ ९५-९८ ॥

तत्पश्चात् पहले प्रणवका, पिर 'हाँ हूँ ही' ।—इन तीन बीजोंमेंसे किसी एकका उच्चारण करते हुए क्रियाशक्तिसहित आधाररूपिणी शिला—पिण्डिकाका पूजन करे । भस्म, कुद्दा और तिलसे तीन प्राकार (परकोटा) बनावे तथा इकाके लिये आतुरामसहित लोकपालोंकी बाहरकी ओर निर्योजित एवं पूजित करे । पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं— 'ॐ हीं क्रियाशक्तये नमः । ॐ हीं महागौरि रुद्रदिविते स्वाहा ।' निमाङ्कित मन्त्रके द्वारा पिण्डिकामें पूजन करे— 'ॐ हीं आधारशक्तये नमः । ॐ हीं बृषभाय नमः ।' ॥ १९—३० ॥

धारिका, दीपा, अनुग्रह, उद्घोलना, ब्रह्मेत्कटा, मात्री और
 विधात्री—इनका पिण्डोंमें न्यास करे; अथवा वामा,
 ज्येष्ठा, किया, ज्ञाना और वेदा (अथवा रोधा या
 प्रह्ली)।—इन पाँच नायिकाओंका न्यास करे। अथवा
 किया, ज्ञाना तथा इच्छा—इन तीनका ही न्यास करे;
 पूर्ववत् शान्तिमूर्तियोंमें तभी, मोहा, क्षुभा, निद्रा, मृत्यु,
 माया, जग और भया इनका न्यास करे; अथवा तमा,
 मोहा, शोरा, रति, अपञ्चरा—इन पाँचोंका न्यास करे;
 या किया, ज्ञाना और इच्छा—इन तीन अधिनायिकाओंका
 आत्मा आदि तीन तीव्र मूर्तिवाले तत्वोंमें न्यास करे।
 यहाँ भी पिण्डिका, ब्रह्मशिला आदि में पूर्ववत् गौरी
 आदि शम्भवी (मन्त्रों) द्वारा ही सब कार्य विधिवत्
 सम्पन्न करे॥ १०२—१०३॥

इस प्रकार न्यासकर्म करके कुण्डके समीप जा, उसके भीतर महेश्वरका, मेखलाओंमें चतुर्सुरजका, नाभिमें क्रियाशक्तिका तथा ऊर्ध्वभागमें नारका न्यास करे । तदनन्तर कलश, वेदी, अग्नि और शिवके द्वारा नाड़ी-संधानकर्म करे । कमलके तनुकी भाँति सूक्ष्मशक्ति ऊर्ध्वगत वायुकी सहायतासे ऊपर उठती और शून्य मार्गसे शिवमें प्रवेश करती है । फिर वह ऊर्ध्वगत अङ्ग

वहाँसे निकलती और शून्यमार्गसे अपने भीतर प्रवेश करती है। इस प्रकार चिन्तन करे। मूर्तिपालकोंको भी सर्वत्र इसी प्रकार संबंधन करना चाहिये ॥ १०७-११० ॥

कुण्डमें आधार-शक्तिका पूजन करके, तर्पण करनेके पश्चात्, क्रमशः तत्त्व, तत्त्वेश्वर, मूर्ति और मूर्तीश्वरोंका धृत आदिसे पूजन और तर्पण करे । फिर उन दोनों (तत्त्व, तत्त्वेश्वर एवं मूर्ति, मूर्तीश्वर) को संहिता-मन्त्रोंसे एक सौ, एक सहस्र अथवा आधा सहस्र आहुतियाँ दे । साथ ही पूर्णाहुति भी अर्पण करे । तत्त्व और तत्त्वेश्वरों तथा मूर्ति और मूर्तीश्वरोंका पूर्वोक्त शीतिष्ठे एक दूसरेके संनिधानमें तर्पण करके मूर्तिपालक भी उनके लिये आहुतियाँ दें । इसके बाद द्रव्य और कालके अनुसार बंदों और अङ्गोद्धारा तर्पण करके, शान्ति-कलशके जलसे प्रोक्षित कुश-मूलद्वारा लिङ्गके मूल-भागका स्पर्श करके, होम-सख्याके बगावर जप करे । हृदय-मन्त्रसे संनिधापन और कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठन करे ॥ १११-११५ ॥

इस प्रकार संशोधन करके, लिङ्गके ऋषि-भागमें
ब्रह्मा और अन्त (मूल) भागमें विष्णुका पूजन आदि
करके, शुद्धिके लिये पूर्ववत् सारा कार्य सम्पन्न कर,
होम-संख्याके अनुसार जप आदि करे। कुत्सके मध्यभागसे
लिङ्गके मध्यभागका और कुत्सके अग्रभागसे लिङ्गके
अग्रभागका सर्वश करे। जिस मन्त्रसे जिस प्रकार संधान
किया जाता है, वह इस समय बताया जाता है—
ॐ हाँ हं, ॐ ओं एं, ॐ नूँ नूँ वाह्नीमूर्तये नमः ।
ॐ हाँ वाँ, ओं ओं आं वाँ, ॐ नूँ नूँ वा
ह्नीमूर्तये नमः॥ । इसी प्रकार यजमान आदि मूर्तियोंके
साथ भी अभिसंधान करना चाहिये । पञ्चमूर्त्यात्मक
शिवके लिये भी हृदयादि-मन्त्रोद्घारा इसी तरह संधान-
कर्म करनेका विधान है । त्रित्वात्मक स्वरूपमें मूलमन्त्र
अथवा अपने बीजमन्त्रोद्घारा संधान-कर्म करनेकी
विधि है—ऐसा जानना चाहिये । शिला, पिण्डिका ए
वृषभके लिये भी इसी तरह संधान आवश्यक है । प्रत्येक

* आचार्य सोमशश्मुकी 'कर्मकाण्ड-क्रमाबली' में वे मन्त्र
इस प्रकार उपलब्ध होते हैं—ॐ हा हा वा, ॐ ॐ ॐ
वा, ॐ अङ् द्वा, द्वामायूर्ये नमः । ॐ हा हा वा, ॐ ॐ
वा, ॐ अङ् द्वा, द्विगुरुने नमः ।

भगवानी शुद्धिके लिये अपने मन्त्रोद्घासा शतादि होम करे और उसे पूर्णाहुतिद्वाया पृथक् कर दे ॥११६-१२०॥

न्यूनता आदि दोषसे खुटकारा पानेके लिये शिव-मन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे और जो कर्म किया गया है, उसे शिवके कानमें निवेदन करें—प्रभो ! आपकी शक्तिसे ही मेरेद्वाया इस कार्यका सम्पादन हुआ है, ॐ भगवान् रुद्रको नमस्कार है । रुद्रदेव ! आपको मेरा नमस्कार है । यह कार्य विधिष्ठूर्ण हो या अपूर्ण, आप अपनी शक्तिसे ही इसे पूर्ण करके प्रहण करें । ‘हीं हीं शांकरि पूर्ण स्वाहा ।’—ऐसा कहकर पिण्डिकामें स्नास करे । तदनन्तर शानी पुरुष लिङ्गमें किया-शक्तिका और पीठ-विग्रहमें ब्रह्मशिलाके ऊपर आधाररूपिणी

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें प्रतिष्ठाके अन्तर्गत संचान पर्व अधिवासकी विधिका वर्णन नामक छित्रानन्देवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ०६ ॥

शक्तिका स्थान करे ॥ १२१—१२५ ॥

यात, पाँच, तीन अथवा एक रातक उसका निरोध करके या तल्लाल ही उसका अधिवासन करे । अधिवासनके बिना कोई भी याग सम्पादित होनेपर भी कलदायक नहीं होता । अतः अधिवासन अवश्य करे । अधिवासन-कालमें प्रतिदिन देवताओंको अपने-अपने मन्त्रोद्घास सौ-सौ आहुतियाँ दे तथा शिव-कलश आदिकी पूजा करके दिशाओंमें बलि अर्पित करे ॥ १२६-१२७२ ॥

गुरु आदिके साथ रातमें नियमपूर्वक वास ‘अधिवास’ कहलाता है । ‘अधिपूर्वक वस’ धारुसे भावमें ‘धज्’ प्रस्त्रय किया गया है । इसमें ‘अधिवास’ शब्द सिद्ध हुआ है ॥ १२८ ॥

सत्तानवेवाँ अध्याय

शिव-प्रतिष्ठाकी विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्फन्द । प्रातःकाल-नित्य-कर्मके अनन्तर द्वार-देवताओंका पूजन करके मण्डपमें प्रवेश करे । पूर्वोक्त विधिसे देहशुद्धि आदिका अनुष्ठान करे । दिक्षपालोंका, शिव-कलशका तथा वार्षीनी (जलपात्र) का पूजन करके अष्टपुष्टिकाद्वाया शिवलिङ्गकी अर्चना करे और क्रमशः आहुति दे, अग्निदेवको तृप्त करे । तदनन्तर शिवकी आडा ले ‘अस्त्राय फट् ।’का उच्चारण करते हुए मन्दिरमें प्रवेश करे तथा ‘अस्त्राय हुं फट् ।’ बोलकर वहाँके विष्णोंका अपसारण करे ॥ १—३ ॥

शिलाके टीक मध्यभागमें शिवलिङ्गकी स्थापना न करें; क्योंकि वैष्ण करनेपर वैष्ण-दोषकी आशहुता रहती है । इसलिये मध्यमागको स्थागकरु एक या आषा, जौ किंचित् ईशान भागका आश्रय ले आधारशिलामें शिवलिङ्गकी स्थापना करे । मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस (अनन्त) नाम-धारिणी, सर्वाधारस्वरूपिणी, सर्वव्यापिणी शिलाको सृष्टियोग-द्वारा अविचल भावसे स्थापित करे । अथवा निम्नाङ्कित मन्त्रसे शिवकी आसनस्वरूपा उस शिलाकी पूजा करे—‘ॐ नमो अस्त्रिणि भगवाति शिवेऽप्यके भूते हीं कं हीं स्वाहा ।’ पूजनसे पहले यो कहे—‘आषारशक्ति-स्वरूपिणी शिवे । तुम्हें भगवान्,

शिवकी आशासे यहाँ नित्य-निरन्तर ख्यरतापूर्वक ख्यत रहना चाहिये ।’—ऐसा कहकर पूजन करनेके पश्चात् अवरोधिनी-मूदासे शिलाको अवरुद्ध (ख्यरतापूर्वक स्थापित) कर दे ॥ ४—८ ॥

हींरे आदि रत्न, उशीर (खस) आदि ओषधियाँ, लौह और सुवर्ण, कास्य आदि धातु, हरिताल आदि, धान आदिके पौधे तथा पूर्वकथित अन्य वस्तुएँ क्रमशः एकत्र करे और मन-ही-मन भावना करे कि प्ये सब वस्तुएँ कान्ति, आरोग्य, देह, वीर्य और शक्तिस्वरूप हैं । इस प्रकार एकाधिचित्तसे भावना करके छोकपाल और शिवसम्बन्धी मन्त्रोद्घासा पूर्वादि कुण्डोंमें इन वस्तुओंमेंसे एक-एकको क्रमशः ढाले । सोने अथवा ताँबेके बने हुए कछप या वृशभको द्वारके सम्मुख रखकर नदीके किनारेकी या पर्वतके शिखरकी मिट्टीसे युक्त करे और उसे चौंदीकी बनी हुई शृङ्खलाको सम्पूर्ण बीजों और सुवर्णसे संयुक्त करके उस मध्यम कुण्डमें ढाले । अथवा सोने, चौंदी या सब प्रकारके लोहसे निर्मित सुवर्णमय केल्लोंसे युक्त कमळ या अनन्त (शोधनाम) की मूर्तिको उसमें ढालें ॥ ९—१५ ॥

शक्तिसे लेकर मूर्ति-पर्यन्त अथवा शक्तिसे लेकर शक्ति-पर्यन्त तत्त्वका देवाधिदेव महादेवके लिये आसन निर्मित करके उसमें स्थीर या गुगुलका लेप करे। तत्प्रात् वज्रसे गर्तकी आच्छादित करके कवच और अल्मन्त्रदाग उसकी रक्षा करे। फिर दिक्पालोंको बलि देकर आच्चार्य आनन्दन करे। शिला और गर्तके सङ्ग-दोषकी नितृत्तिके लिये शिव-मन्त्रसे अथवा अल्मन्त्रसे विधिपूर्वक सी आहुतियों दे। साथ ही पूर्णाहुति भी करे। बालु देवताओंको एक-एक आहुति देकर तृप्त करनेके पश्चात् हृदय-मन्त्रसे भगवान्को उठाकर मङ्गल-वाद्य और मङ्गल-पाठ आदिके साथ ले आवे॥ १६—१९॥

गुरु भगवान्के आगे-आगे चले और चार दिशाओंमें स्थित चार मूर्तिपालोंके साथ यजमान स्वयं भगवान्की सवारीके बीछे-पीछे चले। मन्दिर आदिके चारों ओर धुमाकर शिवलिङ्गको भद्र-द्वारके सभुख नहलावे और अर्घ्य देकर उसे मन्दिरके भीतर ले जाय। खुले द्वारसे अथवा द्वारके लिये निष्प्रित स्थानसे शिवलिङ्गको मन्दिरमें ले जाय। इन सबके अभावमें द्वार बंद करनेवाली शिलासे शून्य-मार्गसे अथवा उस शिलाके कपरसे होकर मन्दिरमें प्रवेशका विधान है। दरवाजेसे ही महेश्वरको मन्दिरमें ले जाय, परंतु उनका द्वारसे स्पर्श न होने दे। यदि देवाल्यका समारम्भ हो रहा हो तो किसी कोणसे भी शिवलिङ्गको मन्दिरके भीतर प्रविष्ट कराया जा सकता है। व्यक्त अथवा स्थूल शिवलिङ्गके मन्दिर-प्रवेशके लिये सर्वत्र यही विधि जाननी चाहिये। धरमें प्रवेशका मार्ग द्वार ही है, इसका साधारण लोगोंको भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यदि बिना द्वारके धरमें प्रवेश किया जाय तो गोत्रका नाथ होता है—ऐसी मान्यता है॥ २०—२४॥

तदनन्तर पीठपर, द्वारके सामने शिवलिङ्गको स्थापित करके नाना प्रकारके बायों तथा मङ्गलसूचक व्यनियोंके साथ उत्तर पूर्व और अक्षत चढ़ावे तथा 'समुत्तिष्ठ अमः'—ऐसा कहकर महापाशुपति-मन्त्रका पाठ करे। इसके बाद आच्चार्य गर्तमें रक्ते हुए घटकों वहाँसे हटाकर मूर्तिगङ्गाओंके साथ यन्त्रमें स्थापित करावे और उसमें कुकुम आदिका लेप करके, शक्ति और शक्तिमान्की एकताका चिन्तन करते हुए, लयान्त मूलमन्त्रका उच्चारण करके, उस आल्मन्त्र-छक्षित घटका स्पर्शपूर्वक पुनः गर्तमें ही स्थापन करा दे। ब्रह्मभागके एक अंश, दो अंश, आधा अंश अथवा आठवें

अंशातक या सम्पूर्ण ब्रह्मभागका ही गर्तमें प्रवेश करावे। फिर नाभिपर्यन्त दीर्घओंके साथ शीशेका आवरण बेहुल एकाग्राचित हो, नीचेके गर्तको बालूसे पाट दे और कहे—‘भगवन् ! आप सुस्थिर हो जाइये’॥ २५—३०॥

तदनन्तर लिङ्गके स्थिर हो जानेपर सकल (साक्षय) रूपवाले परमेश्वरका ध्यान करके, शतपथ-मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए, शिवलिङ्गके स्पर्शपूर्वक उसमें निष्कली-करण-न्यास करे। जब शिवलिङ्गकी स्थापना हो रही हो, उस समय जिस-जिस दिशाका आश्रय है, उस-उस दिशाके दिक्पाल-सम्बन्धी मन्त्रका उच्चारण करके पूर्णाहुति-पर्यन्त होम करे और दंसिणा दे। यदि शिवलिङ्गसे शब्द प्रकट हो अथवा उसका मुख्यभाग हिले या फट-फूट जाय तो मूल-मन्त्रमें या ‘बहुस्प’ मन्त्रद्वारा सौ आहुतियाँ दे। ऐसी प्रकार अन्य दोष प्राप्त होनेपर शिवद्वारा॒क शान्ति करे। उक्त विधिमें यदि शिवलिङ्गमें न्यासका विधान किया जाय तो कर्ता दोषका भागी नहीं होता। तदनन्तर लक्षणस्पर्शरूप पीठबन्ध करके गौरीमन्त्रसे उसका लय करे। फिर पिण्डीमें सुष्टिन्यास करे॥ ३१—३५॥

लिङ्गके पाश्वभागमें जो संधि (छिद्र) हो, उसको बालू एवं बड़लेपसे भर दे। तत्प्रात् गुरु मूर्तिपालकोंके साथ शान्तिकलशके आधे जलसे शिवलिङ्गको नहलाकर, अन्य कलशों तथा पञ्चामृत आदिसे भी अभिषिक्त करे। फिर चन्दन आदिका लेप ल्या, जगदीश्वर शिवकी पूजा करके, उमा-भैश्वर-मन्त्रोदारा लिङ्गमुद्रासे उन दोनोंका स्पर्श करे। इसके बाद छहों अद्याओंके न्यासपूर्वक चित्तचन्द्रन्यास करके, मूर्तिन्यास, दिक्पालन्यास, अङ्गन्यास एवं ब्रह्मन्यासपूर्वक शानशक्तिका लिङ्गमें तथा क्रियाशक्तिका पीठमें न्यास करनेके पश्चात् स्तुन करावे॥ ३६—३९॥

गन्धका लेपन करके धूप दे और व्यापकरूपसे शिवका न्यास करें। हृदय-मन्त्रद्वारा पुण्यमाला, धूप, दीप, नैवेद्य और फल निवेदन करे। यथाशक्ति इन वस्तुओंको निवेदित करनेके पश्चात् महादेवजीको आनन्दन करावे। फिर विशेषार्थ देकर मन्त्र जरे और भगवान्के वरदात्मक हाथमें उस जपको अर्पित करनेके पश्चात् इस प्रकार कहे—‘हे नाथ ! चबतक चन्द्रमा, सूर्य और तारोंकी स्थिति रहे, तबतक मूर्तिशी तथा मूर्तिपालोंके साथ आप स्वेच्छापूर्वक ही इस मन्दिरमें सदा स्थित रहें।’ ऐसा कहकर प्रणाम

करनेके पश्चात् बाहर जाय और हृदय या प्रणव-मन्त्रसे वृषभ (नन्दिकेश्वर) की स्थापना करके, फिर पूर्ववत् बलि निवेदन करे। तत्पश्चात् न्यूनता आदि दोषके निराकरणके लिये मृत्युज्ञाय-मन्त्रसे सी बार समिधाओंकी आहुति दे एवं शान्तिके लिये खीरसे होम करे ॥ ४०—४४ ॥

इसके बाद यों प्रार्थना करे—‘महाविभो ! शान अथवा अज्ञानपूर्वक कर्ममें जो त्रुटि रह गयी है, उसे आप पूर्ण करें।’ यों कहकर यथाशक्ति सुवर्णा, पशु एवं भूमि आदि सम्पत्ति तथा गीत-बाद्य आदि उत्सव, सर्वकारणभूत अग्निकानाथ शिवको भक्तिपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर चार दिनोंतक लगातार दान एवं महान् उत्सव करे। मन्त्रश आचार्यको चाहिये कि उत्सवके इन चार दिनोंमेंसे तीन दिनोंतक तीनों समय मूर्तिगळोंके साथ होम करे और चौथे दिन पूर्णाहुति देकर, बहुमृप-सम्बन्धी मन्त्रसे चूड निवेदित करे। सभी कुण्डोंमें समाताहुतिसे शोधित चूड अर्पित करना चाहिये। उक्त चार दिनोंतक निर्माल्य न हटावे। चौथे दिनके बाद निर्माल्य हटाकर, स्नान करानेके पश्चात् पूजन करे। सामान्य लिङ्गोंमें साधारण मन्त्रोद्घारा पूजा करनी चाहिये। लिङ्ग-चैतन्यको छोड़कर स्थाणु-विसर्जन करे। असाधारण लिङ्गोंमें ‘क्षमस्तु’ इत्यादि कहकर विसर्जन करे ॥ ४५—५० ॥

आवाहन, अभिव्यक्ति, विसर्ग, शक्तिरूपता और प्रतिष्ठा—ये पांच बातें मुख्य हैं। कहीं-कहीं प्रतिष्ठाके अन्तमें स्थिरता आदि गुणोंकी सिद्धिके लिये सात आहुतियों देनेका विधान है। भगवान् शिव स्थिर, अप्रमेय, अनादि, बोध-स्वरूप, नित्य, सर्वव्यापी, अविनाशी एवं आत्मवृत्त हैं। महेश्वरकी सनिधि या उपस्थितिके लिये ये गुण कहे गये हैं। आहुतियोंका क्रम इस प्रकार है—ॐ नमः शिवाय स्थिरी भव नमः स्वाहा ॥—इत्यादि। इस प्रकार इस कार्यका सम्पादन करके शिव-कलशकी भोति दो कलश और तैयार करे। उनमेंसे एक कलशके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराकर, दूसरा यजमानके स्नानके लिये रक्षे। (कहीं-कहीं ‘कर्मस्थानाय भारयेत् ।’ ऐसा पाठ है।) इसके अनुसार दूसरे कलशका जल कर्मानुष्ठानके लिये स्थापित करे, यह अर्थ समझना चाहिये।) इसके बाद बलि देकर आचमन करनेके पश्चात् शिवकी आशासे बाहर जाय ॥ ५१—५५ ॥

याग-मण्डपके बाहर मन्दिरके ईशानकोणमें चण्डका

स्थापन-पूजन करे। फिर मण्डपमें धामके गर्भके बराबर, उत्तम पीठपर आसनकी कल्पना करके, पूर्ववत् न्यास, होम आदिका अनुष्ठान करे। फिर व्यानपूर्वक ‘सद्योजात’ आदिकी स्थापना करके, वहाँ ब्रह्माङ्गोद्घारा विधिवत् पूजन करे। ब्रह्माङ्गोंका वर्णन पहले किया जा चुका है। अब जिस प्रकार मन्त्रद्वारा पूजन किया जाता है, उसे सुनो—‘ॐ वं सद्योजाताय हूँ फट् नमः ।’ ‘ॐ विवामदेवाय हूँ फट् नमः ।’ ‘ॐ वृं अघोराय हूँ फट् नमः ।’ इसी प्रकार, ‘ॐ वं तत्पुरुषाय हूँ फट् नमः’ तथा ‘ॐ वृं ईशानाय हूँ फट् नमः ।’—ये मन्त्र हैं ॥ ५६—५९ ॥

इस प्रकार जप निवेदन करके, तर्पण करनेके पश्चात् स्तुतिपूर्वक विज्ञापना देकर चण्डेशसे प्रार्थना करे—‘हे चण्डेश ! जबतक श्रीमहादेवजी यहाँ विराजमान हैं, तबतक तुम भी इनके समीप विद्यमान रहो। मैंने अज्ञानवश जो कुछ भी न्यूनाधिक कर्म किया है, वह सब तुम्हारे कृपाप्रसादसे पूर्ण हो जाय। तुम स्वयं उसे पूर्ण करो।’ जहाँ बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हो, जहाँ चल लोहमय (सुवर्णमय) लिङ्ग हो, जहाँ सिद्धलिङ्ग (ज्योतिलिङ्गादि) तथा स्वयम्भूलिङ्ग हों, वहाँ और सब प्रकारकी प्रतिमाओंपर चढ़े हुए निर्माल्यमें चण्डेशका अधिकार नहीं होता है। अद्वैतभावनायुक्त यजमानपर तथा स्थण्डिलेश-विधिमें भी चण्डेशका अधिकार नहीं है। चण्डका पूजन करके स्नायक (अभिषेक करने वाला गुरु) स्वयं ही पत्नी और पुत्रसहित यजमानको पूर्व-स्थापित कलशके जलसे स्नान करावे। यजमान भी स्नायक गुरुका महेश्वरकी भोति पूजन करके, धनकी कंजसी छोड़कर, उन्दे भूमि और सुवर्ण आदिकी दक्षिणा दे ॥ ६०—६४ ॥

तत्पश्चात् मूर्तिगळों तथा जपकर्ता ब्राह्मणोंका, ज्योतिशीका और शिल्पीका भी भलीभौति विधिवत् पूजन

* इन मन्त्रोंके विषयमें पाठमें चौपाँच मिलता है। सोमवारम्भुकी ‘कर्मचण्ड-कमावली’में ये मन्त्र इस प्रकार दिये गये हैं—ॐ चै सद्योजाताय हूँ फट् नमः ।’ ‘ॐ चै तत्पुरुषाय हूँ फट् नमः ।’ ‘ॐ चौ प्रश्नमाय हूँ फट् नमः ।’

† बाणलिङ्गे वक्ते लोहे सिद्धलिङ्गे स्वयम्भूवि।

प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्।

अद्वैतभावनायुक्ते

स्थण्डिलेशविद्यावपि ॥

(अधि० ९७ । ६२-६३)

करके दीनों और अनाथों आदिको भोजन करावे। इसके बाद यजमान गुरु द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करे—हे भगवन्। यहाँ सम्मुख करनेके लिये मैंने आपको जो कष्ट दिया है, वह सब आप शमा करें; क्योंकि नाथ। आप करुणाके सामग्र हैं, अतः मेरा सामा अपराध भूल जायें।' इस प्रकार प्रार्थना करनेवाले यजमानको सहुर अपने हाथसे कुश, पुष्प और अक्षतपुष्करे साथ प्रतिष्ठाजनित पुण्यकी सत्ता समर्पित करे, जिसका स्वरूप चमकते हुए तारोंके समान दीनिमान् है॥ ६५-६८॥

तदनन्तर, पाशुपत-मन्त्रका जप करके, परमेश्वरको प्रणाम करनेके अनन्तर, भूतगणोंको बलि अर्पित करे और इस प्रकार उन सबको समीप लाकर यों निवेदन करे—‘आपलोगोंको तथतक यहाँ स्थित रहना चाहिये, जबतक महादेवजी यहाँ विराजमान है।’ वस्त्र आदिसे युक्त यागमण्डपको गुरु अपने अधिकारमें ले ले तथा समस्त उपकरणोंसे युक्त स्नान-मण्डपको शिल्पी ग्रहण करे। अन्य देवता आदिकी आगमोक्त मन्त्रोद्घारा स्थापना करनी चाहिये। सूर्यके वर्णभेदके अनुसार उन देवता आदिके वर्णभेद समझने चाहिये। वे अपने तैजस-तत्त्वमें व्याप्त हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। साथ आदि देवता, सरिताएँ, ओरधियों, क्षेत्रपाल और किनर आदि—ये सब पृथ्वीतत्त्वके आश्रित हैं। कहीं कहीं सरस्वती, लक्ष्मी और नदियोंगां स्थान जलमें बताया गया है॥ ६९-७३॥

भुवनाधिपतियोंका स्थान वही है, जहाँ उनकी स्थिति है। अहंकार, बुद्धि और प्रकृति—ये तीन तत्त्व ब्रह्माके स्थान हैं। तन्मात्रांत लेकर प्रधान पर्यन्त तीन तत्त्व श्रीहरि के स्थान हैं। नाटयेश, गण, मातृका, यक्षराज, कार्तिकेय तथा गणेशका स्थान अण्डजादि शुद्ध विद्यान्त-तत्त्व है। भायांश देशसे लेकर शक्ति-पर्यन्त तत्त्व शिवा, शिव तथा उग्रतज्जाले मूर्यदेवका स्थान है। व्यक्त प्रतिमाओंके लिये ईश्वर-पर्यन्त पद बताया गया है। स्थापनाकी सामग्रीमें जो कूर्म आदिका वर्णन किया गया है तथा जो रूप आदि पाँच वस्तुएँ कही गयी हैं, उन सबको देवपीठके गर्तमें ढाल दे, परंतु पाँच ब्रह्मशिलाओंको उसमें न ढाले॥ ७४-७७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘शिव-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन’ नामक सत्तानवेदाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९७॥

मन्दिरके गर्भका छः भागमें विभाजन करके छठे भागको त्याग दे और पाँचवें भागमें देवताकी स्थापना करे। अथवा मन्दिरके गर्भका आठ भाग करके सातवें भागमें प्रतिमाओंकी स्थापना करे तो वह सुखावह होता है। लेप अथवा चित्रमय विग्रहकी स्थापनामें पञ्चभूतोंकी धारणाओं-द्वारा विशुद्धि होती है। वहाँ स्नान आदि कार्य जलसे नहीं, मानसिक किये जाते हैं। वैसे विग्रहोंको शिला एवं रूप आदिके भवनमें रखना चाहिये। उनमें नेत्रोन्मीलन तथा आलन आदिकी कल्पना अभीष्ट है। इनकी पूजा जल्दहित पुण्योंसे करनी चाहिये, जिससे चित्र दूषित न हो॥ ७८-८१॥

अब चल लिङ्गोंके लिये स्थापनाकी विधि बतायी जाती है। गर्भस्थानके पाँच अथवा तीन भाग करके एक भागको छोड़ दे और तीसरे या हूसरे भागमें चल लिङ्गकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके पीटोंके लिये भी करना चाहिये। लिङ्गोंमें तत्त्वमेदमें पूजनकी प्रक्रियामें भेद होता है। स्फटिक आदिके लिङ्गोंमें इष्टमन्त्रसे (अथवा सृष्टि-मन्त्रसे) विधिवत् संस्कार होना चाहिये। इसके सिवा वहाँ ब्रह्मशिला एवं रूपभूतिका निर्वेदन अपेक्षित नहीं है॥ ८२-८४॥

पिण्डिकाकी योजना भी मनसे ही कर लेनी चाहिये। स्थयमभूलिङ्ग और वाणलिङ्ग आदिमें संस्कारका नियम नहीं है।* उन लिङ्गोंको संहिता-मन्त्रोंसे स्नान करना चाहिये। वैदिक विधिसे ही उनके लिये न्यास और होम करना चाहिये। नदी, समुद्र तथा रोह—इनके स्थापन करनेका विधान पूर्ववत् है॥ ८५-८६॥

इहलेकमें जो मृतका आदिके अथवा आठे आदिके शिवलिङ्गका पूजन किया जाता है, वह ताल्कालिक होता है। अर्थात् पूजन कालमें ही लिङ्ग-निर्माण करके वीक्षणादि विधानसे उसकी शुद्धि करे। तत्प्रात् विधिवत् पूजन करना चाहिये। पूजनके पश्चात् मन्त्रोंको लेकर अपने-आपमें स्थापित करे और उस लिङ्गको जलमें डाल दे। एक वर्षतक ऐसा करनेसे वह लिङ्ग और उसका पूजन मनोवाञ्छित फल देनेवाला होता है। विष्णु आदि देवताओंकी स्थापनाके मन्त्र अलग हैं। उन्हेंके द्वारा उनकी स्थापना करनी चाहिये॥ ८७-८९॥

* पाठान्तरके अनुसार वहाँ पीठके ही संस्कारका नियम है, क्लिक्का नहीं।

अद्वानवेवाँ अध्याय

गौरी-प्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं पूजा-
कहित गौरीकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा, सुनो। पूर्ववत्
मण्डप आदिकी रचना करके देवीकी स्थापना एवं
शश्याधिवागन करे। पूर्वोक्त मन्त्रों और मूर्त्यादिकोंका न्यास
करके आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका परमेश्वरमें
स्थापन करे। तदनन्तर पराशक्तिका न्यास, होम और
जप पूर्ववत् करके क्रियाशक्तिमूर्तिपिण्डी पिण्डीका
संधान करे। सर्वव्यापिनी पिण्डीका स्थान करके वहाँ रक्षा
आदिका न्यास करे। इस विधिने पिण्डीकी स्थापना करके
उसके ऊपर देवीको स्थापित करे॥ १-४ ॥

वे देवी परमशक्तिमूर्तियाँ हैं। उनका अपने ही मन्त्रमें
सुष्टुप्त-न्यासपूर्वक स्थापन करे। तदनन्तर, पीठमें क्रियाशक्तिका
और देवीके विघ्नमें ज्ञानशक्तिका न्यास करे। इसके
बाद सर्वव्यापिनी शक्तिका आवाहन करके देवीकी प्रतिमामें
उसका नियोजन करे। फिर 'शिवा' नामवाली अमिका
देवीका स्पर्शपूर्वक पूजन करेः॥ ५-६ ॥

पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—ॐ श्व आधारशक्तये
नमः। ॐ शूर्योदय नमः। ॐ ही मारशक्तये नमः। ॐ एश्वर्योदय नमः। ॐ अथशक्तिनाय
नमः। ॐ पश्चासनाय नमः। ३० तदनन्तर केसरोकी पूजा करे।
तत्पश्चात् ॐ ही कर्णिकायै नमः। ॐ ही पुष्करकर्षभ्यो नमः।—
इन मन्त्रोदाया कर्णिका एवं कमलशक्तीका पूजन करे। इसके
बाद ॐ ही पृष्ठनै नमः। ॐ ही शानायै नमः। ॐ हुं

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गौरी-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक भ्रातृनवेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ०८ ॥

* पाठानन्दरै अनुसार 'अमुकेशी' इत्यादि नाममें उनका स्पर्शपूर्वक पूजन करे। यथा—रामकृष्ण नमः। गृह्णोदये नमः। १ इत्यादि।

+ सोमशम्भुकी 'कर्मकाण्ड-क्रान्तवली'में इन मन्त्रोंके स्वरूप और बीज कुछ चित्र रूपमें दिखते हैं। यतः उन्हें अविकल रूपमें
वहाँ उद्धृत किया जाता है—३० श्व आधारशक्तये नमः। ॐ ही कल्पराय नमः। ॐ ३० नायाय नमः। ॐ शूर्योदय नमः।
ॐ लं वैराग्याय नमः। ॐ लं शैश्वर्यो नमः। ॐ लं अश्वर्यो नमः। ॐ लं अशानाय नमः।
ॐ लं अवैराग्याय नमः। ॐ लं अनेश्वर्यो नमः। ॐ लं कर्मचक्षिनाय नमः। ॐ लं पश्चाय नमः। ॐ लं केसरेभ्यो
नमः। ॐ हं कर्णिकायै नमः। ॐ हं पुष्करेभ्यो नमः। ॐ हं प्राण्ड्ये नमः। ॐ ही ज्ञानवस्थै नमः। ॐ ही क्रियायै
नमः। ॐ हूँ वासायै नमः। ॐ हूँ वासीश्वर्यै नमः। ॐ ही ज्ञानिन्द्रै नमः। ॐ ही ज्येष्ठाै नमः। ॐ ही रौद्रयै नमः।
इति सर्वशक्तयः। ॐ गी गौरीसनाय नमः। ॐ गो गौरीमूर्त्यै नमः। ॐ ही सः महागौरि ब्रह्मदयिते स्वाहा।—इति
मूर्त्यमः। गी इदयाय नमः। गी शिरसे स्वाहा। गूँ शिखायै वषट्। गे कवचाय हुम्। गी नेत्रेभ्यो बौद्ध्। गः अस्त्राय
फट्। ॐ सी शानशक्तयै नमः। ॐ हुं क्रियाशक्तयै नमः। कोक्षपालमन्त्रास्तु पूजोत्तमः। ए सहै सुभगायै नमः। ॐ सहै
लक्ष्मितयै नमः। ॐ सहै कर्ममालिन्दै नमः। इत्येता गौरीसमानसत्त्वः।

निन्यानवेवाँ अध्याय

सूर्यदेवकी स्थापनाकी विधि

भगवान् शिव बोले—स्कन्द ! अब मैं सूर्यदेवकी प्रतिष्ठाका वर्णन करूँगा । पूर्ववत् मण्डप-निर्माण और स्नान आदि कार्यका सम्पादन करके, पूर्वोक्त विधिसे विद्या तथा साङ्ग सूर्यदेवका आसन-शश्यामें न्यास करके श्रितत्वका, ईश्वरका तथा आकाशादि पाँच भूतोंका न्यास करे ॥ १-२ ॥

पूर्ववत् शुद्धि आदि करके पिण्डीका शोधन करे । फिर सदेशपद-पर्यन्त तत्त्व-पञ्चकका न्यास करे । तदनन्तर

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सूर्य-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक निन्यानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

सौवाँ अध्याय

द्वारप्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं द्वारगत प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन करूँगा । द्वारके अङ्गभूत-उपकरणोंका करैले जल आदिमें संस्कार करके उन्हें शश्यापर रखले । द्वारके मूल, मध्य और अधोभागोंमें आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका न्यास करके सनिरोधिनी-मुद्राद्वारा उनका निरोध करे । फिर तदनुरूप होम और जप करके, द्वारके अधोभागमें अनन्त देवताके मन्त्रसे बास्तु-देवताकी पूजा करे । वहाँ रत्नादि-पञ्चक स्थापित करके शान्ति-होम करे । तत्पश्चात् जौ, सरसों, वरहंटा, शूद्धि (ओषधिविशेष), वृद्धि (ओषधिविशेष), पीली सरसों, महातिल, गोमृत (गोपीचन्दन), दरद (हिन्दूल या सिंगरफ), नागेन्द्र (नागकेसर), मोहिनी (त्रिपुरमाली या पोई), लक्ष्मणा (सफेद कठेहरी), अमृता (गुरुचि), गोरोचन या लाल कमल, आरग्ध (अमलताजा) तथा दुबाँ—इन ओषधियोंको मन्दिरके नीचे

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्वार-प्रतिष्ठाकी विधिका वर्णन' नामक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

प्राताद-प्रतिष्ठा

भगवान् शिव कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं प्राताद (मन्दिर) की स्थापनाका वर्णन करता हूँ । उसमें चैतत्वका सम्बन्ध दिखा रहा हूँ । जहाँ मन्दिरके गुंबजकी समाप्ति होती

है, वहाँ पूर्ववेदीके मध्यभागमें आधारशक्ति का चिन्तन करके प्रणव-मन्त्रसे कमलका न्यास करे । उसके ऊपर सुवर्ण आदि धातुओंमें किसी एकका बना हुआ कल्प स्थापित

करे । उसमें पञ्चगच्छ, मधु और दूध पढ़ा हुआ हो । रत्न आदि पाँच बलुएँ ढाली गयी हों । कलशपर गन्धका लेप हुआ हो । वह वस्त्रसे आकृत हो तथा उसे सुगन्धित पुष्टोंसे सुखासित किया गया हो । उस कलशके मुखमें आम आदि पाँच बृक्षोंके पल्लव ढाले गये हों । हृदय-मन्त्रसे हृदय-कमलकी भावना करके उस कलशको बहाँ स्थापित करना चाहिये ॥ १—३५ ॥

तदनन्तर गुरु पूरक प्राणायामके द्वारा श्वासको भीतर लेकर, शरीरके द्वारा रक्तलीकरण कियाका सम्मादन करके, स्व-सम्बन्धी मन्त्रसे कुम्भक प्राणायामद्वारा प्राणबायुको भीतर अवस्था करे । फिर भगवान् शंकरकी आङ्गामे सर्वात्मामे अभिन्न आत्मा (जीवचेतन्य) को जगावे । तत्पश्चात्, रेचक प्राणायामद्वारा द्वादशान्त स्थानसे ग्रज्ञलित अग्निकणके समान जीवचेतन्यको लेकर कलशके भीतर स्थापित करे और उसमें आतिवाहिक शरीरका न्यास करके उसके गुणोंके बोधक काल आदिका एवं ईश्वरमहित पृथ्वी-पर्यन्त तत्त्व-गमुदायका भी उसमें निवेश करे ॥ ४-७ ॥

इसके बाद उस कलशमें दस नाड़ियों, दस प्राणं,

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें 'प्राप्ताद-प्रतिष्ठात्वी निविदः वर्णन' नामक एक सा एक-री अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

एक सौ दोवाँ अध्याय

ध्यारोपण

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! देव-मन्दिरमें शिखर, घ्वज-दण्ड एवं घ्वजकी प्रतिष्ठा जिस प्रकार यताशी गयी है, उसका तुमसे वर्णन करता हूँ । शिखरके आवे भागमें शूलका प्रवेश हो अथवा सम्पूर्ण शूलके आधे भागका शिखरमें प्रवेश कराकर प्रतिष्ठा करनी चाहिये । इदंटे थने हुए मन्दिरमें लकड़ीका शूल होना चाहिये और प्रस्तर-निर्मित मन्दिरमें प्रस्तरका । विष्णु आदिके मन्दिरमें कलशको चक्रसे संयुक्त करना चाहिये । वह कलश देवमूर्तिकी मापके अनुरूप ही होना चाहिये । कलश यदि विशूलसे युक्त हो तो 'अग्रचूल' या अगचूल नामसे प्रसिद्ध होता है ॥ १-२ ॥

यदि उसके मस्तक-भागमें शिवलिङ्ग हो तो उसे 'ईश शूल' कहते हैं । अथवा शिरोभागमें त्रिजोरे नीबूकी आङ्गुष्ठी आङ्गुष्ठी योग्य होनेपर भी उसका यही नाम है । शीष-शास्त्रमें वैसे

(पाँच शानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि और अहंकार—इन) तेरह इन्द्रियों तथा उनके अधिपतियोंकी भी उस कलशमें स्थापना करके, प्रणव आदि नाम-मन्त्रोंसे उनका पूजन करे । अपने-अपने कार्यके कारकरूपसे जो मायाप्राप्ति के नियमक हैं, उनका, प्रेरक विद्येश्वरोंका तथा रुद्रव्यापी शिवका भी अपने-अपने मन्त्रद्वारा वहाँ न्यास और पूजन करे । रामस अङ्गोंका भी न्यास करके अवरोधिनी-मुद्राद्वारा उन रथका निरोध करे । अथवा सुर्खणा आदि धनुओद्वारा निर्मित पुरुषकी आङ्गुष्ठी, जो टांक भानव-शरीरके तुल्य हो, लेकर उसे 'घ्वंवत् पञ्चगच्छ एव कसैले जट आदिमें समृद्ध (शुद्ध) करे । फिर उसे शश्यपर आपीन करके उमाति सद्देवका न्यास करने हुए शिव मन्त्रसे उस पुरुष-शरीरमें न्यापक न्यूपमं उन्होंका न्यास करे ॥ ८-११३ ॥

उनके गांगोधानके लिये होम, प्रोक्षण, न्यूपमं जप करं । गांगोधान तृथा गोपन् आदि सारा कार्य न्यापत्र विभागान्तरक करे । इस प्राप्ति प्रकृति-पर्यन्त नामका नारा विभाग न्यूपमं करके उस पुरुषको पृथ्वीक वरदान अपापित कर दे ॥ १२-१३ ॥

उनके गांगोधानके लिये होम, प्रोक्षण, न्यूपमं जप करं । गांगोधान तृथा गोपन् आदि सारा कार्य न्यापत्र विभागान्तरक करे । इस प्राप्ति प्रकृति-पर्यन्त नामका नारा विभाग न्यूपमं करके उस पुरुषको पृथ्वीक वरदान अपापित कर दे ॥ १२-१३ ॥

शूलका वर्णन मिलता है । जिसकी उन्नाद उच्चावेदीके भगवत् अथवा जड़ावेदीके आधे मापकी हो, वह 'विच-घ्वज' कहा गया है । अथवा उनका मान दण्डके बराबर या अपनी इच्छाके अनुसार रखवे । जो पीठको आवेष्टित कर ले, वह 'भद्राघ्वज' कहा गया है । चौदह, नी अथवा उच्चावेदीके मापका दण्ड क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधिम माना गया है—यह विद्वान् पुरुषोद्वारा जाननेके योग्य है । घ्वजका दण्ड दोसका अथवा सात्व आदिका हो तो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होता है ॥ ४-७ ॥

यह घ्वज आरोपण करते समय यदि टूट जाय तो राजा अथवा यजमानके लिये अनिष्टकारक होता है—ऐसा जानना चाहिये । उस दशामें बहुरूप-मन्त्रद्वारा पूर्ववत् शान्ति करे । द्वारपाल आदिका पूजन तथा मन्त्रोंका तर्पण करके घ्वज और उसके दण्डको अख्य-मन्त्रसे नहलावे । गुरु इसी

मन्त्रतं ध्वजका प्रोपण करके मिही तथा कमेले जल आदिसे मन्दिरको भी स्नान करावे । चूलक (ध्वजके ऊपरी भाग) मे गंधादिका लेर करके उसे बख्लसे आन्डादित करे । किर पूर्ववत् उसे शव्यापर रखकर उसमे लिङ्गकी भोति न्यास करना चाहिये । परंतु चूलकमे जानशक्ति और क्रियाशक्तिका न्यास न करे । वहाँ विश्वार्थ-बोधिका चतुर्थी भी बांधित नहीं है और न उसके लिये कुरुम या कुण्डकी ही कल्पना आवश्यक है ॥ ८-१२ ॥

दण्डमें आत्मतत्त्वका विद्यातत्त्वका तथा सत्त्वोजात आदि पोच मुखोका न्यास करे । किर ध्वजमें शिवतत्त्वका न्यास करे । वहाँ निष्कल शिवका न्यास करके हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे । तदनन्तर मन्त्रश गुरु ध्वज और ध्वजाग्रभागमें सनिधीकरणके लिये फडन्त संहिता-मन्त्रों-द्वारा प्रयोगभागमें होम करे । किन्तु और प्रकारसे भी कहीं जो ध्वज-न्यास किया गया है, वह भी इस प्रकार अस्त्र याग करके ही करना चाहिये । ये सब वाने मनीरी पुरुषोंने करके दिखायी हैं ॥ १३-१५ ॥

मन्दिरको नहत्यकर, पुष्पहार और बन्ध आदिमे विभूषित करये, जहाँवेदीके ऊपरी भागमें तितत्व आदिका न्यास, होम आदिका विधान एवं शिवका पूर्ववत् पूजन करके, उनके सबतत्त्वमय व्यापक स्वल्पका ध्यान करते हुए व्यापक-न्यास करे । भगवान शिवके चरणारविन्दिमें अनन्त एवं कालहृषकी भावना करके पीठमें कृष्णांड, हाटक, पानाल तथा नरकोंकी भावना करे । नदनन्तर शुब्नों, लोकपालों तथा शतरुद्रादिमें घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड-का ध्यान करके जहाँवेदीमें स्थापित करे ॥ १६-१९ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशरूप पश्चाष्टक, मर्वीवरणसंक्षक, बुद्धियोग्यक, योगाष्टक, प्रलय-पर्वत रहनेवाल त्रिगुण, पटस्थ पुरुष और वाम सिंह—इन

इस प्रकार आदि आमनेय महापुराणमें ध्वजारोपणादिकी विधिका वर्णन नामक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

एक सौ तीनवाँ अध्याय

शिवलिङ्ग आदिके जीर्णोद्धारकी विधि

भगवाल शंकर कहते हैं—स्वन्द ! जीर्ण आदि लिङ्गोंके विधिवत् उद्धारका प्रकार यहा यहा है । जिसका चिह्न गिट गया हो, जो दृट-पूट गया हो, मैल आदिमे शूल

सबका भी जहाँवेदीमें चिन्तन करे; किंतु मङ्गरी वेदिकामें विद्यादि जार तत्वोंकी भावना करे । कण्ठमें माया और शूलका, अमलसारमें विद्याओंका तथा कलशमें ईश्वर-विन्दु और विद्येश्वरका चिन्तन करे । चन्द्राधरस्वल्प शूलमें जटाजटकी भावना करे । उसी शूलमें विविध शक्तियोंकी तथा दण्डमें नाभिकी भावना करके ध्वजमें कुण्डलिनी शक्तिका चिन्तन करे । इस प्रकार मन्दिरके अवश्यकोंमें विभिन्न तत्वोंकी भावना करनी चाहिये ॥ २०-२४ ॥

जगतीने धाम (प्रासाद या मन्दिर) का तथा पिण्डिका-से लिङ्गका संधान करके शेष सारा विधान यहाँ भी पूर्ववत् करना चाहिये । इसके बाद गुरु बायोंके मङ्गलमय धोप तथा वेदध्वनिके साथ मूर्तिधरोंसहित शिवरूप मूलधाले ध्वज-दण्डको उठाकर जहाँ मन्त्रोच्चारणपूर्वक शक्तिमय कमलका न्यास हुआ है तथा रत्नादि-पञ्चकका भी न्यास हो गया है, वहाँ आधार-भूमिमें उसे स्थापित कर दे ॥ २५-२६ ॥

जब प्रासाद-शिवरूपर ध्वज लग जाय, तब यजना, अपने मित्रों और बन्धुओं आदिके साथ मन्दिरकी परिक्रमा करके अभीष्ट कलका भागी होता है । गुरुको चाहिये कि वह अख आदिके साथ पाशुपतका चिरकालतक चिन्तन करते हुए उन सबके शब्दयुक्त अधिपतियोंको मन्दिरकी ग्रन्थके लिये निवेदन करे । न्यूनता आदि दोषकी शान्तिके लिये होम, दान और दिव्यलि करके यजमान गुरुको दक्षिणा दे । ऐसा करके वह दिव्य धाममें जाता है ॥ २७-२९ ॥

प्रतिमा, लिङ्ग और वंदीके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक मन्दिरका निर्माण एवं प्रतिष्ठा करनेवाल यजमान दिव्यलोकमें उत्तम भोग भोगता है । यही उसका प्राप्तव्य फल है ॥ ३० ॥

हो गया हो, वज्रसे आहत हुआ हो, सम्पुटित (वंद) हो, फट गया हो, जिसका अङ्ग-भज हो गया हो तथा जो इसी नरहके अन्य विकारोंमें प्रस्त हो—ऐसे तूष्णि लिङ्गोंकी पिण्डी

तथा वृषभका तत्काल स्थाग करनु देना चाहिये ॥ १—२ ॥

जो शिवलिङ्ग किसीके द्वारा चालित हो या स्थां चलित हो, अत्यन्त नीचा हो गया हो, विष्वम स्थानमें स्थित हो; जहाँ दिल्लोह होता हो, जो किसीके द्वारा शिरा दिया गया हो अथवा जो मध्यस्थ होकर भी शिर गया हो—ऐसे लिङ्गकी पुनः ठीकसे स्थापना कर देनी चाहिये। परंतु यदि वह बणरहित हो, तभी ऐसा किया जा सकता है। यदि वह नदीके जलप्रवाहद्वारा बहाँगे अन्यत्र हटा दिया जाता हो तो उस स्थानसे अन्यत्र भी शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी स्थापना की जा सकती है। जो शिवलिङ्ग अच्छी तरह स्थित हो, गुद्ध हो, उसे विचलित करना या चलाना नहीं चाहिये ॥ ३—५ ॥

जो अस्थिर या अदृढ़ हो, उस शिवलिङ्गको यदि चालित करे तो उसकी शान्तिके लिये एक सहस्र आहुतियाँ दे तथा सौ आहुतियाँ देकर पुनः उसकी स्थापना करे। जीर्णता आदि दोषोंमें युक्त शिवलिङ्ग भी यदि निष्पूजा-अच्छी आदिसे युक्त हो तो उसे सुस्थित ही रहने दे; चालित न करे। जीर्णोद्धारके लिये दिक्षिण-दिशामें एक मण्डप बनावे। इंशानकोणमें पश्चिम ढारका एक फाटक लगा दे। द्वारपूजा आदि करके, वेदीपर शिवजीकी पूजा करे। इसके बाद मन्त्रोंका पूजन ओर तर्पण करके वास्तु-देवताकी पूजाधृत पूजा करे। तदनन्तर बाहर जा, दिशाओंमें गति दे, स्थाय आचमन करनेके पश्चात् गुरु ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तपश्चात् भगवान् शंकरको इस प्रकार विज्ञप्ति दे—॥६—८॥

‘आमो ! यह लिङ्ग दोषयुक्त हो गया है। इसके उद्धार करनेमें शान्ति होगी—ऐसा आपका वचन है। अतः विधिपूर्वक इसका अनुष्ठान होने जा रहा है। शिव ! इसके लिये आप मेरे भीतर स्थित होइये और अधिष्ठाता बनकर इस कार्यका सम्पादन कीजिये।’ देवेशर शिवको इस प्रथार विज्ञप्ति देकर मधु और घृतमिश्रित खीर एवं दूधाद्वारा मूळमन्त्रसे एक गौ आठ आहुतियाँ देकर शान्ति-होमका कार्य सम्पन्न करे। तदनन्तर लिङ्गको स्तान कराकर वेदीपर इसकी पूजा करे। पूजनकालमें ‘ॐ व्यापकेश्वराय शिवाय नमः ।’ इस मन्त्रका उच्चारण करे। अष्टपूजा

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘जीर्णोद्धारकी विधिका वर्णन’ नामक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

और अङ्गन्यासके मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ व्यापकेश्वराय हृष्टाय नमः । ॐ व्यापकेश्वराय शिरसे स्वाहा । ॐ व्यापकेश्वराय शिवायै वृष्ट । ॐ व्यापकेश्वराय कल्पाय दुष्ट । ॐ व्यापकेश्वराय नेत्रत्रयाय वौष्ट । ॐ व्यापकेश्वराय अस्त्राय फट् ।’ ॥ ९—१३ ॥

तपश्चात् उस शिवलिङ्गके आश्रित रहनेवाले भूतको अस्त्र-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सुनावे—‘यदि कोई भूत-प्राणी यहाँ इस लिङ्गका अश्रय लेकर रहता है, वह भगवान् शिवकी अशास्त्रे इस लिङ्गको स्थागकर, जहाँ हच्छा हो, वहाँ चला जाय। अब यहाँ विद्या तथा विद्येश्वरोंके साथ साक्षात् भगवान् शम्भु निवास करेंगे।’ इसके बाद पाशुपत-मन्त्रमें प्रत्येक भागके लिये सहस्र आहुतियाँ देकर शान्ति-जलमें प्रोक्षण करे। फिर कुरुओद्धारा स्वर्ण करके उक्त मन्त्रको जपे ॥ १४—१६ ॥

तदनन्तर, विलोम-क्रममें अर्ध देकर लिङ्ग और पिण्डिकमें स्थित तत्त्वों, तत्त्वाधिपतियाँ और अष्ट मूर्तीश्वरोंका गुरु न्यायपाशांगे विसर्जन करके वृषभके कंधेपर स्थित रज्जु-द्वारा उसे बांधकर ले जाय तथा जनमुदायके साथ शिव-नामका कीर्तन करते हुए, उस वृषभ (नन्दिकेश्वर) को जलमें डाल दे। फिर मन्त्रश आचार्य पुष्टिके लिये सौ आहुतियाँ दे। दिक्कालोंकी तृतीय तथा वास्तु-शुद्धिके लिये भी सौ-सौ आहुतियोंका होम करे। तपश्चात् भगवान्शुपत-मन्त्रमें उस मन्दिरमें गत्ताकी व्यवस्था करके, गुरु वहाँ विधिपूर्वक दूसरे लिङ्गकी स्थापना करे। अमुरों, सुनियों, देवताओं तथा नक्षत्रेताओंद्वारा स्थापित लिङ्ग जीर्ण या भग्न हो गया हो तो भी विधिके द्वारा भी उसे चालित न करे ॥ १७—२१ ॥

जीर्ण-मन्दिरके उद्धारमें भी यही विधि काममें लानी चाहिये। मन्त्रग्राणोंका लिङ्गमें न्यास करके दूसरा मन्दिर तैयार करावे। यदि पहलेकी अपेक्षा मन्दिरको संकुचित या छोटा कर दिया जाय तो कर्ताकी गृह्य होती है और विस्तार किया जाय तो धनका नाश होता है। अतः ग्राचीन मन्दिर-के द्रव्यको लेकर या और कोई श्रेष्ठ द्रव्य लेकर पहलेके मन्दिरके बराबर ही उस स्थानपर नूतन मन्दिरका निर्माण करना चाहिये ॥ २२—२३ ॥

एक सौ चारवाँ अध्याय

प्रासादके लक्षण

भगवान् शांकर कहते हैं—‘ज्ञामें मयूरका चिह्न धारण करनेवाले स्कन्द । अब मैं प्रासाद-सामान्यका लक्षण कहता हूँ । चौकोर क्षेत्रके चार भाग करके एक भागमें भित्तियों (दीवारों)का विस्तार हो । बीचके भाग गर्भके रूपमें रहे और एक भागमें पिण्डिका हो । पाँच भागवाले क्षेत्रके भीतरी भागमें तो पिण्डिका हो, एक भागका विस्तार छिद्र (शून्य या खाली जगह) के रूपमें हो तथा एक भागका विस्तार दीवारोंके उपयोगमें लाया जाय । मध्यम गर्भमें दो भाग और ज्येष्ठ गर्भमें भी दो ही भाग रहे । किंतु कनिष्ठ गर्भ तीन भागोंसे सम्पन्न होता है; शेष आठवाँ भाग दीवारोंके उपयोगमें लाया जाय, ऐसा विधान कहीं-कहीं उपलब्ध होता है ॥ १-३३ ॥

छः भागोंद्वारा विभक्त क्षेत्रमें एक भागका विस्तार दीवारके उपयोगमें आता है, एक भागका विस्तार गर्भ है और दो भागोंमें पिण्डिका स्थापित की जाती है । कहीं-कहीं दीवारोंकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईकी अपेक्षा दुगुनी, सवा दो गुनी, दाईं गुनी अथवा तीन गुनी भी होनेका विधान मिलता है । कहीं-कहीं प्रासाद (मन्दिर) के चारों ओर दीवारके आधे या पैने विस्तारकी जगत होती है और चौथाई विस्तारकी नैमि । बीचमें एक तृतीयांशकी परिधि होती है । यहाँ रथ बनवावे और उनमें चामुण्ड-भैरव तथा नाथ्येशकी स्थापना करे । प्रासादके आधे विस्तारमें चारों ओर बाहरी भागमें देवताओंके लिये आठ या चार परिकमाप्त बनवावे । प्रासाद आदिमें इनका निर्माण वैकल्पिक है । चाहे बनवावे, चाहे न बनवावे ॥ ४-८३ ॥

आदित्योंकी स्थापना पूर्व दिशामें और स्कन्द एवं अनिकी प्रतिष्ठा वायव्य-दिशामें करनी चाहिये । इसी प्रकार यम अदि देवताओंकी भी स्थिति उनकी अपनी-अपनी दिशामें मानी गयी है । दिशाके चार भाग करके नीचेके दो भागोंकी ‘शुकनासिका’ (गुंबज) संक्षा है । तीसरे भागमें वेदीकी प्रतिष्ठा है । इससे आगेका जो भाग है, वही ‘अमलसार’ नामसे प्रसिद्ध ‘कण्ठ’ है । वैराज, पुष्टक, कैलास, मणिक और श्रिविष्टप—ये पाँच ही प्रासाद मेहरके शिखरपर विराजमान हैं । (अतः प्रासादके ये ही पाँच मुख्य मैद माने गये हैं ।) ॥ ९-११३ ॥

इनमें पहला ‘वैराज’ नामबाल्य प्रासाद चतुरस्र (चौकोर) होता है । दूसरा (पुष्टक) चतुरस्रायत है । तीसरा (कैलास) वृत्ताकार है । चौथा (मणिक) वृत्तायत है तथा पाँचवाँ (श्रिविष्टप) अष्टकोणाकार है । इनमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ मैद होनेके कारण कुल मिलकर पैतालीस मैद हैं । पहला प्रासाद मेहर, दूसरा मन्दर, तीसरा विमान, चौथा भद्र, पाँचवाँ सर्वतोभद्र, छठा रुचक, सातवाँ नन्दक (अथवा नन्दन), आठवाँ वर्धमान नन्दि अर्थात् नन्दिवर्द्धन और नवाँ श्रीवत्स—ये नौ प्रासाद ‘वैराज’के कुलमें प्रकट हुए हैं ॥ १२-१५ ॥

बलभी, गृहराज, शालाग्नि, मन्दिर, विशाल-चमस, ब्रह्म-मन्दिर, भुवन, प्रभव और शिविकवेशम—ये नौ प्रासाद ‘पुष्टकमें प्रकट हुए हैं । बलय, दुंदुभि, पश्च, महापश्च, वर्षनी, उष्णीय, शङ्ख, कलश तथा खबृङ—ये नौ वृत्ताकार प्रासाद ‘कैलास’ कुलमें उत्पन्न हुए हैं । गज, वृषभ, हंस, गरुदमान, अृष्टनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय तथा पुरुषीधर—ये नौ वृत्तायत प्रासाद ‘मणिक’ नामक मुख्य प्रासादमें प्रकट हुए हैं । बज्र, चक्र, स्वस्तिक, वशस्तिक (अथवा बज्र-हस्तक), चित्र, अस्तिक-नवङ्ग, गदा, श्रीकण्ठ और विजय—ये नौ प्रासाद ‘श्रिविष्टप’से प्रकट हुए हैं ॥ १६-२१ ॥

ये नगरोंकी भी संक्षार्ण हैं । ये ही लाट आदिकी भी संक्षार्ण हैं । शिवरकी जो ग्रीवा (या कण्ठ) है, उसके आधे भागके बराबर ऊँचा चूल (चोटी) हो । उसकी मोटाई कण्ठके तृतीयांशके बराबर हो । वेदीके दस भाग करके पाँच भागोंद्वारा स्कन्दका विस्तार करना चाहिये, तीन भागोंद्वारा कण्ठ और चार भागोंद्वारा उसका अण्ड (या प्रनवण्ड) बनाना चाहिये ॥ २२-२३ ॥

पूर्वादि दिशाओंमें ही द्वार रखने चाहिये, कोणोंमें कदापि नहीं । पिण्डिका-विस्तार कोणतक जाना चाहिये, मध्यम भागतक उसकी समाप्ति हो—ऐसा विधान है । कहीं-कहीं द्वारोंकी ऊँचाई गर्भके चौथे या पाँचवें भागसे दुनी रखनी चाहिये । अथवा इस विषयको अन्य प्रकारसे भी बताया जाता है । एक सौ साठ अङ्गुलकी ऊँचाईसे लेकर दस-दस अङ्गुल घटाते हुए जो चार द्वार बनते हैं, वे उसम माने गये हैं (जैसे १६०, १५०, १४० और १३० अङ्गुल-

तक ऊँचे द्वार उत्तम कोटिये गिने जाते हैं ।) एक सौ वीस, एक सौ दस और सौ अङ्कुल ऊँचे द्वार मध्यम श्रेणीके अन्तर्गत हैं तथा इससे कम १०, ८० और ७० अङ्कुल ऊँचे द्वार कनिष्ठ कोटि के बताये गये हैं । द्वारकी जितनी कँचाई हो, उससे आधी उसकी चौड़ाई होनी चाहिये । कँचाई उक्त मापसे तीन, चार, आठ या दस अङ्कुल भी हो तो शुभ है । ऊँचाईसे एक चौड़ाई विस्तार होना चाहिये, दरवाजेकी शान्ताओं (वाजुओं) काँड़अथवा उन सबकी ही चौड़ाई द्वारकी चौड़ाईसे आधी होनी चाहिये—ऐसा बताया गया है । तीन, पाँच, सात तथा नौ शान्ताओं-द्वारा निर्मित द्वार अभीष्ट फलके देनेवाला है ॥ २४-२९ ॥

नीचेकी जो शास्त्र है उसके एक चौराई भागमें दो द्वारपालोंकी स्थापना करे । जोग शान्ताओंको स्त्री-पुरुषोंके जोड़की आकृतियोंसे विभूषित करे । द्वारके टीक सामने

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘सामान्य-प्रामादलक्षण-वर्गन’ नामक एक सौ नामवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

नगर, गृह आदिकी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधि

भगवान् शंकर कहते हैं—स्कन्द ! नगर, ग्राम तथा दुर्ग आदिमें ऐहों और प्रासादोंकी बुद्धि हो, इसकी विद्धिके लिये इक्यासी पदोंका वास्तुमण्डल बनाकर उसमें वास्तु-देवताकी पूजा अवश्य करनी चाहिये । (इस नेत्रा पश्चिमसे पूर्वकी ओर और दस दक्षिणमें उत्तरकी ओर लीचनेपर इक्यासी पद तैयार होते हैं ।) पूर्वभिमुखी दस रेखाएँ दस नाडियोंकी प्रतीकभूता हैं । उन नाडियोंके नाम इस प्रकार बताये गये हैं—शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, लक्षी, वसुमती, नन्दा, सुभद्रा और मनोरमा । उत्तराभिमुख प्रवाहित होनेवाली दस नाडियों और है, जो उक्त नौ पदोंको इक्यासी पदोंमें विभाजित करती हैं; उनके नाम ये हैं—हरिणी, सुप्रभा, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, जया, (विजया), ज्वाला और विशोका । सूत्रपात करनेसे वे रेखामयी नाडियाँ अभिष्यक्त होकर चिन्तनका विषय बनती हैं ॥ १-४ ॥

ईश आदि आठ-आठ देवता ‘अष्टक’ हैं, जिनका चारों दिशाओंमें पूजन करना चाहिये । [पूर्वादि चार दिशाओंके दृथक्-पृथक् अष्टक हैं ।] ईश, धन (पञ्चन्य), जय (जयन), शक (इन्द्र), अर्क (आदित्य या सूर्य), सत्य, भूरा और अयोम (आकाश)—इन आठ देवताओंका वास्तुमण्डलमें पूर्व दिशाके पदोंमें पूजन करना चाहिये । हृष्यवाद् (अग्नि),

खंभा पड़े तो ‘स्तम्भवेध’ नामक दोष होता है । इससे गृहस्वामीको दासता प्राप्त होती है । धूक्षसे वेध हो तो ऐश्वर्यका नाश होता है, कृपसे वेध हो तो भयकी प्राप्ति होती है और क्षेत्रसे वेध होनेपर धनकी हानि होती है ॥ ३०-३१ ॥

प्रासाद, गृह एव शाला आदिके मार्गोंसे द्वारोके विद्ध होनेपर बन्धन प्राप्त होता है, सभासे वेध प्राप्त होनेपर दरिद्रता होती है तथा वर्णसे वेध हो तो निराकरण (तिरस्कार) प्राप्त होता है । उल्कवल्मी वेध हो तो दारिद्र्य, शिलासे वेध हो तो शत्रुता और द्यायासे वेध हो तो निर्धनता प्राप्त होती है । इन सबका छेदन अथवा उत्पाटन हो जानेसे वेध-दोष नहीं लगता है । इनके बीचमें चहारदीवारी उठा दी जाय तो भी वेध-दोष दूर हो जाता है । अथवा सीमासे दुगुनी भूमि छोड़कर ये वस्तुएँ हो तो भी वेध-दोष नहीं होता है ॥ ३२-३४ ॥

पृथा, विनथ, सौम (सोमपुष्प घृहधन), कृतान्त (यम), गन्धर्व, भृङ्ग (भृङ्गराज) और मृग—इन आठ देवताओंकी दक्षिण दिशाके पदोंमें अर्चना करनी चाहिये । पिनर, द्वारपाल (या दीवारिक), सुग्रीव, पृथ्वदन्त, वरुण, दैत्य (अमुर), शेष (या शोष) और यक्षमा (पापयश्मा)—इन आठोंका सदा पश्चिम दिशाके पदोंमें पूजन करनेकी विधि है । रोग, अहि (नाग), मुख्य, भल्लाट, सोम, शैल (ऋषि), अदिति और दिति—इन आठोंकी उत्तर दिशाके पदोंमें पूजा होनी चाहिये । वास्तुमण्डलके मध्यवर्ती नौ पदोंमें ब्रह्माजी पृजित होते हैं और शेष अड़ालीसे पदोंमें अर्चये अर्थात् चौबीस पदोंमें वे देवता पूजनीय हैं, जो अकेले छः पदोंपर अधिकार रखते हैं । [ब्रह्माजोके चारों ओर एक-एक करके चार देवता पृथ्वद-गमी हैं—जैसे पूर्वमें मरीचि (या अर्यमा), दक्षिणमें विवस्वान्, पश्चिममें मित्र देवता तथा उत्तरमें पृथ्वीधर ।] ॥ ५-८ ॥

ब्रह्माजी तथा ईशके मध्यवर्ती कोष्ठकोंमें जो दो पद हैं, उनमें ‘आप’की तथा नीचेवाले दो पदोंमें ‘आपवत्स’की पूजा करे । इसके बाद छः पदोंमें मरीचिकी अर्चना करे । मरीचि और अग्निके बीचमें जो कोणवर्तीं दो पद हैं, उनमें सविताकी स्थिति है और उनमें निम्नभागके दो पदोंमें

सावित्रि तेज या सावित्रीकी। उसके नीचे छः पदोंमें विवस्वान् विद्यमान हैं। पितरों और ब्रह्माजीके बीचके दो पदोंमें विष्णु-इन्दु स्थित हैं और नीचेके दो पदोंमें इन्द्र-जय विवस्वान हैं, इनकी पूजा करे। ब्रह्म तथा ब्रह्माके मध्यवर्ती छः पदोंमें मित्र-देवताका यजन करे। रोग तथा ब्रह्माके बीचबाले दो पदोंमें रुद्र-रुद्रदासकी पूजा करे।

और नीचेके दो पदोंमें यस्मकी। फिर उत्तरके छः पदोंमें भराभर (पृथ्वीधर) का यजन करे। फिर मण्डलके बाहर ईशानादि कोणोंके क्षम्यसे चरकी, स्कन्द, विद्यार्थी-विकट, पूतना, जम्भ, पापा (पापराज्यी) तथा पिलिपिञ्च (या पिलिपित्त) —इन बालग्रहोंकी पूजा करे ॥ १-१३ ॥

इक्यासी पदोंसे युक्त वास्तुचक्र

पूर्व

ईशान चरकी	इश्वर स्कन्द	अग्नि विद्यार्थी
१ ईश दिवि	२ (पञ्चन्य) घन आप	३ (जयन्त) जय मरीचि
३२ दिति	३३ आप	४ इन्द्र (आदित्य शक)
३१ अदिति	३४ आपवस्तु आपवस्तु	५ अर्क या सूर्य (आदित्य या सूर्य)
३० गिरि(शैल) या ऋषि	३५ पृथ्वीधर	६ मत्य
३९ साम	३६ पृथ्वीधर	७ भृश
२८ भाण्डाट	३७ पृथ्वीधर	८ ध्योम (आकाश)
२७ मुख्य	३८ रुद्र- रुद्रदास	९ हृष्यवाह (अग्नि)
२६ अहि (नाग)	३९ यक्षम	१० पूषा
२५ रोग	४० यक्षमा (पापवश्मा)	११ वितथ
	४१ योष या शोष (असुर)	१२ सौम (रहस्यत)
	४२ योष या (असुर)	१३ कृतान्त (धर्मराज या अम)
	४३ वैष्णव	१४ गन्धवं
	४४ विष्णु-इन्दु	१५ भृष्म या (भृष्मराज)
	४५ इन्द्र-जय	१६ मृग
	४६ द्वारपाल (दौवारिक)	१७ पितर

पापा (पापराज्यी)

जम्भ

पूतना

वायु

ब्रह्म

निर्मुक्ति

यह इक्यासी पदवाले वास्तुचक्रका वर्णन हुआ। देवताओंकी पूजाका विधान है। शतपदचक्रके मध्यवर्ती एक शतपद-मण्डप भी होता है। उसमें भी पूर्ववत् सोलह पदोंमें ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्माजीके

पूर्व आदि चार दिशाओंमें स्थित मरीचि, विवस्वान्, विज तथा पृथ्वीधरकी दस-दस पर्दोंमें पूजाका विधान है । अन्य और ईशान आदि कोणोंमें स्थित देवता हैं, जैसे दैत्योंकी माता दिति और ईश; अग्नि तथा मुग (पूजा) और पितर तथा पापयशमा और अनिल (रोग)—वृत्तव्यके सब ऐदृढ़ेदृढ़े पदमें अवस्थित हैं ॥ १४-१६ ॥

स्कन्द ! अब मैं यह आदिके लिये जो मण्डप होता है, उसका संक्षेपसे तथा क्रमशः वर्णन करूँगा । तीस हाथ लंबा और अड्डाईस हाथ लंबा मण्डप शिवका आश्रय है । लंबाई और चौड़ाई—दोनोंमें ग्यारह-प्यारह हाथ घटा देनेपर उन्हीस हाथ लंबा और सप्तह हाथ चौड़ा मण्डप शिव-संशक होता है । बाईस हाथ लंबा और उच्चीस हाथ चौड़ा अथवा अठारह हाथ लंबा तथा पंद्रह हाथ चौड़ा मण्डप हो तो वह सावित्र-संशाला कहा गया है । अन्य यहाँका विस्तार अंतिम होता है । दीवारकी जो मोटी उपजहाँ (कुर्सी) होती है, उसकी ऊँचाईमें दीवारकी ऊँचाई तिगुनी होनी चाहिये । दीवारके लिये जो सूतमें मान निश्चित किया गया हो, उसके बराबर ही उसके सामने भूमि (सहन) होनी चाहिये । वह बीथीके भेदमें अनेक मैदाली होती है ॥ १७-२० ॥

‘भद्र’ नामक प्रासादमें बीथियोंके समान ही ‘द्वारबीथी’ होती है; केवल बीथीका अग्रभाग द्वारबीथीमें नहीं होता है । ‘बीजय’ नामक प्रासादमें जो द्वारबीथी होती है, उसमें बीथीका पृष्ठभाग नहीं होता है । बीथीके पाइवंभागोंको द्वारबीथीमें कम कर दिया जाय, तो उससे उपलक्षित प्रासादकी भी ‘भद्र’ संज्ञा ही होती है । गर्भके विस्तारका ही भाँति बीथीका भी विस्तार होता है । कहीं-कहीं उसके आपे या चौथाई भागके ब्रावर भी होता है । बीथीके आपे मानसे उपबीथी आदिका निर्माण करना चाहिये । वह एक, दो या तीन पुरोंसे युक्त होता है । अब अन्य साधारण गृहोंके विषयमें बताया जाता है; यहका वैसा स्वरूप हो तो वह सबकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है । यह क्रमशः एक, दो, तीन, चार और आठ शालाओंसे युक्त होता है । एक शालावाले यहकी शाला दक्षिणभागमें बनती है और उसका दरवाजा उत्तरकी ओर होता है । यदि दो शालाएँ बनानी हों तो पश्चिम और पूर्वमें बनवाये और उनका द्वार आमने-सामने पूर्व-पश्चिमकी ओर रखें ।

चार शालाओंवाला यह चार द्वारों और अलिन्दोंसे युक्त होनेके कारण सर्वतोमुख होता है । वह गृहस्वामीके लिये कल्याणकारी है । पश्चिम दिशाकी ओर दो शालाएँ हों तो उस द्विशाल-गृहको ‘यमसूर्यक’ कहा गया है । पूर्व तथा उत्तरकी ओर शालाएँ हों तो उस गृहकी ‘दण्ड’ संज्ञा है तथा पूर्व-दक्षिणकी ओर दो शालाएँ हों तो वह यह ‘वान’संज्ञक होता है । जिस तीन शालावाले यहमें पूर्व दिशाकी ओर शाला न हो, उसे ‘सुक्षेत्र’ कहा गया है, वह बुद्धिदायक होता है ॥ २१-२६ ॥

* मत्स्यपुराणमें एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल और चतुरशाल-गृहका परिचय इस प्रकार दिया है—जिसमें एक दिशामें ५क ही शाल (कमरा) हों और अन्य दिशाओंमें कोई कमरा न होकर बरामदा मात्र हो, वह ‘एकशाल-गृह’ है । इसी तरह दो दिशाओंमें दो कमरे और तीन दिशाओंमें तीन कमरे तथा चारों दिशाओंमें चार करे होनेपर उन घरोंको कमशः ‘द्विशाल’, ‘त्रिशाल’ और ‘चतुरशाल’ कहते हैं । चतुरशाल-गृहमें चारों और करे “दं चारों ओए दरवाजे होने हैं और वे द्वार आगमन-सामने बने होते हैं । अनः वह सर्वतोमुख-गृह है और उसका नाम ‘सर्वतोमद्र’ है । यह देवालय तथा नृपालय दोनोंमें शुभ होना है । पश्चिम द्वार न हो [और अन्य तीन दिशाओंमें हो] तो उस गृहका विशेष नाम है—‘नन्धावर्ण’ । यदि उक्षिण दिशामें ही द्वार न हो तो उस भवनका नाम है—‘वर्षमान’ । पूर्व-द्वारसे राज्ञ इनेपर उसका नाम ‘स्वासाक’ होता है और उत्तर द्वारसे राज्ञ इनेपर ‘रचक’ । यह किसी एक दिशामें शाल (कमरा) ही न हो तो वह ‘त्रिशाल-गृह’ है । इसके भी कई भेद हैं । जिस मकानके भीतर उत्तर दिशामें कोई शाल न हो, वह त्रिशाल-गृह ‘धान्यक’ कहलाता है । वह मनुष्योंके लिये क्षेमकारक, वृद्धिकारक तथा वृष्टिपूर्व-फलदायक होता है । यदि पूर्व-दिशामें शाला न हो तो उस त्रिशाल-गृहको ‘सुक्षेत्र’ कहते हैं । यह भन, यह और आयुको देनेवाला तथा शोक और मोहका नाश करनेवाला होता है । यदि दक्षिण-दिशामें शाला न हो तो उसको ‘विशाल’ कहा गया है । वह मनुष्योंके लिये कुलक्षयकारी होता है तथा उसमें सब प्रकारके रोगोंका भय बना रहता है । यदि पश्चिम-दिशामें कोई शाला न हो तो उस त्रिशाल-गृहको ‘पक्षष्टन’ कहते हैं । वह नित्र, माई-बन्धु तथा पुत्रोंका मारक होता है और उसमें सब प्रकारके भय ग्रास होते रहते हैं ।

यदि दक्षिण दिशामें कोई शाला न हो [और अन्य दिशाओंमें हो] तो उस घरकी 'विशाल' संज्ञा है । वह कुलश्वरकारी तथा अत्यन्त भयदायक होता है । जिसमें पश्चिम दिशामें ही शाला न बनी हो, उस विशाल गृहको 'पक्षी' कहते हैं । वह पुत्र-हानिकारक तथा बहुत-से शत्रुओंका उत्पादक होता है । अब मैं पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे 'व्यज' * आदि आठ गृहोंका वर्णन करता हूँ । [व्यज, धूम, सिंह, श्वान, वृपम, खर (गधा), हाथी और काक—ये ही आठोंके नाम हैं ।] पूर्व-दिशामें स्तान और अनुग्रह (लोगोंसे कृपापूर्वक मिलने) के लिये घर बनावे । अग्निकोणमें उसका रसोईघर होना चाहिये । दक्षिण दिशामें रस-किया तथा शत्र्या (शयन) के लिये घर बनाना चाहिये । नैऋत्यकोणमें शशांगार होवे । पश्चिम दिशामें घन-रत्न आदिके लिये कोशागार रखें । वायव्य-कोणमें राम्यक् अन्नागार स्थापित करे । उत्तर दिशामें घन और पशुओंको रखें तथा इशानकोणमें दीक्षाके लिये उत्सम भवन बनावे । गृह-स्वामीके हाथसे नापे हुए गृहको जो पिण्ड है, उसकी लंबाई-चौड़ाईके इस्तमानको तियुना करके उसमें आठसे माग दे । उस भागका जो शेष हो, तदनुसार यह ध्वज आदि आव स्थित होता है । उसीसे

इस प्रकार आदि आनेष महापुराणमें 'नगरगृह आदिकी वास्तु-प्रतिष्ठा-विधिका वर्णन' नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

अब दिशाल-घरका फल बतावे हैं—दक्षिण-पश्चिम दिशाओंमें ही दो शालाएँ हो [और अन्य दो दिशाओंमें न हों] तो वह द्विशाल-गृह, धन-धान्यफलशालगृह, मानवोंके क्षेमकी कृदि करनेवाला तथा पुत्ररूप फल देनेवाला है । यदि केवल पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें ही दो शालाएँ हों तो उस गृहको 'यमशर्व' कहते हैं । वह राजा और अग्निका भय देनेवाला है तथा मनुष्योंके कुलका संहार करनेवाला होता है । यदि उत्तर और पूर्वमें ही दो शालाएँ हों तो उस गृहका नाम 'दण्ड' है । जहाँ 'दण्ड' हो, वहाँ अक्षर-मृत्युका भय प्राप्त होता है तथा शत्रुओंकी ओरसे भी भयकी प्राप्ति होती है । पूर्व और दक्षिण दिशाओंमें ही शाला होनेसे जो द्विशाल-गृह निर्मित हुआ है, उसकी 'धन' या 'वात' संज्ञा है । वह मृत्युकी सूचक है । वह गृह जियोंके लिये बैप्यकारक तथा जनेक भयदायक है । उत्तर-दक्षिणमें ही ही दो शालाएँ हों तो वह भी मनुष्यके लिये भयदायक है । [इहत्य अध्याय २५४के श्लोक सं० १ से १३ तक]

* अपराजितपूर्वक (विश्वकर्म-शास्त्र ६४५० सूत्र) के अनुसार पूर्वादि दिशाओंमें पदक्षिणक्रमसे रहनेवाले ध्वज आदिका उत्तेज इस प्रकार मिलता है—

व्यो वृत्त लिहम शानो वृषभरी गजः । व्याहृषेति समुदिद्यः प्राच्यादितु प्रदक्षिणः ॥

एक सौ छठा अध्याय

नगर आदिके वास्तुका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—कार्तिकेय । अब मैं शक्तिविद्याकी अभिवृद्धिके लिये नगर-चालुका वर्णन करता हूँ । नगर-निर्माणके लिये एक योजन या आधी योजन भूमि ग्रहण करे । वास्तु-नगरका पूजन करके उसको प्राकारसे संयुक्त करे । ईशादि तीस पदोंमें सूर्यके सम्मुख पूर्वद्वार, गन्धवंके समीप दक्षिणद्वार, बहुणके निकट पश्चिमद्वार और सोमके समीप उत्तरद्वार बनाना चाहिये । नगरमें चौड़े-चौड़े बाजार बनाने चाहिये । नगरद्वार छः हाथ चौड़ा बनाना चाहिये, जिसमें हाथी आदि सुखपूर्वक आज्ञा लके । नगर छिन्नकर्ण, भग्न तथा अधंचन्द्राकार नहीं होना चाहिये । ब्रह्म-सूक्ष्मिमुख नगर भी हितकर नहीं है । एक, दो या तीन द्वारोंसे युक्त धनुषाकार व ब्रह्मागाम नगरका निर्माण शान्तिप्रद है ॥ १-५ ॥

नगरके आग्नेयकोणमें स्वर्णकारोंको बसावे, दक्षिण दिशामें दूर्योजीविनी बाराङ्गनाओंके भवन हों । नैऋत्यकोणमें नट, कुम्भकार तथा केवट आदिके आवास स्थान होने चाहिये । पश्चिममें रथकार, आयुधकार और लङ्घनिर्माताओंका निवास हो । नगरके वायव्यकोणमें मथ विकेता, कर्मकार तथा भूत्योंका निवेश करे । उत्तर दिशामें ब्राह्मण, यति, सिद्ध और पुण्याल्मा पुरुषोंको बसावे । ईशानकोणमें फलदिका विक्षय करनेवाले एव विण्ग-जन निवास करे । पूर्व दिशामें सेनाध्यक्ष रहें । आग्नेयकोणमें विविध सैन्य, दक्षिणमें खियोंको ललित कलाकी शिक्षा देनेवाले आचार्यों तथा नैऋत्यकोणमें धनुर्धर सैनिकोंकी रक्षा । पश्चिममें महामात्य, कोषपाल एवं कारीगरोंको, उत्तरमें दखाधिकारी, नायक तथा द्विजोंको; पूर्वमें क्षत्रियोंको, दक्षिणमें वैद्योंको, पश्चिममें धूटोंको, विभिन्न दिशाओंमें वैद्योंको और अशों तथा सेनाको चारों ओर रक्षा ॥ ६-१२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें, नगर आदिके वास्तुका वर्णन । नामक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

भुवनकोष (पृथ्वी-द्वीप आदि) का तथा स्वायम्भूत सर्गका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—विष्णु । अब मैं भुवनकोष तथा पृथ्वी एवं द्वीप आदिके क्षणोंका वर्णन करूँगा । आग्नीश, अग्निवाहु, ब्रह्मान्, शुतिमान्, मेषा, मेषातिषि,

राजा पूर्वमें गुप्तचरो, दक्षिणमें समशान, पश्चिममें गोक्तन और उत्तरमें कुषकोक्ता निवेश करे । ग्लेन्डॉको दिक्षणोंमें स्थान दे अथवा ग्रामोंमें स्थापित करे । पूर्वद्वारपर लक्ष्मी एवं कुवेरकी स्थापना करे । जो उन दोनोंका दर्शन करते हैं, उन्हें लक्ष्मी (सम्पत्ति) की प्राप्ति होती है । पश्चिममें निर्मित देवमन्दिर पूर्वभिमुख, पूर्व दिशामें स्थित पश्चिमभिमुख तथा दक्षिण दिशाके मन्दिर उत्तरभिमुख होने चाहिये । नगरकी रक्षाके लिये इन्द्र और विष्णु आदि देवताओंके मन्दिर बनवावे । देवशूल्य नगर, ग्राम, दुर्ग तथा यह आदिका पिशाच उपभोग करते हैं और वह गोपसमूहमें परिभूत हो जाता है । उपर्युक्त विधिसे निर्मित नगर आदि सदा जयप्रद और भोग-मोक्ष प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ १३-१७ ॥

वास्तु-भूमिकी पूर्व दिशामें शृङ्गार-कक्ष, अग्निकोणमें पाकगृह (रसोईघर), दक्षिणमें शयनगृह, नैऋत्यकोणमें शालागार, पश्चिममें भोजनगृह, वायव्यकोणमें धान्य-सप्त्रह, उत्तर दिशामें धनागार तथा ईशानकोणमें देवगृह बनवाना चाहिये । नगरमें एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल या चतुःशाल यहका निर्माण होना चाहिये । चतुःशाल यहके शाला और अलिन्द (प्राङ्गण) के भेदसे दो सौ मेद होते हैं । उनमें भी चतुःशाल-यहके पचपन, त्रिशाल-यहके चार तथा द्विशालके पाँच मेद होते हैं ॥ १८-२१ ॥

एकशाल यहके चार मेद हैं । अब मैं अलिन्दयुक्त यहके विषयमें बतलाता हूँ, सुनिये । यह-वास्तु तथा नगर-चालुमें अग्नाईच अलिन्द होते हैं । चार तथा सात अलिन्दोंसे पचपन, छः अलिन्दोंसे बीस तथा आठ अलिन्दोंसे भी बीस मेद होते हैं । इस प्रकार नगर आदिमें आठ अलिन्दोंसे युक्त वास्तु भी होता है ॥ २२-२४ ॥

मन्त्र, स्वन और क्षय—ये प्रियव्रतके पुत्र ये । उनका दसवाँ यशार्थनामा पुत्र व्योतिष्मान् था । प्रियव्रतके ये पुत्र विश्वमें विक्षात हैं । यिताने उनको सात द्वीप प्रदान किये ।

आनीको जम्बूदीप एवं मेषातिथिको नवजाहीप दिया । बुग्पान्तको शालमल्दीप, ज्योतिष्मानको कुशादीप, त्रुतिमानको कौशादीप तथा भव्यको शाकदीपमें अभिषिक्त किया । सबनको पुष्करदीप प्रदान किया । [शेष तीनको कोई स्वतन्त्र दीप नहीं मिला ।] आग्नीने अपने पुत्रोंमें लाखों योजन विश्वाल जम्बूदीपको इच्छ प्रकार विभाजित कर दिया । नाभिको हिमवर्ष (आधुनिक भारतवर्ष) प्रदान किया । किम्पुष्कको हेमकूटवर्ष, हरिवर्षको नैषधवर्ष, इलाहृतको मध्यभागमें भेष्यवर्ततसे पुत्र इलाहृतवर्ष, रव्यकको नीलाचलके आश्रित रम्यवर्ष, हिरण्यवान्को इवेतवर्ष एवं कुरुको उत्तरकुरुवर्ष दिया । उन्होंने भद्राक्षको भद्राक्षवर्ष तथा केतुमाल्को भेष्यवर्तके पश्चिममें स्थित केतुमालवर्षका शासन प्रदान किया । महाराज प्रियश्रत अपने पुत्रोंको उपर्युक्त दीपोंमें अभिषिक्त करके बनाए चले गये । वे नरेश शालग्रामक्षेत्रमें तपस्या करके विष्णुलोकको प्राप्त हुए ॥१-८॥

मुनिश्रेष्ठ ! किम्पुष्कादि जो आठ वर्ष हैं, उनमें सुखकी बहुलता है और बिना यत्नके स्वभावसे ही समस्त भोग विद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । उनमें जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है और न धर्म-अधर्म अथवा उत्तम, मध्यम और अधर्म आदिका ही मेद है । वहाँ सब उमान हैं । वहाँ कभी युग-परिवर्तन भी नहीं होता । हिमवर्षके शासक नाभिके

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें भुवनकोश तथा पुरुषी एवं द्वीप आदिके लक्षणका वर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

मेरे देवीते शृष्टभद्रेष पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए । शृष्टभद्रेष ने भरतपर राज्यलक्ष्मीका भास छोड़कर शालग्रामक्षेत्रमें भीहरिकी शरण ग्रहण की । भरतके नामसे 'भारतवर्ष' प्रसिद्ध है । भरतसे सुमति हुए । भरतने सुमतिको राज्यलक्ष्मी देकर शालग्रामक्षेत्रमें भीहरिकी शरण ली । उन योगिराजने योगाभ्यासमें तत्त्व होकर ग्राणोंका परिस्थाग किया । इनका वह चरित्र तुमसे मैं फिर कहूँगा ॥ १-१२३ ॥

तदनन्तर सुमतिके बीथमें इन्द्रद्युम्नका जन्म हुआ । उससे परमेष्ठी और परमेष्ठीका पुत्र प्रतीहार हुआ । प्रतीहारके प्रतिहर्ता, प्रतिहर्ताके भज, भवके उद्धीथ, उद्धीथके प्रस्तार तथा प्रस्तारके विभु नामक पुत्र हुआ । विभुका पृथु, पृथुका नक्त एवं नक्तका पुत्र गय हुआ । गयके नर नामक पुत्र और नरके विराट् नामक 'त्र उत्पन्न हुआ । विराट् का पुत्र याहारीय था । उससे चीमान्तका जन्म हुआ तथा चीमान्तका पुत्र महान्त और उसका पुत्र मनस्यु हुआ । मनस्युका पुत्र त्वष्टा, त्वष्टाका विरज और विरजका पुत्र रज हुआ । मुने ! रजके पुत्र शतजितके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें विश्वद्योति मुख्य था । उनसे भारतवर्षकी अभिवृद्धि हुई । कृत-व्रेतादि युगक्रमसे यह स्वायम्भुव-मनुका बंदा माना गया है ॥ १३-१९ ॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

भुवनकोश-वर्णनके प्रसंगमें भूमण्डलके द्वीप आदिका परिचय

अभिवेष कहने हैं—वसिष्ठ ! जम्बू, प्लक्ष, महान् शालमलि, कुश, कौश, शाक और सातवाँ पुष्कर-ये सातों दीप चारों ओरसे स्वारे जल, इमुरस, मदिरा, धृत, दधि, दुध और भीठे जलके सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं । जम्बू-दीप उन सब दीपोंके मध्यमें स्थित है और उसके भी बीचों-बीचमें मेष्यवर्त सीना साने लहड़ा है । उसका विस्तार बीराती हजार योजन है और यह पर्वतराज सोलह हजार योजन पृथिवीमें धुसा हुआ है । ऊर्मी भागमें इसका विस्तार बीसीस हजार योजन है । नीचेकी गहराईमें इसका विस्तार सोलह हजार योजन है । इस प्रकार यह पर्वत इस

पृथिवीरूप कमलकी काँणकाके समान लित है । इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध तथा उत्तरमें नील, वेत और शृङ्गी नामक वर्षपर्वत हैं । उनके बीचके दो पर्वत (निषध और नील) एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं । दूसरे पर्वत उनसे दस-दस हजार योजन कम हैं । वे सभी दो-दो सहस्र योजन ऊँचे और इन्हे ही चौड़े हैं ॥ १-६ ॥

हिजओह ! मेष्यवर्तके दक्षिणकी ओर पहला वर्ष भारतवर्ष है तथा दूसरा किम्पुष्कवर्ष और तीसरा हरिवर्ष माना गया है । उत्तरकी ओर रम्यक, हिरण्यमय और उत्तर-

एक सौ दसवाँ अध्याय

गङ्गाजीकी महिमा

अग्निवेद्य कहते हैं—अब गङ्गाका माहात्म्य बतलाता हूँ। गङ्गाका सदा सेवन करना चाहिये। वह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जिनके बीचसे गङ्गा बहती है, वे सभी देश श्रेष्ठ तथा पावन हैं। उत्तम गतिकी खोज करनेवाले प्राणियोंके लिये गङ्गा ही उर्वोत्तम गति है। गङ्गाका सेवन करनेपर वह माता और पिता-दोनोंके कुलोंका उद्धार करती है। एक हजार चान्द्रघाट-ब्रतकी अपेक्षा गङ्गाजीके जलका पीना उत्तम है। एक मास गङ्गाजीका सेवन करनेवाला मनुष्य सब यज्ञोंका फल पाता है॥ १-३॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गङ्गाजीकी महिमा' नामक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११०॥

एक सौ चारहवाँ अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य

अग्निवेद्य कहते हैं—ब्रह्मन्। अब मैं प्रयागका माहात्म्य बताता हूँ, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला तथा उत्तम है। प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा बड़े-बड़े मुनिवर निवास करते हैं। नदियाँ, समुद्र, सिंह, गन्धर्व तथा अस्त्राएँ भी उस तीर्थमें वास करती हैं। प्रयागमें तीन अविन्दुओंहैं। उनके बीचमें गङ्गा सब तीर्थोंको साथ लिये बड़े वेगसे बहती है। वहाँ श्रिभुवन-विश्वात् सूर्य कन्या यमुना भी हैं। गङ्गा और यमुनाका मन्त्रमात्रग पृथ्वीका 'जश्न' माना गया है और प्रयागको शृण्यियोंने जनकके बीचका 'उपस्थ भाग' बताया है॥ १-४॥

प्रतिष्ठान (दूसी) सहित प्रयाग, कम्बल और अक्षतर नाग तथा भोगवती तीर्थ—ये ब्रह्माजीके यज्ञकी वेदी कहे गये हैं। प्रयागमें वेद और यह मूर्तिमान् होकर रहते हैं। उस तीर्थके स्थान और नाम-कीर्तनसे तथा वहाँकी मिट्टीका स्पर्श करनेमात्रसे भी मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रयागमें गङ्गा और यमुनाके संगमपर किये हुए दान, भाद्र और जप आदि अक्षय होते हैं॥ ५-७॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रयाग-माहात्म्य-शर्णम्' नामक एक सौ चारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १११॥

गङ्गादेवी सब पापोंको दूर करनेवाली तथा स्वर्णलेक देनेवाली है। गङ्गाके जलमें जबतक हँड़ी पढ़ी रहती है, तबतक वह जीव स्वर्णमें निवास करता है। अंधे आदि भी गङ्गाजीका सेवन करके देवताओंके समान हो जाते हैं। गङ्गा-तीर्थसे निकली हुई मिट्टी धारण करनेवाला मनुष्य सूर्यके समान पापोंका नाशक होता है। जो मानव गङ्गाका दर्शन, स्पर्श, जल्यान अथवा धाङ्गा इस नामका कीर्तन करता है, वह अपनी सैकड़ों-हजारों पीढ़ियोंके पुरुषोंको विश्राम कर देता है॥ ४-६॥

ब्रह्मन्। वेद अथवा लोक—किसीके कहनेसे भी अन्तमें प्रयागतीर्थके भीतर मरनेका विचार नहीं छोड़ना चाहिये। प्रयागमें साठ करोड़, दस हजार तीर्थोंका निवास है; अतः वह सबसे अधिक है। बासुकि नागका स्थान, भोगवती तीर्थ और हस्तप्रत्यन—ये उत्तम तीर्थ हैं। कोटि गोदानसे जो फल मिलता है, वही इनमें तीन दिनोंतक स्नान करनेमात्रमें प्राप्त हो जाता है। प्रयागमें माघमासमें मनीषी पुरुष ऐसा कहते हैं कि 'गङ्गा सर्वत्र सुलभ है; किंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गा-सागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें उनका मिलना बहुत कठिन है।' प्रयागमें दान देनेसे मनुष्य स्वर्णमें जाता है और इस लोकमें आनेपर राजाओंका भी राजा होता है॥ ८-१२॥

अक्षयबट्टके मूलके समीप और संगम आदिमें मूल्यको प्राप्त हुआ मनुष्य भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। प्रयागमें परम रमणीय उर्बशी-पुलिन, संध्याबट, कोटितीर्थ, दशाश्वमेध बाट, गङ्गा-यमुनाका उत्तम संगम, ज्योहीन मानसतीर्थ तथा वासरक तीर्थ—ये सभी परम उत्तम हैं॥ १३-१४॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

बाराणसीका माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—बाराणसी परम उत्तम तीर्थ है। जो वहाँ श्रीहरिका नाम लेते हुए निवास करते हैं, उन वनको वह भोग और मोक्ष प्रदान करता है। महादेवजीने पार्वतीसे उसका माहात्म्य इस प्रकार बतलाया है ॥ १ ॥

महादेवजी बोले—गौरि ! इच्छेन्द्रको मैंने कभी मुक्त नहीं किया—उदा ही वहाँ निवास किया है, इसलिये वह 'अविमुक्त' कहलाता है। अविमुक्त-क्षेत्रमें किया हुआ जप, तप, होम और दान अक्षय होता है। परथरसे दोनों

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'बाराणसी-माहात्म्यवर्णन' नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

नर्मदा-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं नर्मदा आदिका माहात्म्य बताऊँगा। नर्मदा श्रेष्ठ तीर्थ है। गङ्गाका जल स्पर्श करनेपर मनुष्यको तत्काल पवित्र करता है, किंतु नर्मदाका जल, दशननमाचसे ही पवित्र कर देता है। नर्मदातीर्थ सौ योजन लंबा और दो योजन चौड़ा है। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर नर्मदा-सम्बन्धी साठ करोड़, साठ हजार तीर्थ हैं। कावेरी-मंगमतीर्थ बहुत पवित्र है। अब श्रीपर्वतका वर्णन मुझे—॥ १—३ ॥

एक सुमय गौरीने श्रीदेवीका रूप धारण करके भारी

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'नर्मदा-माहात्म्य-वर्णन' नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११३ ॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

गणा-माहात्म्य

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं गणके माहात्म्यका वर्णन करूँगा। गण भेष तीर्थोंमें तबौतम है। एक उमयकी बात है—गण नामक असुरने वही भारी तपस्या आरम्भ की। उससे देवता संतात हो उठे और उन्होंने शीरखागर-धारी भगवान् विष्णुके उमीप छाकर कहा—'भगवन् ।

आप गणासुरसे हमारी रक्षा कीजिये।' 'तथात्मु' कहकर श्रीहरि गणासुरके पाल गये और उससे बोले—'क्षोई वर माँगो।' देख लोला—'भगवन्।' मैं उब तीर्थसे अधिक पवित्र हो जाऊँ।' भगवानने कहा—'ऐसा ही होगा।'—यों कहकर भगवान् चले गये। फिर तो सभी मनुष्य उस

दैत्यका दर्शन करके भगवान्के समीप आ पहुँचे । पृथ्वी सूली हो गयी । स्वर्गचासी देवता और ब्रह्मा आदि प्रधान देवता श्रीहरिके निकट जाकर बोले—‘देव ! श्रीहरे ! पृथ्वी और स्वर्ग सूने हो गये ॥ दैत्यके दर्शनमात्रसे सब लोग आपके धाममें चले गये हैं ॥’ यह सुनकर श्रीहरिने ब्रह्माजीसे कहा—‘तुम सम्पूर्ण देवताओंके साथ गयासुरके पाल जाओ और यशभूमि बनानेके लिये उसका शरीर माँगो ।’ भगवान्का यह आदेश सुनकर देवताओंसहित ब्रह्माजी गयासुरके समीप जाकर उससे बोले—‘दैत्यप्रबर ! मैं दुम्हारे द्वारपर अतिथि होकर आया हूँ और दुम्हारे पावन शरीरको यजके लिये माँग रहा हूँ ॥ १-६ ॥

‘तथास्तु’ कहकर गयासुर धरतीपर लेट गया । ब्रह्माजीने उसके मस्तकपर यश आरम्भ किया । जब पूर्णाहुतिका समय आया, तब गयासुरका शरीर चञ्चल हो उठा । यह देख प्रभु ब्रह्माजीने पुनः भगवान् विष्णुसे कहा—‘देव ! गयासुर पूर्णाहुतिके समय विचलित हो रहा है ॥’ तब श्रीविष्णुने धर्मको बुलाकर कहा—‘तुम इस असुरके शरीरपर देवमयी शिला रख दो और सम्पूर्ण देवता उस शिलापर बैठ जायें । देवताओंके साथ मेरी गदाधर-मूर्ति भी इसपर विराजमान होगी ।’ यह सुनकर धर्मने देवमयी विशाल शिला उस दैत्यके शरीरपर रख दी । [शिलाका परिचय इस प्रकार है—] धर्मने उनकी पली धर्मवतीके गर्भसे एक कल्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम ‘धर्मवता’ था । वह वही तपस्विनी थी । ब्रह्माके पुष्प महर्षि मरीचिने उसके साथ विवाह किया । जैसे भगवान् विष्णु श्रीलक्ष्मीजीके साथ और भगवान् शिव श्रीपार्वतीजीके साथ विहार करते हैं, उसी प्रकार महर्षि मरीचि धर्मवतीके साथ रमण करने लगे ॥ ७-११ ॥

एक दिनकी बात है । महर्षि जंगलसे कुशा और पुष्प आदि ले आकर बहुत थक गये थे । उन्होंने भोजन करके धर्मवतीसे कहा—‘प्रिये ! मेरे पैर दबाओ ।’ ‘बहुत अच्छा’ कहकर प्रिया धर्मवता थके-माँदे मुनिके चरण दबाने लगी । मुनि सो गये; इन्हें ही वहाँ ब्रह्माजी आ गये । धर्मवतीने सोचा—‘मैं ब्रह्माजीका पूजन करूँ या अभी मुनिकी चरण-सेवामें ही लगी रहूँ । ब्रह्माजी गुरुके भी गुरु हैं—मेरे पति के भी पूज्य हैं; अतः इनका पूजन करना ही उचित है ।’ ऐसा विचारकर वह पूजन-सामग्रियोंसे ब्रह्माजीकी पूजामें ला गयी । नींद दूटनेपर जब मरीचि मुनिने धर्म-

वताको अपने समीप नहीं देखा, तब आशा-उस्लहनके अपराधसे उसे शाप देते हुए कहा—‘तू शिला हो जायगी ।’ यह सुनकर धर्मवता कुपित हो उनसे बोली—‘मुने । चरण-सेवा छोड़कर मैंने आपके पूज्य पिताकी पूजा की है, अतः मैं सर्वथा निर्दोष हूँ; ऐसी दशामें भी आपने मुझे शाप दिया है, अतः आपको भी भगवान् शिवसे शापकी प्राप्ति होगी ।’ यों कहकर धर्मवताने शापको पृथक् रख दिया और स्वयं अग्निमें प्रवेश करके वह हजारों वर्षोंतक कठोर तपस्यामें नमलन रही । इसने प्रसन्न होकर श्रीविष्णु आदि देवताओंने कहा—‘वर माँगो ।’ धर्मवता देवताओंसे बोली—‘आपलोग मेरे शापको दूर कर दें ॥ १२-१८ ॥

देवताओंने कहा—‘हुमे ! महर्षि मरीचिका दिया हुआ शाप अन्यथा नहीं होगा । तुम देवताओंके चरण-चिह्नसे अद्वितीय प्रभावविन शिला होओगी । गयासुरके शरीरको खिंच रखनेके लिये तुम्हें शिलाका स्वरूप धारण करना होगा । उस समय तुम देवता, देवशिला, स्वदेवस्वरूपा, सर्वतीर्थमयी तथा पुण्यशिला कहलाओगी ॥ १९-२० ॥

देवताना शोली—देवताओ ! यदि आपलोग मुक्तपर प्रसन्न हों तो शिला होनेके बाद मेरे ऊपर ब्रह्मा, विष्णु तथा श्रद्ध आदि देवता और गौरी लक्ष्मी आदि देवियाँ सदा विराजमान रहें ॥ २१ ॥

अग्निदेव कहते हैं—देववताकी बात सुनकर सब देवता ‘तथास्तु’ कहकर स्वर्गको चले गये । उस देवमयी शिलाको ही धर्मने गयासुरके शरीरपर रखा । परंतु वह शिलाके साथ ही हिलने लगा । यह देख श्रद्ध आदि देवता भी उस शिलापर जा बैठे । अब वह देवताओंको साथ लिये हिलने-डोलने लगा । तब देवताओंने क्षीरसागरवायी भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया । श्रीहरिने उनको अपनी गदाधरमूर्ति प्रदान की और कहा—‘देवगण ! आपलोग चलिये; इस देवगम्य मूर्तिके द्वारा मैं स्वयं ही वहाँ उपस्थित होऊँगा ।’ इस प्रकार उस दैत्यके शरीरको खिंच रखनेके लिये व्यक्ताव्यक्त उभयस्वरूप लक्ष्मात् गदाधारी भगवान् विष्णु वहाँ स्थित हुए । वे आदि-गदाधरके नामसे उस तीर्थमें विराजमान हैं ॥ २२-२५ ॥

पूर्वकालमें ‘शद’ नामसे प्रसिद्ध एक भयंकर असुर था । उसे श्रीविष्णुने मारा और उसकी हितुयोंसे विश्वकर्मने

गदाका निर्माण किया । वही 'आदि-गदा' है । उस आदि-गदाके द्वारा भगवान् गदाधरने 'हेति' आदि राक्षसोंका वध किया था, इसलिये वे 'आदि-गदाधर' कहलाये । पूर्वोक्त देवमयी शिलापर आदि-गदाधरके स्थित होनेपर गयासुर स्थिर हो गया; तब ब्रह्माजीने पूर्णाहुति दी । तदनन्तर गयासुरने देवताओंसे कहा—'किसलिये मेरे साथ वज्ञना की गयी है ? क्या मैं भगवान् विष्णुके कहनेमात्रसे स्थिर नहीं हो सकता था ? देवताओ ! यदि आपने मुझे शिला आदिके द्वारा दबा रखा है, तो आपको मुझे चरदान देना चाहिये' ॥ २६-३० ॥

देवता बोले—'द्वैतप्रब्रह्म ! तीर्थ-निर्माणके लिये हमने तुम्हारे शरीरको स्थिर किया है; अतः यह तुम्हारा क्षेत्र भगवान् विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजीका निवास-स्थान होगा । सब तीर्थोंमें बढ़कर इसकी प्रसिद्धि होगी तथा पितर आदिके लिये यह क्षेत्र ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होगा !'-यों कहकर सब देवता वहीं रहने लगे । देवियों और तीर्थ आदिने भी उसे अपना निवास-स्थान बनाया । ब्रह्माजीने यह पूर्ण करके उस समय शृृतियोंको दक्षिणार्द्ध दी । पाँच कोसका गया-क्षेत्र और पचासन गाँव अर्पित किये । यही नहीं, उन्होंने सोनेके अनेक पर्वत बनाकर दिये । दूध और मधुकी धारा बहानेवाली नदियाँ समर्पित कीं । दही और धीके सरोबर प्रदान किये । अब आदिके बहुतसे पहाड़, कामधेनु गाय, कल्याणक तथा सोनेचौदोंके घर भी

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें 'गया-महात्म्य-बर्णन' नामक एक सौ चौदहबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय

गया-यात्राकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—'यदि मनुष्य गया जानेको उच्छत हो तो विभिन्नक आदि करके तीर्थयात्रीका वेष धारणकर अपने गाँवकी परिक्रमा कर ले; फिर प्रतिदिन पैदल यात्रा करता रहे । मन और इन्द्रियोंको वश्यमें रखले । किसीसे कुछ दान न ले । यथा जानेके लिये घरसे चलते ही पग-पगपर पितरोंके लिये स्वर्गमें जानेकी सीढ़ी बनने लगती है । यदि पुनः [पितरोंका आदि करनेके लिये] गया चला जाय तो उससे होनेवाले पुण्यके सामने ब्रह्माजीकी क्या क्लीमत है ? गौर्खोंको संकटसे बुझाने-के लिये प्राण देनेपर भी क्या उतना पुण्य होना सम्भव है ?

अ० पु० अ० २५—

दिये । भगवान् ब्रह्माने वे सब वस्तुएँ देते समय ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो ! अब तुम मेरी अपेक्षा अस्य-शक्ति स्वतन्त्र-बाले अन्य व्याकियोंसे कभी याचना न करना ।' यो कहकर उन्होंने वे सब वस्तुएँ उन्हें अर्पित कर दीं ॥ ३१-३५ ॥

तत्प्रथात् भर्मने यह किया । उस यशमें लोभदश धन आदिका दान लेकर जब वे ब्राह्मण पुनः गयामें स्थित हुए, तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दिया—'अब तुमस्तोम विद्या-विहीन और लोभी हो जाओगे । इन नदियोंमें अब दूध आदिका अभाव हो जायगा और वे सुवर्ण-शैल भी पत्थर मात्र रह जायेंगे ।' तब ब्रह्मणोंने ब्रह्माजीसे कहा—'भगवान् ! आपके शापसे हमारा सब कुछ नष्ट हो गया । अब हमारी जीविकाके लिये कृपा कीजिये ।' यह सुनकर वे ब्राह्मणोंसे बोले—'अब इस तीर्थसे ही तुम्हारी जीविका चलेगी । जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहें, तबतक इसी वृत्तिसे तुम जीवननिवाह करेंगे । जो लोग गया-तीर्थमें आयेंगे, वे तुम्हारी पूजा करेंगे । जो इव्य, कड्य, धन और शाद आदिके द्वारा तुम्हारा सक्षात् करेंगे, उनकी सौ पीढ़ियोंके पितर नरकसे स्वर्गमें चले जायेंगे और स्वर्गमें ही रहनेवाले पितर परमपदको प्राप्त होंगे' ॥ ३६-४० ॥

महाराज गयने भी उस क्षेत्रमें बहुत अज्ञ और दक्षिणासे सम्पन्न यश किया था । उन्होंके नामसे गयापुरीकी प्रसिद्धि हुई । पाण्डवोंने भी गयामें आकर श्रीहरिकी आराधना की थी ॥ ४१ ॥

—
—
—

फिर तो कुरुक्षेत्रमें निवास करनेकी भी क्या आवश्यकता है ! पुत्रोंको गयामें पहुँचा हुआ देखकर पितरोंके यहाँ उत्सव होने लगता है । वे कहते हैं—'क्या यह पैरोंसे भी जलका स्पर्श करके इसारे तर्पणके लिये नहीं देगा ?' ब्रह्माजी, गयामें किया हुआ आदि, गोशालामें मरण और कुरुक्षेत्रमें निवास—ये मनुष्योंकी मुक्तिके चार साधन हैं ॥० नरकके भयसे डरे

* ब्रह्माजीन गयाभावं गोण्हे मरणं तथा ॥

वासः पुंसा कुरुक्षेत्रे मुसिरेषा चतुर्विंशा ।

(अथिषु० ११५ । ५०३)

हुए पितर पुश्पकी अभिलाषा रखते हैं। वे सोचते हैं, जो पुत्र गयामें जायगा, वह हमारा उद्धार कर देगा ॥१-६३॥

सुष्ठुन और उपवास—यह सब तीर्थोंके लिये साधारण विधि है। गयातीर्थमें काल आदिका कोई नियम नहीं है। वहाँ प्रतिदिन पिण्डदान देना चाहिये। जो वहाँ तीन पक्ष (डेढ़ मास) निवास करता है, वह सात पीढ़ीतकके पितरोंको पवित्र कर देता है। अष्टका तिथियोंमें, आम्बुदधिक कार्योंमें तथा पिता आदिकी क्षयाह-तिथियोंको भी यहाँ गयामें माता-के लिये पृथक् आद करनेका विधान है। अन्य तीर्थोंमें छीका आद उसके पतिके साथ ही होता है। गयामें पिता आदिके क्रमसे 'नव देवताक' अथवा 'द्वादश-देवताक' आद करना आवश्यक है ॥ ७-९३ ॥

पहले दिन उत्तर-मानस-तीर्थमें स्नान करे। परम पवित्र उत्तर-मानस-तीर्थमें किया हुआ स्नान आयु और आरोग्यकी बृद्धि, सम्पूर्ण पापराशयोंका विनाश तथा मोक्षकी सिद्धि करनेवाला है; अतः वहाँ अवश्य स्नान करे। स्नानके बाद पहले देवता और पितर आदिका तर्पण करके श्राद्धकर्ता पुरुष पितरोंको पिण्डदान दे। तर्पणके समय यह भावना करे कि मैं स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमिपर रहनेवाले सम्पूर्ण देवताओंको तूस करता हूँ ।'

१. मार्गशीर्षं मासकी पूर्णिमाके बाद जो चार कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथियाँ आती हैं, उन्हें 'अष्टका' कहते हैं। उनके चार पृथक्-पृथक् नाम हैं—पौष कृष्ण अष्टमीको 'ऐन्द्री', माघ कृष्ण अष्टमीको 'वैष्णवेनी', फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको 'प्राजापत्या' और चैत्र कृष्ण अष्टमीको 'पित्र्या' कहते हैं।

उक्त चार अष्टकाओंका क्रमशः इन्द्र, विश्वेदेव, प्रजापति तथा पितृ-देवतासे सम्बन्ध है। अष्टकाके दूसरे दिन जो नवमी आती है, उसे 'अन्वष्टका' कहते हैं। 'अष्टका संस्कार'-कर्म है; अतः एक ही बार किया जाता है, प्रतिवर्ष नहीं। उस दिन मातृपूजा और आम्बुदधिक आदके पक्षात् गृहानिमें होम किया जाता है।

२. पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह तथा बृह प्रमातामह—वे नौ देवता हैं। इनके लिये किया जानेवाला आद 'नवदेवताक' या 'नवदेवत्य' कहलाता है। इसमें मातामही आदिका भाग मातामह आदिके साथ ही सम्मिलित रहता है। वहाँ मातामही और बृह प्रमातामहीको भी पृथक् पिण्ड दिया जाय, वहाँ बारह देवता होनेसे वह 'द्वादश-देवताक' आद है।

स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा भूमिके देवता आदि पवित्र पिता-माता, आदिका तर्पण करे। फिर इस प्रकार कहे—'पिता, पितामह और प्रपितामह, माता, पितामही और प्रपितामही तथा मातामह, प्रमातामह और बृह-प्रमातामह—इन सबको तथा अन्य पितरोंको भी उनके उद्धारके लिये मैं पिण्ड देता हूँ। सोम, मङ्गल और बुधस्वरूप तथा बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतुस्वरूप भगवान् सूर्यको प्रणाम है।' उत्तर-मानस-तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है ॥ १०-१६ ॥

सूर्यदेवको नमस्कार करके मनुष्य भौन-भावसे दक्षिण-मानस-तीर्थको जाय और यह भावना करे—मैं पितरोंकी तृतीके लिये दक्षिण-मानस-तीर्थमें स्नान करता हूँ। मैं गयामें इसी उद्देश्यसे आया हूँ कि मेरे समूण पितर स्वर्गलोकको चले जायें। तदनन्तर आद और पिण्डदान करके भगवान् सूर्यको प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहे—'सबका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् भानुको नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे आम्बुदधियके साधक हों। मैं आपका ध्यान करता हूँ। आप मेरे समूण पितरोंको भोग और मोक्ष देनेवाले हों। कव्यवाट, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, वर्षीषद तथा आज्यप नामवाले महाभाग पितृ-देवता यहाँ पदार्पण करें। आपलोगोंके द्वागा सुरक्षित जो मेरे पिता-माता, मातामह आदि पितर हैं, उनको पिण्डदान करनेके उद्देश्यसे मैं इस गयातीर्थमें आया हूँ।' सुष्ठु-पृष्ठके उत्तर भागमें देवताओं और ऋषियोंसे पूजित जो 'कनकल' नामक तीर्थ है, वह तीनों लोकोंमें विख्यात है। सिद्ध पुरुषोंके लिये आनन्ददायक और पापियोंके लिये भयंकर बड़े-बड़े नाग, जिनकी जीभ ल्पल्पाती रहती है, उस तीर्थकी प्रतिदिन रक्षा करते हैं। वहाँ स्नान करके मनुष्य इस भूलल्लर सुखपूर्वक कीड़ा करते और अन्तमें स्वर्गलोकको जाते हैं ॥ १७-२४ ॥

तत्पश्चात् महानदीमें स्थित परम उत्तम फल्गु-तीर्थपर जाय। यह नाग, जनार्दन, कूप, बट और उत्तर-मानससे भी उत्कृष्ट है। इसे 'गयाका शिरोभाग' कहा गया है। गयाशिरको ही 'फल्गु-तीर्थ' कहते हैं। यह सुष्ठु-पृष्ठ और नग आदि तीर्थकी अपेक्षा सारसे भी सार बस्तु है। इसे 'आम्बन्तर-तीर्थ' कहा गया है। जिसमें लक्ष्मी, कामधेनु गौ, जल और पृथ्वी कभी फलदायक होते हैं तथा जिससे दृष्टि रमणीय, मनोहर बल्दुर्द फलित होती है, वह

‘फल्गु-तीर्थ’ है। फल्गु-तीर्थ किसी हल्के-कुलके तीर्थके समान नहीं है। फल्गु-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करे तो इससे पुण्यात्मा पुरुषोंको क्या नहीं प्राप्त होता? भूतलपर समुद्र-वर्यन्त जितने भी तीर्थ और सरोबर हैं, वे सब प्रतिदिन एक बार फल्गु-तीर्थमें जाया करते हैं। जो तीर्थराज फल्गुतीर्थमें अद्वाके साथ स्नान करता है, उसका वह स्नान पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करनेवाला तथा अपने लिये भोग और मोक्षकी सिद्धि करनेवाला होता है ॥ २५-३० ॥

आद्वकर्ता पुरुष स्नानके पश्चात् भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम करे। [उस समय इस प्रकार कहे—] ‘कलियुगमें भव लोग महेश्वरके उपासक हैं; किंतु इस गया-तीर्थमें भगवान् गदाधर उपास्यदेव है। वहाँ लिङ्गस्वरूप ब्रह्माजीका निवास है, उन्हीं महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् गदाधर (वासुदेव), वलराम (संकर्षण), प्रद्युम्न, अनिष्ट, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, द्विंशि तथा वराह आदिको मैं प्रणाम करता हूँ।’ तदनन्तर श्रीगदाधरका दर्शन करके मनुष्य अपनी सौ पीड़ियोंका उद्धार कर देता है। दूसरे दिन धर्मारण्य-तीर्थका दर्शन करे। वहाँ मतक्ष मुनिके शेष आश्रममें मतक्ष-वापीके जलमें स्नान करके आद्वकर्ता पुरुष पिण्डदान करे। वहाँ मतक्षेश्वर एवं सुसिद्धेश्वरको मस्तक छुकाकर इस प्रकार कहे—‘सम्पूर्ण देवता प्रमाणभूत होकर हैं, समस्त लोकपाल साक्षी हैं, मैंने इस मतक्ष-तीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार कर दिया।’ तत्पश्चात् ब्रह्म-तीर्थ नामक कूपमें स्नान, तर्पण और आद्व आदि करे। उस कूप और घूपके मध्य-भागमें किया हुआ आद्व सौ पीड़ियोंका उद्धार करनेवाला है। वहाँ धर्मात्मा पुरुष महाव्याधि-वृक्षको नमस्कार करके स्वर्गलोकका भागी होता है। तीसरे दिन नियम एवं व्रतका पालन करनेवाला पुरुष ‘ब्रह्म-सरोबर’ नामक तीर्थमें स्नान करे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—‘मैं ब्रह्मार्हियों-द्वारा सेवित ब्रह्म-सरोबर-तीर्थमें पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेके लिये ज्ञान करता हूँ।’ आद्वकर्ता पुरुष तर्पण करके पिण्डदान दे। फिर वृक्षको संचिं। जो वाजपेय-यज्ञका फल पाना चाहता हो, वह ब्रह्माजीद्वारा स्थापित यूपकी प्रदक्षिणा करे ॥ ३१-३९ ॥

उस तीर्थमें एक मुनि रहते थे, वे जलका धड़ा और कुशका अग्रभाग हाथमें लिये आमके पेइकी जड़में पानी

देते थे। इससे आम भी सींचे गये और पितरोंकी भी दुख हुई। इस प्रकार एक ही किया दो प्रयोजन उद्ध करनेवाली हो गयी।* ब्रह्माजीको नमस्कार करके मनुष्य अपनी सौ पीड़ियोंका उद्धार कर देता है। जौधे दिन फल्गु-तीर्थमें स्नान करके देवता आदिका तर्पण करे। फिर गयाशीर्षमें आद्व और पिण्डदान करे। गयाका लोत्र पाँच कोलका है। उसमें एक कोस केवल भायाशीर्ष है। उसमें पिण्डदान करके मनुष्य अपनी सौ पीड़ियोंका उद्धार कर सकता है। परम बुद्धिमान् महादेवजीने मुण्डपृष्ठमें अपना पैर रखता है। मुण्डपृष्ठमें ही गयासुरका साक्षात् सिर है, अतएव उसे गया-शिरः कहते हैं। जहाँ साक्षात् गयाशीर्ष है, वहाँ फल्गु-तीर्थका आश्रय है। फल्गु अमृतकी धारा बहाती है। वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ दान अक्षय होता है। दशाश्वेष-तीर्थमें स्नान तथा ब्रह्माजीका दर्शन करके महादेवजीके चरण (रद्धपाद) का स्पर्श करनेपर मनुष्य पुनः इस लोकमें जन्म नहीं लेता। गयाशीर्षमें शमीके पौधे-बराबर रिष्ट देनेसे भी नरकोंमें पढ़े हुए पितर स्वर्गको चले जाते हैं और स्वर्गवासी पितरोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है। वहाँ खीर, आटा, सच, चब और चावलसे पिण्डदान करे। तिलमिश्रित गेहूँसे भी रद्धपादमें पिण्डदान करके मनुष्य अपनी सौ पीड़ियोंका उद्धार कर सकता है ॥ ४०-४८ ॥

इसी प्रकार ‘विष्णुपदी’में भी आद्व और पिण्डदान करनेवाला पुरुष पितृ-शृणसे छुटकारा पाता है और पिता आदि उपरकी सौ पीड़ियों तथा अपनेको भी तार देता है। ‘ब्रह्मपद’में आद्व करनेवाला मानव अपने पितरोंको ब्रह्मलोक-में पढ़ूँचाता है। दक्षिणामि, गाहपत्य-अग्नि तथा आहवनीय-अग्निके स्थानमें आद्व करनेवाला पुरुष यज्ञफल-का भागी होता है। आवस्थाग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, गणेश, अगस्त्य और कार्तिकेयके स्थानमें आद्व करनेवाला मनुष्य अपने कुलका उद्धार कर देता है। मनुष्य सूर्यके रथको नमस्कार करके कणादित्यको मस्तक छुकावे। कनकेश्वरके पदको प्रणाम करके गया-केदार-तीर्थको नमस्कार करे। इससे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पाकर अपने

* यको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आग्रस्य मूले सक्षिणं ददाति ।

आग्राम सिरका: पितरक्ष तुमा एका जिया इष्यन्तरी प्रसिद्धा ॥

(अश्विन० २१५ । ४०)

पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। विशाल भी गयाशीर्षमें पिण्डदान करनेसे पुत्रवान् हुए।

कहते हैं, विशाल-नगरीमें एक 'विशाल' नामसे प्रसिद्ध राजपुत्र थे। उन्होंने ब्राह्मणोंसे पूछा—‘मुझे पुत्र आदिकी उत्पत्ति किस प्रकार होगी?’ यह सुनकर ब्राह्मणोंने विशालसे कहा—‘गयाशीर्षमें पिण्डदान करनेसे तुम्हें सब कुछ प्राप्त होगा।’ तब विशालने भी गयाशीर्षमें पितरोंको पिण्डदान किया। उस समय आकाशमें उन्हें तीन पुरुष दिवायां दिये, जो क्रमशः इवेत, लाल और काले थे। विशालने उनसे पूछा—‘आप लोग कौन हैं?’ उनमेंसे एक इवेतवर्णवाले पुरुषने विशालसे कहा—‘मैं तुम्हारा पिता हूँ; मेरा वर्ण इवेत है; मैं अपने हृष्मकमेंसे इन्द्रलोकमें गया था। बेटा! ये लाल रंगवाले मेरे पिता और काले रंगवाले मेरे पितामह हैं। ये नरकमें पड़े थे; तुमने हम सबको, मुक्त कर दिया। तुम्हारे पिण्डदानसे इमलेग ब्रह्मलोकमें जा रहे हैं।’ यों कहकर वे तीनों चले गये। विशालको पुत्र-पौत्र आदिकी प्राप्ति हुई। उन्होंने अक्षय भोगकर मूल्यके पश्चात् भगवान् श्रीहरिको प्राप्त कर लिया ॥ ४९-५९ ॥

एक प्रेतोंका राजा था, जो अन्य प्रेतोंके साथ बहुत पीड़ित रहता था। उसने एक दिन एक बणिकसे अपनी मुक्तिके लिये इस प्रकार कहा—‘भाई! इमारे द्वारा एक ही पुण्य हुआ था, जिसका फल यहाँ भोगते हैं। पूर्वकालमें एक बार श्रवण-नक्षत्र और द्वादशी तिथिका योग आने-पर हमने अज्ञ और जलसहित कुम्भदान किया था; वही प्रतिदिन मध्याह्नके समय हमारी जीवन-रक्षाके लिये उपस्थित होता है। तुम हमसे धन लेकर गया जाओ और हमारे लिये पिण्डदान करो।’ बणिकने उससे धन लिया और गयाशीर्षमें उसके निमित्त पिण्डदान किया। उसका फल यह हुआ कि वह प्रेतराज अन्य सब प्रेतोंके साथ मुक्त होकर श्रीहरिके धाममें जा पहुँचा। गयाशीर्षमें पिण्डदान करनेसे मनुष्य अपने पितरोंका तथा अपना भी उद्धार कर देता है ॥ ६०-६३ ॥

वहाँ पिण्डदान करते समय इस प्रकार कहना चाहिये—‘मेरे पिताके कुलमें तथा माताके वंशमें और गुह,

इस प्रकार आदि धारनेय महापुराणमें गया-मात्राकी विविका वर्णन’ नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

भद्रुर एवं बन्धुजनोंके वंशमें जो मूल्यको प्राप्त हुए हैं, इनके अतिरिक्त भी जो बन्धु-वान्धव मरे हैं, मेरे कुलमें जिनका आद्ध कर्म—पिण्डदान आदि लुस हो गया है, जिनके कोई खी-पुत्र नहीं रहा है, जिनके आद्ध-कर्म नहीं होने पाये हैं, जो जन्मके अंधे, लङ्घडे और विकृत रूपवाले रहे हैं, जिनका अपक गर्भके लम्पमें निधन हुआ है, इस प्रकार जो मेरे कुलके शात एवं अशात पितर हैं, वे सब मेरे दिये हुए इस पिण्डदानसे सदाके लिये तृप्तिको प्राप्त होते हैं। अपने कुलको तारनेवाली सभां संतानोंका कर्तव्य है कि वे अपने सम्पूर्ण पितरोंके उद्देश्य-से वहाँ पिण्ड दें तथा अक्षय लोककी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपने लिये भी पिण्ड अवश्य देना चाहिये॥ ६४-६८॥

बुद्धिमान् पुरुष पौत्रवं दिन ‘गदालोल’ नामक तीर्थमें स्नान करे। उस समय इस मन्त्रका पाठ करे—‘भगवान् जनार्दन! जिसमें आपकी गदाका प्रक्षालन हुआ था, उस अत्यन्त पावन ‘गदालोल’ नामक तीर्थमें संसाररूपी रोगकी शान्तिके लिये स्नान करता हूँ’॥ ६९-७३ ॥

‘अक्षय स्वर्ग प्रदान करनेवाले अक्षयवटको नमस्कार है। जो पिता-पितामह आदिके लिये अक्षय आश्रय है तथा सब पापोंका क्षय करनेवाला है, उस अक्षय वटको नमस्कार है।’—यों प्रार्थना कर वटके नीचे आद्ध करके ब्राह्मण-भोजन करावे ॥ ७०-७१ ॥

वहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करनेसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य होता है। किर यदि बहुत से ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय, तब तो उसके पुण्यका क्या कहना है? वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय होता है। पितर उसी पुरुषसे अपनेको पुत्रवान् मानते हैं, जो गयामें जाकर उनके लिये अन्वदान करता है। वट तथा बटेश्वरको नमस्कार करके अपने प्रपितामहका पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अक्षय लोकोंमें जाता है और अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। कमसे ही या त्रिना कमसे, गयाकी यात्रा महान् फल देनेवाली होती है ॥ ७२-७४ ॥

* पिण्डो देवस्तु सर्वेभ्यः सर्वैः कुलनारकैः । आभनस्तु तथा देवो शक्षयं लोकमिच्छता ॥ (अस्तिपु० ११५ । ६८)

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

गयामें श्राद्धकी विधि

अग्निदेव कहते हैं—गायत्री मन्त्रसे ही महानदीमें स्नान करके संध्योपासना करे। प्रातःकाल गायत्रीके सम्मुख किया हुआ श्राद्ध और पिण्डदान अक्षय होता है। सूर्योदयके समय तथा मध्याह्नकालमें स्नान करके गीत और वाद्यके द्वारा सावित्री देवीकी उपासना करे। फिर उन्हाँके सम्मुख संध्या करके नदीके तटपर पिण्डदान करे। तदनन्तर अगस्त्यपदमें पिण्डदान करे। फिर 'योनिद्वार' (ब्रह्मयोनि) में प्रवेश करके निकले। इससे वह फिर माताकी योनिमें नहीं प्रवेश करता, पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् काकशिलापर बलि देकर कुमार कार्तिकेयको प्रणाम करे। इसके बाद स्वर्गद्वार, सोमकुण्ड और वायुनीर्थमें पिण्डदान करे। फिर आकाशगङ्गा और कपिलाके टटपर पिण्ड दे। वहाँ कपिलेश्वर शिवको प्रणाम करके सूक्ष्मकुण्डपर पिण्डदान करे॥११-१५॥

कोटि-तीर्थमें भगवान् कोटीश्वरको नमस्कार करके मनुष्य अग्रोघपद, गदालोल, बानरक एवं गोप्रचार-तीर्थमें पिण्डदान दे। वैतरणीमें गौको नमस्कार एवं दान करके मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। वैतरणीके टटपर भाद्र एवं पिण्डदान करे। उसके बाद कौशलपादमें पिण्ड दे। तृतीया तिथिको विशाला, निश्चिरा, शृणमोऽत तथा पापमोक्ष तीर्थमें भी पिण्डदान करे। भस्मकुण्डमें भस्मसे स्नान करनेवाला पुरुष पापसे मुक्त हो जाता है। वहाँ भगवान् जनार्दनको प्रणाम करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—ज्ञानार्दन ! यह पिण्ड मैंने आपके हाथमें समर्पित किया है। परलोकमें जानेपर यह मुझे अक्षयरूपमें प्राप्त हो। गयामें साक्षात् भगवान् विष्णु ही पितृदेवके रूपमें विराजमान हैं॥६-१०॥

उन भगवान् कमलनयनका दर्शन करके मानव तीनों शृणोंसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर मार्कण्डेयेश्वरको प्रणाम करके मनुष्य श्रेष्ठेश्वरको नमस्कार करे। महादेवजीके मूल-क्षेत्र धारमें पिण्डदान करना चाहिये। इसी प्रकार गृष्मकृष्ण और धौतपादमें भी पिण्डदान करना उचित है। पुष्करिणी, कर्दमाल और रामतीर्थमें पिण्ड दे। फिर प्रभासेश्वरको नमस्कार करके प्रेतशिलापर पिण्डदान दे। उस समय इस प्रकार कहे—दिव्यलोक, अन्तरिक्षलोक

तथा भूमिलोकमें जो मेरे पितर और बान्धव आदि सम्बन्धी प्रेत आदिके रूपमें रहते हों, वे सब ल्लेग इन मेरे दिये हुए पिण्डोंके प्रभावसे मुक्ति-लाभ करें। प्रेतशिला तीन स्थानोंमें अत्यन्त पावन मानी गयी है—गयाशीर्ष, प्रभासतीर्थ और प्रेतकुण्ड। इनमें पिण्डदान करनेवाला पुरुष अपने कुलका उद्धार कर देता है॥११-१५॥

वसिष्ठेश्वरको नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान दे। गयानामि, सुषुमा तथा महाकोष्ठीमें भी पिण्डदान करे। भगवान् गदाधरके सामने मुण्डपृष्ठपर देवीके समीप पिण्डदान करे। पहले क्षेत्रपाल आदि सहित मुण्डपृष्ठको नमस्कार कर लेना चाहिये। उनका पूजन करनेसे भयका नाश होता है, विष और रोग आदिका कुप्रभाव भी दूर हो जाता है। ब्रह्मजीको प्रणाम करनेसे मनुष्य अपने कुलको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। सुभद्रा, वलभद्र तथा भगवान् पूरुषोत्तमका पूजन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करके अपने कुलका उद्धार कर देता और अन्तमें स्वर्गलोकका भागी होता है। भगवान् दृष्टिकेशको नमस्कार करके उनके आगे पिण्डदान देना चाहिये। श्रीमाधवका पूजन करके मनुष्य विमानचारी देवता होता है॥१६-२०॥

भगवती महालक्ष्मी, गौरी तथा मङ्गलमयी सरस्वतीकी पूजा करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता, स्वयं भी स्वर्गलोकमें जाता और वहाँ भोग भोगनेके पश्चात् इस लोकमें आकर शास्त्रोंका विचार करनेवाला परिषद्ध होता है। फिर बारह अदिस्योंका, अग्निका, रेवन्तका और इन्द्रका पूजन करके मनुष्य रोग आदिसे कुटकारा पा जाता है और अन्तमें स्वर्गलोकका निवासी होता है। 'श्रीकपर्दि विनायक' तथा कार्तिकेयका पूजन करनेसे मनुष्यको निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धि प्राप्त होती है। सोमनाथ, कालेश्वर, केदार, प्रपितामह, सिंहेश्वर, श्रद्धेश्वर गमेश्वर तथा ग्रहकेश्वर—इन आठ गुप्त लिङ्गोंका पूजन करनेसे मनुष्य सब कुछ पा लेता है। यदि लक्ष्मी-प्राप्तिकी कामना हो तो भगवान् नारायण, बाराह, नरसिंहको नमस्कार करे। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिपुरनाशक महेश्वरको भी प्रणाम करे। वे सब कामनाओंको देनेवाले हैं॥२१-२५॥

सीता, राम, गणक तथा बामनका पूजन करनेसे मानव अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त कर लेता है और पितरोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करा देता है। देवता औंसुहित भगवान् श्रीआदि-गदाधरका पूजन करनेसे मनुष्य तीनों शृणोंसे मुक्त होकर अपने सम्पूर्ण कुलको तार देता है। प्रेतशिला देवस्थान होनेसे परम पवित्र है। गयामें वह शिला देवमयी ही है। गयामें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तीर्थ न हो। गयामें जिसके नामसे भी पिण्ड दिया जाता है, उसे वह बनातन ब्रह्ममें प्रतिहित कर देता है। फलबीशर, फल्युचण्डी तथा अङ्गारकेश्वरको प्रणाम करके श्राद्धकर्ता पुरुष मतभ्र-मुनिके स्थानमें पिण्डदान दे। किर भरतके आश्रमपर भी पिण्ड दे। इसी प्रकार इंस-तीर्थ और कोटि-तीर्थमें भी करना चाहिये। जहाँ पाषुशिला नद है, वहाँ अभिधारा तथा मधुसवा तीर्थमें पिण्डदान करे। तस्यात् इन्द्रेश्वर, किलकिलेश्वर तथा हृषि-विनायकको प्रणाम करे; तदनन्तर घेनुकारण्यमें पिण्डदान करे, घेनुपदमें गौको नमस्कार करे। इससे वह अपने सम्पूर्ण पितरोंका उद्धार कर देता है। किर सरस्वती-तीर्थमें जाकर पिण्ड दे। सायंकाल संघोपासना करके सरस्वती देवीको प्रणाम करे। ऐसा करनेवाला पुरुष तीनों कालकी संघोपासनामें तस्यर वेद-वेदाङ्गोंका पारंगत विद्वान् ब्राह्मण होता है ॥ २६-३३ ॥

गयाकी परिकल्पा करके वहाँके ब्राह्मणोंका पूजन करनेसे गया-तीर्थमें किया हुआ अज्ञदान आदि सम्पूर्ण पुण्य अक्षय होता है। भगवान् गदाधरकी स्तुति करके इस प्रकार

इस प्रकार आदि आनेव महापुराणमें गयामें आद्वकी विवि^१ विषयक एक सौ सोऽन्वाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

आद्व-कल्प

अन्तिवेष कहते हैं—महर्वि कास्यायनने मुनियोंसे जित प्रकार भाद्रका वर्णन किया था, उसे बतलाता हूँ। गया आदि तीर्थमें, विशेषतः संक्रान्ति आदिके अवसर-पर भाद्र करना चाहिये। अपराह्नकालमें, अपरपक्ष (कृष्ण-पक्ष) में, चतुर्थी तिथिको अथवा उक्ते बादकी तिथियोंमें अहोपयोगी सामग्री एकत्रित कर उक्तम नक्षत्रमें भाद्र करे। भाद्रके एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। अंस्यासी, गदाधर, सामु अथवा खालक तथा शोश्रिय ब्राह्मणोंको, जो विन्दुके पात्र न हों, अपने कर्मसंग्रहों

रहते हों और शिष्ट एवं सदाचारी हों—निमन्त्रित करना चाहिये। जिनके शरीरमें सफेद दाग हों, जो कोद आदिके रोगोंसे ग्रस्त हों, ऐसे ब्राह्मणोंको छोड़ दें; उन्हें भाद्रमें समिलित न करें। निमन्त्रित ब्राह्मण जब स्थान और आच्युत करके पवित्र हो जायें तो उन्हें देवकमंडे पूर्ण-भिन्नुक विटावें। देव-भाद्र, पितृ-भाद्रमें तीन-तीन ब्राह्मण रहें अथवा दोनोंमें एक-एक ही ब्राह्मण हों। इस प्रकार मतामह आदिके भाद्रमें भी समझना चाहिये। शाक आदिसे भी भाद्रकर्म करावे ॥ १-५ ॥

आङ्क के दिन ब्राह्मचारी रहे, कोष और उत्तावली न करे। नम्र, स्त्यवादी और सावधान रहे। उस दिन अधिक मार्ग न चले, स्वाध्याय भी न करे, मौन रहे। सम्पूर्ण पंकिमूर्धन्य (पंकिमें सर्वश्रेष्ठ अथवा पंकिपावन) ब्राह्मणोंसे प्रत्येक कर्यके विषयमें पूछे। आखनपर कुछ विछावे। पितृकर्ममें कुछोंको दुहरा मोड़ देना चाहिये। पहले देव-कर्म, फिर पितृ-कर्म करे।* देव-कर्ममें स्थित ब्राह्मणोंसे पूछे—‘मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करूँगा।’ ब्राह्मण आशा है—‘आवाहन करो,’ तब ‘विश्वेदेवास आगत श्रणुता म हमर् हवम्, एवं बहिर्मिशीदत्’ (यजु० ७ । ३४)—इस मन्त्रके द्वारा विश्वेदेवोंका आवाहन करके आखनपर जौ छोड़े तथा ‘विश्वेदेवाः श्रणुतेमर् हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप शब्दिष्ठ। ये अविजिह्वा उत वा वज्रां आसद्यामिन् बहिर्वि भाव्यवस्था।’ (यजु० ३३ । ५३)—इस मन्त्रका जप करे। तत्प्रात् पितृकर्ममें नियुक्त ब्राह्मणोंसे पूछे—‘मैं पितरोंका आवाहन करूँगा।’ ब्राह्मण कहे—‘आवाहन करो।’ तब ‘उषन्तस्त्वा०’ इस मन्त्रका पाठ करते हुए आवाहन करे। फिर (अपहता अमुरा रक्षाऽसि वेदिष्वः ॥) (यजु० २ । २९)—इस मन्त्रसे तिल विशेरकर आयन्तु नः ॥ इस्यादि मन्त्रका जप करे। इसके बाद पवित्रकस्त्रहि अर्थ-पात्रमें ‘शं नो॒ देवी॑’ इस मन्त्रसे जल डाले ॥ ६-१० ॥

तदनन्तर ‘यैवोऽसि’ इस मन्त्रसे जो देकर पितरोंके निमित्त सर्वप्रति तिलका उपयोग करे। [पितरोंके अर्थ-पात्रमें भी ‘शं नो देवी॑’ इस मन्त्रसे जल डालकर] ‘तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवे देवजिर्मितः। प्रस्तवद्विः प्रसः स्वध्या पितृऽस्तोकान् पूणीहि नः स्वधा॑ ।

* आद आरम्भ करनेसे पूर्व स्वादीप जल लेना चाहिये।

१. ॐ उषन्तस्त्वा निधीमशुश्रातः समिधीमहि । उषन्तुश्च आवह पितृ॒ हविषे अत्तवे ॥ (यजु० १९ । ३०)

२. ॐ आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निश्चाताः पवित्रदेव-यानैः । असिन् वहे स्वध्या मदत्तोऽप्निश्चन्तु तेऽन्तर्मान् ॥ (यजु० १९ । ५८)

३. ॐ शं नो देवीरपितृ आयो अवन्तु पीत्वमे । शङ्खोरपि-स्वन्तु नः ॥ (यजु० १ । ६ । १)

४. ॐ यैवोऽसि यव्यास्मददेवो यव्यारातीः । (यजु० ५१२६)

यह मन्त्र पढ़कर तिल डाले। फिर ‘ओम ते अहमीत्वं पत्प्रावहोरात्रे पाश्वे वक्षामि इत्प्राप्नीत्वे व्यवस्था।’ इष्टजिवाणामुं म इत्प्राप्नीत्वे व्यवस्था ॥’ (यजु० ३१ । २२) इस मन्त्रसे अर्थपात्रमें पूल छोड़े। अर्थपात्र सोना, चाँदी, गुलर अथवा पलेका होना चाहिये। उसीमें देवताओंके लिये सम्प्रभावसे और पितरोंके लिये अपसम्प्रभावसे उक्त वस्त्राएँ रखनी चाहिये। एक-एकको एक-एक अर्थपात्र पृथक्-पृथक् देना उचित है। पितरोंके हाथोंमें पहले पवित्री रखकर ही उन्हें अर्थ देना चाहिये ॥ ११-१३ ॥

तत्प्रात् [देवताओंके अर्थपात्रको वायें हाथमें लेकर उसमें रक्ती हुई पवित्रीको दाहिने हाथसे निकालकर देव-भोजन-यात्रपर पूर्वाप्र करके रख दे। उसके ऊपर दूसरा जल देकर अर्थपात्रको ढक्कर] निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—‘ॐ वा दिव्या आपः पवसा सम्बुद्धुषी अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा वक्षिवात्ता न आपः शिवाः शार् स्तोना॒ सुहृष्टा भवन्तु॑ ॥’ फिर (जौ, कुछ और जल हाथमें लेकर संकल्प पढ़े—) ‘ॐ अमुकगोत्राणां रितृपितामह-प्रपितामहानाम् अमुकगोत्राणाम् अमुकगोत्रसम्बन्धिनो विश्वेदेवः एव वोहस्तार्थः स्वाहा॑ ॥’—यो कहकर देवताओंको अर्थ देकर पात्रको दक्षिण भागमें सीधे रख दे। इसी प्रकार पिता आदिके लिये भी अर्थ दे। उसका संकल्प इस प्रकार है—‘ओमथ अमुकगोत्र पितः अमुकगोत्रं अमुकगोत्रं एव हस्तार्थः ते स्वधा॑ ॥’ इसी तरह पितामह आदिको भी दे। फिर सब अर्थका अवशेष पहले पात्रमें ढाल दे अर्थात् प्रपितामहके अर्थमें जो जल आदि हो, उसे पितामहके पात्रमें ढाल दे। इसके बाद वह सब पिताके अर्थपात्रमें रख दे। पिताके अर्थपात्रको पितामहके अर्थपात्रके ऊपर रखें। फिर उन दोनोंको प्रपितामहके अर्थपात्रके ऊपर रख दे। तत्प्रात् दोनोंको पिताके आखनके बामभागमें ‘पितृभ्यः स्वाहामसि॑ ।’ ऐसा कहकर उलट दे। तदनन्तर वहाँ देवताओं और पितरोंके लिये गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा वस्त्र आदिका दान किया जाता है ॥ १४-१६ ॥

उसके बाद आङ्कर्ता पुरुष पात्रमें घृतयुक्त अमन्त्रिकालकर ब्राह्मणोंसे पूछे—‘मैं अग्निमें इस अग्नका हवन करूँगा।’ ब्राह्मण आशा है—‘करो।’ तब सामिनक पुरुष सो अग्निमें हवन करे और निरग्निक पुरुष पवित्रीमुक्त

पितरके हाथ [अथवा जल] में मन्त्रसे आहुति दे । वहसी आहुति 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा ।' (यजु० २ । २९) कहकर दे । दूसरी आहुति 'सोमाय पितृभूते स्वाहा ।' (यजु० २ । २९) इस मन्त्रसे दे । दूसरे विदानोंका मत है कि 'यम' एवं 'अङ्गिरा' के उद्देश्यसे आहुति दे । इनसे शेष बचे हुए अन्तमें क्रमशः देवताओं और पितरोंके पात्रोंमें परोसे और पात्रको हाथसे टक दे । उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—‘ॐ पृथिवी ते धार्म शौरपिचालं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं खुदोमि स्वाहा । इतं विष्णुविचक्षमे व्रेधा निष्ठे पदम् समूद्रमस्य पात्सुरे स्वाहा ॥ कृष्ण हृष्टमिदं रक्ष मदीयम् ।’ (यजु० ५ । १५) ऐसा पढ़कर अन्तमें ब्राह्मणके अङ्गूठेका सर्वश करावे । [देवपात्रोंपर 'बोडसि यवयास्मद्दृष्टो यवयारातीः ।' इस मन्त्रसे जौ छाटि] और पितरोंके पात्रोंपर 'अपहता असुरा रक्षात्सि वेदिवदः ।' इस मन्त्रसे तिल छीटकर संकल्पपूर्वक अन्न अर्पण करे । तदनन्तर 'शुष्पव्यम् ।' (आपलोग अज्ञ प्राहण करें) ऐसा कहकर गायत्री-मन्त्र आदिका जप करे ॥ १७-२१ ॥

देवताभ्यः पितृभ्य भावादोगिभ्य एव च ।
नमः स्वधार्यै स्वाहायै निष्ठमेव नमो नमः ॥

‘इस मन्त्रका भी जप करे । पितरोंको तृप्त जानकर पात्रमें अन्न विलेवे । फिर एक-एक बार सबको जल दे । पूर्ववत् सव्यभावसे गायत्री-जप करके ‘मङ्ग वाता’* इस अङ्गाका जप करे ।† इसके बाद

५. यदि दूसरोंकी भूमिमें थाढ़ करने हो तो शोडा अज्ञ और उक्त कुशापर अपसव्यमावसे रखकर कहें । इनमेंमेनद्भूम्भाविपितृभ्य नमः ।'

६. देवताओं, पितरों, भद्रादोगियों, स्वधा और स्वाहाको मंत्र संबंधी नमस्कार है, नमस्कार है ।

* यह मन्त्र तीन अङ्गाओंमें है । पूरा मन्त्र इस प्रकार है—
ॐ मङ्ग वाता अतायते मङ्ग क्षरान्ति सिग्भः । माधीर्णः
सत्त्वोपातीः ॥ १ ॥ ॐ मङ्ग नक्षमुतोषसो मङ्गमत्
पार्थिव रजः । मङ्ग दौरसु नः पिता ॥ २ ॥ ॐ मङ्ग-
मान्मो वनस्पतिमङ्गमांडलु सूर्यः । माधीर्णाती भवन्तु
नः ॥ ३ ॥ (यजु० १६ । २७-२९) ॐ मङ्ग मङ्ग मङ्ग ॥

† उक्त अङ्गके अतिरिक्त भी 'उद्दीरतामवर०' (यजु० १९ । ४९) इत्यादि पितृमन्त्रोंका 'ॐ कृष्ण पात्रः ॥'

ब्राह्मणोंसे पूछे—‘आपलोग तृप्त हो गये ?’ ब्राह्मण कहें—‘हाँ, इम तृप्त हो गये ।’ तदनन्तर शेष अज्ञको ब्राह्मणोंकी आशा लेकर एकमें मिला दे और पिण्ड बनानेके लिये पात्रसे बाहर निकाले और पितरोंके उच्छिष्ट अन्नके पास ही अवनेजन करके कुशोंपर संकल्पपूर्वक तीन पिण्डदान करे ।‡

(यजु० १३ । ९) इत्यादि रक्षोन्म-मन्त्रोऽक्षा, ‘साइक्ष-
शीर्णः ॥’ (यजु० ३१) इत्यादि पुष्पशस्त्रका तथा ‘ॐ
नामः शिशानः ॥’ (यजु० १७ । ३३) इत्यादि मन्त्रोऽक्षा
एवं शशशिद्विका पाठ भी किया जाता है ।

‘नमस्तुम्भ्यं विष्णुपात्रं नमस्तेऽनेकवृष्टे ।

नमः पिनाकाश्ताय वज्राहस्ताय वै नमः ॥’

इस इत्योक्तो भी पठना चाहिये ।

इसके पहले कुछ दूरपर दक्षिणाम्र तुक्ष विछाकर भूमिको सींच दे और लिंग-शूलसहित अज्ञ एवं जल लेकर—

‘ॐ अग्निदध्यात्म ये जीवा येऽप्यदत्ताः कुक्षे मम ।

भूमी दर्शने तृप्तन्तु तृप्ता यान्तु पर्ती गनिग ॥’

यह पढ़कर पूर्वोक्त कुशोंपर वह अन्न-जल लिखेर दे ।

तदनन्तर आचमन करके भगवान्का स्मरण कर तीन बार गायत्री-मन्त्रका जप करे । इसके बाद अपसव्यमावसे शालकी चौकोर बेदी बनाकर उसके ऊपर कुशके मूलसे प्रादेशमात्र तीन रेखा खीचे; उस समय ‘ॐ अपहता०’ इत्यादि मन्त्र पढ़े । फिर रेखाके बारों और उस्मुक्ते अङ्गर-भ्रग्न करावे । इसका मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ ये रूपाणि प्रतिमुद्भवाना अमुराः । मनः स्वधया चरन्ति । परापुरो ये भर्त्यनिष्ठाल्लोकात्पुदात्पस्मात् ॥’

(यजु० २ । ३०) तत्पश्चात् रेखापर तीन कुश विछाकर सव्यभावसे गायत्री-जप करके फिर अपसव्यमावसे दोनोंमें जल, निल, गन्ध-पुष्प लेकर ।

‘ॐ अमुकशमन् । अमुकशादे पिण्डदानेऽनावनेनिक्षेत्रे स्वया’ ऐसा कहकर कुशपर जल गिरावे । यह ‘अवनेजन’ है । पिण्ड देनेके बाद पिण्डके कपर सभी पात्रसे जल गिराकर उसी प्रकार संकल्प पढ़कर प्रत्यवनेजनं किया जाता है । उसमें ‘प्रत्यवनेनिक्षेत्र’ कहना चाहिये । पिण्डदानका संकल्प इस प्रकार है—‘ओमषामुक-गोत्र पितः अमुकशमन् । अमुकशादे एव पिण्डस्ते स्वया ।’

इसी प्रकार पितामह आदिको भी देना चाहिये । पिण्डदानके अनन्तर पिण्डके आधारशूल कुशोंमें अपने हाथ पोष्कर करें—

‘ॐ प्रपात्मामुखः पितरस्तुम्भ्यम् ।’ फिर सव्यभावसे तीन बार

बूद्धोंका मत है कि ब्राह्मण जब भोजनके पश्चात् हाथ-मुँह धोकर आचमन कर लें, तब पिण्डदान देना चाहिये। आचमनके पश्चात् जल, फूल और अक्षत दे ॥ २२-२५२ ॥

फिर अक्षयद्योदक देकर मनुष्य आशीर्वादकी प्रार्थना करे ॥ ॐ अषोराः पितरः सन्तु ॥ (मेरे पितर सौम्य

आचमन करके श्रीहरिका सरण करे । तदनन्तर अपसव्य-भावसे दक्षिणकी ओर मुँह करके कहे—‘अत्र पितरो मादयस्वं वथाभागमावृत्वाव्यथम् ।’ (यजु० २ । ३१) फिर बामावतंसे उत्तरकी ओर मुँहकर व्यास रोककर प्रसन्नचित्त हो प्रकाशमान मूर्तिवाले पितरोंका व्यानःकरते हुए फिर उसी मार्गसे लौटकर दक्षिणाभिसुख हो जाय और कहे—‘अमीमदन्त पितरो वथाभागमावृत्वाव्यपत ।’ (यजु० २ । ३१) इसके बाद पहले के अवनेजन-पात्रमें जो शैव जल हो, उसे पिण्डपर शिराकर प्रत्यवनेजन दें । उसका संकल्प अवनेजनकी ही भाँति है । ‘अवनेनिक्षक’को ‘प्रत्यवनेनिक्षक’ कहना चाहिये । महुवचनमें ‘प्रत्यवनेनिक्षम्’ का उच्चारण करना उचित है ।

प्रत्यवनेजनके बाद नीबी-विक्षंसन करके सव्यभावसे आचमन करे । फिर अपसव्य हो वायं हाथसे दाहिने हाथमें सूक्ष लेकर ४० नमो वः पितरे रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो बोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहाङ्गः पितरो दत्तसतो वः पितरो देष्मः (यजु० २ । ३२)—इस मन्त्रका पाठ करके ‘पतौ वः पितरो वासः’ (यजु० २ । ३२)—ऐसा कहते हुए छहोंपर सूक्ष रस्कर संकल्प करे—‘अथामुक्लोत्र पितः (पितामह प्रपितामह आदि) अमुक्षर्मन् अमुक्षादे पिण्डे पतते वासः स्वथा ।’ तत्पश्चात् ४० शिखा आपः सन्तु । कहकर जल, ४० सौभनस्यम् अस्तु । इस वाक्यका उच्चारण करके फूल, ४० अक्षतं चारिष्मस्तु । कहकर अक्षत अनन्पात्रोपर ढोले । फिर मोटक, तिल और जल लेकर ४० अथामुक्लोत्रस्य पितुः अमुक्षर्मणः अमुक्षादे दत्तान्येताम्ब्रशयानादिकानि अक्षुव्याणि सन्तु । इस प्रकार संकल्प पढ़कर छोड़ दे । तत्पश्चात् सव्य हो दक्षिण दिशाकी ओर देखते हुए पिण्डोंके ऊपर पूर्णांग जलधारा शिरावे और पढ़े—४० अषोराः पितरः सन्तु । इसके बाद हाथ जोड़ पूर्णाभिसुख हो मूळमें कहे अनुसार आशीः प्रार्थना करे ।

अ० यु० अ० २७—

हो ।) ऐसा कहकर जल शिरावे, फिर प्रार्थना करे—‘हमारा गोथ सदा ही बढ़ता रहे, हमारे दाता भी निरन्तर अम्बुदयदील हों, वेदोंकी पठन-पाठन-प्रणाली बढ़े । संसारोंकी भी वृद्धि हो । हमारी अद्दामें कमी न आये; हमारे पास देने योग्य बहुत सामान संचित रहे; हमारे यहाँ अज्ञ भी अधिक हो । हम अतिथियोंको प्राप्त करते रहे अर्थात् हमारे घरपर अतिथियोंका शुभागमन होता रहे । हमारे पास माँगनेवाले आवें, किंतु हम किसीसे न माँगें ।’ फिर स्वधा-वाचनके लिये पिण्डोंपर पवित्रकसहित कुश बिछावे और ब्राह्मणोंसे पूछे—‘मैं स्वधा-वाचन कराऊँगा ।’ ब्राह्मण आशा दें—‘स्वधा-वाचन कराओ ।’ तब श्राद्धकर्ता पुरुष इस प्रकार कहे—

‘ब्राह्मणो ! आपलोग मेरे पिता, पितामह और प्रपितामहके लिये स्वधा-वाचन करें ।’ ब्राह्मण कहें—‘अस्तु स्वधा ।’ तदनन्तर ‘अर्जुनहस्तीर्थतं शृतं पथः क्लीलालं परिज्ञुतम्, स्वधा स्व तपश्चयत मे पितृम् ।’ (यजु० २ । ३४)—इस मन्त्रसे कुशोंपर दुर्घ-मिश्रित जलकी दक्षिणाग्रधारा शिरावे, * फिर [सव्य होकर देवार्थ्यपात्रको हिला दे और पितरोंके] अर्थपात्रको उत्तान करके देवशाद् तथा पितृश्राद्दकी प्रतिष्ठाके लिये यथाशक्ति क्रमशः सुवर्ण और रजतकी दक्षिणा दे । इसके बाद ‘विश्वेदेवाः प्रीयस्ताम् ।’—ऐसा कहकर देवताओंका विसर्जन करे और ‘वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विग्रा अद्यता अहतज्ञाः ।’ अस्य मध्यः पितृत मावस्यध्वं, सूक्ष्मा धात विभिन्नेवयानैः ॥’

* इसके बाद स्वयं सुककर सब पिण्डोंको नाकपे सूँप ले और उठा दे । पिण्डोंके आधारभूत कुशोंको नथा उत्तमुक (जिससे अक्षार-भ्रमण कराया गया था) को अविनमें ढाल दे ।

+ दक्षिणका संकल्प इस प्रकार है—‘त्रिकुशा, जी और जल हाथमें लेकर—४० अथामुक्लोत्राणां पितृपितामहप्रपितामहानाम् [मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाना च] अमुकामुकशर्मणाम् अमुक्षादस्तम्भिन्नां विद्वेषा देवाना कुनैतदमुक्षादप्रतिष्ठार्थ हिरण्यमरिनदैवत्यं तन्मूल्योपकलिप्तं दृश्यं वा यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणात्वेन दातुमहसुस्तुजे ।’ तुरंत दिखा जाना हो तो ‘सम्भदे’ कहना चाहिये । मोटक, तिल, जल लेकर ‘ओमथामुक्षर्मणः पितुः अमुक्षर्मणः कुनैतदमुक्षादप्रतिष्ठार्थं रजतं चन्द्रदैवत्यं तन्मूल्योपकलिप्तं दृश्यं यथानाम्’ इत्यादि कहकर पिता आदिके लिये दक्षिणा दे ।

(चतुर्थ० २१ । ११)—इस मन्त्रसे पिता आदिका विसर्जन करे ॥ २६-३२ ॥

[तत्पञ्चात् सव्यभावसे 'द्वेषताभ्यश्च' इत्यादि पढ़कर भगवान्का स्मरण करे । फिर अपसव्यभावसे रक्षादीपको बुझा दे । उसके बाद सव्यभावसे भगवान्से प्रार्थना करे— 'प्रभाद्रकुर्वतां कर्म प्रच्छवेदेवाच्चरेषु यत् । अशादेव तद् विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिनि श्रुतिः ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिपु । न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमस्युतम् ॥' इत्यादि] तदनन्तर 'आ भा बाज्ज्यम्' (चतुर्थ० १ । ११) इत्यादि मन्त्र पढ़कर ब्राह्मणके पीछे-पीछे जाय और ब्राह्मणकी परिक्रमा करके अपने घरमें जाय । प्रत्येक मासकी अग्रावस्त्राको इसी प्रकार पार्वण-शाद करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अब मैं एकोहिष्ट शादका वर्णन करूँगा । यह शाद पूर्ववत् ही करे । इसमें इतनी ही विशेषता है कि एक ही पवित्रक, एक ही अर्थ और एक ही पिण्ड देना चाहिये । इसमें आवाहन, अग्निकरण और विश्वेदेवपूजन नहीं होता । जहाँ तृती पूछनी हो, वहाँ 'स्ववितम् ?' ऐसा प्रश्न करे । ब्राह्मण उत्तर दे—'सुस्वदितम् !' 'उपतिष्ठताम् !'—कहकर अपर्ण करे । अक्षयोदरक भी दे । विसर्जनके समय 'अभिरम्बताम्' का उच्चारण करे । ब्राह्मण कहें—'अभिरताम् स्त्रः ।' शेष सभी बातें पूर्ववत् करनी चाहिये ॥ ३४-३६ ॥

अब सपिण्डीकरणका वर्णन करूँगा । यह वर्षके अन्तमें और मध्यमें भी होता है । इसमें पितरोंके लिये तीन पात्र होते हैं और प्रेतके लिये एक पात्र अलग होता है । चारों अर्थपात्रोंमें पवित्री, तिल, फूल, चन्दन और जल डालकर भर दिया जाता है । फिर उन्होंसे शादकर्ता पुरुष अर्थ देता है । 'थे समाजाः' (चतुर्थ० ११ । ४५-४६) इत्यादि दो मन्त्रोंसे प्रेतके अर्थ-ग्राहको क्रमशः तीनों पितरोंके अर्थ-पात्रमें मिलाया जाता है । इसी प्रकार पिण्डदान, दान आदि पूर्ववत् करके प्रेतके पिण्डको पितरोंके पिण्डमें मिलाया जाता है । इससे प्रेतको 'पितृ' पदबी प्राप्त होती है ॥ ३७-३९ ॥

अब 'आश्चुदियिक' शाद बतलाता हूँ । इसकी सब विधि पूर्ववत् है । इसमें पितृसम्बन्धी मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका जप करना चाहिये । पूर्वाह्णकालमें आश्चुदियिक शाद और उसकी प्रदक्षिणा-करनी चाहिये । इसमें कोमल कुश ही उपचार है । यहाँ तिलके स्थानपर जौका

ही उपयोग होता है । ब्राह्मणोंसे पितरोंकी तृतीके लिये प्रभ करते समय 'सम्बद्धम् ?' का प्रश्न करना चाहिये । ब्राह्मण उत्तर दे 'सुसम्बद्धम्' । इसमें दही, अक्षत और बेर आदिके ही पिण्ड होते हैं । आवाहनके समय पूछे—'मैं नान्दीमुख' नामवाले पितरोंका आवाहन करूँगा ।' इसी प्रकार अश्चय-तृतीके लिये 'प्रीवताम्' ऐसा कहे । फिर पूछे—'मैं नान्दीमुख पितरोंका तृती-वाचन कराऊँगा ।' ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर कहे—'नान्दीमुखः पितरः प्रीयन्ताम् । (नान्दीमुख पितर तृती एवं प्रसन्न हों)' । [माता, पितामही, प्रपितामही] पिता, पितामह, प्रपितामह और [सप्लोक] मातामह, प्रमातामह तथा बृद्धप्रमातामह—ये नान्दीमुख पितर हैं ॥ ४०-४४ ॥

आश्चुदियिक शादमें 'स्वधा' का प्रयोग न करे और युग्म ब्राह्मणोंको भोजन करावे । अब मैं पितरोंकी तृती बतलाता हूँ । ग्राम्य, अच्छसे तथा जंगली कन्द, मूल, फल आदिसे एक भासतक पितरोंनी तृती बनी रहती है और गायके दूध एवं खीरसे एक वयंतक पितरोंकी तृती रहती है तथा वर्णा श्रूतुमें त्रयोदशीकां विशेषतः मध्य नक्षत्रमें किया हुआ शाद अवश्य होता है । * मन्त्रका पाठ करनेवाला,

* कुछ लोग शादमें मासका भी विधान भानते हैं, परंतु आदर्कर्ममें मास किंवा निन्दनीय है, यह श्रीद्वारागवत, सप्तम स्कन्ध, अध्याय १५ के इन श्लोकोंसे स्पष्ट हो जाता है—

न दधादमिषं शादे न चाषाद्दर्मनत्ववित् ।
मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रतिर्यथा न पशुहिसत्या ॥ ७ ॥
नैतादृशः परो धर्मो नृणा रद्धर्मिन्छाम् ।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाकायजस्य यः ॥ ८ ॥
द्रव्यवैर्यवैर्यनानां इडा भूतानि विभवनि ।
एष माकशो इत्यादनज्ञो द्वाषुरुच धृवम् ॥ ९ ॥

"प्रत्येके मर्मको समाप्तनेवाला पुरुष शादमें [खानेके लिये] मर्म न दे और न स्वयं ही खाय; क्योंकि पितृगणकी तृती जैसी मुनिजनेचित आहारसे होती है, वैसी पशुहिसासे नहीं होती । सदर्मकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये 'सम्पूर्णं प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और शरीरसे दण्डका त्याग कर देना'—इसके समान और कोई लेड धर्म नहीं है । पुरुषको द्रव्यवैर्यसे धज्जन करते देखकर जीव भरते हैं कि 'यह अपने ही प्राणोंका पोषण करनेवाला निदंश ब्रह्मणी सुहे अवश्य मार डालेगा ।' अतपि आदर्कर्ममें मासका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये ।

अभिहोत्री, शालाका अध्ययन करनेवाला, छहों अङ्गोंका विद्वान्, चिर्णचिकेत, चिर्णघु, धर्मद्वोषणका पाठ करनेवाला, चिर्णपूर्ण तथा बृहत् सामका शाता—ये ब्राह्मण पंक्तिपादन (पंक्तिको पवित्र करनेवाले) माने गये हैं ॥ ४५—४७ ॥

अब काम्य शाद्व-कल्पका वर्णन करूँगा । प्रतिपदाको शाद्व करनेसे वृत्त धन प्राप्त होता है । द्वितीयाको शाद्व करनेसे श्रेष्ठ ऋगी मिलती है । चतुर्थाको किया हुआ शाद्व धर्म और कामको देनेवाला है । पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पञ्चमीको शाद्व करे । षष्ठीके शाद्वसे मनुष्य श्रेष्ठ होता है । सप्तमीके शाद्वसे खेतीमें लाभ होता और अष्टमीके शाद्वसे अर्थका प्राप्ति होती है । नवमीको शाद्वका अनुष्टान करनेसे एक खुरवाले धोड़े आदि पशु प्राप्त होते हैं । दशमीके शाद्वसे गो समुदायकी उपलब्धि होती है । एकादशीके शाद्वसे परिवार और द्वादशीके शाद्वसे धन-धान्य वहता है । त्रयोदशीको शाद्व करनेमें अपनी जातिमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है । चतुर्दशीको उसीका शाद्व किया जाता है, जिसका शस्त्रद्वारा वध हुआ है । अमावास्याको समर्पण मृत व्यक्तियोंके लिये शाद्व करनेका विधान है ॥ ४८—५१ ॥

‘जो दशार्णदेशके बनमें सात व्याध थे, वे कालंजर रिदि-पर मृग हुए, दशद्वीपमें चक्रवाक हुए तथा मानस सरोवरमें हस हुए । वे ही अब कुरुक्षेत्रमें वेदोंके पारंगत विद्वान्

इस प्रकार आदि आग्नेय भाषापुण्यमें ‘शाद्व-कल्पका वर्णन’ नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

एक सौ अठारहवाँ अध्याय

भारतवर्षका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—समुद्रके उत्तर और हिमालयके दक्षिण जो वर्ष है, उसका नाम ‘भारत’ है । उसका विस्तार नौ हजार योजन है । स्वर्ग तथा अपवर्ग पानेकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये यह कर्मभूमि है । महेन्द्र, मलय, सिंह,

शुक्तिमान्, हिमालय, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात यहाँके कुल-पर्वत हैं । इन्द्रद्वीप, कमेर, ताम्रवर्ण, गमस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वाश्ण—ये आठ द्वीप हैं । समुद्रसे विरा हुआ भारत नवा द्वीप है ॥ १-४ ॥

१. द्वितीय कठके अन्तर्गत ‘अयं वाव यः पवते’ इत्यादि ‘चिराचिकेत’ नामक तीन अनुवाकोंको पढ़ने वा उसका अनुष्टान करनेवाला । २. ‘मधुवाता०’ इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और मधुवतका आचरण करनेवाला । ३. ‘धर्मव्याधा दशांतेषु’ इत्यादि प्रसंगका नाम यहाँ ‘धर्मद्वोष’ कहा गया है । ४. ‘वदा मेतु मातृ’ इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला ।

* सप्तव्याधा दशांतेषु, सूग्नः कालज्ञरे गिरी । चक्रमाकाः कर्त्तव्ये इंसाः सरसि मानसे ॥

तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे भ्रात्याणा वेदभारत्याः । ग्रस्तिता दूरमत्त्वान् चूलं तेष्वोऽवसीदत ॥ (अथि० ११७ । ५६-५७)

भारत-दीप उत्तरसे दक्षिणकी ओर हजारों योजन लंबा है। भारतके उत्तरकूट नौ भाग हैं। भारतकी स्थिति मध्यमें है। इसमें पूर्वकी ओर किरात और [पश्चिममें] यवन रहते हैं। मध्यमागमें ब्राह्मण आदि वर्णोंका निवास है। वेद-स्मृति आदि नदियाँ पारिनाम पर्वतसे निकली हैं। विष्वाचलसे नर्मदा आदि प्रकट हुई हैं। सद्य पर्वतसे तापी,

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'भारतवर्षका वर्णन' नामक एक सौ अठाहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

पयोली, गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणा आदि नदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है ॥ ५-७ ॥

मलयते कृतमाला आदि और महेन्द्र पर्वतसे विसामा आदि नदियाँ निकली हैं। शुक्तिमानसे कुमारी आदि और हिमालयसे चन्द्रभागा आदिका प्रादुर्भाव हुआ है। भारतके पश्चिमभागमें कुरु, पाञ्चाल और मध्यरेता आदिकी स्थितिहै ॥ ८ ॥

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय जम्बू आदि महाद्वीपों तथा समस्त भूमिके विस्तारका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। वह सब ओरसे एक लाख योजन विस्तृत स्वारे पानीके समुद्रमें विद्या है। उस धारामसुद्रको धेरकर प्लक्ष-द्वीप स्थित है। मेधातिथिके सात पुत्र प्लक्षद्वीपके स्वामी हैं। शान्तभय, शिशिर, सुमोदय, आनन्द, शिव, क्षेम तथा ध्रुव—ये सात ही मेधातिथिके पुत्र हैं; उन्हके नामसे उक्त सात वर्ष हैं। गोमंध, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और शैल—ये उन वर्णोंके सुन्दर मर्यादापर्वत हैं। वहाँके सुन्दर निवासी 'वैश्वाज' नामसे विख्यात हैं। इस द्वीपमें सात प्रधान नदियाँ हैं। प्लक्षसे लेकर शाकद्वीप-तकके लोगोंकी आयु पाँच हजार वर्ष है। वहाँ वर्णाश्रम-धर्मका पालन किया जाता है ॥ १-५ ॥

आर्य, कुरु, विविश तथा भावी—यही वहाँके ब्राह्मण आदि वर्णोंकी संज्ञाएँ हैं। चन्द्रमा उनके आराध्यदेव हैं। प्लक्षद्वीपका विस्तार दो लाख योजन है। वह उत्तने ही वहे इक्षुरसके समुद्रसे विद्या है। उसके बाद शाल्मलद्वीप है, जो प्लक्षद्वीपमें दुगुना बड़ा है। वहुप्मानके सात पुत्र शाल्मलद्वीपके स्वामी हुए। उनके नाम हैं—इवेत, हरित, जीमूत, लेहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ। इन्हीं नामोंसे वहाँके सात वर्ष हैं। वह प्लक्षद्वीपसे दुगुना है तथा उससे दुगुने परिमाणवाले 'सुरोद' नामक (मदिराके) समुद्रसे विद्या हुआ है। कुमुद, अनल, बलाहक, द्रोण, कङ्ग, महिष और कुशान—ये मर्यादापर्वत हैं। सात ही वहाँ प्रधान नदियाँ हैं। कपिल, अश्वन, पीत और कृष्ण—ये वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ष हैं। वहाँके लोग बायु-देवताकी पूजा करते हैं। वह मदिराके समुद्रसे विद्या है ॥ ६-१०२ ॥

इसके बाद कुशद्वीप है। ज्योतिष्मानके पुत्र उस द्वीपके अधीक्षर हैं। उद्दिद, धेनुमान्, द्वैरथ, लम्घन, धैर्य, कपिल और प्रभाकर—ये सात उनके नाम हैं। इन्हींके नामपर वहाँ सात वर्ष हैं। दूसी आदि वहाँके ब्राह्मण हैं, जो ब्रह्मरूपधारी भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं। विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेश्वर, हरि और मन्दराचल—ये सात वहाँके वर्षपर्वत हैं। यह कुशद्वीप अपने ही वरावर विस्तारवाले धोके समुद्रसे विद्या हुआ है और वह धृतसमुद्र कौशिकीपर्वतमें परिवेष्टित है। राजा द्युतिमानके पुत्र कौशिकीपके स्वामी हैं। उन्हींके नामपर वहाँके वर्ष प्रसिद्ध हैं ॥ ११-१४ ॥

कुशल, मनोनुग, उण्ण, प्रधान, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये सात द्युतिमानके पुत्र हैं। उस द्वीपके मर्यादापर्वत और नदियों भी रात ही हैं। पर्वतोंके नाम इस प्रकार हैं—कौश, वामन, अन्धकारक, रलशैल, देवावृत, पुण्डरीक और दुन्दुभि। ये द्वीप परस्पर उत्तरोत्तर दुगुने विस्तारवाले हैं। उन द्वीपोंमें जो वर्ष पर्वत है, वे भी द्वीपोंके समान ही पूर्ववर्ती द्वीपके पर्वतोंसे दुगुने विस्तारवाले हैं। वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। वे वहाँ श्रीहरिकी आराधना करते हैं। कौशिकीप दधि-मण्डोदक (मष्टे) के समुद्रसे विद्या हुआ है और वह

१. दूसी, द्युमी, द्येह और मन्द—ये क्रमशः वहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी संज्ञाएँ हैं।

२. वहाँ मूलमें छः नाम ही आये हैं, तथापि पुराणान्तरमें जाये हुए 'चतुर्वी रत्नशैलम्'के अनुसार अर्थमें रत्नशैल बढ़ा दिया गया है।

समुद्र शाकदीपसे परिवेषित है। वहाँके राजा भव्यके जो सात पुत्र हैं, वे ही शाकदीपके शासक हैं। उनके नाम इरा प्रकार हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, मणीवक, कुशोत्तर, मोदाकी और द्वूम। इन्हेंके नामसे वहाँके वर्ष प्रसिद्ध हैं ॥ १५-१९ ॥

उदयगिरि, जलधर, रैवत, श्याम, कोटक, आभिकेय और सुरभ्य पर्वत केसरी—ये सात वहाँके मर्यादा-पर्वत हैं तथा सात ही वहाँकी प्रसिद्ध नदियाँ हैं। मग, मगध, मानस और मन्दग—ये वहाँके ब्राह्मण आदि वर्ण हैं, जो सूर्यलपश्चाती भगवान् नारायणकी आराधना करते हैं। शाकदीप क्षीरसागरसे विरा हुआ है। श्रीरसागर पुष्करदीपसे परिवेषित है। वहाँके अधिकारी राजा सवनके दो पुत्र हुए, जिनके नाम ये—महावीत और धातकि। उन्हेंके नामसे वहाँके दो वर्ष प्रसिद्ध हैं ॥ २०-२२ ॥

वहाँ एक ही मानसोत्तर नामक वर्षगर्वत विश्वमान है, जो उस वर्षके मध्यभागमें बल्याकार स्थित है। उसका विस्तार कई सहस्र योजन है । कँचाई भी

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘महादीप आदिका दर्जन’ नामक एक सौ उड्डीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१० ॥

एक सौ बीसवाँ अध्याय भुवनकोश-वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! भूमिका विस्तार सत्तर हजार योजन वर्ताया गया है। उसकी कँचाई दस हजार योजन है। पृथ्वीके भीतर सात पाताल हैं। एक-एक पाताल दस-दस हजार योजन विस्तृत है। सात पातालोंके नाम इस प्रकार हैं—अतल, वितल, नितल, प्रकाशमान महातल, सुतल, तलातल और सातवाँ रसातल या पाताल। इन पातालोंकी भूमियाँ क्रमशः काली, पीली, लाल, सफेद, कँकरीली, पथरीली और सुबर्णमयी हैं। वे सभी पाताल बड़े रमणीय हैं। उनमें दैत्य और दानव आदि सुखपूर्वक निवास करते हैं। समस्त पातालोंके नीचे शेषनाग विराजमान हैं, जो भगवान् विष्णुके तमोरुण-ग्रधान विग्रह हैं। उनमें अनन्त गुण हैं, इच्छिये उन्हें ‘अनन्त’ भी कहते हैं। वे अपने मस्तकपर इस पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ १-४ ॥

विस्तारके समान ही है। वहाँके लोग दस हजार वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। वहाँ देवता लोग ब्रह्माजीकी पूजा करते हैं। पुष्करदीप स्वादिष्ट जलवाले समुद्रसे विरा हुआ है। उस समुद्रका विस्तार उस द्वीपके समान ही है। महामुने! समुद्रोंमें जो जल है, वह कभी घटता-बढ़ता नहीं है। शुक्र और कृष्ण-दोनों पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तकालमें केवल पाँच सौ दस अङ्गुलिक समुद्रके जलका धटना और बढ़ना देखा जाता है (परंतु इससे जलमें न्यूनता या अधिकता नहीं होती है) ॥ २३-२६ ॥

भीठे जलवाले समुद्रके चारों ओर उससे दुरुपे परिमाणवाली भूमि सुवर्णमयी है, किंतु वहाँ कोई भी जीव जन्म नहीं रहते हैं। उसके बाद लोकालोकपर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। लोकालोक-पर्वत एक ओरसे अन्धकारद्वारा आबृत है और वह अन्धकार अण्डकटाहसं आबृत है। अण्डकटाहसहित सारी भूमिका विस्तार पचास करोड़ योजन है ॥ २७-२८ ॥

पृथ्वीके नीचे अनेक नरक हैं, परंतु जो भगवान् विष्णुका भक्त है, वह उन नरकोंमें नहीं पड़ता है। सूर्यदेवसे प्रकाशित होनेवाली पृथ्वीका जितना विस्तार है, उतना ही नभोलोक (अन्तरिक्ष या भुवरोंक) का विस्तार माना गया है। वसिष्ठ! पृथ्वीसे एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल है। सूर्यसे लाख योजनकी दूरीपर चन्द्रमा विराजमान हैं। चन्द्रमासे एक लाख योजन ऊपर नक्षत्र-मण्डल प्रकाशित होता है। नक्षत्रमण्डलमें दो लाख योजन ऊचे बुध विराजमान हैं। बुधसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र है। शुक्रसे दो लाख योजनकी दूरीपर मङ्गलका स्थान है। मङ्गलसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उनसे लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। सतर्षियोंसे लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका स्थान है।

३. पुराणान्तरमें इन नदियोंके नाम इस प्रकार मिलते हैं—सुकुमारी, कुमारी, नक्षीनी, शेनुका, इष्ट, वेणुका और गर्भसिति।

४. विष्णुपुराणमें इसकी कँचाई और विस्तार—दोनों ही पचास हजार योजन बताये गये हैं। देखिये विष्णुपुराण २। ४। ७६।

ऊपर भ्रूव प्रकाशित होता है। त्रिलोकीकी इतनी ही ऊँचाई है, अर्थात् त्रिलोकी (भूरुवः स्वः) के ऊपरी भागकी चरम सीमा भ्रूव ही है ॥ ५-८ ॥

भ्रूवसे कोटि योजन ऊपर 'महलोक' है, जहाँ कल्पनात्-जीवो भृगु आदि सिद्धगण निवास करते हैं। महलोकसे दो करोड़ ऊपर 'जनलोक' की स्थिति है, जहाँ सनक, सनन्दन आदि सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। जनलोकसे आठ करोड़ योजन ऊपर 'पत्नोलोक' है, जहाँ 'वैराज नामबाले देवता निवास करते हैं। ततोलोकसे लाजनवे करोड़ योजन ऊपर 'सत्यलोक' विराजमान है। सत्यलोकमें पुनः भूत्युके अधीन न होनेवाले पुण्यात्मा देवता एवं ऋग्मिमनि निवास करते हैं। उसीको 'वज्रलोक' भी कहा गया है। जहाँतक पैरोंसे चलकर जाया जाता है, वह सब 'भूलोक' है। भूलोकमें शूर्यमण्डलके बीचका भाग 'भुवलोक' कहा गया है। सूर्यलोकसे ऊपर भ्रूवलोकतकके भागको 'स्वर्णलोक' कहते हैं। उसका विस्तार चौदह लाख योजन है। यही ब्रैलोक्य है और यही अण्डकट्टामें विरा हुआ विस्तृत ब्रह्माण्ड है। यह भ्राह्मण्ड क्रमशः जल, अग्नि, बायु और आकाशरूप आवरणोद्धारा बाहरमें घिरा हृथा है। इन सबके ऊपर अहंकारका आवरण है। ये जल आदि आवरण उत्तरोत्तर दसगुने बढ़े हैं। अहंकाररूप आवरण महत्त्वमय आवरणसे घिरा हुआ है ॥ ९-१३ ॥

महामुने ! ये सारे आवरण एकमें दूसरेरके क्रमसे दसगुने बढ़े हैं। महत्त्वको भी आवृत करके प्रधान (प्रकृति) स्थित है। वह अनन्त है; क्योंकि उसका कभी अन्त नहीं होता। इसीलिये उसको कोई संख्या अथवा माप नहीं है। मुने ! वह सम्पूर्ण जगत्का कारण है। उसे ही 'अपरा प्रकृति' कहते हैं। उसमें ऐस-ऐसे अवश्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं। जैसे काठमें अग्नि और तिलमें तेल रहता है, उसी प्रकार प्रधानमें स्वयंप्रकाश नेतनात्मा व्यापक पुरुष विराजमान है ॥ १४-१६३ ॥

महाप्राङ्मुने ! ये संश्यधर्मी (परस्पर संयुक्त हुए) प्रधान और पुरुष सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मभूता विष्णुशक्तिसे आवृत हैं। महामुने ! भगवान् विष्णुकी स्वरूपभूता वह शक्ति ही प्रकृति और पुरुषके संयोग और विशेषगमें कारण है। वही सुष्ठिके समय उनमें क्षोभकर कारण बनती है। जैसे जलके सम्पर्कमें आगी हुई बायु उसकी कणिकाओंमें

व्याप्त शीतलताको धारण करती है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति भी प्रकृति-पुरुषमय जगत्को धारण करती है। विष्णु-शक्तिका आश्रय लेकर ही देवता आदि प्रकट होते हैं। वे भगवान् विष्णु स्वयं ही साक्षात् ब्रह्म हैं, जिनसे इस सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती है ॥ १७-२०३ ॥

मनिश्रेष्ठ ! सर्वदेवके रथका विज्ञार नो सहस्र योजन है तथा उस रथका दैरादाढ़ (हरसा) इसमें दूना बड़ा अर्थात् अटापह हजार योजनका है। उसका धुरा छेद करोड़ सात लाख योजन लंबा है, जिसमें उस रथका पहिया लगा हुआ है। उसमें पूर्वांग, गधाह और अपश्चालूप तीन नामियाँ हैं। गवन्सर, परेवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और बत्सर-ये पाच प्रकारके वर्ष उसके पांच और हैं। छहों भूतुपे उसकी ३३ नेमियाँ हैं और उत्तर दक्षिण दो अयन उसके शरीर हैं। ऐसे गवत्सरमय रथचक्रमें सम्पूर्ण काल्पक प्रांतेभिन्न हैं। महामने ! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा राढ़े पैंतालीर हजार योजन लंबा है। दोनों धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युर्ध्वांशोंका परिमाण है ॥ २१-२५ ॥

उस रथके दो धुरोंमें से जो छोटा है वह, और उसका युगाद्ध ध्रुवके आवारपर रिथत है। उसमें व्रतका पालन करनेवाले मुने ! गाप्त्री, बृहती, उष्णिक, जगती, विष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति-ये सात छन्द ही सूर्यदेवके सात शोड़े कहे गये हैं। सूर्यका दिव्यायी देना उद्द्य है और उनका दृष्टिं ओदाल हो जाना हां अस्तकाल है, ऐसा जानना चाहिये। वासष्ट ! जिनमें प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथ्वीसे लेकर उस प्रदेश-पर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सर्पिंगमें उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है, आकाशमें वह दिव्य एवं प्रकाशमान रथान ही विराट्-रूपधारी भगवान् विष्णुका तोसना पद है। पुण्य और पापके क्षीण हो जानेवर दोपहरी पक्षे राहित संगतचित्त महात्माओंका यही परम उत्तम स्थान है। इस विष्णुपदने ही गङ्गाका प्राकृत्य हुआ है, जो स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है ॥ २६-२९३ ॥

आकाशमें जो विष्णुमार (सूर्य)को आकृतिवाला ताराओं-का समुदाय देखा जाता है, उसे भगवान् विष्णुका स्वरूप

५. आपे जुपको युगाद्ध करते हैं।

जाना चाहिये । उस शिशुभारचकके पुच्छभागमें ब्रुवणी स्थिति है । यह ध्रुव स्वयं धूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको धुमता है । भगवान् सूर्यका वह रथ प्रतिमास भिन्न-भिन्न आदित्य-देवता, श्रेष्ठ शृणि, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी (यश), सर्प तथा राक्षसोंसे अधिष्ठित होता है । भगवान् सूर्य ही सर्दी, गर्मी तथा जल वर्षके कारण हैं । वे ही शृग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमय भगवान् विष्णु हैं । वे ही शुभ और अशुभके कारण हैं ॥ ३०-३२२ ॥

चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंसे युक्त है । उस रथके बायें और दायें भागमें कुन्द-कुसुमकी भाँति स्वेत रंगके दस घोड़े जूते हुए हैं । उसी रथके द्वारा वे चन्द्रदेव नक्षत्रलोकमें विचरण करते हैं । तीनीस हजार तीनीस सौ तीनीस (३६३३३) देवता चन्द्रदेवकी अमृतमयी कलाओंका पान करते हैं । अमावास्याके दिन 'अमा' नामक एक रथिम (कला) में स्थित हुए पितृगण चन्द्रमाकी बची हुई दो कलाओंमें एकमात्र अमृतमयी कलाका पान करते हैं । चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ वायु और अनिमय इव्यक्ता बना हुआ है । उसमें आठ शीशगामी घोड़े जूते हुए हैं । उसी रथमें बुध आकाशमें विचरण करते हैं ॥ ३३-३६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें 'मुवनकोशका वर्णन' नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

—००५०—

एक सौ इक्कीमवाँ अध्याय

व्योतिशासनका कथन

[वर-धधूके गुण और विवाहादि संस्कारोंके कालका विचार; दाशुके वर्णीकरण एवं स्तम्भन-सम्बन्धी मन्त्र; ग्रहण-दान; सूर्य-संक्रान्ति एवं ग्रहोंकी महादशा]

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! अब मैं शुभ-अशुभका विवेक प्रदान करनेवाले संक्षिप्त ज्यौतिष-शास्त्रका वर्णन करूँगा, जो चार लक्ष श्लोकवाले विशाल ज्यौतिषशास्त्रका सारभूत अंश है, जिसे जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो सकता है । यदि कन्याकी राशिसे वरकी राशिसंख्या परस्पर छः-आठ, नौ-पाँच और दो-चारह हो तो विवाह शुभ नहीं होता है । शेष दस-चार, ग्यारह-तीन और सम सप्तक (सात-सात) हो तो विवाह शुभ होता है । यदि कन्या और वरकी राशिके स्वामियोंमें परस्पर मित्रता हो या दोनोंकी राशियोंका एक ही स्वामी हो, अथवा दोनोंकी ताराओं (जन्म-नक्षत्रों) में मैत्री हो तो नौ-पाँच तथा दो-चारहका दोष, होनेपर भी

विवाह कर लेना चाहिये; किंतु षष्ठ्यक (छः-आठ) के दोषमें तो कदापि विवाह नहीं हो सकता ।* गुरु-शुक्रके अस्त रहनेपर विवाह करनेसे बधूके पतिका निधन हो जाता है । गुरु-क्षेत्र (धनु, मीन) में सूर्य हो एवं सूर्यके क्षेत्र (मिह) में गुरु हो तो विवाहको अच्छा नहीं मानते हैं; क्योंकि वह विवाह कन्याके लिये वैधव्यकारक होता है ॥ १-५ ॥

(संस्कार-मुहूर्त) वृहस्पतिके बक रहनेपर तथा अतिचारी होनेपर विवाह तथा उपनयन नहीं करना चाहिये ।

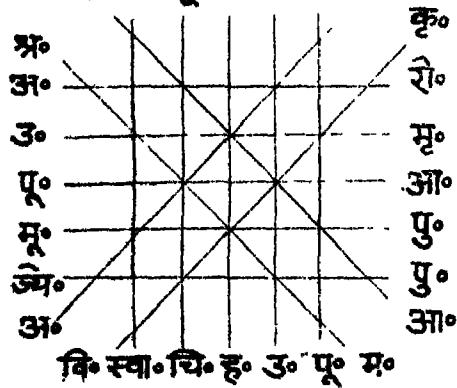
* नारदपुराण, पूर्णमाण, दिलीपपाद, अध्याय ५६, श्लोक ५०४ में, मी पही कात कही गयी है ।

आत्मशक्ति होनेपर अतिचारके समय त्रिपक्ष अर्थात् छेद मास सुधा वक्त होनेपर चार मास छोड़कर शेष समयमें विवाह-उपनयनादि शुभ संस्कार करने चाहिये । चैत्र-पौष्टमें, रिक्ता तिथिमें, भगवान्के सोनेपर, मङ्गल तथा रविवारमें, चन्द्रमाके क्षीण रहनेपर भी विवाह शुभ नहीं होता है । संध्याकाल (गोदूलि-समय) शुभ होता है । रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, स्वाती, इस्त, रेतती—इन नक्षत्रोंमें, तुल लग्नको छोड़कर मिथुनादि द्विस्वभाव एवं शिर लग्नमें विवाह करना शुभ होता है । विवाह, कर्णविध, उपनयन तथा पुंसवन संस्कारमें, अज्ञ-प्राशन तथा प्रथम चूडाकर्ममें विद्वन्क्षत्रको त्याग देना चाहिये ॥ ६-९ ॥

अवण, मूल, पुष्य—इन नक्षत्रोंमें, रवि, मङ्गल, बृहस्पति—इन वारोंमें तथा कुम्भ, सिंह, मिथुन—इन लग्नोंमें पुंसवन-कर्म करनेका विधान है । इस्त, मूल, मृगशिरा और रेतती नक्षत्रोंमें, बुध और शुक्र वारमें बालकोंका निष्कासन शुभ होता है ।

१. विद्वन्क्षत्रके परिशानके लिये नारदपुराण, अध्याय ५६के श्लोक ४८८-४८ में पञ्चशलाका-वेषका इस प्रकार वर्णन है—पैंच रेखाएँ पड़ी और पैंच रेखाएँ छारी छीचकर, दो-दो रेखाएँ कोणोंमें छीचने (बनाने) से पञ्चशलाका-चक्र बनता है । इस चक्रके ईशानकोणबाली दूसरी रेखामें कृष्णको लिखकर आगे प्रदक्षिणकर्मसे रोहिणी आदि वर्गजितसंहित सम्पूर्ण नक्षत्रोंका उल्लेख करे । जिस रेखामें ग्रह हो, उसी रेखाकी दूसरी ओरवाला नक्षत्र विद्व समझा जाता है । इस विषयको भलीभांति समझनेके लिये निम्नान्ति चक्रपर दृष्टिपात करें—

ध० श० पू० ऊ० रे० अ० भ०



रवि, सोम, बृहस्पति तथा शुक्र—इन दिनोंमें, मूल नक्षत्रमें प्रथम बार ताम्बूल-भक्षण करना चाहिये । शुक्र तथा बृहस्पति वारको, मकर और मीन लग्नमें, हस्तादि पैंच नक्षत्रोंमें, पुष्यमें तथा कृत्तिकादि तीन नक्षत्रोंमें अज्ञ-प्राशन करना चाहिये । अश्विनी, रेतती, पुष्य, हस्त, ब्येष्ठा, रोहिणी और अवण नक्षत्रोंमें नूतन अज्ञ और फलका भक्षण शुभ होता है । स्वाती तथा मृगशिरा नक्षत्रमें औषध-सेवन करना शुभ होता है ।

(रोग-मुक्त-स्नान) तीनों पूर्वा, मध्या, भरणी, स्वाती तथा श्रवणसे तीन नक्षत्रोंमें, रवि, शनि और मङ्गल—इन वारोंमें रोग-विमुक्ति व्यक्तिको स्नान करना चाहिये ॥ १०-१४ ॥

(यन्त्र-प्रयोग) मिट्टीके चौकोर पट्टपर आठ दिशाओंमें आठ 'हाँ' कार और बीचमें अपना नाम लिखे । अथवा पार्थिव पट्ट या भोजनप्रयोग आठों दिशाओंमें 'हीं' लिखकर मध्यमें अपना नाम गोरोचन तथा कुङ्कुमसे लिखे । ऐसे यन्त्रको बस्त्रमें लिखकर गलेमें धारण करनेसे शत्रु निश्चय ही बढ़ामें हो जाते हैं । इनी तरह गोरोचन तथा कुङ्कुमसे 'हीं' 'हीं' मन्त्रद्वारा सम्पुष्टि नामको आठ भूर्जपत्र-खण्डपर लिखकर पृथ्वीमें गाढ़ दे तो शीघ्र विदेश गया हुआ व्यक्ति वापस आता है और उसी यन्त्रको हल्दीके रससे शिलापट्टपर लिखकर नीचे सुख करके पृथ्वीपर रख दे तो शत्रुका स्तम्भन होता है । 'हीं' 'हीं' 'सुः' मन्त्रसे सम्पुष्टि नाम गोरोचन तथा कुङ्कुमसे आठ भूर्जपत्रोंपर लिखकर रक्षा जाय तो मृत्युका निवारण होता है । यह यन्त्र एक, पैंच और नौ बार लिखनेसे परस्पर प्रेम होता है । दो, छः या बारह बार लिखनेसे वियुक्त व्यक्तियोंका संयोग होता है और तीन, सात या ब्यारह बार लिखनेसे लाभ होता है और चार, आठ और बारह बार लिखनेसे परस्पर शत्रुता होती है ॥ १५-२० ॥

(भाव और तारा) मेषादि लग्नोंसे तनु, धन, सहज, सृष्टि, सुत, रिपु, जाया, निधन, धर्म, कर्म, आयु, व्यय—ये बारह भाव होते हैं । अब नौ ताराओंका बल बतलाता हैं । जन्म, संपत्, विष्ट, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, मृत्यु, मैत्र और अतिमैत्र—ये नौ तारे होते हैं । बुध, बृहस्पति, शुक्र, रवि तथा सोम वारको और माघ आदि छः मासोंमें प्रथम श्वोर-कर्म (बालकका मुण्डन) करना शुभ कहा गया है । बुधवार तथा गुरुवारको एवं पुष्य, अवण और चित्रा नक्षत्रमें कर्णविध-संस्कार शुभ होता है । पैंचवें वर्षमें

प्रतिपदा, पञ्ची, रिका और पूर्णिमा तिथियोंको एवं मङ्गलवारको छोड़कर शेष बारोंमें सरस्वती, विष्णु और लक्ष्मीका पूजन करके अध्ययन (अक्षरारम्भ) करना चाहिये। माघसे लेकर छः मासतक अर्थात् आषाढ़तक उपनयन-संस्कार शुभ होता है। चूडाकरण आदि कर्म श्रावण आदि छः मासोंमें प्रशस्त नहीं माने गये हैं। गुरु तथा शुक्र अस्त हो गये हों और चन्द्रमा क्षीण हों तो यशोपवीत-संस्कार करनेसे बालककी मृत्यु अथवा जड़ता होती है, ऐसा संकेत कर दे। क्षौरमें कहे हुए नक्षत्रोंमें तथा शुभ ग्रहके दिनोंमें समावर्तन-संस्कार करना शुभ होता है॥२१-२८॥

(विविध मुहूर्त—) लग्नमें शुभ ग्रहोंकी राशि हो और लग्नमें शुभ ग्रह वैष्टे हों या उसे देखते हों तथा अश्विनी, मधा, चित्रा, स्वाती, भरणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हों तो ऐसे समयमें धनुर्वेदका आरम्भ शुभ होता है। भरणी, आर्द्धा, मधा, आश्वेषा, कृत्तिका, पूर्णफल्गुनी—इन नक्षत्रोंमें जीवनकी इच्छा रखनेवाला पुरुष नवीन वस्त्र धारण न करे। बुध, बृहस्पति तथा शुक्र—इन दिनोंमें वस्त्र धारण करना चाहिये। विवाहादि माङ्गलिक कार्योंमें वस्त्र-धारणके लिये नक्षत्रादिका विचार नहीं करना चाहिये। रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा और हस्तादि पॉच नक्षत्रोंमें चूड़ी, मूँगा तथा रत्नोंका धारण करना शुभ होता है॥ २९-३२॥

(क्रष्ण-विक्रम मुहूर्त—) भरणी, आश्वेषा, धनिष्ठा, तीनों पूर्वा और कृत्तिका—इन नक्षत्रोंमें खरीदी हुई वस्तु हानिकारक (घाटा देनेवाली) होती है और बेचना लाभदायक होता है। अश्विनी, स्वाती, चित्रा, रेवती, शतभिषा, श्रवण—इन नक्षत्रोंमें खरीदा हुआ सामान लाभदायक होता है और बेचना अशुभ होता है। भरणी, तीनों पूर्वा, आर्द्धा, आश्वेषा, मधा, स्वाती, कृत्तिका, ज्येष्ठा और विशाखा—इन नक्षत्रोंमें स्वामीकी सेवाका आरम्भ नहीं करना चाहिये। साथ ही इन नक्षत्रोंमें दूसरेको द्रव्य देना, व्याजपर द्रव्य देना, यातीया धरोहरके रूपमें रखना आदि कार्य भी नहीं करने चाहिये। तीनों उत्तरा, श्रवण और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें राज्याभिषेक करना चाहिये। चैत्र, ज्येष्ठ, भाद्रपद, अश्विन, पौष और माघ—इन मासोंको छोड़कर शेष मासोंमें गृहारम्भ शुभ होता है। अश्विनी, रेहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त और अनुराधा—

ये नक्षत्र और मङ्गल तथा रविवारको छोड़कर शेष दिन गृहारम्भ, तद्वाग, बारी एवं प्रात्सादारम्भके लिये शुभ होते हैं। गुरु सिंह-राशिमें हो तब, गुरुदिव्यमें (अश्वैत् ज्व तिंह राशिके गुरु और धन पर्वं मीन राशिओंके सर्व हों,) अविक मासमें और शुक्रके बाल, बृद्ध तथा अस्त रहनेपर गृह-सम्बन्धी कोई कार्य नहीं करना चाहिये। अवणसे पॉच नक्षत्रोंमें तृण तथा काष्ठोंके संग्रह करनेसे अग्निदाह, भय, रोग, राजपीड़ा तथा धन-क्षति होती है। (शृह-प्रवेश—) धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें गृहप्रवेश करना चाहिये। (गौका-निर्माण—) द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, त्रयोदशी—इन तिथियोंमें नौका बनवाना शुभ होता है। (कृष्णदर्शन—) धनिष्ठा, हस्त, रेवती, अश्विनी—इन नक्षत्रोंमें राजाका दर्शन करना शुभ होता है। (युद्धयात्रा—) तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, आर्द्धा, कृत्तिका, मृगशिरा, विशाखा, आश्वेषा और अश्विनी—इन नक्षत्रोंमें की हुई युद्धयात्रा सम्पत्ति-लाभपूर्वक सिद्धिदायिनी होती है। (गौओंके गोषुष्टसे बाहर ले जाने या गोषुष्टके भीतर लानेका मुहूर्त—) अष्टमी, मिनीवाली (अमावास्या) तथा चतुर्दशी तिथियोंमें, तीनों उत्तरा, रेहिणी, श्रवण, हस्त और चित्रा—इन नक्षत्रोंमें बेचनेके लिये गोशालासे पशुको बाहर नहीं ले जाना चाहिये और खरीदे हुए पशुओंका गोशालामें प्रवेश भी नहीं करना चाहिये। (कृष्ण-कर्म मुहूर्त—) स्वाती, तीनों उत्तरा, रेहिणी, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त तथा श्रवण—इन नक्षत्रोंमें सामान्य कृष्ण-कर्म करना चाहिये। पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, स्वाती, पूर्णफल्गुनी, मूल, ज्येष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें रवि, सोम, गुरु तथा शुक्र—इन बारोंमें, बृष्ट, मिथुन, कन्या—इन लग्नोंमें, द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, सप्तमी, तृतीया और त्रयोदशी—इन तिथियोंमें (हल-प्रवहणादि) कृष्ण-कर्म करना चाहिये।

रेवती, रेहिणी, ज्येष्ठा, कृत्तिका, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें शनि एवं मङ्गलवारोंको छोड़कर दूसरे दिनोंमें सभी सम्पत्तियोंकी प्राप्तिके लिये बीज-वपन करना चाहिये।

(धान्य काटने तथा धरमें रखनेका मुहूर्त—) रेवती, हस्त, मूल, श्रवण, पूर्णफल्गुनी, अनुराधा, मधा, मृगशिरा—इन नक्षत्रोंमें तथा मकर लग्नमें धान्य-छेदन—(शनि काटनेका) मुहूर्त शुभ होता है और हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती तथा श्रवणादि तीन नक्षत्रोंमें भी धान्य-छेदन शुभ है। सिर लग्न तथा बृष्ट, गुरु,

क्षक्षयादीमें, भरणी, पुनर्बंसु, मधा, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा-इन
नक्षत्रोंमें अनाजको डेहरी या बलार आदिमें रखते ॥३३-५१॥

(धान्य-ज्येष्ठिके लिये मन्त्र—) ‘ॐ धनदाय सर्व-
धनेशाय देहि मे धनं स्वाहा ।’—‘ॐ नवे वर्षे इकादेवि !
क्षीकरणवर्णिनि ! क्षमलपिणि ! देहि मे धनं स्वाहा ।’—इन
मन्त्रोंको पत्ते या भोजप्रपर लिखकर धान्यकी राशिमें रथ
दे तो धान्यकी उड़ि होती है । तीनों पूर्वा, विशाखा, धनिष्ठा
और शतभिषा—इन छः नक्षत्रोंमें बलारसे धान्य निकालना
चाहिये । (देवादि-प्रतिष्ठा-मुहूर्त—) सूर्यके उत्तराशयमें
रहनेपर देवता, वाग, तड़ाग, वारी आदिकी प्रतिष्ठा करनी
चाहिये । (भगवान्के शयन, पार्श्व-परिवर्तन और
जगारणका उत्सव—) मिथुन-राशिमें सूर्यके रहनेपर अमावास्याके बाद
जो दो द्वादशी तिथियाँ होती हैं, उनमें क्रमसे भगवान्का
पार्श्व-परिवर्तन तथा प्रबोधन (जागरण) होता है ।
कन्या-राशिका सूर्य होनेपर अमावास्याके बाद जो अष्टमी तिथि
होती है, उसमें दुर्गांजी जागती है । (चिपुष्करयोग—) जिन
नक्षत्रोंके तीन चरण दूसरी राशिमें प्रविष्ट हों (जैसे कुचिका,
पुनर्बंसु, उत्तराशाल्युनी, विशाखा, उत्तराशादा और पूर्वभाद्रपदा
—इन नक्षत्रोंमें, जब भद्रा द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी
तिथियाँ हों एवं रवि, शनि तथा मङ्गलवार हों तो चिपुष्कर-
योग होता है । (चन्द्रघल—) ग्रहेक व्यावहारिक कार्यमें
चन्द्र तथा ताराकी शुद्धि देवनी चाहिये । जन्मराशिमें तथा
जन्मराशिसे तृतीय, पष्ठ, सप्तम, दशम, एकादश स्थानोंपर
स्थित चन्द्रमा शुभ होते हैं । यह पक्षमें द्वितीय, पञ्चम,
नवम चन्द्रमा भी शुभ होता है । (तारा-ज्युष्मि—) मित्र,
अतिशय, साधक, सम्पत्त और क्षेत्र आदि ताराएँ शुभ हैं ।
‘जन्म-तारा’से मृत्यु होती है, ‘विषयि तारा’से धनका विनाश
होता है, ‘प्रत्यर्थि’ और ‘मृत्युतारा’में निश्चन होता है । (अतः
इन ताराओंमें कोई नया काम या यात्रा नहीं करती
चाहिये ।) (क्षीण और पूर्ण चन्द्र—) क्षीण पक्षकी अष्टमीमें
शुभ पक्षकी अष्टमी तिथिक चन्द्रमा धीण रहता है; इसके
बाद वह पूर्ण माना जाता है । (महाज्येष्ठी—) वृत तथा
मिथुन राशिका सूर्य हो, गुरु मृगशिरा अथवा ज्येष्ठा नक्षत्रमें
हो और गुरुवारको पूर्णिमा तिथि हो तो वह पूर्णिमा भ्याज्येष्ठी
कही जाती है । ज्येष्ठामें गुरु तथा चन्द्रमा हों, रोहिणीमें सूर्य

हो एवं ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा हो तो वह पूर्णिमा भ्याज्येष्ठी
कहलाती है । स्वातो नक्षत्रके आनेसे पूर्व ही यन्त्रपर
इन्द्रदेवका पूजन करके उनका धजारोपण करना चाहिये;
प्रवण अथवा अविनीमें या सप्ताहके अन्तमें उसका
विसर्जन करना चाहिये ॥ ५२-६४ ॥

(श्रहणमें दानका महत्व—) सूर्यके राहुदारा ग्रस्त
होनेपर अर्घात् सूर्यग्रहण लानेपर सब प्रकारका दान सुवर्ण-
दानके समान है, सब ब्राह्मण ब्रह्माके समान होते हैं और
सभी जल गङ्गाजलके समान हो जाते हैं । (संक्रान्तिका
कथन—) सूर्यकी संक्रान्ति गविवारसे लेकर शनिवारतक
किसीन किंगड़ा दिन होती है । इस नमसे उस संक्रान्तिके
साल भिन्न-भिन्न नाम होते हैं । यथा— शोरा, घ्वाङ्गी, महोदरी,
मन्दा, मन्दाकिनी, युता (मिथा) तथा गङ्गासी । कौल्ब,
श्रावुनि और किंमृतन वर्णणमें सूर्य यदि संक्रमण करे तो
लोग मुव्वी होने हैं । गर, बन, वणिक्, विषि और
बाल्ब—इन पाँच करणोंमें यदि मृत्यु संक्रान्ति बदले तो
प्रजा राजाके दोषमें सम्बद्धिके साथ पीड़ित होती है ।
चतुर्पात्, तैतिल और नाग—इन करणोंमें सूर्य यदि
संक्रमण करे तो देशमें दुर्भिक्ष होता है, राजाओंमें संग्राम
होता है तथा पति-पत्नीके जीवनके लिये भी संशय उपस्थित
होता है ॥ ६६-७० ॥

(रोगकी स्थितिका विचार—) जन्म-नक्षत्र या आधान
(जन्ममें उन्नीसरं) नक्षत्रमें गेग उत्तर्वन हो जाय, तो अधिक
क्षेत्रशायक होता है । कृष्णिका नक्षत्रमें रोग उत्तर्वन हो तो
नौ दिनतक, रोहिणीमें उत्तर्वन हो तो तीन रातक तथा
मुगशिरामें हो तो पाँच रातक रहता है । आर्द्धमें रोग हो
तो प्राणनाशक होता है । पुनर्बंसु तथा पुर्य नक्षत्रोंमें रोग
हो तो सात रातक रोग होता है । आइलेपका रोग नौ
रातक रहता है । भवान्ता रोग अर्थात् धातक या
प्राणनाशक होता है । पूर्वाकाल्युनीका रोग दो मासतक,
अमुगशिरा का रोग दस दिन और ज्येष्ठाका पंद्रह दिन
रहता है । मूल नक्षत्रोंमें रोग हो तो वह छूटता ही नहीं
है । पूर्वाशादाका रोग पाँच दिन रहता है । उत्तराशादाका
रोग बीस दिन, श्रवणका दो मास, धनिष्ठाका पंद्रह दिन

और शतभिंशका रोग दस दिनोंतक रहता है । पूर्वभाइपदाका रोग छूटता ही नहीं । उत्तरभाइपदाका रोग सात दिनोंतक रहता है । रेखीका रोग दस रात और अधिनीका रोग एक दिन-रात मात्र रहता है; किन्तु भरणीका रोग प्राणनाशक होता है । (रोग-शास्त्रिका उपाय—) पञ्चधान्य, तिल और घृत आदि हवनीय सामग्री-द्वारा गायत्री-मन्त्रसे हवन करनेपर रोग छूट जाता है और

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'ज्यौतिषशास्त्रका कथन' नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

शुभ फलकी प्राप्ति होती है तथा ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौका दान करनेसे रोगका शमन हो जाता है ॥ ७१-७२ ॥
(अष्टोत्तरी-क्रमसे) सूर्यकी दशा छः चर्षकी होती है । हसी प्रकार चन्द्रदशा पंद्रह वर्ष, मङ्गलकी आठ वर्ष, बुधकी सप्त वर्ष, शनिकी दस वर्ष, बृहस्पतिकी उन्नीस वर्ष, राहुकी बारह वर्ष और शुक्रकी इक्कीस वर्ष महादशा चलती है ॥ ७८-७९ ॥

एक सौ बाईसवाँ अध्याय

कालगणना—पञ्चाङ्गमान-साधन

अग्निदेव कहते हैं—मुने ! (अब मैं) वर्णोंके समुदायस्वरूप 'काल' का वर्णन कर रहा हूँ और उस कालको समझनेके लिये मैं गणित बतला रहा हूँ । (ब्रह्म-दिनादिकालं अथवा सृष्ट्यारम्भकालं अथवा व्यवस्थित शकारम्भसे) वर्षसमुदाय-संख्याको १२ से गुणा करे । उसमें चैत्रादि गत मास-संख्या मिला दे । उमे दोसे गुणा करके दो स्थानोंमें रखें । प्रथम स्थानमें चार मिलाये, दूसरे स्थानमें आठ सौ पैंसठ मिलाये । इस तरह जो अङ्ग सम्पन्न हो, वह 'सुणु' कहा गया है । उसे तीन स्थानोंमें रखें; उसमें वीचबालेको आठसे गुणा करके फिर चारसे गुणित करे । इस तरह मध्यका संस्कार करके गो-मूर्तिका-क्रमसे रखें हुए तीनोंका यथास्थान संयोजन करे । उसमें प्रथम स्थानका नाम 'ऊर्ध्व', दीक्षाका नाम 'भूय' और तृतीय स्थानका नाम 'अधः' ऐसा रखें । अधः-अङ्गमें ३८८ और मध्याङ्गमें ८७ घटाये । तत्प्रात् उसे ६० से विभाजित करके शेषको (अलग) लिले । फिर लविधिको आगेबाले अङ्गमें मिलाकर ६० से विभाजित करे । इस प्रकार तीन स्थानोंमें स्थापित अङ्गोंमें प्रथम स्थानके अङ्गमें ७ से भाग देनेपर शेष बची हुई संख्याके अनुसार रवि आदि बार निकलते हैं । शेष दो स्थानोंका अङ्ग तिथिका ध्रुवा होता है । सुणुको दोसे गुणा करे । उसमें तीन घटाये । उसके नीचे सुणुको लिखकर उसमें तीस जोड़े । फिर भी ६, १२, ८-इन पलोंको भी क्रमसे तीनों स्थानोंमें मिला दे ।

फिर ६० से विभाजित करके प्रथम स्थानमें २८ से भाग देकर ध्रुवाको लिले । उसके नीचे पूर्वानीत तिथि-ध्रुवाको लिले । सबको मिलानेपर ध्रुवा हो जायगा । फिर भी उसी सुणुको अर्द्ध करे । उसमें तीन घटा दे । दोसे गुणा करे । मध्यको एकादशसे गुणा करे । नीचेमें एक मिलाये । द्वितीय स्थानमें उनचालीससे भाग देकर लविधिको प्रथम स्थानमें घटाये, उसीका नाम 'मध्य' है । मध्यमें बाईस घटाये । उसमें ६० से भाग देनेपर शेष 'शूण' है । लविधिको ऊर्ध्वमें अर्थात् नक्षत्र-ध्रुवामें मिलाना चाहिये । २७ से भाग देनेपर शेष नक्षत्र तथा योगका ध्रुवा हो जाता है ॥ १-७३ ॥

अब तिथि तथा नक्षत्रका मासिक ध्रुवा कह रहे हैं । (२। ३२। ००) यह तिथिध्रुवा है और (२। ११। ००) यह नक्षत्रध्रुवा है । इस ध्रुवाको प्रत्येक मासमें जोड़कर बार-स्थानमें ७ से भाग देकर शेष बारमें तिथिका दण्ड-पल समझाना चाहिये । नक्षत्रके लिये २७ से भाग देकर अधिनीसे शेष संख्यावाले नक्षत्रका दण्डादि जानना चाहिये ॥८-१०॥

[पूर्वोक्त प्रकारसे तिथ्यादिका मान मध्यममानसे निश्चित हुआ । उसे स्पष्ट करनेके लिये संस्कार कहते हैं ।] चतुर्दशी आदि तिथियोंमें कही हुई घटियोंको क्रममें शूण-धन तथा धन-शूण करना चाहिये । जैसे चतुर्दशीमें शूण घटी तथा ब्रयोदशी और प्रतिगदामें पाँच घटी क्रममें शूण तथा धन करना चाहिये । एवं द्वादशी तथा द्वितीयमें दस घटी शूण-धन करना चाहिये । तृतीया तथा एकादशीमें

* 'मुद्धनार्थमेज्यादितिथातुमे नगः' (मुद्ध० चित्ता०, नक्ष० प्रक० ४६) के अनुसार उत्तरभाइपदामें चत्पन्न रोग सात दिन रहता है ।

पंचद घटी, चतुर्थी और दशमीमें १३ घटी, पञ्चमी और नवमीमें २२ घटी, छठी तथा अष्टमीमें २४ घटी तथा सप्तमीमें २५ घटी धन-ऋण-संस्कार करना चाहिये। वह अंशात्मक फल चतुर्दशी आदि तिथिपैष्ठमें करना होता है ॥ ११-१३२ ॥

(अब कलात्मक फल-संस्कारके लिये कहते हैं—) कर्कादि तीन राशियोंमें ३, चार तीन (६।४।३) तथा तुलादि तीन राशियोंमें विपरीत तीन, चार, ३ (३।४।६) संस्कार करनेके लिये 'खण्ड' होता है। 'खेषवः—५०', 'धवयुगाः—४०', मैञ्च—१२—इनको मेषादि तीन राशियोंमें धन करना चाहिये। कर्कादि तीन राशियोंमें विपरीत १२, ४०, ५० का संस्कार करना चाहिये। तुलादि ३: राशियोंमें इनको ऋण-संस्कार करना चाहिये। चतुर्गुणित तिथिमें विकलात्मक फल-संस्कार करना चाहिये। 'गत' तथा 'एथ' खण्डाओंके अन्तरसे कलाको गुणित करे। ६० से भाग दे। लविधिको प्रथमोच्चारमें ऋण-फल रहनेपर भी धन करे और धन रहनेपर भी धन ही करे।

इस प्रकार आदि आवनेय महापुण्यमें ज्यौतिष-शास्त्रके अन्तर्गत 'कालगणना' नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

* इस अध्यायमें वर्णित गणितको उदाहरण देकर समझाया जाता है—

कलगणना कीजिये कि वर्तमान वर्षगण-संख्या =२१ है और वर्तमान शकमें वैशाख शुक्र ग्राहिताको पञ्चाङ्ग-मान-साधन करना है तो चैत्र शुक्रादि गणमास १ हुआ। वर्षगण २१ को १२ से गुणा करके उपमें चैत्र शुक्रादि गणमासकी संख्या १ मिलानेसे २१×१२+१=२५३ हुआ। इसे द्विगुणित करके दो स्थानोंमें रखता। प्रथम स्थानमें ४ और दूसरे स्थानमें ८६५ मिलाया। अतः—२५३४५३=५०६।

५०६	।	५०६
४	।	८६५

५१० । ११०१ इसे (६० से) तक्षित (ग्राहित) किया तो ५३२। ५१ हुआ अर्थात् (११०१)में ६० से भाग देनेपर अधिक २२ और ५१ आता है। अधिको (५१०)में मिलाया तो (५३२।५१) हुआ। इसका नाम सुयुण वा गुणसंबंध रखता।

फिर इस गुणसंबंधको तीन स्थानोंमें रखता—

५३२ । ५१ अथ संख्या

५३२ । ५१ मध्य संख्या

५३२ । ५१ अथ संख्या

इसमें मध्य (५३२।५१) को आठसे गुणा किया तो (४२५६।४०८) हुआ, फिर इसे ४ से गुणा किया तो (१७०३४।१६३२) हुआ। इसे ६० से तक्षित किया अर्थात् (१६३२)में ६० से भाग देकर शेष १२ को अपने

एक सौ तेर्दहसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णव-सम्बन्धी विविध योगोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—(अब स्वरके द्वारा विजय- प्रकरणमें विजय आदि शुभ कार्योंकी सिद्धिके लिये साधन कह रहे हैं—) मैं इस पुराणके युद्धजयार्णव- सार वस्तुओंको कहूँगा । जैसे अ, इ, उ, ए, ओ— स्थानपर रखा, लक्ष्य २७ को बायें अक्षमें मिलाया तो (१७०५१ । १२) हुआ । इस ग्रन्थ मध्यका सत्कार करके उसे मध्यके स्थानमें रखकर न्यास किया—

५३२ । ५१

१७०५१ । १२

५३२ । ५१

ऋच	मध्य	अध:	सर्वोक्तो यथासानीय योग किया
५३२ । १७१०२	५४४ । ५१	इस (५१) को छोड़ दिया तो—	

ऋच	मध्य	अध:
५३२ । १७१०२	५४४ । ५१	यहाँपर तृतीय स्थानमें (अनः अक्षमें ३८८ और मध्यमें ३८९का)

८७ ३८८ =३८७ घटाया तो—

शेष रहा—

५३२ । १७०१५	१५६	इसे ६० से तटित किया तो—
-------------	-----	-------------------------

८१५ । ३७	३३	हुआ अनुनः सप्तमूः अर्थात् वार-स्थानमें ७ से भाग दिया
----------	----	--

शेष = ३

३ । ३७ । ३३ यह तिथिका छुवा-मान हुआ, जिसे तिथि-नाड़ी कहते हैं ।

फिर गुणसंबंध (५३२ । ५१) को २ से गुणा किया तो १०६४ । १०२ हुआ । ६० से सटित किया तो १०६५ । ४२ हुआ । प्रथम स्थानमें ३ घटाया तो १०६२ । ४२ हुआ । (पुनर्गुणः) फिर भी इसके साथ गुणसंबंध (५३२ । ५१) का न्यास किया और जोड़ा तो—

१०६२ । ४२

५३२ । ५१

१०६२ । ५७४ । ५१	हुआ । यहाँ तृतीय स्थानमें (५१) में ६० मिलाया तो—
-----------------	--

६०

१०६२ । ५७४ । ८१	हुआ । इसमें एसाक्षात्पलैद्युतः' के अनुसार (६ । १२ । ८)
-----------------	--

६ । १२ । ८	तीनों स्थानोंमें मिलाया
------------	-------------------------

१०६८ । ५८६ । ८१	हुआ । इसे ६० तटित किया तो—
-----------------	----------------------------

१०७७ । ४७ । २९	हुआ । यहाँ प्रथम स्थानमें २८ से भाग देकर शेष १३ को रखा तो
----------------	---

१३ । ४७ । २९	हुआ । इसमें पूर्वोत्तीर्ण तिथि-नाड़ी (३ । ३७ । ३६) को मिलाया तो
--------------	---

३ । ३७ । ३६	
-------------	--

१७ । २५ । ५	यह भी सम्बन्धहु अर्थात् दूसरा ऊर्ध्वोङ्क हुआ ।
-------------	--

फिर गुणसंबंध (५३२ । ५१) को आधा किया तो (२६६ । २५) हुआ । दूसरे स्थानमें ३ घटाया तो (२६६ । २२) हुआ । इसे दोसे गुणा किया तो (५३२ । ४४) हुआ । यहाँ (५३२) को ११ से गुणा किया और ४४में १ मिलाया तो

वे पाँच सर होते हैं। इन्हिंके क्रमसे नन्दा (भद्र), लेकर 'ह' तक वर्ण होते हैं और पूर्वोक्त स्वरोंके अवारा, रिक्ता, पूर्णा) आदि तिथियाँ होती हैं। क्रमसे क्रमसे सूर्य-मङ्गल, बुध-चन्द्रमा, बृहस्पति-शुक्र, शनि-
(५८५२।४५) हुआ। यहाँ (४५) में इसे भाग देकर शेष ६ को अपने स्थानमें लिखा। लक्षितो प्रथम स्थानमें घटाया तो (५८५१।६) हुआ। प्रथम स्थानमें २२ घटाया तो (५८५१।६) हुआ। इसे ६० से नष्टित करके लक्षण-
(९७।९।६) हुआ। इसमें दूसरे लक्षण- (१७।२५।५) को भिलाया तो (११८।३४।११) हुआ। प्रथम स्थानमें २७से भाग देनेपर (६।३४।११) हुआ—यह नक्षत्र नथा योगका ध्रुवा हुआ।

अवस्थित शकादिमें तिथिका ध्रुवा (२।३२।००) यह है और नक्षत्र-ध्रुवा (२।११।००) यह है, इसको प्रत्येक मासमें अपने-अपने मानमें जोड़ना चाहिये। जैसे कि पूर्वानीन तिथिके बारादि (३।३७।३६) में तिथिका बारादि ध्रुवा (२।३२।००) को भिलाया तो बैशाख शुक्र प्रतिपदाका भाव बारादि (६।९।३६) मध्यम मानसे हुआ एवं पूर्वानीत नक्षत्र-मान (६।३४।११) में नक्षत्र-ध्रुवा (२।११।००) को जोड़ा तो (८।४५।११) हुआ अर्थात् पुष्य नक्षत्रका मान मध्यम दण्डादि (४५।११) हुआ।

अब तिथि आदिका स्पष्ट मान जाननेके लिये संस्कार-विधि कह रहे हैं। इसे ११ वें श्लोकसे २० वें श्लोकाकी व्याख्याके अनुसार समझना चाहिये।

ति.

१४

= ०

क्रमसे ऋण-धन

नि.	ति.		
१३	१	= ५	अर्थात् ग्रयोदशीके साथित
१२	२	= १०	घटीनाममें ५ घटी छण
११	३	= १५	धीर प्रतिपदाकी घटीमें ५
१०	४	= १९	घटी अंशात्मक फल धन
९	५	= २२	करना चाहिये।
८	६	= २४	
	७	= २५	

इसी तरह कलादि फल-साधनके लिये “कर्त्त्यादी हरेदशस्तुतेऽत्रयैः क्रगात्” न अनुभार करना चाहिये।

क.	६	+	१२"	कल्यना किया कि नं० स० = ००।११।२५।१०"
सि.	४	+	४०"	यहाँपर भेष राशिका विकलात्यक ५०
वा.	३	+	५०"	फल —५० को जोड़ा = ००।११।२६।००"
दु.	३	—	५०"	यहाँ ११ सम्बन्ध ५ घटी फल प्रतिपदाकी घटी
पृ.	४	—	४०"	जोड़ दिया तो २।४९।३६
भ.	१	—	१२"	५।००
म.	६	—	१२"	२।५४।३६ हुआ
हु.	४	—	४०"	फिर मीन तथा भेषका राशि ध्रुवा (-३।३) = ०
मो.	३	—	५०"	इससे (२६।००) X ० गुणा किया तो
मे.	३	+	५०"	= ०।० हुआ इसको निधि घट्यात्में
वृ.	४	+	६०"	संस्कार किया २।५४।३६
मि.	६	+	१२"	००।०० = स्पष्ट

२।५४।३६ तिथि-मान हुआ।

इसमें एवज्ञादासे गतखण्डा अधिक हो तो फलको ऋण समझना चाहिये। फिर भी तिथि-संस्कारके लिये तृतीय

मङ्गल तथा सूर्य-शनि—ये ग्रह-स्वामी होते हैं *। १-२॥ दे । लघिको छासे गुण करके गुणनफलमें फिर चालीको साठसे गुणा करे । उसमें भाग भारहसे ही भाग दें । लघिको तीनसे गुणा करके संस्कार कर रहे हैं (को० १९-२०) । तिथिमालको द्विगुणित करके बांध उसीमें घटा दे । घटके अंशके फलको विपरीत संस्कार करे, उसमें तिथि-नामीको मिला दे । इसमें बलदिका अण फल-संशोधन करनेपर स्पष्टमान दण्डादिक हो जाता है । अणास्मक मानके नहीं घटनेपर उसमें ६० मिलाकर घटाना चाहिये एवं जिसमें संस्कार करना है, वही ६० से अधिक हो तो उसमें ही ६० घटाना चाहिये—इस तरह तृतीय संस्कार होता है ।

उदाहरण—“द्विगुणिता” के स्थानपर “त्रिगुणिता” पाठ रखनेपर पूर्वानीन मध्यम तिथिका मान दण्डादिक (९ । ३६) को ३ से गुणा किया तो (२८ । ४८) हुआ । इसका घटाश (४ । ४८) हुआ । (२८ । ४८) मेंसे घटाश (४ । ४८) को घटाया तो =२४ । ०० हुआ । इसमें तिथि-नामी (९ । ३६) को मिलाया तो (३३ । ३६) हुआ । इसमें सूर्यके अंशका ५ घट संस्कार-फल घटाया तो (३३ । ३६)—(५ । ०)=(२८ । ३६) हुआ । ६० से तटित किया तो २८ । ३६ घटादिक स्पष्ट तिथिका मान हुआ, जो पूर्वानीत मध्य तिथिके घटादिक (९ । ३६) के आसच हुआ ।

“द्विगुणिता” पाठ रखनेपर ऐसा नहीं होता है, अविक अन्तर होना है (को० ० २१-२३) । स्पष्ट तिथि-मानको (२८ । ३६) \times ४=११४ । २८ हुआ । इसमें तिथिका तृतीयांश (९ । ३२) मिलाया तो १२३ । ५६ हुआ । २७ से तटित किया तो लघिय ४ से घटादिक १५ । ५६ हुआ अर्थात् सौभाग्य योगका मान घटादिक १५ । ५६ हुआ ।

योग-साधनका दूसरा प्रकार कहते हैं—(को० २३) सूर्य नदा चन्द्रमाकी योग-कलामें ८०० से भाग देनेपर लघिय योग-संख्या होती है । शेष एव्य योगका गत घटादिक मान होगा । उसे ८०० कलामें घटाकर सूर्य-चन्द्र-नामि-योगमें ६० घटी तो शेष योगकलामें क्या इस तरह अनुपातसे भी योगका घटादिक मान होगा ।

अब करणका साधन-प्रकार कहते हैं—

द्विगुणित तिथि-संख्यामें १ घटानेसे सान चलकरण होते हैं और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके द्वितीय पराखर्षमें शकुनि तथा अमावास्याके पूर्वार्ध और पराखर्षमें चतुर्थद एवं ‘नाग’ करण होते हैं । कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके पूर्वार्धमें किंतु उन नामके चार करण ‘स्थिर’ होते हैं और तिथिके आंतरे के बराबर करणोंका मान होता । यहांपर भूल पाठमें “तिथ्यर्थतो हि” ऐसा लिखा है, किंतु वास्तवमें “तिथ्यर्थतोऽहिः” ऐसा पाठ होना चाहिये; क्योंकि ‘हि’ को पादपूरक रखनेसे ‘नाग’ अर्थ नहीं होगा । जिससे नाग नामक करणका शान नहीं होगा और “अहिः” ऐसा रखनेपर नाग करणका बोध होगा ।

* इस विषयके स्पष्ट बोधके लिये निष्पाक्षित स्वरचक्र देखिये—

स्वर:	अ	इ	उ	ए	ओ
तिथिय:	नन्दा	भद्रा	जया	रिता	पूर्णी
वर्णी:	क	ख	ग	घ	च
	छ	ঝ	শ	ঢ	ঠ
	ড	ঢ	ত	থ	দ
	ধ	ন	প	ফ	ব
	ম	ম	ব	ৰ	ল
	ব	শ	প	স	হ
स्वामिन:	सूर्य	बुध	इह०	शनि०	ष०
	मंगल	चन्द्र	शुक्र	মো	শ০
संक্ষ:	बाल	কুমাৰ	গুৱা	বৃদ্ধ	মৃলু

गुणनफलमें एक मिला दे तो उतनी ही बार नाड़ीके स्फुरणके आधारपर पल होता है। इसके बाद भी अहर्निश नाड़ीका स्फुरण होता ही रहता है।

उदाहरण—जैसे $40 \times 60 = 2400$ | $\frac{2400}{3} = 800$ = २१९ लघिध स्वल्पान्तरसे हुई। इसे छःसे गुण किया तो $219 \times 6 = 1314$ गुणनफल हुआ। इसमें फिर ११ से भाग दिया तो $1314 \div 11 = 119$ लघिध, शेष=५, शेष छोड़ दिया। लघिध ११९ को ३ से गुणा किया तो गुणनफल ३५७ हुआ। इसमें १ मिलाया तो ३५८ हुआ। इसको स्वल्पान्तरसे ३६० मान लिया। अर्थात् करमूलगत नाड़ीका ३६० बार स्फुरण होनेके आधारपर ही पल होते हैं, जिनका शानप्रकार आगे कहेंगे। इसी तरह नाड़ीका स्फुरण अहर्निश होता रहता है और इसी मानसे अकाशरादि स्वरोंका उदय भी होता रहता है। ३-४५॥

(अब व्यावहारिक काल शान कहने हैं—(तीन बार स्फुरण होनेपर ६ 'उच्छ्वास' होता है अर्थात् १ 'अणु' होता है, ६ 'उच्छ्वास'का १ 'पल' होता है, ६० पलका एक 'लिसा' अर्थात् १ 'दण्ड' होता है, (यद्यपि 'लिसा' शब्द कलाशाचक है, जो कि ग्रहोंके रशयादि विभागमें लिया जाता है, फिर भी यहाँ काल-मानके प्रकरणमें 'लिसा' शब्दसे 'दण्ड' ही लिया जायगा; क्योंकि 'कला' तथा 'दण्ड'—ये दोनों भनकके पृथिवी-विभागमें ही लिये गये हैं।) ६० दण्डका १ अहोरात्र होता है। उपर्युक्त अ, इ, उ, ए, ओ—भरोंकी कमसे वाल, कुमार, युवा, वृद्ध, मृत्यु-ये पाँच संशाएँ होती हैं। इनमें किसी एक स्वरके उदयके बाद पुनः उसका उदय पाँचवें व्यष्टपर होता है। जितने समयसे उदय होता है, उतने ही समयसे अस्त भी होता है। इनके उदयकाल एवं अस्तकालका मान अहोरात्रके अर्थात् ६० दण्डके

* इस विषयपर भारकराचार्य अपनी 'वाणितात्म्या' नामक पुस्तकके 'कालमानात्म्या'में लिखते हैं—

शुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरुपुत्तैः

पद्मभिः पलं तैवटिका खषड्भिः ।

स्यादा घटीपृष्ठिरः खरामै-

र्मसो दिनैस्तैर्कुमिष्य वर्णम् ॥ १ ॥

"दस शुरु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है, उसे ५५ 'अणु' कहते हैं और ६ 'अणुओंका एक 'पल' होता है। ६० पलका १ 'दण्ड', ६० दण्डका १ 'अहोरात्र', ६० दिन-रातका पक 'मास' और १२ मासका पक 'वर्ष' होता है।"

एकादशांशके समान होता है—जैसे ६० में ११ से भूग्र देनेपर ५ दण्ड २७ पल लघिध होगी तो ५ दण्ड २७ पल उक्त स्वरोंका उदयास्तमान होता है। किसी स्वरके उदयके बाद दूसरा स्वर ५ दण्ड २७ पलपर उदय होगा। इसी तरह पाँचोंका उदय तथा अस्तमान जानना चाहिये। इनमेंमें जब मृत्युवस्त्रका उदय हो, तब युद्ध करनेपर पराजय-के साथ ही मृत्यु हो जाती है ॥ ५-७ ॥

(अब शनिचक्रका वर्णन करते हैं—) शनिचक्रमें १५ दिनोंपर क्रमशः ग्रहोंका उदय हुआ करता है। इस पञ्चदश विभागके अनुसार शनिका भाग युद्धमें मृत्युदायक होता है। (विशेष—जब कि शनि एक राशिमें ढाई साल अर्थात् ३० मास रहता है, उसमें दिन-संख्या ९०० हुई। ९०० में १५ का भाग देनेसे लघिध ६० होगी। ६० दिनका १ पञ्चदश विभाग हुआ। शनिके राशिमें प्रवेश करनेके बाद शनि आदि ग्रहोंका उदय ६० दिनका होगा; जिसमें उदय-संख्या ४ बार होती। इस तरह जब शनिका भाग आये, उस समय युद्ध करना निषिद्ध है) ॥ ८ ॥

(अब कुर्मपृष्ठाकार शनिचिन्मयके पृष्ठका क्षेत्रफल कहते हैं—) इस कोटि सहस्र तथा तेरह लाखमें हसीका दशांश मिला दे तो उतने ही योजनके प्रमाणवाले कूर्मरूप शनि चिन्मयके पृष्ठका क्षेत्रफल होता है। अर्थात् ११००, १४३०००० आरह अब चौदह लाख तीस हजार योजन शनि-चिन्मय पृष्ठका क्षेत्रफल है। (विशेष—अन्यान्यतरोंमें ग्रहोंके चिन्मय-प्रमाण तथा कर्णप्रमाण योजनमें ही कहे गये हैं। जैसे गणितात्म्यमें भास्कराचार्य—सूर्य तथा चन्द्रका चिन्मय-परिमाण कथनके अवसरपर—विन्दुं रवेद्धिद्विशरुतं-संस्यानीनदोः खनागामस्तुविषोजनानि।' आदि। यहाँ भी संख्या योजनके प्रमाणवाली ही लेनी चाहिये।) मधाके प्रथम चरणसे लेकर कृतिकोंके आदिसे अन्ततक शनिका निवास अपने स्थानपर रहता है, उस समय युद्ध करना ठीक नहीं होता ॥ ९ ॥

(अब राहु-चक्रका वर्णन करते हैं—) राहु-चक्रके लिये सात व्याघ्री रेखा एवं सात पङ्की रेखा बनानी चाहिये। उसमें वायुकोणसे नैऋत्यलक्षोंको लिये हुए अग्निकोणतक शुक्र-पक्षकी प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमातककी तिथियोंको लिखना चाहिये एवं अग्निकोणसे ईशानकोणको लिये हुए वायुकोणतक कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर अमावास्यातककी

तिथियोंको लिखना चाहिये। इस तरह तिथिरूप राहुका न्याय होता है। पर्कारको दक्षिण दिशामें लिखे और 'इ-कारको वायुकोणमें लिखे। प्रतिपदादि तिथियोंके सहरे राहुचक नीचे दिया जा रहा है—

राहुचक्र

(पूर्व) (कृष्णातिथि)

	फ	प	न	ब	द	थ	त	
	७	६	५	४	३	२	१	
व	८							१५ ग
भ	९							१४ द
म	१०							१३ च
उत्तर	य	११						१२ ठ
								११ ट (रा.)
	र	१२						१० अ
	ल	१३						९ आ
	व	१४						८ ज
	३०							
	इ	१	२	३	४	५	६	(स व श)
	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	

(पश्चिम) (शुक्लातिथि)

(अब तिथिके अनुसार भद्रा-निवासकी दिशाका वर्णन करते हैं—) पौर्णमासी तिथिको भद्राका नाम 'विहि' होता है और वह अपनिकोणमें रहती है। तृतीया तिथिको भद्राका नाम 'कराली' होता है और वह पूर्व दिशामें बास करती है। सप्तमी तिथिको भद्राका नाम 'बोरा' होता है और वह दक्षिण दिशामें निवास करती है। सप्तमी तथा दशमी

* देवात्मे गेहविही जलाशये राहोमुखं शम्भुरिशो विज्ञेयतः ।

भीनाकंसैद्वाकमृगाकर्त्तव्यमें जाते मुक्तात् पृष्ठविदिक् शुभा श्वेत ॥

(शुक्लातिथामणि, वास्तुप्रकरण, १९)

शुक्लातिथामणि-अन्योन्तर रामाचार्यके प्रोत्त वचनानुसार राहुका अमण अपने स्थानसे लिखें ही होता है। जैसे लिखित चारों शुक्लातिथी यज्ञादशीको राहुका मुख दक्षिण दिशामें जाता गया है और मुख अमावास्या तिथिपर रहेगी; ज्योति राहुका स्वरूप सर्पोक्तम् है और यज्ञादशीके बाद दशमी, नवमी आदि विक्रोलि तिथियोंपर राहुका मुख अमण रहेगा। इसी तरह शुक्लपक्षकी प्रत्येक तिथियोंपर राहुका मुख जाता रहेगा। जहाँपर राहुका मुख रहे, उस तिथिमें उस दिशामें जाता करना ठीक नहीं होना है। कारारादि अक्षरोंके स्वरका भी सम्बन्ध लिया गया है। जैसे पूर्वोक्त अवस्थामें किस स्वरका कौन वर्ण है, वह लिया गया है; ज्ञातः जिस तिथिपर जो वर्ण है, वह लिया जारहे सम्बन्ध रहता है, उस स्वरका भी उस दिशामें जाता न करें।

तिथियोंको भवा क्रमसे ईशानकोण तथा उचर दिशामें, चतुर्दशी तिथिको वायव्य कोणमें, चतुर्थी तिथिको पश्चिम दिशामें, द्वादशकी अष्टमी तथा एकादशीको दक्षिण दिशामें रहती है। इसका प्रत्येक शुभ कार्यमें सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

(अब पंद्रह मुहूर्तोंका नाम एव नामानुकूल कार्योंका वर्णन कर रहे हैं—) रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, विरोचन, जयदेव, अभिजित, रावण, विजय, नन्दी, वश, यम, सौम्य, भव—ये पंद्रह मुहूर्त हैं। 'रौद्र' मुहूर्तमें भयानक कार्य करना चाहिये। 'श्वेत' मुहूर्तमें स्नानादिक कार्य करना चाहिये। 'मैत्र' मुहूर्तमें कन्याका विवाह शुभ होता है। 'सारभट' मुहूर्तमें शुभ कार्य करना चाहिये। 'सावित्र' मुहूर्तमें देवोंका स्थापन, 'विरोचन' मुहूर्तमें राजकीय कार्य, 'जयदेव' मुहूर्तमें विजय-सम्बन्धी कार्य तथा 'रावण' मुहूर्तमें संग्रामका कार्य करना चाहिये। 'विजय' मुहूर्तमें कृषि तथा व्यापार, 'नन्दी' मुहूर्तमें घट्कर्म, 'वश' मुहूर्तमें तडागादि और 'यम' मुहूर्तमें विनाशबाला कार्य करना चाहिये। 'सौम्य' मुहूर्तमें सौम्य कार्य करना चाहिये। 'भव' मुहूर्तमें दिन-रात शुभ लग्न ही रहता है, अतः उसमें सभी शुभ कार्य किये जा सकते हैं। इस प्रकार ये पंद्रह योग अपने नामानुसार ही शुभ तथा अशुभ होते हैं ॥ १५-२० ॥

(अब रात्रुके दिशा-संचारका वर्णन कर रहे हैं—) (दैनिक रात्र) रात्रु पूर्वदिशासे वायुकोणतक, वायुकोणमें दक्षिण दिशातक, दक्षिण दिशासे ईशानकोणतक, ईशानकोणसे

* दिनमासके ३० दण्ड होनेपर दिनमानका १५ वाँ भाग २ दण्डका शेष; अतः उक्त पंद्रह मुहूर्तोंका मान मध्यम मानसे २ दण्डका ही प्रतिदिन माना गया है। इसे ही 'शिवद्वितीका' मुहूर्त कहते हैं। उदयसे सांकेतिक २ दण्डके मानसे प्रत्येक मुहूर्तका मान होता है। इसमें नामानुकूल शुभ या अशुभ कार्य करना चाहिये। इसी तरह 'मुहूर्तचिन्तामणि'में १८ मुहूर्त विवाह-प्रकरण (५२) में कहे गये हैं, जैसे—

शिरिद्वितीमित्रायित्यवस्थमुद्दिष्टे-

अभिजित च विशालार्द्ध ईशानको च ॥

विश्वार्तिवदकलालोऽप्यर्थमात्रै भवः स्युः

कलय इह मुहूर्ता वासरे वाणवन्दाः ।

पश्चिमतक, पश्चिमसे अग्निकोणतक पवं अग्निकोणसे उचर तक तीन-तीन दिशा करके चार घटियोंमें भ्रमण करता है ॥ २१-२२ ॥

(अब ओषधियोंके लेपादिद्वारा विजयका वर्णन कर रहे हैं—) चण्डी, इन्द्राणी (विधुवार), वाराही (वाराहीकंद), मुशाली (तालमूली), गिरिकर्णिका (अपराजिता), बला (कुट), अतिबला, (कंधी) क्षीरी (सिरखोला), मत्स्तिका (मोतिता), जाती (चमेली), यूथिका (जही), श्वेतार्क (सफेद मदार), शतार्वी, गुरुच, वागुरी—इन यथाप्राप्त दिव्य ओषधियोंको धारण करना चाहिये। धारण करनेपर ये युद्धमें विजय-दायिनी होती है ॥ २३-२४ ॥

‘ॐ नमो भैरवाय लङ्घपरशुद्धस्याय ॐ हूं विश्वविनाशाय ॐ हुं कट्।’—इस मन्त्रसे शिखा बौधकर यदि सग्राम करे तो विजय अवश्य होती है। (अब सग्राममें विजयप्रद) तिलक, अङ्गन, धूप, उपलेप, स्नान, पान, तैल, योगचूर्ण—इन पदार्थोंका वर्णन करता हूँ, सुनो—

सुभगा (नीलदूर्वा), मनःशिला (मैनसिल), ताल (हरताल)—इनको लाक्षारसमें मिलाकर, छीके दूधमें घोट-कर ललाटमें तिलक करनेसे शत्रु वशमें हो जाता है। विष्णुकान्ता (अपराजिता), सर्पाक्षी (महिषकंद), सहदेवी (सहदेवी), रोचना (गोरोचन)—इनको बकरीके दूधमें पीसकर लगाया हुआ तिलक शत्रुओंको वशमें करने-वाला होता है। प्रियंगु (नागकेसर), कुकुम, कुछ, मोहिनी (चमेली), तार, छूत—इनको मिलाकर लगाया हुआ तिलक वशकारक होता है। रोचना (गोरोचन), रक्तचन्दन, निशा (हस्ती), मनःशिला (मैनसिल), ताल (हरताल), प्रियंगु (नागकेसर), सर्प (सरसों), मोहिनी (चमेली), हरिता (दूधां), विष्णुकान्ता (अपराजिता), सहदेवी, शिखा (जटामौसी)—इनको मातुलङ्घ (विजौरा नींबू) के रसमें पीसकर ललाटमें किया हुआ तिलक वशमें करनेवाला होता है। इन तिलकोंसे इन्द्रसहित समस्त देवता वशमें हो जाते हैं, पिर कुद मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। मञ्जिष्ठ, रक्तचन्दन, कढ़कन्दा (कहिजन), विलालिनी, पुनर्नवा (गदहपूर्णा)—इनको मिलाकर लेप करनेसे सूर्य भी वशमें हो जाते हैं। मल्य-

चन्दन, नागपुष्प (चमा), मणिष, तारु वच, लोम, इनके समिक्षणसे बता हुआ तैल बहामें करनेवाला होता प्रियंगु (नागकेवर), रजनी (हल्दी) जटामाँसी— है ॥ २५—२४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णवसम्बन्धी विविध शोभोंका वर्णन' नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १२३ ॥

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णवीय ज्यौतिषशास्त्रका सार

अश्विदेव कहते हैं—अब मैं युद्धजयार्णव-प्रकरणमें द्योतिषशास्त्रकी सारभूत बेला (समय), मन्त्र और औषध आदि वस्तुओंका उसी प्रकार वर्णन करूँगा, जिस तरह शंकरजीने पार्वतीजीसे कहा था ॥ १ ॥

पार्वतीजीने पूछा—भगवन् ! देवताओंने (देवासुर-संग्राममें) दानवोंपर जिस उपायसे विजय पायी थी, उसका तथा युद्धजयार्णवोक्त शुभाशुभ विवेकादि रूप शानका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

शंकरजी बोले—मूलदेव (परमात्मा) की इच्छासे पंद्रह अक्षरबाली एक शक्ति पैदा हुई । उसीसे चराचर जीवोंकी सुष्टि हुई । उस शक्तिकी आराधना करनेसे मनुष्य सब प्रकारके अर्थोंका शाता हो जाता है । अब पाँच मन्त्रोंसे बने हुए मन्त्रपीठका वर्णन करूँगा । वे मन्त्र सभी मन्त्रोंके जीवन-मरणमें अर्थात् 'अस्ति' तथा 'नास्ति' रूप सत्तामें स्थित हैं । शृङ्खेद, यजुवेद, सामवेद, अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके मन्त्रोंको प्रथम मन्त्र कहते हैं । सद्योजातादि मन्त्र द्वितीय मन्त्र हैं एवं ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—ये तृतीय मन्त्रके स्वरूप हैं । ईश (मैं), सात शिखावाले अग्नि तथा इन्द्रादि देवता—ये चौथे मन्त्रके स्वरूप हैं । अ, इ, उ, ए, ओ—ये पाँचों स्वर पञ्चम मन्त्रके स्वरूप हैं । इन्हीं स्वरोंको मूलब्रह्म भी कहते हैं ॥ ३—६ ॥

(अब पञ्च स्वरोंकी उत्पत्ति कह रहे हैं—) जिस तरह लकड़ीमें व्यापक अग्निकी प्रतीति बिना जलाये नहीं होती है, उसी तरह शरीरमें विद्यमान शिव-शक्तिकी प्रतीति शानके बिना नहीं होती है । महादेवी पार्वती ! पहले उँकारस्वरसे विभूषित शक्तिकी उत्पत्ति हुई । तत्पश्चात् बिन्दु 'उकार' स्वरमें परिणत हुआ । पुनः औंकारमें शब्द पैदा हुआ, जिससे 'उकार' का उद्भव हुआ । यह 'उकार' हृदयमें शब्द करता हुआ विद्यमान रहता है । 'अर्धचन्द्र' से मोक्ष-मार्गको बताने-

इनके समिक्षणसे बता हुआ तैल बहामें करनेवाला होता

एक सौ तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १२३ ॥

बाले 'इकार'का प्राकुर्भाव हुआ । तदनन्तर भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला अव्यक्त 'अकार' उत्पन्न हुआ । वही 'अकार' सर्वशक्तिमान् एवं प्रवृत्ति तथा निवृत्तिका बोधक है ॥ ७—१० ॥

(अब शरीरमें पाँचों स्वरोंका स्थान कह रहे हैं—) 'अ' स्वर शरीरमें प्राण अर्थात् श्वासरूपसे श्विर होकर विद्यमान रहता है । इसीका नाम 'इडा' है । 'इकार' प्रतिष्ठा नामसे रहकर रसरूपमें तथा पालक-स्वरूपमें रहता है । इसे ही 'पिङ्गला' कहते हैं । 'ई' स्वरको 'कूला शक्ति' कहते हैं । 'हर-बीज' (उकार) स्वर शरीरमें अभिनरूपसे रहता है । यही 'समान-बोधिका विद्या' है । इसे 'गान्धारी' कहते हैं । इसमें 'दहनारमिका' शक्ति है । 'एकार' स्वर शरीरमें जलरूपसे रहता है । इसमें शान्ति-क्रिया है तथा 'ओकार' स्वर शरीरमें वायुरूपसे रहता है । यह अपान, व्यान, उदान आदि पाँच स्वरोंमें होकर स्पर्श करता हुआ गतिशील रहता है । पाँचों स्वरोंका सम्मिलित सूक्ष्म रूप जो 'ओकार' है, वह 'शान्त्यतीत' नामसे बोधित होकर शब्द-गुणवाले आकाश-रूपमें रहता है । इस तरह पाँचों स्वर (अ, इ, उ, ए, ओ) हुए, जिनके स्वामी कम से मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि प्रह हुए । कक्षारादि वर्ण इन स्वरोंके नीचे होते हैं । ये ही संसारके मूल कारण हैं । इन्हींसे चराचर सब पदार्थोंका शान होता है ॥ ११—१४३ ॥

अब मैं विद्यापीठका स्वरूप बतलाता हूँ, जिसमें 'ओंकार' शिवरूपसे कहा गया है और 'उमा' स्वर्ण सोम अर्थात् अमृतरूपसे है । इन्हींको बामा, व्येष्ठा तथा रौद्री शक्ति भी कहते हैं । ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र—क्रमशः ये ही तीनों गुण हैं एवं सूषिके उत्पादक, पालक तथा संहारक हैं । शरीरके अंदर तीन रत्न नाड़ियाँ हैं, जिनका नाम स्वूल,

सुख देखा पर है । इनका देत वर्ण है । इनसे सदैव अमृत उपकरण रहता है, जिससे आत्मा सदैव आश्रित रहता है । इस प्रकार उसका दिन-रात ध्यान करते रहना चाहिये । देवि ! ऐसे साधकका शरीर अजर हो जाता है तथा उसे शिव-सायुज्यकी प्राप्ति हो जाती है । प्रथमतः अकृष्ण आदिमें, नेत्रोंमें तथा देहमें भी अकृष्ण्यासु करे, तत्प्रात् मृत्युज्यकी अर्चना करके यात्रा करनेवाला संग्राम आदिमें विजयी होता है । आकाश शून्य है, निगधार है तथा शब्द-गुणवाला है । बायुमें स्पर्श गुण है । वह तिरछा छुककर स्पर्श करता है । रूपकी अर्थात् अदिनिकी

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'युद्धजयार्णव-सम्बन्धी ज्योतिष शास्त्रका सार-कथन' नामक
एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

ऊर्जगति बतलवारी गयी है तथा जलकी अधोगति होती है । * सब खानोंको छोड़कर गन्ध-गुणवाली पृथ्वी मध्यमें रहकर सबके आधाररूपमें विद्यमान है ॥ १५—२० ॥

नाभिके मूलमें अर्थात् मेहदण्डकी जड़में कंदके त्वरूपमें श्रीशिवजी मुश्मोभित हैं । वर्हीपर शक्ति-समुदायके साथ सूर्य, चन्द्रमा तथा भगवान् विष्णु रहते हैं और पञ्चतन्मात्राओंके साथ दस प्रकारके प्राण भी रहते हैं । कालाशिनके समान देवीप्रमाणन वह शिवजीकी मूर्ति सदैव चमकती रहती है । वही चराचर जीवलोकका प्राण है । उस मन्त्रपीठके नष्ट होनेपर वायुस्वरूप जीवका नाश समझना चाहिये ॥ २१—२३ ॥

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

युद्धजयार्णव-सम्बन्धी अनेक प्रकारके चक्रोंका वर्णन

शक्तरजीने कहा—‘ॐ हीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहु-
दंशे हं, कट्, ॐ हः, ॐ प्रस प्रस, कृष्ण कृष्णचक्र चक्र
हं, कट् नमः ।’ इस मन्त्रका नाम ‘कर्णमोटी महाविद्या’
है । यह सभी वर्णोंमें रक्षा करनेवाली है । इस मन्त्रको केवल
पढ़नेसे ही मनुष्य क्रोधविह हो जाता है तथा उसके नेत्र
लाल हो जाते हैं । यह मन्त्र भारण, पातन, मोहन एवं
उच्चाटनमें उपयुक्त होता है ॥ १-२ ॥

अब स्वरोदयके साथ पाँच प्रकारके वायुका ख्यान तथा
उसका प्रयोगन कहता हूँ । नाभिते लेकर हृदयतक जो
वायुका संचार होता रहता है, उसको ‘मारुतचक्र’ कहते
हैं । जप तथा होम-कार्यमें लगा हुआ क्रोधी साधक उससे
संग्रामादि कार्योंमें उच्चाटन-कर्म करता है । कानसे लेकर
नेत्रतक जो वायु है, उससे प्रमेदन-कार्य करे एवं हृदयसे
मुदामार्गतक जो वायु है, उससे व्वर-दाह तथा शत्रुओंका
मारण-कार्य करना चाहिये । इसी वायुका नाम ‘वायुचक्र’
है । हृदयसे लेकर कण्ठतक जो वायु है, उसका नाम ‘रस’
है । ऐसे ही ‘रसचक्र’ कहते हैं । उससे शान्तिका प्रयोग
किया जाता है तथा पौष्टिक रसके समान उसका गुण है ।
भौंहसे लेकर नाणिकाके अग्रभागतक जो वायु है, उसका नाम
‘दिव्य’ है । ऐसे ही ‘सेवचक्र’ कहते हैं । गन्ध इधका गुण

है तथा इससे स्तम्भन और आकर्षण-कार्य होता है ।
नाणिकाघमें मनको स्थिर करके साधक निस्तंदेह स्तम्भन
तथा कीलन कर्म करता है । उपर्युक्त वायुचक्रमें चण्ड-
घटा, करली, सुमुखी, दुर्मुखी, देवती, प्रथमा तथा घोरा—
इन शक्तियोंका अर्चन करना चाहिये । उच्चाटन करनेवाली
शक्तियाँ तेजश्चक्रमें रहती हैं । सौम्या, भीमणी, देवी, जया,
विजया, अजिता, अपराजिता, महाकोटी, महारौद्री, शुक्र-
काया, प्राणहरा—ये ग्यारह शक्तियाँ रसचक्रमें रहती
हैं ॥ ३—९२ ॥

विलपाक्षी, परा, दिव्या, ११ आकाश-मातृकाएँ,
संहारी, जातहारी, दंडाला, शुष्करेवती, पिण्डिका, पुष्टिरा,
महापुष्टि, प्रवर्धना, भद्रकाली, सुभद्रा, भद्रभीमा, सुभद्रिका,
स्थिरा, निष्ठुरा, दिव्या, निष्कम्पा, गदिनी और देवती—ये
वृत्तीय मातृकाएँ कहे हुए चारों चक्रों (मारुत, वायु,
रस, दिव्य) में आठ-आठके क्रमसे स्थित रहती हैं ॥ १०—१२२ ॥

सूर्य तथा चन्द्रमा एक ही है तथा उनकी शक्तियाँ
भी भूतभेदसे एक-एक ही हैं । जैसे भूतलभर नदीके जलकी
ख्यानभेदसे ‘तीर्थ’ संक्षा हो जाती है, शरीरके अस्थिपुङ्करमें
रहनेवालम एक ही प्राण कर्द मण्डलों (चक्रों) से विभक्त

* यह ख्यान इस अध्यायके पूर्व अध्यायमें ‘स्वरचक्रके अन्वयत आ गया है ।

हो जाता है। जैसे वाम तथा दक्षिण अङ्गके योगसे वही वायु दृश्य प्रकारका हो जाता है, जैसे ही वही वायु तत्त्वलघु वस्त्रमें छिपकर विचित्र विन्दुरूपी मुण्डके द्वारा कपालरूपी ब्रह्माण्डके अमृतका पान करता है॥ १३—१५॥

अब पञ्चवर्गके बलसे जिस प्रकार युद्धमें विजय होती है, उसे सुनो—‘अ, आ, क, च, ठ, त, प, थ, श’—यह प्रथम वर्ग कहा गया है। ‘ए, ई, ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष’—यह द्वितीय वर्ग है। ‘उ, ऊ, ग, ज, ड, द, ब, ल, स’—यह तृतीय वर्ग है। ‘ए, ऐ, घ, झ, ध, भ, व, ह’—यह चौथा वर्ग है। ‘ओ, औ, अं, अः, क, अ, ण, न, म’—यह पञ्चम वर्ग है। ये पाँतलीस अक्षर मनुष्योंके अभ्युदयके लिये हैं। इन वर्गोंके क्रमसे बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत्यु—ये पाँच नाम हैं॥ १६—१९॥

[अब तिथि, वार और नक्षत्रोंके योगसे कालशानका वर्णन करते हैं—] आत्मपीड़, होणक, उदासीन—ये तीन प्रकारके काल होते हैं। मङ्गलवारको प्रतिपदा तिथि तथा कृतिका नक्षत्र होते हैं तो वे प्राणीके लिये लाभदायक होते हैं। मङ्गलवारको पांची तिथि तथा मध्या नक्षत्र होते हैं तो पीढ़ीकारक होते हैं। मङ्गलवारको एकादशी तिथि और आद्री नक्षत्र होते हैं तो वे मृत्युदायक होते हैं। बुधवार, द्वितीया तिथि तथा मध्या नक्षत्रका योग एवं बुधवार, सप्तमी तिथि और आद्री नक्षत्रका योग लाभदायक होते हैं। बुधवार और भरणी नक्षत्रका योग हानिकारक होता है। इसी प्रकार बुधवार तथा अवग नक्षत्रके योगमें ‘काल-योग’ होता है। शुक्रवार, तृतीया तिथि और पूर्वापल्लुनी नक्षत्रका योग लाभकारक होता है। शुहस्तिवार, अष्टमी तिथि, धनिष्ठा तथा आद्री नक्षत्र एवं गुरुवार, ग्रयोददी तिथि, आश्वेषा नक्षत्र—ये योग मृत्युकारक होते हैं। शुक्रवार, चतुर्थी तिथि और पूर्वभाद्रपदा नक्षत्रका योग भीषुद्धि करता है। शुक्रवार, नवमी तिथि और पूर्वापादा नक्षत्र—यह योग दुःखप्रद होता है। शुक्रवार द्वितीया तिथि और भरणी नक्षत्रका योग यमदण्डके समान हानिकर होता है। शनिवार, पञ्चमी तिथि और कृतिका नक्षत्रका योग स्त्रामके लिये कहा गया है। शनिवार, दशमी तिथि और आश्वेषा नक्षत्रका योग पीढ़ीकारक होता है। शनिवार, पूर्णिमा तिथि और मध्या नक्षत्रका योग मृत्युकारक कहा गया है॥ २०—२६॥

[अब दिशा-तिथि-दिनके योगसे हानि-लाभ कहते हैं—] पूर्व, उत्तर अग्नि, नैऋत्य, विशेष, वायव्य, पश्चिम, देशान्तर—ये इनमें से एक वृत्तरेतों देखते हैं। प्रतिपदा तथा नवमी आदि तिथियोंमें मेषादि राशियोंके साथ ही रवि आदि वारको भी मिलाये। यह योग कार्य-सिद्धिके लिये होता है। जैसे पूर्व दिशा, प्रतिपदा तिथि, मेष लग्न, रविवार—यह योग पूर्व दिशाके लिये युद्ध आदि कार्योंमें सिद्धिदायक होता है। ऐसे और भी समझने चाहिये। मेषसे चार राशियाँ अर्धात् मेष, वृश्च, मिथुन, कर्ण एवं कुम्भ—ये लग्न पूर्ण विजयके लिये होते हैं। शूर्यादि यह तथा रित्ता, पूर्णा आदि तिथियोंका इसी तरह क्रमशः न्यास करना चाहिये, जैसा कि पहले दिशाओंके साथ कहा गया है। सूर्यके सम्बन्धसे युद्धमें कोई उत्तम फल नहीं होता। सौमका सम्बन्ध संधिके लिये होता है। भङ्गलके सम्बन्धसे कलह होता है। बुधके सम्बन्धसे संग्राम करनेसे अभीष्ट-साधनकी प्राप्ति होती है। गुरुके सम्बन्धसे विजयलाभ होता है। शुक्रके सम्बन्धसे अभीष्ट सिद्ध होता है एवं शनिके सम्बन्धसे युद्धमें पराजय होती है॥ २७—३०॥

[रिङ्गला (पक्षि)-चक्रसे शुभाशुभ कहते हैं—] एक पक्षीका आकार लिखकर उसके मुख, नेत्र, ललाट, चिर, हस्त, कुक्षि, चरण तथा पंखमें सूर्यके नक्षत्रसे तीन-तीन नक्षत्र लिखे। पैरवाले तीन नक्षत्रोंमें रण करनेसे मृत्यु होती है तथा पंखवाले तीन नक्षत्रोंमें धनका नाश होता है। मुखवाले तीन नक्षत्रोंमें पीढ़ा होती है और चिरवाले तीन नक्षत्रोंमें कार्यका नाश होता है। कुक्षिवाले तीन नक्षत्रोंमें रण करनेसे उत्तम फल होता है॥ ३१—३२॥

[अब राहु-चक्र कहते हैं—] पूर्वसे नैऋत्यकोणतक, नैऋत्यकोणसे उत्तर दिशातक, उत्तर दिशासे अग्निकोणतक, अग्निकोणसे पश्चिमतक, पश्चिमसे ईशानतक, ईशानसे दक्षिणतक, दक्षिणसे वायव्यकोणतक, वायव्यकोणसे उत्तरतक चार-चार दण्डतक राहुका भ्रमण होता है। राहुको पृथ्वी और रस्तकर रण करना विजयप्रद होता है तथा राहुके सम्मुख रहनेसे मृत्यु हो जाती है॥ ३३—३४॥

प्रिये ! मैं तुमसे अब तिथि-राहुका वर्णन करता हूँ। पूर्णिमाके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे अग्निकोणसे लेकर ईशानकोणतक अर्धात् कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथितक राहु पूर्व

दिशामें रहता है। उसमें युद्ध करनेसे जब होती है। इसी तरह ईशानसे अग्निकोणतक और नेतृत्वयोगसे वायव्यकोणतक दातुका भ्रमण होता रहता है। मेषादि राशियोंको पूर्वादि दिशामें रखना चाहिये। इस तरह रखनेपर मेष, सिंह, धनु राशियाँ पूर्वमें; बृष्ट, कन्या, मकर—ये दक्षिणमें; मिथुन, तुल, कुम्भ—ये पश्चिममें; कर्क, वृश्चिक, मीन—ये उत्तरमें हो जाती हैं। सूर्यकी राशियोंसे सूर्यकी दिशा जानकर सम्मुख सूर्यमें रण करना मुत्युकारक होता है॥ ३५-३७॥

[भद्राकी लिथिका निर्णय बताते हैं—] कृष्णपक्षमें तृतीया, सप्तमी, दशमी तथा चतुर्दशीको 'भद्रा' होती है। शुक्लपक्षमें चतुर्थी, एकादशी, अष्टमी और पूर्णिमाको 'भद्रा' होती है। भद्राका निवास अग्निकोणसे वायव्यकोणतक रहता है। अ, क, च, ट, त, प, य, श—ये आठ वर्ग होते हैं, जिनके स्वामी क्रमसे सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, युध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु ग्रह होते हैं। इन ग्रहोंके वाहन क्रमसे एष्ट्र, उलूक, बाज, पिङ्गल, कौशिक (उलूक), सारस, मयूर, गोरक्ष नामके पक्षी हैं। पहले हवन करके मन्त्रोंको सिद्ध कर लेना चाहिये। उच्चाटनमें मन्त्रोंका प्रयोग पहलवर्षसे करना चाहिये॥ ३८-४०॥

वश्य, ज्वर एवं आकर्षणमें पहलवर्षका प्रयोग सिद्धिकारक होता है। जान्ति तथा मोहन-प्रयोगोंमें 'नमः' कहना ठीक होता है। पुष्टिमें तथा वशीकरणमें 'वौषट्' एवं भारण तथा प्रीतिविनाशके प्रयोगमें 'हुम्' कहना ठीक होता है। विद्वेषण तथा उच्चाटनमें 'फट्' कहना चाहिये। पुष्ट्रादि-प्रासिके प्रयोगमें तथा दीसि आदिमें 'वृषट्' कहना चाहिये। इस तरह मन्त्रोंकी छः जातियाँ होती हैं॥ ४१-४२॥

अब हर तरहसे रक्षा करनेवाली ओषधियोंका वर्णन करूँगा—महाकाली, चण्डी, वाराही (वाराहीकंद), ईश्वरी, सुदर्शना, इन्द्राणी (सिंधुवार)—इनको शरीरमें धारण करनेसे ये धारककी रक्षा करती हैं। बला (कुट), अतिबला (कंधी), भीर (शालावरी अथवा कंटकारी), मुसली (ताल्मूली), सहदेवी, जाती(बगेली), महिला (मोतिया), यूथी (जूही), गारडी, घड़राज

(भट्टकट्टैया), चक्रलय—ये महोषधियाँ धारण करनेसे युद्धमें विजयदायिनी होती हैं। महादेवि ! ग्रहण लगानेपर पूर्वोक्त ओषधियोंका उत्ताइना शुभदायक होता है॥ ४३-४६॥

हाथीकी सर्वाङ्गसम्पन्न मिट्टीकी मूर्ति बनाकर, उसके पैरके नीचे शत्रुके स्वरूपको रखकर, स्तम्भन-प्रयोग करना चाहिये। अथवा किसी पर्वतके ऊपर, जहाँपर एक ही वृक्ष हो, उसके नीचे, अथवा जहाँपर विजली गिरी हो, उस प्रदेशमें, वस्त्रीककी मिट्टीसे एक खीकी प्रतिकृति बनाये। फिर 'ॐ नमो महाभैरवाय विकृतदंश्वोभ्रूपाय पिंगलाक्षाय त्रिशूलदण्डधराय वीष्टद्' है देवि ! इस मन्त्रसे उस मृत्तिकामयी देवीकी पूजा करके (शत्रुके) शास्त्रसमूहका स्तम्भन करना चाहिये॥ ४७-४९॥

अब संग्राममें विजय दिलानेवाले अग्निकार्यका वर्णन करूँगा—रातमें इमशानमें जाकर नंग-धड़ग, शिखा खोलकर, दक्षिणमुख बैठकर जलती हुई चितामें मनुष्यका मांस, घधिर, चिप, भूसी और हड्डीके टुकड़े मिलाकर नीचे लिखे मन्त्रसे आठ सौ बार शत्रुका नाम लेकर हवन करे—'ॐ नमो भगवति कौमारि लळ लळ लालय लालय वषट्कावेदि ! अमुकं मारय मारय सहस्रा नमोऽस्तु ते भगवति विष्णे स्वाहा !'—इस विद्रासे हवन करनेपर शानु अंधा हो जाता है॥ ५०-५३॥

[सब प्रकारकी सफलताके लिये हनुमानजीकी मन्त्र कहते हैं—] 'ॐ वश्रकाय वश्रतुष्टु कपिलपिङ्गल कराल-वद्वनोऽवंकेवा महाबल रक्षमुख तदिजिह्वा महारौद्र दंश्वोत्कट कटकरालिन् महारूढप्रहार लळेवस्तेतुबृक्ष शैलप्रवाह गगनवर, एषोहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवो श्वापवसि, एषोहि महारौद्र दीर्घलाङ्गुलेन अमुकं वेष्टय वेष्टय अम्भय अम्भय लग लग बैते हैं फट्' देवि ! इस मन्त्रको ३८०० बार जप कर लेनेपर श्रीहनुमानजी सब प्रकारके कार्योंको सिद्ध कर देते हैं। कपड़ेपर हनुमानजीकी मूर्ति लिखकर दिलानेसे शत्रुओंका विनाश होता है॥ ५४-५५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गुद्धजर्णव-सम्बन्धी' विविध चक्रोंका वर्णन नामक एक सौ एव्वेसवाँ अन्याय पूरा हुआ॥ १२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

नक्षत्र-सम्बन्धी पिण्डका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—देवि ! अब मैं प्राणियोंके शुभाशुभ फलकी जानकारीके लिये नाक्षत्रिक पिण्डका वर्णन करूँगा । [जिस राजा या मनुष्यके लिये शुभाशुभ फलका शान करना हो, उसकी प्रतिकृतिरूपसे एक मनुष्यका आकार बनाकर] सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे तीन नक्षत्र उसके मस्तकमें, एक मुखमें, दो नेत्रोंमें, चार हाथ और पैरोंमें, पाँच हृदयमें और पाँच जानुमें लिखकर आयु-दृष्टिका विचार करना चाहिये । सिरवाले नक्षत्रोंमें संग्राम (कार्य) करनेसे राज्यकी प्राप्ति होती है । मुखवाले नक्षत्रमें सुख, नेत्रवाले नक्षत्रोंमें सुन्दर सौभाग्य, हृदयवाले नक्षत्रोंमें द्रव्यसंग्रह, हाथवाले नक्षत्रोंमें चोरी और पैरवाले नक्षत्रोंमें मार्गमें ही मृत्यु—इस तरह क्रमशः फल होते हैं ॥ १-३३ ॥

[अब 'कुम्भ-चक्र' कह रहे हैं—] आठ कुम्भको पूर्वादि आठ दिशाओंमें स्थापित करना चाहिये । प्रत्येक कुम्भमें तीन-तीन नक्षत्रोंकी स्थापना करनेपर आठ कुम्भोंमें चौबीस नक्षत्रोंका निवेश हो जानेपर चार नक्षत्र शेष रह जायेंगे । इन्द्र ही 'सूर्य-कुम्भ' कहते हैं । यह सूर्यकुम्भ अशुभ होता है । शेष पूर्वादि दिशाओंवाले कुम्भ-सम्बन्धी नक्षत्र शुभ होते हैं । [इसका उपयोग नाम-नक्षत्रसे दैनिक नक्षत्रतक गिनकर उसी संख्यासे करना चाहिये ।] ॥ ४४ ॥

अब मैं संग्राममें जय-पराजयका विवेक प्रदान करनेवाले सर्पाकार राहु-चक्रका वर्णन करता हूँ ।

प्रथम अढाईस बिन्दुओंको लिखे, उसमें तीन-तीनका विभाग कर दें, इस तरह आठ विभाग कर देनेपर चौबीस नक्षत्रोंका निवेश हो जायगा । चार शेष रह जायेंगे । उसपर रेखा करे । इस तरह करनेपर 'सर्पाकार चक्र' बन जायगा । जिस नक्षत्रमें राहु रहे, उसको उसके कागमें

लिखे । उसके बाद उसी नक्षत्रसे प्रारम्भ करके क्रमशः सत्ताईस नक्षत्रोंका निवेश करे ॥ ५-७ ॥



[सर्पाकार राहु-चक्रका फल—] मुखवाले सात नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे मरण होता है, स्फन्दवाले सात नक्षत्रोंमें युद्ध करनेसे पराजय होती है, पेटवाले सात नक्षत्रोंमें युद्ध करनेसे सम्मान तथा विजयकी प्राप्ति होती है, कटिवाले नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे शत्रुओंका हरण होता है, पुच्छवाले नक्षत्रोंमें संग्राम करनेसे कीर्ति होती है और राहु-से हृष्ट नक्षत्रमें संग्राम करनेसे मृत्यु होती है । इसके बाद किर सूर्यसे राहुतक ग्रहोंके बलका वर्णन करूँगा ॥ ८-१० ॥

[अर्धयामेशका वर्णन करते हैं—] जैसे चार प्राहरका एक दिन होता है तो एक दिनमें आठ अर्धप्राहर होते हैं । यदि दिनमान बत्तीस दण्डका हो तो एक अर्ध प्राहरका मान चार दण्डका होगा । दिनमान-प्रमाणमें आठसे भाग देनेपर जो लंबिध होती, वही एक अर्धप्राहरका मान होता है । रवि आदि सात वारोंमें प्रत्येक अर्धप्राहरका कौन ग्रह स्वामी होगा—इसपर विचार करते हुए केवल रविवारके दिन प्रत्येक अर्धप्राहरके स्वामियोंको बता रहे हैं । जैसे रविवारमें एकसे लेकर आठ अर्धप्राहरोंके स्वामी क्रमशः सूर्य, शुक्र, बुध, सोम, शनि, गुरु, मङ्गल और राहु ग्रह होते हैं । [इनमें जिस विभागका स्वामी शनि होता है, वह समय शुभ कार्योंमें स्थान्य है और उसे ही 'वारवेल' कहते हैं ।]

[विशेष-रविवारके अर्धयामेशोंको देखनेसे वह अनुमान होता है कि रविवारके अतिरिक्त जिस दिनका अर्धयामेश

जानना हो तो प्रथम अर्धयामेश से दिनपति ही होगा और वादके अर्धयामोंके स्वामी छः संख्यावाले ग्रह होंगे। इसी आधारपर रविवारसे लेकर शनिवारतकके अर्धयामोंके स्वामी नीचे चक्रमें दिये जा रहे हैं—

वार	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०
४ दण्ड	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०
४ दण्ड	शु०	श०	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०
४ दण्ड	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०	मं०
४ दण्ड	सू०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०
४ दण्ड	श०	सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०
४ दण्ड	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०	मं०	बु०
४ दण्ड	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	सू०	चं०
४ दण्ड	रा०						

शनि, सूर्य तथा राहुको थलसे पीठ पीछे करके जो संग्राम करता है, वह सैन्यसमुदायपर विजय प्राप्त करता है तथा जुआ, मार्ग और युद्धमें सफल होता है ॥ ११-१२ ॥

[नक्षत्रोंकी स्थिरादि संक्षा तथा उसका प्रयोजन कहते हैं—] रोहिणी, तीनों उत्तराय়, मृगशिरा—इन पाँच नक्षत्रोंकी 'स्थिर' संक्षा है । अद्विनी, रेती, स्वाती, धनिष्ठा,

* प्रत्येक दिनकी अर्धयामेश-संख्या आठ है तथा दिनपति रविसे लेकर शनितक सात ही है । अतः आठवें अर्धयामको अन्नात्मरोमें 'निरीश' माना गया है । जैसे—

रविवारादिशब्दन् शुक्रिदिविक्ष्यते ।

अहमाद्यो निरीशः स्याच्छब्दन्ते शुक्रः सूतः ॥

किं वहौ अन्नात्मरोमें प्रतिदिन रुहुको अहमाद्यम् स्वामी मान रहे हैं—वह विदेश वात है ।

शतमिश्र—इन पाँचों नक्षत्रोंकी 'स्थिर' संक्षा है । इनमें यात्रार्थीको यात्रा करनी चाहिये । अनुराधा, हस्त, मूल, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु—इनमें प्रत्येक कार्य हो सकता है । ज्येष्ठा, चित्रा, विशाखा, तीनों पूर्वाएँ, कृतिका, भरणी, मघा, आर्द्धा, आश्लेषा—इनकी 'दारण' संक्षा है । स्थिर कार्यमें स्थिर संशाले नक्षत्रोंको लेना चाहिये । यात्रामें 'स्थिर' संक्षक नक्षत्र उत्तम माने गये हैं । 'मूल' संक्षक नक्षत्रोंमें सौभाग्यका काम तथा 'उग्र' संक्षक नक्षत्रोंमें उग्र काम करना चाहिये । 'दारण' संक्षक नक्षत्र दारण (भयानक) कामके लियं उपयुक्त होते हैं ॥ १३-१६ ॥

[अब अधोमुख, तिर्यक्मुख आदि नक्षत्रोंका नाम तथा प्रयोजन कहता हूँ—] कृतिका, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, मघा, मूल, तीनों पूर्वाएँ—ये अधोमुख नक्षत्र हैं । इनमें अधोमुख कर्म करना चाहिये । उदाहरणार्थ कृष्ण, तड़ाग, विद्याकर्म, चिकित्सा, स्थापन, नौका-निर्माण, कूपोंका विधान, गढ़ा खोदना आदि कार्य इन्हीं अधोमुख नक्षत्रोंमें करना चाहिये । रेती, अद्विनी, चित्रा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, ज्येष्ठा—ये नौ नक्षत्र तिर्यक्मुख हैं । इनमें राज्याभिषेक, हाथी तथा घोड़ेको पटा बाँधना, बाग लगाना, गृह तथा प्रासादका निर्माण, प्राकार बनाना, क्षेत्र, तोरण, घ्वजा, पताका लगाना—इन सभी कार्योंको करना चाहिये । रविवारको द्वादशी, शोभावारको एकादशी, मङ्गलवारको दशमी, बुधवारको द्वृतीया, वृहस्पतिवारको षष्ठी, शुक्रवारको द्वितीया, शनिवारको सप्तमी हो तो 'दग्धयोग' होता है ॥ १७-२३ ॥

[अब श्रिपुष्कर योग बतलाते हैं—] द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी—तीन तिथियाँ तथा रवि, मङ्गल, शनि—तीन वार—ये छः 'श्रिपुष्कर' हैं तथा विशाखा, कृतिका, दोनों उत्तरायँ, पुनर्वसु, पूर्वाभाद्रपदा—ये छः नक्षत्र भी 'श्रिपुष्कर' हैं । अर्थात् रवि, शनि, मङ्गलवारोंमें द्वितीया, सप्तमी, द्वादशीमें सोई तिथि हो तथा उपर्युक्त नक्षत्रोंमें सोई नक्षत्र हो तो 'श्रिपुष्कर-योग' होता है । श्रिपुष्कर योगमें लाभ, हानि, विजय, शुद्धि, पुत्रजन्म, वस्तुओंका नष्ट एवं विनष्ट होना—ये सब श्रिपुष्कर हो जाते हैं ॥ २४-२६ ॥

[अब नक्षत्रोंमें स्वप्न, मध्याह्न, मन्दाह्न और अन्धाह्न संज्ञा तथा प्रयोजन कहते हैं—] अविनी, भरणी, आश्लेषा, पुष्य, स्वाती, विशाखा, अवण, पुनर्वंश—ये हृद नेत्रवाले नक्षत्र हैं और दसों दिवाओंको देखते हैं। (इनकी संज्ञा 'प्लान' है।) इनमें गयी हुई वस्तु तथा यात्रामें गया हुआ व्यक्ति विशेष पुष्यके उदय होनेपर ही लैटते हैं। दोनों आशाह नक्षत्र, रेती, चित्रा, पुनर्वंश—ये पाँच नक्षत्र 'केकर' हैं, अर्थात् 'मध्याह्न' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु विलम्बसे मिलती है। इतिका, रेतिनी, मूरगाधिरा, पूर्वां-फाल्गुनी, मधा, मूल, च्येष्ठा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वां-भाद्रपदा—ये नक्षत्र 'चिपिटाका' अर्थात् 'मन्दाह्न' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु तथा मार्ग चलनेवाला व्यक्ति कुछ ही विलम्बमें लैट आता है। हस्त, उत्तराभाद्रपदा, आद्रां,

पूर्वांशु—ये नक्षत्र 'अन्धाह्न' हैं। इनमें गयी हुई वस्तु विलम्बसे मिलती है, कोई संग्राम नहीं करना पड़ता। ३४-३५।

अब नक्षत्रोंमें स्थित 'गण्डान्त'का निष्पत्ति करता है—रेतीके अन्तके चार दण्ड 'और अविनीके अन्तिके चार दण्ड 'पाण्डान्त' होते हैं। इन दोनों नक्षत्रोंका एक प्रहर शुभ कार्यमें प्रयत्नशूलक त्याग देना चाहिये। आश्लेषाके अन्तका तथा मधा के आदिके चार दण्ड 'हितीय गण्डान्त' कहे गये हैं। पैरवि। अब 'हितीय गण्डान्त'को मुनो—ज्येष्ठा तथा मूलके बीचका एक प्रहर बहुत ही भयानक होता है। यदि व्यक्ति अपना जीवन चाहता हो तो उसे इस कालमें कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिये। इस समयमें यदि भालक पैदा हो तो उसके माता-पिता जीवित नहीं रहते। ३६-३७।

इस प्रकार आदि आवेद्य महापुराणमें 'नक्षत्रोंके निर्णयका प्रतिशादन' नममक एक सौ छव्वीसवाँ अध्याय पूरा हुआ। १२६।

एक सौ सत्तार्हसवाँ अध्याय

विभिन्न बलोंका वर्णन

'शंकरजी कहते हैं—'विष्णुम् योग'की तीन वहियाँ, 'शूल योग'की पाँच 'पाण्ड' तथा 'अतिपाण्ड योग'की छः, 'व्याघ्रात' तथा 'व्यज्र योग'की नी वहियोंको सभी शुभ कार्यमें त्याग देना चाहिये। 'परिष्ठ', 'व्यतीपात' और 'वैष्णवि' योगोंमें पूरा दिन त्याव्य बतलाया गया है। इन योगोंमें यात्रा-युद्धादि कार्य नहीं करने चाहिये। १-२।

देखि। अब मैं मेषादि राशियोंके द्वारा शुभाशुभका निर्णय बताता हूँ—जन्म-राशिये चन्द्रमा तथा शुक्र वर्जित होनेपर ही शुभदायक होते हैं। जन्म-राशि तथा लघुरे दूसरे स्थानमें सूर्य, शनि, राहु अथवा मङ्गल हो तो प्रात् द्रव्यका नाश और अग्रासका अलाभ होता है तथा युद्धमें पराजय होती है। चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र—ये दूसरे स्थानमें शुभप्रद होते हैं। सूर्य, शनि, मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, राहु—ये तीसरे चरमें हो तो शुभ फल देते हैं। बुध, शुक्र चौथे भावमें हो तो शुभ तथा शेष ग्रह भयदायक होते हैं। बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्रमा—ये पात्रम् भावमें हो तो अभीष्ट लभकी प्राप्ति करते हैं। देखि। अपनी राशिये छठे भावमें सूर्य, चन्द्र, शनि, मङ्गल, बुध—ये ग्रह शुभ-फल देते हैं; छिठु छठे भावका शुक्र तथा गुरु शुभ नहीं होता। सप्तम भावके सूर्य, शनि, मङ्गल, राहु हानिकारक

होते हैं तथा बुध, गुरु, शुक्र सुखदायक होते हैं। अष्टम भावके बुध और शुक्र—शुभ तथा शेष ग्रह हानिकर होते हैं। नवम भावके बुध, शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। दशम भावके शुक्र, सूर्य लाभकर होते हैं तथा शनि, मङ्गल, राहु, चन्द्रमा-बुध शुभकारक होते हैं। ग्यारहवें भावमें प्रत्येक ग्रह शुभ फल देता है, परंतु दसवें बृहस्पति त्याज्य है। द्वादश भावमें बुध-शुक्र शुभ तथा शेष ग्रह अशुभ होते हैं। एक दिन-रातमें द्वादश राशियाँ भोग करती हैं। अब मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ। ३-१२।

[राशियोंका भोगकाल एवं चरादि संज्ञा तथा प्रयोजन कह रहे हैं—] भीन, मेष, मिशुन—इनमें प्रत्येकके चार दण्ड; शूष, कर्क, सिंह, कन्या—इनमें प्रत्येकके छः: दण्ड; तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ—इनमें प्रत्येकके पाँच दण्ड भोगकाल हैं। सूर्य जिस राशियें रहते हैं, उसीका उदय होता है और उसी राशिये से अन्य राशियोंका भोगकाल प्रारम्भ होता है। मेषादि राशियोंकी क्रमशः 'चर', 'हितर' और 'द्विस्त्र-भाव' संज्ञा होती है। जैसे—मेष, कर्क, तुला, मकर—इन राशियोंकी 'चर' संज्ञा है। इनमें शुभ तथा अशुभ अस्थायी कार्य करने चाहिये। शूष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ—इन

राशियोंकी 'स्त्रिय' संका है। इनमें स्थानी कार्य करना चाहिये। इन स्थानोंमें बाहर गये हुए क्षतिक्षेत्रों समागम नहीं होता तथा रोगीको शीघ्र रोगसे मुकि नहीं प्राप्त होती। भिषुन, कन्या, धनु, मीन—इन राशियोंकी 'द्विस्वभाव' संका है। ये द्विस्वभावसंबंधक राशियाँ प्रस्तेक कार्यमें शुभ फल देनेवाली हैं। इनमें यात्रा, व्यापार, संग्राम, विवाह,

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न बलोंका वर्णन' नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

एक सौ अट्टाईसवाँ अध्याय

कोटचक्रका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—अब मैं 'कोटचक'का वर्णन करता हूँ—पहले चतुर्भुज लिखे, उसके भीतर दूसरा चतुर्भुज, उसके भीतर तीसरा चतुर्भुज और उसके भीतर चौथा चतुर्भुज लिखे। इस तरह लिख देनेपर 'कोटचक' बन जाता है। कोटचकके भीतर तीन मेलाऊँ बनती हैं, जिनका नाम क्रमसे प्रथम नाहीं, प्रथ्यनाहीं और 'अन्त-नाहीं' है। कोटचकके ऊपर पूर्वादि दिशाओंको लिखकर मेषादि राशियोंको भी लिख देना चाहिये। [कोटचकमें नक्षत्रोंका न्याय कहते हैं—] पूर्व भागमें कृतिका, अग्निकोण-में आशेशा, दक्षिणमें मध्य, नैऋत्यमें विशाखा, पश्चिममें अनुराशा, बायुकोणमें अष्टम, उत्तरमें धनिष्ठा, ईशानमें भरणीको किले। इस तरह लिख देनेपर बाई नाहींमें अर्थात् प्रथम नाहींमें आठ नक्षत्र हो जायेंगे। इसी तरह पूर्वादि दिशाओंके अनुसार रोहिणी, पुष्य, पूर्वाक्षाल्युनी, स्थाती, ऋष्णा, अभिजित, शतभिता, अश्विनी—ये आठ नक्षत्र मध्यनाहींमें हो जाते हैं। कोटके भीतर जो अन्तनाहीं है, उसमें भी पूर्वादि दिशाओंके अनुसार पूर्वमें मुग्धिया, अग्निकोणमें पुनर्वद्धु, दक्षिणमें उत्तराफल्युनी, नैऋत्यमें विज्ञा, पश्चिममें मूल, वायुमें उत्तराशादा, उत्तरमें पूर्वाभ्यु-पदा और ईशानमें रेतीको किले। इस तरह लिख देनेपर अन्तनाहींमें भी आठ नक्षत्र हो जाते हैं। आर्द्ध, दक्ष, पूर्वाक्षाल्या तथा उत्तराभ्युपदा—ये चार नक्षत्र कोटचकके

एवं राजदर्शन होनेपर हृदि, जब तथा ज्ञान होते हैं और युद्धमें विजय होती है। अश्विनी नक्षत्रकी बीस ताराएँ हैं और बोडेके समान उल्का आकार है। यदि इसमें वर्षा हो तो एक राततक घनघोर वर्षा होती है। यदि भरणीमें वर्षा आरम्भ हो तो पंद्रह दिनतक लगातार वर्षा होती रहती है ॥ १३-१९ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'विभिन्न बलोंका वर्णन' नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

मध्यमें साम्य होते हैं।* इस तरह चक्रको किला देनेपर बाहरका खान द्विशाके स्थानियोंका होता है। आग्नेय योद्धा जिस दिशामें जो नक्षत्र है, उसी नक्षत्रमें उसी दिशाले कोटमें यदि प्रवेश करता है तो उसकी विजय होती है। कोटके बीचमें जो नक्षत्र हैं, उन नक्षत्रोंमें जब शुभ ग्रह आये, तब युद्ध करनेसे मध्यवालेकी विजय तथा चढ़ाई करनेवालेकी पराजय होती है। प्रवेश करनेवाले नक्षत्रमें प्रवेश करना तथा निर्गमनवाले नक्षत्रमें निकलना चाहिये। शुक्र, मङ्गल और बुध—ये जब नक्षत्रके अन्तमें रहें, तब यदि

* जाहाँ इस्तम्भाशादा युर्सुभ्रभाष्टकम् ।

मन्त्रे सम्भवतुष्टु तु दशाद् कोटेष्व कोटरे ॥

(अश्विनी १२८ । ९)

अन्यनक्षत्रमें भी ऐसा ही वर्णन है।

'भूषितज्ज्युष्मी' नामक ग्रन्थमें सम्भवतुरस कोटचकके प्रकरणमें २३५ श्लोकमें सम्भ-चतुर्ष्टका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पूर्वै रौद्रं बने इत्तं पूर्वांशाच च वाशो ।

क्षतरे चोत्तराशाद—पश्चात् सम्भचतुर्ष्टम् ॥

+ दिशाओंके स्थानियोंके किले रामाचार्दं 'मुहूर्त-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थके वाल-प्रस्तरमें लिखते हैं—

दर्शः सितो भूमिक्षुतोऽप्य राहुः शनिः शनी इव दूरस्तितिष्ठ ।

प्राप्त्यादितो दिशु विरिषु चापि दिशामधीशः क्रमतः प्रदिशः ॥

(११ । ४७)

पूर्वके दर्श, अग्निकोणके शुक्र, दक्षिणके मङ्गल, नैऋत्यके राहु,

युद्ध आरम्भ किया जाय तो आक्रमणकारीकी पराजय होती है । प्रवेशकों द्वारा नक्षत्रोंमें यदि युद्ध होता जाय तो वह उर्ग बदलमें हो जाता है—इसमें कोई आश्वर्यकी वात नहीं है ॥ १-१३ ॥ [विसेष—प्रथम नालीके आठ नक्षत्र दिशाके नक्षत्र हैं, उन्होंको 'वाला' भी कहते हैं । सच्च तथा अन्त नालीबाले नक्षत्रोंको कौटके सम्बन्धका समानाना कहते हैं ।]

इस प्रकार आदि आज्ञेय महापुराणमें 'कोटचक्रका वर्णन' नामक एक सौ अन्तर्गत वर्णन अव्याप्त पूरा दृष्टि ॥ १३८ ॥

परिवर्तन के शर्ति, वायव्यके चलन्, उत्तरके द्वारा, इशानके प्राप्तस्ति—इस प्रकार कलमः दिल्लीजोके सामी को बने हैं।

३५८

४८

10

1

विद्येय—भरणी, शूलिका, जारकेषा, मदा, विशेषा, अनुरागा, अवण, अनिडा—वे आठ नक्षत्र वासा (मध्यम नामी) हैं। अदिवनी, रोहिणी, पुष्य, शूल, असौरी, रेता, अमिति, शत्रुघ्निया—वे मध्यनारीके आठ नक्षत्र हैं। रेती, शूलिका, पुरुष्टु, उत्तरा-फाल्गुनी, चित्रा, शूल, उत्तराराधा, शूलीभाग्यवा—वे आठ नक्षत्र अनन्नारीके हैं। मध्य तथा अनन्नारीके नक्षत्रोंको 'मध्यके नक्षत्र' कहते हैं। दिशाके नक्षत्रों 'प्रवेशक' कहते हैं। उसके विपरीत दिशाके नक्षत्रों 'निर्वाह' कहते हैं। जैसे पूर्व प्रवेश तो पश्चिम निर्वाह होता।

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय

अर्धकाष्ठका प्रतिपादन

शंकरजी कहते हैं—अब मैं बस्तुओंकी मङ्गली तथा सत्तीके सम्बन्धमें विचार प्रकट कर रहा हूँ। जब कभी भूतल्पर उत्कापात, भूकम्प, निर्वात (वज्रापात), चन्द्र और सूर्यके प्रहण तथा दिशाओंमें अधिक गरमीका अनुभव हो तो इस बातका प्रत्येक मासमें स्वयं करना चाहिये। यदि उपर्युक्त लक्षणोंमें से कोई लक्षण चैत्रमें हो तो अलंकार-ग्रामग्रियों (सोना-चाँदी आदि) का संग्रह करना चाहिये। वह छः मासके बाद चौथुने मूल्यपर विक सकता है। यदि वैशाखमें हो तो बछ, धान्य, सुवर्ण, शृतादि जब पदार्थोंका संग्रह करना चाहिये। वे आठवें मासमें छः चौथुने मूल्यपर विकते हैं। यदि ज्येष्ठ तथा

इस प्रकार आदि आग्रेय महापुराणमें 'अर्धकाष्ठका प्रतिपादन' नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१२९॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय

विविध मण्डलोंका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—भारे। अब मैं विजयके लिये आर प्रकारके मण्डलका वर्णन करता हूँ। कृष्णिका, मध्या, पुष्य, पूर्वाकाश्युनी, विशाला, मरणी, पूर्वाभाद्रपदा—इन नक्षत्रोंको 'आग्रेय मण्डल' होता है, उसका लक्षण बतलाता हूँ। इस मण्डलमें यदि विशेष वायुका प्रकोप हो, सूर्य-चन्द्रका परिवेश लगे, भूकम्प हो, देशकी क्षति हो, चन्द्र-सूर्यका प्रहण हो, धूमज्वाला देखनेमें आये, दिशाओंमें दाहका अनुभव होता हो, केन्द्र अर्थात् युच्छल तारा दिखायी पड़ता हो, रक्तहृषि हो, अधिक गर्मीका अनुभव हो, पत्थर पड़े, तो जनतामें नेत्रका रोग, अतिसार (हैजा) और अविनभय होता है। गायें दूध कम कर देती हैं। वृक्षोंमें फल-पुष्य कम लगते हैं। उपज कम होती है। वर्षा भी स्वयं होती है। चारों वर्ष (व्राण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) दुखी होते हैं। सारे मनुष्य भूतसे व्याकुल रहते हैं। ऐसे उत्पातोंके दीर्घ पहनेपर तिन्ध-युग्माकी तलहटी, गुरुभृत, गोक, वाहिक, जात्यान्त्र, काल्पनीर और सातवें उत्तराश्यथ—ये देश विनष्ट हो जाते हैं। हस्ता, चिता, मध्य, स्ताती, सुग्रसिर, पुनर्वसु, उत्तराकाश्युनी, अदिवनी—इन

आधाद मासमें मिले तो चौ, गेहूँ और धान्यका संग्रह करना चाहिये। यदि भावणमें मिले तो चूत-सैलादि रस-पदार्थोंका संग्रह करना चाहिये। यदि आश्चिनमें मिले तो बछ तथा धान्य दोनोंका संग्रह करना चाहिये। यदि कार्तिकमें मिले तो सब प्रकारका अज्ञ खरीदकर रखना चाहिये। अग्रहन तथा पौषमें यदि मिले तो कुकुम तथा सुगन्धित पदार्थोंसे लाभ होता है। माघमें यदि उक्त लक्षण मिले तो धान्यसे लाभ होता है। माघुनमें मिले तो सुगन्धित पदार्थोंसे लाभ होता है। लाभकी अवधि छः या आठ मास समझनी चाहिये ॥ १-५ ॥

नक्षत्रोंका 'व्याव्य मण्डल' कहा जाता है। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हो तो विक्षिप्त होकर हाहाकार करती हुई सारी प्रजाएँ नष्टप्राय हो जाती हैं। साथ ही डाइल (विपुर), कायरूप, कलिङ्ग, कोशल, अयोध्या, उज्जैन, कोकण तथा आनन्द—ये देश नष्ट हो जाते हैं। आश्लेषा, मूळ, पूर्वांशादा, रैती, शतभिषा तथा उत्तराभाद्रपदा—इन नक्षत्रोंको 'वाण मण्डल' कहते हैं। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हो तो गायोंमें दूध-जीकी इदि और वृक्षोंमें पुष्य तथा फल अधिक लगते हैं। प्रजा आरोग्य रहती है। पृथ्वी धान्यसे परिपूर्ण हो जाती है। अन्नोंका भाव सत्ता तथा देशमें सुकालका प्रसार हो जाता है, किंतु राजाओंमें परस्पर घोर संग्राम होता रहता है ॥ १-१४ ॥

ज्येष्ठा, रोहिणी; अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभादा; सातवाँ अभिजित—इन नक्षत्रोंका नाम 'साहेन्द मण्डल' है। इसमें यदि पूर्वोक्त उत्पात हो तो प्रजा प्रसन्न रहती है, किंतु प्रकारके रोगका भय नहीं रह जाता। राजा और आपसमें संघर्ष कर लेते हैं और राजाओंके लिये हितकारक सुभित होता है ॥ १५-१६ ॥

'आम' दो प्रकारका होता है—पहलेका नाम

'मुख्याम' है और दूसरे का नाम 'पुच्छाम' है। कहते हैं। सूर्यके नक्षत्रों पंचवें नक्षत्रमें जब चन्द्रमा चला है, उस समय तिथि-सांवतके अनुसार, 'पोषणाम' होता है अर्थात् पूर्णिमा तिथि होती है—॥ १७-११ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें 'विविध मण्डलोंका वर्णन' नामक एक ही शीर्षकी अध्याय पूरा हुआ ॥ १३० ॥

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

शास्त्रका आदिका वर्णन

शंकरजी कहते हैं—गूर्खादि दिशाओंमें प्रदक्षिण-कर्मसे अकारादि स्वरोंको लिखे। उसमें शुक्रपक्षकी प्रतिपदा, पूर्णिमा, त्रयोदशी, चतुर्दशी, केवल शुक्रपक्षकी एक अष्टमी (कृष्णपक्षकी अष्टमी नहीं), सप्तमी, कृष्णपक्षमें प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीतक (अष्टमीको छोड़कर) द्वादश

तिथियोंका व्याप्त करे। इस चैत्र-चक्रमें पूर्वादि दिशाओंमें स्पर्श-चांगोंको लिखनेसे जय-पराजयका तथा लाभका निर्णय होता है। विषम दिशा, विषम स्वर तथा विषम वर्णमें शुभ होता है और सम दिशा आदिमें अशुभ होता है ॥ १-२ ॥

वैचक्षणम्	क ट न ळ अ आ	अनि. शु. प. ७ । ८ ति.
पूर्व	इ ह ल ठ प ब	
	शु. १ । १३ । १४ । १५	
ओ औ		इष्टिण श० १ । २ ति.
य च द उत्तर		उ ऊ ग ढ फ श
क० १०।११ ति.		
वायु०	पवित्रम्	नेत्र०
ए क० ७।९ ति.	क० ५।६ ति.	क० ३।४ ति.
इ छ थ म	ल ल०	श श०
	च. त. भ. ल०	घ घ व ष

इस चक्रमें शुक्र पक्षकी १।७।८।१३।१४।१५ ये तिथियाँ ली गयी हैं। कृष्ण पक्षमें अष्टमी छोड़कर २।२।३।४।५।६।७।९।१०।११।१२।१३ ये तिथियाँ ली गयी हैं।

[अब युद्धमें जय-पराजयका लक्षण बताते हैं—] युद्धारम्भके समय सेनापति पहले जिसका नाम लेकर बुलाता है, उस व्यक्तिके नामका आदि-अक्षर यदि 'दीर्घ' हो तो उसकी ओर संग्राममें भी विजय होती है। यदि नामका आदिवर्ण 'हस्त' हो तो निर्वय ही मृत्यु होती है। ऐसे—

एक सेनिकका नाम 'आदित्य' और दूसरेका नाम है—

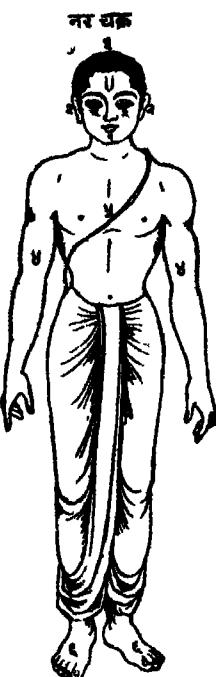
'भुह'। इन दोनोंमें प्रथमके नामके आदिमें 'आ' दीर्घ स्वर है और दूसरेके नामके आदिमें 'उ' हस्त स्वर है; अतः यदि दीर्घ स्वराले व्यक्तिको बुलाया जायगा तो विजय और हस्तवालेको बुलानेपर हार तथा मृत्यु होगी ॥ ४-७ ॥

[अब 'नर-चक्र'के द्वारा वाताङ्गका निर्णय करते हैं—] नक्षत्र-पिण्डके आधारपर नर-चक्रका वर्णन करता हूँ।

* सूर्यके साथ चन्द्रमा जब रहेगा, तब अमावास्या तिथि होती। सूर्यके नक्षत्रों पंचवें नक्षत्रमें चन्द्रमा आवेदा हो सकती है। अमावास्या रहेगा, व्यापकी साथा दौ नक्षत्रकी एक रात्रि होती है, जब दूसरे सातवीं चन्द्रमा रहता है, तब पूर्णिमा ही तिथि होती है। इसे ही 'सोमवार' कहते हैं।

बहुके एक मनुष्यका आकार बनावे । सत्प्रात् उसमें अक्षरोंका स्थान करे । स्थानके नक्षत्रसे नामके नक्षत्रके ग्रिनकर संख्या जान ले । पहले तीनको नरकेत्तुसिरमें, एक गुरुमें, दो नेत्रमें, चार हाथमें, दो कानमें, पाँच हृदयमें और छः पैरोंमें लिखे । फिर नाम-नक्षत्रका स्पष्ट रूपसे

चाहके मध्यमें स्थान करे । इस तरह लिखनेपर नरके नेक-सिर, दाहिना कान, दाहिना हाथ, दोनों पैर, हृदय, श्रीमां बायाँ हाथ और गुणाङ्गमेंसे जहाँ शनि, मङ्गल, सूर्य तथा रातुके नक्षत्र पड़ते हों, युद्धमें उच्ची अज्ञमें घात (छोट) होता है॥ ८-१२ ॥



[अब जय-चक्रका निर्णय करते हैं—] पूर्वसे पश्चिम-तक तेरह ऐसाएँ बनाकर पुनः उत्तरसे दक्षिणतक छः तिरछी ऐसाएँ संचित । (इस तरह लिखनेपर जवचक बन जायगा ।) उड़में अ से ह तक अक्षरोंको लिखे और १० । १ । ७ । १२ । ४ । ११ । १५ । २४ । १८ । ४ । २७ । २४—इन अक्षरोंका भी स्थान करे । अक्षरोंको ऊपर लिखकर अकारादि अक्षरोंको उसके नीचे लिखे । शमुके नामाक्षरके स्वर तथा

अद्भुत वर्णके बामने जो अहु हौं, उन सबको ओढ़कर पिण्ठ बनाये । उसमें सातसे भाग देनेपर एक आदि शेषके अनुसार सूर्योदि ग्रहोंका भाग जाने । १ शेषमें सूर्य, २ में चन्द्र, ३ में शून्य, ४ में चुम्ब, ५ में गुरु, ६ में शुक्र, ७ में शनिका भाग होता है—यौं समझना चाहिये । जब सूर्य, शनि और मङ्गलका भाग आये तो विजय होती है तथा शुभ ग्रहके भागमें संचित होती है ॥ १३-१५हृ॥

प्रथम जय-चक्र—

१०	१	७	१२	४	११	१५	२४	१८	४	२७	२४
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ऋ	ल	ए	ऐ	ओ
औ	अं	अः	क	খ	গ	ঘ	ক	চ	ছ	জ	শ
ম	ঢ	ঠ	ঢ	ঢ	ণ	ত	থ	দ	ধ	ন	প
ক	ব	ম	ম	য	ৰ	ল	ব	শ	ষ	স	হ

उदाहरण—जैसे किसीका नाम देवदत्त है, इस नामके अक्षरों तथा ए स्वरके अनुसार अङ्क-ग्रन्थे $18+4+24+18+18+14=91$ उन्यासी योग हुआ। इसमें सातका भाग दिया $\frac{1}{4}=21$ लघु तथा २ शेष हुआ। शेषके अनुसार सूर्यसे गिननेपर चन्द्रका भाग हुआ, अतः संधि होगी। इससे यह निष्ठय हुआ कि 'देवदत्त' नामका व्यक्ति संग्राममें कभी पराजित नहीं हो सकता। इसी तरह और नामके अक्षर तथा मात्राके अनुसार जय-पराजयका ज्ञान करना चाहिये।

[अब द्वितीय जय-चक्रका निर्णय करते हैं—] पूर्वसे परिमतक बारह रेखाएँ लिखे और छः रेखाएँ यान्मोत्तर

करके लिखी जायें। इस तरह यह जय-चक्र का ज्ञान होता है। उसके सर्वश्रथम् ऊरजाले कोड़े १४ | २७ | २ | १५ | १६ | ३ | ४ | ३ | १७ | ८ | ८—इन अङ्कोंको लिखे और कोड़ोंमें 'अकार' आदि स्वरोंसे लेकर यह तक्के अक्षरोंका क्रमशः न्यास करे। तत्पश्चात् नामके अक्षरोंका योग करने हुए पिछमें आठसे भाग दे तो [एक आदि शेषके अनुसार वायस, मण्डल, रामण, द्विष्ट, कुञ्जरु लिह, लरु, चूरु—ये आठ शेषोंके नाम होते हैं। इसमें वायससे प्रबल मण्डल और मण्डलसे प्रबल रामण—यों उत्तरोत्तर बढ़ी जानना चाहिये। संग्राममें यारी तथा स्थायीके नामांश्चरके अनुसार मण्डल बनाकर एक-दूसरे से बढ़ी तथा दुर्बलका ज्ञान करना चाहिये ॥ १६—२० ॥

द्वितीय जय-चक्र—

१४	२७	२	१५	१६	३	४	३	१७	८	८
अ	आ	ह	है	उ	ऊ	ष्ट	ष्ट	ल	ल	ए
ऐ	ओ	औ	क	ल	ग	घ	च	छ	ज	झ
ट	ठ	ड	ढ	त	थ	द	ध	ন	প	ক
ব	ভ	ম	য	ৰ	ল	ব	শ	ষ	স	হ

उदाहरण—जैसे यारी रामचन्द्र तथा स्थायी रावण— इन दोनोंमें कौन बली है—यह जानना है। अतः रामचन्द्रके अक्षर तथा स्वरके अनुसार रू=१५, आ=२७, मू=२, अ=१४, चू=१, अ=१४, नू=१७, दू=४, रू=१५, अ=१४— इनका योग १२५ हुआ। इसमें ८ का भाग दिया तो

शेष ५ रहा। तथा रावणके अक्षर और स्वरके अनुसार रू=१५, आ=२७, नू=४, अ=१४, नू=१५, अ=१४—इनका योग हुआ ११। इसमें ८ से भाग देनेपर ३ शेष हुआ। ३ शेषसे ५ बढ़ी है, अतः रामचन्द्र-रावणके संग्राममें रामचन्द्र ही बली हो रहे हैं।

इस प्रकार आदि ज्ञानेय महापुराणमें 'वात्सल्यकोम वर्णन' नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३१ ॥

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

सेवा-चक्र आदिका निरूपण

शांखरुदी कहते हैं—अब मैं सेवा-चक्रका प्रतिपादन कर रहा हूँ, जिससे देवको सेव्यसे लाभ तथा हानिका ज्ञान होता है। पिता, माता तथा भाई एवं श्री-पुरुष—इन लोगोंके लिये इसका विचार विशेषरूपसे करना चाहिये। कोई

भी व्यक्ति पूर्णोक्त व्यक्तियोंमेंसे किससे लाभ प्राप्त कर सकेगा—
इत्यज्ञ ज्ञान वह उत्तम 'सेवा-चक्र' से कर सकता है ॥ १-२ ॥

[सेवा-चक्रका स्वरूप वर्णन करते हैं—] पूर्वमें
पश्चिमको छः रेखाएँ और उत्तरसे दक्षिणको आठ तिरछी
रेखाएँ खीचे । इस तरह लिखनेपर तीनों कोषको 'सेवा-चक्र'
बन जायगा । उसमें ऊपरके कोषमें पाँच स्वरोंको लिखकर
पुनः स्पर्श-वर्णोंको लिखे । अर्थात् 'क' से लेकर 'ह' तकके
वर्णोंका न्याय करे । उसमें तीन वर्णों (क, ख, ञ) को
छोड़कर लिखे । नीचेवाले कोषमें क्रमसे सिद्ध, साध्य, मुसिद्ध,
शत्रु तथा भूत्यु-इनको लिखे । इस तरह लिखनेपर सेवा-चक्र
उत्तराञ्जसम्पन्न हो जाता है । इस चक्रमें शत्रु तथा भूत्यु नामके
कोषमें जो स्वर तथा अक्षर हैं, उनका प्रस्तेक कार्यमें स्वाग
कर देना चाहिये । किंतु सिद्ध, साध्य, मुसिद्ध, शत्रु तथा
भूत्यु नामवाले कोषमेंसे किसी एक ही कोषमें
यदि सेव्य तथा सेवकके नामका आदि-अक्षर पढ़े तो वह
सर्वथा शुभ है । इसमें द्वितीय कोष पोषक है, तृतीय कोष
धनदायक है, चौथा कोष आत्मनाशक है, पाँचवाँ कोष
भूत्यु देनेवाला है । इस चक्रसे मिश्र, नौकर एवं बान्धवसे
नामकी प्राप्तिके लिये विचार करना चाहिये । अर्थात् हम
किसको मुझे लाभ होगा— इसका विचार इस चक्रसे करे ।
जैसे—अपने नामका आदि-अक्षर तथा विचारणीय व्यक्तिके
नामका आदि-अक्षर सेवा-चक्रके किसी एक ही कोषमें
पढ़ जाय तो वह शुभ है, अर्थात् उस व्यक्तिसे लाभ होगा—
यह जाने । यदि पहलेवाले तीन कोषमेंसे किसी एकमें
अपने नामका आदि-वर्ण पहलेवाले तीन कोषों (सि०
खा० छु०) मेंसे किसी एकमें पढ़े और विचारणीय व्यक्तिके
नामका आदि-अक्षर जौये तथा पाँचवाँ पढ़े तो अशुभ होता
है । जौये तथा पाँचवाँ कोषमें किसी एकमें सेव्यके तथा
भूत्युमें सेवकके नामका आदि-वर्ण पढ़े तो अशुभ ही होता
है ॥ ३-४ ॥

सेवा-चक्रका स्वरूप—

अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	ष	च
छ	ज	श	ट	ठ
ड	ड	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
सिद्ध	साध्य	मुसिद्ध	शत्रु	भूत्यु
१	२	३	४	५

अब अकारादी वर्गों तथा ताराओंके द्वारा सेव्य-सेवकका
विचार कर रहे हैं—अर्वां (अ इ उ ए ओ) का स्वामी
देवता है, कवर्ग (क ख ग घ छ) का स्वामी दैत्यहै, चर्वर्ग
(च छ ज झ झ) का स्वामी नाग है, टवर्ग (ट ठ ड ढ
ञ) का स्वामी गन्धर्व है, तवर्ग (त थ द ध न) का
स्वामी शूष्मि है, पवर्ग (प फ ब भ म) का स्वामी राक्षस
है, यवर्ग (य र ल व) का स्वामी पिशाच है, शवर्ग
(श ष च ह) का स्वामी मनुष्य है । इनमें देवताएँ बली
दैत्य है, दैत्यसे बली सर्प है, सर्पसे बली गन्धर्व है, गन्धर्वसे
बली शूष्मि है, शूष्मिसे बली राक्षस है, राक्षससे बली पिशाच
है और पिशाचसे बली मनुष्य होता है । इसमें बली
दुर्बल वर्गका ज्ञान करके बली वर्गवाले दुर्बल वर्गवालेसे
व्यवहार न करें । एक ही वर्गके सेव्य तथा सेवकके
नामका आदि-वर्ण इन्हा उत्तम होता है ॥ ९-१३ ॥

अब मैत्री-विमाग-सम्बन्धी 'ताराचक' को सुनो । पहले
नामके प्रथम अक्षरके द्वारा नक्षत्र जान ले, फिर नौ
तारायोंकी तीन बार आहूति करनेपर सत्ताईस नक्षत्रोंकी
ताराओंका ज्ञान हो जायगा । इस तरह अपने नामके नक्षत्रका
ज्ञान जान लें । १ ज्येष्ठ, २ समृत, ३ विष्णु, ४ श्रेष्ठ,
५ प्रसादि, ६ शाखक, ७ वस, ८ ग्रेष, ९ अस्तिमैष—ते

नौ ताराएँ हैं। इनमें 'जन्म'तारा अशुभ, 'सम्पत्' तारा अति उत्तम और 'विषयत्' तारा निष्फल होती है। 'सेम'ताराको प्रत्येक कार्यमें लेजा चाहिये। 'प्रत्यरि' तारासे धन-क्षति होती है। 'प्राधक' तारासे राज्य-लाभ होता है। 'वध' तारासे कार्यका विनाश होता है। 'मैत्र'तारा मैत्रीकारक है और 'अतिमैत्र' तारा हितकारक होती है।

विशेष प्रयोगन—जैसे सेव्य रामचन्द्र, सेवक हनुमान्—इन दोनोंमें भाव कैसा रहेगा, इसे जाननेके लिये हनुमान्के नामके आदि वर्ण (ह) के अनुसार पुनर्बन्धु नक्षत्र हुआ तथा रामके नामके आदि वर्ण (रा) के अनुसार नक्षत्र चित्रा हुआ। पुनर्बन्धुसे चित्राकी संख्या आठवीं हुई। इस संख्याके अनुसार 'मैत्र'नामक तारा हुई। अतः इन दोनोंकी मैत्री परस्पर कल्याणकर होगी—यों जानना चाहिये ॥ १३—१८॥

[अब तारा-चक्र कहते हैं—] प्रिये ! नामाकरणके स्वरोंकी संख्यामें वर्णोंकी संख्या जोड़ दे। उसमें बीसका भाग दे। जैरने फलको जाने। अर्थात् स्वल्प शेषवाला व्यक्ति अधिक शेषवाले व्यक्तिसे लाभ उठाता है। जैसे सेव्य राम तथा सेवक हनुमान्। इनमें सेव्य रामके नामका र = २। आ = २। म = ५। अ = १। सेवकका योग १० हुआ। इसमें २० से भाग दिया तो शेष १० सेव्यका हुआ तथा सेवक हनुमान्के नामका ह = ४। अ = १।

इस प्रकार आदि आप्नेय महापुराणमें 'सेवा-चक्र आदिका वर्णन' नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥



एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय

नाना प्रकारके बलोंका विचार

शंकरजी कहते हैं—अब सूर्यादि ग्रहोंकी राशियोंमें पैदा हुए नवजात शिशुका जन्म-फल क्षेत्राधिपके अनुसार वर्णन करेंगा। सूर्यके यहमें अर्थात् सिंह लग्नमें उत्तरांश बालक समकाय, कभी कृशाङ्ग, कभी स्थूलाङ्ग, गोरवर्ण, पित्त-प्रकृति, लाल नेत्रोंवाला, गुणवान् तथा वीर होता है। चन्द्रके यहमें अर्थात् कर्क लग्नका जातक भाष्यवान् तथा कोमल शरीरवाला होता है। मङ्गलके यहमें अर्थात् मेष तथा द्वुष्टिक लग्नोंका जातक वातरोगी तथा अत्यन्त लेभी होता है। बुधके यहमें अर्थात् मिथुन तथा कन्या लग्नोंका जातक

बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है। गुरुके यहमें अर्थात् धनु तथा मीन लग्नोंका जातक सुन्दर और अत्यन्त प्रोधी होता है। शुक्रके यहमें अर्थात् तुला तथा द्वष लग्नोंका जातक त्यागी, भोगी एवं सुन्दर शरीरवाला होता है। शनिके यहमें अर्थात् मकर तथा कुम्भ लग्नोंका जातक बुद्धिमान्, सुन्दर तथा मानी होता है। सौभ्य लग्नका जातक सौभ्य स्वभावका तथा कूर लग्नका जातक कूर स्वभावका होता है ॥ १-५ ॥

* बहाँपर मेष, मिथुन, सिंह, तुल, धनु, कुम्भ—वे राशियाँ

एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय

‘त्रैलोक्यविजया-विद्या’

भगवान् महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं समस्त यन्त्र-मन्त्रोंको नष्ट करनेवाली ‘त्रैलोक्यविजया-विद्या’ का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

ॐ हूँ क्षं हूँ, ॐ नमो भगवति दंशिणि भीमवक्षे महोप्ररूपे हिंडि हिंडि, रक्षेन्द्रि किलि किलि, महानिस्त्रने कुलु, ॐ विशुजिह्वे कुलु, ॐ निर्मांसे कट कट, गो-नसाभणे चिलि चिलि, शवमालाधारिणि द्रावय, ॐ महारौद्रि सार्वंचर्मकृताच्छदे विजृम्भ, ॐ नृथासिलताधारिणि भुकुटीकृतापाहे विषमेव्रकृतानने घसामेत्रविलिङ्गाचे कह कह, ॐ हस हस, क्रुद्य क्रुद्य, ॐ नीलजीमूलवर्णेऽभ्र-मालाकृताभरणे विस्फुर, ॐ वण्टाराखाकीणेदेहे, ॐ सिंहिन्थेऽहणवर्णे, ॐ हाँ हाँ हूँ रैद्ररूपे हूँ हाँ हूँ, ॐ हाँ हूँ मोमाकर्षे, ॐ धून धून, ॐ हे हः खः, वज्रिणि हूँ क्षं क्षं क्रोधस्थिणि प्रज्वल प्रज्वल, ॐ भीमभीषणे भिन्द, ॐ महाकाशे छिन्द, ॐ करालिनि किटि किटि, महाभृन्मातः सर्वदृष्टनिवारिणि जये, ॐ विजये ॐ त्रैलोक्यविजये हूँ फट् स्वाहा ॥ २ ॥

ॐ हूँ क्षं हूँ, ॐ वज्री-यज्ञो दादोमे जिनकी आकृति अत्यन्त भयंकर है, उन महोप्ररूपिणी भगवतीको नमस्कार है । वे रणाङ्गमें स्वच्छापूर्वक क्रीड़ा करें, क्रीड़ा करें । लाल नेत्रोंवाली ! किलकारी कीजिये, किलकारी कीजिये । भीम-नादिनि कुलु । ॐ विशुजिह्वे ! कुलु । ॐ मांसहीने ! गत्रुओंको आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये । भुजङ्गमालिनि ! वज्रा-भूषणोंसे अलंकृत होइये, अलंकृत होइये । शवमालाविभूषिते ! शत्रुओंको खदेहिये । ॐ शत्रुओंके रक्षन सने हुए चमड़ेके बख धारण करनेवाली महाभयंकरि ! आगना सुख खोलिये । ॐ ! नृथ्यमुद्रामें तलवार धारण करनेवाली !! टेढ़ी भौंहोंसे युक्त तिरछे नेत्रोंसे देव्यनेवाली ! विषम नेत्रोंमें विकृत मुखवाली !! आपने अपने अङ्गोंमें मज्जा और मेदा लपेट रक्खा है । ॐ अद्वैत कीजिये, अद्वैत कीजिये । हैंभिये, हैंनिये । कुद्र होइये, कुद्र होइये । ॐ नील मेवके समान वर्णवाली ! मेघमालाको आभरण रूपमें धारण करनेवाली !! विशेषरूपमें प्रकाशित होइये । ॐ वण्टाकी ध्वनिसे शत्रुओंके शरीरोंकी धज्जियाँ

इस प्रकार आदि आनंदेय महापुराणमें युद्धजयार्णवके अन्तर्गत त्रैलोक्यविजया-विद्याका वर्णन, नामक एक सौ चौंतीसवाँ अस्मात् पूरा हुआ ॥ १३४ ॥

उडा देनेवाली ! ॐ सिसिस्थिते ! रक्षणे ! ॐ हाँ हाँ हूँ रैद्रस्ते ! हूँ हाँ हूँ हूँ हूँ । ॐ शत्रुओंका आकर्षण कीजिये, उनको हिला डालिये, कैपा डालिये । ॐ हे हः खः वज्रहस्ते ! हूँ क्षं क्षं क्रोधस्थिणि ! प्रज्वलित होइये, प्रज्वलित होइये । ॐ महाभयंकरको डरानेवाली ! उनको चोर डालिये । ॐ विशाल शरीरवाली देवि ! उनको काट डालिये । ॐ करालरूपे ! शत्रुओंको डराइ, डगड़ये । महाभयंकर भूतोंकी जननि ! समझ दुष्टोंना निवारण करनेवाली जये !! ॐ विजये !!! ॐ त्रैलोक्यविजये हूँ फट् स्वाहा ॥ ३ ॥

विजयके उद्देश्यमें नोलवर्णा, प्रेनाधिरूपा त्रैलोक्यविजया-विद्याकी वीम हाथ ऊंची प्रतिमा बनाकर उगका पूजन करे । पञ्चाङ्गन्याम करके रक्तपुरुषोंका हवन वरे । इस त्रैलोक्यविजया-विद्याके पठनमें समरभूमिमें शत्रुकी सेनाएँ पलायन कर जाती है ॥ ३ ॥

ॐ नमो बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय ॐ गोहय, ॐ सर्व-शत्रून द्रावय, ॐ ब्रह्माणमाकर्षय, ॐ विष्णुमाकर्षय, ॐ महेश्वरमाकर्षय, ॐ इन्द्रे दालय, ॐ पर्वतांशालय, ॐ सप्त-सागराद्वारोषय, ॐ छिन्द च्छिन्द बहुरूपाय नमः ॥

ॐ अनंकरूपको नमस्कार है । शत्रुका स्तम्भन कीजिये, मनभन कीजिये । ॐ सम्मोहन कीजिये । ॐ गव शत्रुओंको नवेद दीजिये । ॐ ब्रह्माका आकर्षण कीजिये । ॐ विष्णुका आकर्षण कीजिये । ॐ महेश्वरका आकर्षण कीजिये । ॐ इन्द्रको भयभीत कीजिये । ॐ पर्वतोंको चिन्चलित कीजिये । ॐ सातों समुद्रोंको सुखा डालिये । ॐ काट डालिये, काट डालिये । अनेकरूपको नमस्कार है ॥ ४ ॥

मिट्ठोकी मूर्ति बनाकर उसमें शत्रुको स्थित हुआ जाने, अर्थात् उसमें शत्रुके स्थित होनेकी भावना करे । उस मूर्तिमें रिथत शत्रुका ही नाम भुजंग है; ‘ॐ बहुरूपाया’ इत्यादि मन्त्रमें अभिमन्त्रित करके उस शत्रुके नाशके लिये उक्त मन्त्रका जप करे । इससे शत्रुका अन्त हो जाता है ॥ ५ ॥

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय

संग्रामविजय-विद्या

महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं संग्राममें विजय दिलनेवाली विद्या (मन्त्र) का बर्णन करता हूँ, जो पदमालाके स्फरमें है ॥ ? ॥

ॐ हीं चासुण्डे इमशानवासिनि खट्टवाङ्कपालहस्ते
महाप्रेतसमारूढे महार्विमानसमाकुछे कालरात्रि महागण-
परिवृते नहासुखे बहुभुजे घण्टाद्वामसकिङ्गिणि [हस्ते],
अद्वाहासे किलि किलि, ॐ हूँ फट्, दंशाघोरान्धकारिणि
नादशब्दबहुले गजन्मर्मप्रावृत्तशरीरे मांसदिव्ये
लेलिहानोग्रजिहे महाराक्षसि रात्रद्वंद्वाकराले भीमाद्वाहासे
स्फुरद्विशुद्धमें चल चल, ॐ चकोरनेत्रे चिलि चिलि,
ॐ ललजिहे, ॐ भीं भूकुटीसुखि हुंकारभयक्रासिनि कपाळ-
मालावैष्टितजटामुकुटशादाङ्गारारिणि, अद्वाहासे किलि
किलि, ॐ हूँ दंशाघोरान्धकारिणि, सर्वविश्विनाशिनि,
इदं कर्म साधय साधय, ॐ शीघ्रं कुरु कुरु, ॐ फट्,
ओमङ्गुरोन शमय, प्रवेशय, ॐ रङ रङ, कम्पय कम्पय,
ॐ चालय, ॐ सूधिरमांसमध्यप्रिये हन हन, ॐ कुटु कुट,
ॐ छिन्द, ॐ मारय, ओमनुकम्पय, ॐ वंशशरीरं पातय,
ॐ त्रैलोक्यगतं हुप्तमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं नाऽऽवेशय,
ॐ नृत्य, ॐ वन्द, ॐ कोटराक्षयूध्वंकेइयुलकवदने
करिणि, ॐ करक्षमालाधारिणि दह, ॐ पच पच, ॐ गृह,
ॐ मण्डलमध्ये प्रवेशय, ॐ किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णु-
सत्येन खद्दसत्येनर्विसत्येनावेशय, ॐ किलि किलि, ॐ खिलि
खिलि, विलि विलि, ॐ विकृतरूपधारिणि कृष्णमुजंग-
वेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशिनि प्रलम्बौष्ठिनि भूभङ्गननासिके
विकटमुखि कपिलजटे ग्राह्यि भञ्ज, ॐ ज्वालामुखि स्वन,
ॐ पातय, ॐ रक्षाद्विष्णुयंत्र, भूर्मि पातय, ॐ शिरो गृह,
चक्षुमीलय, ॐ हस्तपादी गृह, मुद्रां स्फोटय, ॐ फट्,
ॐ विदाशय, ॐ त्रिशूलेन च्छेदय, ॐ वज्रेण हन, ॐ वृष्टेन
ताढय ताढय, ॐ चक्रेण च्छेदय च्छेदय, ॐ शक्त्या भेदय,
दंशया कीलय, ॐ कर्णिकया पाटय, ओमङ्गुरोन गृह,
ॐ विरोऽक्षितउरमेकाहिकं द्वयाहिकं व्याहिकं चातुर्थिकं द्वाकिनि-
स्कन्दग्रहान् मुद्रा मुद्रा, ॐ पच, ओमुत्सादय, ॐ भूर्मि
पातय, ॐ गृह, ॐ ब्रह्माण्येहि, ॐ माहेश्वर्येहि, [ॐ]
कौमार्येहि, ॐ वैष्णव्येहि, ॐ वाराह्येहि, ओमैन्द्र्येहि,
ॐ चासुण्ड पृहि, ॐ रेवत्येहि, ओमाकाशरेवत्येहि, ॐ हिम-

वस्त्राणियेहि, ॐ रुद्रमिन्यसुरक्षर्पकर्षकाकाशगामिनि
पाशेन बन्ध बन्ध, अङ्गुष्ठेन कट कट, समये तिष्ठ, ॐ मण्डकं
प्रवेशय, ॐ गृह, मुखं बन्ध, ॐ चक्षुबन्ध, हस्तपादी च
बन्ध, दृष्टग्रहान् सर्वान् बन्ध, ॐ दिशो बन्ध, ॐ विदिशो
बन्ध, अधस्ताद्वृक्ष, ॐ सर्वं बन्ध, ॐ भस्मना पानीयेन वा
मृतिकथा सर्वपैंतीर्वा सर्वानावेशय, ॐ पातय, ॐ चासुण्डे
किलि किलि, ॐ विरचे हुं फट् स्वाहा ॥

ॐ हीं चासुण्डे देवि ! आप इमशानमें वास करनेवाली हैं। आपके हाथमें खट्टवाङ्क और कपाल शोभा पाते हैं। आप महान् प्रतेपर आरूढ़ हैं। आप बड़े-बड़े विमानोंसे घिरी हुई हैं। आप ही कालरात्रि हैं। बड़े-बड़े पार्षदगण आपको वेरकर लड़े हैं। आपका मुख विशाल है। भुजाएँ बहुत हैं। घण्टा, डमरू और बुँधुरू बजाकर विकट अद्वाहात करनेवाली देवि ! क्रीड़ा कीनिये, क्रीड़ा कीजिये। ॐ हूँ फट्। आप अपनी दाढ़ोंसे धोर अन्धकार प्रकट करनेवाली हैं। आपका गम्भीर धोष और शब्द अधिक मात्रामें अभियक्त होता है। आपका विग्रह हाथीके चमड़ेमें ढका हुआ है। शत्रुओंके मांसमें परिपृष्ठ हुई देवि ! आपकी भयानक जिहा ल्पल्पा रही है। महाराक्षसि ! भयंकर दाढ़ोंके कारण आपकी आङ्गूष्ठि बड़ी विकरल दिग्दायी देती है। आपका अद्वाहास वडा भयानक है। आपकी कान्ति चमड़ती हुई बिजलीके समान है। आप संग्राममें विजय दिलानेके लिये चलिये, चलिये। ॐ चकोर-नेत्रे (चकोरके समान नेत्रोंवाली) ! चिलि, चिलि। ॐ ललजिहे (ल्पल्पाती हुई जीभवाली) ! ॐ भीं टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखवाली ! आप हुंकारमात्रसे ही भय और चास उत्पन्न करनेवाली हैं। आप नरमुण्डाकी मालासे वेष्टित जटा-मुकुटमें चन्द्रमाको धारण करती हैं। विकट अद्वाहासवाली देवि ! किलि, किलि (रणभूमिमें क्रीड़ा करो, क्रीड़ा करो) । ॐ हूँ दाढ़ोंसे धोर अन्धकार प्रकट करनेवाली और सम्पूर्ण विश्वोंका नाश करनेवाली देवि ! आप मेरे इस कार्यको सिद्ध करें, सिद्ध करें। ॐ शीघ्र कीजिये, कीजिये। ॐ फट्। ॐ अङ्गुष्ठासे शान्त कीजिये, प्रवेश कराइये। ॐ रक्षसे रँगिये, रँगिये; कॅपाइये, कॅपाइये। ॐ विचलित कीजिये। ॐ सूधर-मांस-मध्यप्रिये ! शत्रुओंका

इनकीजिये, इनकीजिये । ॐ विपक्षी योद्धाओंको कूटिये, कूटिये । ॐ काटिये । ॐ मारिये । ॐ उनका पीछा कीजिये । ॐ बग्रतुल्य शशीरबलेको भी मार गिराइये । ॐ त्रिलोकमें विद्यमान जो शत्रु है, वह दुष्ट हो या अदुष्ट, पकड़ा गया हो या नहीं, आप उसे आविष्ट कीजिये । ॐ उत्तर कीजिये । ॐ वन्द । ॐ कौटराक्षि (नोन्वलेके समान नेवाली) ! अर्घ्यकेवि (कपर उठे हुए केवोवाली) ! उल्लक्षने (उल्लक्षके सामन मुँहवाली) ! हड्डियोंकी ठटरी या खोपडी धारण करनेवाली ! खोपडीकी साला धारण करनेवाली चामुण्डे ! आप शत्रुओंको जलाइये । ॐ पकाइये, पकाइये । ॐ पकड़िये । ॐ मण्डलके भीतर प्रवेश कराइये । ॐ आप क्यों विलम्ब करती है ? ब्रह्माके सत्यसे, विष्णुके सत्यसे, रुद्रके सत्यसे तथा ऋषियोंके सत्यसे अविष्ट कीजिये । ॐ किलि किलि । ॐ खिलि खिलि । ॐ विकृत रूप धारण करनेवालीदेवि ! आपके जगीरमें काले सर्प लिपटे हुए हैं । आप सभूतं ग्रहोंको अविष्ट करनेवान्नी हैं । आपके लंबे-लंबे ओठ लटक रहे हैं । आपकी टेढ़ी भौंहें नासिकासे लगी हैं । आपका मुख चिकट है । आपकी जटा कपिलबर्णकी है । आप नहाकी शक्ति हैं । आप शत्रुओंको भङ्ग कीजिये । ॐ ज्वलागम्यि ! गर्जना कीजिये । ॐ शत्रुओंको मार गिराइये । ॐ लान्त-लाल आँखोंवाली देवि ! शत्रुओंको चक्कर कटाइये, उन्हें धराशायी कीजिये । ॐ शत्रुओंके गिर उत्तर लीजिये । उनकी धोन्ये बंद कर दीजिये । ॐ उनके हाथ-पैर ले लीजिये, अङ्ग मुद्रा पोक्किये । ॐ फट् । ॐ विदीर्णं कीजिये । ॐ विश्वलसं छेदिये । ॐ वज्रसे इनन कीजिये । ॐ ढंडेम पीठिये, पीठिये । ॐ चक्रसे छिन्न-भिन्न कीजिये, छिन्न भिन्न कीजिये । ॐ शक्तिसे भेदन कीजिये । दाढ़ं कीलन कीजिये । ॐ वतरनीसे चीरिये । ॐ अङ्गुशसे ग्रहण कीजिये । ॐ सिरके रोग और नेत्रकी पीड़को, प्रतिदिन होनेवाले ज्वरको, दो दिनपर होनेवाले ज्वरको, तीन दिनपर होनेवाले ज्वरको, चौथे दिन होनेवाले ज्वरको, डाकिनियोंको तथा कुमारग्रहोंको शत्रु-सेनापर छोड़िये, छोड़िये । ॐ उन्हें पकाइये । ॐ शत्रुओंका उम्भूलन कीजिये । ॐ उन्हें भूमिपर गिराइये । ॐ उन्हें पकड़िये । ॐ ब्रह्माणि ! आइये । ॐ माहेश्वरि ! आइये ।

इस प्रकार आदि आगेय महापुराणके अन्तर्गत नामक एक सौ पैतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३५ ॥

ॐ कौमारि ! आइये । ॐ वैष्णवि ! आइये । ॐ बालहिनी ! आइये । ॐ येन्द्रि ! आइये । ॐ चामुण्डे ! आइये । ॐ रेवति ! आइये । ॐ आकाशरेवति ! आइये । ॐ हिमालयपर विचरनेवाली देवि ! आइये । ॐ रुहमर्तिनि ! असुरज्ञायकरि (असुरविनाशिनि) ! आकाशगमिनि देवि ! विरोधियोंको पाशसे बांधिये, बांधिये । अङ्गुशसे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये । अपनी प्रतिशापर स्थिर रहिये । ॐ मण्डलमें प्रवेश कराइये । ॐ शत्रुको पकड़िये और उगका मुँह बौध दीजिये । ॐ नेत्र बौध दीजिये । हाथ-पैर भी बौध दीजिये । हमें सतानेवाले समस्त दुष्ट ग्रहोंको बौध दीजिये । ॐ दिशाओंको बौधिये । ॐ भस्मसे, जलसे, मिट्टीसे अथवा सरसोंसे सवको आविष्ट कीजिये । ॐ नीचे गिराइये । ॐ चामुण्डे ! किलि किलि । ॐ विच्चे द्वं फट् स्वाहा ॥ २ ॥

यह 'जवा' नामक पदमाला है, जो गमस्त कर्मोंको सिद्ध करनेवाली है । इसके द्वारा होम करनेसे तथा इसका जप एवं पाठ आदि करनेसे गदा ही युद्धमें विजय प्राप्त होती है । अद्वाईस भुजाओंसे युक्त चामुण्डा देवीका ध्यान करना चाहिये । उनके दो हाथोंमें तलवार और खटक हैं । दूसरे दो हाथोंमें गदा और दण्ड हैं । अन्य दो हाथ धनुष और वाण धारण करते हैं । अन्य दो हाथ मुष्टि और मुद्रसे युक्त हैं । दूसरे दो हाथमें शङ्ख और खङ्ग हैं । अन्य दो हाथोंमें घ्वज और वज्र हैं । दूसरे दो हाथ चक्र और परशु धारण करते हैं । अन्य दो हाथ डमरु और दर्पणसे सम्पन्न हैं । दूसरे दो हाथ शक्ति और कुन्द धारण करते हैं । अन्य दो हाथोंमें हल और मूसल हैं । दूसरे दो हाथ पाश और तोमरसे युक्त हैं । अन्य दो हाथोंमें ढक्का और पगाव है । दूसरे दो हाथ अभयकी मुद्रा धारण करते हैं तथा शोप दो हाथोंमें मुष्टिक शोभा पाते हैं । वे महिषासुरको डॉट्ती और उसका वध करती हैं । इस प्रकार ध्यान करके हवन करनेसे साधक, शत्रुओंपर विजय पाता है । धी, शहद और चीनीमिश्रित तिलसे हवन करना चाहिये । इस संग्रामविजय-विद्याका उपदेश जिस-किसीको नहीं देना चाहिये (अधिकारी पुरुषको ही देना चाहिये) ॥ ३-७ ॥

युद्धजयार्थमें 'संग्रामविजय-विद्याका वर्णन'

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय

नक्षत्रोंके त्रिनाड़ी-चक्र या फणीश्वर-चक्रका वर्णन

महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी त्रिनाड़ी-चक्रका वर्णन करूँगा, जो यात्रा आदिमें फलदायक होता है। अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें तीन नाडियोंसे भूषित चक्र अङ्कित करे। पहले अश्विनी, आद्री और पुनर्वसु अङ्कित करे; फिर उत्तराफाल्युनी, इस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा और पूर्वभाद्रपद—इन नक्षत्रोंको लिखे। यह प्रथम नाडी कही गयी है। दूसरी नाडी इस प्रकार है—भरणी, मृगशिरा, पुष्य, पूर्वाफाल्युनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वोपादा, धनिष्ठा तथा उत्तराभाद्रपद। तीसरी नाडीके नक्षत्र ये हैं—कृतिका, रोहिणी, आश्लेषा, मधा, स्वती, विशाखा, उत्तरापादा, श्रवण तथा रेवती * ॥ १-४ ॥

इन तीन नाडियोंके नक्षत्रोंद्वारा सेवित ग्रहके अनुसार इस प्रकार आदि आनन्द भास्तुराणमें ‘नक्षत्रचक्र-वर्णन’ नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३६ ॥

एक सौ सेतीसवाँ अध्याय

महामारी-विद्याका वर्णन

महेश्वर कहते हैं—देवि ! अब मैं महामारी-विद्याका वर्णन करूँगा, जो शत्रुओंका मर्दन करनेवाली है ॥ १ ॥

ॐ हीं महामारि इक्षाक्षि कृष्णवर्णे यमस्याश्राकारिणि
सर्वभूतसंहारकारिणि अमुकं हन हन, ॐ दह दह, ॐ पच

* अभिपुराणकी ही माँनि नारदपुराण, पूर्व भाग, द्वितीय पाद, अध्याय ५६के ५०९वें इलोकमें भी त्रिनाड़ी चक्रका वर्णन है।

यथा—

त्रिनाड़ी—

पच, ॐ दिछुन्द चिछुन्द, ॐ मार्य मार्य, ओमुत्सादयोत्सादय,
ॐ सर्वमस्तववशंकरि सर्वकामिके हुं फट् स्वाहा ॥

ॐ हीं लल नेत्रों तथा काले रंगवाली महामारि ! तुम
यमराजकी आशाकारिणी हो, समग्न भूतोंका संहार

१	अश्विनी	आद्री	पुनर्वसु	उत्तरा-फाल्युनी	इस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्व-भाद्रपद
२	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्व-फाल्युनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वोपादा	धनिष्ठा	उत्तरापादा
३	कृतिका	रोहिणी	आश्लेषा	मधा	स्वती	विशाखा	उत्तरापादा	श्रवण	रेवती

करनेवाली हो, मेरे अमुक शत्रुका हनन करो, हनन करो । ॐ उसे जलाओ, जलाओ । ॐ पक्षाओ, पक्षाओ । ॐ काटो, काटो । ॐ मारो, मारो । ॐ उखाड़ फेंको, उखाड़ फेंको । ॐ समस्त प्राणियोंको बद्धमें करनेवाली और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली ! हुं फट् स्वाहा ॥ २ ॥

अङ्गन्यास

‘ॐ मारि इद्याय नमः ।’—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी मध्यमा, अनाभिका और तर्जनी अङ्गुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे । ‘ॐ महामारि शिरसे स्वाहा ।’—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथसे सिरका स्पर्श करे । ‘ॐ काढ़हात्रि शिखायै कौषट् ।’—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी अङ्गुठेसे शिखाका संग्राह करे । ‘ॐ कृष्णवर्णे खः कथचाय हुम् ।’—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंमें बार्धी भुजाका और नायें हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे दाहिना भुजाका स्पर्श करे । ‘ॐ तारकाशि विशुजिद्वे सर्वसात्त्वभवंकरि रक्ष रक्ष सर्वकार्येषु हुं त्रिनेत्रय वषट् ।’—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंके अग्रभागसे दोनों नंद्रा और ल्लाटके मध्यभागका स्पर्श करे । ‘ॐ महामारि सर्वभूतदमनि महाकाञ्जि अकाय हुं फट् ।’—इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथको सिरके ऊपर एवं बार्धी औरसे पीछेकी ओर के जाकर दाहिना औरसे आपका और ले आये और तर्जना तथा मध्यमा अङ्गुलियोंसे बाये हाथकी हथेलापर ताली बजाये ॥ ३ ॥

महादेवि ! साधकों यह अङ्गन्यास अवश्य करना चाहिये । वह सुरेन्द्रका वस्त्र लाकर उसे चौकोर फड़ ले । उसकी लंगाई-चौड़ाइं तीन-तीन हाथकी होनी चाहिये । उसों बज्जपर अंकक प्रकारके रंगोंसे देवीकी एक आङ्कुति बनवि, जिसका रंग काला हो । वह आङ्कुति तीन मुख और चार भुजाओंसे युक्त होनी चाहिये । देवीकी वह मूर्ति अपने हाथोंमें धनुष, धूल, कतरनी और खट्टवाङ् (खाटका पाया) धारण किये हुए हो । उस देवीका पहला मुख पूर्व दिशाकी ओर हो और अपनी काली आमासे प्रकाशित हो रहा हो तथा ऐसा जान पढ़ता हो कि इष्टि पढ़ते ही वह अपने आमने पढ़े हुए मनुष्यको खा जायगी । दूसरा मुख दक्षिण भागमें होना चाहिये । उसकी जो प्रत्येक लाल हो और वह देखनेमें भवानक जान पढ़ता हो । वह बिकराल मुख अपनी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त उत्कट और भयंकर हो और

जीभसे दो गलफर चाट रहा हो । साथ ही ऐसा जान पढ़ता हो कि इष्टि पढ़ते ही वह घोड़े आदिको खा जायगा ॥ ४-७३ ॥

देवीका तीसरा मुख पञ्चमाभिमुख हो । उसका रंग सफेद होना चाहिये । वह ऐसा जान पढ़ता हो कि रामने पढ़नेपर हाथी आदिको भी खा जायगा । गन्ध-पुष्प आदि उपचारों तथा धी-मधु आदि नैवेद्यद्वारा उसका पूजन करे ॥ ८३ ॥

पूर्वोंक मन्त्रका स्वरण करनेमात्रमें नेत्र और मस्तक आदिका रोग नष्ट हो जाता है । यथा और रासस भी वशमें हो जात हैं और शत्रुओंका नाश हो जाता है । यदि मनुष्य कोधुक्त होकर, निष्ठ-वृक्षकी समिधाओंको होम करे तो उस होममें ही वह अपने शत्रुको मार मस्ता है, इसमें नश्य नहीं है । यदि शत्रुकी सेनाकी ओर मुँह करके एक सप्ताहतक इन समिधाओंका हवन किया जाय तो शत्रुकी सेना नाना प्रकारके रोगासे ग्रस्त हो जाती है और उसमें भगदड़ मन्त्र जाती ह । जिसके नामसे आठ हजार उत्तर समिधाओंका होम कर दिया जाय, वह यदि ब्रह्मार्जिके द्वारा सुरक्षित हो तो भी शांघ ही मर जाता है । यदि धूतरेकी एक सहस्र समिधाओंको रक्त और विषमें संयुक्त करके तीन दिनतक उनका होम किया जाय तो शत्रु अपनी सेनाके साथ ही नष्ट हो जाता है ॥ ९-१२३ ॥

राहे और नमकसे होम करनेपर तीन दिनमें ही शत्रुकी मेनामें भगदड़ पढ़ जायगी—शत्रु भाग घड़ा होगा । यदि उसे गदहैके रक्तसे भित्रित करके होम किया जाय तो साधक अपने शत्रुका उच्चाटन कर सकता है—वहांसे भागनेके लिये उसके मनमें उच्चाट पैदा कर सकता है । कौएके रक्तसे सयुक्त करके हवन करनेपर शत्रुको उखाड़ फेंका जा सकता है । साधक उसके वधमें समर्थ हो सकता है तथा साधकके मनमें जो-जो इच्छा होती है, उन सब इच्छाओंको वह पूर्ण कर लेता है । युद्धकालमें साधक हाथीपर आस्त हो, दो कुमारियोंके साथ रहकर, पूर्वोंक मन्त्रद्वारा शरीरको सुरक्षित कर ले; फिर दूरके शब्द आदि वाद्योंको पूर्वोंक महामारी विद्यासे अभिमन्त्रित करे । तदनन्तर महामायाकी प्रतिमासे युक्त बज्जको लेकर समराङ्गणमें ऊँचाईपर फहराये और शत्रुसेनाकी ओर मुँह करके उस महान् पटको उसे

दिलाये। तत्प्रभाव वहाँ कुमारी कन्याओंको मोत्तम करते। फिर पिण्डीको कुमारे। उस समय शाख क्या चिन्दन करे कि शशुकी सेना पाणाणकी माँति निष्ठल हो गयी है॥१४-१५॥

वह वह भी भाषना करे कि शशुकी सेनामें लड़नेका उत्तमाइ नहीं रह गया है, उसके पाँव उल्ल गये हैं और वह बड़ी भवराहटमें पढ़ गयी है। इस प्रकार करनेसे शशुकी सेनाका सम्मन हो जाता है। (वह चित्तलिखितकी माँति रही रह जाती है, कुछ कर नहीं पाती।) यह मैंने सम्मनका

इस प्रकार आदि आव्यय महापुण्यमें 'महामारी-विषयक वर्णन' नम्बर एक सौ सेतीसर्वो अव्यय पूरा हुआ॥ १५० ॥

एक सौ अद्वृतीसर्वाँ अव्याय

तन्त्रविषयक छः कर्मोक्त वर्णन

महादेवजी कहते हैं—पार्वति ! सभी मन्त्रोंके सम्बद्धरूपसे जो छः कर्म कहे गये हैं, उनका वर्णन करता हैं, मुझो। शान्ति, वश्य, सम्मन, द्वेष, उच्चाटन और मारण—ये छः कर्म हैं। इन सभी कर्मोंमें छः सम्प्रदाय अथवा विन्यास होते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—पश्चल्य, योग, रोधक, सम्पुट, ग्रन्थन तथा विदर्भ। भोजपत्र आदिपर पहले जितका उच्चाटन करना हो, उस पुरुषका नाम लिले। उसके बाद उच्चाटन-सम्बन्धी मन्त्र लिले। लेजनके इस क्रमको 'पश्चल्य' नामक विन्यास या सम्प्रदाय समझना चाहिये। वह उच्चकोटिका महान् उच्चाटनकारी प्रयोग है। आदिमें मन्त्र लिला जाय फिर साध्य व्यक्तिका नाम अद्वृत किया जाय। वह साध्य दीचमें रहे। इसके लिये अन्तमें पुनः मन्त्रका उत्तरेक किया जाय। इस क्रमको 'योग' नामक सम्प्रदाय कहा गया है। शशुके समस्त कुलका संहार करनेके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये॥ १—२५॥

पहले मन्त्रका पद लिले। दीचमें साधका नाम लिले। अन्तमें फिर मन्त्र लिले। फिर साध्यका नाम लिले। तत्प्रभाव पुनः मन्त्र लिले। वह 'रोधक' सम्प्रदाय कहा गया है। सम्मन आदि कर्मोंमें इसका प्रयोग करना चाहिये। मन्त्रके उपर नीचे, दायें, बायें और दीचमें भी साधका नामोस्तेष्ट करे। इसे 'सम्पुट' समझना चाहिये। वायाकर्षण-कर्ममें इसका प्रयोग करे। अब मन्त्रका एक अक्षर लिलाकर फिर साध्यके नामका एक अक्षर लिला जाय और इन-

प्रयोग बताया है। इसका जिस-किसी मीं व्यक्तिको उपरेक्षणी देना चाहिये। यह तीनों लोकोंपर विक्षय दिलानेवाली देवी 'माया' कही गयी है और इसकी आहुतिले अद्वृत वज्रको भायापट छापा गया है। इसी तरह हुआ, ऐसी, कुञ्जितका बद्देव तथा अगवान् दृश्यिती आहुतिका भी वश्यर अहुल किया जा सकता है। इस तरहकी आहुतियोंसे अद्वृत पट आदिके द्वारा भी यह सम्मनका प्रयोग लिल हो सकता है॥ २०-२१॥

प्रकार बारी-बारीसे दोनोंके एक-एक अक्षरको लिलाते हुए मन्त्र और साध्यके अक्षरोंको परस्पर प्रथित कर दिया जाय तो यह ग्रन्थनें नामक सम्प्रदाय है। इसका प्रयोग आकर्षण या वशीकरण करनेवाला है। पहले मन्त्रका दो अक्षर लिले, फिर साध्यका एक अक्षर। इस तरह बार-बार लिलाकर दोनोंको पूर्ण करे। (यदि मन्त्राक्षरोंके दीचमें दीर्घमात्रि हो जाय तो उचारा उनका उत्तेष्ट करे।) इसे 'विदर्भ' नामक सम्प्रदाय समझना चाहिये तथा वशीकरण एवं आकर्षणके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये॥ ३—७॥

आकर्षण आदि जो मन्त्र हैं, उनका अनुष्ठान वसन्स-क्रृद्गुमें करना चाहिये। तापज्ञरके निवारण, वशीकरण तथा आकर्षण-कर्ममें 'स्वाहा'का प्रयोग क्षुभ होता है। शान्ति और शूद्धि-कर्ममें 'नमः' पदका प्रयोग करना चाहिये। पौष्टि-कर्म, आकर्षण और वशीकरणमें 'पश्चकार'का प्रयोग करे। विदेषम्, उच्चाटन और मारण आदि अशुभ कर्ममें पृथक् 'फट्' पदकी योजना करनी चाहिये। क्षम आदिमें तथा मन्त्रकी दीक्षा आदिमें 'पश्चकार' ही लिदिदायक होता है। मन्त्रकी दीक्षा देने-वाले आचार्यमें यमराजकी भावना करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो ! आप यम हैं, यमराज हैं, कालरूप हैं तथा भर्मराज हैं। मेरे द्वारा हुए इस शशुको शीघ्र ही मर दियाहे'॥ ८—११॥

तब शशुक्षण आव्याय प्रसम्प्रितसे इस प्रकार उत्तर है—'साधक ! हुम सफल होयो। मैं यमरूपक त्रुम्भरे

शाशुको मार गिरता हूँ । इनेत कमलार यमराजकी पूजा करके होम करनेवे यह प्रयोग कठुलता होता है । अपनेमें भैरवकी आवाजा करके अपने ही भैरव कुरुभरी (भैरवी) की भी आवाजा करे । ऐसा करनेवे साधक शर्तमें आने तथा शशुके भावी शृण्डान्तस्त्रे आन देता है । भूर्गर्हिणि

हुने । (शृण्डकी रक्षाकरनेवाली अथवा तुर्गम संकटसे बचाने वाली देवि । आपको नमस्कार है) —इस मन्त्रके द्वाय हुना-जीकी पूजा करके साधक शशुका नाश करनेमें समर्थ होता है । ‘इ स क्ष म ल व र यु म’—इस भैरवी-मन्त्रका वध करनेपर साधक अपने शशुका वध कर सकता है ॥ १२-१४ ॥

इस प्रकार जादि अनेक महापुराणमें पट्टकंका वर्णन नामक एक सौ अष्टावीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३८ ॥

एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

साठ संबत्सरोंमें मूरुण-शूर्यके नाम एवं उनके फल-मेदका कथन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—पार्वति ! अब मैं शाठ संबत्सरों (मैसे कुछ) के शुभाशुभ फलको कहता हूँ, ज्यान देकर हुनो । ‘प्रभव’ संबत्सरमें यशकर्मणी कठुलता होती है । ‘विभव’में प्रजा तुली होती है । ‘शुक्र’में समस्त बान्य प्रचुर मात्रामें उत्पन्न होते हैं । ‘प्रगोद’से सभी प्रसुदित होते हैं । ‘प्रजापति’ नामक संबत्सरमें शृदि होती है । ‘आश्चिरा’ संबत्सर भोगोकी शृदि करनेवाला है । ‘श्रीमुख’ संबत्सरमें बनसंख्याकी शृदि होती है और ‘भाव’ संबत्सरमें प्राणियोंमें सद्भावकी शृदि होती है । ‘युवा’ संबत्सरमें मेष प्रचुर शृदि करते हैं । ‘भाता’ संबत्सरमें समस्त ओषधियों कठुलतासे उत्पन्न होती है । ‘ईश्वर’ संबत्सरमें शैम और आरोग्यकी प्राप्ति होती है । ‘बहुवान्य’में प्रचुर अज उत्पन्न होता है । ‘प्रमाणी’ वर्ष मध्यम होता है । ‘विकल्प’में अज-सम्मादकी अधिकता होती है । ‘पूष’ संबत्सर कल्पर्ण प्रजाओंका पोषण करता है । ‘चित्रभानु’ विविच्छाता और खुमानु कल्पण एवं आरोग्यको उपस्थित करता है । ‘न्याय’ संबत्सरमें मेष शृभकारक होते हैं ॥ १-५ ॥

‘वार्षिक्य’में लस-सम्पति, ‘अध्यय’में अतिशृष्टि, ‘पूष-वित्त’में उत्तम शृदि और ‘वर्षाशारी’ नामक संबत्सरमें खास्यादिकी अधिकता होती है । ‘विरोधी’ भेदोंका नाश करता है अर्थात् अनाशुक्लिकारक होता है । ‘विकृति’

भय प्रदान करनेवाला है । ‘स्वर’ नामक संबत्सर पुरुषोंमें शौर्यका संचार करता है । ‘नन्दन’में प्रजा आनन्दित होती है । ‘विजय’ संबत्सर शशुनाशक और ‘जय’ रोगोंका मर्दन करनेवाला है । ‘व्यन्नीय’में विश्व ज्वरसे वीक्षित होता है । ‘दुष्कर’में प्रजा दुष्करमें प्रशुत होती है । ‘दुर्मुख’ संबत्सरमें मनुष्य कदुभाषी हो जाते हैं । ‘देमकल्प’से सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है । महादेवि ! ‘विलम्ब’ नामक संबत्सरमें अजकी प्रचुरता होती है । ‘विकारी’ शशुओंको कुपित करता है और ‘शार्वरी’ कही कही सुविप्रदा होती है । ‘प्लव’ संबत्सरमें जलशयोंमें बाढ़ आती है । ‘शोभन’ और ‘शुभद्रुत’में प्रजा संबत्सरके नामानुकूल गुणसे युक्त होती है ॥ ६-१० ॥

‘प्राक्षस’ वर्षमें लोक निष्ठुर हो जाता है । ‘आनल’ संबत्सरमें विविष धान्योंकी उत्पत्ति होती है । ‘पिङ्कल’में कही-कही उत्तम शृदि और ‘काळयुक्त’में चनहानि होती है । ‘सिद्धार्थ’में सम्पूर्ण कायोंकी शिदि होती है । ‘वैद्युत’वर्षमें विश्वमें रोद्रभावोंकी प्रशुति होती है । ‘कुर्मति’ संबत्सरमें मध्यम वर्षों और ‘भुन्तुभिं’में महाल एवं धन-धान्यकी उपलब्धि होती है । ‘हशिरोद्वारी’ और ‘क्षकाल’ नामक संबत्सर रक्तपान करनेवाले हैं । ‘कोषन’ वर्ष विलयपद है । ‘क्षय’ संबत्सरमें प्रजाका धन क्षीण होता है । इस प्रकार शाठ संबत्सरों (मैसे कुछ) का वर्णन किया गया है ॥ १२-१३ ॥

इस प्रकार जादि अनेक महापुराणमें ‘साठ संबत्सरों (मैसे कुछ) के नाम एवं उनके फल-मेदका कथन’ नामक एक सौ अष्टावीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३९ ॥

एक सौ चालीसवाँ अध्याय

वस्त्र आदि योगोंका वर्णन

भगवान् महेभर कहते हैं—स्कन्द । अब मैं बड़ी-करण आदिके योगोंका वर्णन करूँगा । निम्नाङ्कित ओषधियोंको सोलह कोष्ठवाले चक्रमें अङ्कित करे—भृङ्गराज (भृंगरेया), सहदेवी (सहदेहया), मोरकी शिखा, पुत्रजीवक (जीवापोता) नामक वृक्षकी छाल, अधःपुष्पा (गोक्षिया), बद्धनिका (बद्धनन्ती), कुमारी (चीकुँआर), बद्धजटा (छताविशेष), विष्णुकान्ता (अपराजिता), श्वेतार्क (लफेद मदार), लज्जाकुका (लाजवन्ती छाता), मोहल्ला (विपुरमाली), काला धूतूरा, गोरखकर्कटी (गोरखककड़ी या गुरुमही), मेषशूक्री (मेदासिंगी) तथा स्तुही (सेंहुड) ॥ १—३ ॥

ओषधियोंके ये भाग प्रदक्षिण-क्रमसे शूलित् १६, वहि ८, नाग ८, पक्ष २, मुनि ७, मनु १४, शिव ११, वसुदेवता ८, दिशा १०, शर ५, वेद ४, ग्रह ९, शृङ्ग ६, सर्प १२, चन्द्रमा १ तथा तिथि १५—इन सांकेतिक नामों और संख्याओंसे यहीत होते हैं । प्रथम चार ओषधियोंका अर्थात् भृंगरेया, सहदेहया, मोरकी शिखा और पुत्रजीवककी छाल—इनका चूर्ण बनाकर इनसे धूपका काम लेना चाहिये । अथवा इन्हें पानीके साथ पीसकर उत्तम उबटन

तैयार कर के और उसे अपने अङ्कोंमें लगाने ॥ ४-५ ॥

तीवरे चतुष्क (चौक) अर्थात् अपराजिता, स्वेतार्क, लाजवन्ती छाता और मोहल्ला—इन चार ओषधियोंसे अङ्गन तैयार करके उसे नेत्रमें लगावे तथा चौथे चतुष्क अर्थात् काला धूतूरा, गोरखककड़ी, मेदासिंगी और सेंहुड—इन चार ओषधियोंसे मिश्रित बलके द्वारा स्नान करना चाहिये । भृङ्गराजवाले चतुष्कके बादका जो द्वितीय चतुष्क अर्थात् अधःपुष्पा, बद्धनन्ती, कुमारी तथा बद्धजटा नामक ओषधियों हैं, उन्हें पीसकर अनुलेप या उबटन लगानेका विधान है ॥ ६ ॥

अधःपुष्पाको दाहिने पाईर्वमें धारण करना चाहिये तथा लाजवन्ती आदिको बाम पाईर्वमें । मधूरशिखाको पैरमें तथा वृत्तकुमारीको महसूकपर धारण करना चाहिये । बद्धजटा, गोरखककड़ी और मेदाशूक्री—इनके द्वारा सभी कायोंमें धूपका काम लिया जाता है । इन्हें पीसकर उबटन बनाकर जो अपने शरीरमें लगाता है, वह देवताओंद्वारा भी सम्मानित होता है । भृङ्गराज आदि चार ओषधियों, जो धूपके उपयोगमें आती हैं, श्रावदिजनित बाधा दूर करनेके लिये उनका उद्दर्तनके कार्यमें भी उपयोग बताया गया है ।

* ओषधियोंके चतुष्क, नाम, विशेष सेवन और उपयोग निम्नाङ्कित चक्रोंसे जानने चाहिये—

चक्रनाम	ओषधियोंकी नामावधी				उपयोगी
प्रथम चतुष्क विशेष संकेत	१ भृङ्गराज शूलित् १६	२ सहदेवी वहि ६ गुण	३ मधूरशिखा नाग ८	४ पुत्रजीवक पक्ष २ नेत्र	धूप-उबटन
द्वितीय चतुष्क विशेष संकेत	५ अधःपुष्पा मुनि ७ झेल	६ बद्धनिका मनु १४ सेंहुड	७ कुमारी दिशा ११	८ बद्धजटा वसु ८	अनुलेप
तृतीय चतुष्क विशेष संकेत	९ विष्णुकान्ता दिशा १०	१० श्वेतार्क शर ५	११ लज्जाकुका वेद ४ गुण	१२ मोहल्ला ग्रह ९	अङ्गन
चौथा चतुष्क विशेष संकेत	१३ कुण धूतूर शृङ्ग ६	१४ गोरखकर्कटी सर्प १२	१५ मेषशूक्री चन्द्रमा १	१६ स्तुही तिथि १५	स्नान

बुगादिले सूचित कलाकुका आदि ओषधियाँ अङ्गनके लिये बतायी गयी हैं। बाण आदिसे सूचित इवेतार्क आदि ओषधियाँ स्नान-कर्ममें उपयुक्त होती हैं। बृतकुमारी आदि ओषधियाँ भक्षण करनेयोग्य कही गयी हैं और पुश्जीवक आदिसे संयुक्त जलका पान बताया गया है। शृत्विक् (भैरवीय), वेद (कालबन्ती), शृतु (काला धूता) तथा नेत्र (पुश्जीवक)—इन ओषधियोंसे तैयार किये हुए चन्दनका तिलक सब लोगोंको मोहित करने वाला होता है ॥ ७—१० ॥

सूर्य (गोरखकर्णी), चिदशा (काला धूता), पक्ष (पुश्जीवक) और पर्वत (अधःपुष्पा)—इन ओषधियोंका अपने शारीरमें लेप करनेसे छी बद्धामें होती है। अन्नमा (मेदासिंगी), इन्द्र (बद्रदन्तिका), नाग (मोर-शिखा), बद्र (धीकुआर)—इन ओषधियोंका योनिमें लेप करनेसे कियाँ बद्धामें होती हैं। तिथि (सेहुड), दिक् (अपराजिता), युग (कालबन्ती) और बाण (इवेतार्क)—इन ओषधियोंके द्वारा बनायी हुई गुटिका (गोली) लोगोंको बद्धामें करनेवाली होती है। किसीको बद्धामें करना हो तो उसके लिये भक्षण, भोज्य और पेय पदार्थमें इसकी एक गोली मिला देनी चाहिये ॥ ११-१२ ॥

शृत्विक् (भैरवीय), ग्रह (मोहल्ता), नेत्र (पुश्जीवक) तथा पर्वत (अधःपुष्पा)—इन ओषधियोंको मुखमें धारण किया जाय तो इनके प्रभावसे शाशुओंके चलाये हुए अङ्ग-शाश्वोंका स्तम्भन हो जाता है—वे बातक आघात नहीं कर पाते। पर्वत (अधःपुष्पा), इन्द्र (बद्रदन्ती), वेद (कालबन्ती) तथा रन्ब्र (मोहल्ता)—इन

इस प्रकार आदि आमेव महापुराणमें वद्य आदि लोगोंका वर्णन नामक एक सौ आलीसदाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४० ॥

एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय

छत्तीस क्षेत्रोंमें निर्दिष्ट ओषधियोंके वैज्ञानिक प्रभावका वर्णन

महावेदजी कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं छत्तीस पदों (कोष्ठों) में लापित की हुई ओषधियोंका फल बताता हूँ। इन ओषधियोंके सेवनसे मनुष्योंका अमरीकरण होता है। मेरे औषध बद्धा, बद्र तथा इन्द्रके द्वारा उपयोगमें लाये गये हैं ॥ १ ॥

ओषधियोंका अपने शारीरमें लेप करके मनुष्य पानीके भीतर निवास कर सकता है। बाण (इवेतार्क), नेत्र (पुश्जीवक), मन् (बद्रदन्ती) तथा बद्र (धीकुआर)—इन ओषधियोंसे बनायी हुई बटी भूख, प्यास आदिका निवारण करनेवाली होती है। तीन (सहदेश्या), सोलह (भैरवीय), दिशा (अपराजिता) तथा बाण (इवेतार्क)—इन ओषधियोंका लेप करनेसे दुर्भग्ना छी सुभग्ना बन जाती है। त्रिदशा (काला धूता), अक्षि (पुश्जीवक) तथा दिशा (विष्णुकान्ता) और नेत्र (सहदेश्या)—इन दवाओंका अपने शारीरमें लेप करके मनुष्य सर्वोंके साथ क्रीड़ा कर सकता है। इसी प्रकार चिदशा (काला धूता), अक्षि (पुश्जीवक), शिव (बृतकुमारी) और सर्प (मधू-शिखा) से उपलक्षित दवाओंका लेप करनेसे छी सुखपूर्वक प्रसव कर सकती है ॥ १३—१५ ॥

सात (अधःपुष्पा), दिशा (अपराजिता), मुनि (अधःपुष्पा) तथा रन्ब्र (मोहल्ता)—इन दवाओंका बद्धामें लेपन करनेसे मनुष्यको ज्ञाप्तमें विजय प्राप्त होती है। काला धूता, नेत्र (पुश्जीवक), अनिधि (अधःपुष्पा) तथा मन् (बद्रदन्तिका) से उपलक्षित ओषधियोंका लिङ्गमें लेप करके रति करनेपर जो गर्भाधान होता है, उससे पुत्रकी उत्पत्ति होती है। ग्रह (मोहल्ता), अविष्टि (अधःपुष्पा), सूर्य (गोरखकर्णी) और चिदशा (काला धूता)—इन ओषधियोंद्वारा बनायी गयी बटी सबको बद्धामें करनेवाली होती है। इस प्रकार शृत्विक् आदि सोलह पदोंमें स्थित ओषधियोंके प्रभावका वर्णन किया गया ॥ १६-१७ ॥

हरीतकी (हरे), अक्षधानी (आँखला), मरीच (गोलमिर्च), पिप्पली, शिखा (जटामांसी), बहिर (भिजावा), शुण्डी (ढोंठ), पिप्पली, गुहुची (गिलोय), बच, निम्ब, बातक (अदूसा), दातमूली (शतावरी), मैवन (सैधानमक), सिन्धुवार, कण्टकारि (कटेरी),

मोक्षुर (योग्य), विस्व (वेळ), पुनर्जीवा (गवहपूर्णी), बल (बरियारा), रेख, मुण्डी, रुचक (विजौरा नीरू), भृत्य (दाल्वीनी), शार (लारा नमक या यक्षार), पर्षट (पित्तरापड़ा), भन्याक (भनिया), जीरक (जीरा), शतपुष्टी (बौंक), यवानी (अजवाइन), विज़ज़ (वायविङ्ग), खदिर (लैर), कृतमाल (अमलतास), हस्ती, बच्चा, सिद्धार्थ (सफेद सरसों)—ये छत्तीस पद्मों में स्थापित औषध हैं ॥ २-५ ॥

कमशः एक दो आदि संख्यावाले ये महान् औषध समस्त रोगोंको दूर करनेवाले तथा अमर बनानेवाले हैं; इतना ही नहीं, पूर्वोक्त उभी कोष्ठोंके औषध शारीरमें छारियों नहीं पहने देते और बालोंका पक्का रोक देते हैं। इनका चूर्ण या इनके रससे भावित बटी, अबलेह, कशाय (काढ़), लड्डू या गुड़ खण्ड यदि धी या मधुके साथ साथा जाय, अथवा इनके रससे भावित बटी या तेलका जिस किसी तरहसे भी उपयोग किया जाय, वह सर्वथा मृतसंजीवन (मुर्देंको भी जिलानेवाला) होता है। आधे कर्ष या एक कर्षभर अथवा आधे पल या एक पलके तोलमें इसका उपयोग करनेवाला पुरुष यथेष्ट आहार-विहारमें तत्पर होकर तीन सौ बष्ठोंतक जीवित रहता है। मृतसंजीवनी-कस्यमें इसले बढ़कर दूसरा योग नहीं है ॥ ६-१० ॥

(नौ-नौ औषधोंके समुदायको एक ज्ववक कहते हैं। इस तरह उक्त छत्तीस औषधोंमें चार नवक होते हैं।) प्रथम नवकके योगसे बनी हुई ओषधिका सेवन करनेसे मनुष्य

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'छत्तीस कोष्ठोंके भीतर स्थापित ओषधियोंके विज्ञानका वर्णन' नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय ॥ १४९ ॥

उच रोगोंसे छुटकारा पा जाता है, इसी सरह दूर, लीले और चौथे नवकके योगका सेवन करनेसे भी मनुष्य रोगमुक्त होता है। इसी प्रकार पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, चौंचवें और छठें छठकोंके सेवनमान्यत्वे भी मनुष्य नीयोग हो जाता है। उक्त छत्तीस ओषधियोंमें नी चतुर्थ होते हैं। उनमेंसे किसी एक चतुर्थके सेवनसे भी मनुष्यके लारे रोग दूर हो जाते हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठकी ओषधियोंके सेवनसे बाल-दोषसे छुटकारा मिलता है। तीसरी, चारहवीं, छत्तीसवाँ और सत्ताईसवाँ ओषधियोंके सेवनसे पिस-दोष दूर होता है तथा पौचवीं, छठीं, 'सातवीं, आठवीं और पंद्रहवीं ओषधियोंके सेवनसे कफ-दोषकी निवृत्ति होती है। चौतीसवें, पैंतीसवें और छत्तीसवें कोष्ठकी ओषधोंको भारण करनेसे बशीकरणकी सिद्धि होती है तथा ग्रहवाधा, भूतवाधा आदिसे छेकर निग्रहप्रयत्न सारे संकटोंसे छुटकारा मिल जाता है ॥ ११-१४५ ॥

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, एकादश संख्यावाली ओषधियों तथा बत्तीसवाँ, पंद्रहवीं एवं चारहवीं संख्यावाली ओषधियोंको भारण करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति (बशीकरणकी सिद्धि एवं भूतादि वाधाकी निवृत्ति) होती है। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। छत्तीस कोष्ठोंमें निर्दिष्ट की गयी इन ओषधियोंका शान जैसे-तैसे इर व्यनिको नहीं देना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

इस प्रकार आदि आनेय महापुराणमें 'छत्तीस

कोष्ठोंके भीतर स्थापित ओषधियोंके विज्ञानका

वर्णन' नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४९ ॥

एक सौ बयाल्वीसवाँ अध्याय

चोर और जातकका निर्णय, शनि-दृष्टि, दिन-राहु, फणि-राहु, तिथि-राहु
तथा विष्टि-राहुके फल और अपराजिता-मन्त्र एवं ओषधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! अब मैं मन्त्र-चक्र तथा औषध-चक्रोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं। जिन-जिन व्यक्तियोंके ऊपर चौरी करनेका सदैह हो, उनके लिये किसी बस्तु (बुद्ध, घूल

या देवता आदि) का नाम बोले। उस बस्तुके नामके अस्तरोंकी संख्याको तुगुनी करके एक स्थानपर रखते तथा उस नामकी माध्यांत्रोंकी संख्यामें चारसे गुण करके गुणनफल को दूर रखनपर रखते। पहली संख्यासे दूसरी संख्यामें

१-२. छ: ओषधियोंके समुदायको 'पद्म' और चार ओषधियोंके समुदायको 'चतुर्थ' कहते हैं।

भाग है। यदि कुछ शेष रहे तो वह व्यक्ति चोर है। यदि भाजक से भाज्य पूरा-पूरा कट जाय तो वह समझना चाहिये कि वह व्यक्ति चोर नहीं है॥ १३॥

अब यह बता रहा हूँ कि गर्भमें जो बालक है, वह पुज है या कन्या, इसका निष्पत्ति किस प्रकार किया जाय? प्रश्न करनेवाले व्यक्तिके प्रश्न-वाक्यमें जो-जो अक्षर उच्चारित होते हैं, वे सब मिलकर यदि विषम संख्यावाले हैं तो गर्भमें पुत्रकी उत्पत्ति सुचित करते हैं। (इसके विपरीत सम संख्या होनेपर उस गर्भसे कन्याकी उत्पत्ति होनेकी सूचना मिलती है।) प्रश्न करनेवाले से किसी बस्तुका नाम लेनेके लिये कहना चाहिये। वह जिस बस्तुके नामका उल्लेख करे, वह नाम यदि इत्तिलिंग है तो उसके अक्षरोंके सम होनेपर पूँछ गये गर्भसे उत्पन्न होनेवाला बालक वार्य औंसका काना होता है। यदि वह नाम पुंलिङ्ग है और उसके अक्षर विषम हैं तो पैदा होनेवाला बालक दाहिनी औंसका काना होता है। इसके विपरीत होनेपर उक्त शोष नहीं होते हैं। जी और पुरुषके नामोंकी मात्राओं तथा उनके अक्षरोंकी संख्यामें पृथक्-पृथक् चारसे गुण करके गुणनफलको अलग-अलग रखते। पहली संख्या भाग्ना-पिण्ड है और दूसरी संख्या 'वर्ण-पिण्ड'। वर्ण-पिण्डमें तीनसे भाग है। यदि सम शोष हो तो कन्याकी उत्पत्ति होती है, विषम शोष हो तो पुत्रकी उत्पत्ति होती है। यदि शून्य शोष हो तो परिसे पहले छोटीकी मृत्यु होती है और यदि प्रथम 'भाग्ना-पिण्ड'में तीनसे भाग होनेपर शून्य शोष रहे तो छोटे पहले पुरुषकी मृत्यु होती है। समस्त भागमें शून्य अक्षरवाले इत्योद्धारा प्रश्नको प्राप्त करके विचार करनेसे अधीष्ट फलका ज्ञान होता है॥ २-५॥

अब मैं शानि-चक्रका बर्णन करूँगा। जहाँ शानिकी दृष्टि हो, उस लग्नका सर्वथा परिस्याग कर देना चाहिये। जिस राशिमें शानि स्थित होते हैं, उससे सातवीं राशिपर उनकी पूर्ण दृष्टि रहती है, चौथी और दसवींपर आर्थी दृष्टि रहती है तथा पहली, दूसरी, आठवीं और बारहवीं राशिपर चौथाई दृष्टि रहती है। शुभकर्ममें इन सबका स्वाय करना चाहिये। जिस दिनका जो ग्रह अधिष्ठित हो, उस दिनका प्रथम पहर उसी प्रह्लका होता है और शोष ग्रह उस दिनके आवृत्ति-आवृत्ति पहरके अधिकारी होते हैं।

दिनमें जो समय शनिके भागमें पड़ता है, उसे पुढ़र्में स्थान है॥ ६-७॥

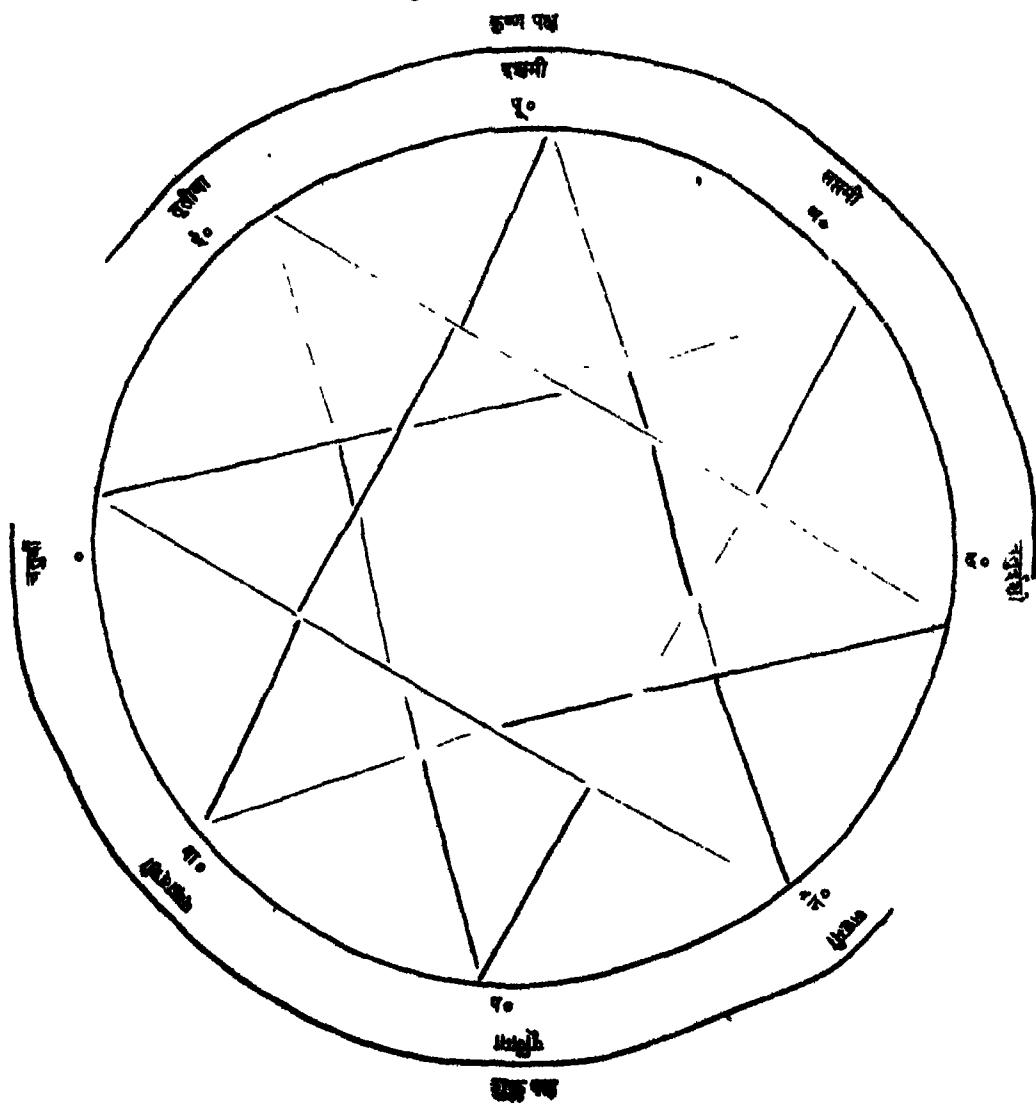
अब मैं त्रुदेह दिनमें राहुकी स्थितिका विषय बता रहा हूँ। राहु रविवारको पूर्वमें, शनिवारको बायम्बकोणमें, गुरुवारको दक्षिणमें, शुक्रवारको अग्निकोणमें, मङ्गलवारको भी अग्निकोणमें तथा बुधवारको उद्धा उच्चर दिशामें स्थित रहते हैं। फणि-राहु ईशान, अग्नि, नैऋत्य एवं बायम्ब-कोणमें एक-एक पहर रहते हैं और पुढ़रमें अपने सामने लेके हुए शत्रुको आवंषित करके मार डालते हैं॥ ८-९॥

अब मैं तिथि-राहुका वर्णन करूँगा। पूर्णिमाको अग्निकोणमें राहुकी स्थिति होती है और अमावास्याको बायम्ब-कोणमें। समुख राहु शत्रुका नाश करनेवाले हैं। पश्चिमसे पूर्वकी ओर तीन खड़ी रेखाएँ लींचे और फिर इन मूँह-भूत रेखाओंका भेदन करते हुए दक्षिणसे उच्चरकी ओर तीन पड़ी रेखाएँ लींचे। इस तरह प्रत्येक दिशामें तीन-तीन रेखाओं होंगे। सूर्य जिस राशिपर स्थित हो, उसे सामनेवाली दिशामें लिखकर क्रमशः बारहों राशियोंको प्रदक्षिण-क्रमसे उन रेखाओंपर लिखे। तत्प्रात् 'क' से लेकर 'ज' तकके अक्षरोंको सामनेकी दिशामें लिखे। 'क' से लेकर 'ह' तकके अक्षर दक्षिण दिशामें स्थित रहे, 'ध' से लेकर 'म' तकके अक्षर पूर्व दिशामें लिखे जायें और 'य' से लेकर 'इ' तकके अक्षर उच्चर दिशामें अस्तित हों। ये राहुके गुण या चिह्न बताये गये हैं। शुक्रपक्षमें इनका स्थान करे तथा तिथि-राहुकी समुख दृष्टिका भी स्थान करे। राहुकी दृष्टि सामने हो तो हानि होती है; अन्यथा विजय प्राप्त होती है॥ १०-१३॥

अब 'विष्णु-राहु'का वर्णन करता हूँ। निम्नाङ्कित रूपसे आठ रेखाएँ लींचे—ईशानकोणसे दक्षिण दिशातक, दक्षिण दिशासे बायम्बकोणतक, बायम्बकोणसे पूर्व दिशातक, वहाँसे नैऋत्य कोणतक, नैऋत्यकोणसे उच्चर दिशातक, उच्चर दिशासे अग्निकोणतक, अग्निकोणसे पश्चिम दिशातक तथा पश्चिम दिशासे ईशानकोणतक। इन रेखाओंपर विष्णु (भद्रा) के साथ महावाली राहु विचरण करते हैं। कृष्णपक्षकी दूरीचादि तिथियोंमें विष्णु-राहुकी स्थिति ईशानकोणमें होती है और सप्तमी आदि तिथियोंमें दक्षिण दिशामें। (इसी प्रकार शुक्रपक्षकी अहमी आदि में उनकी स्थिति नैऋत्यकोणमें होती है और चतुर्थी आदि में

उपर दिया में)। इस तरह कल्प एवं शुद्धपद्ममें बासुके आदि औठ शक्तियों सबा सूर्य आदि आठ अङ्गोंको सातपित
आमित रहनेवाले सम्मुख रहु शुद्धपद्मोंका नाश करते हैं। ० भरे। पूर्व आदि प्रस्त्रेक दिशामें शशाणी आदि आठ
विष्णु-शुद्धपद्मकी पूर्ण आदि दिशाओंमें इन्ह आदि आठ शक्तियोंके आठ अङ्गोंकी भी लापना करे। इक्षिण आदि
दिशाओं, महामैत्र आदि आठ भैशभेदों, ब्रह्मणी दिशाओंमें बातपोषितीका उत्तरेत करे। काषु विस दिशामें

* विष्णु-शुद्धपद्म इस प्रकार समझना, चाहिये—



१. विष्णु-शुद्धपद्म १। ५४ में आठ देवतोंनिःश्राम इस प्रकार जाये है—विष्णु-श्रेष्ठ, श्रमेत्र, वष्टवर (या वास-
वेत्र), शोषवेत्र, वस्त्रवेत्र, वशक्षेत्र, वीष्णवेत्र तथा संहारवेत्र ।

२. विष्णु-शुद्धपद्म के छठे शेषीं शशाणी आदि आठ शक्तियोंके नाम इस प्रकार जाये है—शशाणी, भावेत्री, शौमारी, वेष्णवी,
वासारी, वासेनी, वासुदेव तथा वामिका । विष्णु-शुद्धपद्म ११३ में ११३ वें शेषीं विष्णु-शुद्धपद्म की जागत 'वासुदेवी'का उल्लेख हुआ है ।

बही है, उसी दिशामें इन सबके साथ रहकर राहु
शत्रुओंका संहार करता है ॥ १४-१७३ ॥

अब मैं अङ्गोंको मुहूर करनेका उपाय बता रहा हूँ ।
पुष्यनक्षत्रमें उत्साही हुई तथा निम्नाङ्कित अपराजिता-
मन्त्रका जप करके कण्ठ अथवा मुजा आदिमें धारण की
हुई हरपुंखिका ('सरफोक' नामक ओषधि) विषकीके
बाणोंका छल्य बननेसे बचती है । इसी प्रकार पुष्यमें
उत्साही 'अपराजिता' एवं 'पाठा' नामक ओषधिको भी
यदि मन्त्रपाठपूर्वक कण्ठ और मुजाओंमें धारण किया
जाय तो उन होनेके प्रभावसे मनुष्य तल्लाके बारको बचा
सकता है ॥ १८-१९ ॥

(अपराजिता-मन्त्र इस प्रकार है—) ॐ नमो भगवति
वद्गम्भूके हन हन, ॐ भङ्ग भङ्ग, ॐ जाद, ॐ

इस प्रकार आदि आदनेय महापुराणमें 'मन्त्रीष्ठि आदिका वर्णन' नामक प्रक सो बगलीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४२ ॥

एक सौ तैतालीसवाँ अध्याय कुञ्जिका-सम्बन्धी न्यास एवं पूजनकी विधि

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द । अब मैं कुञ्जिकाकी
क्रमिक पूजाका वर्णन करूँगा, जो समस्त मनोरथोंको
विद्व करनेवाली है । 'कुञ्जिका' वह शब्द है, जिसकी
उत्तरायते राज्यपर स्थित हुए देवताओंने अङ्ग-शत्रुघ्निसे
अमुरांपर विजय पायी है ॥ ३ ॥

मायावीज 'ही' तथा हृदयादि छः मन्त्रोंका क्रमशः
गुणाङ्क एवं हाथमें न्यास करे । 'काळी-काळी'—यह हृदय-
मन्त्र है । 'तुह चाण्डालिका'—यह शिरोमन्त्र है । 'ही स्कै-
ह स च क क ह अंकारो भैरवः'—यह शिखा-सम्बन्धी
मन्त्र है । 'भेदली दूसी'—यह कवच-सम्बन्धी मन्त्र है ।
'रक्तचण्डिका'—यह नेत्र-सम्बन्धी मन्त्र है तथा 'गुडाकुञ्जिका'
—यह अङ्ग-सम्बन्धी मन्त्र है । अङ्गों और हाथोंमें इनका
न्यास करके मण्डलमें यथास्थान इनका पूजन करना
चाहिये ॥ २-३३ ॥

* गङ्गान्यास-सम्बन्धी वानको बोलना इस प्रकार है । ॐ
ही काली काली हृदयादि नमः । ॐ ही तुह चाण्डालिकाये शिरो
काला । ॐ ही स्कैह स च क क ह अंकारो भैरवाय शिखाये
कर्त् । ॐ ही भेदलये दूसी चाण्डाली हृदय । ॐ ही रक्तचण्डिकाये

अरे इसां पित्र कराकेव रक्तादि रक्तपटे भवारिः
भङ्गकिसकारीरे वद्गम्भूषे वद्गम्भूषनिषिते हीं
दिशं बन्ध बन्ध, ॐ दिशं बन्ध बन्ध, ॐ पश्चिमो
दिशं बन्ध बन्ध, ॐ उत्तरो दिशं बन्ध बन्ध, नागाद् बन्ध
बन्ध, नागपत्नीर्वच्छ बन्ध, ॐ अमुरां बन्ध बन्ध, ॐ वह-
शत्रुघ्नसपिशाचाद् बन्ध बन्ध, ॐ प्रेतभूतगच्छर्वाद्यो वे
केविषुपद्मवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष, ॐ ऊर्ध्व रक्ष रक्ष, ॐ ऊर्ध्वो
रक्ष रक्ष, ॐ भुरिकं बन्ध बन्ध, ॐ व्युठ महावके ।
वटि वटि, ॐ मोटि मोटि, सदाचक्षिक्षाप्ति वद्गम्भूषेरे
हु फट्, हीं हीं भी फट् हीं हीं हीं कैः सर्वप्रहेष्यः
सर्वद्वृष्टोपद्वेष्यो हीं अवोपेष्यो रक्ष रक्ष ॥ ३० ॥

प्रहीडा, व्युठ आदिकी पीडा तथा भूतबाधा
आदिके निवारण—इन सभी कर्मोंमें इस मन्त्रका उपयोग
करना चाहिये ॥ २१ ॥

इस प्रकार आदि आदनेय महापुराणमें 'मन्त्रीष्ठि आदिका वर्णन'

मण्डलके अग्निकोणमें कूर्च बीज (हूँ), ईशानकोणमें
शिरोमन्त्र (स्वाहा), नैश्चृत्यकोणमें शिखामन्त्र (बषट्),
बायव्यकोणमें कवचमन्त्र (हुम्), मध्यभागमें नेत्रमन्त्र
(बौषट्) तथा मण्डलकी सर्प्यूर्ण दिशाओंमें अङ्ग मन्त्र
(फट्) का उल्लेख एवं पूजन करे । वसीस अङ्गरोंसे
युन बच्चीस दलवाले कमलकी कर्णिकामें 'हीं ह स च म
क न व व ट स च' तथा आत्मर्वीज-मन्त्र (आम्) का
न्यास एवं पूजन करे । कमलके सब ओर पूर्व दिशाएं
नेत्रत्रयाय बौषट् । ॐ गुडाकुञ्जिकाये अङ्गाय फट् । इन छः
वाक्योंहारा क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं सर्प्यूर्ण
दिशाओंमें न्यास किया जाना है । इन्ही वाक्योंमें 'हृदय नमः'
के स्थानमें 'अङ्गान्या नमः', 'किसेः'के स्थानमें 'पर्वतीन्या नमः',
'शिखाये'के स्थानमें 'मध्यमान्या नमः', 'कवचचायान्या जगह' 'कानामिहान्या
नमः' 'नेत्रत्रयाय'के स्थानमें 'कूनिष्ठिकान्या नमः' तथा 'कवच'के
स्थानमें 'करतचकरपृष्ठान्या नमः' कर दिया जाव तो वे करतचास-
सम्बन्धी वाक्य हो जावेंगे तथा इनका नामः हृदय के दोनों अङ्गों, अङ्गरों,
करतचासों, मध्यमानों, अवामिकाओं, कमिष्ठिकाओं तथा करतच-कर-
पृष्ठ-चासोंमें न्यास किया जावेगा ।

आरम्भ करके क्रमशः ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका (महालक्ष्मी) का स्नान एवं पूजन करना चाहिये ॥ ४-५ ॥

तत्प्रथात् ईशान, पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैऋत्य और पश्चिममें क्रमशः र, ष, ल, क, स और ह—इनका स्नान और पूजन करे । फिर इन्हीं दिशाओंमें क्रमशः कुमुममाला एवं पाँच पर्वतोंका स्थापन एवं पूजन करे । पर्वतोंके नाम हैं—जालधर, पूर्णगिरि और कामरूप आदि । तत्प्रथात् बायब्य, ईशान, अग्नि और नैऋत्यकोणमें तथा मध्यभागमें ब्रह्मकुम्भिकाका पूजन करे । इसके बाद बायब्य, ईशान, नैऋत्य, अग्नि तथा उत्तर शिखरपर क्रमशः अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, प्रसिद्ध विमल, संयोग विमल तथा समय विमल—इन पाँच विमलोंकी पूजा करे । इन्हीं शूलोंपर कुम्भिकाकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः लिङ्गिनी, षष्ठी, सोपना, सुखिरा तथा रत्नसुन्दरीका पूजन करना चाहिये । ईशान कोण-वर्ती शिखरपर आठ आदिनाथोंकी आराधना करे ॥ ७-११ ॥

अग्निकोणवर्ती शिखरपर मिश्रकी, पश्चिमवर्ती शिखरपर औडीशा घण्टकी तथा बायब्यकोणवर्ती शिखरपर घटि

इस प्रकार आदि आनन्द भद्रपुराणमें ‘कुम्भिकाकी क्रम-पूजाका वर्णन’ नामक एक सौ तैतलीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥

एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय

कुम्भिकाकी पूजा-विधिका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द । अब मैं घर्म, अर्थ, काम तथा विजय प्रदान करनेवाली भीमती कुम्भिकादेवीके मन्त्रका वर्णन करूँगा । परिवारस्त्रहित मूलमन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ १ ॥

ॐ हैं ही भी जै हैं हस्तममकवर्यं भगवति अग्निके ही ही ही ही ही ही ही ही कुम्भिके हास् ॐ कलाजसेऽव्योरसुषि जां इां छीं किलि किलि हीं विष्वे वर्यो भी क्रोम्, ॐ हेम्, एं वज्रकुम्भिनि स्त्रीं औकेवय-कर्तिणि हीं कामङ्गप्रविणि हीं स्त्रीं महाक्षोभक्षरिणि एं हीं हीं हैं हीं भी कं हीं नसो भगवति हीं कुम्भिके हीं हों जै वज्रमन्त्रमेऽव्योरसुषि हीं छीं विष्वे, कं किलि किलि ।—यह कुम्भिकामन्त्र है ॥ २ ॥

अ० पु० अ० ३५—

नामक घण्टकी पूजा करनी चाहिये । पश्चिमदिशावर्ती शिखरपर शगनरस्त और कष्ठचदलकी अर्चना की आगी चाहिये । बायब्य, ईशान और अग्निकोणमें ‘हुं’ वीजस्त्रहित ‘पञ्चनामा’ संक्षक मर्त्यकी पूजा करनी चाहिये । इक्षिण दिशा और अग्निकोणमें ‘पञ्चरत्न’ की अर्चना करे । ज्येष्ठा, रौद्री तथा अन्तिका—ये तीन संभ्याओंकी अधिष्ठात्री देवियाँ भी उसी दिशामें पूजने योग्य हैं । इनके साथ सम्बन्ध रसनेवाली पाँच महावृद्धाएँ हैं, उन सबकी प्रणवके उच्चारणपूर्वक पूजा करनी चाहिये । इनका पूजन बताईस अथवा अडाईच-के मैदसे हो प्रकारका बताया गया है ॥ १२-१४ ॥

चौकोर मण्डलमें दाहिनी ओर गणपतिका तथा बायी ओर बद्रकाका पूजन करे । ‘ॐ एं गृं क्रमगणपतिये नमः ।’ इस मन्त्रसे क्रमगणपतिकी तथा ‘ॐ बद्रकाय नमः ।’ इस मन्त्रसे बद्रकाकी पूजा करे । बायब्य आदि कोणमें चार गुरुओंका तथा अठारह षट्कोणमें सोलह नाथोंका पूजन करे । फिर मण्डलके चारों ओर ब्रह्मा आदि आठ देवताओंकी तथा मध्यभागमें नवमी कुम्भिका एवं कुरुटा देवीकी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार सहा इसी क्रमसे पूजा करे ॥ १५-१७ ॥

कौली गायत्री

कुलवालीकी विज्ञहे, महाकौलीति धीमहि । तत्त्वः कौली प्रवोदयात् । ‘कुलवालीश्वरि ! हम आपको जानें । महाकौलीके रूपमें आपका चिन्तन करें । कौली देवी हमें शुभ कर्मोंके लिये प्रेरित करे’ ॥ ४ ॥

इसके पाँच मन्त्र हैं, जिनके आदिमें ‘प्रणव’ और अन्तमें ‘नमः’ पदका प्रयोग होता है । वीचमें पाँच नाथोंके नाम हैं; अन्तमें ‘वीणाकृष्ण पूज्यवालि’—इस पदको

जोहना चाहिये। मध्यमे देखताका चतुर्थन्त नाम, जोह देना चाहिये। इस प्रकार ये पाँचों मन्त्र लगभग अठारह-अठारह अक्षरोंके होते हैं। इन सबके नामोंको श्वी विभक्तिके साथ छंदुक करना चाहिये। इस तरह बाक्ययोजना करके इनके स्वरूप समझने चाहिये। मैं उन पाँचों नामोंका वर्णन करता हूँ—कौलीशनाथ, श्रीकण्ठनाथ, कौलनाथ, गगनानन्दनाथ तथा तृणनाथ। इनकी पूजाका मन्त्र-बाक्य इस प्रकार होना चाहिये—ॐ कौलीशनाथं नमस्तस्मै पादुकां पूजयामि। इनके साथ क्रमशः ये पाँच देवियाँ भी पूजनीय हैं—१—सुकला देवी, जो जन्मसे ही कुञ्जा होनेके कारण ‘कुञ्जिका’ कही गयी है; २—चटुला देवी, ३—मैत्रीशी देवी, जो विकराल रूपवाली है, ४—अतल देवी और ५—श्रीचन्द्रा देवी हैं। इन सबके नामके अन्तमें ‘देवी’ पढ़ है। इनके पूजनका मन्त्र-बाक्य इस प्रकार होगा—

‘ॐ सुकलादेव्यै नमस्तस्मै भगात्मपुङ्गणदेवमोहिनीं पादुकां पूजयामि।’ दूसरी (चटुला) देवीकी पादुकाका यह विशेषण देना चाहिये—‘अतीसंभुवनामन्दरनालहां पादुकां पूजयामि।’ इसी तरह तीसरी देवीकी पादुकाका विशेषण ‘ब्रह्मज्ञानालहां’, चौथीकी पादुकाका विशेषण ‘कण्ठालहां’ तथा पाँचवींकी पादुकाका विशेषण ‘परमविद्यालहां’ देना चाहिये ॥ ५-९ ॥

इस प्रकार विद्या, देवी और गुरु (उपर्युक्त पाँच नाथ) — इन तीनकी शुद्धि अतिशुद्धि कहलाती है। मैं तुमसे इसका वर्णन करता हूँ। गगनानन्द, चतुली, आत्मानन्द, पद्मानन्द, मणि, कला, कमल, माणिक्य कण्ठ, गगन, कुमुद, श्रीपद, भैरवानन्द, कमलदेव, शिव, भव तथा कृष्ण — ये सोलह नूतन चिद हैं ॥ १०-११ ॥

चन्द्रपूरु, गुरुम, शुभकाम, अतिमुक्तक, शीरकण्ठ, प्रयोग, कुशल, देवभोगक (अथवा भोगदायक), विश्वदेव, वाङ्मयेष, रुद्र, वासा, असि, मुद्रास्फोट, वंशपूर तथा भोज — ये सोलह चिद हैं। इन चिदोंका शरीर भी छः प्रकारके न्यायोंसे नियन्त्रित होनेके कारण इनके आत्माके समान जातिका ही (विद्यानन्दमय) हो गया है। मण्डलमे फूल विशेषकर मण्डलोंकी पूजा करे। अनन्त, महान्, शिवपादुका, महाव्याप्ति, शूल्य, पञ्चतत्त्वमयक-मण्डल, श्रीकण्ठनाथ-पादुका, शंकर एवं अनन्तकी भी पूजा करे ॥ १२-१६ ॥

विद्याविद्या, पिङ्गल, भूग्वानन्द, नाथ-समुदाय, काल्पक— नन्द और संवर्त—इन सबका मण्डल-स्थानमें पूजन करे। नैश्चर्यत्यक्तोलमें श्रीमहाकाल, पिनाकी, महेन्द्र, लक्ष्मी, नाश, वाणि, अवासि (पापका छेदन करनेके लिये लक्ष्मकप), शब्द, वदा, आशारूप और नन्दरूप—इनको बलि अपित करके क्रमशः इनका पूजन करे। इसके बाद बटुकको अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप, गन्ध एवं बलि तथा श्वेतपालको गन्ध, पुष्प और बलि अपित करे। इसके लिये मन्त्र इस प्रकार है—हाँ चं चं हूँ सौ बटुकव अह अह अर्घ्यं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं बलिं पूजां गृह शुक्ल नमस्तुम्यम् । ॐ हाँ हीं हूँ श्वेतपालकावादतरावादतर महाकपिकजटाभार भास्वर त्रिलोक उदाकामुख पद्मेहि गन्ध-पुष्पबलिपूजां गृह गृह शः शः ॐ कः ॐ लः ॐ भावामसराधिष्ठये स्वाहा । बलिके अन्तमे दायें-बायें तथा सामने त्रिकृटका पूजन करे; इसके लिये मन्त्र इस प्रकार ‘हे—हीं हूँ हाँ श्री त्रिकृटाय नमः।’ फिर दायें निशानाथकी, दाहिने तमोऽरिनाथ (या श्वर्णनाथ) की तथा सामने कालानलकी पादुकाओंका यजन-पूजन करे। तदनन्तर उद्बुद्धान, जालन्धर, पूर्णगिरि तथा कामरूपका पूजन करना चाहिये। फिर गगनानन्ददेव, वर्गसहित स्वर्गानन्ददेव, परमानन्ददेव, सत्यानन्ददेवकी पादुका तथा नाशानन्ददेवकी पूजा करे। इस प्रकार ‘वर्ग’ नामक पञ्चरत्नका तुमसे वर्णन किया गया है ॥ २७-२८ ॥

उत्तर और ईशानकोणमें इन छःकी पूजा करे—सुरनाथकी पादुकाकी, श्रीमान् समयकोटीश्वरकी, विद्याकोटीश्वरकी, कोटीश्वरकी, विन्युकोटीश्वरकी तथा सिद्धकोटीश्वरकी। अग्निकोणमें चाँचर सिद्ध-समुदायकी तथा अमरी-शेश्वर, चक्रीशेश्वर, कुरुक्षेश्वर, वृत्तेश्वर और चन्द्रनाथ या चन्द्रेश्वरकी पूजा करे। इन सबकी गन्ध आदि पञ्चपञ्चारोंसे पूजा करनी चाहिये। दक्षिण दिशामें अनादि विमल, सर्वज्ञ विमल, योगीश विमल, दिदू विमल और समय विमल—इन पाँच विमलोंका पूजन करे ॥ २४-२७ ॥

नैश्चर्य कोणमें चार वेदोंका, कंदर्पनाथका, पूर्वोक्त समूर्ण शक्तियोंका तथा कुञ्जिकाकी श्रीपादुकाका पूजन

१. मन्त्रमहोत्तमि १२ । १७ के अनुसार चार ‘सिद्धीष’ यह हैं। वसा—वोगदीक, समय, सहज और परावर। पूर्वोक्त मन्त्र—‘वेदशक्तिकालनन्दनावाय नमः, समयानन्दनावाय नमः’ इत्यादि ।

करे। इनमें कुबिजकाकी पूजा ॥३॥ हाँ हीं कुबिजकायै नमः ॥
—इत नवाक्षर मन्त्रसे अथवा केवल पाँच प्रणवरूप मन्त्रसे करे। पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त ब्रह्म, ईन्द्र, अग्नि, यम, निर्वृति, अमन्त्र, बृहण, बायु, कुबेर तथा ईशान—इन दस दिक्पालोंकी पूजा करे। सहस्रनेत्रधारी ईन्द्र, अनवय विष्णु तथा शिवकी पूजा सदा ही करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, बाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी—इनकी पूजा पूर्व दिशासे लेकर ईशानकोण-पर्यन्त आठ दिशाओंमें करमः करे ॥ २८-३१ ॥

तदनन्तर बायव्यकोणसे छः उग्र दिशाओंमें करमः डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा याकिनी—इनकी पूजा करे। तत्प्रभात् भ्यानपूर्वक कुबिजकादेवीका पूजन करना चाहिये। बत्तीस व्याख्यान अध्यात्र ही उनका शरीर है। उनके पूजनमें पांच प्रणव अथवा 'हाँ' का बीजल्पसे उच्चारण करना चाहिये। (वथा—ॐ अ॒ अ॑ अ॒ अ॑ कुबिजकायै नमः । अथवा ॐ हीं कुबिजकायै नमः ।) ॥ ३२-३३ ॥

देवीकी प्रक्रकान्ति नील कमल-दलके समान इयाम है, उनके छः मुख हैं और उनकी मुखक्रक्षि भी छः प्रकारकी है। वे चैतन्य-शक्तिवस्तुपां हैं। अष्टादशाक्षर

इम प्रकार आदि आनंद महापुराणमें 'कुबिजकाकी पूजाका वर्णन' नामक एक सौ चौदालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१-४४॥

- - - - -

एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

मालिनी आदि नाना प्रकारके मन्त्र और उनके शोहा-न्यास

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द । अब मैं छः प्रकारके न्यासपूर्वक नाना प्रकारके मन्त्रोंका वर्णन करूँगा । ये छहों प्रकारके न्यास 'शाम्भव,' 'शक्ति' तथा 'यामल' के मेदसे तीन-तीन प्रकारके होते हैं। 'शाम्भव न्यास' में षट्-षोडश ग्रन्थिरूप शब्दराशि प्रथम है, तीन विषाएँ और उनका ग्रहण द्वितीय न्यास है, त्रित्यालालक न्यास तीसरा है, बनयालान्यास चौथा है, यह बारह श्लोकोंका है। रत्नपञ्चकका न्यास पाँचवाँ है और नवाक्षरमन्त्रका न्यास छठा कहा गया है ॥ १—३ ॥

शाक्तपञ्चमे 'मालिनी'का न्यास प्रथम, 'त्रिविशाखा'का न्यास

मन्त्रहात् उनका प्रसिद्धतम होता है। उनके 'कार' मुझाएँ हैं। वे सुखपूर्वक शिंहासनपर विराजमान हैं। प्रेतपञ्चके ऊपर बेटी हैं। वे सहस्रों कोहि कुलोंसे सम्पन्न हैं। 'ककोऽङ्गक' नामक नाम उनकी मेस्त्रम (करधनी) है। उनके मत्स्यपर 'तासक' नाम विराजमान है। 'वासुकि' नाम उनके गणेश हार है। उनके दोनों कानोंमें स्थित 'कुलिक' और 'कूर्म' नामक नाम कुण्डक-मण्डल बने हुए हैं। दोनों भौंहोंमें 'पद्म' और 'महापद्म' नामक नामोंकी स्थिति है। वाये हाथोंमें नाम, कपाल, अङ्गसूत्र, स्त्र॒बाङ्ग, शङ्ख और पुस्तक हैं। दाहिने हाथोंमें विश्वल, दर्पण, खड्ग, रत्नमयी माला, अङ्गुष्ठ तथा धनुष हैं। देवीके दो मुख उमरकी ओर हैं, जिनमें एक तो पूरा सफेद है और दूसरा आधा सफेद है। उनका पूर्ववर्ती मुख पाण्डुवर्णका है, दक्षिणवर्ती मुख कोपयुक्त जान पड़ता है, पश्चिमवाला मुख काला है और उत्तरवर्ती मुख हिम, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान इवेत है। ब्रह्म उनके चरणतलमें स्थित है, भगवान् विष्णु अङ्गनस्थलमें विराजमान है, रुद्र दृदयमें, ईश्वर कण्ठमें, मदाशिव ललाटमें तथा शिव उनके ऊपरी भागमें स्थित है। कुबिजकादेवी इमती हुई-सी दिलायी देती है। पूजा आदि कर्मोंमें कुबिजकाका ऐसा ही ध्यान करना चाहिये ॥ ३४-४० ॥

द्वितीय, 'अधोयष्टक'का न्यास तृतीय, 'द्वादशाङ्गन्यास' चतुर्थ, 'षट्काङ्गन्यास' पञ्चम तथा 'अङ्गचण्डिका' नामक शक्तिका न्यास छठा है। छीं (छीं), हीं, हूँ, अ॒, कूँ, फ॒—इन छः बीजमन्त्रोंका जो छः प्रकारका न्यास है, यही तीसरा अर्थात् 'यामल न्यास' है। इन छहोंमेंसे चौथा 'अ॒' बीजका न्यास है, वह सम्पूर्ण भनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है ॥४-५॥

'अ॒' से लेकर 'क॒' तक जो न्यास बताया जाता है, वह सब मालिनीका ही न्यास है। 'न॑' से आरम्भ होनेवाली अथवा नाद करनेवाली शक्तिका न्यास शिखामें करना चाहिये। 'प्र॑' प्रसन्नी शक्ति तथा 'श॑' शिखेमाला निष्ठि

शक्तिका स्थान सिरमें है; अतः वही उनका न्यास करे। 'ट' शान्तिका प्रतीक है, इसका न्यास भी सिरमें ही होगा। 'च' शायुषणका प्रतीक है, इसका न्यास नेत्रमें करना चाहिये। 'द' प्रियदर्शिलसरूप है, इसका न्यास नेत्रदृश्यमें होना चाहिये। शुश्राविका प्रतीक है—'नी', इसका न्यास नासिकादृश्यमें करे। 'न' नारायणरूप है, इसका स्थान दोनों कानमें है। 'स' मोहिनीरूप है, इसका स्थान केवल दाहिने कानमें है। 'ज' प्रशाका प्रतीक है, इसकी स्थिति वायें कानमें बतायी गयी है। ब्रिधिणी देवीका स्थान मुखमें है। 'क' कराली शक्तिका प्रतीक है, इसकी स्थिति दाहिनी दंडा (दाढ़) में है। 'ख' कपालिनीरूप है, 'व' वायें कंधेपर स्थापित होनेके बोध्य है। 'ग' शिवाका प्रतीक है, इसका स्थान ऊपरी दाढ़में है। 'घ' घोरा शक्तिका सूचक है, इसकी स्थिति वायीं दाढ़में मानी गयी है। 'उ' शिखा शक्तिका सूचक है, इसका स्थान दाँतोंमें है। 'ऋ' मायाका प्रतीक है, जिसका स्थान जिह्वाके अन्तर्गत माना गया है। 'अ' नामेश्वरीरूप है, इसका न्यास वाक्-इन्द्रियमें होना चाहिये। 'ध' शिखिवाहिनीका बोधक है, इसका स्थान कण्ठमें है॥ ६—१० ॥

'भ' के साथ भीषणी शक्तिका न्यास दाहिने कंधेमें करे। 'म' के साथ वायुवेगका न्यास वायें कंधेमें करे। 'द' अक्षर और नामा शक्तिका दाहिनी भुजामें तथा 'ठ' अक्षर एवं विनायका देवीका वायीं भुजामें न्यास करे। 'ए' एवं पूर्णिमाका न्यास दोनों हाथमें करे। प्रणवसहित ओंकार शक्तिका दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंमें तथा 'ॐ' सहित दर्शनीका वायें हाथकी अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'ओ' एवं संजीवनी-शक्तिका हाथमें न्यास करे। 'ट' अक्षरसहित कपालिनी शक्तिका स्थान कपाल है। 'त' सहित दीपनीकी स्थिति शब्ददण्डमें है। जयन्तीकी स्थिति विश्वलमें है। 'व' सहित शाखनी देवीका स्थान वृद्धि (वृद्धि) है॥ ११—१३ ॥

'ष्ठा' अक्षरके साथ परमाख्या देवीकी स्थिति जीवमें है। 'ए' अक्षरसहित अम्बिका देवीका न्यास प्राणमें करना चाहिये। 'छ' अक्षरके साथ शरीरा देवीका स्थान दाहिने स्थानमें है। 'न' सहित पूतनाकी स्थिति वायें स्थानमें बतायी गयी है। 'अ' सहित आमोटीका स्थन-दुर्घटमें, 'थ' सहित लम्बोदरीका उदरमें, 'क्ष' सहित संहारिकाका नाभिमें तथा 'म' सहित महाकाळीका नितम्बमें न्यास करे। 'स' अक्षर-सहित कुमुममालाका गुणदेशमें, 'भ' सहित शुकदेविकाका

शुक्रमें, 'ल' सहित तारा देवीका दोनों कर्वोंमें तथा 'हू' सहित शानाशक्तिका दाहिने शुटनेमें न्यास करे। 'ओ' सहित कियाशक्तिका वायें शुटनेमें, 'ओ' सहित गायत्री देवीका दाहिनी जहा (पिण्डली) में, 'ॐ' सहित सावित्रीका वायें जहामें तथा 'द' सहित दोहिनीका दाहिने पैरमें न्यास करे। 'फ' सहित 'फेल्कारी' का वायें पैरमें न्यास करना चाहिये॥ १४—१७॥

मालिनी-मन्त्र नो अक्षरोंसे युक्त होता है। 'अ' सहित श्रीकण्ठका शिखमें, 'आ' सहित अनन्तका मुखमें, 'ह' सहित सूखमका दाहिने नेत्रमें, 'ई' सहित श्रिमूर्तिका वायें नेत्रमें, 'उ' सहित अगरीशका दाहिने कानमें तथा 'ऊ' सहित अधोशकका वायें कानमें न्यास करे। 'ऋ' सहित भावभूतिका दाहिने नासाप्रमें, 'ऋ' सहित तिथीशका वामनासाप्रमें, 'लू' सहित स्थाणुका दाहिने गालमें तथा 'लू' सहित हरका वायें गालमें न्यास करे। 'ए' अक्षरसहित कटीशका नीचेकी दृन्तपङ्क्तिमें, 'ऐ' सहित भूतीशका ऊपरकी दृन्तपङ्क्तिमें, 'ओ' सहित गणेशजातका नीचेके ओषुमें तथा 'ओ' सहित अनुग्रहीश (या अनुग्रहेश) का ऊपरके ओषुमें न्यास करे। 'अ' सहित कूरका गलेकी घाटीमें, 'अ' सहित महासेनका जिह्वामें, 'क' सहित क्रोधीशका दाहिने कंधेमें तथा 'ख' सहित चण्डीशका बाहुओंमें न्यास करे। 'ग' सहित वश्वान्तका गूर्परमें, 'घ' सहित शिखीका दाहिने कहानमें, 'ङ' सहित एकपादका वायीं अङ्गुलियोंमें तथा 'च' सहित कृष्णका वायें कंधेमें न्यास करे॥ १८—२३॥

'छ' सहित एकनेत्रका बाहुमें, 'ज' सहित चतुर्मुखका गूर्पर या कोहनीमें, 'झ' सहित राजसका वामकङ्गमें तथा 'अ' सहित सर्वकामदका वायीं अङ्गुलियोंमें न्यास करे। 'ट' सहित सोमेश्वरका नितम्बमें, 'ठ' सहित लाङ्गूलीका दक्षिण ऊर (दाहिनी जाँघ) में, 'ड' सहित दारकका दाहिने शुटनेमें तथा 'ढ' सहित अर्जुलेश्वरका पिण्डलीमें न्यास करे। 'ण' सहित उपाकान्तका दाहिने पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'त' सहित आशादीका नितम्बमें, 'थ' सहित दण्डीका वाम ऊर (वायीं जाँघ) में तथा 'द' सहित भिदका वायें शुटनेमें न्यास करे। 'ध' सहित मीनका वायीं पिण्डलीमें, 'न' सहित मेषका वायें पैरकी अङ्गुलियोंमें, 'भ' सहित लोहितका दाहिनी कुक्षिमें तथा 'फ' सहित शिखीका वायीं कुक्षिमें न्यास करे। 'व' सहित गलाञ्छका प्रश्वर्षशमें, 'भ' सहित द्विरण्डका

नाभिमें, 'म' सहित महाकालका हृदयमें तथा 'ष' सहित वाणीशका त्वन्मामें न्यास बताया गया है ॥ २४—२८ ॥

'र' सहित भुजङ्गेशका रक्तमें, 'ल' सहित पिनाकीका मांसमें, 'व' सहित खड्गीशका अपने आत्मा (शरीर) में तथा 'श' सहित वक्का हड्डीमें न्यास करे । 'ष' सहित

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'माहिनी-मन्त्र आदिके न्यासका वर्णन' नामक एक सौ पैतालीसबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४५ ॥

एक सौ छियालीसबाँ अध्याय

त्रिलक्षणी-मन्त्रका वर्णन, पीठस्थानपर पूजनीय शक्तियों तथा आठ अष्टक देवियोंका कथन

भगवान् महेश्वर कहने हैं—स्कन्द ! अब मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरसे सम्बन्ध रखनेवाली त्रिलक्षणीकी वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

'ॐ नमो भगवते हृदाय नमः । नमश्चामुण्डे नमक्षा-काशमातृणां सद्वंकामार्थसाधनीनामज्जरामरीणां सद्वंक्षा-प्रतिहतगतीणां सद्वरूपरिवर्तिनीणां सद्वंसरवदीक्षरणो-स्ताद्वानोन्मूकनसमस्तकमेंप्रवृत्तानां सद्वंसतुगुणं हृदयं परमसिद्धं परक्षमेंद्वेष्टनं परमसिद्धिकरं मातृणां वचनं शुभम् ।' इस व्रह्मलक्षणपदमें रुद्रमन्त्र-सम्बन्धी एक सौ इक्कीस अक्षर हैं ॥ २-३ ॥

[अब विष्णु-खण्डपद बताया जाता है—]
 'ॐ नमश्चामुण्डे नहाणि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । ओं नमश्चामुण्डे माहेश्वरि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । ओं नमश्चामुण्डे कौमारि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । ओं नमश्चामुण्डे वैष्णवि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । ओं नमश्चामुण्डे वाराहि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । ओं नमश्चामुण्डे इन्द्राणि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । ओं नमश्चामुण्डे चण्डि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । ओं नमश्चामुण्डे ईशानि अघोरे अमोघे वरदे विष्णवे स्ताहा । यह यथोचित अक्षरचाले पदोंका दूसरा मन्त्रखण्ड है, जो 'विष्णुखण्डपद' कहा गया है ॥ ४-५ ॥

[अब महेश्वरखण्डपद बताया जाता है—]
 'ॐ नमश्चामुण्डे उच्चकेशि उच्छितसिलरे विष्णुष्ठिष्ठे लालकालि पिङ्गलमुदे विष्णुरंभे कुर्वे, ओं मांसशोणित-सुरासप्रिष्ठे इस इस ओं नृष्ट शृण्व ओं विष्णुभूषण विष्णुभूषण

वेतका मत्तामें, 'स' सहित चूपका शुक पर्वं खाद्यन्ते, 'ह' सहित नकुलीशका प्राणमें तथा 'क्ष' सहित संचर्तका पञ्च-कोशोंमें न्यास करना चाहिये । 'हों' बीजसे बद्रशक्तियोंका पूजन करके उपासक सर्वांग मनोरथीको प्राप्त कर देता है ॥ २९-३० ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'माहिनी-मन्त्र आदिके न्यासका वर्णन' नामक एक सौ

पैतालीसबाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४५ ॥

ॐ माहात्रैलोक्यकृपसहस्रपरिवर्तिनीणामो दद्य वद्य,
 ॐ तुहु तुहु चिरि चिरि हिरि हिरि भिरि भिरि जासनि
 जासनि भासणि भासणि, ॐ द्वाषणि द्वाषणि द्वोभणि द्वोभणि
 मारणि भारणि संजीवनि संजीवनि हेरि हेरि गेरि गेरि भेरि
 भेरि, ॐ सुरि सुरि ॐ नमो नाशनाश नमो नमो विष्ण्वे ॥ १ ॥

यह माहेश्वरखण्ड एकतीस पदोंका है । इसमें एक दो एकहत्तर अक्षर हैं । इन तीनों खण्डोंको 'त्रिलक्षणी' कहते हैं । इस त्रिलक्षणी-मन्त्रके आदि और अन्तमें 'हृ छों' तथा पॉच प्रणव जोड़कर उसका जप एवं पूजन करना चाहिये । 'हृ छों' श्रीकृष्णिकार्ये नमः ।—इस मन्त्रको त्रिलक्षणीके पदोंकी संधियोंमें जोड़ना चाहिये । अकुलादि त्रिमध्यग, कुलादि त्रिमध्यग, मध्यमादि त्रिमध्यग तथा पाद-त्रिमध्यग—ये चार प्रकारके मन्त्र-पिण्ड हैं । साथे तीन मात्राओंसे युक्त प्रणवको आदिमें लगाकर इनका जप अथवा इनके द्वारा यजन करना चाहिये । तदनन्तर भैरवके शिला-मन्त्रका जप एवं पूजन करे—‘ओं श्री हिलाभैरवाय नमः’ ॥ ७-९४ ॥

‘स्त्रां स्त्रीं स्त्रे—ये तीन सतीज अक्षर हैं । ‘हृ हृ हृ—ये निर्बोज अक्षर हैं । विलोम-क्रमसे ‘क्ष’ से लेकर ‘क’ तकके वस्तीस अक्षरोंकी वर्णमाला ‘अकुला’ कही गयी है । अनुलोम-क्रमसे गणना होनेपर वह ‘सकुला’ कही जाती है । शशिनी, भानुनी, पावनी, हिव, गन्धारी, ‘ण’ पिण्डाशी, चपला, गजिहिका, ‘म’ मृषा, भयसारा, मध्यमा, ‘फ’ अजरा, ‘य’ कुमारी, ‘न’ कालरात्री, ‘ह’ संकटा, ‘क्ष’ कालिका, ‘फ’ शिवा, ‘ण’ भवशोरा, ‘ट’ शीभसा, ‘स’ विशुता, ‘ठ’ विष्वम्भरा और शंखिनी अथवा ‘उ’ विश्वम्भरा, ‘आ’ शंखिनी, ‘द’ ऊबालामालिनी, कराली,

हुर्जया, रक्षी, वामा, ज्येष्ठा तथा दोषी, 'व' काली, 'क'
कुलधर्मियी, अनुच्छेदी, 'ह' पिण्डिनी, 'आ' वैदिनी, 'इ'
रपी, 'ओ' शास्त्रिकूर्ति एवं कलाकुला, 'मृ' खड़िगीनी, 'उ'
शक्तिया, 'हु' कुला, 'हु' मुभगा, वैदनादिनी और
कराली, 'अं' मध्यमा तथा 'अः' अपेतरया—इन शक्तियोंका
बोगाठिपर क्रमशः पूजन करना चाहिये ॥ १०-१७ ॥

‘सहा स्त्री स्त्री महाभैरवाय नमः ।’—यह महाभैरवके शूलनका मन्त्र है । (ब्रह्माणी आदि आठ दृकियोंके साथ शृणु आठ-आठ दृकियाँ और है, जिन्हें ‘अष्टक’ कहा गया है । उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है ।) अक्षोद्धा, अक्षकर्णी, राक्षसी, क्षणा, क्षया, पिङ्गली, अक्षया और सेमा—ये ब्रह्माणीके अष्टकद्वयमें स्थित होती हैं । इलालीलावती, नीला, लङ्घा, लङ्घेश्वरी, लालसा, विमला और माला—ये मार्देश्वरी-अष्टकमें स्थित हैं । हुताशना, विशालाक्षी, हुकारी, वडवापुरुषी, इहारवा, कूरा, कोधा तथा खरानना बाला—ये आठ कौमारीके शरीरसे प्रकट हुई हैं । इनका

इस प्रकार आदि आनेय महापूराणमें आह अष्टक देविगोक्ता वर्णन' नामक एक सौ क्षियालीसद्बाँ अडवाय पूरा हुआ ॥१४६॥

एक सौ सेतालीसवाँ अध्याय

गुदाकृतिज्ञा, नवा त्वरिता तथा दूतियोंके मन्त्र एवं न्यास-पूजन आदिका वर्णन

भगवान् भहेष्वर कहते हैं—स्कन्द ! (अब मैं गुहा-
कुञ्जिका, नवा त्वरिता, दूती तथा त्वरिताके गुणाङ्ग पर
तत्त्वोंका वर्णन करूँगा—) ॐ गुहाकुञ्जिके हुं फट् मम
सर्वोपद्रवान् यम्बमन्त्रतम्बक्षयंप्रयोगादिकं येम कृतं कारितं
कुरुते करिष्यति कारिष्यति तान् सर्वोन्न इन हन दंष्ट्राकारालिनि
हैं हीं हुं गुहाकुञ्जिकायै स्वाहा हीं, ॐ ते दों
गुहाकुञ्जिकायै नमः । (इस मन्त्रसे गुहाकुञ्जिकाका पूजन
पवं जप करना चाहिये ।) ‘हीं सर्वजनक्षोभणी जलादुर्धर्षणी
ॐ ते द्वां स्वर्ण सर्वजनवाहकंकी जलनोहनी, ॐ स्वर्ण सर्वजन-
स्तम्भणी, ऐं सं लो शोभणी, ऐं वित्तसं शीजं भेष्टं कुले
पश्चात्परी, कं श्री श्री हीं हीं लं वर्ष्णे शे शे हं फट्,
हीं नमः । ॐ हां यश्चोके लं शो हीं हीं फट् ॥ १०४ ॥

यह 'नवा त्वरिता' बतायी गयी है। इसे आरबार
जानना (अपना) चाहिये। इसकी पूजा की जाय तो यह
विष्णवायिनी होती है। 'ही विष्णव नमः ।' इस मन्त्रमें

पूजन करनेपर ये सम्मुखीं सिद्धियोंको देनेवाली होती है ।— ५
सर्वज्ञा, तरला, तारा, शूरवेदा, हयानना, दारासाता,
स्वयंगंगा हा तथा शास्त्रती—ये आठ शक्तियाँ बैण्डीके कुलमै
प्रकट होती हैं ॥ १८-२२३ ॥

तालुजिहा, रन्नाकी, विद्युजिहा, करक्षिणी, मेघनाद, प्रचण्डोग्रा, कालकर्णी तथा कलिप्रिया—ये वाराही के कुलमें उत्पन्न हुई हैं। विजयकी इच्छावाले पुरुषोंको इनकी पूजा करनी चाहिये। नभा, नभ्याकती, प्रचन्धा, स्वल्पितानना, पिशाची, पितृवक्ता तथा लोकुपा—ये इन्द्राणी शक्तिके कुलमें उत्पन्न हुई हैं। पावनी, याचनी, वामनी, दमनी, विन्दुवेला, बृहस्पती, विशुता तथा विश्वरूपिणी—ये चामुच्चा-के कुलमें प्रकट हुई हैं और मण्डलमें पूजित होनेपर विजय दशियनी होती हैं॥ २३-२५॥

वर्मजिहा, जयन्ती, दुःजया, यमान्तिका, विडाली, रेवती,
ग्रहः और विजया—ये महालक्ष्मी के कुलमें उत्पन्न हुई हैं।
इस प्रकार आठ अष्टकों का वर्णन किया गया ॥ २७-२८ ॥

आखनका पूजा करके देवीको सिंहासन समर्पित करे ।
 'ही थे हृदयात् नमः ।' बोलकर हृदयका स्पर्श करे । 'वज्रे
 चिरसे स्वाहा ।' बोलकर चिरका स्पर्श करे—इस प्रकार
 यह 'त्वरितामन्त्र'का शिरोन्यात् बताया गया है । 'हें हीं शिरायै
 बघट् ।' ऐसा कहकर शिराका स्पर्श करे । 'हें कवचाय
 दुष् ।' कहकर दोनों भुजाओंका स्पर्श करे । 'हैं नेत्रश्चाय
 वौषट् ।' कहकर दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागका
 स्पर्श करे । 'हीं अक्षाय कट् ।' कहकर ताली बजाये ।
 हीकारी, सेचरी, चण्डा, लेदनी, क्षोभणी, किमा, क्षेमकारी,
 छुकारी तथा फटकारी—ये नौ शक्तियाँ हैं ॥ ५-७३ ॥

अब दूतियोंका वर्णन करता हूँ। इन सबका पूर्व आदि दिशाओंमें घूँगन करना चाहिये—ही जले बहुतषड़े च जले ही सेवे उचितिमि द्वयक च ले छ चुरे तत्त्वदिनीपरे च अन्धे चण्डे छेषनि कराकि च ले ले ये बरहाकी हीं ले वसे कपिले इ ले हं कं मेजोवायि गौत्रि यासः हीं के वे के के के वसे वसी

से तुहि उदि चोरे हूँ कट् अद्यताकि नम्हे ।' (यह दूती मन्त्र है ॥ ८-९ ॥

अब पुनः स्वरिताके गुणाङ्गों तथा तत्त्वोंका वर्णन करता हूँ । 'हीं हूँ हृः हृः हृद्याय नमः ।' इसका हृदयमें न्याय करे । 'हीं हृः शिरसे स्वाहा ।' ऐसा कहकर शिरमें न्यास करे । 'कौं उचक उचक शिखायै वषट् ।' कहकर शिखामें, 'इके हूँ हूँ कवचाय तुम् ।' कहकर दोनों भुजाओंमें, 'कौं शूँ शूँ शूँ शूँ नेत्रक्षयाय चौषट् ।' बोलकर नेत्रोंमें तथा ल्लाटके मध्यभागमें

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'स्वरिता-पूजा आदिकी विविध वर्णन' नामक ४४

सौ संतानोंसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४९ ॥

एक सौ अड्डतालीसवाँ अध्याय संग्राम-विजयदायक सूर्य-पूजनका वर्णन

भगवान् महेश्वर कहते हैं—स्कन्द ! (अब मैं संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके पूजनकी विधि बताता हूँ ।) 'अ॒ हृं कं स्या॑ सूर्याय संग्रामविजय नमः ।'—यह मन्त्र है । हाँ ही हूँ हूँ हूँ हृः—ये संग्राममें विजय देनेवाले सूर्यदेवके छः अङ्ग हैं, अर्थात् इनके द्वारा पठङ्गन्यास करना चाहिये । यथा—'हीं हृद्याय नमः । हीं शिरसे स्वाहा । हृः शिखायै वषट् । हृः कवचाय तुम् । हीं नेत्रक्षयाय चौषट् । हृः अवैराग्य कट् ॥ १-२ ॥

'अ॒ हृं कं क्षोषकाय स्वाहा ।'—यह पूजाके लियं मन्त्र है । 'स्फूँ हूँ हूँ हूँ हृं हृं क्षेत्रम्'—ये छः अङ्गन्यासके बीज-मन्त्र हैं । पीठस्थानमें प्रभूत, विमल, सार, आश्रय एवं परम मुखका पूजन करे । पीठके पायों तथा बीचकी चार दिशाओंमें क्रमशः खर्म, शान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अश्वर्म, अङ्गान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य—इन आठोंकी पूजा करे ।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'संग्राम-विजयदायक सूर्यदेवकी पूजाका वर्णन' नामक

एक सौ अड्डतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

एक सौ उनचासवाँ अध्याय होमके प्रकार-मेद एवं विविध फलोंका कथन

भगवान् महेश्वरने कहा—देवि ! होमसे युद्धमें विजय, राज्यप्राप्ति और विघ्नोंका विनाश होता है । पहले 'कृन्द्रवत्' करके देष्टुदि करे । सहनन्तर सौ प्राणायाम

न्यास करे । 'हीं अद्याय कट् ।' कहकर दोनों हाथोंवे ताली बजाये अथवा 'हूँ से वषटे से हीं हैं हूँ अद्याय कट् ।' कहकर ताली बजानी चाहिये ॥ १०-१२ ॥

मध्यभागमें 'हूँ स्वाहा ।' लिखे तथा पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः 'से सदाशिवे, व हृष्टः, से अग्नेयमाती, महे तारः, हीं मायवः से ब्रह्मा, हुम् आदित्यः, दाह्यं कट्'का उल्लेख एवं पूजन करे । ये आठ दिशाओंमें पूजनीय देवता बताये गये हैं ॥ १३ ॥

तदनन्तर अनन्तासन, सिंहासन एवं पद्मासनकी पूजा करे । इसके बाद कमलकी कणिका एवं केसरोंकी, वहीं सूर्यमण्डल, सौम्यमण्डल तथा अग्निमण्डलकी पूजा करे । फिर दीता, सूक्ष्मा, ज्या, भट्ठा, विभूति, विमला, अमोचा, विघुता तथा नवीं सूर्यतोमुखी—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे ॥ ३-६ ॥

तत्प्रात् सत्य, रज और तमका, प्रकृति और पुरुषका, आस्मा, अन्तरात्मा और परमात्माका पूजन करे । ये छमी अनुस्तानयुक्त आदि अक्षरसे उक्त होकर अन्तमें 'नमः' के साथ चतुर्थन्त होनेपर पूजाके मन्त्र हो जाते हैं । यथा—'सं अस्त्वाय नमः । अं अन्तरात्मने नमः ।' इत्यादि । इसी तरह उषा, प्रभा, सच्चा, साया, माया, बला, विष्णु, विष्णु तथा आठ द्वारपालोंकी पूजा करे । इसके बाद गन्ध आहिसे सूर्य, चाष्ट और प्रचण्डका पूजन करे । इस प्रकार पूजा तथा जप, होम आदि करनेसे युद्ध आदिमें विजय प्राप्त होती है ॥ ७-९ ॥

करके शतीरका शोधन करे । फिर जलके भीतर गायत्री-जप करके सोलह बार प्राणायाम करे । पूर्वाह्नकालमें अग्निमें आहुति समर्पित करे । भिंडाहारा प्राप्त यवनिर्भित भोक्ष्यपद्मार्घ,

फल, मूळ, कुरु, सूक्ष्म और घृतका आहार यशकालमें
विवित है ॥ १-५ ॥

पार्वति । लक्ष्मीहोमकी समाप्ति-पर्यन्त एक समय मोजन
करे । लक्ष्मीहोमकी पूर्णाहुतिके पश्चात् गौ, बछर एवं सुखणीकी
दक्षिणा है । सभी प्रकारके उत्पातोंके प्रकट होनेपर पाँच
या दस श्रूतियोंसे पूर्वोक्त यज्ञ करावे । इस लोकमें ऐसा
कोई उत्पात नहीं है, जो इससे शान्त न हो जाय । इससे
बढ़कर परम महाल्कारक कोई बस्तु नहीं है । जो नरेश
पूर्वोक्त विधिसे श्रूतियोंद्वारा कोटि-होम कराता है,
युद्धमें उसके सम्मुख शान्त कभी नहीं ठहर सकते हैं ।
उसके राज्यमें अतिहृषि, अनन्तवृष्टि, सूषकोपद्रव,
टिह्डीदल, शुकोपद्रव एवं भूत राक्षस तथा युद्धमें समस्त
शान्त शान्त हो जाते हैं । कोटि-होममें बीष, सौ अथवा
सहस्र ब्राह्मणोंका वरण करे । इससे यजमान इच्छानुकूल
धन-वैभवकी प्राप्ति करता है । जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'युद्धज्याणवके अन्तर्गत अयुत-क्लक्ष-कोटि-होम' नामक
एक ही उनकासत्रां अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

एक सौ पचासवाँ अध्याय

मन्वन्तरोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं मन्वन्तरोंका वर्णन करूँगा । उससे प्रथम स्वायम्भुव मनु हुए हैं । उनके
आग्नीष आदि पुत्र थे । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें यम नामक देवता
और आदि सप्तर्षि तथा शतकतु इन्द्र थे । दूसरे मन्वन्तरका
नाम था—स्वारोचिष; उसमें पारावत और दुषित नामधारी
देवता थे । स्वारोचिष मनुके चौथे और किम्पुरुष आदि
पुत्र थे । उस समय विपश्चित् नामक इन्द्र तथा उर्जवन्त
आदि द्विज (सप्तर्षि) थे । तीसरे मनुका नाम उत्तम हुआ;
उनके पुत्र अज आदि थे । उनके समयमें सुशान्ति
नामक इन्द्र, सुधामा आदि देवता तथा वसिष्ठके पुत्र
सप्तर्षि थे । चौथे मनु तामस नामसे विख्यात हुए; उस
समय स्वरूप आदि देवता, शिखरी इन्द्र, व्योतिहोम आदि
ब्राह्मण (सप्तर्षि) थे तथा उनके ख्याति आदि नौ पुत्र
हुए ॥ १-६ ॥

देवत नामक पाँचवें मन्वन्तरमें वितथ इन्द्र, अग्निताम
देवता, हिरण्यरोमा आदि मुनि तथा बलवन्त आदि पुत्र

बैश्य इस कोटि-होमात्मक यज्ञका अनुष्ठान करता है ।
वह जिस पदार्थकी इच्छा करता है, उसको प्राप्त करता
है । वह सशीर स्वर्गलोकको जाता है ॥ ४-९६ ॥

गायत्री-मन्त्र, प्रह-सम्बन्धी मन्त्र, कृष्णाष्ट-मन्त्र,
जातवेदा—अग्नि-सम्बन्धी अथवा ऐन्द्र, वारुण, वायव्य,
याम्य, आग्नेय, वैष्णव, शार्क, शैव एवं सूर्यदेवता-
सम्बन्धी मन्त्रोंसे होम-पूजन आदिका विधान है ।
अयुत-होमसे अल्प सिद्धि होती है । लक्ष्मीहोम सम्पूर्ण
दुर्लभोंको दूर करनेवाला है । कोटि-होम समस्त क्लेशोंका
नाश करनेवाला और सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रदान करनेवाला
है । यव, धान्य, तिल, दुर्ग, घृत, कुदा, प्रसातिका
(छोटे दानेका चावल), कमल, खस, खेल और आग्नेय
होमके योग्य माने गये हैं । कोटि-होममें आठ हाथ और लक्ष्मी
होममें चार हाथ गहरा कुण्ड बनाते । अयुत-होम, लक्ष्मीहोम
और कोटि-होममें घृतका हवन करना चाहिये ॥ १० ॥

ये । छठे चाल्युष मन्वन्तरमें मनोजव नामक इन्द्र और
स्वाति आदि देवता थे । सुमेध आदि महर्षि और पुरु
आदि मनु-पुत्र थे । तत्पश्चात् सातवें मन्वन्तरमें सूर्यपुत्र
शाहदेव मनु हुए । इनके समयमें आदित्य, वसु तथा रुद्र
आदि देवता; पुरन्दर नामक इन्द्र; वसिष्ठ, काश्यप, अग्नि,
जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज सप्तर्षि हैं । यह
वर्तमान मन्वन्तरका वर्णन है । वैवस्तव मनुके इश्वाकु आदि
पुत्र थे । इन सभी मन्वन्तरोंमें भगवान् श्रीहरिके अशावतार
हुए हैं । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् 'भानस' के नामसे
प्रकट हुए थे । तदनन्तर शेष छः: मन्वन्तरोंमें कमशः
अजित, सत्य, हृषि देवता, वैकुण्ठ और वामन रूपमें
श्रीहरिका प्रादुर्भाव हुआ । छायाके गर्भसे उत्पन्न सूर्यनन्दन
साकर्णि आठवें मनु होंगे ॥ ६-११ ॥

वे अपने पूर्वज (स्वेष्ट भ्राता) आदि देवके समान वर्ण-
वाले हैं, इसलिये 'साकर्णि' नामसे विख्यात होंगे । उनके
समयमें सुतपा आदि देवता, परम तेजस्वी अशस्यामा आदि

सतर्पि, अलि हन्द्र और विरज आदि मनुपुत्र होंगे। नवं मनुका नाम दक्षसावर्णि होगा। उस समय पार आदि देवता होंगे। उन देवताओंके इन्द्रकी 'अद्भुत' संशा होंगी। उनके समयमें सबन आदि शेष ब्राह्मण सतर्पि होंगे और 'धृतकेतु' आदि मनुपुत्र। तत्पश्चात् दसवें मनु ब्रह्मसावर्णिके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उस समय सुख आदि देवगण, शान्ति इन्द्र, हविष्य आदि मुनि तथा मुक्षेत्र आदि मनुपुत्र होंगे॥ १२-१५॥

तदनन्तर धर्मसावर्णि नामक ग्यारहवें मनुका अधिकार होगा। उस समय विहङ्ग आदि देवता, गण इन्द्र, निश्चर आदि मुनि तथा सर्वधन आदि मनुपुत्र होंगे। इसके बाद बारहवें मनु रुद्रसावर्णिके नामसे विख्यात होंगे। उनके समयमें शूतधामा नामक इन्द्र और हरित आदि देवता होंगे। तपस्य आदि सतर्पि और देववान् आदि मनुपुत्र होंगे। तेरहवें मनुका नाम होगा रौच्य। उस समय सूश्रामणि आदि देवता तथा दिवस्पति इन्द्र होंगे, जो दानव-दैत्य आदिका मर्दन करनेवाले होंगे। रौच्य मन्वत्तरमें निर्मोह आदि सतर्पि तथा चित्रसेन आदि मनुपुत्र होंगे। चौदहवें मनु भौत्यके नामसे प्रसिद्ध होंगे। उनके समयमें शुचि इन्द्र, चाक्षुष आदि देवता तथा अग्निवाहु आदि सतर्पि होंगे। चौदहवें मनुके पुत्र ऊरु आदिके नामसे विख्यात होंगे॥ १६-२०॥

सतर्पि द्विजगण भूमण्डलपर वेदोंका प्रचार करते हैं।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मन्वत्तरोंका वर्णन' नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५०॥



एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय

वर्ण और आश्रमके सामान्य-धर्म, वर्णों तथा विलोमज जातियोंके विशेष धर्म

अहिन्द्रेष्व कहते हैं—मनु आदि राजर्षि जिन धर्मोंका अनुष्ठान करके भोग और मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं, उनका वरण देवताने पुष्करको उपरेश किया था और पुष्करने श्रीपरद्गुरामजीसे उनका वर्णन किया था॥ १॥

पुष्करने कहा—परद्गुरामजी ! मैं वर्ण, आश्रम तथा इनसे भिन्न धर्मोंका आपसे वर्णन करूँगा। वे धर्म सब कामनाओंको देनेवाले हैं। मनु आदि धर्मत्पात्रोंने भी उनका उपरेश किया है तथा वे भगवान्, वासुदेव आदिको संतोष प्रदान करनेवाले हैं। भृगुशेष ! अहिंसा, सत्य-भाषण,

देवगण यश-भागके भोक्ता होते हैं तथा मनु-पुत्र इस पृथ्वीका पालन करते हैं। ब्रह्मन्। ब्रह्मके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। मनु, देवता तथा इन्द्र आदि भी उतनी ही बार होते हैं। प्रथेक द्वापरके अन्तमें व्यासरत्नधारी श्रीहरि वेदका विभाग करते हैं। आदि वेद एक ही था, जिसमें चार चरण और एक लालू शृंचाँ थीं। पहले एक ही यजुर्वेद था, उसे मुनिवर व्यासजीने चार भागोंमें विभक्त कर दिया। उन्होंने अर्घ्यर्थका काम यजुर्भागसे, होताका कार्य शृंगवेदकी शृंचाँओंसे, उद्गाताका कर्म साम-मन्त्रोंसे तथा ब्रह्माका कार्य अथर्ववेदके मन्त्रोंसे होना निश्चित किया। व्यासके प्रथम शिष्य पैल थे, जो शृंगवेदके पारंगत पण्डित हुए॥ २१-२५॥

इन्द्रने प्रमति और वाष्कल्को संहिता प्रदान की। वाष्कल्कने भी बोध्य आदिको चार भागोंमें विभक्त अपनी संहिता दी। व्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् वैशम्यायनने यजुर्वेदलूप वृक्षकी सत्ताईस शाखाएँ निर्माण कीं। काष्ठ और वाजसनेय आदि शाखाओंको यशवल्क्य आदिने सम्प्रादित किया है। व्यास-शिष्य जैयिनिने सामवेदरूपी वृक्षकी शाखाएँ बनायीं। फिर सुमन्तु और सुकमीने एक-एक संहिता रची। सुकमीने अपने गुरुसे एक हजार संहिताओंको ग्रहण किया। व्यास-शिष्य सुमन्तुने अथर्ववेदकी भी एक शाखा बनायी तथा उन्होंने पैप्पल आदि अपने सहस्रों शिष्योंको उसका अध्ययन कराया। भगवान् व्यासदेवजीकी कृपासे तूतने पुराण-संहिताका विस्तार किया॥ २६-३१॥

लेना तथा स्वाभ्यास करना—ये ब्राह्मणके कर्म हैं। दान देना, घोड़ोंका अध्ययन करना और विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करना—ये क्षत्रिय और वैश्यके सामान्य कर्म हैं। प्रजाका पालन करना और दुष्टोंको दण्ड देना—ये क्षत्रियके विशेष धर्म हैं। खेती, गोरक्षा और व्यापार—ये वैश्यके विशेष कर्म बताये गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन द्विजोंकी सेवा तथा सब प्रकारकी शिल्प-रचना—ये शूद्रके कर्म हैं ॥ २-९ ॥

मौज्जी-बन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-बालकका द्वितीय जन्म होता है; इसलिये वे 'द्विज' कहलाते हैं। यदि अनुलोम-ऋग्मसे वर्णोंकी उत्पत्ति हो तो माताके समान बालककी जाति मानी गयी है ॥ १० ॥

विलोम-ऋग्मसे अर्थात् शूद्रके बीर्यसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मणीका पुत्र 'चाण्डाल' कहलाता है, क्षत्रियके बीर्यसे उत्पन्न होनेवाला ब्राह्मणीका पुत्र 'सूत' कहा गया है और वैश्यके बीर्यसे उत्पन्न होनेपर उसकी 'वैदेहक' संज्ञा होती है। क्षत्रिय जातिकी स्त्रीके पेटसे शूद्रके द्वारा उत्पन्न हुआ विलोमज पुत्र 'पुक्कस' कहलाता है। वैश्य और शूद्रके बीर्यसे उत्पन्न होनेपर क्षत्रियाके पुत्रकी क्रमशः 'मागध' और 'अयोगव' संज्ञा होती है। वैश्य जातिकी स्त्रीके गर्भसे

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'वर्णन्तर-धर्मोक्ता वर्णन' नामक एक सौ इकायावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५१ ॥

एक सौ बावनवाँ अध्याय

गृहस्थकी जीविका

पुष्कर कहते हैं—परद्युरामजी! ब्राह्मण अपने शास्त्रोक्त कर्मसे ही जीविका चलावे; क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके धर्मसे जीवन-निर्वाह न करे। आपत्तिकालमें क्षत्रिय और वैश्यकी वृत्ति ग्रहण कर ले; किंतु शूद्र-वृत्तिसे कभी गुजारा न करे। द्विज खेती, व्यापार, गोपालन तथा कुसीद (सूद लेना)—इन वृत्तियोंका अनुष्ठान करे; परंतु वह गोरस, गुड, नमक, लाक्षा और मांस न बेचे। किसान लोग भरतीको कोहने-जोतनेके द्वारा जो कीड़े और चींटी आदिकी हत्या कर

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'गृहस्थ-जीविकाका वर्णन' नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५२ ॥

शूद्र दबं विलोमज जातियोद्वारा उत्पन्न विलोमज संतानोंके हजारों भेद हैं। इन सबका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध समान जातिवालोंके साथ ही होना चाहिये; अपनेसे ऊँची और नीची जातिके लोगोंके साथ नहीं ॥ ११-१३ ॥

वधके योग्य प्राणियोंका वध करना—यह चाण्डालका कर्म बताया गया है। खियोंके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंके निर्माण-से जीविका चलाना तथा खियोंकी रक्षा करना—यह 'वैदेहक' का कार्य है। सूतोंका कार्य है—घोड़ोंका सारथिपना, 'पुक्कस' व्याध-वृत्तिसे रहते हैं तथा 'मागध'का कार्य है—सुति करना, प्रशंसाके गीत गाना। 'अयोगव'का कर्म है—रङ्गभूमिमें उत्तरना और शिल्पके द्वारा जीविका चलाना। 'चाण्डाल'को गौवके बाहर रहना और मुद्देसे उतारे हुए वज्रको धारण करना चाहिये। चाण्डालको दूसरे वर्षके लोगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणों तथा गौओंकी रक्षाके लिये प्राण त्यागना अथवा खियों एवं बालकोंकी रक्षाके लिये देह-स्त्रीग करना वर्ण-व्याप्त चाण्डाल आदि जातियोंकी सिद्धिका (उनकी आध्यात्मिक उत्तिति) का कारण माना गया है। वर्णसंकर व्यक्तियोंकी जाति उनके पिता-माता तथा जातिभिन्न कर्मोंसे जाननी चाहिये ॥ १४-१८ ॥

डालते हैं और सोहनीके द्वारा जो पौधोंको नष्ट कर डालते हैं, उससे यज्ञ और देवपूजा करके मुक्त होते हैं ॥ १-३ ॥

आठ बैलोंका हल धर्मनुकूल माना गया है। जीविका चलानेवालोंका हल छः बैलोंका, निर्दिशी हस्यारोंका हल चार बैलोंका तथा धर्मका नाश करनेवाले मनुष्योंका हल दो बैलोंका माना गया है। ब्राह्मण अर्हत और अमृतसे अथवा मृत और प्रमृतसे या सर्योनृत वृत्तिसे जीविका चलावे। श्वान-वृत्तिसे कभी जीवन-निर्वाह न करे ॥ ४-५ ॥

१. खेत कट जानेपर बाल बीनवा अथवा अनाजके एक-एक दानेको चुन-चुनकर लाना और उसीसे जीविका चलाना 'कहा' कहलाता है।
२. चिना भाँगे जो कुछ मिल जाय, वह 'अमृत' है।
३. माँगी हुई गीखको 'मृत' कहते हैं।
४. जींटीका नाम 'श्रावत' है।
५. व्यापारको 'सत्यानृत' कहते हैं।
६. नौकरीका नाम 'शान-वृत्ति' है।

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

संस्कारोंका वर्णन और ब्रह्मचारीके धर्म

पुष्टर कहते हैं—परशुरामजी ! अब मैं आश्रमी पुरुषोंके धर्मका वर्णन करूँगा; सुनो । यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है । जियोंके श्रुतधर्मकी सोलह रात्रियाँ होती हैं, उनमें पहलेकी तीन रातें निन्दित हैं । शेष रातोंमें जो युग्म अर्थात् चौथी, छठी, आठवीं और दसवीं आदि रात्रियाँ हैं, उनमें ही पुत्रकी हच्छा रखनेवाला पुरुष छी-समागम करे । यह 'गर्भाधान-संस्कार' कहलाता है । 'धर्म' रह गया—इस बातका स्पष्टरूपसे ज्ञान हो जानेपर गर्भस्थ शिशुके हिलने-हुलनेसे पहले ही 'पुंसवन-संस्कार' होता है । तत्प्रात् छठे या आठवें मासमें 'सीमन्तोजयन' किया जाता है । उस दिन पुँडिङ्ग नामवाले नक्षत्रका होना शुभ है । बालकका जन्म होनेपर नाल काटनेके पहले ही विद्रान् पुरुषोंको उसका 'जातकर्म-संस्कार' करना चाहिये । सूक्तक निवृत्त होनेपर 'नामकरण-संस्कार'का विधान है । ब्राह्मणके नामके अन्तमें 'शर्मा' और क्षत्रियके नामके अन्तमें 'वर्मा' होना चाहिये । वैश्य और शूद्रके नामोंके अन्तमें क्रमशः 'पुस' और 'दात' पदका होना उत्तम माना गया है । उक्त संस्कारके समय पत्नी स्वामीकी गोदमें पुत्रको दे और कहे—'यह आपका पुत्र है' ॥ १-५ ॥

फिर कुलाचारके अनुरूप 'चूडाकरण' करे । ब्राह्मण-बालकका 'उपनयन-संस्कार' गर्भ अर्थवा जन्मसे आठवें वर्षमें होना चाहिये । गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय-बालकका तथा गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकका उपनयन करना चाहिये । ब्राह्मण-बालकका उपनयन सोलहवें, क्षत्रिय-बालकका बार्हसवें और वैश्य-बालकका चौबीसवें वर्षसे आगे नहीं जाना चाहिये । तीनों वर्णोंके लिये क्रमशः मूँज, प्रत्यञ्चा तथा बल्कलकी मेखला बतायी गयी है । इसी प्रकार तीनों वर्णोंके ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः मृग, व्याघ्र तथा बकके चर्म और पलाश, पीपल तथा बेलके दण्ड धारण करने योग्य बताये गये हैं । ब्राह्मणका दण्ड उसके केशतक, क्षत्रियका ललाटतक और वैश्यका मुखतक छंदा होना चाहिये । इस प्रकार क्रमशः दण्डोंकी लंबाई बतायी

गयी है । ये दण्ड टेढ़े-मेढ़े न हों । इनके छिलके मौजूद हों तथा ये आगमें जलाये न गये हों ॥ ६-९ ॥

उक्त तीनों वर्णोंके लिये बल और यज्ञपवीत क्रमशः कपाल (रई), रेताम तथा ऊनके होने चाहिये । ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा माँगते समय बाक्यके आदिमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग, करे । [जैसे माताके पास जाकर कहे—'भवति भिक्षां मे देहि मातः ।' पूज्य माताजी ! मुझे भिक्षा दें ।] इसी प्रकार क्षत्रिय ब्रह्मचारी बाक्यके मध्यमें तथा वैश्य ब्रह्मचारी बाक्यके अन्तमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे । [यथा—क्षत्रिय—भिक्षां भवति मे देहि । वैश्य—भिक्षां मे देहि भवति ।] पहले वहाँ भिक्षा माँगे, जहाँ भिक्षा अवश्य प्राप्त होनेकी सम्भावना हो । जियोंके अन्य सभी संस्कार बिना मन्त्रके होने चाहिये; केवल विवाह-संस्कार ही मन्त्रोच्चारणपूर्वक होता है । गुरुको चाहिये कि नह शिष्यका उपनयन (यज्ञपवीत) संस्कार करके पहले शौचाचार, सदाचार, अग्निहोत्र तथा संध्योपासनाकी दिक्षा दे ॥ १०-१२ ॥

जो पूर्वकी ओर मुँह करके भोजन करता है, वह आयुष्य भोगता है, दक्षिणकी ओर मुँह करके खानेवाला यशका, पश्चिमाभिमुख होकर भोजन करनेवाला लक्ष्मी (धन) का तथा उत्तरकी ओर मुँह करके अज्ञ ग्रहण करनेवाला पुरुष सत्यका उपभोग करता है । ब्रह्मचारी प्रतिदिन सांयकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र करे । अपवित्र बस्तुका होम निषिद्ध है । होमके समय हाथकी अङ्गुलियोंको परस्पर सटाये रहे । मधु, मांस, मनुष्योंके साथ विवाद, गाना और नाचना आदि छोड़ दे । हिंसा, परायी निन्दा तथा विशेषतः अश्लील-चर्चा (गाली-गलौज आदि) का स्थाग करे । दण्ड आदि धारण किये रहे । यदि वह दूट जाय तो जलमें उसका विसर्जन कर दे और नवोन दण्ड धारण करे । वेदोंका ध्ययन पूरा करके गुरुको दक्षिणा देनेके पश्चात् ब्रतान्त-स्नान करे; अर्थवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर जीवनभर गुरुकुलमें ही निवास करता रहे ॥ १३-१६ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ब्रह्मचर्याश्रम-वर्णन' नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५४ ॥



एक सौ चौबनवाँ अध्याय

विवाहविषयक बातें

पुरुष कहते हैं—परशुरामजी ! ब्राह्मण अपनी कामनाके अनुसार चारों बांगोंकी कन्याओंसे विवाह कर सकता है, क्षत्रिय तीनसे, वैश्य दोसे तथा शूद्र एक ही छीसे विवाहका अधिकारी है। जो अपने समान बांगोंकी न हो, ऐसी छीके साथ किसी भी धार्मिक कृत्यका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। अपने समान बांगोंकी कन्याओंसे विवाह करते समय पतिको उनका हाथ पकड़ना चाहिये। यदि क्षत्रिय-कन्याका विवाह ब्राह्मणसे होता हो तो वह ब्राह्मणके हाथमें हाथ न देकर उसके द्वारा पकड़े दुएं बाणका अप्रभाग अपने हाथसे पकड़े। इसी प्रकार वैश्य-कन्या यदि ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे व्याही जाती हो तो वह वरके हाथमें रखा हुआ चाबुक पकड़े और शूद्र-कन्या बख्तका छोर ग्रहण करे। एक ही बार कन्याको दान देना चाहिये। जो उसका अपहरण करता है, वह चौरके समान दण्ड पानेका अधिकारी है ॥ १—३ ॥

जो संतान बेचनेमें आसत्त हो जाता है, उसका पापसे कभी उद्धार नहीं होता। कन्यादान, शचीयोग (शचीकी पूजा), विवाह और चतुर्थीकर्म—इन चार कर्मोंका नाम 'विवाह' है। [मनोनीत] पतिके लापता होने, मरने तथा संन्यासी, नपुंसक और पतित होनेपर—इन पाँच प्रकारकी आपत्तियोंके समय [वागदत्ता] खियोंके लिये दूसरा पति करनेका विधान है। पतिके मरनेपर देवरको कन्या देनी चाहिये। वह न हो तो किसी दूसरेको हच्छानुसार देनी चाहिये। वर अथवा कन्याका वरण करनेके लिये तीनों पूर्वा, कृत्यिका, स्वाती, तीनों उत्तरा और रोहिणी—ये नक्षत्र सदा शुभ माने गये हैं ॥ ४—७ ॥

परशुराम ! अपने समान गोत्र तथा समान प्रवरमें उत्तम हुई कन्याका वरण न करे। पितासे ऊपरकी सात पीढ़ियोंके साथ तथा मातासे पाँच पीढ़ियोंके बादकी ही परम्परामें उसका जन्म होना चाहिये। उत्तम कुल तथा अच्छे स्वभावके सदाचारी वरको घरपर बुलाकर उसे कन्याका दान देना 'ब्राह्मविवाह' कहलाता है। उससे उत्तम हुआ बालक उस कन्यादानजनित पुण्यके प्रभावसे अपने पूर्वजोंका

सदाके लिये उद्धार कर देता है। वरसे एक गाय और एक बैल लेकर जो कन्यादान किया जाता है, उसे 'आष-विवाह' कहते हैं। जब किसीके माँगनेपर उसे कन्या दी जाती है तो वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है; इससे धर्मकी सिद्धि होती है। कीमत लेकर कन्या देना 'आसुर-विवाह' है; यह नोन श्रेणीका कृत्य है। वर और कन्या जब स्वेच्छापूर्वक एक दूसरेको स्वीकार करते हैं तो उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। युद्धके द्वारा कन्याके हर लेनेसे 'राक्षस-विवाह' कहलाता है तथा कन्याको धोखा देकर उड़ा लेना 'पैशाच-विवाह' माना गया है ॥ ८—११ ॥

विवाहके दिन कुम्हारकी मिट्टीसे शचीकी प्रतिमा बनाये और जलाशयके टटपर उसकी गाजे-बाजेके साथ पूजा कराकर कन्याको घर ले जाना चाहिये। आषाढ़से कार्तिक-तक, जब भगवान् विष्णु शयन करते हों, विवाह नहीं करना चाहिये। पौष और चैत्रमासमें भी विवाह निषिद्ध है। मङ्गलके दिन तथा रिक्ता एवं भद्रा तिथियोंमें भी विवाह मना है। जब बृहस्पति और शुक्र अस्त हों, चन्द्रमापर ग्रहण लगानेवाला हो, लग्नस्थानमें सूर्य, शनैश्चर तथा मङ्गल हो और व्यतीपात दोष आ पड़ा हो तो उस समय भी विवाह नहीं करना चाहिये। मूर्गशिरा, मधा, स्वाती, हस्त, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मूल, अनुराधा तथा रेती—ये विवाहके नक्षत्र हैं ॥ १२—१५ ॥

पुरुषवाची लग्न तथा उसका नवमांश शुभ होता है। लग्नसे तीसरे, छठे, दसवें, ग्यारहवें तथा आठवें स्थानमें सूर्य, शनैश्चर और बुध हों तो शुभ है। आठवें स्थानमें मङ्गलका होना अशुभ है। शेष ग्रह सातवें, बारहवें तथा आठवें घरमें हो तो शुभकारक होते हैं। इनमें भी छठे स्थानका शुक्र उत्तम नहीं होता। चतुर्थी-कर्म भी वैवाहिक नक्षत्रमें ही करना चाहिये। उसमें लग्न तथा चौथे आदि स्थानोंमें ग्रह न रहे तो उत्तम है। पर्वता दिन छोड़कर अन्य समयमें ही छी-समागम करे। इससे सती (या शची) देवीके आशीर्वादसे सदा प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ १६—१९ ॥

सह प्रकार आदि अग्नेय महापुराणम् 'विवाहमेद-कथन' नामक एक सौ चौबनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५४ ॥

एक सौ पचपनवाँ अध्याय

आचारका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुरामजी ! प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्ममूहतमें उठकर श्रीविष्णु आदि देवताओंका स्मरण करे । दिनमें उत्तरकी ओर मुल करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये, रातमें दक्षिणाभिमुख होकर करना उचित है और दोनों संध्याओंमें दिनकी ही भाँति उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये । मार्ग आदिपर, जलमें तथा गलीमें भी कभी मलादिका त्याग न करे । सदा तिनकोंसे पृथ्वीको ढककर उसके ऊपर मल-त्याग करे । मिठ्ठाते हाथ-पैर आदिकी भलीभाँति शुद्धि करके, कुछाकरनेके पश्चात्, दन्तधावन करे । नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलकर्षण तथा क्रिया-स्नान—ये छः प्रकारके स्नान बताये गये हैं । जो स्नान नहीं करता, उसके सब कर्म निष्फल होते हैं; इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करना चाहिये ॥ १-४ ॥

कुएँसे निकाले हुए जलकी अपेक्षा भूमिपर स्थित जल पवित्र होता है । उससे पवित्र झरनेका जल, उससे भी पवित्र सरोवरका जल तथा उससे भी पवित्र नदीका जल बताया जाता है । तीर्थका जल उससे भी पवित्र होता है और गङ्गाका जल तो सबसे पवित्र माना गया है । पहले जलाशयमें गोता लगाकर शरीरका मैल धो डाले । फिर आचमन करके जलसे मार्जन करे । ‘हिरण्यवर्णः०’ आदि तीन श्रूचाएँ, ‘शं नौ देवीरभिष्ट्ये०’ (यजु० ३६ । १२) यह मन्त्र, ‘आपो हि ष्टा०’ (यजु० ३६ । १४-१६) आदि तीन श्रूचाएँ तथा ‘इवमापः०’ (यजु० ६ । १७) यह मन्त्र—इन सबसे मार्जन किया जाता है । तत्पश्चात् जलाशयमें हुबकी लगाकर जलके भीतर ही जप करे । उसमें अघमरण सूक्त अथवा ‘त्रुपदादिव०’ (यजु० २० । २०) मन्त्र, या ‘युज्ञते मनः०’ (यजु०, ५ । १४) आदि सूक्त अथवा ‘सहस्रशीर्ष०’ (यजु० अ० ३१) आदि पुरुष-सूक्तका जप करना चाहिये । विशेषतः गायत्रीका जप करना उचित है । अघमरणसूक्तमें भाववृत्त देवता और अघमरण श्रूषि हैं । उसका छन्द अनुष्टुप् है । उसके द्वारा भाववृत्त (भक्ति-पूर्वक वरण किये हुए) श्रीहरिका स्मरण होता है । तदनन्तर वस्त्र बदलकर भीगी खोती निचोड़नेके पहले ही देवता और पितरोंका तर्पण करे ॥ ५-११ ॥

फिर पुरुषसूक्त (यजु०, अ० ३१) के द्वारा अलाङ्कृति हो । उसके बाद अग्निहोत्र करे । तत्पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर योग-क्षेमकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण जाय । आसन, शश्या, सबारी, छी, संतान और कमण्डलु—ये बस्तुएँ अपनी ही हों, तभी अपने लिये शुद्ध मानी गयी हैं; दूसरोंकी उपर्युक्त बस्तुएँ अपने लिये शुद्ध नहीं होतीं । राह चलते समय यदि ‘सामनेसे कोई ऐसा पुरुष आ जाय, जो भारसे लदा हुआ कष्ट पा रहा हो, तो स्वयं हटकर उसे जानेके लिये मार्ग दे देना चाहिये । इसी प्रकार गर्भिणी छी तथा गुरुजनोंको भी मार्ग देना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

उदय और अस्तके समय सूर्यकी ओर न देखे । जलमें भी उनके प्रतिनिम्बकी ओर दृष्टिगत न करे । नंगी छी, कुआँ, हत्याके स्थान और पापियोंको न देखे । कपास (रई), हड्डी, भस्म तथा छुणित बस्तुओंको न लोधे । दूसरेके अन्तःपुर और लजानाशरमें प्रवेश न करे । दूसरेके दूतका काम न करे । दूटी-फूटी नाब, बृक्ष और पर्वतपर न चढ़े । अर्थ, यह और शास्त्रोंके विषयमें कौतूहल रखे । ढेला फोड़ने, तिनके तोड़ने और नख चबानेशाली मनुष्य नष्ट हो जाता है । मुख आदि अङ्गोंको न बजावे । रातको दीपक लिये बिना कहीं न जाय । दरवाजेके सिवा और किसी मार्गसे धरमें प्रवेश न करे । मुँहका रंग न बिगड़े । किसीकी बातचीतमें बाधा न डाले तथा अपने बछको दूसरेके बछसे न बदले । ‘कल्याण हो, कल्याण हो’—यही बात मुँहसे निकाले; कभी किसीके अनिष्ट होनेकी बात न कहे । पलाशके आसनको व्यवहारमें न लावे । देवता आदिकी छायासे हटकर चले ॥ १५-२० ॥

• दो पूज्य पुरुषोंके बीचसे होकर न निकले । जूटे मुँह रहकर तारा आदिकी ओर दृष्टि न डाले । एक नदीमें जाकर दूसरी नदीका नाम न ले । दोनों हाथोंसे शरीर न खुजलावे । किसी नदीपर पूँछनेके बाद देवता और पितरोंका तर्पण किये बिना उसे पार न करे । जलमें मल आदि न फेंके । नंगा होकर न नहाये । योगक्षेमके लिये परमात्माकी शरणमें जाय । मालाको अपने हाथसे न इटाये । गदहे आदिकी धूलसे बचे । नीच पुरुषोंको कष्टमें देखकर

कभी उनका उपहास न करे । उनके साथ अनुपशुक्त स्वानपर निवास न करे । वैद्य, राजा और नदीसे हीन देशमें न रहे । जहाँके स्वामी म्लेच्छ, जी तथा बहुतसे मनुष्य हों, उस देशमें भी न निवास करे । रजस्वला आदि तथा पतितोंके साथ बात न करे । सदा भगवान् विष्णुका स्वरण करे । मुँहके ढके बिना न जोरसे हँसे, न ज़ोभाई ले और न छूके ही ॥ २१-२५ ॥

विद्वान् पुरुष स्वामीके तथा अपने अपमानकी बातको गुप रखले । इन्द्रियोंके सर्वथा अनुकूल न चले—उन्हें अपने बशमें किये रहे । मल-मूत्रके वेगको न रोके । परशुरामजी ! छोटेसे भी रोग या शत्रुकी उपेक्षा न करे । सदक

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें आचारका वर्णन नामक एक सौ पृष्ठान्तरीय पूरा हुआ ॥ १५५ ॥

लँडकर आनेके बाद सदा आचमन करे । जल और अग्निको धारण न करे । कल्याणमय पूज्य पुरुषके प्रति कभी हूँकार न करे । पैरको पैरसे न दबावे । प्रत्यक्ष या परोक्षमें किसीकी निन्दा न करे । वैद, द्यात्री, राजा, शृणि और देवताकी निन्दा करना छोड़ दे । लिंगोंके प्रति ईर्ष्या न रखे तथा उनका कभी विश्वास भी न करे । धर्मका श्वरण तथा देवताओंसे प्रेम करे । प्रतिदिन धर्म आदिका अनुष्ठान करे । जन्म-नक्षत्रके दिन चन्द्रमा, ब्राह्मण तथा देवता आदिकी पूजा करे । पष्टो, अष्टमी और चतुर्दशीको तेल या उबटन न लगावे । घरमें दूर जाकर मल-मूत्रका स्वाग करे । उत्तम पुरुषोंके साथ कभी वैर-विरोध न करे ॥ २६-३१ ॥

एक सौ छपनवाँ अध्याय

द्रव्य-शुद्धि

पुरुषकर कहते हैं— परशुरामजी ! अब द्रव्योंकी शुद्धि बतलाऊँगा । मिट्टीका वर्तन पुनः पकानेसे शुद्ध होता है । किन्तु मल-मूत्र आदिसे स्पर्श हो जानेपर वह पुनः पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता । सोनेका पात्र यदि अपवित्र बस्तुओंसे छू जाय तो जलसे धोनेपर पवित्र होता है । तांबेका वर्तन स्टाई और जलसे शुद्ध होता है । काँस और लोहेका वर्तन राखसे मलनेपर पवित्र होता है । मोती आदिकी शुद्धि केवल जलसे धोनेपर ही हो जाती है । जलसे उत्तम शङ्ख आदिके बने बर्तनोंकी, सब प्रकारके पत्थरके बने हुए पात्रकी तथा साग, रसीनी, फल एवं मूलकों और बौंध आदिके दलोंसे बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि भी इसी प्रकार जलसे धोनेमात्रसे ही जाती है । यशकमंमे यज्ञपात्रोंकी शुद्धि केवल दाहिने हाथसे कुशद्वारा मार्जन करनेपर ही हो जाती है । वी या तेलसे चिकने हुए पात्रोंकी शुद्धि गरम जलसे होती है । धरकी शुद्धि क्षाङ्कने बुहारने और लीपनेसे होती है । शोधन और प्रोक्षण करने (संचने) से वस्तु शुद्ध होता है । रेहकी मिट्टी और जलसे उत्तरका शोधन होता है । यदि बहुतसे वस्त्रोंकी देरी ही किसी अस्पृश्य वस्तुसे छू जाय तो उसपर जल छिक देनेमात्रसे उसकी शुद्धि मानी गयी है । काठके बने हुए पात्रोंकी शुद्धि काटकर छील देनेसे होती है ॥ १-५ ॥

शव्या आदि संहत वस्तुओंके उचित आदिसे दूषित होनेपर प्रोक्षण (संचन) मात्रसे उनकी शुद्धि होती है । धोतेल आदिकी शुद्धि दो कुश-पत्रोंमें उत्पवन करने (उछालने) मात्रसे हो जाती है । शश्या, आसन, सवारी, सूप, छकड़ा, पुआल और लकड़ीकी शुद्धि भी संचनेसे ही जाननी चाहिये । सींग और दॉतकी बनी हुई वस्तुओंकी शुद्धि पीली सरसों पासकर लगानेसे होती है । नरियल और तँगी आदि फलनिर्भित पात्रोंकी शुद्धि गोपुच्छके बालोंद्वारा रगड़नेसे होती है । शङ्ख आदि हड्डीके पात्रोंकी शुद्धि सींगके समान ही पीली सरसोंके लेपसे होती है । गोद, गुड, नमक, कुमुम्बके फूल, ऊन और कपासकी शुद्धि धूपमें सुखानेसे होती है । नदीका जल सदा शुद्ध रहता है । बाजारमें बेचनेके लिये फैलायी हुई वस्तु भी शुद्ध मानी गयी है ॥ ६-९ ॥

गौके मुँहको छोड़कर अन्य सभी अङ्ग शुद्ध हैं । धोड़े और वकरेके मुँह शुद्ध माने गये हैं । लिंगोंका मुख सदा शुद्ध है । दूध दुहनेके समय बछड़ोंका, पेहँसे फल गिराते समय पक्षियोंका और शिकार खेलते समय कुत्तोंका मुँह भी शुद्ध माना गया है । भोजन करने, थकने, सोने, पानी पीने, नहाने, उड़कपर धूमने और बल पहननेके बाद अवश्य आचमन करना चाहिये । बिलब धूमने-फिरनेसे ही शुद्ध होता है । रजस्वला जी चौथे दिन शुद्ध होती है । शृण-

आता ही पाँचवें दिन देवता और पितरोंके पूजनकार्यमें सम्मिलित होने योग्य होती है। शौचके बाद पाँच बार गुदामें, दस बार चारों हाथमें, फिर सात बार दोनों हाथोंमें, एक बार लिङ्गमें तथा पुनः दो-तीन बार हाथोंमें मिट्ठी लगाकर धोना चाहिये। यह गृहग्रन्थोंके लिये शौचका विधान है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासियोंके लिये गृहग्रन्थकी अपेक्षा चौहुने शौचका विधान किया गया है ॥ १०-१४ ॥

टसरके कष्ठोंकी शुद्धि बेलके फलके गूदेसे होती है।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'द्रव्य-शुद्धिका वर्णन' नामक एक ही छृणवाँ अध्याय परा हुआ ॥ १५६ ॥

अर्थात् उसे पानीमें घोलकर उसमें बल्को हुवो दे और फिर सफ पानीसे धो दे। तीसी एवं उन आदिके सूतसे बने हुए कपड़ोंकी शुद्धिके लिये अर्थात् उनमें जो हुए तेल आदिके दागाको छुड़ानेके लिये पीले सरसोंके चूर्ण या उश्टनसे मिश्रित जलके द्वारा धोना चाहिये। मृगचर्म या मृगके रोमोंसे बने हुए आलन आदिकी शुद्धि उसपर जलका छीटा देने मात्रसे बतायी गयी है। फूलों और फलोंकी भी उसपर जल छिड़कने मात्रसे पूर्णतः शुद्धि हो जाती है ॥ १५-१६ ॥

एक सौ सतावनवाँ अध्याय

मरणाशौच तथा पिण्डदान एवं दाह-संस्कारकालिक कर्तव्यका कथन

पुष्कर कहते हैं—अब मैं 'प्रेतशुद्धि' तथा 'सूतिका-शुद्धि'का वर्णन करूँगा। सपिण्डोंमें अर्थात् मूल पुरुषकी सातवाँ पीढ़ीतककी संतानोंमें मरणाशौच दस दिनतक रहता है। जननाशौच भी इतने ही दिनतक रहता है। परशुरामजी! यह ब्राह्मणोंके लिये अशौचकी बात बतलायी गयी। क्षत्रिय वारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शुद्ध एक मासमें शुद्ध होता है। यहाँ उस शुद्धके लिये कहा गया है, जो अनुलोमज हो अर्थात् जिसका जन्म उच्च जातीय अथवा सजातीय पितासे हुआ हो। स्वामीको अपने घरमें जितने दिनका अशौच लगता है, सेवकको भी उसने ही दिनोंका लगता है। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका भी जननाशौच दस दिनका ही होता है ॥ १—३ ॥

परशुरामजी! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्ध इसी क्रमसे शुद्ध होते हैं। [किसी-किसीके मतमें] वैश्य तथा शुद्धके जननाशौचकी निवृत्ति पंद्रह दिनोंमें होती है। यदि बालक दाँत निकलनेके पहले ही मर जाय तो उसके जननाशौचकी सद्यशुद्धि मानी गयी है। दाँत निकलनेके बाद चूड़ाकरणसे पहलेतक तीन रातका तथा उसके बाद दस रातका अशौच बताया गया है। तीन वर्षसे कमका शुद्ध-बालक यदि मृत्युको प्राप्त हो तो पाँच दिनोंके बाद उसके अशौचकी निवृत्ति होती है। तीन वर्षके बाद मृत्यु होनेपर वारह दिन बाद शुद्धि होती है तथा छः वर्ष व्यतीत है।

होनेके पश्चात् उसके मरणका अशौच एक मासके बाद निवृत्त होता है। कन्याओंमें जिनका मुण्डन नहीं हुआ है, उनके मरणाशौचकी शुद्धि एक रातमें होनेवाली मानी गयी है और जिनका मुण्डन हो चुका है, उनकी मृत्यु होनेपर उनके बन्धु-बान्धव तीन दिन बाद शुद्ध होते हैं ॥ ४—८ ॥

जिन कन्याओंका विवाह हो चुका है, उनकी मृत्युका अशौच पिण्डकुलको नहीं प्राप्त होता। जो खियाँ पिताके घरमें संतानको जन्म देती हैं, उनके उस जननाशौचकी शुद्धि एक रातमें होती है। किंतु स्वयं सूतिका दस रातमें ही शुद्ध होती है, इसके पहले नहीं। यदि विवाहित कन्या पिताके घरमें मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उसके बन्धु-बान्धव निश्चय ही तीन रातमें शुद्ध हो जाते हैं। समान अशौचको पहले निवृत्त करना चाहिये और असमान अशौचको आदमें। ऐसा ही धर्मराजका बचन है। परदेशमें रहनेवाला पुरुष यदि अपने कुलमें किसीके जन्म या मरण होनेका समाचार सुने तो दस रातमें जितना समय शेष हो, उसने ही समयतक उसे अशौच लगता है। यदि दस दिन व्यतीत होनेपर उसे उक्त समाचारका ज्ञान हो, तो वह तीन राततक अशौचयुक्त रहता है तथा यदि एक वर्ष व्यतीत होनेके बाद उपर्युक्त बालोंकी जानकारी हो तो केवल ज्ञानमात्रसे शुद्धि हो जाती है। नाना और आचार्यके मरनेपर भी तीन राततक अशौच रहता है ॥ ९—१४ ॥

परशुरामजी! यदि खीका गर्भ गिर जाय तो जितने

नासका अर्थ मिथि हो, उतनी राते बीतनेपर उस जीकी शुद्धि होती है। सपिष्ठ ब्राह्मण-कुलमें मरणाशौच होनेपर उस कुलके सभी लोग सामान्यरूपसे दस दिनमें शुद्ध हो जाते हैं। क्षत्रिय वारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं। [प्रेत या पितरोंके श्राद्धमें उन्हें आसन देनेसे लेकर अर्धदानतकके कर्म करके उनके पूजनके पश्चात् जब परिवेषण होता है, तब सपात्रक कर्ममें वहाँ ब्राह्मण-भोजन कराया जाता है। ये ब्राह्मण पितरोंके प्रतिनिधि होते हैं। अपात्रक कर्ममें ब्राह्मणोंका प्रस्तवक्ष भोजन नहीं होता तो भी पितर सूक्ष्मरूपसे उस अन्नको ग्रहण करते हैं। उनके भोजनके बाद वह स्थान उच्छिष्ट समझा जाता है;] उस उच्छिष्टके निकट ही वेदी बनाकर, उसका संस्कार करके, उसके ऊपर कुश बिछाकर उन कुशोंपर ही पिण्ड निवेदन करे। उस समय एकाग्राचित्त हो, प्रेत अथवा पितरके नाम-गोत्रका उच्चारण करके ही उनके लिये पिण्ड अर्पित करे ॥ १५—१७ ॥

जब ब्राह्मण लोग भोजन कर लें और धनसे उनका सूक्ष्मार या पूजन कर दिया जाय, तब नाम-गोत्रके उच्चारण-पूर्वक उनके लिये अक्षत-जल छोड़े जायें। तदनन्तर चार अकूल चौड़ा, उतना ही गहरा तथा एक विसेका लंबा एक गहरा खोदा जाय। परशुराम ! वहाँ तीन 'विकर्ष' (सूखे कंडोंके रखनेके स्थान) बनाये जायें और उनके समीप तीन जगह अनिन प्रज्वलित की जाय। उनमें क्रमशः 'सोमात् स्वाहा', 'वहूये स्वाहा' तथा 'बमात् स्वाहा' मन्त्र बोलकर सोम, अग्नि तथा यमके लिये संक्षेपसे चार-चार या तीन-तीन आहुतियाँ दे। सभी वैदियोंपर सम्भग् विधिसे आहुति देनी चाहिये। फिर वहाँ पहलेकी ही भौति पृथक्-पृथक् पिण्ड-दान करे ॥ १८—२१ ॥

अन्न, दही, मधु तथा उड्डासे पिण्डकी पूर्ति करनी चाहिये। यदि वर्षके भीतर अधिक मास हो जाय तो उसके लिये एक पिण्ड अधिक देना चाहिये। अथवा वारहों मासके सारे मालिक श्राद्ध द्वादशाहके दिन ही पूरे कर दिये जायें। यदि वर्षके भीतर अधिक मासकी सम्भावना हो तो द्वादशाह श्राद्धके दिन ही उस अधिमासके निमित्त एक पिण्ड अधिक दे दिया जाय। संबत्सर पूर्ण हो जानेपर श्राद्धको सामान्य श्राद्धकी ही भौति सम्भादित करे ॥ २२—२४ ॥

सपिष्ठीकरण श्राद्धमें प्रेतको अल्पा पिण्ड लेकर बादमें उसीकी तीन पीढ़ियोंके पितरोंको तीन पिण्ड प्रदान करने

चाहिये। इस तरह हन चारों पिण्डोंको बड़ी एकाग्रताके साथ अर्पित करना चाहिये। भगुनन्दन ! पिण्डोंका पूजन और दान करके 'पृथिवी ते पात्रम्', 'ये समानाः०' इत्यादि मन्त्रोंके पाठपूर्वक यथोचित कार्य सम्पादन करते हुए प्रेत-पिण्डके तीन दुकड़ोंको क्रमशः पिता, पितामह और और प्रपितामहके पिण्डोंमें जोड़ दे। इससे पहले इसी तरह प्रेतके अर्धपात्रका पिता आदिके अर्धपात्रोंमें मेलन करना चाहिये। पिण्डमेलन और पात्रमेलनका यह कर्म पृथक्-पृथक् करना उचित है। शूद्रका यह श्राद्धकर्म मन्त्रराहित करनेका विधान है। छियोंका सपिष्ठीकरण श्राद्ध भी उस समय इसी प्रकार (पूर्वोक्त रीतिसे) करना चाहिये ॥ २५—२८ ॥

पितरोंका श्राद्ध प्रतिवर्ष करना चाहिये; किंतु प्रेतके लिये सान्नोदक कुम्भदान एक वर्षतक करे। वर्षाकालमें गङ्गाजीकी सिकताधारकी सम्भव है गणना हो जाय, किंतु अतीत पितरोंकी गणना कदापि सम्भव नहीं है। काल निरन्तर गतिशील है, उसमे कभी स्थिरता नहीं आती; इसलिये कर्म अवश्य करे। प्रेत पुरुष देवत्वको प्राप्त हुआ हो या यातनास्थान (नरक) में पड़ा हो, वह किये गये श्राद्धोंको वहाँ अवश्य पाता है। इसलिये मनुष्य प्रेतके लिये अथवा अपने लिये शोक न करते हुए ही उपकार (श्राद्धादि कर्म) करे ॥ २९—३१ ॥

जो लोग पर्वतसे कूदकर, आगमें जलकर, गलेमें फाँसी लगाकर या पानीमें ढूबकर मरते हैं, ऐसे आत्मधारी और पतित मनुष्योंके मरनेका अशौच नहीं लगता है। जो बिजली गिरनेसे या युद्धमें अखोंके आशातसे मरते हैं, उनके लिये भी यही बात है। यति (संन्यासी), ब्रती, ब्रह्मचारी, राजा, कारीगर और यज्ञदीक्षित पुरुष तथा जो राजाकी आशाका पालन करनेवाले हैं; ऐसे लोगोंको भी अशौच नहीं प्राप्त होता है। ये यदि प्रेतकी शवयात्रामें गये हों तो भी ज्ञानमात्र कर लें। इतनेसे ही उनकी शुद्धि हो जाती है। मैथुन करनेपर और जलते हुए शवका धुआँ लग जानेपर तत्काल स्नानका विधान है। मरे हुए ब्राह्मणके शवको शूद्रदारा किसी तरह भी न उठवाया जाय। इसी तरह शूद्रके शवको भी ब्राह्मणदारा कदापि न उठवायें; क्योंकि वैसा करनेपर दोनोंको ही दोष लगता है। अनाथ ब्राह्मणके शवको दोकर अन्येहिकमें लिये ले जानेपर मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है ॥ ३२—३५ ॥

अनाथ प्रेतका दाह करनेके लिये काष्ठ या लकड़ी देनेवाला मानव संग्राममें विजय पाता है। अपने प्रेत-नन्दुको चितापर खापित एवं दग्ध कर उस चिताकी अपस्त्र्य परिकल्पना करके समस्त भाई-बन्धु सबज्ज स्नान करें और प्रेतके निमित्त तीन-तीन बार जलाखालि दें। घरके दरवाजेपर जाकर पत्थरपर पैर रखकर (हाथ-पैर भो लें), अग्रिमें अक्षत छोड़ें तथा नीमकी पत्ती चढ़ाकर घरके भीतर प्रवेश करें। वहाँ उस दिन सबसे अलग पृथ्वीपर चटाई आदि बिछाकर सावें। जिस घरका शब्द जलाया गया हो, उस घरके लोग उस दिन खरीदकर मँगाया हुआ या स्वतः

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'मरणाशौचका वर्णन' नामक एक सी सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५७ ॥

एक सौ अट्टावनवाँ अध्याय गर्भस्नाव आदि सम्बन्धी अशौच

पुष्कर कहते हैं—अब मैं मनु आदि महर्षियोंके मरतके अनुसार गर्भस्नाव-जनित अशौचका वर्णन करूँगा। चौथे मासके स्नाव तथा पौन्चवें, छठे मासके गर्भपातक यह नियम है कि जितने महीनेपर गर्भस्वल्पन हो, उतनी ही रात्रियोंके द्वारा अथवा तीन रात्रियोंके द्वारा स्त्रियोंकी शुद्धि होती है *। सातवें माससे दस दिनका अशौच

* मनुस्मृतिमें लिया है—‘रात्रियमिसास्तुत्यामिगर्भस्नावे विशुद्धयति ।—(५ । ६६) इसको टीकामें कुल्लक्ष्मभट्टने कहा है—‘नृतीय नासा-प्रवृत्ति गर्भस्नावे गर्भमासास्तुत्याहोरात्रेष्वातुवर्ण्यस्ती विशुद्धयति ।—अर्थात् तीसरे महीनेसे केवल गर्भस्नाव होनेपर जितने महीनेका गर्भ हो, उसने दिन-रातमें चारों बणीको कियों शुद्ध होती है ।’ कुल्लक्ष्मभट्टने यह नियम छः महीनेतके लिये बताया है और इसकी पुष्टिमें आदिपुराणका निम्नाङ्कित कोक उद्धृत किया है—‘वर्णमासान्यन्तरं यादृ गर्भस्नावो भवेद् यदि । तदा माससमेस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते ॥’ मित्राहुराकारने स्तुतिवचनका उल्लेख करते हुए यह कहा है कि ‘चौथे मासतक जो गर्भस्वल्पन होता है, वह ‘ज्ञाव’ है और पौन्चवें, छठे मासमें जो स्नाव होता है, उसे ‘पात’ कहते हैं; इसके कपर ‘प्रसाव’ कहलता है । यथा—‘ता चतुर्थं भवेत्स्नावः पातः पञ्चमपड्डोः । अत कर्ज्ज प्रसृतिः स्वात् ।’ ‘गर्भस्नावे मासास्तुत्या निश्चाः’ इत्यादि अन्यतदा यात्रावस्थाको भी उपर्युक्त मरतको ही अर्क किया है । यिरात्रका नियम तीन मासतक ही अग्र होता है ।

प्राप्त हुआ आहार अहण करें । इस दिनोंतक ग्रतिश्चिद्दि एक-एकके हिसाबसे पिण्डदान करें । इसबें दिन एक पिण्ड देकर बाल बनवाकर मनुष्य शुद्ध होता है । इसबें दिन विदान पुरुष सरसों और लिलका अनुलेप लगाकर जलावयमें गोता लगाये और स्नानके पश्चात् दूसरा नूतन बल धारण करे । जिस बालकके हाँत न निकले हों, उसके मरनेपर या गर्भस्नाव होनेपर उसके लिये न तो दाह-संस्कार करे और न जलाखालि दे । शब्दाह के पश्चात् चौथे दिन अस्थिसंचय करे । अस्थिसंचयके पश्चात् अङ्गस्पर्शका विभान है ॥ ३६-४२ ॥

होता है । [प्रथमसे तीसरे मासतकके गर्भस्नावमें ब्राह्मणके लिये तीन राततक अशुद्धि रहती है । +] क्षत्रियके लिये चार रात्रि, वैश्यके लिये पाँच दिन तथा शूद्रके लिये आठ दिनतक अशौचका समय है । सातवें माससे अधिक होनेपर सबके लिये बारह दिनोंकी अशुद्धि होती है । यह अशौच केवल स्त्रियोंके लिये कहा गया है । तात्पर्य यह कि माता ही इतने दिनोंतक अशुद्ध रहती है । पिताकी शुद्धि तो स्नान-मात्रसे हो जाती है + ॥ १-३ ॥

+ ‘अत कर्ज्ज तु जात्युक्तनाशौचं नासु विष्टते ।’ (आदि-पुराण) छठे मासके चारसे अर्थात् सातवें माससे स्त्रियोंको पूर्ण-जननाशौच (दस या बारह दिनका) लगता है । तीन मासके अंदर जो स्नाव होता है, उसको ‘अचिरस्नाव’ कहा गया है; उसमें मरीचिका मरा इस प्रकार है—‘गर्भस्त्वया यथामासमनिरे तूरमे क्षयः । राजन्ये तु चतुर्थं वैश्ये पश्चात्मेव च । अष्टाहेन तु शूद्रस्त्वं शुद्धिरेवा प्रकीर्तिंता ।’ इन इकोइका माव मूलके अनुकालमें जा गया है ।

मरीचिके मरतमें माताको मास-संस्थाके अनुसार और पिता आदिको तीन दिनका अशौच होगा है । यह अशौच केवल गर्भपातको क्षय करके कहा गया है । अन्यसम्बन्धी शुद्धक तो पूरा ही कहाता है । इसमें ‘जातशूद्धे भूतजाते वा मपिण्डानां दशाहम् ।’ यह ‘हारीत-स्त्रिलिङ्गका वचन प्रयाण है ।

जो सपिष्ठ पुरुष हैं, उन्हें छः मासिक सदा-शौच (तत्काल-शुद्धि) रहता है। उनके लिये स्नान भी आवश्यक नहीं है। किंतु सातवें और आठवें मासके गर्भातामें सपिष्ठ पुरुषोंको भी त्रिपात्र अशौच लगता है। जिसने समयमें दाँत निकलते हैं, उन्हें भासिक यदि बालक-की मृत्यु हो जाय तो सपिष्ठ पुरुषोंको तत्काल शुद्धि प्राप्त होती है। चूडाकरणके पहले मृत्यु होनेपर उन्हें एक रातका अशौच लगता है। योगीपतोके पूर्व बालकका देहावसान होनेपर सपिष्ठोंको तीन रातका अशौच प्राप्त होता है। इसके बाद मृत्यु होनेपर सपिष्ठ पुरुषोंको दस रातका अशौच लगता है। दाँत निकलनेके पूर्व बालककी मृत्यु होनेपर माता-पिताको तीन रातका अशौच प्राप्त होता है। जिसका चूडाकरण न हुआ हो, उस बालककी मृत्यु होनेपर भी माता-पिताको उतने ही दिनोंका अशौच प्राप्त होता है। तीन वर्षसे कमकी आयुमें ब्राह्मण-बालककी मृत्यु हो (और चूडाकरण न हुआ हो) तो सपिष्ठोंकी शुद्धि एक रातमें होती है * ॥ ४-६ ॥

क्षत्रिय-बालकके मरनेपर उसके सपिष्ठोंकी शुद्धि दो दिनपर वैश्य-बालकके मरनेसे उसके सपिष्ठोंकी तीन दिनपर और शूद्र-बालककी मृत्यु हो तो उसके सपिष्ठोंकी पाँच दिनपर शुद्धि होती है। शूद्र बालक यदि विवाहके पहले मृत्युको प्राप्त हो तो उसे बारह दिनका अशौच लगता है। जिस अवस्थामें ब्राह्मणको तीन रातका अशौच देखा जाता है, उसीमें शूद्रके लिये बारह दिनका अशौच लगता है; क्षत्रियके लिये छः दिन और वैश्यके लिये नौ दिनोंका अशौच लगता है। दो वर्षके बालकका अग्निदारा दाह-संस्कार नहीं होता। उसकी मृत्यु होनेपर उसे भरतीये गाह देना चाहिये। उसके लिये बाल्योंको उदक-किया (जलाङ्गिदान) नहीं करनी चाहिये। अथवा जिसका नामकरण हो गया हो या जिसके दाँत निकल आये हों, उसका दाह-संस्कार तथा उसके निमित्त जलाङ्गिदान करना चाहिये। † उपनयनके पश्चात् बालककी मृत्यु हो

* शृणुमक्षुचूडामानिशुद्धिनैविद्यी स्मृता। इति मनुः (५।६७)

† वहाँ दो वर्षकी आयुसाले बालकके दाहसंस्कार तथा उसके निमित्त जलाङ्गिदानका निवेद भी निष्टा है और विधान भी। अतः यह समझना चाहिये कि किसा बाय तो उससे सुत शीवका इपकार होता है और न किसा बाय तो भी बाल्योंको कोई दोष

तो दस दिनका अशौच लगता है। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा तीनों वेदोंका स्वाध्याय करता है, वैसा ब्राह्मण एक दिनमें ही शुद्ध हो जाता है ‡। जो उससे हीन और हीनतर है, अर्थात् जो दो अथवा एक वेदका स्वाध्याय करनेवाला है, उसके लिये तीन एवं चार दिनमें शुद्ध होनेका विधान है। जो अग्निहोत्रकर्मसे रहित है, वह पाँच दिनमें शुद्ध होता है। जो केवल 'ब्राह्मण' नामधारी है (वेदाध्ययन या अग्निहोत्र नहीं करता), वह दस दिनमें शुद्ध होता है ॥ ७-१ ॥

गुणवान् ब्राह्मण तीन दिनपर शुद्ध होता है, गुणवान् क्षत्रिय नौ दिनमें, गुणवान् वैश्य दस दिनमें और गुणवान् शूद्र चौते दिनमें शुद्ध होता है। साधारण ब्राह्मण दस दिनमें, साधारण क्षत्रिय बारह दिनमें, साधारण वैश्य पंद्रह दिनमें और साधारण शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। गुणोंकी अधिकता होनेपर, यदि दस दिनका अशौच प्राप्त हो तो वह तीन ही दिनतक रहता है, तीन दिनोंतकका अशौच प्राप्त हो तो वह एक ही दिन रहता है तथा एक दिनका अशौच प्राप्त हो तो उसमें तत्काल ही शुद्धिका विधान है। इसी प्रकार सर्वत्र ऊहा कर लेनी चाहिये। दास, छात्र, भूत्य और विध्य-ये यदि अपने स्वामी अथवा गुरुके साथ रहते हों तो गुरु अथवा स्वामीकी मृत्यु होनेपर इन सबको स्वामो एवं गुरुके कुटुम्बी जनोंके समान ही पृथक्-पृथक् अशौच लगता है। जिसका अग्निसे संयोग न हो अर्थात् जो अग्निहोत्र न करता हो, उसे सपिष्ठ पुरुषोंकी मृत्यु होनेके बाद ही तुरंत अशौच लगता है; परंतु जिसके द्वारा नित्य अग्निहोत्रका अनुष्ठान होता हो, उस पुरुषको किसी कुटुम्बी या जानि-बन्धुकी मृत्यु होनेपर जब उसका दाह-संस्कार सम्भव हो जाता है, उसके बाद अशौच प्राप्त होता है ॥ १२-१६ ॥

नहीं लगता। (मनु० ५। ७० की 'मन्वय-मुक्तावली' दीका देवे ।)

‡ मनुकी प्राचीन पोषियोंमें इसी आकृतका कोक था, जिसका उल्लेख प्रायश्चित्ताध्यायके आशौच-प्रकरणमें १८-२९ कोकोंकी मिताध्यरामें किया गया है। यह विधान केवल स्वाध्याय और अग्निहोत्रकी सिद्धिके लिये है। संचावन्दन और बाह्य-गोवन आदिके बोय शुद्धि तो दस दिनके बाद ही होती है। वैसा कि बग्म आदिका बचन है—‘षष्मयत्र दशावानि कुरुत्वाऽनं न भुज्यते’। इत्यादि ।

सभी वर्णके लोगोंको अशौचका एक तिहाई समय वीत जानेपर शारीरिक स्वर्णका अधिकाद प्राप्त हो जाता है। इस नियमके अनुसार ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमशः तीन, चार, पाँच तथा दस दिनके अनन्तर स्पर्श करनेके योग्य हो जाते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंका अस्तिसंचय क्रमशः चार, पाँच, तीन तथा नौ दिनोंपर करना चाहिये ॥ १३-१८ ॥

जिस कन्याका बाण्डान नहीं किया गया है (और चूडाकरण हो गया है), उसकी यदि बाण्डानसे पूर्व मृत्यु हो जाय तो बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। जिसका बाण्डान तो हो गया है, किंतु विवाह-संस्कार नहीं हुआ है, उस कन्याके मरनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। यदि व्याही हुई बाहिन या पुत्री आदिकी मृत्यु हो तो दो दिन एक रातका अशौच लगता है। कुमारी कन्याओंका वही गोत्र है, जो पिताका है। जिसका विवाह हो गया है, उन कन्याओंका गोत्र वह है, जो उनके पतिका है। विवाह हो जानेपर कन्याकी मृत्यु हो तो उसके लिये जलाञ्जलि-दानका कर्तव्य पितापर भी लागू होता है; पति-पर तो है ही। तात्पर्य यह कि विवाह होनेपर पिता और पति-दोनों कुलोंमें जलदानकी किया प्राप्त होती है। यदि दस दिनोंके बाद और चूडाकरणके पहले कन्याकी मृत्यु हो तो माता-पिताको तीन दिनका अशौच लगता है और सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल ही शुद्धि होती है। चूडाकरणके बाद बाण्डानके पहलेतक उसकी मृत्यु होनेपर बन्धु-बान्धवोंको एक दिनका अशौच लगता है। बाण्डानके बाद विवाहके पहलेतक उन्हें तीन दिनका अशौच प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस कन्याके भटीजोंको दो दिन एक रातका अशौच लगता है; किंतु अन्य सपिण्ड पुरुषोंकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। ब्राह्मण सजातीय पुरुषोंके यहाँ जन्म-मरणमें सम्मिलित हो तो दस दिनमें शुद्ध होता है और शक्तिय, वैश्य तथा शूद्रके यहाँ जन्म-मृत्युमें सम्मिलित होनेपर क्रमशः छः, तीन तथा एक दिनमें शुद्ध होता है ॥ १९-२३ ॥

यह जो अशौच-सम्बन्धी नियम निश्चित किया गया है, वह सपिण्ड पुरुषोंसे ही सम्बन्ध रखता है, ऐसा जानना चाहिये। अब जो औरस नहीं हैं, ऐसे पुत्र आदिके विषयमें बताऊँगा। औरस-भित्र क्षेत्रज, दसक आदि पुत्रोंके मरनेपर तथा जिसने अपनेको छोड़कर दूसरे पुरुषसे सम्बन्ध लोड़ किया हो अथवा जो दूसरे पतिको छोड़कर आयी हो और अपनी भार्या बनकर रहती रही हो, ऐसी

लोके मरनेपर तीन रातमें अशौचकी निवृत्ति होती है। स्वधर्मका स्थाग करनेके कारण जिसका जन्म व्यर्थ हो गया हो, जो वर्णसंकर संतान हो अर्थात् नीचवर्णके पुरुष और उच्चवर्णकी लांसे जिसका जन्म हुआ हो, जो सम्यासी बनकर इधर-उधर घूमते-फिलते रहे हों और जो अशास्त्रीय विधिसे विष-बन्धन आदिके द्वारा प्राण-स्थाग कर चुके हों, ऐसे लोगोंके निमित्त बान्धवोंको जलाञ्जलि-दान नहीं करना चाहिये; उनके लिये उदक-किया निवृत्त हो जाती है। एक ही माताद्वारा दो पिताओंसे उत्तर जो दो भाई हों, उनके जन्ममें सपिण्ड पुरुषोंको एक दिनका अशौच लगता है और मरनेपर दो दिनका। यहाँतक सपिण्डोंका अशौच बताया गया। अथ 'समानोदक'का बता रहा हूँ ॥ २४-२७ ॥

दॉत निकलनेसे पहले बालककी मृत्यु हो जाय, कोई सपिण्ड पुरुष देशान्तरमें रहकर मरा हो और उसका समाचार सुना जाय तथा किसी असपिण्ड पुरुषकी मृत्यु हो जाय—तो इन सब अवस्थाओंमें (नियत अशौचका काल बिताकर) बल्लसहित जलमें हुवकी ल्यानेपर तत्काल ही शुद्धि हो जाती है। मृत्यु तथा जन्मके अवसरपर सपिण्ड पुरुष दस दिनोंमें शुद्ध होते हैं, एक कुलके असपिण्ड पुरुष तीन रातमें शुद्ध होते हैं और एक गोत्रवाले पुरुष स्नान करनेमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। सातवीं पीढ़ीमें सपिण्ड-भावकी निवृत्ति हो जाती है और चौदहवीं पीढ़ीतक समानोदक सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। किसीके मतमें जन्म और नामका स्मरण न रहनेपर अर्थात् हमारे कुलमें अमुक पुरुष हुए थे, इस प्रकार जन्म और नाम दोनोंका शान न रहनेपर—समानोदक-भाव निवृत्त हो जाता है। इसके बाद केवल गोत्रका सम्बन्ध रह जाता है। जो दशाह वीतनेके पहले परदेशमें रहनेवाले किसी जाति-बन्धुकी मृत्युका समाचार सुन लेता है, उसे दशाहमें जितने दिन शेष रहते हैं, उतने ही दिनका अशौच लगता है। दशाह वीत जानेपर उक्त समाचार सुने तो तीन रातका अशौच प्राप्त होता है ॥ २८-३२ ॥

वर्ष वीत जानेपर उक्त समाचार शात हो तो जल्का सर्व करके ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है। मामा, शिष्य, प्रृथिवीकृतथा बान्धवजनोंके मरनेपर एक दिन, एक रात और एक दिनका अशौच लगता है। भित्र, दामाद, पुत्रीके पुत्र, भानजे, साले और सालेके पुत्रके मरनेपर स्नानमात्र करनेका विधान है। नानी, आचार्य तथा नानाकी मृत्यु

होनेपर तीन दिनका अशौच लगता है। दुर्भिक्ष (अकाल) पहनेपर, समूचे गद्दके ऊपर संकट आनेपर, आपसि-विपत्ति पहनेपर तत्काल शुद्धि कही गयी है। यशकर्ता, वत्परायण, ब्रह्मचारी, दाता तथा ब्रह्मवेताकी तत्काल ही शुद्धि होती है। दान, यज्ञ, विवाह, युद्ध तथा देशव्यापी विस्त्रके समय भी सद्यःशुद्धि ही बतायी गयी है। महामारी आदि उपद्रवमें मेरे हुएका अशौच भी तत्काल ही निवृत्त हो जाता है। राजा, गौ तथा ब्राह्मणद्वारा मारे गये मनुष्योंकी और आत्मघाती पुरुषोंकी मृत्यु होनेपर भी तत्काल ही शुद्धि कही गयी है ॥ ३३-३७ ॥

जो असाध्य रोगसे युक्त एव स्वाध्यायमें भी असमर्प है, उसके लिये भी तत्काल शुद्धिका ही विधान है। जिन महापापियोंके लिये अग्नि और जलमें प्रवेश कर जाना प्रायश्चित्त बताया गया है (उनका वह मरण आत्मघात नहीं है)। जो खी अथवा पुष्ट अपमान, क्रोध, स्नेह, तिरस्कार या भयके कारण गलेमें बन्धन (फॉसी) लगाकर किसी तरह प्राण स्थान देते हैं, उन्हें ‘आत्मघाती’ कहते हैं। वह आत्मघाती मनुष्य एक लाख वर्षतक अपवित्र नरकमें निवास करता है। जो अत्यन्त वृद्ध है, जिसे शौचाशौचका भी शान नहीं रह गया है, वह यदि प्राण स्थान करता है तो उसका अशौच तीन दिनतक ही रहता है। उसमें (प्रथम दिन दाह), दूसरे दिन अस्थिगंग्य, तीसरे दिन जलदान तथा चौथे दिन श्राद्ध करना चाहिये। जो विजली अथवा अग्निमें मरते हैं, उनके अशौचमें सुषिष्ठ पुरुषोंकी तीन दिनमें शुद्धि होती है। जो स्त्रियाँ पात्वण्डका आश्रय लेनेवाली तथा पतिवातिनी हैं, उनकी मृत्युपर अशौच नहीं लगता और न उन्हें जलाञ्जलि पानेका ही अधिकार होता है। पिता-माता आदिकी मृत्यु होनेका समाचार एक वर्ष बीत जानेपर भी प्राप्त हो तो सबस्त्र स्नान करके उपवास करे और विधिपूर्वक प्रेतकार्य (जलदान आदि) सम्पन्न करे ॥ ३८-४३ ॥

जो कोई पुरुष जिस किसी तरह भी असपिष्ठ शब्दको उठाकर ले जाय, वह ब्रह्मसहित स्नान करके अग्निका स्पर्श करे और धी खा ले, इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। यदि उस कुदुम्बका वह अज्ञ खाता है तो दस दिनमें ही उसकी शुद्धि होती है। यदि मृतकके घरबालोंका अज्ञ न खाकर उनके घरमें निवास भी न करे तो उसकी एक ही

दिनमें शुद्धि हो जायगी। जो द्विज अनाथ ब्राह्मणके शब्दको^{११} दोते हैं, उन्हें पग-पगापर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है और स्नान करनेमात्रसे उनकी शुद्धि हो जाती है। शूद्रके शब्दका अनुगमन करनेवाला ब्राह्मण तीन दिनपर शुद्ध होता है। मृतक व्यक्तिके बन्धु-बान्धवोंके साथ बैठकर शोक-प्रकाश या विलाप करनेवाला द्विज उस एक दिन और एक रातमें स्वेच्छासे दान और श्राद्ध आदिका स्थान करे। यदि अपने घरपर किसी शूद्रा लीके बालक पैदा हो या शूद्रका मरण हो जाय तो तीन दिनपर घरके बर्तन-भाँडे निकाल फेंके और सारी भूमि लीप दे, तब शुद्धि होती है। सजातीय व्यक्तियोंके रहते हुए ब्राह्मण-शब्दको शूद्रके द्वारा न उठायें। मुर्देको नहलाकर नूतन बद्धसे ढक दे और फूलोंसे उसका पूजन करके स्मशानकी ओर ले जाय। मुर्देको नंगे शरीर न जलाये। कफनका कुछ हिस्सा फाइकर स्मशानवारीको दे देना चाहिये ॥ ४४-५० ॥

उस समय सगोत्र पुरुष शब्दको उठाकर चितापर चढ़ाये। जो अग्निहोत्री हो, उसे विधिपूर्वक तीन अग्नियों (आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणायन) द्वारा दग्ध करना चाहिये। जिसने अग्निकी स्थापना नहां की हो, परंतु उपनयन-संस्कारसे युक्त हो, उसका एक अग्नि (आहवनीय) द्वारा दाह करना चाहिये तथा अन्य साधारण मनुष्योंका दाह लौकिक अग्निमें करना चाहिये। * ‘अस्माद् त्वमभिजातोऽसि स्वदद्यं जायतां पुनः। असौ स्वर्गार्थं लोकाय स्वाहा।’ इस मन्त्रको पढ़कर पुत्र अपने पिताके शब्दके मुखमें अग्नि प्रदान करे। फिर प्रेतके नाम और गोत्रका उच्चारण करके बान्धव-जन एक-एक बार जल-दान करें। इसी प्रकार नाना तथा आचार्यके मरनेपर भी उनके उद्देश्यसे जलाञ्जलिदान करना अनिवार्य है। परंतु मित्र, व्याही हुई बेटी-बहन आदि, भानजे, श्वशुर तथा श्रृंत्विजके लिये भी जल-दान करना अपनी इच्छापर निर्भर है। पुत्र अपने पिताके लिये दस दिनोंतक प्रतिदिन ‘अतो मः शोशुच्द श्वशु’ इत्यादि पढ़कर

* देवक-सूनिमें किया है कि ‘नाण्डास्त्वी अग्निं, अपवित्र अग्निं, सूनिना-गृहकी अग्निं, पतितके बरकी अग्निं तथा चिताकी अग्निं—इन्हें शिष्ट पुरुषको नहीं ब्रह्म करना चाहिये।’ अर्थात् लौकिक अग्नि केरे सभ्य चपर्युक्त अग्नियोंको स्थान देना चाहिये। ‘वाण्डालायिनरमेष्वाग्निः सूतिक्ष्णिनश्च कर्हिचित्। परिताग्निं-विनाग्निं न शिष्टप्राणोऽनिना ॥’

जलाञ्जलि दे । ब्राह्मणको दस पिण्ड, क्षत्रियको बारह पिण्ड, वैश्यको पंद्रह पिण्ड और शूद्रको तीस पिण्ड देनेका विधान है । पुज हो या पुनी अथवा और कोई, वह पुत्रकी भाँति मृत व्यक्तिको पिण्ड दे ॥ ५१-५६ ॥

शब्दका दाह-संस्कार करके जब घर लौटे तो मनको बशमें रखकर द्वारपर लड़ा हो दाँतसे नीमकी पत्तियाँ चशाये । फिर आचमन करके अग्नि, जल, गोवर और पीली सरसोंका सर्वश करे । तत्प्रात् पहले पत्थरपर पैर रखकर धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करे । उस दिनसे बन्धु-बान्धवोंको क्षार नमक नहीं खाना चाहिये, मांस त्याग देना चाहिये । सबको भूमिपर शयन करना चाहिये । वे स्नान करके खारीदनेसे प्राप्त हुए अज्ञको खाकर रहे । जो प्रारम्भमें दाह-संस्कार करे, उसे दस दिनोंतक सब कार्य करना चाहिये । अन्य अधिकारी पुरुषोंके अभावमें ब्रह्मचारी ही पिण्डदान और जलाञ्जलि-दान करे । जैसे सपिण्डोंके लिये यह मरणाशौचकी प्राप्ति बतायी गयी है, उसी प्रकार जन्मके समय भी पूर्ण शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको अशौचकी प्राप्ति होती है । मरणाशौच तो सभी सपिण्ड पुरुषोंको समानरूपसे प्राप्त होता है; किंतु जननाशौचकी अस्पृश्यता विशेषतः माता-पिताको ही लगती है । इनमें भी माताको ही जन्मका विशेष अशौच लगता है, वही स्पर्शके अधिकारसे विच्छिन्न होती है । पिता तो स्नान करनेमात्रसे शुद्ध (स्पर्श करने योग्य) हो जाता है ॥ ५७-६१ ॥

पुत्रका जन्म होनेके दिन निष्ठ्य ही आद करना चाहिये । वह दिन आद-दान तथा गो, मुबर्ग आदि और बख्तका दान करनेके लिये उपयुक्त माना गया है । मरणका अशौच मरणके साथ और सूतकका सूतकके साथ निष्पृत्त

इस प्रकार आदि आज्ञनमें महापुराणमें
पक सौ अद्वावनर्दी अध्याय पूरा हुआ ॥ १५८ ॥

होता है । दोनोंमें जो पहला अशौच है, उसके साथ दूसरेको भी शुद्धि होती है । जन्माशौचमें मरणाशौच हो अथवा मरणा-शौचमें जन्माशौच हो जाय तो मरणाशौचके अधिकारसे जन्माशौचको भी निष्पृत्त मालकर अपनी शुद्धिका काम करना चाहिये । जन्माशौचके साथ मरणाशौचकी निष्पृत्ति नहीं होती । यदि एक समान दो अशौच हों (अर्थात् जन्म-सूतकमें जन्म-सूतक और मरणाशौचमें मरणाशौच पहले जाय) तो प्रथम अशौचके साथ दूसरेको भी समाप्त कर देना चाहिये और यदि असमान अशौच हो (अर्थात् जन्माशौचमें मरणाशौच और मरणाशौचमें जन्माशौच हो) तो द्वितीय अशौचके साथ प्रथमको निष्पृत्त करना चाहिये—ऐसा धर्मराजका कथन है । मरणाशौचके भीतर दूसरा मरणाशौच आनेपर वह पहले अशौचके साथ निष्पृत्त हो जाता है । गुरु अशौचसे लघु अशौच वापित होता है; लघुसे गुरु अशौचका वाप्त नहीं होता । मृतक अथवा सूतकमें यदि अन्तिम रात्रिके मध्यभागमें दूसरा अशौच आ पड़े तो उस दोष समयमें ही उसकी भी निष्पृत्ति हो जानेके कारण मभी सपिण्ड पुरुष शुद्ध हो जाते हैं । यदि रात्रिके अन्तिम भागमें दूसरा अशौच आये तो दो दिन अधिक बीतनेपर अशौचकी निष्पृत्ति होती है तथा यदि अन्तिम रात्रि विताकर अन्तिम दिनके प्रातःकाल अशौचान्तर प्राप्त हो तो तीन दिन और अधिक बीतनेपर सपिण्डोंकी शुद्धि होती है । दोनों ही प्रकारके अशौचोंमें दस दिनोंतक उस कुलका अन्न नहीं खाया जाता है । अशौचमें दान आदिका भी अधिकार नहीं रहता । अशौचमें किसीके यहाँ भोजन करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये । अनजानमें भोजन करनेपर पातक नहीं लगता; जान-बूझकर खानेवालेको एक दिनका अशौच प्राप्त होता है ॥ ६२-६९ ॥

‘जन्म-मरणके अशौचका वर्णन’ नामक

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

असंस्कृत आदिकी शुद्धि

इस्त्रियोंको गङ्गाजीके जलमें डालनेसे उस प्रेत (मृत मरनेवाला मनुष्य मरनेके समय यदि भगवत्तामका उचारण या भगवत्सरण कर ले, तब तो उसे भगवत्तामि अवश्य होती है; परंतु यदि उसके डोपेश्यसे भगवत्सरण किया जाय तो उससे भी उसको स्वर्ग और मोक्ष सुलभ हो सकते हैं ।

पुत्रकर कहते हैं—मृतकका दाह-संस्कार हुआ हो या नहीं, यदि श्रीहरिका सरण किया जाय तो उससे उसको स्वर्ग और मोक्ष—दोनोंकी प्राप्ति हो सकती है॥ मृतककी

* ‘संस्कृतस्त्रासंस्कृतस्य स्त्राणों भोजो इरिस्त्रोः ।’

(अधि० १५९ । ३)

व्यक्ति) का अन्युदय होता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें स्थित रहती है, तबतक उसका सर्वालोकमें निवास होता है। क्रामस्यागी तथा पतित मनुष्योंके लिये यशस्वि पिण्डोदक-कियाका विधान नहीं है तथापि गङ्गाजीके जलमें उनकी हड्डियोंका ढालना भी उनके लिये हितकारक ही है। उनके उद्देश्यसे दिया हुआ अज्ञ और जल आकाशमें लीन हो जाता है। पतित प्रेतके प्रति महान् अनुग्रह करके उसके लिये 'भारायण-बलि' करनी चाहिये। इससे वह उस अनुग्रहका फल भोगता है। कमलके सृष्टि नेत्रबाले भगवान् नारायण अविनाशी हैं, अतः उन्हें जो कुछ अपर्ण किया जाता है, उसका नाश नहीं होता। भगवान् जनार्दन जीवका पतनसे ब्राह्म (उद्धार) करते हैं, इसलिये वे ही दानके सर्वांतम पात्र हैं॥५-१०॥

निश्चय ही नीचे गिरनेवाले जीवोंको भी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकमात्र श्रीहरि ही हैं। 'सम्भूष्य जगत्‌के लोग एक-न-एक दिन मरनेवाले हैं'-यह विचारकर सदा अपने सन्वेद सहायक धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। पतिक्रता पन्नीको छोड़कर दूसरा कोई बन्धु-बान्धव मरकर भी मरे हुए मनुष्यके साथ नहीं जा सकता; क्योंकि यमलोकका मार्ग सबके लिये अलग-अलग है। जीव कहीं भी क्यों न जाय, एकमात्र धर्म ही उसके माथ जाता है। जो काम कल करना है, उसे आज ही कर लें; जिसे दोपहर बाद करना है, उसे पहले ही पहरमें कर लें; क्योंकि मृत्यु

त्रय प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'असंस्कृत अदिकी शुद्धिका वर्णन' नामक एक सौ

उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

वानप्रस्थ-आश्रम

पुरुषकर कहते हैं—अब मैं वानप्रस्थ और संन्यासियों-के धर्मका बैंसा वर्णन करता हूँ, सुनो। सिरपर जटा रखना, प्रतिदिन अग्निहोत्र करना, धरतीपर सोना और मृगचर्चमें भारण करना, बनमें रहना, फल, मूल, नीबार

* गङ्गातोये नरस्यास्य यावत्तावद् दिवि लितिः । (अधि० १५९ । ३)

† पतता शुक्लिसुक्ष्यादिग्रद् एको द्विरुचम् । दृश्य लोकान् विष्माणान् लहव धर्मगचरेत् ॥

सूतोऽपि वन्धवः शतो न नुगन्तु नर मृतम् । जायार्जुं हि सर्वस्य वान्धवः पन्था विभित्ते ॥

धर्म एको वज्ज्येन धर्मकर्त्तव्यनगामिनम् । वाक्यादेव तुर्वीत शूर्णो नाऽऽपराजितम् ॥

न हि प्रतीक्षते शूरुः इति वाऽस्य न वा कृतम् । क्षेत्राप्णयृद्वाच्चत्तम्भव्यमगतमालदम् ॥

कृद्वैरप्यासाध शूर्युरादाश गच्छति । न कालस्य यिवः कविद् देवश्चास्य न विद्यते ॥

(अधि० १५९ । ४-१०)

(तिर्ती) आदिसे जीवन-निर्वाह करना, कभी किसीसे कुछ भी दान न लेना, तीनों समय स्नान करना, ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर रहना तथा देवता और अस्तियोक्ती पूजा करना—वह सब बानप्रस्थीका धर्म है। यह पुरुषको उचित है कि अपनी संतानकी संतान देखकर बनका आश्रय ले और आयुका तृतीय भाग बनवास्तमें ही चितावे। उस आश्रममें वह अकेला रहे या पलीके माथ भी रह सकता है। [परंतु दोनों ब्रह्मचर्यका पालन

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'बानप्रस्थाश्रमका वर्णन' नामक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६० ॥

करें ।] गर्मिकि दिनोंमें पञ्चामिसेवन करे। बार्षिकालमें बूढ़े आकाशके नीचे रहे। हेमन्त-ऋतुमें रात भर भीते कपड़े भोजकर रहे। (अथवा जलमें रहे ।) शक्ति रहते हुए बानप्रस्थीको इच्छी प्रकार उत्तमपस्था करनी चाहिये। बानप्रस्थसे फिर यहस्त-आश्रममें न लौटे। विपरीत या कुटिल गतिका आश्रम न लैकर सामनेकी दिशाकी ओर जाय अर्थात् पीछे न लौटकर आगे बढ़ता रहे ॥ १-५ ॥

एक सौ इक्सठवाँ अध्याय

संन्यासीके धर्म

पुरुषकर कहते हैं—अब मैं ज्ञान और मोक्ष आदिका साक्षात्कार करनेवाले संन्यास-धर्मका वर्णन करूँगा। आयुके चौथे भागमें पहुँचकर, सब प्रकारके सङ्केत दूर हो संन्यासी हो जाय। जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन घर छोड़कर चल दे—संन्यास ले ले। प्राजापत्य इष्टि (यज्ञ) करके मर्वस्वकी दक्षिणा दे दे तथा आहवनीयादि अग्नियोंको अपने-आपमें आरोपित करके ब्राह्मण घरसे निकल जाय। संन्यासी उदा अकेला ही चिचरे। भोजनके लिये ही गाँवमें जाय। शरीरके प्रति उपेक्षाभाव रखें। अब आदिका संग्रह न करे। मननशील रहे। ज्ञान-सम्पद होवे। कपाल (मिट्टी आदिका स्वप्न) ही भोजनपात्र हो, दृश्यकी जड़ ही निवास-स्थान हो, लँगोटीके लिये मैला-कुचैल वस्त्र हो, साथमें कोई सहायक न हो तथा सबके प्रति समताका भाव हो—यह जीवन्मुक्त पुरुषका लक्षण है। न तो मरनेकी इच्छा करे, न जीनेकी—जीवन और मृत्युमेंसे किसीका अभिनन्दन न करे ॥ १-५ ॥

जैसे सेवक अपने स्वामीकी आशाकी प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार वह प्रारम्भवश्य प्राप्त होनेवाले काल (अन्त-समय) की प्रतीक्षा करता रहे। मार्गपर दृष्टिपात करके पाँव रखे अर्थात् शस्त्रमें कोई कीड़ा-मकोड़ा, हड्डी, केश आदि तो नहीं है, यह भलीभांति देखकर पैर रखे। पानीको कपड़ेसे ढानकर पीये। सर्वसे पवित्र की हुई वाणी बोले। मनसे दोष-गुणका विचार करके कोई कार्य करे। छौकी,

काठ, मिट्टी तथा बॉस—ये ही संन्यासीके पात्र हैं। जब यहस्तके घरसे धूआँ निकलना बंद हो गया हो, मुखल रख दिया गया हो, आग बुझ गयी हो, घरके सब लोग भोजन कर चुके हों और जँडे शराब (मिट्टीके प्याले) फेंक दिये गये हों, ऐसे समयमें संन्यासी प्रतिदिन भिक्षाके लिये जाय। भिक्षा पौँच प्रकारकी मानी गयी है—मधुकरी (अनेक घरोंसे थोड़ा-थोड़ा अब माँग लाना), अलंकरूप (जिसके विषयमें पहलेसे कोई संकल्प या निश्चय न हो, ऐसी भिक्षा), प्राकप्रणीत (पहलेसे तैयार रखी हुई भिक्षा), अर्याचित (बिना माँगे जो अब प्राप्त हो जाय, वह) और तत्काल उपलब्ध (भोजनके समय स्वतःप्राप्त)। अथवा करपात्री होकर रहे—अर्थात् हाथहीमें लेकर भोजन करे और हाथमें ही पानी पीये। दूसरे किसी पात्रका उपयोग न करे। पात्रले अपने हाथस्ती पात्रमें भिक्षा लेकर उसका उपयोग करे। मनुष्योंकी कर्मदोषसे प्राप्त होनेवाली यमयातना और नरकपात आदि गतिका चिन्तन करे ॥ ६-१० ॥

जिस किसी भी आश्रममें स्थित रहकर मनुष्यको शुद्ध भावसे आश्रमोचित धर्मका पालन करना चाहिये। सब भूतोंमें समान भाव रखे। केवल आश्रम-चिह्न भारण कर लेना ही धर्मका हेतु नहीं है (उस आश्रमके लिये विहित कर्तव्यका पालन करनेसे ही धर्मका अनुष्ठान होता है)। निर्मलीका फल यद्यपि पानीमें पहनेपर उसे स्वच्छ बनानेवाला है, तथापि केवल उसका नाम केनेमात्रसे जल स्वच्छ नहीं हो जाता।

* तात्पर्य वह हि पीछे यहस्तकी ओर न छौटकर जाने संन्यासीकी विज्ञाने बहना चाहे।

इसी प्रकार आभ्रमके लिह धारणमात्रसे लाभ नहीं होता, विहित धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। अशानवश संसार-बन्धनमें बँधा हुआ दिज लँगड़ा, लूला, अंधा और बहरा क्यों न हो, यदि कुटिल्तारहित संन्यासी हो जाय तो वह सत् और अर्थात्—समझे मुक्त हो जाता है। संन्यासी दिन या रातमें बिना जाने जिन जीवोंकी हिंसा करता है, उनके बधरूप पापसे शुद्ध होनेके लिये वह स्नान करके छः बार प्राणायाम करे। यह शरीररूपी गृह हड्डीरूपी खंभोंसे युक्त है, नाडीरूप रसियोंसे बँधा हुआ है, मांस तथा रससे लिया हुआ और चम्मेंसे छाया गया है। यह मल और मूत्रसे भरा हुआ होनेके कारण अर्थात् दुर्गंधपूर्ण है। इसमें बुद्धाया तथा शोक व्याप्त हैं। यह अनेक रोगोंका घर और भूख-प्याससे आतुर रहनेवाला है। इसमें रजोगुणका प्रभाव अधिक है। यह अनिस्त—विनाशादीक एवं पृथिवी आदि पौच्छ भूतोंका निवास-स्थान है; विद्वान् पुरुष इसे त्याग दे—अर्थात् ऐसा प्रयत्न करे, जिसमें फिर देहके बन्धनमें न आना पढ़े ॥ ११—१६ ॥

धृति, क्षमा, दम (मनोनिग्रह), चोरी न करना, बाहर-भीतरसे पवित्र रहना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, लज्जा, विद्या, सत्य तथा अकोध (कोध न करना) —ये धर्मके दस लक्षण हैं। संन्यासी चार प्रकारके होते हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें जो-जो पिछला है, वह पहलेकी अपेक्षा उत्तम है। योगयुक्त संन्यासी पुरुष एकदण्डी हो या त्रिदण्डी, वह बन्धनमें मुक्त हो जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीका अभाव), व्रताचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न रखना) —ये पौच्छ 'यम' हैं। शौच, मंतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरकी आराधना—ये पौच्छ 'नियम' हैं। योगयुक्त संन्यासीके लिये इन सबका पालन आवश्यक है। पश्चासन आदि आसनोंसे उसको बैठना चाहिये ॥ १७—२० ॥

प्राणायाम दो प्रकारका है—एक 'संगर्भ' और दूसरा 'अंगर्भ'। मन्त्रजप और ध्यानसे युक्त प्राणायाम 'संगर्भ' कहलाता है और इसके विपरीत जप-ध्यानरहित प्राणायामको 'अंगर्भ' कहते हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचकके मैदसे

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'यतिर्थमका वर्णन' नामक एक सौ इक्षुसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६१ ॥

प्राणायाम तीन प्रकारका होता है। बायुको भीतर भरनेसे धूरक' प्राणायाम होता है, उसे स्थिरतापूर्वक रोकनेसे 'कुम्भक' होता है और फिर उस बायुको बाहर निकालनेसे 'रेचक' प्राणायाम कहा गया है। मात्रामेदसे भी वह तीन प्रकारका है—बाहर मात्राका, चौबीस मात्राका तथा छत्तीस मात्राका। इसमें उत्तरोत्तर प्रेष्ट है। ताल या हृस्त अश्वरको 'मात्रा' कहते हैं। प्राणायाममें 'प्रणव' आदि मन्त्रका धीरे-धीरे जप करे। इन्द्रियोंके संयमको 'प्रत्याहार' कहा गया है। जप करनेवाले साधकोद्वारा जो ईश्वरका चिन्तन किया जाता है, उसे 'ध्यान' कहते हैं; मनको धारण करनेका नाम 'धारणा' है; ब्रह्ममें स्थितिको 'समाधि' कहते हैं ॥ २१—२४ ॥

'यह आत्मा परब्रह्म है; ब्रह्म—सत्य, ज्ञान और अनन्त है; ब्रह्म विज्ञानमय तथा आनन्दस्वरूप है; वह ब्रह्म दृ है; वह ब्रह्म मैं हूँ; परब्रह्म परमात्मा प्रकाशस्वरूप है; वही आत्मा है, बायुदेव है, नित्यमुक्त है; वही 'ओ३म्' शब्दवाच्य सञ्चिदानन्दघन ब्रह्म है; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित तथा जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदिसे मुक्त जो दुरीय तत्त्व है, वही ब्रह्म है; वह नित्य शुद्ध बुद्ध-मुक्तस्वरूप है; सत्य, आनन्दमय तथा अद्वैतस्वरूप है; सर्वत्र व्यापक, अविनाशी ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म ही श्रीहरि है और वह मैं हूँ; आदित्यमण्डलमें जो वह ज्योतिर्मय पुरुष है, वह अखण्ड प्रगववाच्य परमेश्वर मैं हूँ'—इस प्रकारका नहज बोध ही ब्रह्ममें स्थितिका सूचक है ॥ २५—२८२ ॥

जो सब प्रकारके आरम्भका त्यागी है—अर्थात् जो फलासक्ति एवं अहंकारपूर्वक किसी कर्मका आरम्भ नहीं करता—कर्तृत्वाभिमानसे शून्य होता है, दुःख-सुखमें समान रहता है, सबके प्रति क्षमाभाव रखनेवाला एवं सहनशील होता है, वह भावशुद्ध ज्ञानी मनुष्य ब्रह्माण्डका मेदन करके साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। यतिको चाहिये कि वह आशाद्की पूर्णिमाको चातुर्मास्यत्रत प्रारम्भ करे। फिर कार्तिक शुक्ल नवमी आदि तिथियोंसे विचरण करे। शूतुओंकी संधिके दिन पुष्टहन करावे। संन्यासियोंके लिये ध्यान तथा प्राणायाम ही प्रायधिक्ष है ॥ २९—३१ ॥

एक सौ बासठब्बे अध्याय

धर्मशास्त्रका उपदेश

पुष्कर कहते हैं—मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य, हारीत, अथि, यम, अङ्गिरा, वसिंह, दक्ष, संबर्त, शातातप, पराशारु आपस्तम्भ, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, 'गौतम, शङ्ख और लिखित—इन सबने धर्मका जैसा उपदेश किया है, वैसा ही मैं भी संक्षेपसे कहूँगा, मुझो। यह धर्म भोग और मोक्ष देनेवाला है। वैदिक कर्म दो प्रकारका है— एक 'प्रवृत्त' और दूसरा 'निवृत्त'। कामनायुक्त कर्मको 'प्रवृत्तकर्म' कहते हैं। शानपूर्वक निष्कामभावसे जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, शान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःशेयस (मोक्षरूप छलयान) के साथक हैं। इन सबमें भी आत्मशान सबसे उत्तम बताया गया है ॥ १-५ ॥

वह सम्पूर्ण विद्याओंमें श्रेष्ठ है। उससे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण भूतोंमें आत्माको और आत्मामें सम्पूर्ण भूतोंको समानभावसे देखते हुए जो आत्माका ही यज्ञ (आराधन) करता है वह स्वाराज्य—अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है। आत्मशान तथा शम (मनोनिग्रह) के लिये सदा यज्ञशील रहना चाहिये। यह सामर्थ्य या अधिकार द्विजमात्रको—विशेषतः ब्राह्मणको प्राप्त है। जो वेद-शास्त्रके अर्थका तत्त्वश होकर जिस-किसी भी आभयमें निवास करता है, वह इसी लोकमें रहते हुए ब्रह्ममात्रको प्राप्त हो जाता है। (यदि नया अन्त तैयार हो गया हो तो) आवण मालकी पूर्णिमाको अथवा श्रवणनक्षत्रसे युक्त दिनको अथवा हत्तनक्षत्रसे युक्त आवण शुक्ल पञ्चमीको अपनी शास्त्राके अनुकूल प्रचलित गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार वेदोंका नियमपूर्वक अध्ययन प्रारम्भ करे। यदि आवणमासमें नयी फसल तैयार न हो तो जब वह तैयार हो जाय तभी भाद्रपद-मासमें श्रवणनक्षत्रयुक्त दिनको वेदोंका उपार्कर्म करे। (और उस समयसे लेकर लगातार साढ़े चार मासतक वेदोंका अध्ययन चाल रखें ।) फिर पौषमासमें रोहिणी-नक्षत्रके दिन अथवा अष्टका तिथिको नगर या गाँवके बाहर जलके समीप अपने

* मनुओंका कथन है—**बृहत्पञ्चमासशीर्वत मासाष्ट्र विशेषपञ्चमाश्च ।**

(मनु० ४। १५)

यहोक विधानसे वेदाध्ययनका उत्सर्ग (स्थान) करे। [यदि भाद्रपदमासमें वेदाध्ययन प्रारम्भ किया गया हो तो माघ शुक्ल प्रतिपदाको उत्सर्जन करना चाहिये—ऐसा मनुका (४। १७) कथन है ।] ॥ ६-१०३ ॥

शिष्य, शूतिविज, गुरु और बन्धुजन—इनकी मृत्यु होनेपर तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। उपार्कर्म (वेदाध्ययनका प्रारम्भ) और उत्सर्जन (अध्ययनकी समाप्ति) जिस दिन हो, उससे तीन दिनतक अध्ययन बंद रखना चाहिये। अपनी शास्त्राका अध्ययन करनेवाले विद्वानकी मृत्यु होनेपर भी तीन दिनतक अनध्यय रखना उचित है। संध्याकालमें, मेषकी गर्जना होनेपर, आकाशमें उत्तरात्सूचक शब्द होनेपर, भूकम्प और उल्कापात होनेपर, मन्त्र-ज्ञानात्मक वेदकी समाप्ति होनेपर तथा आरण्यकका अध्ययन करनेपर एक दिन और एक रात अध्ययन बंद रखना चाहिये। पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी तथा चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहणके दिन भी एक दिन-रातका अनध्यय रखना उचित है। दो शूद्रओंकी संधिमें आयी हुई प्रतिपदा तिथिको तथा शाद-भोजन एवं शादका प्रतिग्रह स्वीकार करनेपर भी एक दिन-रात अध्ययन बंद रखें। यदि स्वाध्याय करनेवालोंके बीचमें कोई पश्च, मेषक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिलाव और चूहा आ जाय तो एक दिन-रातका अनध्यय होता है ॥ ११-१४ ॥

जब इन्द्रज्वजकी पताका उतारी जाय, उस दिन तथा जब इन्द्रज्वज फहराया जाय, उस दिन भी पूरे दिन-रातका अनध्यय होना चाहिये। कुत्ता, सियार, गदहा, उल्दू, शामगान, बाँस तथा आर्त प्राणीका शब्द सुनायी देनेपर, अपवित्र वस्तु, मुर्दा, शूद्र, अन्स्यज, इमशान और पतित मनुष्य—इनका सांनिध्य होनेपर, अद्युभ ताराओंमें, बारंबार विजली चमकने तथा बारंबार मेष-गर्जना होनेपर ताल्कालिक अनध्यय होता है। भोजन करके तथा गीले हाथ अध्ययन न करे। जलके भोतर, आधी रातके समय, अधिक आँखी चलनेपर भी अध्ययन बंद कर देना चाहिये। धूलकी वर्षा होनेपर, दिव्याओंमें दाढ़ होनेपर दोनों संध्याओंके

समय कुदासा पढ़नेपर, चौर या राजा आदिका भय प्राप्त होनेपर तत्काल स्वाध्याय बंद कर देना चाहिये। दौड़ते समय अध्ययन न करे। किसी प्राणीपर प्राणवाधा उपरिथत होनेपर और अपने घर किसी श्रेष्ठ पुरुषके पधारनेपर भी अनध्याय रखना उचित है। गदहा, झंट, रथ आदि

सवारी, हाथी, धोड़ा, नौका तथा वृक्ष आदिपर चढ़नेके समय और ऊर या मरुभूमिमें स्थित होकर भी अध्ययन बंद रखना चाहिये। इन सैंतीस प्रकारके अनध्यायोंको तालिका (केवल उसी समयके लिये आवश्यक) माना गया है ॥ १५-१८ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'धर्मशास्त्रका वर्णन' नामक पृष्ठ सौ बासठनाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६२ ॥



एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

श्राद्धकल्पका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परशुराम ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्राद्धकल्पका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर श्रवण कीजिये। श्राद्धकर्ता पुरुष मन और इन्द्रियोंको ब्रह्ममें रखकर, पवित्र हो, श्राद्धसे एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उन ब्राह्मणोंको भी उमी समयसे मन, बाणी, शशीर तथा क्रियाद्वारा पूर्ण संयमशील रहना चाहिये। श्राद्धके दिन अपराह्नकालमें आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागत-पूर्वक पूजन करे। स्वयं हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे। जब ब्राह्मणलोग आचमन कर लें, तब उन्हें आसनपर बिठाये। देवकार्यमें अपनी शक्तिके अनुसार युग्म (दो, चार, छः आदि संख्यावाले) और श्राद्धमें अयुग्म (एक, तीन, पाँच आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। सब ओसे खिरे हुए गोबर आदिसे लिये-पुते पवित्र स्थानमें, जहाँ दक्षिण दिशाकी ओर भूमि कुछ नीची हो, श्राद्ध करना चाहिये। वैश्वदेव-श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको पूर्णभिमुख बिठाये और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख। अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही समिलित करे। मातामहोंके श्राद्धमें भी ऐसा ही करना चाहिये। अर्थात् दो वैश्वदेव-श्राद्धमें और तीन मातामहादि-श्राद्धमें अथवा उभय पक्षमें एक-ही-एक ब्राह्मण रखे। वैश्वदेव-श्राद्धके लिये ब्राह्मणका हाथ धुलानेके निमित्त उसके हाथमें जल दे और आसनके लिये कुश दे। किर ब्राह्मणसे पूछे—‘मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहता हूँ।’ तब ब्राह्मण आशा दें—‘आवाहन करो।’ इस प्रकार उनकी आशा पाकर ‘विश्वेदेवास आगतः ०’ (यजु० ७ । ३४) इत्यादि शूचा पढ़कर विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तब ब्राह्मणके समीपकी भूमिपर जौ विश्वेरे। किर पवित्रीयुक्त अर्थपात्रमें ‘अर्ण नो देवी०’ (यजु० ३६ ।

१२) —इस मन्त्रसे जल छोड़े। ‘वचोऽसि०’—इत्यादिसे जौ डाले। फिर विना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प भी छोड़ दे। तत्पश्चात् ‘वा दिव्या आपः०’—इस मन्त्रमें अर्धको अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणके हाथमें संकल्पयुक्त अर्थ दे और कहे—‘अमुकश्राद्धे विश्वेदेवाः हृदं चो हस्तार्थं नमः ।’—यो कहकर वह अर्धजल कुशयुक्त ब्राह्मणके हाथमें या कुशापर गिरा दे। तत्पश्चात् हाथ धोनेके लिये जल देकर कमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा आच्छादन-बल अर्पण करे। पुनः इत्युक्तिके लिये जल दे। [विश्वेदेवोंको जो कुछ भी टेना हो, वह सन्ध्यभावसे उत्तराभिमुख होकर दे और पितरोंको प्रत्येक वस्तु अपसन्ध्यभावसे दक्षिणाभिमुख होकर देनी चाहिये ।] ॥ १—५२ ॥

वैश्वदेव-काण्डके अनन्तर यशोपवीत अपसन्ध्य करके पिता आदि तीनों पितरोंके लिये तीन दिगुणभुग्न कुण्डोंको उनके आसनके लिये अप्रदक्षिण-क्रमसे दे। फिर पूर्ववत् ब्राह्मणोंकी आका लेकर ‘उद्धन्तस्त्वाऽ०’ (यजु० ११।७०) इत्यादि मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करके, ‘आवाहनु नः०’ (यजु० ११।५८) इत्यादिका जप करे। ‘अपहता असुरा रक्षाऽस्मि वेदियदः०’— (यजु० २।२।८)—यह मन्त्र पढ़कर सब ओर तिल विस्तरे। वैश्वदेवश्राद्धमें जो कार्य जैसे किया जाता है, वही पितृ-श्राद्धमें तिलसे करना चाहिये। अर्ध आदि पूर्ववत् करे। संख्य (ब्राह्मणके हाथमें नूये हुए जल) पितृपात्रमें ग्रहण करके, भूमि-पर दक्षिणाग्र कुश रखकर उसके ऊपर उस पात्रको अधोमुख करके ढुलका दे और कहे—‘पितृभ्यः स्थानमसि०’। किर उसके ऊपर अर्थपात्र और पवित्र आदि रखकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पितरोंको निवेदित करे। इसके बाद ‘अग्नौकरण’ कर्म करे। जैसे तर किया हुआ अज लेकर

ब्राह्मणोंसे पूछे—‘ब्रह्मो छरिष्ये।’ (मैं अप्रिमें इसकी आहुति दूँगा।) तब ब्राह्मण इसके लिये आशा दें। इस प्रकार आका लेकर पितृ-यज्ञकी भाँति उस अज्ञकी हो आहुति दे। [उस समय ये दो मन्त्र ब्राह्मणः पढ़े—‘अग्नये कृष्ण-वाहनाय स्वाहा नमः । सोमाय पितृमते स्वाहा नमः।’ (यजु० २। २९)] फिर होमदोष अज्ञको एकाग्रचित्त होकर यथाप्राप्त पात्रोंमें—विशेषतः चाँदीके पात्रोंमें परोसे। इस प्रकार अब परोसकर, ‘वृथिती से पात्रं श्वीरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे०’ इत्यादि मन्त्र पढ़कर पात्रको अभिमन्त्रित करे। फिर ‘हृष्टविष्णु०’ (यजु० ५। १५) इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके अज्ञगें ब्राह्मणके अङ्गूठेका स्वर्ण कराये। तदनन्तर तीनों—‘हृष्टियोऽसहित गायत्री मन्त्र तथा ‘मङ्ग-वाता०’ (यजु० १३। २३—२९)।—इत्यादि तीन शृङ्खलाओंका जप करे और ब्राह्मणोंसे कह—‘आप सुखपूर्वक अब महण करें।’ फिर वे ब्राह्मण भी मौन होकर प्रसन्नतापूर्वं जोजन करें। [उस समय यजमान क्रोध और उतावलीको रुद्ध दे और] जबतः ब्राह्मणलोग गूर्णतया तृप्त न हो जायें, तबतक पूछ-पूछकर, प्रिय अब और हविष्य उन्हें परोसता रहे। उस समय पूर्वोन्न मन्त्रोंका तथा ‘पावामानी’ आदि शृङ्खलाओंका जप या पाठ करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् अब लेकर ब्राह्मणोंने पूछे—‘क्या आप पूर्ण तृप्त हो गये?’ ब्राह्मण कहें—‘हाँ, हम तृप्त हो गये।’ यजमान फिर पूछे—‘दो अज्ञका दया किया जाय?’ ब्राह्मण कहें—‘इष्टज्ञोंके भाय मोजन करो।’ उनकी इग आकाशोंके ‘बहुत अच्छा’ कहकर स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अज्ञको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जठनके राम ही दक्षिणाग्र-कुञ्च भूमिपर रखकर उन कुञ्जोपर तिल-जल छोड़कर रख दे। उस समय ‘अग्निदद्वधाय ये०’ इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तेंगर किया हुआ सारा अब लेकर, दक्षिणा भिन्नता हो; पितृयज्ञ कल्यके अनुसार तिलउहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जट दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंमें स्वस्ति-वाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्घना-पूर्वक वह—“आपलोग ‘अक्षयमस्तु’ कह।” तब ब्राह्मण ‘अक्षयमस्तु’ बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे—‘अब मैं स्वधा-नानन कराऊंगा।’ ब्राह्मण कहें—‘स्वधा-वाचन कराओ।’ इस प्रकार उनकी आका

पाकर ‘पितरों और मातामहादि के लिये आप यह स्वधा-वाचन करें—ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—‘अस्तु स्वधा।’ इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सीचे और विष्वेदेवा: ग्रीष्मस्तात्०।—यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको हुहराये—‘प्रीष्मस्तात्० विष्वेदेवा:।’ तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आकासे आद्वकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संस्तिरेव च ।

अद्वा च नो मा व्यगमद् बहुदेवं च नोऽस्तिरति ॥

‘मेरे दाता च देवे०। वेद और संतति च हैं। हमारी अद्वा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।’

—यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रियवचन बोले और उन्हे प्रणाम करके विसर्जन करे—‘वाजे वाजे०’ (यजु० १। १८) इत्यादि शृङ्खलाओंको पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक पितरोंका विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विष्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्धपात्रमें संख्यका जल ढाला गया था, उस पितृ-पात्रको उतान करके ब्राह्मणोंको विदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लैटे और पितृसेवित श्राद्धालको इष्टज्ञोंके साथ भोजन करे। उस रथिर्में यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये ॥ ६—२२ ॥

इसी प्रकार पुत्रजन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरोंपर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख-पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अज्ञका पिण्ड दे और तिलसे किये जानेवाले सब कार्य जौसे करे। एकोहिष्टाश्च बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक ही अर्धपात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है। इसमें आवाहन और अन्नौकरणकी किया नहीं होती। सब कार्य जैनेउओंको अपालव्य रखकर किये जाने हैं। ‘अक्षयमस्तु०’ के स्थानमें ‘उपतिष्ठताम्०’ का प्रयोग करे। ‘वाजे वाजे०’ इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय ‘अभिरम्भताम्०।’ कहे और ब्राह्मणलोग ‘अभिरतः सः।’—ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण-श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्धसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्धपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रमें छाँड़। उस समय ‘ये समाना०’ इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष किया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण

ओर एकोहिष्ठात् भास्तके लिये भी करना चाहिये । जितका समिक्षाकरण-आद वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको साक्षोक कुम्भदान देते रहना चाहिये । एक वर्षतक प्रतिमास मूल्य-तिथिको एकोहिष्ठ करना चाहिये । फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाह-तिथिको एकोहिष्ठ करना उचित है । प्रथम एकोहिष्ठ तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है । सभी आद्योग्मे पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी हच्छावाले ब्राह्मणको दे देना चाहिये । अथवा उन्हें अग्निमें या अग्नाध जलमें डाल देना चाहिये । जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके बहाँसे उठ न जावें, तबतक उच्चिष्ठ स्थानपर शाहू न लगाये । आद्यमें हविष्याज्ञके दानसे एक मासतक और लीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृति बनी रहती है । भाद्रपद कृष्णा ऋयोदशीको, विशेषतः मध्य नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय होता है । एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें आद्यदान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूपशीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा-

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'आद्यकल्पका वर्णन' नामक एक सौ तिसठाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६५ ॥

एक सौ चौसठवाँ अध्याय

नवग्रह-सम्बन्धी हवनका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—परदुरामजी ! लक्ष्मी, शान्ति, पुष्टि, हृषि तथा आयुकी हच्छा रखनेवाले वीर्यवान् पुरुषको ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये । सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—इन नवग्रहोंकी क्रमशः स्थापना करनी चाहिये । सूर्यकी प्रतिमा तोड़से, चन्द्रमाकी रजत (या स्फटिकसे), मङ्गलकी लाल चन्दनसे, बुधकी शुक्रणसे, गुरुकी शुक्रणसे, शुक्रकी रजतसे, शनिकी लेहसे तथा राहु केतुकी सीमेसे बनाये; इससे शुभकी ग्राति होती है । अथवा बख्तपर उन-उनके रंगके अनुसार वर्णकसे उनका चित्र अঙ्कित कर लेना चाहिये । अथवा मण्डल बनाकर उनमें गन्ध (चन्दन-कुम्भ आदि) से ग्रहोंकी आकृति बना ले । ग्रहोंके रंगके अनुसार ही उन्हें फूल और बज्र भी देने चाहिये । सबके लिये गन्ध, बलि, धूप और गुम्बुज देना चाहिये । प्रत्येक ग्रहके लिये (अग्निस्थापनपूर्वक) समन्वय

रूपबान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, लेखीमि जाग्र, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरबाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रिपुरीसा आदि), जातियोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ । जो लोग शास्त्रदारा मारे गये हों, उन्हेंके लिये उस चतुर्दशी तिथिको आद प्रदान किया जाता है । सर्व, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्त-चक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यजा, शोकहीनता, परम गति, धन, विद्या, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रिपुरीसा आदि), गौ, बकरी, मेह, अश्व तथा आयु—इन सत्ताईस प्रकारके काम्य पदार्थोंको क्रमशः वही पाता है, जो कृतिकारे लेकर भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें विधिपूर्वक शाद करता है तथा आत्मिक, श्रद्धालु एवं मह-मात्सर्य आदि दोषोंमें रहित होता है । बलु, रुद और आदित्य—ये तीन प्रकारके पितर आदके देवता हैं । ये आद्यसे संतुष्ट किये जानेपर मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करते हैं । जब पितर तृप्त होते हैं, तब वे मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, सर्व, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं ॥ २३—४२ ॥

चक्रका होम करना चाहिये । 'आकृत्येन रजस्ता' (यजु० ३३ । ४३) इत्यादि सूर्य देवताके, 'इमं देवाः०' (यजु० १ । ४०; १० । १८) इत्यादि चन्द्रमाके, 'अग्निसूर्यो दिवः ककुत्स०' (यजु० १३ । १४) इत्यादि मङ्गलके, उद्युग्मस्त्व०' (यजु० १५ । ५४; १८ । ६१) इत्यादि बुधके, 'बृहस्पते अदिति वादिर्यः०' (यजु० २६ । ३) इत्यादि बृहस्पतिके, 'अग्नात्मविश्वतो०' (यजु० १९ । ७५) इत्यादि शुक्रके, 'शं नो देवीः०' (यजु० ३६ । १२) इत्यादि शनैश्चरके, 'काण्डात् काण्डात्०' (यजु० १३ । २०) इत्यादि राहुके और 'केतुं कृष्णदक्षेतवे०' (यजु० २९ । ३७) इत्यादि केतुके मन्त्र हैं । आक, पलास, लैर, अपासार, पीपल, गूलब, शभी, दूधां और कुशा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंकी समिधाएँ हैं । सूर्य आदि ग्रहोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक सौ आठ या अड्डाई बार

मधु, धी, दही अथवा सौरकी अमृति देनी चाहिये । युद्ध मिलाया हुआ भात, सीरु इच्छ्य (मुनि-अज), हूँ भ मिलाया हुआ साठीके ब्राह्मण का भात, दही-भात, धी-भात, तिर्क्षुर्जिनिश्चित भात, माष (उड्ड) मिलाया हुआ भात और खिचड़ी—इनका ग्रहके कमानुसार विद्वान् पुरुष ब्राह्मणके लिये भोजन दे । अपनी शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त वस्तुओंसे ब्राह्मणका विधिपूर्वक सल्कार करके उनके लिये कमशः खेतु, शङ्ख, बैल, सुवर्ण, बल, अश, काली गौ,

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवग्रह-सम्बन्धी' हृष्णका वर्णन नामक एक सूती चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१६४॥

लोहा और बकरा—ये बस्तुएँ दक्षिणामें दे । ये ग्रहोंकी दक्षिणामें बतायी गयी हैं । जिस-जिस पुरुषके लिये जो शह अष्टम आदि दुष्ट स्थानोंमें स्थित हैं, वह पुरुष उस ग्रहकी उस समय विशेष यज्ञपूर्वक पूजा करे । ब्रह्मजीने इन ग्रहोंकी वर दिया है कि जो दुश्हायी पूजा करें, उनकी तुम भी पूजा (मनो-यज्ञपूर्ति-पूर्वक सम्मान) करना । राजाओंके चन और जातिका उत्कर्ष तथा जगत्की जन्म-मृत्यु भी ग्रहोंके ही अधीन है; अतः ग्रह सभीके लिये पूजनीय हैं ॥ १-१४ ॥

एक सूती पैसठवाँ अध्याय

विभिन्न धर्मोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! हृष्णमें जो सर्वसमर्थ परमात्मा दीपकके समान प्रकाशित होते हैं, मन, बुद्धि और स्मृतिसे अन्य समस्त विषयोंका अभाव करके उनका ध्यान करना चाहिये । उनका ध्यान करनेवाले ब्राह्मणको ही श्राद्ध-के निमित्त दही, धी और दूध आदि ग्रन्थ पदार्थ प्रदान करे । प्रियकृ, मस्तूर, बैगन और कोदोका भोजन न करावे । जब पर्व-संधिके समय रातु सूर्यको ग्रहण है, उस समय 'इस्तिच्छाया-योग' होता है, जिसमें किये हुए श्राद्ध और दान आदि शुभकर्म अक्षय होते हैं । जब चन्द्रमा भवति, हंस अथवा हस्त नक्षत्रपर स्थित हो, उसे 'वैद्यवती तिथि' कहते हैं । यह भी 'इस्तिच्छाया-योग' है । बलिवैद्यवदेवमें अग्निमें होम करनेसे बचा हुआ अज बलिवैद्यवदेवके मण्डलमें न ढाले । अग्निके अभावमें वह अन्न ब्राह्मणके दाहिने हाथमें रखले । ब्राह्मण बेदोक्त कर्मसे तथा खी व्यभिचारी पुरुषसे कभी दूषित नहीं होती । बलाकारसे उपभोग की हुई और शाशुके हाथमें पक्कर दूषित हुई खीका (श्रृङ्खलाल-पर्वत) परित्याग करे । नारी श्रृङ्खल-दर्शन होनेपर शुद्ध हो जाती है । जो सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त एक आत्माके व्यतिरेकसे विश्वमें अभेदका दर्शन करता है, वही योरी, ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त, आत्मामें रमण करनेवाला और निष्पाप है । कुछ लोग इन्द्रियोंके विषयोंसे संयोगको ही 'योग' कहते हैं । उन मूर्खोंने तो अधर्यको ही धर्म मानकर ग्रहण कर रखला है । दूसरे लोग मन और आत्माके संयोगको ही 'योग' मानते हैं । मनको संचारके

सब विषयोंसे हटाकर, क्षेत्रश परमात्मामें एकाकार करके योगी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है । यह उत्तम 'योग' है । पाँच इन्द्रियस्पी कुदृष्टोंसे 'प्राप्त' होता है । छठा मन उसका 'मुखिया' है । वह देवता, असुर और मनुष्योंसे नहीं जीता जा सकता । पाँचों इन्द्रियोंहाँ विहीन हैं । उन्हें आप्यन्तर-मुस्ति बनाकर इन्द्रियोंको मनमें और मनको आत्मामें निरुद्ध करे । फिर समस्त भावनाओंसे शून्य क्षेत्रश आत्माको परब्रह्म परमात्मामें ल्यावे । यही ज्ञान और ध्यान है । इसके विषयमें और जो कुछ भी कहा गया है, वह तो ग्रन्थका विस्तार-मात्र है ॥ १-१३ ॥

'जो सब लोगोंके अनुभवमें नहीं है, वह है'—यों कहनेपर विरुद्ध (असंगत)-सा प्रतीत होता है और कहनेपर वह अन्य मनुष्योंके हृदयमें नहीं बैठता । जिस प्रकार कुमारी ज्ञी-सुखको स्वयं अनुभव करनेपर ही जान सकती है, उसी प्रकार वह ब्रह्म स्वतः अनुभव करनेयोग्य है । योगरहित पुरुष उसे उसी प्रकार नहीं जानता, जैसे जन्मान्ध मनुष्य घड़को । ब्राह्मणको भन्यास-ग्रहण करते देख सूर्य यह सोचकर अपने स्थानसे विचलित हो जाता है कि 'यह मेरे मण्डलका भेदन करके परब्रह्मको प्राप्त होगा ।' उपवास, ज्ञात, स्नान, तीर्थ और तप—ये फलप्रद होते हैं, परंतु ये ब्राह्मणके द्वारा सम्पादित होनेपर सम्पन्न होते हैं और विहित फलकी प्राप्ति कराते हैं । 'प्रणव' परब्रह्म परमात्मा है, 'प्राणायाम' ही परम तप है और 'सावित्री'से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है । वह परम पावन माना गया है । पहले क्रमशः

सोम, गरुड़ और अग्नि—ये तीन देवता समस्त जियोंका उपभोग करते हैं। किंतु मनुष्य उनका उपभोग करते हैं। इससे जियाँ किसीसे दूषित नहीं होती हैं। यदि असर्वां पुरुष नारीकी योनिमें गर्भाधान करता है, तो जबतक नारी गर्भका प्रसव नहीं करती, तबतक अशुद्ध मानी जाती है। गर्भका प्रसव होनेके बाद रजोदर्शन होनेपर नारी शुद्ध हो जाती है। श्रीहरिके ध्यानके समान पापियोंकी शुद्धि करनेवाला कोई प्रायश्चित्त नहीं है। चण्डालके यहाँ भोजन करके भी ध्यान करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो ब्राह्मण ऐसी भावना करता है कि “आत्मा ‘ध्याता’ है, मन ‘ध्यान’ है, विष्णु ‘ध्येय’ है, श्रीहरि उससे प्राप्त होनेवाले ‘फल’ हैं और अश्रयत्वकी प्राप्तिके लिये उसका ‘विसर्जन’ है”, वह आद्धरमें पङ्क्तिमावनोंको भी पवित्र करनेवाला है। जो दिन नैषिक धर्ममें आरूढ़ होकर उससे च्युत हो जाता है, उस आत्म-धातीके लिये मैं ऐसा कोई प्रायश्चित्त नहीं देवता, जिससे

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें विभिन्न भगवान् वर्णन नामक एक सौ पंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६५ ॥

एक मौद्दाउठठवाँ अध्याय

वर्णाश्रम-धर्म आदिका वर्णन

पुकार कहने हैं—अब मैं श्रौत और स्मार्त-धर्मका वर्णन करता हूँ। वह पाँच प्रकारका माना गया है। वर्णमात्रका आश्रय लेकर जो अधिकार प्रवृत्त होता है, उसे ‘वर्ण-धर्म’ जानना चाहिये। जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लिये उपनयन-ग्रन्थकार आवश्यक है। यह ‘वर्ण-धर्म’ कहलाना है। आत्रमका अवलम्बन लेकर जिस पदार्थका वंशिधान होता है, वह ‘आत्रम-धर्म’ कहा गया है। जैसे भिज्ञ पिण्डादिका विधान होता है। जो विधि दोनोंके निमित्तमें प्रवर्तित होती है, उसको ‘नैमित्तिक’ मानना चाहिये। जैसे प्रायश्चित्तका विधान होता है ॥ १-२३ ॥

राजा! ब्रह्मचारी, यहस्थ, बानप्रस्थ और संन्यासी—इनसे सावन्धित धर्म ‘आत्रम-धर्म’ माना गया है। दूसरे प्रकारसे भी धर्मके पाँच भेद होते हैं। ब्रह्मगुण (मध्यविग्रह आदि) के अभिधानमें जिमकी प्रशृति होती है, वह ‘द्वाष्टार्थ’ वतलाया गया है। उसके तीन भेद होते हैं। मन्त्र-धर्म-धर्मते ‘अद्वाष्टार्थ’ हैं, ऐसा मनु आदि करते हैं। इसके लिया ‘उभयार्थक व्यवहार’, ‘दण्डधारण’ और ‘तुल्यार्थ-

कि वह शुद्ध हो सके। जो अपनी पत्नी और पुत्रोंका (असहायवस्थामें) परित्याग करके संन्यास ग्रहण करते हैं, वे दूसरे जन्ममें ‘विहुर’-संशक चण्डाल होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तदनन्तर वह कमशः सौ वर्षतक गीध, बारह वर्षतक कुत्ता, बीस वर्षतक जलपक्षी और दस वर्षतक शूकरयोनिका भोग करता है। किंतु वह पुण्य और फलोंसे रहति कटीला वृक्ष होता है और दावानिसे दग्ध होकर अपना अनुगमन करनेवालोंके साथ टूट होता है और इस अवस्थामें एक हजार वर्षतक चेतनारहित होकर पड़ा रहता है। एक हजार वर्ष बीतनेके बाद वह ब्रह्मराशस्त्र होता है। तदनन्तर योगस्थी नौकाका आश्रय लेनेसे अथवा कुलके उत्तादनद्वारा उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये योगका ही सेवन करे; क्योंकि पार्थोंसे छुटकारा दिलानेके लिये तुगरा कोई भी मार्ग नहीं है ॥ १४-२८ ॥

विकल्प’—ये भी यज्ञवूलक धर्मके अङ्ग कहे गये हैं। वेदमें धर्मका जिस प्रकार प्रतिपादन किया गया है, स्मृतिमें भी वैगे ही है। कार्यके लिये स्मृति वेदोक्त धर्मका अनुबाद करती है—ऐसा मनु आदिका मत है। इसलिये स्मृतियोंमें उक्त धर्म वेदोक्त धर्मका गुणार्थ, परिसंख्या, विशेषतः अनुबाद, विशेष दृष्टार्थ अथवा फलार्थ है, यह राजर्षि मनुका रिद्वान्त है ॥ ४-८३ ॥

निम्नलिखित अङ्गतालीस संस्कारोंमें सम्पन्न मनुष्य ग्रहालोको प्राप्त होता है—(१) गर्भाधान, (२) पुंमवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) अवग्राहन, (७) चूडाकर्म, (८) उपनयन-ग्रन्थार्थ, (९-१२) चार वेदव्रत (वेदाध्ययन), (१२) स्नान (गमवर्तन), (१४) सहधर्मिणी-संयोग (विवाह), (१५-१९) पञ्चयज्ञ-देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ, (२०-२६) सात पाक-यज्ञ-संस्था, (२७-३४) अष्टका—अष्टकासहित तीन पार्षण आदि, आवरी, आपदावरी, नैत्री और आक्षयुजी, (३५-४१) सात हविर्यज्ञ-संस्था—अन्यथाये, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्ण-

मास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्ठि, निरुद्धपशुबन्ध एवं सौश्रामणि, (४२-४८) सात सोम-संस्था—अग्निष्ठोम, अस्यग्निष्ठोम, उक्ष्य, बोडशी, वाजपेश, अतिरात्र और आसोर्योम। आठ आस्मणुगुण हैं—दद्या, क्षमा, अनसूया, अनायास, माङ्गल्य, अकार्यपूर्य, अलृष्टा तथा शौच। जो इन गुणोंसे युक्त होता है, वह परमधारम (स्वर्ग) को प्राप्त करता है ॥ १-१७३ ॥

मार्गशीर्षम, मैथुन, मल-मूत्रोत्सर्ग, दन्तधावन, स्नान और भोजन—इन छः कायोंको करते समय भौन धारण करना चाहिये। दान को हुई वस्तुका पुनः दान, पृथकपाक, घृतके साथ जल पीना, दूधके साथ जल पीना, रात्रिमें

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुण्यमें
एक सौ छासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६६ ॥

जल पीना, दाँतसे नख आदि काटना एवं बहुत गरम खल पीना—इन सात बातोंका परित्यक्त कर देना चाहिये। स्नानके पश्चात् पुस्तक्यन न करें क्योंकि वे पुष्प देवताके चढानेयोग्य नहीं माने गये हैं। अदि कोई अन्यगोशीय असम्बन्धी पुरुष किरी मृतकका अग्नि-संस्कार करता है तो उसे दस दिनतक पिण्ड तथा उदक-दानका कार्य भी पूर्ण करना चाहिये। जल, तृण, भस्म, द्वार एवं मार्ग—इनको बीचमें रखकर जानेसे पहुँचिदोष नहीं माना जाता। भोजनके पूर्व अनामिका और अलृष्टके संयोगसे पञ्चप्राणोंको आहुतियाँ देनी चाहिये ॥ १८-२२ ॥

पूर्णश्रीमध्यं आदिका वर्णन । नामक

एक सौ सङ्क्षिप्तवाँ अध्याय

ग्रहोंके अयुत-लक्ष-कोटि हवनोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं शान्ति, समृद्धि एवं विजय आदिकी प्राप्तिके निर्मित ग्रहयशका पुनः वर्णन करता हूँ । ग्रहयश ‘अयुतहोमाल्पक’, ‘छक्षहोमाल्पक’ और ‘कोटिहोमाल्पक’के भेदसे तीन प्रकारका होता है। अग्निकुण्डसे ईशानकोणमें निर्मित वेदिकापर मण्डल (अष्टदल-पद्म) बनाकर उसमें ग्रहोंका आवाहन करे। उत्तर दिशामें गुरु, ईशानकोणमें बुध, पूर्वदलमें शुक्र, आग्नेयमें चन्द्रमा, दक्षिणमें भौम, मध्यभागमें सूर्य, पश्चिममें शनि, नैऋत्यमें राहु और वायव्यमें केतुको अङ्कित करे। शिव, पार्वती, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल और चित्रगुप्त—ये ‘अधिदेवता’ कहे गये हैं। अग्नि, वरुण, भूमि, विष्णु, इन्द्र, शनीदेवी, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये क्रमशः ‘प्रत्यधिदेवता’ हैं। * गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश तथा अश्विनीकुमार—ये ‘कर्म-सादृश्य-देवता’ हैं। इन सबका वैदिक वीज-मन्त्रोंसे यजन करे। आक, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूल्फ, शमी, दूर्वा तथा कुशा—ये क्रमशः नवग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनको मधु, धूत एवं दधिसे संयुक्त करके शतसंख्यामें आठ बार होम करना चाहिये।

* विष्णुधर्मोक्तपुण्यमें शिव आदिको ‘प्रत्यधिदेवता’ और अग्न आदिको ‘अधिदेवता’ माने गया है। उक्त पुण्यमें अग्निके स्नानपर अरुण ‘अधिदेवता’ माने गये हैं।

एक, आठ और चार कुम्भ पूर्ण करके पूर्णाहृति एवं वसुधारा दे। फिर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। यजमानका चार छल्डोंके छल्डसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक करें। (अभिषेक के समय यो कहना चाहिये—) ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करें। वासुदेव, जगद्वाथ, भगवान्, संकर्ण, प्रद्युम्न और अग्निश्च तुम्हें विजय प्रदान करें। देवराज इन्द्र, भगवान् अग्नि, यमराज, निश्रृति, वरुण, पवन, धनाच्यक्ष कुबेर, शिव, ब्रह्मा, शेषनाग एवं समस्त दिक्पाल सदा तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, अद्वा, क्रिया, मति, तुष्टि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि और कान्ति—ये लोक-जननी धर्मकी पवित्रियाँ तुम्हारा अभिषेक करें। आदित्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, वृहस्पति, शुक्र, सूर्यपुत्र शनि, राहु तथा केतु—ये ग्रह परितृप्त होकर तुम्हारा अभिषेक करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, शृणि, मनु, गौणें, देवमालाएं, देवाङ्गनाएं, वृक्ष, नाग, दैत्य, असराओंके समूह, अल्प-शस्त्र, राजा, वाहन, ओपरिधीर्याँ, रक्ष, कालविभाग, नदी नद, समुद्र, पर्वत, तीर्थ और मेव—ये सब सम्पूर्ण अर्मष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें ॥ १-१७३ ॥

तदनन्तर यजमान अलंकृत होकर सुवर्ण, गौ, अन्न और भूमि आदिका निष्ठाहृति मन्त्रोंसे दान करे—‘कपिले !

रोहिणि ! तुम समस्त देवताओंकी पूजनीया, तीर्थमयी तथा देवमयी हो; अतः मुझे शान्ति प्रदान करो ।^१ शङ्ख ! तुम पुण्यमय पदाथोंमें पुण्यस्वरूप हो, मङ्गलोंके भी मङ्गल हो, तुम सदा विष्णुके द्वारा धारण किये जाते हो, अतएव मुझे शान्ति दो^२ । धर्म ! आप वृग्रलूपसे स्थित होकर जगत्को आनन्द प्रदान करते हैं । आप अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं, अतः मुझे शान्ति दीजिये^३ ॥ १८-२१ ॥

‘मुख्यं ! हिरण्यगर्भके गर्भमें दुम्हारी स्थिति है । तुम अग्निदेवके बीमसे उत्सन्न तथा अनन्त पुण्यफल वितरण करनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो ।^४ पीताम्बर-युगल भगवान् बासुदेवको अत्यन्त प्रिय है; अतः इसके प्रदानमें भगवान् श्रीहरि मुझे शान्ति दें^५ । अथ ! तुम स्वरूपसे विष्णु हो; क्योंकि तुम अमृतके साथ उत्सन्न हुए हो । तुम सूर्य-चन्द्रका सदा संवहन करते हो; अतः मुझे शान्ति दो^६ । पृथिवी ! तुम समग्ररूपमें वेनुरूपिणी हो । तुम केशवके समान समस्त, पापोंका सदा अपहरण करती हो । इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो^७ । लौह ! हल और आयुध आदि कार्य लर्दा तुम्हारे अधीन हैं, अतः मुझे शान्ति दो^८ ॥ २२-२६ ॥

भाग ! तुम यशोंके अङ्गरूप होकर स्थित हो । तुम अग्निदेवके नित्य बाहन हो; अतएव मुझे शान्तिसे संयुक्त

१. कपिले सर्वदेवाना पूजनीयासि रोहिणि ।
२. तीर्थदेवमयी वस्मादतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ १९ ॥
३. पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्याना मङ्गलाना च मङ्गलम् ।
४. विष्णुना विष्णु नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २० ॥
५. धर्म त्वं वृश्चर्षण जगदानन्दकारकः ।
६. अष्टमूर्तिर्थितानमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २१ ॥
७. हिरण्यगर्भमर्थं हैमीजं विमासोः ।
८. अन-पुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २२ ॥
९. पीतवरक्षयुगं यस्माद्बासुदेवस्य वङ्गमम् ।
१०. प्रदानात्मकं वै विष्णुरः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २३ ॥
११. विष्णुर्त्वं अश्वरूपेण यस्माद्बृहत्सम्भवः ।
१२. चन्द्राक्षाद्वानो नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २४ ॥
१३. यस्मात्त्वं पृथिवी सदा वेनुः केशवसंनिभा ।
१४. मर्वपद्मरा नित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २५ ॥
१५. यस्मादायस कर्माणि तवाभीननि सर्वदा ।
१६. डाङ्गलाद्यामुखादीनि अतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २६ ॥

करो^१ । चौदहों भुवन गौओंके अङ्गोंमें अधिष्ठित हैं । इसलिये मेरा इहलोक और परलोकमें भी मङ्गल हो^२ । जैसे केशव और शिवकी शश्या अशून्य है, उसी प्रकार शश्यादानके प्रभावसे जन्म-जन्ममें मेरी शश्या भी अशून्य रहे^३ । जैसे सभी रक्तोंमें समस्त देवता प्रतिष्ठित हैं, उसी प्रकार वे देवता रक्तदानके उपलक्ष्यमें मुझे शान्ति प्रदान करें^४ । अन्य दान भूमिदानकी सोलहवीं कल्पके समान भी नहीं हैं, इसलिये भूमिदानके प्रभावसे मेरे पाप शान्त हो जायें^५ ॥ २७-२१ ॥

दक्षिणायुक्त अयुतहोमात्मक ग्रहयश युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला है । चिवाह, उत्सव, यज्ञ, प्रतिष्ठादि कर्ममें इसका प्रयोग होता है । लक्ष्महोमात्मक और कौटिहोमात्मक—ये दोनों ग्रहयश सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करनेवाले हैं । अयुतहोमात्मक यशके लिये यहदेवामें यज्ञमण्डपका निर्माण करके उसमें हाथभर गहरा मेवलायोनियुक्त कुण्ड बनावे और चार शूलिंजोंका वरण करे अथवा स्वयं अकेल सम्पूर्ण कार्य करे । लक्ष्महोमात्मक यशमें पूर्वकी अपेक्षा सभी दसगुना होता है । इसमें चार हाथ या दो हाथ प्रमाणका कुण्ड बनावे । इसमें तार्क्षका पूजन विशेष होता है । (तार्क्ष-पूजनका मन्त्र यह है—) तार्क्ष ! सामव्यनि तुम्हारा शरीर है । तुम श्रीहरिके बाहन हो । विष-रोगको सदा दूर करनेवाले हो । अतएव मुझे शान्ति प्रदान करो^६ ॥ ३२-३५२ ॥

तदनन्तर कलशोंको पूर्ववत् अभिमन्त्रित करके लक्ष्महोमका अनुष्ठान करे । फिर ‘ब्रह्मधारा’ देकर शश्या एवं आभूषण आदिका दान करे । लक्ष्महोममें दस या आठ शूलिंज होने चाहिये । दक्षिणायुक्त लक्ष्महोमसे साधक पुत्र, अन्न, राज्य, विजय, भोग एवं मोक्ष आदि प्राप्त करता है । कौटिहोमात्मक ग्रहयश पूर्वोंके फलोंके अतिरिक्त शत्रुओंका

९. यस्मात्त्वं सर्वशक्तानामङ्गल्येन व्यवस्थितः ।
१०. योनिर्बाससोनित्यमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ २७ ॥
११. गवामङ्गेषु तिष्ठनि भुवनानि चतुर्दशः ।
१२. यस्मात्त्वमित्यमें स्वादिष्व लोके पत्रं च ॥ २८ ॥
१३. यस्मादश्वत्वं शश्यं केशवस्य शिवस्य च ।
१४. शश्या यस्मात्त्वश्वासतु दत्त जन्मनि जन्मनि ॥ २९ ॥
१५. यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिणः ।
१६. तथा शान्ति प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे इत्याः ॥ ३० ॥
१७. यथा भूमिप्रदानस्य कर्ता नार्हनि बोद्धशीन् ।
१८. दानान्वयनि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्तिष्व ॥ ३१ ॥

विनाश करनेवाल है। इसके लिये चार हाथ या आठ हाथ गहरा कुण्ड बनाये और बाहर शूत्स्विजोंका वरण करे। पटपर पचीस या सोलह तथा द्वारपर चार कलशोंकी स्थापना करे। कोटिहोम करनेवाला सम्भूर्ण कामनाओंसे संयुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। ग्रह-मन्त्र, वैष्णव-मन्त्र, गायत्री-मन्त्र, आग्नेय-मन्त्र, शैव-मन्त्र एवं प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रोंसे हवन करे। तिल, यज, धूत और धान्यका हवन करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करता है। विद्वेषण आदि अभिनार-कर्मोंमें विक्रोण कुण्ड विहित है। इनमें रक्तबख-

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें 'प्रहोके अयुत-लक्ष्म कोटि 'हवनोंका वर्णन' नामक एक सौ सहस्राँ अव्याप्त पूरा हुआ ॥ १६७ ॥

एक सौ अड्सठवाँ अध्याय

महापातकोंका वर्णन

पुष्कर कहते हैं—जो मनुष्य पापोंका प्रायश्चित्त न करें, गजा उन्हे दण्ड दे। मनुष्यको अपने पापोंका इच्छासे अथवा अनिच्छासे भी प्रायश्चित्त करना चाहिये। उन्मत्त, क्रोधी और दुःखसे आतुर मनुष्यका अज कभी भोजन नहीं करना चाहिये। जिस अन्नका महापातकीने स्पर्श कर लिया हो, जो रजस्वला खीदारा हुआ गया हो, उस अन्नका भी परिस्याग कर देना चाहिये। ज्यौतिषी, गणिका, अधिक मुनाफा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय, गायक, अभिशस, नयुंसक, घरमें उपपतिको रखनेवाली खी, धोयी, नृशंस, भाट, जुआरी, तपका आडम्बर करनेवाले, नौर, जल्लाद, कुण्डगोलक, खियोंदारा पराजित, बेदोंका विक्रय करनेवाले, नट, जुलाहे, कृतज्ञ, लोहार, निषाद, रैंगरैज, ढोपी संन्यासी, कुल्टा खी, तेली, आरूढ़-पतित और शत्रुके अन्नका सदैव परिस्याग करे। इसी प्रकार ब्राह्मणके बिना हुलाये ब्राह्मणका अज भोजन न करे। शद्दको तो निमन्त्रित होनेपर भी ब्राह्मणके अजका भोजन नहीं करना चाहिये। इनमेंसे बिना जाने किसीका अज खानेपर तीन दिनतक उपवास करे। जान-बूझकर खा लेनेपर 'कृच्छ्रवत' करे। वीर्य, मल, मूत्र तथा श्याक चाप्छालका अज खाकर 'चान्द्रायणवत' करे। मृत व्यक्ति-के उद्देश्यसे प्रदत्त, गायका सूँघा हुआ, शूद्र अथवा कुत्ते के द्वारा उच्छिष्ट किया हुआ तथा पतितका अज भक्षण करके

धारी और उम्मुक्तकेवा मन्त्रसाधकको शत्रुके विनाशक चिन्तन करते हुए, वाँये हाथसे इयेन पक्षीकी लक्ष अस्थियोंसे युक्त समिधारोंका हवन करना चाहिये।* (हवनका मन्त्र इस प्रकार है—)

'दुर्मित्रिषास्तस्मै समु दो हेषि तु च च ।'

फिर छुरेसे शत्रुके प्रतिमाको काट डाले और पिष्ठमय शत्रुका अग्निमें हवन करे। इस प्रकार जो अस्याचारी शत्रुके विनाशके लिये यश करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। ३६-४४ ॥

* यह 'विद्वेषण' नामक अभिनार कर्म है। इसे नामम लोग ही किया करने हैं।

ब्रह्म होती है। गाय, मैस और बकरीके दूधके सिवा अन्य पशुओंके दूधका परित्याग करना चाहिये। इनके भी व्यानेके दस दिनके अंदरका दूध काममें नहीं लेना चाहिये। अग्निहोत्रकी प्रज्वलिन अग्निमें हवन करनेवाला ब्राह्मण यदि स्वच्छापूर्वक जौ और गंहूसे तैयार की हुई वस्तुओं, दूधके विकारों, वागषाह्वावचक आदि तथा तैल-धी आदि जिनके पदार्थोंसे संस्कृत वासी अचको सा ले तो उमं एक मासतक 'वान्द्रायणवत' करना चाहिये; क्योंकि वह दोप बीरहस्याके समान माना जाता है ॥ १-२३ ॥

ब्रह्महस्या, सुरापान, चाँदी, गुरुत्वगमन—ये 'महापातक' कहे गये हैं। इन पापोंके करनेवाले मनुष्योंका मंगम भी 'महापातक' माना गया है। शूटको नदावा देना, गजाके समीप किसीकी चुगली करना, गुरुपर छटा दोशरोपण—ये 'ब्रह्महस्या'के नमान हैं। अध्ययन किये हुए वेदका विस्मरण, वेदनिर्णय, शूटी गवाही, मुहूदका वध, निन्दित अज्ञ एवं जूतका भक्षण—ये छः पाप सुरापानके समान माने गये हैं। धरोहरका अपहरण, मनुष्य, चोड़, चाँदी, भूमि और हीरे आदि रस्तोंकी चोरी मुवर्णकी चोरीके समान मानी गयी है। सगोत्रा स्त्री, कुमारी कन्या, चाण्डाली, मित्रपन्नी और पुत्रवधू—इनमें वीर्यपात करना भुरुपत्नी-गमनके समान माना गया है। गोवध, अयोग्य धर्तीकम यज्ञ कराना, परस्तीगमन, अपनेको बेनना तथा गुरु, माना, पिता, पुत्र, स्वाध्याय एवं अग्निका परित्याग, परिवेत्ता अथवा परिवित्ति होना—इन दोनोंमें से किसीको कन्यादान करना और इनका यज्ञ कराना, कन्याको दूषित करना,

इस प्रकार आदि आप्नेय महापुण्यमें 'महापातक आदिका वर्णन' नामक एक सौ अडसठवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १६८ ॥



एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्महस्या आदि विविध पापोंके ग्रायश्चिन्त

पुलकर कहने हैं—अब मैं आपको इन सब पापोंके ग्रायश्चित्त बतलाता हूँ। ब्रह्महस्या करनेवाला अपनी शूद्रिके लिये भिक्षाका अज्ञ भोजन करने हुए एवं मृतकके भितरकी ध्वजा धारण करके, बनमें कुटी बनाकर, यारह अर्थतक निवाल करे। अथवा नींवे मुख करके धधकता हुई आगमें तीन बार गिरे। अथवा अभ्येधयश या अव्याप्त विजय प्राप्त करनेवाले गोमेध यजका अनुष्ठान

करे। अथवा किसी एक वेदका पाठ करता हुआ सौ योजनतक जाय या अपना सर्वम् वेदवेत्ता ब्राह्मणको दान कर दे। महापातकी मनुष्य इन त्रितीये अपना पाप नष्ट कर डालते हैं ॥ १-८ ॥

गोवध करनेवाला एवं उपातकी एक मासतक यवपान करके रहे। वह सिरका मुण्डन करकर उस गौका चम्प ओढ़े हुए गोशालामें निवास करे। दिनके न्यूर्ध प्रहरमें

लबण्यहीन अज्ञका नियमित भोजन करे । फिर दो महीनोंतक इन्द्रियोंको वशमें करके नित्य गोमूषसे स्नान करे । दिनमें गौओंके पीछे-पीछे चले और खड़े होकर उनके खुरोंसे उड़ती हुई धूलिका पान करे । ब्रतका पूर्णरूपते अनुष्ठान करके एक बैलके साथ दस गौओंका दान कर । यदि इतना न हो सके तो वेदवेचा ब्राह्मणोंको अपना सर्वस्व-दान कर दे । यदि रोकेनेसे गौ मर जाय तो एक चौथाई प्रायश्चित्त, बाँधनेके कारण मर जाय तो आधा प्रायश्चित्त, जोतनेके कारण मर जाय तो तीन पाद प्रायश्चित्त और मारनेपर मर जाय तो पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये । बन, दुर्गम स्थान, ऊबड़-न्वाशड भूमि और भयप्रद स्थानमें गौकी मृत्यु हो जाय तो चौथाई प्रायश्चित्तका विधान है । आभूषणके लिये गलेमें ब्रह्मा बाँधनेसे गौकी मृत्यु हो तो आधा प्रायश्चित्त करे । दमन करने, बाँधने, रोकने, गाढ़ीमें जोतने, खूंटे, रस्सी अथवा फैदेमें बाँधनेपर यदि गौकी मृत्यु हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे । यदि गौका सींग अथवा हड्डी टूट जाय या पूँछ कट जाय तो जबतक गौ स्वस्थ न हो जाय, तबतक जौकी लप्सी खाकर रहे और गोमती विद्याका जप करे, गौकी स्तुति एवं गोमतीका स्मरण करे । यदि बहुतसे मनुष्योंके द्वारा एक गौ मारी जाय तो वे सब लेग अळग-अळग गोहत्याका एक-एक पाद प्रायश्चित्त करें । उपकार करते हुए यदि गौ मर जाय तो पाप नहीं लाता है ॥ ५—१४ ॥

उपपातक करनेवालोंको भी इसी ब्रतका आचरण करना चाहिये । ‘अंवकीणी’ को अपनी शुद्धिके लिये चान्द्रायण-ब्रत करना चाहिये । अथवा अवकीणी शतके समय चौराईपर जाकर पाकयक्षके विधानसे निर्मृतिके उद्देश्यसे काँके गदहेका पूजन करे । तदनन्तर वह बुद्धिमान् ब्रह्मचारी अग्नि-संचयन करके अन्तमें ‘समाप्तिशङ्कु मस्तः’—इस शूचारे चन्द्रमा, हन्द्र, दृहस्ति और अग्निके

१. कामतो रेतसः सेकं ब्रह्मस्य द्विजमनः ।

गतिक्रमं ब्रह्मसाकुर्वमहा ब्रह्मादिनः ॥

(मनु० ११ । १२१)

‘ब्रह्मचारि-ब्रतमें स्थित हिंजका इच्छापूर्वक किसी जीमें बीर्वपात करना भर्मनो जानेवाले ब्रह्मचारिद्वारा ब्रतका अतिक्रमण बताया गया है । ऐसा करनेवाले ब्रह्मचारीको ही ‘अवकीणी’ कहते हैं ।

उद्देश्यसे धूतकी आहुति है । अथवा गद्भका चर्म धारण करके एक वर्षतक पृथ्वीपर विचरण करे ॥ १५—१७ ॥

अशानसे भ्रण-हत्या करनेपर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे । मोहवश सुरापान करनेवाला द्विज अग्निके समान जलती हुई सुराका पान करे । अथवा तपाकर अग्निके समान रंगबले गोमूष या जलका पान करे । मुकुर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण राजाके पास जाकर अपने चौर्यकमंके विषयमें बतलाता हुआ कहे—‘आप मुझे दण्ड दीजिये ।’ तब राजा मूसल लेकर अपने-आप आये हुए उस ब्राह्मणको एक बार मारे । इस प्रकार वध होनेसे अथवा तपस्या करनेमें सुवर्णकी चोरी करनेवाले ब्राह्मणकी शुद्धि होती है । गुरु-पत्नी-गमन करनेवाला स्वयं अपने लिङ्ग और अष्टकोषको काटकर उसे अङ्गलिमें ले, मरनेतक नैऋत्यकोणकी ओर चलता जाय । अथवा इन्द्रियोंको संयममें रखकर तीन मासतक ‘चान्द्रायण’ब्रत करे । जान-बूझकर कोई-ना भी जाति-अंशकर पातक करके ‘सांतपनकुच्छु’ और अशानवश हो जानेपर ‘प्राजापत्यकुच्छु’ करे । संकरीकरण अथवा अपाश्रीकरण पातक करनेपर एक मासतक चान्द्रायणब्रत करनेसे शुद्धि होती है । मलिनीकरण पातक होनेपर तीन दिनतक तपस्यावकका पान करे । क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त विहित है । वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश, सदाचारी शूद्रका वध करनेपर घोडशारी प्रायश्चित्त करे । बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ, मंढक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक अथवा चारोंमेंसे किसी वर्णकी जीकी हत्या होनेपर शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे । जीकी अशानवश हत्या करके भी शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे । सर्पादिका वध होनेपर ‘नक्तब्रत’ और अस्पिहीन जीवोंकी हत्या होनेपर ‘प्राणायाम’ करे ॥ १८-२८ ॥

दूसरेके बरते अस्यमूल्यवाली वस्तुकी चोरी करके ‘सांतपनकुच्छु’ करे । ब्रतके पूर्ण होनेपर शुद्धि होती है । भस्य और भोज्य वस्तु, यान, शव्या, आसन, पुष्ट, मूल और फलोंकी चोरीमें पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है । तुण, काष्ठ, वृक्ष, सूखे अनाज, गुड, वस्त्र, चर्म और मांसकी चोरी करनेपर तीन दिनतक भोजनका परित्याग करे । मणि, मोती, मूँगा, ताँबा, चाँदी, लेहा, काँसा अथवा पथरकी चोरी करनेवाला बारह दिनतक अज्ञका कणमात्र खाकर रहे । कपास, रेशम, ऊन तथा दो खुरबाले बैल आदि, एक खुरबाले घोड़े आदि पशु, पश्ची, सुगन्धित

द्रुच्य, औषध अथवा रस्ती चुरनेवाला तीन दिनतक दूध पीकर रहे ॥ २९-३३ ॥

पित्रपल्ली, पुत्रवधू, कुमारी और चाण्डालीमें वीर्यपात करके गुपत्तली-गमनका प्रायश्चित्त करे । कुफेरी वहन, मैसेरी वहन और सगी ममेरी वहनसे गमन करनेवाला चान्द्रायण-ब्रत करे । मनुष्येतर योनिमें, रजतला खीमें, योनिके सिवा अन्य स्थानमें अथवा जलमें वीर्यपात करनेवाला मनुष्य ‘कुञ्ज्रामांतपन-ब्रत’ करे । पुरुष अथवा खीके साथ बैलगाढ़ीपर, जलमें या दिनके समय मैथुन करके ब्राह्मण वल्लोंसहित स्नान करे । चाण्डाल और अन्त्यज जातिकी

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘प्रायश्चित्तोंका वर्णन’ नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६० ॥

खियोंसे अशानवश समागम करके, उनका अच लाकर या उनका प्रतिग्रह खीकार करके ब्राह्मण पतित हो जाता है । जान-बूझकर ऐसा करनेसे वह उन्हींके समान हो जाता है । व्यभिचारिणी खीका पति उसे एक घरमें बंद करके रखले और परस्तीगामी पुरुषके लिये जो प्रायश्चित्त विहित है, वह उससे करावे । यदि वह खी अपने समान जातिवाले पुरुषके द्वारा पुनः दूषित हो तो उसकी शुद्धि ‘कुञ्ज्र’ और ‘चान्द्रायण-ब्रत’ से बतलायी गयी है । जो ब्राह्मण एक रात बृशलीका सेवन करता है, वह तीन वर्षतक नित्य भिक्षाक्रान्ति भोजन और गायत्री-जप करनेपर शुद्ध होता है ॥ ३४-४१ ॥

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

विभिन्न प्रायश्चित्तोंका वर्णन

पुरुषकर कहते हैं—अब मैं महापातकियोंका संसर्ग करनेवाले मनुष्योंके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ । पतितके साथ एक सवारीमें चलने, एक आसनपर बैठने, एक साथ भोजन करनेसे मनुष्य एक वर्षके बाद पतित होता है, परंतु उनको यह करने, पढ़ाने एवं उनसे यौन-सम्बन्ध स्थापित करनेवाला तो तस्काल ही पतित हो जाता है । जो मनुष्य जिस पतितका भर्तुर्ग करता है, वह उसके संसर्ग-जनित दोषकी शुद्धिके लिये, उस पतितके लिये विहित प्रायश्चित्त करे । पतितके सपिण्ड और बान्धवोंको एक साथ निन्दित हिनमें, मंध्याके समय, जाति-भाई, अृत्विक् और गुरुजनोंके निकट, पतित पुरुषकी जीवितावस्थामें ही उसकी उदक-क्रिया करनी चाहिये । तदनन्तर जलसे भरे हुए घडेको दाढ़ीद्वारा लातसे फेंकवा दे और पतितके सपिण्ड एवं बान्धव एक दिन-रात अशोच मारें । उसके बाद वे पतितके साथ सम्भाषण न करें और धनमें उसे ज्येष्ठांश भी न दें । पतितका छोटा भाई गुणोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण ज्येष्ठांशका अधिकारी होता है । यदि पतित बादमें प्रायश्चित्त कर ले, तो उसके सपिण्ड और बान्धव उसके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करके जलसे भरे हुए नवीन कुम्भको जलमें फेंकें । पतित खियोंके सम्बन्धमें भी यही कार्य करे; परंतु उसको अज्ञ, वज्र और घरके समीप रहनेका स्थान देना चाहिये ॥ १-७२ ॥

जिन ब्राह्मणोंको समयपर विधिके अनुसार गायत्रीका उपदेश प्राप्त नहीं हुआ है, उनसे तीन प्राजापत्य कराकर उनका विधिवत् उपनयन-संस्कार करावे । निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेसे जिन ब्राह्मणोंका परिस्थाग कर दिया गया हो, उनके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका उपदेश करे । ब्राह्मण संयतचित्त होकर तीन सहस्र गायत्रीका जप करके गोशालामें एक मासतक दूध पीकर निन्दित प्रतिग्रहके पापसे छूट जाता है । संस्कारहीन मनुष्योंका यज्ञ कराकर, गुरुजनोंके सिवा दूसरोंका अन्येष्टिकर्म, अभिचारकर्म अथवा अहीन यज्ञ कराकर ब्राह्मण तीन प्राजापत्य-ब्रत करनेपर शुद्ध होता है । जो द्विज शरणागतका परिस्थाग करता है और अनधिकारीको वेदका उपदेश करता है, वह एक वर्षतक नियमित आहार करके उस पापसे मुक्त होता है ॥ ८-१२ ॥

कुत्ता, सियार, गर्दभ, चिरली, नेवला, मनुष्य, घोड़ा, ऊंट और सूअरके द्वारा काटे जानेपर प्राणायाम करनेसे शुद्ध होती है । स्नातकके ब्रतका लोप और नित्यकर्मका उल्लङ्घन होनेपर निराहार रहना चाहिये । यदि ब्राह्मणके लिये ‘हुं’ कार और अपनेसे श्रेष्ठके लिये ‘तूं’ का प्रयोग हो जाय, तो स्नान करके दिनके शेष भागमें उपवास रखने और अभिवादन करके उन्हें प्रसन्न करे । ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये ढंडा उठानेपर ‘प्राजापत्य-ब्रत’ करे । यदि

डंडेसे प्रहार कर दिया हो तो 'अतिकृच्छ्र' और यदि प्रहारसे ब्राह्मणके सून निकल आया हो तो 'कृच्छ्र' एवं 'अतिकृच्छ्र-व्रत' करे। जिसके घरमें अनजानमें चाण्डाल आकर टिक गया हो तो भलीभाँति जाननेपर यथासमय उसका प्रायश्चित्त करे। 'चान्द्रायण' अथवा 'पराक्रम' करनेसे द्विजोंकी शुद्धि होती है। श्वेतोंकी शुद्धि 'प्राजापत्य-व्रतसे हो जाती है। शोष कर्म उन्हें द्विजोंकी भाँति करने चाहिये। घरमें जो गुड़, कुमुम, लवण एवं धान्य आदि पदार्थ हों, उन्हें द्वारपर एकत्रित करके अग्निदेवको समर्पित करे। मिठीके पात्रोंका त्याग कर देना चाहिये। शोष द्रव्योंकी शास्त्रीय विधिके अनुसार द्रव्यशुद्धि विहित है॥ १३-१९३॥

चाण्डालके स्पर्शसे दूषित एक कूएँका जल पीनेवाले जो ब्राह्मण हैं, वे उपवास अथवा पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाते हैं। जो द्विज हच्छानुसार चाण्डालका स्वर्ण करके भोजन कर लेता है, उसे 'चान्द्रायण' अथवा 'तस्मृच्छ्र' करना चाहिये। चाण्डाल आदि धृणित जातियोंके स्पर्शसे जिनके पात्र अपवित्र हो गये हैं, वे द्विज (उन पात्रोंमें भोजन एवं पान करके) 'पठ्राव्रवत' करनेसे शुद्ध होते हैं। अन्त्यजका उच्छिष्ट खाकर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' करे और शूद्र 'प्रिरात्र-व्रत' करे। जो द्विज चाण्डालोंके कूएँ या पात्रका जल विना जाने पी लेता है, वह 'सातपनकृच्छ्र' करे एवं शुद्र ऐसा करनेपर एक दिन उपवास करे। जो द्विज चाण्डालका स्वर्ण करके जल पी लेता है, उसे 'प्रिरात्र-व्रत' करना चाहिये और ऐसा करनेवाले शूद्रको एक दिनका उपवास करना चाहिये॥ २०-२५३॥

ब्राह्मण यदि उच्छिष्ट, कुत्ता अथवा शूद्रका स्वर्ण कर दे, तो एक रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। वैश्य अथवा क्षत्रियका स्वर्ण होनेपर स्नान और 'नक्तव्रत' करे। मार्गमें चलता हुआ ब्राह्मण यदि वन अथवा जलरहित प्रदेशमें पक्षाङ्ग हाथमें लिये मल-मूत्रका त्याग कर देता है, तो उस द्रव्यको अलग न रखकर अपने अङ्गमें रखे हुए ही आचमन आदिसे पवित्र होकर अङ्गका प्रोक्षण करके उसे सूर्य एवं अग्निको प्रदर्शित करे॥ २६-२९॥

जो प्रवासी मनुष्य म्लेच्छों, चोरोंके निवासभूत देश अथवा वनमें भोजन कर लेते हैं, अब मैं वर्णक्रमसे जनकी भश्याभश्यविषयक शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ। ऐसा

करनेवाले ब्राह्मणको अपने गाँवमें आकर 'पूर्णकृच्छ्र', क्षत्रियको तीन चरण और वैश्यको आधा व्रत करके पुनः अपना संस्कार कराना चाहिये। एक चौथाई व्रत करके दान देनेसे शूद्रकी भी शुद्धि होती है॥ ३०-३२॥

यदि किसी स्त्रीका समान वर्णवाली रजस्वला छीसे स्पर्श हो जाय तो वह उसी दिन स्नान करके शुद्ध हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। अपनेसे निकृष्ट जातिवाली रजस्वलाका स्वर्ण करके रजस्वला छीको तयतक भोजन नहीं करना चाहिये, जयतक कि वह शुद्ध नहीं हो जाती। उसकी शुद्धि चौथे दिनके शुद्ध स्नानसे ही होती है। यदि कोई द्विज मूत्रत्याग करके मार्गमें चलता हुआ भूलकर जल पी ले, तो वह एक दिन-रात उपवास रखकर पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध होता है। जो मूत्र त्याग करनेके पश्चात् आचमनादि शौच न करके मोहबद्ध भोजन कर लेता है, वह तीन दिनतक यवपान करनेसे शुद्ध होता है॥ ३३-३६॥

जो ब्राह्मण संन्यास आदिकी दीशा लेकर गृहस्थाश्रमका परित्याग कर चुके हैं और पुनः संन्यासाश्रमसे गृहस्थाश्रममें लौटना चाहते हैं, अब मैं उनकी शुद्धिके विषयमें कहता हूँ। उनसे तीन 'प्राजापत्य' अथवा 'चान्द्रायण-व्रत' कराने चाहिये। फिर उनके जातकर्म आदि संस्कार पुनः कराने चाहिये॥ ३७ ३८॥

जिसके मुखसे जूते या किसी अपवित्र वस्तुका स्वर्ण हो जाय, उसकी मिठी और गोवरके लेपन तथा पञ्चगव्यके पानसे शुद्धि होती है। नीलकी खेती, विक्रय और नीले वस्त्र आदिका धारण—ये ब्राह्मणका पतन करनेवाले हैं। इन दोषोंसे युक्त ब्राह्मणकी तीन 'प्राजापत्य-व्रत' करनेसे शुद्धि होती है। यदि रजस्वला छीको अन्त्यज या चाण्डाल छू जाय तो 'प्रिरात्र-व्रत' करनेसे चौथे दिन उसकी शुद्धि होती है। चाण्डाल, श्वपक, मज्जा, सूतिका खी, शब और शबका स्वर्ण करनेवाले मनुष्यको छूनेपर तत्काल स्नान करनेसे शुद्धि होती है। मनुष्यकी अस्थिका स्वर्ण होनेपर तैल लगाकर स्नान करनेसे ब्राह्मण विशुद्ध हो जाता है। गलीके कीचड़िके छूटि लग जानेपर नाभिके नीचेका भाग मिठी और जलसे धोकर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। बमन अथवा विरेचनके बाद स्नान करके धूतका प्राशन करनेसे शुद्धि होती है। स्नानके बाद क्षौरकर्म

करनेवाला और ग्रहणके समय भोजन करनेवाला 'प्राजापत्य व्रत' करनेसे शुद्ध होता है। पङ्किदूषक मनुष्योंके साथ पङ्किन्मे बैठकर भोजन करनेवाला, कुत्ते अथवा कीटसे दंशित मनुष्य पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध प्राप्त करता है।

आत्महत्याकी चेष्टा करनेवाले मनुष्यकी 'प्राजापत्यवृत्त', जप एवं होमसे शुद्धि होती है। होमादिके अनुष्ठान एवं पश्चात्यापसे सभी प्रकारके पापियोंकी शुद्धि होती है ॥ ३९-४६ ॥

इस प्रकार आदि आमनेय महापराणमें 'प्रायश्चित्तांका वर्णन' नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७० ॥

एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय

ग्रन पारेंके प्रायशित्का वर्णन

पुरुषकर कहते हैं—अब मैं गुप्त पापोंके प्रायश्चित्तोंका वर्णन करना हूँ, जो परम अद्विप्रद हैं। एक मासतक पुरुषसूक्तका जप पापोंका नाश करनेवाला है। अधर्मर्षण मन्त्रका तीन बार जप करनेसे मनुष्य मभी प्रकाशके पापोंसे मुक्त हो जाता है। वेदमन्त्र, वायुसूक्त और यमसूक्तके जप एवं गायत्रीका जप करनेसे मनुष्य अपने भव पापोंको नष्ट कर डालता है। समस्त कृच्छ्रमें मुण्डन, स्नान, हवन और श्रीहरिका पूजन विहित है। ‘कृच्छ्रवत्’ करनेवाला दिनमें खड़ा रहे और रातमें बैटा रहे, इसे ‘वीरासन’ कहा गया है। इससे मनुष्य निष्ठाप हो जाता है। एक महीने-तक प्रतिदिन आठ ग्राम भोजन करे, इसे ‘यतिचान्द्रायण’ कहते हैं। एक मासतक नित्य प्रातःकाल चार ग्राम और सायकाल चार ग्राम भोजन करनेसे ‘शिशुचान्द्रायण’ होता है। एक मासमें किरी भी प्रकार दो सौ चालीस पिण्ड भोजन करे, यह ‘सुरचान्द्रायण’ की विधि है। तीन दिन गरम जल, तीन दिन गरम दूध, तीन दिन गरम धी और तीन दिन वायु पीकर रहे, इसे ‘तत्कृच्छ्र’ कहा गया है। और इसी क्रमसे तीन दिन ठंडा जल, तीन दिन ठंडा दूध, तीन दिन ठंडा धी और तीन दिन वायु पीनेपर ‘शीतकृच्छ्र’ होता है। इकीकृत दिनतक केवल दूध पीकर रहनेसे ‘कृच्छ्रतिकृच्छ्र’ होता है। एक दिन गोमूथ, गोबर, दूध, दही, धी और कुश-जलका भक्षण करके रहे तथा एक दिन उपवास करे, इसे ‘कृच्छ्रसांतपन-ब्रत’ माना गया है। ‘सांतपनकृच्छ्र’की वस्तुओंको एक-एक दिनके क्रमसे लेनेपर भव्यसांतपन’ ब्रत भाना जाता है। इन्हीं वस्तुओंको तीन-

तीन दिनके क्रमसे ग्रहण करनेपर ‘अतिसांतपन’ माना जाता है। बारह दिन निराहार रहनेसे ‘पराकृच्छ्र’ होता है। तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन बिना मोर्गे मिली हुई वस्तुका भोजन करे और अन्तमें तीन दिन उपवास रखें, इसे ‘प्राजापत्य-व्रत’ कहा गया है। इसीके एक चरणका अनुष्ठान ‘कृच्छ्रपाद’ कहलाता है। एक मासतक फल खाकर रहनेसे ‘फलकृच्छ्र’ और बेल खाकर रहनेमें ‘ओड्कृच्छ्र’ होता है। इसी प्रकार पश्चात् (कमलगाढ़ा) खाकर रहनेसे ‘पश्चात्कृच्छ्र’, आँखेले खाकर रहनेसे ‘आमलककृच्छ्र’ और पुष्प खाकर रहनेसे ‘पुष्पकृच्छ्र’ होता है। पूर्वोक्त क्रमसे केवल पत्ते खाकर रहनेसे ‘पत्रकृच्छ्र’, जल पीकर रहनेसे ‘जलकृच्छ्र’, केवल मूलका भोजन करनेसे ‘मूलकृच्छ्र’ और दधि, दुध अथवा तक्कपर निर्भर रहनेसे क्रमशः ‘दधिकृच्छ्र’, ‘दुधकृच्छ्र’ और ‘तक्ककृच्छ्र’ होते हैं। एक मासतक अञ्जलिभर अनन्के भोजनसे ‘वायव्यकृच्छ्र’ होता है। बारह दिन केवल तिलका भोजन करके रहनेसे ‘आग्नेयकृच्छ्र’ माना जाता है, जो दुःखोंका विनाश करनेवाला है। एक पक्षतक एक पसर लाज (खील) का भोजन करे। चतुर्दशी एवं पञ्चदशी (अमावास्या एवं पूर्णिमा) को उपवास रखें। फिर पञ्चग्रन्थ-पान करके हविप्याजका भोजन करे। यह ‘भ्रष्टकृच्छ्र-व्रत’ होता है। इस व्रतको एक मासमें दो बार करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य धन, पुष्टि, स्वर्ग एवं पापनाशकी कामनासे देवताओंका आराधन और कृच्छ्रपत करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है ॥ १-१७ ॥

इस प्रकार अदि आग्नेय महापराणमें

एक सौ इकाहतासवाँ अखाय पा दला ॥ १२३ ॥

‘गुस पापोके प्रायश्चित्तका वर्णन’ नामक

एक सौ बहुतरवाँ अध्याय

समस्त पापनाशक स्तोत्र

पुण्कर कहते हैं—जब मनुष्योंका चित्त परलीगमन, परस्वप्नहरण एवं जीवहिंसा आदि पापोंमें प्रवृत्त होता है, तो स्तुति करनेसे उसका प्रायशङ्कित होता है। (उस समय निम्नलिखित प्रकारसे भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करे—) “सर्वव्यापी विष्णुको सदा नमस्कार है। श्रीहरि विष्णुको नमस्कार है। मैं अपने चित्तमें स्थित सर्वव्यापी, अहकारशूल्य श्रीहरिको नमस्कार करता हूँ। मैं अपने मानसमें विराजमान अव्यक्त, अनन्त और अपराजित परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। सबके पूजनीय, जन्म और मरणसे इहित, प्रभावशाली श्रीविष्णुको नमस्कार है। विष्णु मेरे चित्तमें निवास करते हैं, विष्णु मेरी बुद्धिमें विराजमान है, विष्णु मेरे अहंकारमें प्रतिष्ठित है और विष्णु मुझमें भी स्थित हैं। वे श्रीविष्णु ही चराचर प्राणियोंके कर्मोंके रूपमें स्थित हैं, उनके चिन्तनसे मेरे पापका विनाश हो। जो ध्यान करनेपर पापोंका हरण करते ह आर भावना करनेसे स्वानमें दर्शन देते हैं, इन्द्रके अनुज, शरणागतजनोंका दुःख दूर करनेवाले उन पापापहारी श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं इस निराधार जगत्में अज्ञानान्धकारमें छूचते हुएको हाथका सहारा देनेवाले परापरम्बरूप श्रीविष्णुके सम्मुख प्रणात होता हूँ। सर्वेश्वरेश्वर प्रभो ! कमलनयन परमामन ! हृषीकेश ! आपको नमस्कार है। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीविष्णो ! आपको नमस्कार है। नृसिंह ! अनन्तस्वरूप गोविन्द ! समस्त भूत-प्राणियोंकी सुष्टि करनेवाले केशव ! मेरे द्वारा जो दुर्बचन कहा गया हो अथवा पापपूर्ण चिन्तन किया गया हो, मेरे उस पापका प्रशमन कीजिये; आपको नमस्कार है। केशव ! अपने मनके वशमें होकर मैंने जो न करनेयोग्य अत्यन्त उग्र पापपूर्ण चिन्तन किया है, उसे शान्त कीजिये। परमार्थ-परायण ब्राह्मणप्रिय गोविन्द ! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले जगत्का भरण-भोगण करनेवाले देवेश्वर ! मेरे पापका विनाश कीजिये। मैंने मध्याह्न, अपराह्न, सायंकाल एवं रात्रिके समय, जानते हुए अथवा अनजाने, शरीर, मन एवं बाणीके द्वारा जो पाप किया हो, ‘पुण्ड्रीकाश’, ‘दृष्टीकेश’, ‘मध्यव’—आपके इन तीन नामोंके उच्चारणमें मेरे न सब पाप क्षीण हो जायें। कमलनयन

लक्ष्मीपते ! इन्द्रियोंके स्वामी साधव ! आज आप मेरे शरीर एवं बाणीद्वारा किये हुए पापोंका हनन कीजिये। आज मैंने खाते, सोते, लड़े, चलते अथवा जागते हुए मन, बाणी और शरीरसे जो भी नीच योनि एवं नगककी प्रांति करनेवाला सूक्ष्म अथवा स्थूल पाप किया हो, भगवान् बासुदेवके नामोच्चारणमें वे सब विनष्ट हो जायें। जो परव्याप्ति, परमधार्म और परम पवित्र द, उन श्रीविष्णुके महीतनमें मेरे पाप छुस हो जायें। जिनको प्राप्त होकर ज्ञानीज्ञन पुनः लौटकर नहीं आते, जो गन्ध, स्पश आदि तन्मात्राओंमें रहित हैं; श्रीविष्णुका वह परमपद मेरे पापोंका शास्त्र करें”* ॥ १-१८ ॥

* विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः ।

नमामि विष्णुं चित्तस्यनहंकारगतिं हरिम् ॥

चित्तस्यमीशनव्यत्तमनन्तपराजितम् ॥

विष्णुभीद्यमशेषेण अनादिनिधनं विशुभ् ॥

विष्णुश्चित्तगो यन्मे विष्णुर्दुद्धिगतश्च यत् ॥

यद्याहंकारगो विष्णुर्द्विष्णुर्गमि संस्थितः ॥

करोति कर्मभूतोऽसौ व्यावर्य चरस्य च ॥

तत् पापं नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिनिनं ॥

ध्यातो हरति यत् पापं स्वप्ने इष्टस्तु भावनात् ॥

तसुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणातिहरं इरेन् ॥

जगत्स्वसिन्निराधरे मद्जमाने एमत्यधः ॥

इस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणामामि परास्परम् ॥

सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्योक्तज ॥

हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश लभोऽस्तु ते ॥

नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव ॥

दुरुक्तं दुष्टां ध्यातं शमयां नमोऽस्तु ते ॥

यमया चिन्तनं दुष्ट स्वचित्तवशब्दिना ॥

अकार्यं महदस्युमं नच्छमं नय केशव ॥

ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरावण ॥

जगन्नाथ जगदानः पापं प्रशमयाच्युत ॥

यथापराहे सायंकाले मध्याह्ने च तथा निशि ॥

काषेन मनसा बाना कृतं पापमज्ञानता ॥

जानता च हृषीकेश पुण्ड्रीकाश मात्र ॥

नामत्रयोऽचारणः पाप यातु मम ज्ञावम् ॥

जो मनुष्य पाणीका विनाश करनेवाले इस स्तोत्रका पठन अथवा श्रवण करता है, वह शरीर, मन और वाणी-जनित समस्त पाणीसे छूट जाता है एवं समस्त पापग्रहोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। इसलिये किसी भी पापके हो जानेपर इस स्तोत्रका जप करे। यह

स्तोत्र पापसमूहोंके प्रायश्चित्तके समान है। कृच्छ्र आदि व्रत करनेवालेके लिये भी यह श्रेष्ठ है। स्तोत्र-जप और व्रतरूप प्रायश्चित्तसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये इनका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १९-२१ ॥

इस प्रकार आदि आस्त्रय महापुराणमें 'समस्तप्रपनाशक स्तोत्रका वर्णन' नामक एक सौ बहुतरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

—१७२—

एक सौ बहुतरवाँ अध्याय अनेकविधि प्रायश्चित्तोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा वर्णित पाणीका नाश करनेवाले प्रायश्चित्त व्रतलंता हूँ। जिससे प्राणीका शरीरसे विशेष हो जाय, उस कार्यको 'हनन' कहते हैं। जो राग, द्वेष अथवा प्रमादवश दूरसंके द्वारा या स्वयं ब्राह्मणका वध करता है, वह 'ब्रह्मवाती' होता है। याद एक कार्यमें तत्पर बहुतसे शख्खधारी मनुष्योंमें कोई एक ब्राह्मणका वध करता है, तो वे सबके सब 'ब्रातक' माने जाते हैं। ब्रह्मण किसीके द्वारा निन्दित होनेपर, मारा जानेपर या बन्धनसे पीड़ित होनेपर जिसके उद्देश्यसे प्राणीका परित्याग कर देता है, उसे 'ब्रह्महत्यारा' माना गया है। औपधोपचार आदि उत्तरकार करनेपर किमीकी मृत्यु हो जाय तो उसे पाप नहीं होता। पुत्र, शिष्य अथवा पत्नीको दण्ड देनेपर उनकी मृत्यु हो जाय, उस दण्डमें भी दोष नहीं होता। जिन पाणीमें मुक्त होनेका उपाय नहीं बतलाया गया है, देश, काल, अवस्था, शक्ति और पापका

विचार करके यत्नपूर्वक प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी चाहिये। गौ अथवा ब्राह्मणके लिये तत्काल अपने प्राणीका परित्याग कर दे, अथवा अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे डाले तो मनुष्य ब्रह्महत्याके पापमें मुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्यारा भूतके सिरका कणाल और भज लेकर भिक्षानका भोजन करता हुआ उसे ब्राह्मणका वध किया है—इस प्रकार अपने पापकर्मको प्रकाशित करे। वह बारह वर्षतक नियमित भोजन करके शुद्ध होता है। अथवा शुद्धिके लिये प्रपत्न करनेवाला ब्रह्मवाती मनुष्य छः वर्णोंमें ही पवित्र हो जाना है। ब्रह्मनवश पापकर्म करने वालोंकी अपेक्षा जान-बूझकर पाप करनेवालेके लिये दुगुना प्रायश्चित्त विहित है। ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त होनेपर तीन वर्षतक प्रायश्चित्त कर। ब्रह्मवाती शत्रियको दुगुना तथा वैश्य एवं शूद्रको छःगुना प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्य पाणीका ब्राह्मणको मम्पूर्ण, अत्रियको तीन चरण,

शरीरं मे दृष्टिकेशं पुण्डरीकाशं माधवं। पापं प्रशमयाथ त्वं वाक्कृतं मयं माप्यव ॥
यद्युभ्यन् यत् स्वप्यस्तिष्ठन् गच्छन् जायद् यदास्थितः। कृत्वान् पापमयाह कायेन वनया गिग ॥
यत् स्वल्पमपि यत् स्थूलं कुरुतोमिन्नरकावदभ् । नद् यातु प्रशम सर्वं वासुदेवानुर्कान्नात् ॥
परं ब्रह्म परं धाम पापवं परम न यत् । नस्मिन् प्रकीर्तिर्विषयो यत् पाप न एष प्रणश्यतु ॥
यत् प्राप्य न निवर्त्तने गन्धस्पर्शादिवर्जितम् । सूर्यस्तत् परं विष्णोस्तत् सर्वं शमशत्वदम् ॥

* पापप्रणाशन स्तोत्र ५. पठेच्छुगुणादार्प । शार्दौरैमोनसैवांगजः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥
सर्वपापग्रहादिभ्यो यानि विष्णोः परं पदम् । नस्मात् पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वावर्मदर्मनम् ॥
प्रायश्चित्तमवौधाना स्तोत्रं ब्रह्मकृते वरम् । प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्वैनश्यनि पापनकम् ॥

(अग्निपुराण १७२ । २-१८)

(अग्निपुराण १७२ । २०-२१)

वैश्यको आधा और शुद्ध शूद्र, शौ, बालक एवं दोषीको एक चरण प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १—११ ॥

क्षत्रियका वध करनेपर ब्रह्महत्याका एकपाद, वैश्यका वध करनेपर अष्टमांश और सदाचारपरायण शूद्रका वध करनेपर षोडशांश प्रायश्चित्त माना गया है । सदाचारिणी खीकी हत्या करके शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करे । गोहत्यारा संयतचित्त होकर एक मासतक गोशालामें शयन करे, गौओंका अनुगमन करे और पञ्चगव्य पीकर रहे । फिर गोहान करनेसे वह शुद्ध हो जाता है । 'कृच्छ्र' अथवा 'अतिकृच्छ्र' कोई भी व्रत हो, क्षत्रियोंको उसके तीन चरणोंका अनुष्ठान करना चाहिये । अत्यन्त बूढ़ी, अत्यन्त कृदा, यहुत छोटी उम्रवाली अथवा रोगिणी खीकी हत्या करके द्विज पूर्वोन्त विधि के अनुसार ब्रह्महत्याका आधा प्रायश्चित्त करे । फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और यथाशक्ति तिल एवं सुबर्णका दान करे । मुक्तके या थप्पड़के प्रहारसे, सींग लोडनेसे और लाटी आदिसे मारनेपर यदि गौ मर जाय तो उसे 'गोवध' कहा जाता है । मारने, बाँधने, गाढ़ी आदिमें जातने, रोकने अथवा रस्सीका फंदा ल्यानेसे गौकी मूल्य हो जाय तो तीन चरण प्रायश्चित्त करे । काठसे गोवध करनेवाला 'सांतपनव्रत', ढेलेसे मारनेवाला 'प्राजापत्य', पत्थरसे हत्या करनेवाला 'भत्सकृच्छ्र' और शास्त्रसे वध करनेवाला 'अतिकृच्छ्र' करे । विल्ली, गोह, नेवला, मेडक, कुत्ता अथवा पक्षीकी हत्या करके तीन दिन दूध पीकर रहे; अथवा 'प्राजापत्य' या 'चान्द्रायण' व्रत करे ॥ २—१९ ॥

गुप्त पाप होनेपर गुप्त और प्रकट पाप होनेपर प्रकट प्रायश्चित्त करे । समस्त पापोंके बिनाशके लिये शौ प्राणायाम करे । कटहल, द्राक्षा, महुआ, खजूर, ताङ, हँख और मुनक्केका रस तथा टंकमाघीक, मैरेय और नारियलका रस—ये मादक होते हुए भी मध्य नहीं हैं । पैटी ही मुख्य सुरा मानी गयी है । ये सब मदिराएँ द्विजोंके लिये निषिद्ध हैं । सुरापान करनेवाला खौलता हुआ जल पीकर शुद्ध होता है । अथवा सुरापानके पापसे मुक्त होनेके लिये एक वर्षतक जटा एवं खजा खारण किये हुए बनमें निवास करे । निय राजिके समय एक बार चावलके कण या तिलकी खलीका भोजन करे । अक्षानवदा मल-मूत्र अथवा मदिरासे छूये हुए पदार्थ का भक्षण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों बणोंके लोग पुनः संस्कारके योग्य हो जाते हैं । सुरापानमें रक्तवा हुआ जल पीकर सात दिन व्रत करे । चाष्ठालका जल पीकर

हो: द्वित उपवास रखले तथा चाष्ठालके शूर्ण अथवा पांचों पानी पीकर 'क्षांतपनव्रत' करे । अन्यतज्ज्ञों जल पीकर द्वितीन रात उपवास रखकर पञ्चवत्यका रखने करे । नवीन जल या जलके साथ मस्त्य, कटहल, शम्भूक, शूद्र, शौप और कौड़ी पीनेपर पञ्चवत्यका आन्द्रल करनेसे 'शुद्धि' होती है । शब्दुक कूपका जल पीनेपर मनुष्य विराचित' करनेसे शुद्ध होता है । चाष्ठालका अज खाकर 'चान्द्रायण-व्रत' करे । आपल्कालमें शूद्रके घर भोजन करनेपर पक्षात्तापसे शुद्धि हो जाती है । शूद्रके पात्रमें भोजन करनेवाला ब्राह्मण उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है । कन्तुपन्न (भूज), स्नेहपत्र (शीतैलमें पके पदार्थ), शीतैल, दशी, सूक्ष्म, दूध और रस आदि—ये वस्तुएँ शूद्रके घरसे ली जानेपर भी निषिद्ध नहीं हैं । विना स्नान किये भोजन करनेवाला एक दिन उपवास रखकर दिनभर जप करनेसे पवित्र होता है । मूत्रत्याग करके अशौचावस्थामें भोजन करनेपर 'विराचितसे' शुद्धि होती है । केव एवं कीटसे युक्त, जान-बृशकर पैरसे छूआ हुआ, भणवातीका देखा हुआ, रजरवला खीका छूआ हुआ, कौए आदि पक्षियोंका जूठा किया हुआ, कुचेका स्वर्ण किया हुआ अथवा गौका सूँचा हुआ अज खाकर तीन दिन उपवास करे । बीर्य, मल या मूत्रका भक्षण करनेपर 'प्राजापत्य-व्रत' करे । नवश्राद्धमें 'चान्द्रायण', मासिक श्राद्धमें 'पराक्रमत', चिपक्षिक श्राद्धमें 'अतिकृच्छ्र', पाण्मासिक श्राद्धमें 'प्राजापत्य' और वार्षिक श्राद्धमें 'एकपाद प्राजापत्य-व्रत' करे । पहले और दूसरे दोनों दिन वार्षिक श्राद्ध हो तो दूसरे वार्षिक श्राद्धमें एक दिनका उपवास करे । निषिद्ध वस्तुका भक्षण करनेपर उपवास करके प्रायश्चित्त करे । भूतृण (छब्बाक), लहसुन और शिग्गुर्क (इवेत मरिच) खा लेनेपर 'एकपाद प्राजापत्य' करे । अभोज्याच, शूद्रका अज, खी एवं शूद्रका उच्छिष्ट या अभक्ष्य मांसका भक्षण करके सात दिन केवल दूध पीकर रहे । जो ब्रह्मचारी, संन्यासी अथवा व्रतस्थ द्विज मधु, मांस या जननादौन एवं मरणाशौचका अज भोजन कर लेता है, वह 'प्राजापत्य-कृच्छ्र' करे ॥ २०—३९ ॥

अन्यायपूर्वक दूसरेका धन हड्डप लेनेको 'चोरी' कहते हैं । सुवर्णकी चोरी करनेवाला राजाके द्वारा मूसल्ले मारे जानेपर शुद्ध होता है । सुवर्णकी चोरी करनेवाला, सुरापान करनेवाला, ब्रह्मचारी और गुरुपलीगामी वारह वर्षतक

भूमिपर शयन और जटा धारण करे। वह एक समय
के बल पत्ते और फल-मूलका भोजन करनेसे शुद्ध होता है।
चौरी अथवा मुरागान करके एक वर्षतक 'प्राजापत्य-ब्रत'
करे। मणि, मोती, मैंगा, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा और
पत्थरकी चौरी करनेवाला बारह दिन चावलके कण खाकर
रहे। मनुष्य, ली, क्षेत्र, यह, बावली, कूप और तालाबका
अपहरण करनेपर 'चान्द्रायण-ब्रत'से शुद्धि मानी गयी है।
भृश एवं भोज्य पदार्थ, सवारी, शब्द्या, आसन, पुष्प,
मूल अथवा फलकी चौरी करनेवाला पञ्चगव्य पीकर शुद्ध
होता है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूक्ष्मा अब, गुड़, वस्त्र, चर्म
या मांस उरानेवाला तीन दिन निराहार रहे। मौतेली माँ,
बहन, गुरुपत्नी, गुरुपत्नी और अपनी पुत्रीसे भमागम
करनेवाला 'गुरुपत्नीगमनी' माना गया है। गुरुपत्नीगमन
करनेपर अपने पापकी घोषणा करके जलते हुए लोहकी

इस प्रकार अदि आग्नेय महापुराणमें 'अनेकविध प्रायश्चित्तोऽप्या वर्णन' नामक

एक सौ तिहाई अध्याय पूरा हुआ ॥ १३३ ॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

प्रायश्चित्तोक्त वर्णन

अग्निदेव कहने हैं—देव-मन्दिरके पूजन आदिका
लोप करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये। पूजाका लोप करने-
पर एक सौ आठ बार जप करें और दुगुनी पूजाका
व्यवस्था करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे हवन कर ब्राह्मण-
भोजन करावं। सूतिका स्त्री, अन्त्यज अथवा रजस्वलाके
बारा देवमूर्तिका स्पर्श होनेपर सौ बार गायत्री-जप करे।
दुगुना स्नान करके पञ्चोपनिषद्-मन्त्रोंसे पूजन एवं ब्राह्मण-
भोजन कराये। होमका नियम भल्ला होनेपर होम, स्नान और
पूजन करे। होम-द्रव्यको चूहे आदि खा लें या वह कीटयुक
हो जाय, तो उतना अंत छोड़कर तथा शोष द्रव्यका जलसे
प्रोक्षण करके देवताओंका पूजन करे। भल्ले ही अहुरमात्र
अर्पण करे, परंतु छिन्नभिन्न द्रव्यका बहिष्कार कर दे।
अस्तु य मनुष्योंका सर्व हो जानेपर पूजा-द्रव्यको दूसरे
पात्रमें रख दे। पूजाके समय मन्त्र अथवा द्रव्यकी त्रुटि
होनेपर दैव एवं मानुष विज्ञोंका विनाश करनेवाले
गणपतिके बीज-मन्त्रका जप करके पुनः पूजन करे। देव-
मन्दिरका कलश नष्ट हो जानेपर सौ बार मन्त्र-जप करे।

शाय्यापर तस्यैहमयी खीका आलिङ्गन करके प्राणस्याग करनेसे शुद्ध होता है। अथवा गुरुपल्लीगामी तीन भाष्टतक ‘चान्द्रायण-ब्रत’ करे। पतित स्त्रियोंके लिये भी इसी प्रायश्चित्तका विधान करे। पुष्टषको परखीगमन करनेपर जो प्रायश्चित्त बतलाया गया है, वही उनसे करावे। कुमारी कन्या, चांडाली, पुशी और अपने सपिण्ड तथा पुत्रकी पत्नीमें वीर्यसेचन करनेवालेको प्राणस्याग कर देना चाहिये। द्विज एक रात शूद्राका सेवन करके जो पाप संचित करता है, वह तीन वर्षतक नित्य गायत्री-जप एवं भिक्षाज्ञका भोजन करनेसे नष्ट होता है। चाच्ची, भामी, चांडाली, पुककसी, पुत्रवधू, बहन, सखी, मौसी, बुआ, निक्षिता (धरोहरके रूपमें रक्खी हुई), शरणागता, मासी, सगोत्रा वहिन, दूसरेको चाहनेवाली खी, शिर्यपत्नी अथवा गुरुपल्लीमें गमन करके ‘चान्द्रायण-ब्रत’ करे ॥ ४०-५४ ॥

देवमूर्तिके हाथसं गिरने एवं नष्ट हो जानेपर उपवासपूर्वक अग्निमें सौ आहुतियाँ देनेमें शुभ होता है। जिस पुरुषके मनमें पाप करनेपर पश्चात्तार होता है, उसके लिये श्रीहरिका सरण ही परम प्रायश्चित्त है। चान्द्रायण, पराक एवं प्राजापत्न-त्रत पापगम्भीका विनाश करनेवाले हैं। सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके मन्त्रका जप भी पापोंका प्रशमन करता है। गायत्री, प्रणव, पापप्रणाशनस्तोत्र एवं मन्त्रका जप पापोंका अन्त करनेवाला है। सूर्य, शिव, शक्ति और विष्णुके 'क'से प्रारम्भ होनेवाले, 'रा' बीजसे संयुक्त, रादि आदि ओर रात मन्त्र करोड़गुना फल देनेवाले हैं। इनके सिवा 'ॐ' कीसे प्रारम्भ होनेवाले चतुर्थन्त एवं अन्तमें 'नमः' संयुक्त मन्त्र सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले हैं। नृसिंह भगवान्के द्वादशाक्षर एवं अष्टाक्षर मन्त्रका जप गपसम्भूतेका विनाश करता है। अग्निपुराणका पठन एवं शब्दण करनेसे भी मनुष्य समस्त पापसम्भूतेसे छूट जाता है। इस पुराणमें अग्निदेवका माहात्म्य भी वर्णित है। परमात्मा श्रीविष्णु ही मुख्यरूप अग्निदेव है, जिनका

सम्पूर्ण वेदोंमें गान किया गया है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले उन परमेश्वरका प्रदृशि और निवृत्तिमार्गसे भी पूजन किया जाता है। अग्निरूपमें खित श्रीविष्णुके उद्देश्यसे इबन, जप, ध्यान, पूजन, स्तवन एवं नमस्कार शरीर-सम्बन्धी सभी पापोंका विघ्नसं करनेवाला है। दस प्रकारके स्वर्णदान, बारह प्रकारके धान्यदान, तुलापुरुष आदि सोलह महादान एवं सर्वश्रेष्ठ अन्नदान—ये सब महापापोंका अपहरण करनेवाले हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति, योग, मन्वन्तरारम्भ आदिके समय सूर्य, शिव, शक्ति तथा विष्णु-के उद्देश्यसे किये जानेवाले व्रत आदि पापोंका प्रशमन करते हैं। गङ्गा, गया, प्रशाग, अयोध्या, उज्जैन, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, नैमित्तरण्य, पुरुषोत्तमक्षेत्र, शालग्राम, प्रभासक्षेत्र आदि तीर्थ पापसमूहोंको विनष्ट करते हैं। ‘मैं परम प्रकाश-

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘प्रायश्चित्त-वर्णन’ नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७४ ॥



एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

व्रतके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें

अग्निदेव कहते हैं—‘वसिष्ठजी ! अब मैं तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष तथा सूर्य-संक्रान्तिके अवसरपर होनेवाले श्री-पुरुष-सम्बन्धी व्रत आदिका क्रमशः वर्णन करूँगा, ध्यान देकर सुनिये—॥ १ ॥’

शास्त्रोक्त नियमको ही ‘व्रत’ कहते हैं, वही ‘तप’ माना गया है। ‘दम’ (इन्द्रियसंयम) और ‘शाम’ (मनो-निग्रह) आदि विशेष नियम भी व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवाले पुरुषको शारीरिक संताप सहन करना पड़ता है, इसलिये व्रतको ‘तप’ नाम दिया गया है। इसी प्रकार व्रतमें इन्द्रियसमुदायका नियमन (संयम) करना होता है, इसलिये उसे ‘नियम’ भी कहते हैं। जो ब्राह्मण या दिज (क्षत्रिय-वैद्य) अग्निहोत्री नहीं हैं, उनके लिये व्रत, उपवास, नियम तथा नाना प्रकारके दानोंसे कल्याणकी प्राप्ति बतायी गयी है॥ २-४ ॥

उक्त व्रत-उपवास आदिके पालनसे प्रसन्न होकर देवता एवं भगवान् भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं। पापोंसे उपाष्ठत (निवृत्त) होकर सब प्रकारके भोगोंका त्याग करते हुए जो सद्गुणोंके साथ बास करता है, उसीको ‘उपवास’ समझना चाहिये। उपवास करनेवाले

स्वरूप बल हुँ !”—इस प्रकारकी भूलणा भी पापोंका विनाश करनेवाली है। ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्म, विष्णु, महेश, भगवान्के अवतार समस्त देवताओंकी प्रतिमा-प्रतिष्ठा एवं पूजन, ज्यौतिष, पुराण, स्तुतियाँ, तप, व्रत, अर्थशास्त्र, सृष्टिके आदितत्त्व, आशुवर्देद, धनुर्वेद, शिक्षा, छन्दःशास्त्र, व्याकरण, निरचक, कोष, कस्य, न्याय, मीमांसा-शास्त्र एवं अन्य सब कुछ भी भगवान् श्रीविष्णुकी विभूतियाँ हैं। वे श्रीहरि एक होते हुए भी सगुण-निर्गुण दो रूपोंमें विभक्त एवं सम्पूर्ण संसारमें संनिहित हैं। जो ऐसा जनता है, ‘श्रीहरि-स्वरूप उन महापुरुषका दर्शन करनेसे दूसरोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीहरि ही अद्वादश विद्यारूप, सुहम, स्थूल, सञ्चितस्वरूप, अविनाशी परज्ञा एवं निष्पाप विष्णु हैं॥ १—२४ ॥

पुरुषको कौसरके वर्तन, मांस, मसूर, चना, कोदो, साग, मधु, पराये अल तथा ल्ली-सम्भोगका त्याग करना चाहिये। उपवास-कालमें फूल, अलंकार, सुन्दर बल, धूप, सुगन्ध, अङ्गराग, दाँत धोनेके लिये मञ्जन तथा दाँतौन—इन सब बस्तुओंका सेवन अच्छा नहीं माना गया है। प्रातःकाल जलसे मुँह धो, कुल्ला करके, पञ्चग्रन्थ लेकर व्रत प्रारम्भ कर देना चाहिये॥ ५-९ ॥

अनेक बार जल पीने, पान खाने, दिनमें सोने तथा मैथुन करनेसे उपवास (व्रत) दूषित हो जाता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं। व्रतमें पवित्र शृङ्खालाओंको जपे और अपनी शक्तिके अनुसार इबन करे। अती पुरुष प्रतिदिन स्नान तथा परिमित भोजन करे। गुड, देवता तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया करे। क्षार शहद, नमक, शराब और मांसको त्याग दे। तिळ-मूँग आदिके अतिरिक्त भान्य भी त्याग्य हैं। भान्य (अज) में उद्धर, कोदो, चीना, देवधान्य, शस्तीधान्य, गुड, वितधान्य, पय तथा मूँगी—ये क्षारगण माने गये हैं। व्रतमें इनका स्वाद

कर देना चाहिये । धान, साठीका चावल, मूँगा, मटर, तिल, औ, सौंबां, तिजीका चावल और गेहूँ आदि अन्न व्रतमें उपयोगी हैं । कुम्हड़ा, लोकी, बैंगन, पालक तथा पूरिकाको त्याग दे । चूद, भिक्षामें प्राप्त अन्न, सत्तके दाने, साग, दही, धी, दूध, सौंबां, अगहनीका चावल, तिजीका चावल, जौका हलुवा तथा मूल तण्डुल—ये 'हविध' माने गये हैं । इन्हे व्रतमें, नक्तव्रतमें तथा अग्निहोत्रमें भी उपयोगी बताया गया है । अथवा मांस, मदिरा आदि अपविन्न वस्तुओंको छोड़कर सभी उत्तम वस्तुएँ व्रतमें हितकर हैं ॥ १०-१७ ॥

'प्राजापत्यव्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज तीन दिन केवल प्रातःकाल और तीन दिन केवल साध्याकालमें भोजन करे । फिर तीन दिन केवल चिना भोगे जो कुछ मिल जाय, उरीका दिनमें एक समय भोजन करे; उसके बाद तीन दिनोंतक उपवास करके रहे । (इस प्रकार यह बारह दिनोंका व्रत है ।) इसी प्रकार 'आत्मकृच्छ्र-व्रत'का अनुष्ठान करनेवाला द्विज पूर्ववत् तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन साध्यकाल और तीन दिनोंतक चिना भोग प्राप्त हुए अन्नका एक-एक ग्रास भोजन करे तथा अन्तिम दिनमें उपवास करे । गायका मूत्र, गोवर, दूध, दही, धी तथा कुशका जल—इन सबको मिलाकर प्रथम दिन पीय । फिर दूसरे दिन उपवास करे यह 'सांतपनकृच्छ्र' नामक व्रत है । उपयुक्त द्रव्योंका पृथक्-पृथक् एक एक दिनके क्रमसे छः दिनोंतक भेवन करके सातवें दिन उपवास करे—इस प्रकार यह एक उपवासका व्रत 'महासांतपन-कृच्छ्र' कहलाता है, जो पापोंका नाश करनेवाला है । लगातार बारह दिनोंके उपवाससे सम्पन्न होनेवाले व्रतको 'प्रापक' कहते हैं । यह सब पापोंका नाश करनेवाला है । इससे तिगुने अर्थात् छन्तीस दिनोंतक उपवास करनेपर यही व्रत 'महापराक्र' कहलाता है । पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करके प्रतिदिन एक-एक ग्रास घटाता रहे; अमावास्याको उपवास करे तथा प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन आरम्भ करके नित्य एक-एक ग्रास बढ़ाता रहे इसे 'चान्द्रायण' कहते हैं । इसके विपरीतक्रमसे भी यह व्रत किया जाता है । (जैसे हुक्ल प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन करे; फिर एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भोजन करे । तत्पश्चात् कृष्ण प्रतिपदासे एक-एक ग्रास घटाकर अमावास्याको उपवास करे) ॥ १८-२३ ॥

कपिला गायका मूत्र एक पल, गोवर और औंठेके आर्थ हिस्सेके वरावर, दूध सात पल, दही दो पल, धी एक पल तथा कुशका जल एक पल एकमें मिला दे । इनका मिश्रण करते समय गायजी-मन्त्रसे गोमूत्र ढाले । 'गङ्गाद्वारा दुर्शधर्षी' (श्रीसूक्त) इस मन्त्रसे गोवर मिलाये । 'आग्ना-यस्व०' (यजु० १२ । ११२) इस मन्त्रसे दूध ढाल दे । 'दधि क्षाण्डो' (यजु० २३ । ३२) इस मन्त्रसे दही मिलाये । 'तेजोऽसि कुक्कमस्यमृतमसि०' (यजु० २२ । १) इस मन्त्रसे धी ढाले तथा 'देवस्य०' (यजु० २० । ३) इस मन्त्रसे कुशोदक मिलाये । इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है, उसका नाम 'ब्रह्मकूर्च' है । ब्रह्मकूर्च तैयार होनेपर दिनभर भूग्रा रहकर सायकालमें अव्रमषण-मन्त्र अथवा प्रणवके साथ 'आपो हि ष्टा०' (यजु० ११ । ५०) इत्यादि ऋचाओंका जप करके उसे पी ढाले । ऐसा करनेवाला सब पापोंमें मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है । दिनभर उपवास करके केवल साध्यकालमें भोजन करनेवाला, दिनके आठ भागोंमें से केवल छठे भागमें आहार ग्रहण करनेवाला संन्यासी, मांस-त्यागी, अश्वमेधयज्ञ करनेवाला तथा सत्यवादी पुरुष स्वर्गको जाते हैं । अग्न्याधान, प्रतीष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, देवत्रत, वृत्तिर्पाणी, चूडाकरण, मेखलबन्ध (यजोपवीत), विवाह आदि माझालिक काय तथा अभियंक—ये सब काय भल्मासमें नहीं करने चाहिये ॥ २४-३० ॥

अमावास्योमें अमावास्यातक्रमा समय 'चान्द्रमास' कहलाता है । तोस दिनोंका 'सावन मास' माना गया है । सक्रान्तिसे सक्रान्तिकालतक 'सौरमास' कहलाता है तथा क्रमशः सम्पूर्ण नक्षत्रोंके परिवर्तनसे 'नक्षत्रमास' होता है । विवाह आदिसे 'सौरमास', यज्ञ आदिमें 'सावन मास' और वार्षिक श्राद्ध तथा पितृकार्यमें 'चान्द्रमास' उत्तम माना गया है । आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पौच्छर्य पक्ष आता है, उसमें पितृरोंका श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं, इसका विचार श्राद्धके लिये अनावश्यक है ॥ ३१-३२ ॥

मासिक तथा वार्षिक व्रतमें जब कोई तिथि दो दिनकी हो जाय तो उसमें दूसरे दिनवाली तिथि उत्तम जाननी चाहिये और पहलीको भलिन । 'नक्षत्रव्रत'में उसी नक्षत्रको उपवास करना चाहिये, जिसमें सूर्य अस्त होते हों । 'दिवस-व्रत'में दिनव्यापिनी तथा 'नक्तव्रत'में रात्रिव्यापिनी तिथियाँ पुण्य एवं शुभ मानी गयी हैं । द्वितीयाके साथ सूतीयाका,

चतुर्थी-पञ्चमीका, षष्ठीके साथ सप्तमीका, अष्टमी-नवमीका, एकादशीके साथ द्वादशीका, चतुर्दशीके साथ षष्ठीमात्रा तथा अमावास्याके साथ प्रतिपदाका वेष्ट उत्तम है। इसी प्रकार षष्ठी-सप्तमी आदिमें भी समझना चाहिये। इन तिथियोंका मेल महान् फल देनेवाला है। इसके विषयीत, अर्थात् प्रतिपदासे द्वितीयाका, तृतीयासे चतुर्थी आदिका जो गुम्भाव है, वह बड़ा भयानक होता है, वह पहलेके किये हुए समस्त पुण्यको नष्ट कर देता है॥ ३४-३७ ॥

राजा, मन्त्री तथा व्रतधारी पुरुषोंके लिये विवाहमें, उपद्रव आदिमें, दुर्गम स्थानोंमें, संकटके समय तथा युद्धके अवसरपर तत्काल शुद्धि बतायी गयी है। जिसने दीर्घकालमें समाप्त होनेवाले व्रतको आरम्भ किया है, वह जी व्रतमें बाधक नहीं होता। गर्भवती ली, प्रसव-गृहमें पड़ी हुई ली अथवा रजस्वला कन्या जब अशुद्ध होकर व्रत करनेयोग्य न रह जाय तो सदा दूसरेसे उस शुभ कार्यका सम्पादन कराये। यदि क्रोधसे, प्रभादसे अथवा लोपसे व्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनोंतक भोजन न करे अथवा मूँड मुड़ा ले। यदि व्रत करनेमें असमर्थता हो तो पली या पुत्रसे उस व्रतको कराव। आरम्भ किये हुए व्रतका पालन जननाशीच तथा मरणादीचमें भी करना चाहिये। केवल पूजनका कार्य बंद कर देना चाहिये। यदि व्रती पुरुष उपवासके कारण अर्घ्यित हो जाय तो गुरु दूध पिलाकर या और किसी उत्तम उपायसे उसे होशमें लाये। जल, फल, मूल, दूध, हविष्य (धी), ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका बचन तथा औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं हैं॥ ३८-४३ ॥

(व्रती मनुष्य व्रतके स्वामी देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—) ‘व्रतपते ! मैं कीर्ति, संतान, विद्या आदि, सौभाग्य, आरोग्य, अभिवृद्धि, निर्मलता तथा भोग एवं मोक्षके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करता हूँ। यह शेष व्रत मैंने आपके समक्ष ग्रहण किया है। जगत्पते ! आपके प्रसादसे इसमें निर्विघ्न उपर्युक्त प्राप्त हो। संतोंके पालक ! इस शेष व्रतको ग्रहण करनेके पश्चात् यदि इसकी पूर्ति हुए

* अहौ तात्पत्त्वानि आपो मूलं फलं पयः ।

इविर्ब्राह्मणकाम्या च शुरोन्चन्मीवद्य ॥

(अन्ति० १७५ । ४३)

वह अवश्य ही पूर्ण हो जाय। केवल १ आप व्रतस्वरूप हैं, संतारकी उत्तरतिके स्थान एवं जगत् को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं; मैं सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस मण्डलमें आपका आवाहन करता हूँ। आप मेरे समीप उपस्थित हों। मनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पञ्चग्रन्थ, पञ्चामूल तथा उत्तम जलके द्वारा मैं भक्तिगुरुक आपको स्थान करता हूँ। आप मेरे पापोंके नाशक हों। अर्थपते ! गन्ध, पुष्प और जलसे युक्त उत्तम अर्थ एवं पाय ग्रहण कीजिये, आचमन कीजिये तथा मुझे सदा अर्ध (सम्मान) पानेके योग्य बनाइये। वस्त्रपते ! व्रतोंके स्वामी ! यह पवित्र वस्त्र ग्रहण कीजिये और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों आदिसे आच्छादित किये रखिये। गन्धस्वरूप परमात्मन् ! यह परम निर्मल उत्तम सुगन्धसे युक्त चन्दन लीजिये तथा मुझे पापकी दुर्गन्धसे रहित और पुण्यकी सुगन्धसे युक्त कीजिये। भगवन् ! यह पुष्प लीजिये और मुझे सदा फल-फूल आदिसे परिणीत बनाइये। यह फूलकी निर्मल सुगन्ध आयु तथा आरोग्यकी शुद्धि करनेवाली हो। संतोंके स्वामी ! गुग्गुल और धी मिलाये हुए इस दशाल्ल धूपको ग्रहण कीजिये। धूपद्वारा पूजित परमेश्वर ! आप मुझे उत्तम धूपकी सुगन्धसे सम्पन्न कीजिये। दीपस्वरूप देव ! सबको प्रकाशित करनेवाले इस प्रकाशपूर्ण दीपको, जिसकी दिखा ऊपरकी ओर उठ रही है, ग्रहण कीजिये और मुझे भी प्रकाशयुक्त एवं ऊर्ध्वगति (उच्चतिशील एवं ऊपरके लोकोंमें जानेवाला) बनाइये। अज्ञ आदि उत्तम वस्तुओंके अधीक्षर ! इस अन्न आदि नैवेद्यको ग्रहण कीजिये और मुझे ऐसा बनाइये जिससे मैं अन्न आदि वैभवसे सम्पन्न, अन्नदाता एवं सर्वस्वदान करनेवाला हो सकूँ। प्रभो ! व्रतके द्वारा आराध्य देव ! मैंने मन्त्र, विधि तथा भक्तिके विना ही जो आपका पूजन किया है, वह आपकी कृपासे परिपूर्ण—सफल हो जाय। आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुण, संतति, कीर्ति, विद्या, आयु, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करें। व्रतपते ! प्रभो ! आप इस समय मेरे द्वारा की हुई इस पूजाको स्वीकार करके पुनः यहाँ पधारने और वरदान देनेके लिये अपने स्थानको जायें॥ ४४-५८ ॥

सब प्रकारके व्रतोंमें व्रतधारी पुरुषको उचित है कि वह स्थान करके व्रत-सम्बन्धी देवताकी स्वर्णमयी प्रतिमाका यथार्थक पूजन करे तथा रातको भूमिपर सोये। व्रतके

अक्षये जय, हैम और दाम सामान्य करतव्य है। साथ ही अपनी शक्तिके अनुशार चौथीस, बारह, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मणकी एवं शुद्धजनोंकी पूजा करके उन्हें भोजन करने वाले और यथाशक्ति सबको पृथक्-पृथक् गौ, सुवर्ण

आदि; स्वाङ्क, ज्वला, जलपात्र, अन्नपात्र, मूसिका, छन्द, आसन, शया, दो वन्ध और कलश आदि वस्तुएँ दक्षिणामें दे। इस प्रकार यहों 'ब्रत'की परिमाणा बतायी गयी है॥ ५९-६२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'ब्रत-परिमाणका वर्णन' नामक एक सौ पचाहतरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७५ ॥



एक सौ छिह्नतरवाँ अध्याय

प्रतिपदा तिथिके ब्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं आपसे प्रतिपद आदि तिथियोंके ब्रतोंका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाले हैं। कार्तिक, अश्विन और चैत्र मासमें कृष्णपक्षकी प्रतिपद, ब्रह्माजीकी तिथि है। पूर्णिमाको उपवास करके प्रतिपदको ब्रह्माजीका पूजन करे। पूजा 'ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।'—इस मन्त्रसे अथवा गायत्री-मन्त्रमें करनी चाहिये। यह ब्रत एक वर्षतक करे। ब्रह्माजीके सुवर्णमय विग्रहका पूजन करे, जिसके दाहिने हाथोंमें स्फटिकाक्षकी माला और सूधा हों तथा बायें हाथोंमें सुक्-एवं कमण्डल हों। साथ ही लंबी दाढ़ी और भिरपर जटा भी हो। यथाशक्ति दूध चढ़ावे और मनमें यह उद्देश्य रखें कि 'ब्रह्माजी सुशप्ति प्रसन्न हों।' यों करनेवाला भनुष्य

निष्पाप होकर स्वर्गमें उत्तम भोग भोगता है और पृथ्वीपर धनवान् ब्राह्मणके रूपमें जन्म लेता है॥ १-४ ॥

अब 'धन्यब्रत'का वर्णन करता हूँ। इसका अनुष्ठान करनेसे अधन्य भी धन्य हो जाता है। पहले मार्गशीर्ष-मासकी प्रतिपदको उपवास करके रातमें 'अग्नये नमः ।'—इस मन्त्रसे होम और अर्घ्निकी पूजा करे। इसी प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी प्रतिपदको अर्घ्निकी आराधना करनेसे मनुष्य सब सुखोंका भागी होता है।

प्रत्येक प्रतिपदाको एकभून्त (दिनमें एक समय भोजन करके) रहे। सालभरमें ब्रतकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मण कपिला गौ दान करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य 'वैद्वानर'-पदको प्राप्त होता है। यह 'शिरिब्रत' कहलाता है॥ ५-७ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'प्रतिपद-ब्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ छिह्नतरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७६ ॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

द्वितीया तिथिके ब्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं द्वितीयाके ब्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष आदि देनेवाले हैं। प्रत्येक मासकी द्वितीयाको पूल खाकर रहे और दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंकी पूजा करे। एक वर्षतक इस ब्रतके अनुष्ठानसे सुन्दर स्वरूप एवं सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और अन्तमें व्रती पुरुष स्वर्गलोकका भागी होता है। कार्तिकमें शुक्लपक्षकी द्वितीयाको यमकी पूजा करे। फिर एक वर्षतक प्रत्येक शुक्ल-द्वितीयाको उपवासपूर्वक ब्रत रखें। ऐसा करनेवाला पुरुष स्वर्गमें जाता है, नरकमें नहीं पहुँचता ॥ १—२३ ॥

अब 'अशून्य-शयन' नामक ब्रत बतलाता हूँ, जो लियोंको अबैधव्य (मदा सुहाग) और पुरुषोंको पत्नी-सुख आदि देनेवाला है। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको इस ब्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। [इस ब्रतमें भगवान्-से इस प्रकार प्रार्थना की जाती है - -] 'वक्षःस्थलमे श्रीबत्स-चिह्न धारण करनेवाले श्रीकान्त ! आप लक्ष्मीजीके धाम और स्वामी हैं; अविनाशी एवं मनातन परमेश्वर हैं। आपकी कृपासे धर्म, अर्थ और काम प्रदान करनेवाला मेरा गाहॄस्थ-आश्रम नष्ट न हो। मेरे घरके अग्निहोत्रकी आग कभी न ढूँढ़े, गृहदेवता कभी अदृश्य न हों। मेरे पितर,

नाशसे बचे हों और मुहरे दाम्पत्यभेद न हो । ऐसे शार्ष कभी लक्ष्मीजीसे विळग नहीं होते, उसी प्रकार भैरा भी पत्नीके साथका सम्बन्ध कभी दूटने या छूटने न चाहे । वरदानी प्रभो ! जैसे आपकी शश्या कभी लक्ष्मीजीसे सूती नहीं होती, मधुसूदन ! उसी प्रकार भैरी शश्या भी पत्नीसे सूती न हो । इस प्रकार ब्रत आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिमासकी द्वितीयाको श्रीलक्ष्मी और विष्णुका विभिन्न पूजन करे । शश्या और फलका दान भी करे । साथ ही प्रत्येक मासमें उभी तिथिको चन्द्रमाके लिये मन्त्रोच्चारण-पूर्वक अर्थ्य दे । [अर्थका मन्त्र—] ‘भगवान् चन्द्रदेव । आप गगन-प्राङ्गणके दीपक हैं । क्षीरसागरके मन्थनसे आपका आविर्भाव हुआ है । आप अपनी प्रभासे सम्पूर्ण दिक्षुमण्डलको प्रकाशित करते हैं । भगवती लक्ष्मीके छोटे भाई ! आपको नमस्कार है ।’ * तत्प्रथात् ‘ॐ अं श्रीधराय नमः ।’—इस मन्त्रसे सोमस्वरूप श्रीहरिका पूजन करे । ‘अं हं सं श्रियै नमः ।’—इस मन्त्रसे लक्ष्मीजीकी तथा ‘हशरूपमहात्मने नमः ।’—इस मन्त्रसे श्रीविष्णुकी पूजा करे । रातमें श्रीसे हवन करके ब्राह्मणको शश्या दान करे । उसके साथ दीप, अजसे भरे हुए पात्र, छाता, जूता, आमन, जलसे भरा कलश, श्रीहरिकी प्रतिमा तथा पात्र भी ब्राह्मणको दे । जो इस प्रकार उन ब्रतका पालन करता है, वह भोग और मोक्षका भागी होता है ॥३—१२॥

अब ‘कान्तिव्रत’ का वर्णन करता हूँ । इसका प्रारम्भ कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको करना चाहिये । दिनमें उपवास और रातमें भोजन करे । इसमें बलराम तथा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे । एक वर्षतक ऐसा करनेसे श्रीतीया तिथिके व्रत का वर्णन होते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं आपके सम्मुख तृतीया तिथिको किये जानेवाले ब्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । लौलितातृतीयाको किये जानेवाले मूलगौरी-सम्बन्धी (दौमायशयन) ब्रतको सुनिये ॥ १ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘हितीया-सम्बन्धी ब्रतका वर्णन’ नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७७ ॥

एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

तृतीया तिथिके व्रत

चैत्रके शुक्लपक्षकी तृतीयाको ही पार्वतीका भगवान् शिवके साथ विवाह हुआ था । इसलिये इस दिन तिलमिश्रित जलसे स्नान करके पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी स्वर्णभूषण और फल आदिसे पूजा करनी चाहिये ॥ २ ॥

‘कलोडसु पाटलायै’ (पाटल देवीको नमस्कार)—यह कहकर पार्वतीदेवी और भगवान् शंकरके चरणोंका पूजन करे । ‘शिवाय नमः’ (भगवान् शिवको नमस्कार)—यह कहकर शिवकी और ‘जयाय नमः’ (जयाको नमस्कार)—यों कहकर गौरी देवीकी अर्चना करे । ‘त्रिपुराय रुद्राय नमः’ (त्रिपुरिविनाशक रुद्रदेवको नमस्कार) तथा ‘भवान्यै नमः’ (भवानीको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीकी दोनों जहाँओंका और ‘रुद्रायेष्वराय नमः’ (सबके ईश्वर रुद्रदेवको नमस्कार है) एवं ‘विजयाय नमः’ (विजयाको नमस्कार)—यह कहकर क्रमशः शंकर और पार्वतीके छुटनोंका पूजन करे । ‘ईशाय नमः’ (सर्वेश्वरीको नमस्कार)—यह कहकर देवीके और शंकराय नमः—ऐसा कहकर शंकरके कटिभागकी पूजा करे । ‘कोटव्यै नमः’ (कोटवीदेवीको नमस्कार) और ‘शूलपाण्यै नमः’ (त्रिशूलधारीको नमस्कार)—यों कहकर क्रमशः गौरी-शंकरके कुष्ठिदेशका पूजन करे । ‘मङ्गलायै नमः’ (मङ्गलादेवीको नमस्कार) कहकर भवानीके और ‘तुम्यै नमः’ (आपको नमस्कार)—यह कहकर शंकरके उदरका पूजन करे । ‘सर्वामने नमः’ (सर्वाणि प्राणियोंके आत्मभूत शिवको नमस्कार)—यों कहकर रुद्रके और ‘ईशायै नमः’ (ईशानीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके स्तनयुगलका पूजन करे । ‘देवाम्बने नमः’ (देवानाओंके आत्मभूत शंकरको नमस्कार)—कहकर शिवके और उसी प्रकार ‘शूदिन्यै नमः’ (गवको आहाद प्रदान करनेवाली गौरीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके कण्ठप्रदेशकी अर्चना करे । ‘महादेवाय नमः’ (महादेवको नमस्कार) और ‘अनन्तायै नमः’ (अनन्ताको नमस्कार) कहकर क्रमशः शिव-पार्वतीके दोनों हाथोंका पूजन करे । ‘त्रिलोचनाय नमः’ (त्रिलोचनको नमस्कार) और ‘कालानलिप्रियायै नमः’ (कालानिलस्त्रूप शिवकी प्रियतमाको नमस्कार) कहकर भुजाओंका तथा ‘महेशाय नमः’ (महेश्वरको नमस्कार) एवं ‘सौभाग्यायै नमः’ (सौभाग्यवतीको नमस्कार) कहकर शिव-पार्वतीके आभूषणोंकी पूजा करे । तदनन्तर ‘अशोकमञ्जुषासिन्धै नमः’ (अशोक-पुष्पके मधुसे सुखासित पार्वतीको नमस्कार) और ‘ईश्वराय नमः’ (ईश्वरको नमस्कार) कहकर दोनोंके ओष्ठभागका तथा ‘चतुर्मुखप्रियायै नमः’ (चतुर्मुख ब्रह्माकी प्रिय पुत्रवृक्षोंका

नमस्कार) और ‘हराय स्थाप्य नमः’ (पश्चिमी स्थाणुस्तरूप शिवको नमस्कार) कहकर क्रमशः गौरी-शंकरके मुखका पूजन करे । ‘अर्जनारीक्षाय नमः’ (अर्जनारीक्षरको नमस्कार) कहकर शिवकी और ‘अमिताहायै नमः’ (अपरिमित अङ्गोंवाली देवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी नासिकाका पूजन करे । ‘उप्राय नमः’ (उप्रस्त्रूप शिवको नमस्कार) कहकर लोकेश्वर शिवका और ‘ललितायै नमः’ (ललिताको नमस्कार) कहकर पार्वतीकी भौंहोंका पूजन करे । ‘शर्वाय नमः’ (शर्वको नमस्कार) कहकर त्रिपुरारि शिवके और ‘वासन्त्यै नमः’ (वासन्तीदेवीको नमस्कार) कहकर पार्वतीके तालुप्रदेशका पूजन करे । ‘श्रीकण्ठायायै नमः’ (श्रीकण्ठ शिवकी पत्नी उमाको नमस्कार) और ‘शिनिकण्ठाय नमः’ (नीलकण्ठको नमस्कार) कहकर गौरी-शंकरके केशपादाका पूजन करे । ‘भीमोद्राय नमः’ (भीमकर एवं उप्रस्त्रूप धारण करनेवाले शिवको नमस्कार) कहकर शंकरके और ‘सुरूपिण्यै नमः’ (सुन्दर रूपवतीको नमस्कार) कहकर भगवती उमाके शिरोभागकी अर्चना करे । ‘सर्वामने नमः’ (गवांत्मा शिवको नमस्कार) कहकर पूजाका उपसंहार करे ॥ ३-११२ ॥

शिवकी पूजाके लिये ये पुष्प क्रमशः चैत्रादि मासोंमें ग्रहण करनेयोग्य बताये गये हैं—महिला, अशोक, कमल, कुन्द, तगर, भालती, कदम्ब, कनेर, नीले रंगका गदावहार, अम्लान (ओं बोली) कुङ्कम और सेध्वार ॥ १२-१३ ॥

उमा-महेश्वरका पूजन करके उनके सम्मुख अष्ट सौभाग्य-द्रव्य रख दे । घृतमिश्रित निषाव (एक द्विदल), कुमुम (केसर), दुग्ध, जीवक (एक ओषधिविशेष), दूर्वा, ईश्वर, नमक और कुसुमभुरु (धनियों) —ये अष्ट सौभाग्य-द्रव्य हैं । चैत्रमासमे पहाड़ोंके शिवरोंका (गङ्गा आदिका) जल पान करके रुद्रदेव और पार्वतीदेवीके आगे शयन करे । * प्रातःकाल स्नान करके गौरी-शंकरका पूजन कर ब्राह्मण-दम्पतिकी अर्चना करे और वह अष्ट सौभाग्य-द्रव्य

* उमामहेश्वरै	पूज्य	सौभाग्याष्टकमप्रतः ।
सापयेद्	एतनिष्पावकुसुमशीरजीवकम् ॥	
तण्टरेष्वुल्लवणं	कुसुममुखमयाष्टकम् ।	
ैति श्वोदकं	प्राप्य देवदेव्यघ्रतः स्पेत ॥	
	(अधि० १७८ । १४-१५)	

'लिता प्रीयता मम ।' (लिता मुक्तपर प्रसन्न हों)—
ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे ॥ १४-१६ ॥

ब्रत करनेवालेको चैत्रादि मासोंमें ब्रतके दिन क्रमशः
यह आहार करना चाहिये—चैत्रमें शूक्रजल (करनेका जल),
वैशाखमें गोबर, ज्येष्ठमें मन्दार (आक) का पुष्प,
आषाढ़में विष्वपत्र, श्रावणमें कुञ्जजल, भाद्रपदमें दही,
आश्विनमें दुग्ध, कार्तिकमें धूतमिश्रित धधि, मार्गशीर्षमें
गोमूत्र, पौषमें धूत, माघमें काले तिल और फाल्गुनमें
पञ्चगव्य । लिता, विजया, भद्रा, भवानी, दुर्गादा, शिवा,
वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला और सती—चैत्रादि
मासोंमें सौभाग्याष्टकके दानके समय उपर्युक्त नामोंका
'प्रीयता मम' से संयुक्त करके उच्चारण करे । ब्रतके पूर्ण होने-
पर किसी एक फलका नदाके लिये स्थाग कर दे तथा गुरुदेव-
को तकियोंसे युक्त शिव्या, उमा-महेश्वरकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा
एवं गौमहित वृथभक्ता दान करे । गुरु और ब्राह्मण-
दम्पतिका वस्त्र आदिसे सत्कार करके साधक भोग और
मोक्ष-दोनोंको प्राप्त कर लेता है । इह 'सौभाग्यशयन'
नामक ब्रतके अनुष्ठानसे मनुष्य सौभाग्य, आरोग्य, रूप
और दीर्घायु प्राप्त करता है ॥ १७-२१ ॥

यह ब्रत भाद्रपद, वैशाख और मार्गशीर्षके शूक्र-
पक्षकी तृतीयाको भी किया जा सकता है । इसमें
'लितापै नमः' (लिताको नमस्कार)—इस प्रकार

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'तृतीयाके ब्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अठहस्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७८ ॥

एक सौ उनासीवाँ अध्याय

चतुर्थी तिथिके ब्रत

अग्निदेव कहते हैं—सिष्ठ ! अब मैं आपके सम्मुख भोग
और मोक्ष प्रदान करनेवाले चतुर्थी-सम्बन्धी ब्रतोंका वर्णन
करता हूँ । माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके
गणेशका पूजन करे । तदनन्तर पञ्चमीको तिलका भोजन
करे । ऐसा करनेसे मनुष्य बहुत वर्षोंतक विघ्नरहित होकर
सुखी रहता है । 'गं शाहा !'—यह मूलमन्त्र है । 'गं नमः ।'
आदिसे हृदयादिका न्याय करेः ॥ १-२ ॥

* निम्नलिखित तिथिसे हृदयादि वर्षोंका न्याय करे—

'गं हृदयादि नमः । गी तिरसे लाहा । गूँ शिल्वाये शपट् ।
गै नेत्रवाय दौषट् ॥ गौ कवचाय दृश् । गः अस्याय फट् ।'

अ० पु० अ० द३—

कहकर पार्वतीका पूजन करे । तदनन्तर ब्रतकी समाप्तिके
समय प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मण-दम्पतियों पूजा करनी चाहिये ।
उनकी चौबीस वस्त्र आदिसे अर्चना करके मनुष्य भोग
और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है । 'सौभाग्यशयन'की
यह दूसरी विधि बतायी गयी । अब मैं 'सौभाग्यब्रत'के
विषयमें कहता हूँ । फाल्गुन आदि मासोंमें शूक्रपक्षकी
तृतीयाको ब्रत करनेवाला नमकका परिस्थाग करे । ब्रत
समाप्त होनेपर ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके 'भवानी
'प्रीयताम् ।' (भवानी प्रसन्न हों) कहकर शिव्या और
समर्पण सामग्रियोंसे शुक्र यहका दान करे । यह 'सौभाग्य-
तृतीया'-ब्रत कहा गया, जो पार्वती आदिके लोकोंको प्रदान
करनेवाला है । इसी प्रकार माघ, भाद्रपद और वैशाखकी
तृतीयाको ब्रत करना चाहिये ॥ २२-२६ ॥

चैत्रमें 'दमनक-तृतीया'का ब्रत करके पार्वतीकी 'दमनक'
नामक पुर्णोंसे पूजन करनी चाहिये । मार्गशीर्षमें 'आत्म-
तृतीया'का ब्रत किया जाता है । इसमें पार्वतीका पूजन
करके ब्राह्मणको इच्छानुसार भोजन करावे । मार्गशीर्षकी
तृतीयासे आरम्भ करके, क्रमशः पौष आदि मासोंमें उपर्युक्त
ब्रतका अनुष्ठान करके निम्नलिखित नामोंको 'प्रीयताम्'-से
संयुक्त करके, कहे—गौरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति,
सरस्वती, वैष्णवी, लक्ष्मी, प्रकृति, शिवा और नारायणी ।
इस प्रकार ब्रत करनेवाला सौभाग्य और स्वर्गको प्राप्त
करता है ॥ २७-२८ ॥

'आगच्छोक्षय' कहकर गणेशका आवाहन और
'गच्छोक्षय' कहकर विसर्जन करे । इस प्रकार आदिमें
गक्कारयुक्त और अन्तमें 'उत्का'शब्दयुक्त मन्त्रसे उनके
आवाहनादि कार्य करे । गन्धादि उपचारों एवं लड्डुओं
आदि द्वारा गणपतिका पूजन करे ॥ ३ ॥ (तदनन्तर
निम्नलिखित गणेश-गायत्रीका जप करे—)

ॐ महोल्काय विश्वे वक्तुण्डाय धीमहि ।

ततो दन्ती प्रचोदयात् ॥

भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको ब्रत करनेवाला शिव-
लोकोंप्राप्त करता है । 'अङ्गारक-चतुर्थी' (मङ्गलवारसे

चतुर्थ चतुर्थी) को गणेशका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्ति कर लेता है। फाल्गुनकी चतुर्थीको शाश्वते ही भोजन करे। यह 'अविष्णा चतुर्थी'के नामसे

प्रसिद्ध है। चैत्र मासकी चतुर्थीको 'दमनक' नामक पुर्णिमा गणेशका पूजन करके मनुष्य सुख-भोग प्राप्ति करता है। ४-६॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'चतुर्थीके व्रतोंका कथन' नामक एक सौ उनासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७९ ॥

एक सौ अस्सीवाँ अध्याय पञ्चमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं आरोग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले पञ्चमी-व्रतका वर्णन करता हूँ।

श्रावण, भाद्रपद, आष्टमी और कार्तिकके शुक्लपक्षकी पञ्चमीको वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत,

धृतराष्ट्र, कर्णोटक और धनंजय नामक नागोंका पूजन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

ये सभी नाम अभय, आयु, विद्या, यश और लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'पञ्चमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८० ॥

एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय षष्ठी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं षष्ठी-सम्बन्धी व्रतोंको कहता हूँ। कार्तिकके कृष्णपक्षकी षष्ठीको फलमात्रका भोजन करके कार्तिकेयके लिये अर्चदान करना चाहिये। इससे मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्ति करता है। इसे 'स्कन्दपषष्ठी-व्रत'

कहते हैं। भाद्रपदके कृष्णपक्षकी षष्ठी तिथिमें 'अक्षयषष्ठी व्रत' करना चाहिये। इसे मार्गशीर्षमें भी करना चाहिये। इस अक्षयषष्ठीके दिन किंगी भी एक वर्ष निराहार रहनेसे मानव भोग और मोक्ष प्राप्ति कर लेता है ॥ १-२ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'षष्ठीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८१ ॥

एक सौ बयासीवाँ अध्याय सप्तमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं सप्तमी तिथिके व्रत कहूँगा। यह सप्तमको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको (अष्टदल अथवा द्वादशदल) कमलका निर्माण करके उसमें भगवान् सर्पका पूजन करना चाहिये। इनसे मनुष्य शोकरहित हो जाता है ॥ १ ॥

पौषमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको निराहार रहकर सूर्योदेवका पूजन करनेसे सारे पापोंका विनाश होता है ॥ २ ॥

भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको भगवान् आदित्यका पूजन करनेसे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है।

माधवके कृष्णपक्षमें 'सर्वाति-सप्तमी' का व्रत करना चाहिये। इससे सभी अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। फाल्गुनके कृष्णपक्षमें 'नन्द-सप्तमी'का व्रत करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षमें 'अपराजिता सप्तमी'को भगवान् सर्पका पूजन और व्रत करना चाहिये। एक वर्षतक मार्गशीर्षके शुक्लपक्षका 'पुत्रीया सप्तमी' व्रत ख्रियोंको पुत्र प्रदान करनेवाला है ॥ ३-४ ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'सप्तमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८२ ॥

एक सौ तिरासीवाँ अध्याय

अष्टमी तिथिके व्रत

अन्नदेव कहते हैं—वरिष्ठ ! अब मैं अष्टमीको किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करूँगा । उनमें पहला रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमीका व्रत है । भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी रोहिणी नक्षत्रसे मुक्त अष्टमी तिथिको ही अर्धरात्रिके समय भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ था, इसलिये इसी अष्टमीको उनकी जयन्ती मनायी जाती है । इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १-२ ॥

अतएव भाद्रपदके कृष्णपक्षकी रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमीको उपवास रखकर भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना चाहिये । यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ ३ ॥

(पूजनकी विधि इस प्रकार है—)

आवाहन-मन्त्र और नमस्कार—

आवाहायाम्यहं कृष्णं वज्रमहं च देवकीम् ।
वसुदेवं यशोदां गाः पूज्यामि नमोऽस्तु ते ॥
योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः ।
योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ॥

मैं श्रीकृष्ण, वल्मीकि, देवकी, वसुदेव, यशोदादेवी और गौओंका आवाहन एवं पूजन करता हूँ; आप सबको नमस्कार है । योगस्वरूप, योगपति एवं योगेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है । योगके आदिकारण, उत्पत्तिस्थान श्रीगोविन्दके लिये बारंबार नमस्कार है ॥ ४-५ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णको स्नान करये और इस मन्त्रसे उन्हे अर्धदान करे—

यज्ञेश्वराय यज्ञाय यज्ञानां पतये नमः ॥
यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ।
(यज्ञेश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञोंके अधिपति एवं यज्ञके आदिकारण श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है ।)

पुष्य-धूप

गृहण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते ॥
सर्वकामप्रदो देव भव मे देवविन्दत ।
धूपधूपित धूं धूं धूपितेस्त्वं गृहण मे ॥
सुगन्धिष्ठूपगन्धात्मं कुरु मां सर्वदा हरे ।

देव ! आपके प्रिय ये सुगन्धयुक्त पुष्प ग्रहण कीजिये । देवताओंद्वारा पूजित भगवन् ! मेरी सारी कामनाएँ तिद्वं कीजिये । आप धूपसे सदा धूपित हैं, मेरेद्वारा अपूर्त धूपदानसे आप धूपकी सुगन्ध ग्रहण कीजिये । श्रीहरे ! मुझे सदा सुगन्धित पुष्पों, धूप एवं गन्धसे सम्पन्न कीजिये ।'

दीप-दान

दीपदीप महादीपं दीपदीपिद सर्वदा ॥
मथा दर्श गृहण त्वं कुरु चोर्वंगतिं च मात् ।
विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः ॥
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितम् ।
(प्रभो ! आप सर्वदा दीपके समान देवीप्यमान एवं दीपको दीपसि प्रदान करनेवाले हैं । मेरे द्वारा दिया गया यह महादीप ग्रहण कीजिये और मुझे भी (दीपके समान) उर्वशिते युक्त कीजिये । विश्वरूप, विश्वपति, विश्वेश्वर श्रीकृष्णके लिये नमस्कार है, नमस्कार है । विश्वके आदिकारण श्रीगोविन्दको मैं यह दीप निवेदन करता हूँ ।'

शयन-मन्त्र

धर्माय धर्मपतये धर्मेशाय नमो नमः ॥
धर्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु ।
सर्वाय सर्वपतये सर्वेशाय नमो नमः ॥
सर्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ।

(धर्मस्वरूप, धर्मके अधिपति, धर्मेश्वर एवं धर्मके आदिस्थान श्रीवासुदेवको नमस्कार है । गोविन्द ! अब आप शयन कीजिये । सर्वरूप, सर्वके अधिपति, सर्वेश्वर, सर्वके आदिकारण श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है ।'

(तदनन्तर रोहिणीसहित चन्द्रमाको निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर अर्धदान दे—)

क्षीरोदारीवसनभूत अन्निनेत्रसुखेव ॥
गृहणात्मं काशाङ्केदं रोहिण्या सहितो भम ।
(क्षीरसमूद्रसे प्रकट एवं अन्निके नेत्रसे उद्धृत तेजःस्वरूप शशाङ्क ! रोहिणीके साथ मेरा अर्ध स्वीकार कीजिये ।'
फिर भगवाहिग्रहको वेदिकापर स्थापित करे और चन्द्रमा-

कहित देहिणीका पूजन करे । तदनन्तर अर्चरात्रिके समय वसुदेव, देवकी, नन्द-यशोदा और बलरामका गुड और शृतमिति दुर्घ-धारासे अभिषेक करे ॥ ६—१५ ॥

तत्प्रात् व्रत करनेवाला मनुष्य ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणामें उन्हें वस्त्र और सुवर्ण आदि दे । जन्माष्टमीका व्रत करनेवाला पुत्रयुक्त होकर विष्णुलोकका भागी

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अष्टमीके व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ तिरसीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८३ ॥

एक सौ चौरासीवाँ अध्याय

अष्टमी-सम्बन्धी विविध व्रत

अष्टावृद्धि व्रत होते हैं—मुनिशेष वसिष्ठ ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको व्रत करे और उस दिन ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मातृगणोंका जप-पूजन करे । कृष्णपक्षकी अष्टमीको एक वर्ष श्रीकृष्णकी पूजा करके मनुष्य संतानरूप अर्थकी प्राप्ति कर लेता है ॥ १ ॥

अब मैं 'कालाष्टमी'का वर्णन करता हूँ । यह व्रत मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको करना चाहिये । रात्रि होनेपर व्रत करनेवाला ज्ञानादिसे पवित्र हो, भगवान् 'शंकर'का पूजन करके गोमूत्रसे व्रतका पारण करे । रात्रिकी भूमिपर शयन करे । पौष मासमें 'शम्भु'का पूजन करके शृतका आहार तथा माघमें 'महेश्वर'की अर्चना करके दुर्घटका पान करे । फाल्गुनमें 'महादेव'की पूजा करके अच्छी प्रकार उपवास करनेके बाद तिलका भोजन करे । चैत्रमें 'स्यामु'का पूजन करके जौका भोजन करे । वैशाखमें 'शिव'की पूजा करे और कुशाजलसे पारण करे । ज्येष्ठमें 'पशुपति'का पूजन करके शृङ्गजल (झरनेके जल) का पान करे । आषाढ़में 'उग्र'की अर्चना करके गोमयका भक्षण और शावणमें 'शर्व'का पूजन करके मन्दारके पुष्पका भक्षण करे । भाद्रपदमें रात्रिके समय 'व्यश्वक'का पूजन करके बिल्बपत्रका भक्षण करे । अश्विनमें 'र्द्धश'की अर्चना करके चावल और कार्तिकमें 'हन'का पूजन करके दधिका भोजन करे । वर्षकी समाप्ति होनेपर होम करे और सर्वते (लिङ्गतो)-भद्रका निर्माण करके उसमें भगवान् शंकरका पूजन करे । तदनन्तर आचार्योंको गौ, वस्त्र और सुवर्णका दान करे । अन्य ब्राह्मणोंको भी उन्हीं वस्तुओंका दान करे । ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके भोजन कराकर मनुष्य भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ २-७३ ॥

होता है । जो मनुष्य पुत्रप्राप्तिकी इच्छाले प्रतिवर्ष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'पुम्' नामक नरके भयसे मुक्त हो जाता है । (सकाम व्रत करनेवाला भगवान् गोविन्दसे प्रार्थना करे—) प्रभो ! मुझे पुत्र, धन, आशु, आरोग्य और संतानि दीजिये । गोविन्द ! मुझे धर्म, काम, सौभाग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये ॥ १६—१८ ॥

प्रत्येक मासके दोनों पक्षोंकी अष्टमी तिथियोंको रात्रिमें भोजन करे और वर्षके पूर्ण होनेपर गोदान करे । इससे मनुष्य इन्द्रपदको प्राप्त कर लेता है । यह 'स्वर्गति-व्रत' कहा जाता है । कृष्ण अथवा शुक्र - किसी भी पक्षमें अष्टमीको बुधवारका योग हो, उस दिन व्रत रखें और एक समय भोजन करे । जो मनुष्य अष्टमीका व्रत करते हैं, उनके घरमें कभी सम्पत्तिका अभाव नहीं होता । दो अँगुलियों छोड़कर आठ मुहीं चावल ले और उसका भात बनाकर कुचायुक्त आम्रपत्रके दोनोंमें रखें । कुलमिकासहित बुधका पूजन करना चाहिये और 'बुधाष्टमी-व्रत'की कथा सुनकर भोजन करे । तदनन्तर ब्राह्मणको ककड़ी और चावलसहित यथार्थता दर्शिणा दे ॥ ८-१२ ॥

('बुधाष्टमी व्रत'की कथा निम्नलिखित है—) धीर नामक एक व्रात्यग्य था । उसका पत्नीका नाम था रम्भा और पुत्रा नाम काशिक था । उसके एक पुत्री भी थी, जिनका नाम विजया था । उस ब्राह्मणके धनद नामका एक बैल था । कौशिक उस बैलको चालोंके साथ चरनेको ले गया । कौशिक गङ्गामें स्नानादि कर्म करने लगा, उस समय चोर बैलको चुरा ले गये । कौशिक जब नदीसे नहाकर निकला, तब बैलको वहाँ न पाकर अपनी बहिन विजयाके साथ उसको लोजमें चल पड़ा । उसने एक सरोवरमें देवलोक-को जियोंका समूह देखा और उनसे भोजन माँगा । इसपर उन जियोंने कहा—‘आप आज हमारे अतिथि हुए हैं, इसलिये व्रत करके भोजन कीजिये ।’ तदनन्तर कौशिकने 'बुधाष्टमी'का व्रत करके भोजन किया । उधर

धीर बनराजके पास पहुँचा और अपना बैल लेकर विजयाके साथ लौट आया। धीर ब्राह्मणने यथार्थमय विजयाका विवाह कर दिया और स्वयं मृत्युके पश्चात् यमलोकको प्राप्त हुआ। परंतु कौशिक व्रतके प्रभावसे अयोध्याका राजा हुआ। विजय अपने माता-पिताको नरककी यातना भोगते देख यमराजके शरणापाल हुई। कौशिक जब मृग्याके उद्देश्यसे बनमें आया, तब उसने पूछा—‘मेरे माता-पिता नरकसे मुक्त कैसे हो सकते हैं?’ उस समय यमराजने वहाँ प्रकट होकर कहा—‘बुधाष्टीके दो व्रतोंके फलसे।’ तब कौशिकने अपने माता-पिताके उद्देश्यसे दो बुधाष्टी-व्रतोंका फल दिया। इससे उसके माता-पिता स्वर्गमें चले गये। तदनन्तर विजयाने भी हर्षित होकर भोग-मोक्षादिकी सिद्धिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया॥ १३—२०३॥

इस प्रकार आदि आद्यन्य महापुराणमें ‘अष्टमीके विविध व्रतोंका वर्णन’ नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८४॥

एक सौ पचासीवाँ अध्याय नवमी तिथिके व्रत

आग्निदेव कहते हैं—‘वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष आदिकी सिद्धि प्रदान करनेवाले नवमी-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। आश्विनके शुक्रपक्षमें ‘वौरी-नवमी’का व्रत करके देवीका पूजन करना चाहिये। इस नवमीको ‘पिष्ठका-नवमी’ होती है। उसका व्रत करनेवाले मनुष्यको देवीका पूजन करके पिष्ठका भोजन करना चाहिये। आश्विनके शुक्रपक्षकी जिस नवमीको अष्टमी और मूलनक्षत्रका योग हो एवं सूर्य कन्या-राशिपर स्थित हो, उसे ‘महानवमी’ कहा गया है। वह सदा पार्णोंका विनाश करनेवाली है। इस दिन नवदुर्गाओंको नौ स्थानोंमें अथवा एक स्थानमें स्थित करके उनका पूजन करना चाहिये। मध्यमें अष्टादशमुजा महालक्ष्मी एवं दोनों पादव्र भागोंमें दोष दुर्गाओंका पूजन करना चाहिये। अज्ञन और डमरूके साथ निम्नलिखित क्रमसे नवदुर्गाओंकी स्थापना करनी चाहिये—ऋद्वचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोगा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, पूज्या, चण्डरूपा और अतिचण्डिका। इन सबके मध्यभागमें अष्टादशमुजा उग्रचण्डा महिषमर्दिनी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। ‘ॐ मुर्गे दुर्गे रक्षसि स्वाहा।’—यह दशाक्षर-मन्त्र है—॥ १-६॥

वसिष्ठ! चैत्र मासके शुक्रपक्षकी अष्टमीको जब पुनर्जन्म नक्षत्रका योग हो, उस समय जो मनुष्य अशोक-पुष्टकी आठ कलिकाओंका रस-पान करते हैं, वे कभी शोकको प्राप्त नहीं होते। (कलिकाओंका रसपान निम्नलिखित मन्त्रसे करना चाहिये—)

त्वामशोक हरभीषु मधुमाससमुन्नवे।
पिलामि शोकसंतसो मामशोकं सदा कुरु॥

‘चैत्र मासमें विकसित होनेवाले अशोक! तुम भगवान् शंकरके प्रिय हो। मैं शोकसे संतप्त होकर तुम्हारी कलिकाओंका पान करता हूँ। अपनी ही तरह मुझे भी सदा के लिये शोकरहित कर दो।’ चैत्रादि मासोंकी अष्टमीको मातुरगणकी पूजा करनेवाला मनुष्य शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है॥ २१—२३॥

जो मनुष्य इस विधिसे पूर्वोक्त दशाक्षर-मन्त्रका जप करता है, वह किसीसे भी बाधा नहीं प्राप्त करता। भगवती दुर्गा अपने वाम करोंमें कपाल, खेटक, घटा, दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वजा, डमरू और पाश एवं दक्षिण करोंमें शान्ति, मुद्गर, चिशूल, वज्र, चक्र, भाला, अङ्गुष्ठा, चक्र तथा शलाका लिये हुए हैं। उनके इन आयुधोंकी भी अर्चना करे॥ ७-१०॥

फिर ‘कालि कालि’ आदि मन्त्रका जप करके खड़ासे पशुका वध करे। (पशुबलिका मन्त्र इस प्रकार है—) ‘कालि कालि वज्रेश्वरि लोहदण्डायै नमः।’ बलि-पशुका दधिर और मांस, ‘पूननाय नमः।’ कहकर नैश्रूत्यकोणमें, ‘पापराक्षस्यै नमः।’ कहकर वायव्यकोणमें, ‘चरक्यै नमः।’ कहकर इश्वानकोणमें एवं ‘विद्वरिक्यै नमः।’ कहकर अग्निकोणमें उनके उद्देश्यसे समर्पित करे। राजा उसके सम्मुख स्नान करे और स्कन्द एवं विशावके निमित्त पिष्ठनिर्मित शत्रुकी बलि दे। रात्रिमें ब्राह्मी आदि शक्तियोंका पूजन करे—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥
‘जयन्ती, मङ्गला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा,

शिवा, क्षमा, धात्री, स्वाहा और स्वधा—इन नामोंसे स्नान करके उनकी विविध उपचारोंसे पूजा करे। देवीके प्रसिद्ध जगदभिके। तुम्हें मेरा नमस्कार हो।' आदि मन्त्रोंसे देवीकी स्तुति करे और देवीको पञ्चामृतसे उहेश्यसे किया हुआ अजदान, रथयात्रा एवं बलिदान कर्म अपीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति करानेवाल है॥ ११-१५॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'नवमीके ब्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ पञ्चासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८५॥

एक सौ छियासीवाँ अध्याय दशमी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं दशमी-सम्बन्धी व्रतके विषयमें कहता हूँ, जो धर्म-कामादिकी सिद्धि करनेवाल है। दशमीको एक समय भोजन करे और व्रतके समाप्त होनेपर इस गौओं और स्वर्णमयी प्रतिमाओंका दान करे।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'दशमीके ब्रतका वर्णन' नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८६॥

एक सौ सतासीवाँ अध्याय

एकादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले एकादशी-ब्रतका वर्णन करूँगा। व्रत करनेवाला दशमीकी मांस और मैथुनका परिस्ताग कर दे एवं भजन भी नियमित करे। दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन न करे॥ १६॥

द्वादशी-विद्वा एकादशीमें खवं भीहरि स्थित होते हैं, इसलिये द्वादशी-विद्वा एकादशीके व्रतका श्रयोदशीको पारण करनेसे मनुष्य सौ यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त करता है। जिस दिनके पूर्वभागमें एकादशी कलामात्र अर्वांश्च हो और शेषभागमें द्वादशी व्याप्त हो, उस दिन एकादशीकांब्रत करके श्रयोदशीमें पारण करनेमें सौ यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है। दशमी-विद्वा एकादशीको कभी उपवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह नरककी प्राप्ति करनेवाली है।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'एकादशीके ब्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८७॥

एक सौ अठासीवाँ अध्याय

द्वादशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—सुनिशेष! अब मैं भोग एवं मोक्षप्रद द्वादशी-सम्बन्धी व्रत कहता हूँ। द्वादशी तिथिको मनुष्य रात्रिको एक समय भोजन करे और किसीसे कुछ

नहीं माँगो। उपवास करके भी भिक्षा-ग्रहण करनेवाले मनुष्यका द्वादशीव्रत सफल नहीं हो सकता। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको 'मदनद्वादशी'का व्रत करनेवाला भोग और

मोक्षकी हृच्छासे कामदेवरसी श्रीहरिका अर्चन करे। माघके शुक्लपक्षकी द्वादशीको ‘भीमद्वादशी’का ब्रत करना चाहिये और ‘नमो नारायणाय।’ मन्त्रसे श्रीविष्णुका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें ‘गोविन्दद्वादशी’का ब्रत करनेवालेको श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीकृष्णका पूजन करके जो मनुष्य लवणका दान करता है, वह समूर्ण रसोंके दानका फल प्राप्त करता है। भाद्रपदमें ‘गोवत्सद्वादशी’का ब्रत करनेवाला गोवत्सका पूजन करे। माघ मासके व्यतीत हो जानेपर फाल्गुनके कृष्णपक्षकी द्वादशी, जो श्रवणनक्षत्रसे संयुक्त हो, उसे ‘तिलद्वादशी’ कहा गया है। इस दिन तिलोंसे ही ज्ञान और होम करना चाहिये तथा तिलके लड्डुओंका भोग लगाना चाहिये। मन्दिरमें तिलके तेलसे युक्त दीपक समर्पित करना चाहिये तथा पितरोंको तिलाङ्गलि देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको तिलदान करे। होम और उपवाससे ही ‘तिलद्वादशी’का फल प्राप्त होता है तथा बुधवार और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी दान आदि कर्मोंमें महान् फलदायिनी होती है। १-२॥

इस प्रकार आदि आमनेर महापुराणमें ‘द्वादशीके ब्रतोंका वर्णन’ नामक एक सौ अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१८॥

एक सौ नवासीवाँ अध्याय

श्रवण-द्वादशी-ब्रतका वर्णन

अस्त्रिदेव कहने हैं—अब मैं भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें किये जानेवाले ‘श्रवणद्वादशी’ ब्रतके विषयमें कहता हूँ। यह श्रवण नक्षत्रसे संयुक्त होनेपर श्रेष्ठ मानी जाती है एवं उपवास करनेपर महान् फल प्रदान करनेवाली है। श्रवण-द्वादशीके दिन नांदियोंके संगमपर स्नान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है तथा बुधवार और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी दान आदि कर्मोंमें महान् फलदायिनी होती है। १-२॥

श्रयोदशीके निषिद्ध होनेपर भी इस ब्रतका पारण श्रयोदशीको करना चाहिये—

संकल्प-मन्त्र

द्वादशीं च निराहारो वामनं पूज्याम्बहम् ॥
उद्गुर्म्भे स्वर्णमयं श्रयोदशीं तु पारणम् ।

‘मैं द्वादशीको निराहार रहकर जलमूर्ण कलशपर स्थित स्वर्णनिर्मित वामनभूर्तिका पूजन करता हूँ एवं मैं ब्रतका पारण श्रयोदशीको करूँगा।’

होता है। ‘मैं कभी भ्रातृते वासुदेवाय।’ मन्त्रसे श्रीविष्णुका पूजा करनी चाहिये। उपर्युक्त विभिन्ने छः बार षतलद्वादशीका ब्रत करनेवाला कुलसहित स्वर्णको प्राप्त करता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें ‘मनोरथद्वादशी’का ब्रत करनेवाला श्रीहरिका पूजन करे। इसी दिन ‘नामद्वादशी’का ब्रत करनेवाला श्रीहरिका पूजन करे। भाद्रपदमें श्रुमतिद्वादशीका ब्रत करके विष्णुका पूजन करे। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें ‘अनन्तद्वादशी’का ब्रत करे। माघके शुक्लपक्षमें आश्रवेषा अथवा मूलनक्षत्रसे युक्त ‘तिलद्वादशी’ करनेवाला मनुष्य ‘कृष्णाय नमः।’ मन्त्रसे श्रीकृष्णका पूजन करे और तिलोंका होम करे। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें ‘सुगतिद्वादशी’का ब्रत करनेवाला ‘जय कृष्ण नमस्तुम्भम्’ मन्त्रसे एक वर्षतक श्रीकृष्णकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर लेता है। पौषके शुक्लपक्षकी द्वादशीको ‘सुग्रामि-द्वादशी’का ब्रत करे॥१-१४॥

आवाहन-मन्त्र

आवाहयाम्भावं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणम् ॥
स्त्रिवस्त्रयुगच्छन्मे घटे सच्छत्रयादुके ।

‘मैं दो इतेवत्रोंसे आच्छादित एवं छत्र-पात्रकाओंसे युक्त कलशपर शङ्ख-चक्रधारी वामनावतार विष्णुका आवाहन करता हूँ।’

स्नानार्पण-मन्त्र

स्नानार्पणं जातैः शुद्धैविष्णुं पञ्चामूर्तादिग्निः ॥
छत्रवश्चर्षरं विष्णुं वामनाय नमो नमः।

‘मैं छत्र एवं दण्डसे विभूषित सर्वज्ञापी श्रीविष्णुको पञ्चामूर्त आदि एवं विशुद्ध जलका स्नान समर्पित करता हूँ। भगवान् वामनको नमस्कार है।’

अर्चद्वाल-मन्त्र

अर्च द्वालि देवेष अर्जीहार्यैः सदार्चितः ॥
शुक्लसुक्लिम्बालीतिसदैष्वयुतं कुरु ।

जीवेभर ! आप अर्थके अधिकारी पुरुषों तथा दूसरे लोगोंद्वारा भी सदैव पूजित हैं। मैं आपको अर्थदान करता हूँ। मुझे भोग, मोक्ष, संतान, यश और सभी प्रकारके ऐक्षण्योंसे युक्त कीजिये ।

फिर 'वामनाय नमः' इस मन्त्रसे गन्धद्रव्य समर्पित करे और इसी मन्त्रद्वारा श्रीहरिके उद्देश्यसे एक सौ आठ आहुतियाँ दे ॥ ३-७ ॥

'ॐ नमो वासुदेवाय ।' मन्त्रसे श्रीहरिके शिरोभाराकी अर्चना करे। 'श्रीधराय नमः ।' से मुखफा, 'कृष्णाय नमः ।' से कण्ठदेशका, 'श्रीपतये नमः ।' कहकर वक्षःश्यलका, 'सर्वाङ्गाधारिणे नमः ।' कहकर दोनों भुजाओंका, 'व्यापकाय नमः ।' से नाभि और 'वामनाय नमः ।' बोलकर कटिप्रदेशका पूजन करे। 'ब्रैह्मोवयजननाय नमः ।' मन्त्रसे भगवान् वामनके उपस्थिती, 'सर्वाधिष्ठितये नमः ।' से दोनों जङ्घाओंकी एवं 'सर्वामने नमः ।' कहकर श्रीविष्णुके चरणोंकी पूजा करे ॥ ८-१० ॥

तदनन्तर वामन भगवानको शृंगारिष्ठ नैवेद्य और दही-भातसे परिषूर्ण कुम्भ समर्पित करे। रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल संगममें स्नान करे। फिर गन्ध-पुष्टादिसे भगवान्का पूजन करके निमाहित मन्त्रसे पुष्टाङ्गलि समर्पित करे ॥

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अखण्डद्वादशी-ब्रतका वर्णन' नामक एक सौ नवरात्रों अध्याय पूरा हुआ ॥ १८९ ॥

एक सौ नव्वेवाँ अध्याय अखण्डद्वादशी-ब्रतका वर्णन

अग्निदेव कहने हैं—अब मैं 'अखण्डद्वादशी' ब्रतके विषयमें कहता हूँ, जो समस्त ब्रतोंभी सर्वार्थताका सम्पादन करनेवाली है। भार्गवीपके शुक्रपक्षकी द्वादशीको उपवास करके भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। ब्रत करनेवाला मनुष्य पञ्चगव्य-मिश्रित जलमें स्नान करे और उसीका पारण करे। इस द्वादशीको ब्राताणको जौ और धानसे भरा हुआ पात्र दान दे। भगवान् श्रीविष्णुके सम्मुख इस प्रकार प्रार्थना करे—‘भगवन् ! सात जन्मोंमें मेरे द्वारा जो ब्रत स्वर्णित हुआ हो, आपकी कृपाये वह मेरे लिये अखण्ड फलदायक हो जाय। पुरुषोंतम ! जैसे आप इस अखण्ड

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें 'अखण्डद्वादशी-ब्रतका वर्णन' नामक एक सौ नव्वेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९० ॥

नमो नगस्ते गोविन्द बुधश्रदणसाहित ॥
अवैघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौज्यप्रदो भव ।
प्रीत्यां देवदेवेश मम नित्यं जनार्दन ॥

‘बुध एवं श्रवणसंशक गोविन्द ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापसमूहका विनाश करके समस्त सौख्य प्रदान कीजिये। देवदेवेश जनार्दन ! आप मेरी इस पुष्टाङ्गलिसे नित्य प्रसन्न हों। ॥ ११-१३ ॥

(तत्प्रात् सम्पूर्ण पूजन-द्रव्य इस मन्त्रसे किसी विद्वान् ब्राह्मणको दे---)

वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयम् ।
वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च ॥
द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः ।

भगवान् वामनने मुझ दानकी बुद्धि प्रदान की है। वे ही दाता हैं। देय-द्रव्यमें भी सब वामन स्थित हैं। वामन भगवान् ही इसे ग्रहण कर रहे हैं और वामन ही मुझे प्रदान करते हैं। भगवान् वामन नित्य सभी द्रव्योंमें स्थित हैं। उन श्रीवामनावनार विष्णुको नमस्कार है, नमस्कार है।

इस प्रकार ब्राह्मणको दक्षिणासाहित पूजन-द्रव्य देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करे ॥ १४-१५ ॥

चत्वार विश्वके रूपमें स्थित हैं, उसी प्रकार मेरे किये हुए समस्त ब्रत अखण्ड हो जाय ।' इस प्रकार (मार्गशीशसे आरम्भ करके फल्लुनतक) प्रत्येक मासमें करना चाहिये। इस ब्रतको चार महीनेतक करनेका विधान है। चौथसे आशाद्वयन्त यह ब्रत करनेपर सदृशे भरा हुआ पात्र दान करे। श्रावणसे प्रारम्भ करके इस ब्रतको कार्तिकमें समाप्त करना चाहिये। उपर्युक्त विधिमें 'अखण्डद्वादशी' का ब्रत करनेपर सात जन्मोंके खण्डित ब्रतोंको यह सफल बना देता है। इसके करनेसे मनुष्य दीर्घ आयु, आरोग्य, सौभाग्य, राज्य और विविध भोग आदि प्राप्त करता है ॥ १-६ ॥

एक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय

त्रयोदशी तिथिके व्रत

अग्निदेव कहते हैं—अब मैं त्रयोदशी तिथिके व्रत कहता हूँ, जो सब कुछ देनेवाले हैं। पहले मैं ‘अनङ्ग-त्रयोदशी’ के विषयमें बतलाता हूँ। पूर्वकालमें अनङ्ग (कामदेव) ने इसका व्रत किया था। मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीको कामदेवस्वरूप ‘हर’ की पूजा करे। रात्रिमें मधुका भोजन करे तथा तिल और अक्षत-मिश्रित छूटका होम करे। पौषमें ‘योगेश्वर’ का पूजन एवं होम करके चन्दनका प्राशान करे। माघमें ‘महादेव’की अर्चना करके मौत्तिक (रात्रा नामक पौधे के) जलका आहार करे। इससे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। व्रत करनेवाला फाल्गुनमें ‘धीरभद्र’ का पूजन करके कफ्लोलका प्राशान करे। चैत्रमें ‘भुरुप’ नामक शिवकी अर्चना करके कर्पूरका आहार करनेवाला मनुष्य सौभाग्ययुक्त होता है। वैशाखमें ‘महारूप’ की पूजा करके जायफलका भोजन करे। व्रत करनेवाला मनुष्य ज्येष्ठ मासमें ‘प्रधुमन’ का पूजन करे और और लोग चबाकर रहे। आषाढ़में ‘उमापति’ की

इस प्रकार आदि आनेव महापुराणमें त्रयोदशीके व्रतका वर्णन नामक पक सौ इक्यानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९१ ॥

एक सौ बानवेवाँ अध्याय

चतुर्दशी-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं चतुर्दशी तिथिको किये जानेवाले व्रतका वर्णन करूँगा। वह व्रत भोग और मोक्ष देनेवाला है। कार्तिकी चतुर्दशीको निराहार रहकर भगवान् शिवका पूजन करे और वहसि आरभ्म करके प्रत्येक मासकी शिव-चतुर्दशीको व्रत और शिवपूजनका क्रम चलाते हुए एक वर्षतक इस नियमको निभावे। ऐसा करनेवाला पुरुष भोग, धन और दीर्घायुसे सम्पन्न होता है ॥ १९२ ॥

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी, तृतीया, द्वादशी अथवा चतुर्दशीको गौन भारण करके फलाहारपर रहे और देवताका पूजन करे तथा कुछ फलोंका सदाके लिये स्त्राण करके उन्होंका दान करे। इस प्रकार ‘फलचतुर्दशी’ का व्रत करनेवाला पुरुष इड़ और झाण—दोनों पक्षोंकी चतुर्दशी एवं अष्टमीको उपवासपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस तिथिते दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीका व्रत करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका मारी होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमी तथा

अर्चना करके तिळमिश्रित जलका पान करे। आवरणमें ‘शूलपाणि’ का पूजन करके सुगन्धित जलका पान करे। भाद्रपदमें अगुरुका प्राशान करे और ‘स्त्रोजात’ का पूजन करे। आश्विनमें ‘त्रिदशाधिप शंकर’ के पूजनपूर्वक स्वर्णजलका पान करे। व्रती पुरुष कार्तिकमें ‘विश्वेश्वर’ की अर्चनाके अनन्तर लवणका भक्षण करे। इस प्रकार वर्षके समास हीनेपर स्वर्णनिर्मित शिवलिङ्गको आमके पत्तों और बज्जुसे ढक्कर ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक दान दे। साथ ही गौ, शश्या, छत्र, कलश, पादुका तथा रसपूर्ण पात्र भी दे ॥ १-९ ॥

चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको सिन्दूर और काजलसे अशोकवृक्षको अङ्गित करके उसके नीचे रति और प्रीति (कामकी पत्नियों) से युक्त कामदेवका सरण करे। इस प्रकार कामनायुक्त साधक एक वर्षतक कामदेवका पूजन करे। यह ‘कामत्रयोदशी व्रत’ कहलाता है ॥ १०-११ ॥

चतुर्दशीको नक्तव्रत (केवल रातमें भोजन) करनेसे साधक इहलोकमें अभीष्ट भोग तथा परलोकमें शुभ गति पाता है। कार्तिकी कृष्णा चतुर्दशीको स्नान करके ध्वजके आकारवाले बौसके ढंडोंपर देवराज इन्द्रकी आराधना करनेसे मनुष्य मुखी होता है ॥ २—६ ॥

तदनन्तर प्रत्येक मासकी शुक्ल चतुर्दशीको श्रीहरिके कृश्मय विग्रहका निर्माण करके उसे जलसे भरे पात्रके ऊपर पधरावे और उसका पूजन करे। उस दिन अगाही धानके पक सेर चापलके आटेका पूआ बनवा के। उसमेंसे आधा ब्राह्मणको दे दे और आधा अपने उपयोगमें लावे ॥ ७-८ ॥

नदिवेशके तटपर इस व्रत और पूजनका आयोजन करके वहीं श्रीहरिके ‘अनन्तव्रत’की कथाका भी श्रवण या कीर्तन करना चाहिये। उस समय चतुर्दश प्रतियोदीसे युक्त अनन्त-वृक्षका निर्माण करके अनन्तकी भावनावे ही उसका पूजन

करे । फिर निम्नाङ्कित मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे अपने हाथ का कण्ठ में बाँध ले । मन्त्र इस प्रकार है—

अग्नसंसारमहासुद्धे
ममान् समझुद्धर वासुदेव ॥
अग्नस्त्रये विनिवोजयस्त
ह्यमन्तर्घाय नमो नमस्ते ।

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें अनेक प्रकारके चतुर्दशी-ब्रतोंका वर्णन नामक एक सौ बानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९२ ॥

एक सौ तिरानवेवाँ अध्याय शिवरात्रि-ब्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले ‘शिवरात्रि-ब्रत’ का वर्णन करता हूँ; एकाग्रचित्तसे उसका श्वरण करो । फाल्गुनके वृष्णपक्षकी चतुर्दशीको मनुष्य कामनासहित उपवास करे । ब्रत करनेवाला रात्रिको जागरण करे और यह कहे—‘मैं चतुर्दशीको भोजनका परित्याग करके शिवरात्रिका ब्रत करता हूँ । मैं ब्रतयुक्त होकर रात्रि-जागरणके द्वारा शिवका पूजन करता हूँ । मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले दांकरका आवाहन करता हूँ । शिव ! आप नरक-समुद्रसे पार करानेवाली

नौकाके समान हैं; आपको नमस्कार है । आप प्रजा और राज्यादि प्रदान करनेवाले, मङ्गलमय एवं शान्तस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है । आप सौभाग्य, आरोग्य, विद्या, धन और स्वर्ग-मार्गकी प्राप्ति करनेवाले हैं । मुझे धर्म दीजिये, धन दीजिये और कामभोगादि प्रदान कीजिये । मुझे गुण, कीर्ति और सुखसे सम्पन्न कीजिये तथा स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कीजिये ।’ इस शिवरात्रि-ब्रतके प्रभावसे पापस्या सुन्दररेण व्याधने भी पुण्य प्राप्त किया ॥ १—६ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें शिवरात्रि-ब्रतका वर्णन नामक एक सौ तिरानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९३ ॥

एक सौ चौरानवेवाँ अध्याय अशोकपूर्णिमा आदि ब्रतोंका वर्णन

अग्निनेव कहते हैं—अब मैं ‘अशोकपूर्णिमा’के विषयमें कहता हूँ । फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको भगवान् वराह और भूदेवीका पूजन करे । एक वर्ष ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनोंको प्राप्त कर लेता है । कार्तिककी पूर्णिमाको वृत्संर्ग करके रात्रिवत्का अनुष्ठान करे । इससे मनुष्य शिवलोकको प्राप्त होता है । यह उत्तम ब्रत वृष्णोत्सर्गब्रतके नामसे प्रसिद्ध है । आश्विनके पितृपक्षकी अमावास्याको पितरोंके उद्देश्यसे जो छुड़ दिया जाता है, वह अक्षय होता है । मनुष्य किसी वर्ष इस अमावास्याको उपवासपूर्वक पितरोंका पूजन करके पापरहित होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है । माघ मासकी अमावास्याको (सावित्रीसहित) ब्रह्माका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । अब मैं ‘बट्टावित्री’-सम्बन्धी अमावास्याके विषयमें कहता

हूँ, जो पुण्यमयी एवं भोग और मोक्षकी प्राप्ति करनेवाली है । ब्रत करनेवाली नारी (त्रियोदशीसे अमावास्यातक) ‘विद्रात्रब्रत’ करे और ल्येषकी अमावास्याको बट्टवक्षके मूलभागमें महासूती सावित्रीका सतधान्यसे पूजन करे । जब रात्रि कुछ दोष हो, उसी समय बटके कण्ठसूत्र ल्येषकर कुङ्कुमादिसे उसका पूजन करे । प्रभातकालमें बटके समीप नृत्य करे और गीत गाये । ‘नमः सावित्रै सत्यवते ।’ (सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार है)—ऐसा कहकर सत्यवान्-सावित्रीको नमस्कार करे और उनको समर्पित किया हुआ नैवेद्य ब्राह्मणको दे । फिर अपने घर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भी भोजन करे । ‘सावित्रीदेवी प्रीयताम् ।’ (सावित्रीदेवी प्रसन्न हों)—ऐसा कहकर ब्रतका विसर्जन करे । इससे नारी सौभाग्य आदिको प्राप्त करती है ॥ १—८ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें ‘तिथि-ब्रतका वर्णन’ नामक एक ही चौरानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९४ ॥

एक सौ पंचानवेवाँ अध्याय

वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ। अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। जब रविवारको हत्ता अथवा पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, तब पवित्र सर्वोश्चिमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। इस प्रकार रविवारको आदि करनेवाला सात जन्मोंमें रोगसे पीड़ित नहीं होता। संक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो, तो उसे पवित्र ‘आदित्य-हृदय’ माना गया है। उस दिन अथवा हृस्तनक्षत्रयुक्त रविवारको एक वर्षतक नक्तव्रत करके मनुष्य सब कुछ पा लेता है। चित्रानक्षत्रयुक्त सोमवारके सात व्रत करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है।

इस प्रकार आदि आग्नेय महापुराणमें ‘वार-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन’ नामक एक सौ पंचानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९५ ॥

एक सौ छियानवेवाँ अध्याय

नक्षत्र-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ। अब मैं नक्षत्र-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ। नक्षत्र-विशेषमें पूजन करनेपर श्रीहरि अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करते हैं। सर्वप्रथम नक्षत्र-पुरुष श्रीहरिका चैत्र मासमें पूजन करे। मूल नक्षत्रमें श्रीहरिके चरण-कमलोंकी और रोहिणी नक्षत्रमें उनकी जङ्घाओंकी अर्चना करे। अधिनी नक्षत्रके प्राप्त हेनेपर जानुयुग्मका, पूर्वोषाढा और उत्तरोषाढामें इनकी दोनों ऊर्ध्वोंका, पूर्वोफाल्युनी और उत्तरोफाल्युनीमें उपस्थका, कृत्सिका नक्षत्रमें कृत्प्रदेशका, पूर्वोभाद्रपदा और उत्तरोभाद्रपदमें पाश्वभागका, रेवती नक्षत्रमें कुक्षिदेशका, अनुराधामें स्तनयुग्लका, धनिष्ठामें पृष्ठभागका, विशाखामें दोनों भुजाओंका एवं पुनर्वसु नक्षत्रमें अङ्गुलियोंका पूजन करे। आश्लेषामें नखोंका पूजन करके ज्येष्ठामें कण्ठका यजन करे। श्वेत नक्षत्रमें सर्वव्यापी श्रीहरिका कर्णदयका और पुष्य नक्षत्रमें वदन-मण्डलका पूजन करे। स्वाती नक्षत्रमें उनके दाँतोंके अग्रभागकी, शतभिषा नक्षत्रमें मुखकी अर्चना करे। मध्य नक्षत्रमें नालिकाकी, मृगशिरा नक्षत्रमें नेत्रोंकी, चित्रा नक्षत्रमें ललाटकी एवं आदी नक्षत्रमें केशसमूहकी

स्वातीनक्षत्रसे युक्त मङ्गलवारका व्रत आरम्भ करे। इस प्रकार मङ्गलवारके सात नक्तव्रत करके मनुष्य हुःख-वाधाओंसे छुटकारा पाता है। बुध-सम्बन्धी व्रतमें विशाखा नक्षत्रयुक्त बुधवारको ग्रहण करे। उससे आरम्भ करके बुधवारके सात नक्तव्रत करनेवाला बुधग्रहजनित पीड़िते युक्त हो जाता है। अनुराधानक्षत्रयुक्त गुरुवारसे आरम्भ करके मातृ नक्तव्रत करनेवाला शृहस्यति-महकी पीड़िसे, ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त शुक्रवारको व्रत ग्रहण करके सात नक्तव्रत करनेवाला शुक्रग्रहकी पीड़िसे और मूलनक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ करके सात नक्तव्रत करनेवाला शनिग्रहकी पीड़िसे निवृत्त हो जाता है ॥ १-५ ॥

पूजा करे। वर्षके समात होनेपर गुडसे परिपूर्ण कलशपर श्रीहरिकी स्वर्णमयी मूर्तिकी पूजा करके ब्राह्मणको दक्षिणासहित शश्या, गौ और धनादिका दान दे ॥ १-७ ॥

सबके पूजनीय नक्षत्रपुरुष श्रीविष्णु शिवसे अभिन्न हैं, हस्तिलिये शाम्भवायनीय (शिव-सम्बन्धी) व्रत करनेवालेको कृत्सिका-नक्षत्र-सम्बन्धी कार्तिक मासमें और मृगशिरा-नक्षत्र-सम्बन्धी मार्गशीर्ष मासमें केशव आदि नामों एवं ‘अच्युताय नमः ।’ आदि भन्नोंद्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये—

संक्षिप्त-मन्त्र

कार्तिके कृत्सिकाभेदहि मासनक्षत्रगं हरिम् ।

शाम्भवायनीयवत्तकं करिष्ये भुक्तिसुकिदम् ॥

‘मैं कार्तिक मासकी कृत्सिकानक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको मास एवं नक्षत्रमें स्थित श्रीहरिका पूजन करूँगा तथा भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले शाम्भवायनीय व्रतका अनुष्ठान करूँगा ।’

आवाहन-मन्त्र

केशवादिमहामूर्तिमच्युतं सर्वद्रष्टव्यम् ।

आवाहयाम्यहं देवमायुरारोम्यहृदिदम् ॥

‘जो केशव आदि महामूर्तियोंके रूपमें स्थित हैं और आत्म एवं आपेक्षकी हृषि करनेवाले हैं, मैं उन सर्वप्रद भगवान् अच्युतका आवाहन करता हूँ।’

ब्रतकर्ता कार्तिकसे माघतक चार मासोंमें सदा अङ्ग-दान करे। फाल्गुनवे ज्येष्ठतक खिन्चडीका और आशाद्से आश्चिन्तक खीरका दान करे। भगवान् श्रीहरि एवं ब्राह्मणोंको रात्रिके समय नैवेद्य समर्पित करे। पञ्चगव्यके जलसे ज्ञान एवं उसका आचमन करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। दूसरिके विसर्जनके पूर्व भगवान्को समर्पित किये हुए समस्त पदार्थोंको ‘नैवेद्य’ कहा जाता है, परंतु जगदीश्वर श्रीहरिके विसर्जनके अनन्तर वह तत्काल ही ‘निर्माल्य’ हो जाता है। (तदनन्तर भगवान्से निष्ठलिङ्गित प्रार्थना करे—) ‘अच्युत! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरे पापोंका विनाश हो और पुण्योंकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदा अख्य हों एवं मेरी मंतान परम्परा कभी उत्थित न हो। परात्परस्तर ! अप्रमेय परमेश्वर ! जित्य प्रकार आप परसे भी परे एवं ब्राह्मणमें स्थित होकर व्यपनी मर्यादासे कभी च्युत नहीं होते हैं, उसी प्रकार आप मेरे मनोवाचिष्ठत कार्यको सिद्ध कीजिये। पापापाहारी भगवन्। मेरेद्वारा किये

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें ‘नक्षत्र-ब्रतोंका वर्णन’ नामक एक सौ छिंगानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥



एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय

दिन-सम्बन्धी व्रत

अग्निदेव कहते हैं—‘वसिष्ठ ! अब मैं दिवस-सम्बन्धी ब्रतोंका वर्णन करता हूँ। सबसे पहले ‘वेनुव्रत’के विषयमें बतलाता हूँ। जो मनुष्य विपुल म्वर्णराशिके साथ उभयमुखी गौका दान करता है और एक दिनतक पयोग्रतका आचरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। स्वर्णमय कल्पवृक्षका दान देकर तीन दिनतक ‘पयोग्रत’ करनेवाला ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। इसे ‘कल्पवृक्ष-ब्रत’ कहा गया है। बीस पलसे अधिक स्वर्णकी पृथ्वीका निर्माण करके दान दे और एक दिन पयोग्रतका अनुष्ठान करे। केवल दिनमें ब्रत रखनेसे मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो प्रत्येक पक्षकी तीन रात्रियोंमें ‘एकमुक्त-ब्रत’ रखता है, वह दिनमें निराहर रहकर ‘श्रिरात्रब्रत’ करनेवाला मनुष्य विपुल धन प्राप्त करता है। प्रत्येक मासमें तीन एकमुक्त

नक्षत्र करनेवाला गणपतिके मायुर्यको प्राप्त होता है। जो भगवान् जनार्दनके उद्देश्यसे ‘श्रिरात्रब्रत’ का अनुष्ठान करता है, वह अपने सौ कुलांके साथ भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठधामको जाता है। वतानुरागी मनुष्य मार्गशीर्षके चुक्कपक्षकी नवमीसे विधिपूर्वक त्रिप्रात्रब्रत प्रारम्भ करे। ‘नमो भगवते वासुदेवाय’ मन्त्रका सहस्र अथवा सौ बार जप करे। अष्टमीको एकमुक्त (दिनमें एक बार भोजन करना) ब्रत और नवमी: दशमी, एकादशीको उपवास करे। द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। यह ब्रत कार्तिकमें करना चाहिये। ब्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणोंको भोजन करके, उन्हें वस्त्र, शश्या, आसन, छत्र, यजोपवीत और पात्र दान करे। देते समय ब्राह्मणोंसे यह प्रार्थना करे—‘इस दुष्कर ब्रतके अनुष्ठानमें मेरे द्वारा जो त्रुटि हुई हो, आप

लोगोंकी आशासे वह परिषूल हो जाय ।' यह 'त्रिरात्रव्रत' करनेवाला इस लोकमें भोगोंका उपमोग करके मृत्युके प्रभाव भगवान् श्रीविष्णुके सांनिध्यको प्राप्त करता है ॥ १—११ ॥

अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले कार्तिक-ब्रतके विषयमें कहता हूँ । दशमीको पञ्चगव्यका प्राप्तान करके एकादशीको उपवास करे । इस ब्रतके पालनमें कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रीविष्णुका पूजन करनेवाला मनुष्य विमानचारी देवता होता है । चैत्रमें त्रिरात्रव्रत करके केवल रात्रिके समय भोजन करनेवाला एवं ब्रतकी समाप्तिमें पाँच

बकरियोंका दान देनेवाला मुखी होता है । कार्तिकके शुक्लपक्षकी आरम्भ करके तीन दिनतक केवल तुरंग पीकर रहे । फिर तीन दिनतक उपवास करे । इसे 'पाहेन्द्रकृच्छ्र' कहा जाता है । कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको आरम्भ करके 'पञ्चरात्र-ब्रत' करे । प्रथम दिन दुग्धपान करे, दूसरे दिन दधिका आहार करे, फिर तीन दिनतक उपवास करे । यह अर्थप्रद 'भास्तकरकृच्छ्र' कहलाता है । शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ करके छः दिनतक ज्ञामशः यवकी लपसी, शाक, दधि, दुग्ध, धूत और जल—इन वस्तुओंका आहार करे । इसे 'सांतपनकृच्छ्र' कहा गया है ॥ १२—१६ ॥

इस प्रकार आदि आनन्देय महापुराणमें 'दिवस-सम्बन्धी व्रतका वर्णन' नामक एक सौ

सत्तानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९७ ॥

एक सौ अट्ठानवेवाँ अध्याय

मास-सम्बन्धी व्रत

[अग्निदेव कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं मास-ब्रतोंका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मासमें अन्यङ्ग (मालिश और उबटन) का त्याग करे । इससे मनुष्य उत्तम बुद्धि प्राप्त करता है । वैशाखमें पुष्परेणुतकका परित्याग करके गोदान करनेवाला राज्य प्राप्त करता है । एक मास उपवास रखकर गोदान करनेवाला इस भीमब्रतके प्रभावसे श्रीहरिस्वरूप हो जाता है । आषाढ़से प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मासमें नियमपूर्वक प्रातःस्नान करनेवाला विष्णुलोकको जाता है । माघ अथवा चैत्र मासकी शूतीयाको गुड़-धेनुका दान दे, इसे 'गुडव्रत' कहा गया है । इस महान् व्रतका अनुष्ठान करनेवाला शिवस्वरूप हो जाता है । मार्गशीर्ष आदि मासोंमें 'नक्तव्रत' (रात्रिमें एक बार भोजन) करनेवाला विष्णुलोकका अधिकारी होता है । 'एकभूत व्रत'का पालन करनेवाला उसी प्रकार पृथक् रूपसे द्वादशीव्रतका भी पालन करे । 'फलव्रत' करनेवाला चातुर्मासमें फलोंका त्याग करके उनका दान करे ॥ १—५ ॥

श्रावणसे प्रारम्भ होनेवाले चातुर्मासमें ब्रतोंके अनुष्ठानसे व्रतकर्ता सब कुछ प्राप्त कर लेता है । चातुर्मास्य-ब्रतोंका

इस प्रकार विचान करे—आषाढ़के शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रखते । प्रायः आषाढ़में प्राप्त होनेवाली कर्क-संक्रान्तिमें श्रीहरिका पूजन करे और कहे—'भगवन् ! मैंने आपके सम्मुख यह व्रत ग्रहण किया है । केशव ! आपकी प्रसन्नतासे इसकी निर्विज खिद्दि हो । देवाभिरेव जनादिन ! यदि इस ब्रतके ग्रहणके अनन्तर इसकी अपूर्णतामें ही मेरी मृत्यु हो जाय, तो आपके कृपा-प्रसादसे यह व्रत सम्पूर्ण हो ।' व्रत करनेवाला द्विज मांस आदि निशिद्ध वस्तुओं और तेलका त्याग करके श्रीहरिका यजन करे । एक दिनके अन्तरसे उपवास रखकर त्रिरात्रव्रत करनेवाला विष्णुलोकका प्राप्त होता है । 'न्वान्द्रायण व्रत' करनेवाला विष्णुलोकका और 'मौन व्रत' करनेवाला मोक्षका अधिकारी होता है । 'प्राजापत्य व्रत' करनेवाला स्वर्गलोकको जाता है । सत् और यवका भक्षण करके, तुरंग आदिका आहार करके, अथवा पञ्चगव्य एवं जल पीकर कृच्छ्रब्रतोंका अनुष्ठान करनेवाला स्वर्गको प्राप्त होता है । शाक, मूळ और फलके आहारपूर्वक कृच्छ्रव्रत करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठको जाता है । मांस और रसका परित्याग करके जौका भोजन करनेवाला श्रीहरिके सांनिध्यको प्राप्त करता है ॥ ६—१२३ ॥

अब मैं 'कौमुदव्रत' का वर्णन करूँगा । आविष्णवके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास रखते । द्वादशीको श्रीविष्णुके अङ्गोंमें चन्दनादिका अनुलेपन करके कमल और उत्तल आदि पुर्णोंसे उनका पूजन करे । तदनन्तर तिल-तैलसे परिपूर्ण हीपक और घृतसिद्ध पक्काजड़का नैवेद्य समर्पित करे । श्रीविष्णुको मालतीपुष्पोंकी माला भी, निवेदन करे । 'ॐ

नमो वासुदेवाय'—इस मन्त्रसे ब्रतका विसर्जन करे । इस प्रकार 'कौमुदव्रत' का अनुष्ठान करनेवाला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषाओंको इस्तगत कर लेता है । मासोणवास-ब्रत करनेवाला श्रीविष्णुका पूजन करके सब कुछ प्राप्त कर लेता है ॥ १३-१६ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें भास-सम्बन्धी ब्रतका वर्णन' नामक एक सौ अष्टावेदाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९८ ॥

एक सौ निन्यानबेदाँ अध्याय

ऋतु, वर्ष, मास, संक्रान्ति आदि विभिन्न व्रतोंका वर्णन

अग्निदेव कहते हैं—उसिष्ठ । अब मैं आपके सम्मुख ऋतु-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जो भोग और मोक्षको सुलभ करनेवाले हैं । जो वर्षा, शुग्रद, इमन्त और गिदिर ऋतुमें इन्धनका दान करता है एवं व्रतान्तरमें घृत-घेनुका दान करता है, वह 'अग्निव्रत'का पालन करनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है । जो एक मासतः गंगाके समय मौन रहकर मासान्तरमें ब्राह्मणको घृतकुम्भ, तिल, धण्डा और वस्त्र देता है, वह 'पारस्वतव्रत' करनेवाला मनुष्य सुखका उपभोग करता है । एक वर्षतक पञ्चामृतसे स्नान करके गोदान करनेवाला राजा होता है ॥ १--३ ॥

चैत्रकी एकादशीको नक्तभुनव्रत करके चैत्रके समाप्त होनेपर विष्णुभक्त ब्राह्मणों ख्वर्णमयी विष्णु-प्रणिमाका दान करे । इस विष्णु सम्बन्धी उत्तम व्रतका पालन करनेवाला विष्णुपदको प्राप्त करता है । (एक वर्षतः) अतिरिक्त भोजन करके गोदुमका दान परनेवाला इस 'देवव्रत'के पालनके प्रभावसे श्रीसम्पद होता है । जो (एक वर्षतः) पितृदेवों-को समर्पित करके भोजन करता है, वह राज्य प्राप्त करता

है । ये वर्ष-सम्बन्धी व्रत कहे गये । अब मैं संकान्ति-सम्बन्धी व्रतोंका वर्णन करता हूँ । मनुष्य संकान्तिकी रात्रिको जागरण करनेसे स्वर्गलोकको प्राप्त होता है । जब संकान्ति अमावास्या तिथिमें हो तो शिव और सूर्यका पूजन करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । उत्तरायण-सम्बन्धिनी मकर-संकान्तिमें प्रातःकाल स्नान करके भगवान् श्रीकेदावकी अर्चना करनी चाहिये । उद्यापनमें वत्तीम पल स्वर्णका दान देकर वह सम्पूर्ण गायोंमें मुक्त हो जाता है । विषुव आदि योगोंमें भगवान् श्रीहरिको घृतमिश्रित दुर्घ आदिसे स्नान करके मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है ॥ ४—८ ॥

छियोंके लिये 'उमाव्रत' लक्ष्मी गदान करनेवाला है । उन्हें तृतीया और अष्टमी तिथियों गोरीशः रक्षी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार शिव शावती ॥ अर्चना करके नारी अग्वण्ड सौभाग्य प्राप्त करती है और उसे कभी पतिका विषेश नहीं होता । 'मूलव्रत' एवं 'उमेशव्रत' करनेवाली तथा सूर्यमें भनि रखनेवाली स्त्री दूसरे जन्ममें अवश्य पुरुषत्व प्राप्त करती है ॥ ९—११ ॥

इस प्रकार आदि आनन्द महापुराणमें 'विभिन्न व्रतोंका वर्णन' नामक एक सौ निन्यानबेदाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

दो सौवाँ अध्याय

दीपदान-ब्रतकी महिमा एवं विदर्भराजकुमारी ललिताका उपाख्यान

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ ! अब मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले 'दीपदान-ब्रत'का वर्णन करता हूँ । जो मनुष्य देवमन्दिर अथवा ब्राह्मणके गृहमें एक वर्षतक दीपदान करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है । चातुर्मास्यमें दीपदान करनेवाला विष्णुलोकों और कार्तिकमें दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकको प्राप्त होता है । दीपदानसे बढ़कर न कोई व्रत है, न था और न होगा ही । दीपदानसे आयु और नेत्रज्योतिकी प्राप्ति होती है । दीपदानसे धन और पुत्रादिकी भी प्राप्ति होती है । दीपदान करनेवाला रौभाग्ययुक्त होकर स्वर्गलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है । विदर्भराजकुमारी ललिता दीपदानके पुण्यसे ही राजा चारधर्माकी पली हुई और उसकी सौ रानियोंमें प्रमुख हुई । उस सात्वीने एक बार विष्णुमन्दिरमें सहस्र दीपोंका दान किया । इसपर उसकी सपलियोंने उससे दीपदानका माहात्म्य पूछा । उनके पूछनेपर उसने इस प्रकार कहा—॥ १-५ ॥

ललिता बोली—पहलेकी बात है, सौवीरराजके यहाँ मैलेय नामक पुरोहित थे । उन्होंने देविका नदीके तटपर भगवान् श्रीविष्णुका मन्दिर बनवाया । कार्तिक मासमें उन्होंने दीपदान किया । विलापके ढरसे भागती हुई एक चुहियाने अकस्मात् अपने मुखके अग्रभागसे उस दीपककी चत्तीको बढ़ा दिया । चत्तीके बढ़नेसे वह बुझता हुआ दीपक प्रज्वलित हो उठा । मृत्युके पश्चात् वही चुहिया राजकुमारी हुई और राजा चारधर्माकी सौ रानियोंमें पटरानी हुई । इस प्रकार मेरेद्वारा विना सोचे-समझे जो विष्णुमन्दिरके दीपककी वर्तिका बढ़ा दी गयी, उसी पुण्यका मैं फल भोग रही हूँ । इसीसे मुझे अपने पूर्वजन्म-का स्मरण भी है । इसलिये मैं सदा दीपदान किया

इस प्रकार आदि आगेय महापुराणमें 'दीपदानकी महिमाका वर्णन' नामक दो सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०० ॥

करती हूँ । एकादशीको दीपदान करनेवाला स्वर्गलोकमें विभानपर आलड़ होकर प्रमुदित होता है । मन्दिरका दीपक हरण करनेवाला गूँगा अथवा मूर्ख हो जाता है । वह निश्चय ही 'अन्धतामिक्ष' नामक नरकमें गिरता है, जिसे पार करना दुष्कर है । वहाँ रुदन करते हुए मनुष्योंसे यमदूत कहता है—“अरे ! अब यहाँ विलाप क्यों करते हो ? यहों विलाप करनेसे क्या लाभ है ? पहले तुमलोगोंने प्रमादबशा सहस्रों जन्मोंके बाद प्राप्त होनेवाले मनुष्य-जन्मकी उपेक्षा की थी । वहाँ तो अत्यन्त मोहयुक्त चित्तसे तुमने भोगोंके पीछे दौड़ लगायी । पहले तो विषयोंका आस्वादन करके खुब हँसे थे, अब यहाँ क्यों रो रहे हो ? तुमने पहले ही यह क्यों नहीं सोचा कि किये हुए कुकर्मोंका फल भोगना पढ़ता है । पहले जो परनारीका कुचमदन तुम्हें प्रीतिकर प्रतीत होता था, वही अब तुम्हारे दुःखका कारण हुआ है । मुहूर्तभरका विषयोंका आस्वादन अनेक करोड़ वर्षोंतक दुःख देनेवाला होता है । तुमने परस्तीका अपहरण करके जो कुकर्म किया, वह मैंने बतलाया । अब ‘हा ! मातः’ कहकर विलाप क्यों करते हो ? भगवान् श्रीहरिके नामका जिहासे उच्चारण करनेमें कौन-सा बड़ा भार है ? बच्ची और तेल अल्प मूल्यकी बस्तुएँ हैं और अग्नि तो वैसे ही सदा सुलभ है । इसपर भी तुमने दीपदान न करके विष्णु-मन्दिरके दीपकका हरण किया, वही तुम्हारे लिये दुःख-दायी हो रहा है । विलाप करनेसे क्या लाभ ? अब तो जो यातना मिल रही है, उसे उहन करो ” ॥ ६-१८ ॥

अग्निदेव कहते हैं—ललिताकी सौतें उसके द्वारा कहे हुए इस उपाख्यानको सुनकर दीपदानके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त हो गयी । इसलिये दीपदान सभी ब्रतोंसे विशेष फलदायक है ॥ १९ ॥



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

अधिपुराणके २०० अध्यायोंका अनुवाद इस प्रथम खण्डमें दिया गया है। भगवत्कृपासे 'कल्याण'के प्रकाशनका सुयोग बना रहा तो शेष १८३ अध्यायोंका अनुवाद अगले वर्षके विशेषाङ्कमें दिया जा सकता है।

इस खण्डमें पृष्ठ-संख्या १ से ३२० तक आयी है। अगले अंशमें इसके आगे के पृष्ठोंकी संख्या इसी फॉर्मसे रहेगी।
